

ॐ श्रीगणेशायनम ॐ

गुरुमण्डल का २३ वां पुष्प

# मार्कण्डेय पुराण



( सप्तशती पर शान्तिनरी टीका के साथ )

महर्षिकृष्णद्वैपायनव्यासदेवजीकृत

मनसुखरायमोर

५, ह्याडन रो

कलकत्ता—१

✽ श्रीगणेशायनमः ✽

## मार्कण्डेयपुराण के विषय में

श्रीनन्दनन्दन वृन्दावन विहारी भगवान् राधामुकुन्द की असीम अनुकम्पा से गुरुमण्डल ग्रन्थमाला के ३३वें पुष्प रूप से प्रथित श्रीमार्कण्डेय पुराण विद्वज्जन के करकमलों में प्रस्तुत करते हुए अतीव आनन्द हो रहा है। इस पुराण के लिये वैदेशिक विद्वानों का मत है कि यह कई स्थानों पर प्रक्षिप्तअंशों से पूर्ण है और सम्बन्धित कथाख्यानों की पूर्वापर सन्दर्भों से समीचीन सङ्गति नहीं बैठती है। सुतरां, यह पुराण महापुराणों की गणना का विषय होकर भी लक्ष्णों से उस परिभाषा के प्रकोष्ठ में समाविष्ट नहीं होता। यह पुराणों की गणना में सातवां है।

ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं भागवतं तथा ।

तथान्यं नारदीयं च मार्कण्डेयं च सप्तमम् ॥

[ मा० पु० अ० १३७ ]

प्रस्तुत ग्रन्थ की विषयानुक्रमणिका नारदपुराण के पूर्वभाग की ८७ की अध्याय में इसप्रकार प्रतिपादित है :-

मार्कण्डेयपुराण के प्रतिपाद्य विषयों को बताते हुए नारदपुराण में कहा गया है कि इसमें शकुनिगण ( पक्षियों ) को उद्दिष्ट कर सभी धर्मों का

---

यत्राधिकृत्य शकुनीन् सर्वधर्मनिरूपणम् ।

मार्कण्डेयेन मुनिना जैमिनेः प्राक् समीरितम् ॥



कथा, अवीक्षित चरित्र और किमिच्छकव्रत का कीर्तन है। इनके साथ-साथ नरिष्यन्त का चरित्र और परमप्रतापी इक्ष्वाकु राजा का चरित्र वर्णित है। तुलसी के चरित्र के बाद श्रीरामचन्द्र की पुण्य सत्कथा, कुश-वंश का आस्थान और सोमवंश का गुणानुवाद निरूपित है। पुरुरवा राजा की कथा के अनन्तर परमनेजस्वी नरेश राजा का अद्भुत आस्थान और पुण्य-श्लोक परम भागवत ययाति का पवित्रकीर्ति सम्पन्न चरित्र और उसके आत्मा-कारी पुत्र के नाम से यदुवंश प्रचलित हुआ उसका कीर्तन प्रतिपादन किया गया है। श्रीकृष्णभगवान् का बालचरित्र उनके द्वारा मथुरा में कामको घथ कर उग्रसेन और माता देवकी का दुःख निवारण फिर द्वाराका चरित्र और भगवान् के सम्पूर्ण अवतारों की कथा वर्णित है। इनके पश्चात् माङ्ग्य का सिद्धान्त और प्रपञ्च अतन्त्र का सविस्तर निरूपण है। इसके अनन्तर महर्षि मार्कण्डेय का चरित्र वर्णन है। तत्पश्चात् इस पुराण श्रवण की महिमा का फल निरूपित है। हे वत्स! जो मनुष्य इस श्री मार्कण्डेय नामक पुराण को भक्ति पूर्वक एवं आदर पूर्वक सुनता है वह परमगतिको प्राप्त होता है। जो इसे अचि-कल श्रोतृवृन्द को सुनाता है उसे भगवान् आशुतोष शङ्कर जी का शैवलोक मिलता है। जो कार्तिक मास में मने के हार्थी के सहित इस महापुराण को लिखकर विद्वान् द्विजवर्य को देता है उसे ब्रह्मपद मिलता है। जो इस पवित्र महिमामय मार्कण्डेयपुराण की अनुक्रमणिका को सुनते और सुनाते हैं उन्हे अभिवाञ्छित फल मिलता है।

मनूनां च कथा नाना कीर्तिताः पापहारिकाः ।

इतासु दुर्गाकथाऽत्यन्तं पुण्यं वा चाष्टमेऽन्तरे ॥

तत्पश्चात्प्रणवोत्पत्तिश्चर्यतेजः समुद्भवः ।

मार्कण्डेयस्य च जन्माख्या तन्महात्म्यसमाधिता ॥



प्रतिपादन किया गया है। यह चिरय जैमिनि ऋषि को मार्कण्डेयजी ने पहले बताया था। सबप्रथम धर्मसंज्ञक पश्चात्तक का जन्म निरूपण, इनके पूवजन्म की कथा और दिवस्पति ( इन्द्र ) द्वारा इन्हें शाप फिर धीरतरामजी का ताथयात्रा। द्रौपदा क पुत्रा का आरुगान, पुण्यरत्न हरिश्चन्द्र का पवित्र चरित्र आडीयक ( गृध्र और यक्ष ) का युद्ध पिता पुत्र का आख्यान फिर धातनात्रेय की कथा, हैहय कातवायानुत का महाभाग्ययुक्त चरित्र निरूपित है। महामता मदारता का अपूर आरुगान और चक्रवर्ती सम्राट अरुका चरित्र वर्णन है। आगे पुण्यमयी नर प्रकार की सृष्टि का प्रतिपादन है। सृष्टि के कल्पान्तकाल का निर्देश, यक्ष ( यक्ष ) के द्वारा सृष्टि निरूपण है। रुद्रादि की सृष्टि, द्वापचर आदि का मग्यक निरूपण, सम्पूर्ण धनुदश मनुओं की पापहारिणा महत्त्वपूर्ण कथायें उनमें अगम मन्वन्तर में भगवता आद्या महाशक्ति के प्रथम मन्वन्तर और उत्तर चरित्रों सहित महाकाली, महालक्ष्मी एवं महासरस्वती की पुण्यदायिनी कथा मविस्तर वर्णित है। तत्पश्चात् प्रणय (ओड्डार) का आविभाव और त्र्याम्बक के उद्भव का वर्णन सूर्यभगवान का उत्पत्ति और सूर्य के माहात्म्य का निरूपण वैवस्वत वरा का समाख्यान और उसके बाद राचरि वन्सनाका चरित्र है। महात्मा खनित्र की पुण्य

पक्षिणा धर्मसंज्ञाना ततो जन्मनिरूपणम् ।

पूवजन्म कथा चैव विव्रिया च दिवस्पते ॥

ताथयात्रा चरम्याऽतो द्रौपद्यकथानचम् ।

हरिश्चन्द्रकथा पुण्या युद्धमाडीयकाभिधम् ॥

पितापुत्रममाख्यानदनात्रेयकथानत । हैहयस्याऽपचरित महाख्यानसमाहितम्

मदारता कथाप्राकाशकाचरित्राचिता । सृष्टिसर्गं च नपुण्यवधापरिकीर्तितम्

— — — — — यक्षसृष्टिनिरूपणम् । रुद्रादिसृष्टिरप्युक्ताद्वाप्यवानुकीर्तनम्

ऐसी स्थिति में भगवान् वेदव्यास की यह यथावदुपलब्धकृति ही सन्तोषाधायक होगी। हमें बहुत ही प्रसन्नता है कि पुराणों के हस्तलिखित ग्रन्थों की प्रतियों से हमारे गुरुमण्डल ग्रन्थमाला में प्रकाशित पुराणों के पाठ-भेद की तुलना के लिये चारम्बार कृपालु विद्वद्बृन्द से सादर प्रार्थना करने का इस वार श्रीमार्कण्डेयपुराणके प्रकाशन समानिपर फण से छत्री माहेश्वर ( मध्य प्रदेश )से श्रीमान् परमपूज्य शिवचैतन्यजी वर्णों द्वारा सविशेष मार्कण्डेयपुराण की हस्तलिखित प्रतिके भेजनेका पूर्ण सहानुभूति मिला। वर्णोंजीके कथनानुसार यह प्रति २०० वर्ष पुरानी है। दुर्गासप्तशती के प्राधानिक, वैकृतिक और मूर्तिरहस्यों का इस हस्तलिखित पुराणप्रति में अचिकल अध्याय प्रतिपादन-पुरःसर निरूपण है। अब भी मेरी हार्दिक इच्छा है कि २००० श्लोक जो अनुपलब्ध है उन्हें किसी भी प्रख्यात हस्तलिखित ग्रन्थ भाण्डार में से उपलब्ध करवाकर जो महोदय विद्वद्गर्भ इस पुराण को पूर्ण करने में श्रीमान् शिवचैतन्य जी वर्णों द्वारा प्रस्तुत आदर्शानुसार हमें अपना पथप्रदर्शन करेंगे उन्हें सभी पुराणप्रेमी साभार कृतज्ञता प्रदर्शित करेंगे। 'सौभाग्य से इस पुराण के उपान्त्य भाग ही अनुपलब्ध है'। इसलिये उन्हें हम परिशिष्ट में ग्रन्थ में सम्मिलित कर अपने कर्तव्य का पालन करेंगे। वर्णोंजी के पुराणोद्धारार्थ इस प्रयत्न का मैं ऋणी हूँ।

रहस्य-त्रय हमें परिशिष्ट में इसलिये देना पड़ा कि सम्पूर्ण ग्रन्थ के

यस्तु व्याकुस्ते चैतच्छैवं स लभते पदम् ॥  
 तत्प्रयच्छेल्लिखित्वा यः सौवर्णकरिसंयुतम् ।  
 कार्तिकायां द्विजवर्णाय स लभेद् ब्रह्मणः पदम् ॥  
 शृणोति श्रावयेद्वाऽपि यश्चानुक्रमणीमिमाम् ।  
 मार्कण्डेयपुराणस्य स लभेद्वाञ्छितं फलम् ॥

इसप्रकार हम देखते हैं कि उपर्युक्त अनुक्रमणिकाओं वर्णित नरिण्यन्त चरित्र के बाद हम के भाग्यजन के भक्त्यर प्रसन्न मार्गच्छेयपुराण में उपर्युक्त रात्मक श्लोकों के साथ साथ ग्रन्थ समाप्त हो जाती है। इसके आगे अथर्वक के प्रकाशित मार्कण्डेयपुराण का प्रतिगों में नहीं मिलता। अथर्वक श्लोक महत्त्वा प्राय ७००० उपर्युक्त है। मार्कण्डेयपुराण में इसकी श्लोक महत्त्वा नी हजार वर्णित है।

“यत्राधिराशरनीन् धमभ्यां विचारणा ।

श्याम्यता ये मुनिरने मुनिभिर्पंचारिभि ॥

मार्कण्डेयेन कथितं तस्मां विस्तरेण नृ ।

पुराणं नवमास्य मार्कण्डेयमिरोहणे ॥”

अर्थात् परीक्षण को अधिष्ठान करने धर्म एवं अधर्म का विद्वान्त प्रतिपादन, धम के वाचन करने वाले मुनिवन्द द्वारा प्रतीक्षर रूप में धीमार्कण्डेय द्वारा विस्तार कहा गया है। वही ६००० श्लोक वाला मार्कण्डेयपुराण प्रसिद्ध है।

धैर्यस्यतान्ययथापि धत्सप्रगाधरितं तत ।

गतित्रयं तत्रै प्रीना कथा पुण्या महात्मन ।

अधिभिचरित धैव किमिच्छियतकीर्तनम् ॥

नरिण्यन्तस्यचरितं श्याकुचरितं तत । तुल्यवाधरितपश्चाद्रामधन्द्रम्यसत्कथा  
 कुशवशममारुधान सोमप्रशानुकीर्तनम् । पुरुख कथा पुण्या महत्त्वा कथाद्गता  
 यथातिचरित पुण्य यदुवशानुकीर्तनम् । श्रीकृष्णबालचरितं माधरं चरितं तत  
 द्वारकाचरितश्चाथ कथासर्वापितारजा । ततसाहस्यसमुद्देशप्रपञ्चासत्त्वकीर्तनम्  
 मार्कण्डेयस्यचरितपुराणप्रवणेफलम् । यन्मृणोतिनरोमकत्वापुराणमिदमादरात्  
 मार्कण्डेयामिधं धत्स ! स लभेत् परमा गतिम् ।

ऐसी स्थिति में भगवान् वेदव्यास की यह यथावदुपलब्धकृति ही सन्तोषाशायक होगी। हमें बहुत ही प्रसन्नता है कि पुराणों के हस्तलिखित ग्रन्थों की प्रतियों से हमारे गुरुमण्डल ग्रन्थमाला में प्रकाशित पुराणों के पाठ-भेद की तुलना के लिये चारम्बार कृपालु विद्वद्गुरु से सादर प्रार्थना करने का इस चार श्रीमार्कण्डेयपुराणके प्रकाशन समामिपर फण से छत्री माहेश्वर ( मध्य प्रदेश )से श्रीमान् परमपूज्य शिवचैतन्यजी वर्णी द्वारा सविशेष मार्कण्डेयपुराण की हस्तलिखित प्रतिके भेजनेका पूर्ण साहाय्य मिला। वर्णीजीके कथनानुसार यह प्रति २०० वर्ष पुरानी है। दुर्गासप्तशती के प्राधानिक, वैकृतिक और मूर्तिरहस्यों का इस हस्तलिखित पुराणप्रति में अविकल अध्याय प्रतिपादन-पुरःसर निरूपण है। अब भी मेरी हार्दिक इच्छा है कि २००० श्लोक जो अनुपलब्ध है उन्हें किसी भी प्रख्यात हस्तलिखित ग्रन्थ भाण्डार में से उपलब्ध करवाकर जो महोदय विद्वद्गुरु इस पुराण को पूर्ण करने में श्रीमान् शिवचैतन्य जी वर्णी द्वारा प्रस्तुत आदर्शानुसार हमें अपना पथप्रदर्शन करेंगे उन्हें सभी पुराणप्रेमी साभार कृतज्ञता प्रदर्शित करेंगे। सौभाग्य से इस पुराण के उपान्त्य भाग ही अनुपलब्ध है। इसलिये उन्हें हम परिशिष्ट में ग्रन्थ में सम्मिलित कर अपने कर्तव्य का पालन करेंगे। वर्णीजी के पुराणोद्धारार्थ इस प्रयत्न का मैं ऋणी हूँ।

रहस्य-त्रय हमें परिशिष्ट में इसलिये देना पड़ा कि सम्पूर्ण ग्रन्थ के

यस्तु व्याकुस्ते घैतच्छैवं स लभते पदम् ॥  
 तत्प्रयच्छेह्लिखित्वा यः सौवर्णकरिसंयुतम् ।  
 कार्तिक्यां द्विजवर्णाय स लभेद् ब्रह्मणः पदम् ॥  
 शृणोति श्रावयेद्वाऽपि यश्चानुक्रमणीमिमाम् ।  
 मार्कण्डेयपुराणस्य स लभेद्वाञ्छितं फलम् ॥

प्रकाशन का कार्य समाप्ति पर था और इस दृष्टान्तिलिखित पुराण ग्रन्थ की हमें तभी प्राप्ति हुई समयोपरान्त अगत्या यही मार्गानुसरण करनेको हम बाध्य हुए हयान्तु पाठक क्षमा करें ।

भगवता जगद्ग्या आघाजति की प्रकृत महिमा भारतीय जनता की अर्द्धविक्रम प्रदा एवं भक्ति की आराध्या के रूप में आन्तका में सर्वत्र प्रसिद्ध है । माण्डूकेयपुराणान्तगत ११ अध्याय में १३ तक महाशती का पूर्ण आख्यान है जो साङ्गोपाङ्गविधि पर परायण सहितप्रदानुक्तोंका, तान्त्रिक समुदाय का और दुर्गाभक्ति परायण महानुभावों का अत्युत्तम ग्रन्थ है । इस दुर्गासंशती का उपादेयता मयविहित है साथ ही इसमें वर्णित एक एक श्लोक में एक एक अक्षर के विशेष मन्त्र की प्रकिया है जैसा उसने विशिष्ट मन्त्रों का मत है । इस महाशती की विशेष टोकियों विद्वज्जनानुमोदित प्राय १% ०० है जिनमें शान्तनवी और गुप्तवता टोकियों मन्त्रे मूर्धन्य है । भगवती के साक्षात्कार बिना जैसी मार्मिक व्याख्या का आविर्भाव कठिन ही नहीं अस्मभव ही सम्भिये । ये टोकियें दुर्मि थी । विद्वद्गुण्ड के प्रीत्यर्थ शान्तनवा टीका का समावेश विशेष रूप में किया है । ग्रन्थ का विच्छिन्नित इस प्रकार आप महानुभावों की सेवा में निवेदित की है ।

मेरी सभी सम्मान्य पुराणप्रेमी सज्जनों से करपद्ध प्रार्थना है कि इस व्याख्यान धारणा को मन्त्र में सिद्धान्ततया प्रसारित कर मन्त्रे अर्थों में 'सर्वभूतहिते रता' बनने का अनुग्रह करें । ठोस कियों से ही हमारी सस्मृति आजतक अभुण्ण है भविष्य में हम इस प्रभु का आर्द्रा रूप धमशास्त्र और पुराणा में प्रतिपादित अपने कतव्य कर्मों का पालन कर ठोस किय अपने लिये एवं भारती सन्तान के लिये कर मन्त्रे है । भगवता पराम्बा हमें इस महान् कार्य में सफलता प्रदान करने का क्षमता प्रदान करे यही सादर प्रार्थना एवं कामना है ।

इस महापुराण की आदर्शप्रति कलिकातास्थ जीवानन्दविद्यासागर प्रकाशित संस्करण और बम्बई के श्रीवेङ्कटेश्वर मुद्रणालय से १९४१: विक्रम सम्वत् में छपे मार्कण्डेयपुराण ( सप्तशती पर शान्तनवीटीका सहित ) दुर्लभ ग्रन्थ है । बम्बई की प्रतिप्राप्त करने में हमारे अन्यतम शुभैषी श्रीकानेरनिवासी श्रीमान् कथाव्यास पं० गोपालदत्तजी रत्ताणी ने अत्यन्त परिश्रम किया तदर्थ हम श्रीमान् पण्डितजी के हृदय से आभारी हैं । भविष्य में सदा ही इसीप्रकार कृपा करते रहेंगे ।

अन्त में इस विशाल कार्य के सम्पादनार्थ आरम्भ से व्यापृत श्री पण्डित ब्रह्मदत्तजी त्रिवेदी व्याकरणाचार्य एम० ए० लक्ष्मणगढ़-सीकरनिवासी तथा पण्डित रामनाथजी शास्त्री पुराणसाङ्ख्यस्मृतितीर्थ नवलगढ़-जयपुरनिवासी को इस कार्य में सहयोग देने को धन्यवाद देने की आवश्यकता नहीं, कारण यह तो उनका अपना कार्य है और उसके लिये कोई प्रशस्ति का साधुवाद देना उनकी कार्य-गुहता को लघु बनाना है । अपनी अपूर्णता के लिये मैं करबद्ध क्षमा प्रार्थी हूँ ।

“कामयेदुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनांशनम्”

शुभमिति फाल्गुन शुक्ला  
हरिदोलोत्सव पूर्णिमा बुधवार  
२०१८ विक्रमसम्वत्

कृपामिलापी

{ मनसुखराय मोर  
५, क्लाइव रो,  
कलकत्ता-१



\* श्रीगणेशायनमः \*

# श्रीमार्कण्डेयपुराणस्य विषयानुक्रमणिका

—:~:—

अध्यायः	विषयः	पृष्ठाङ्काः
१	मङ्गलाधरणपूर्वकवपुनामाप्सरःशापवर्णनम्	१
२	इन्द्रसभायामप्सरसाम्बिवादवर्णनम्	३
३	चटकोत्पत्तिवर्णनम्	५
४	शमीकोद्भवोधनवर्णनम्	७
५	विन्ध्यवर्णनम्	६
६	ऋषिणा स्वशरीरार्पणवर्णनम्	११
७	शमीकवोधनवर्णनम्	१३
८	चतुर्व्यूहावतारवर्णनम्	१४
९	पक्षिभिर्विन्ध्ये जैमिनिवार्तावर्णनम्	१५
१०	धर्मसंस्थापनाय भगवतोऽवतारवर्णनम्	१७
११	इन्द्रचिक्रियावर्णनम्	१८
१२	बलदेवब्रह्महत्यावर्णनम्	२०
१३	हलधरस्यमदमन्तावस्थावर्णनम्	२१
१४	द्रौपदेयोत्पत्तिवर्णनम्	२३
१५	विश्वामित्रहरिश्चन्द्रसम्वादवर्णनम्	२५
१६	हरिश्चन्द्रोपाख्यानवर्णनम्	२८



हरिश्चन्द्रदुर्दशावर्णनम्	२६
शैश्यायास्वशीपनाशाम्यर्षनवर्णनम्	३१
विश्वामित्रद्वाराहरिश्चन्द्रमर्दनवर्णनम्	३३
हरिश्चन्द्रस्यसप्तानपरिचर्यावर्णनम्	३०
हरिश्चन्द्रस्यवर्णनम्	३७
हरिश्चन्द्रशौशाम्यर्षनवर्णनम्	३६
शमशानेशैश्यास्तद्वृषस्यविलापवर्णनम्	४१
सप्तउहरिश्चन्द्रदिव्यलोकगमनवर्णनम्	४३
आडित्ययुद्धवर्णनम्	४५
सप्तगावशिष्टशैशिवयुद्धनिवारणवर्णनम्	४७
पितापुत्रसम्याद्धवर्णनम्	४८
पुत्रेषाममारुधकवर्णनम्	४९
जावगतिवर्णनम्	५३
गमस्यचन्द्रोरपस्यावर्णनम्	५४
कौमापवृद्धन्यादीनाम्वर्णनम्	५५
महारीखादिनरकाणाम्वर्णनम्	५६
तप्तकुम्भनरकवर्णनम्	५७
सुमतिपुत्रस्यस्वानुभूतनरकप्राप्तिकहेशैवर्णनम्	५९
विषाधियमकिङ्कुरसम्वादेऽमकिङ्कुरयोःकनरकप्राप्तिकारणवर्णनम्	६०
पापपुण्यकृतजागतिवर्णनम्	६१
पापकर्मिणायातनावर्णनम्	६३
पातकोपपातकविपाकवर्णनम्	६५
कुरुप्रमायात्रातादुष्योविज्वलनवर्णनम्	६६
घारकर्मप्रवृत्तानानानायोनिकथनम्	६७



२४	मदालसाप्राप्तिवर्णनम्	१०६
२५	मदालसाप्राप्त्याकुचलयाभ्वमूर्च्छावर्णनम्	१११
२६	कुचलयाभ्वीये ऋतुध्वजस्यराज्याभिपेक्षवर्णनम्	११२
२७	मदालसया पुत्राय चित्रान्ताय ब्रह्मज्ञानवर्णनम्	११३
२८	अकार्यप्रवृत्तिमार्गानुशासनम्	११४
२९	राज्ञामदालसाम्प्रति प्रवृत्तिमार्गशिक्षणाय कथनम्	११५
३०	पुत्राय नृपनीतिविषये राज्यतन्त्रानुशासनम्	११७
३१	वर्णाश्रमधर्मवर्णने पुत्रानुशासनम्	११६
३२	गार्हस्थ्यकृत्यानां समुपदेशवर्णनम्	१२७
३३	नेमित्तिकादिध्यातृकृतपवर्णनम्	१२५
३४	पार्षणध्यातृकृतपवर्णनम्	१२७
३५	ध्यातृकृतपवर्णनम्	१२६
३६	ध्यातृकृतपवर्णनम्	१३१
३७	काम्यध्यातृफलवर्णनम्	१३३
३८	मदालसालोकमम्यादे मदालसारवर्णनम्	१३५
३९	मदालसारेकीदृशीकन्याविवाहोतिवर्णनम्	१३६
४०	आश्रमनप्रकारवर्णनम्	१४१
४१	षड्यज्ञानवर्णनम्	१४२
४२	शुद्धाशुद्धिप्रकरणवर्णनम्	१४३
४३	स्त्रीधर्मवर्णनम्	१४४
४४	अशौचप्रकरणवर्णनम्	१४७
४५	मदालसोपासनाय पुत्रायोपदेशवर्णनम्	१४६
४६	आत्मविवेकवर्णनम्	१५०
४७	दत्तात्रेयद्वाराऽऽत्मप्रकाशनिरूपणम्	१५१



४६	प्रत्यसृष्टीर्मणुनक्षत्रप्रज्ञाभेदवर्णनम्	१८७
"	नागरप्रामयोत्तनादिवर्णनम्	१८९
"	ब्राह्मणादिवर्णानांस्व्याजवर्णनम्	१९१
५०	भृग्यादिमातमप्रज्ञोत्पत्तिवर्णनम्	१९२
"	अधमंगुणिवर्णनम्	१९३
"	यशानुशासनवर्णनम्	१९५
५१	दो महोत्पत्तिवर्णनम्	१९८
"	सिद्धोत्तिष्ठाफसंछर्णनम्	१९९
"	कल्हाशास्त्रिवर्णनम्	२०१
"	स्वयहाया पुत्राणांस्वर्णनम्	२०३
५२	रुद्रमर्गाभिधानम्	२०५
५३	स्वायम्भुवमन्वन्तवर्णनम्	२०७
"	वर्षाणांस्वर्णनम्	२०९
५४	जम्बूर्धापवर्णनम्	२१०
"	शत्रुमभाषणनम्	२११
५५	जम्बूर्धापान्तर्गतगणद्वयवर्णनम्	२१३
५६	गङ्गावतारवर्णनम्	२१४
५७	तद्यादिवर्णनपूर्वक जनपदवर्णनम्	२१६
"	पारियात्राध्ययनदीनांस्वर्णनम्	२१७
"	दक्षिणापथवासिजनपदवर्णनम्	२१९
५८	कूर्मसन्निवेशवर्णनम्	२२१
५९	उत्तरकुलकथनम्	२२५
६०	भुवतकोपसमाप्तिवर्णनम्	२२८
६१	स्वारोचिषेमन्वन्तरैर्ब्राह्मणवाक्यवर्णनम्	२२९



७२	राश स्वपत्न्यामभ्वादवर्णनम्	२६३
७३	द्वेन्द्रिपिराजवर्णनम्	२६५
७४	स्वराद्द्रराजस्वराज्यमङ्गदूर्वकतषकरणवर्णनम्	२६६
"	राशोमृगीपूरंजन्मज्ञानवर्णनम्	२६७
"	तामसमन्वन्तरवर्णनम्	२६६
७५	रिचतमन्वन्तरवर्णनम्	२७०
"	रिचतीतक्षत्राद्य पतनवर्णनम्	२७१
"	कन्याया रिचतीतक्षत्रे पिवाहभस्लायवर्णनम्	२७३
७६	घाशुयमन्वन्तरवर्णनम्	२७४
"	गुरुणाऽऽनन्दमभ्वादवर्णनम्	२७७
७७	घिचस्वतमन्वन्तरवर्णनम्	२७६
"	घडवारूपेणसञ्जाया तपोवर्णनम्	२८१
७८	घिचम्यतोत्पत्तिवर्णनम्	२८२
"	अश्वितीकुमारजन्मवर्णनम्	२८३
७९	घिचस्वतमन्वन्तरदेवर्षिगणवर्णनम्	२८४
८०	अष्टममन्वन्तरदेवर्षिगणवर्णनम्	२८५
८१	देवीमाहात्म्यारम्भ ( शान्तनवीटीकायाःभमारम्भ )	२८७
"	देवीमाहात्म्येमधुके द्रमवधवर्णनम्	२८७
"	महामायापदार्थवर्णनम्	२८६
"	कोलाविष्णुसिंहतिपदवर्णनम्	२६१
"	अष्टमश्लोकशरुश्रावणवर्णनम्	२६३
"	सुरधक्षिस्ताकरणवर्णनम्	२६५
"	राशोत्रैद्येनसभ्वादवर्णनम्	२६७
"	ज्ञानप्राणिचिन्तिवर्णनम्	३०३

८१	महामायाप्रभाववर्णनम्	३०५
"	विद्याविद्येतिवर्णनम्	३०७
"	मधुकैटभव्याख्यावर्णनम्	३०६
"	विष्णुनिद्रास्तुतिवर्णनम्	३११
"	सन्ध्यापदार्थवर्णनम्	३१३
"	रात्रिसूक्तव्याख्यावर्णनम्	३१५
"	द्विपष्टिश्लोकव्याख्यावर्णनम्	३१७
"	मधुकैटभवृत्तान्तवर्णनम्	३२१
"	विष्णवेमधुकैटभवरदानवर्णनम्	३२३
८२	महिषासुरसैन्यवधवर्णनम्	३२४
"	असुरोपद्रववर्णनम्	३२५
"	त्रिदेवभ्यस्तेजःसमुत्पत्तिवर्णनम्	३२७
"	देव्याधिभवेनदेवप्रसन्नतावर्णनम्	३२६
"	देव्यैतानासुरप्रदानवर्णनम्	३३१
"	देव्यैतानादेवैरशोपाख्यानवर्णनम्	३३३
"	देवीदृष्ट्यामहिषक्रोधवर्णनम्	३३५
"	सेनाङ्गत्ववर्णनम्	३३७
"	कालनाम्नोदेव्यायुद्धवर्णनम्	३३६
"	देवीयुद्धवर्णनम्	३४१
"	देवीराक्षसयुद्धवर्णनम्	३४३
"	एकपष्टिश्लोकव्याख्यावर्णनम्	३४५
"	देवीदैत्ययुद्धवर्णनम्	३४७
"	देवीयुद्धविजयोत्सववर्णनम्	३४६
८३	महिषासुरवधवर्णनम्	३५०



८३	महिषेणदेवीयुद्धवर्णनम्	३५१
"	चामरेणदेव्यायुद्धवर्णनम्	३५३
"	दैत्यैः सह देवीयुद्धवर्णनम्	३५५
"	मायाविद्वैत्ययुद्धवर्णनम्	३५६
"	देवीमृतयुद्धाह्वानवर्णनम्	३६१
"	महिषवधवर्णनम्	३६३
८४	शक्रादिस्तुतिवर्णनपुर सरदेवेश्योदेवीचरप्रदानम्	३६५
"	देवधरयाचनवर्णनम्	३८१
८५	देवीस्तुतिवर्णनपूर्वक देवीदूतसम्वाद्यवर्णनम्	३८३
"	भगवत्या स्तुतिवर्णनम्	३८५
"	नवमीदेवीक्षान्तिवर्णनम्	३८६
"	भगवत्याराधनवर्णनम्	३९३
"	दूताभ्याशुम्भायदेवीरूपवर्णनम्	३९५
"	दूताभ्याशुम्भायोद्गोधनवर्णनम्	३९७
"	देवीदूतसम्वादवर्णनम्	४०१
"	देवीप्रतिबोधनास्वप्नवर्णनम्	४०७
८६	धृष्टशोचनवधवर्णनम्	४१४
"	देवीदूतसम्वादवर्णनम्	४१७
"	अपिणादेवीद्वैत्ययुद्धवर्णनम्	४१६
"	देवीसिंहचित्रमवर्णनम्	४२१
"	देवीद्वैत्ययुद्धवर्णनम्	४२३
८७	क्षण्डमुण्डवधवर्णनम्	४२५
"	देवीस्वरूपवर्णनम्	४२७
"	देवीपराक्रमवर्णनम्	४२६

७	घण्डिकाकालीसम्वाद्यवर्णनम्	४३३
८	रक्तवीजवधवर्णनम्	४३५
११	शुम्भेनस्वस्त्याद्योगवर्णनम्	४३७
११	देवीयुद्धाहानवर्णनम्	४३८
११	भगवत्यास्तवद्वेषशक्त्याविभाववर्णनम्	४४१
११	नानाशर्कानामाविभाववर्णनम्	४४३
११	देवीस्वदूतसम्वाद्यवर्णनम्	४४५
११	देवीपराक्रमवर्णनम्	४४७
११	नारसिंहीविक्रमवर्णनम्	४४८
११	रक्तवीजवर्णनम्	४५१
११	द्वैत्यान्नामुण्डाम्प्रत्युक्तिवर्णनम्	४५३
११	रक्तवीजगतासुत्ववर्णनम्	४५७
८६	निशुम्भवधवर्णनम्	४५८
११	देवीद्वैत्ययुद्धवर्णनम्	४५८
११	देवीनिशुम्भयुद्धवर्णनम्	४६१
११	शुम्भेनशक्तिमोक्षनवर्णनम्	४६५
११	निशुम्भनिर्हणवर्णनम्	४६५
१७	शुम्भवधवर्णनम्	
११	देवीशुम्भयुद्धवर्णनम्	
११	नारायणस्तुतिवर्णनम्	
११	देवैर्वरयाचनवर्णनम्	
११	द्वैत्याभाविस्त्रावतारवर्णनम्	
११	भामादेव्यवतारवर्णनम्	
११	श्रीमद्देवीचरित्रपटनमाहात्म्यवर्णनम्	

६२	देवीस्वस्थानगमनवर्णनम्	५१०
६३	सुरथवेश्ययोर्वर्षप्रदानवर्णनम्	५१८
"	देव्या मयंकरणसामर्थ्यवर्णनम्	५१९
"	सुरथवेश्ययोस्तप करणवर्णनम्	५२१
"	भगवत्यावरप्रदानवर्णनम्	५२३
"	राजेश्ययोर्वर्षप्रदानादिप्रमिद्विवर्णनम् ( टीकाममात्रि )	५२५
६४	रौच्यमन्वन्तरवर्णनम्	५२७
६५	रुचिसमुपाख्यानेरुचिनापितृणासम्वाद्बर्णनम्	५२९
६६	श्रद्धारुचिसम्वादे पितृस्तोत्रवर्णनम्	५३१
६७	रुचयेपितृवरप्रदानवर्णनम्	५३५
"	पितृस्तोत्रप्रश्रुतिवर्णनम्	५३७
६८	रुचिनामालिनीपरिणयवर्णनम्	५३८
६९	भौत्यमनुसमुत्पत्तिवर्णनम्	५३९
"	अग्निस्तोत्रवर्णनम्	५४१
१००	भौत्यमन्वन्तरकथावर्णनम्	५४४
"	आचार्यशिष्ययो सम्वाद्बर्णनम्	५४५
१०१	शशानुकीर्तनवर्णनम्	५४७
१०२	मान्दण्डमाहात्म्यवर्णनम्	५४९
१०३	आदित्यस्तुतिवर्णनम्	५५१
१०४	दिवाकरस्तुतिवर्णनम्	५५३
१०५	मान्दण्डोत्पत्तिवर्णनम्	५५६
१०६	भानुस्तुतिवर्णनम्	५५८
"	रुचियमवातावर्णनम्	५५९
"	भानुस्तवणवर्णनम्	५६१



१०७	सूर्यस्तवनवर्णनम्	५६३
१०८	रवेर्माहात्म्यवर्णनम्	५६४
”	सूर्यात्सञ्ज्ञायांसन्ततिवर्णनम्	५६५
१०९	भानुस्तववर्णनक्रमेसूर्यमाहात्म्यवर्णनम्	५६६
”	मानिन्यैसान्त्वनदानवर्णनम्	५६७-
”	सर्वैःसमेतैःसूर्याराधनवर्णनम्	५६९
”	भानुस्तोत्रवर्णनम्	५७१
११०	भानोर्माहात्म्यवर्णनम्	५७२
”	राज्ञःसूर्याराधननिश्चयवर्णनम्	५७३
१११	वंशानुक्रमेभिन्नावरुणेष्ट्यामपचारादिलाख्यानवर्णनम्	५७५
११२	पृथध्रोपाख्यानवर्णनम्	५७६
”	पृथध्रेणक्षमाप्रार्थनवर्णनम्	५७७
११३	नाभागघरित्रवर्णनम्	५७८
”	ऋषिभिर्निर्णयवर्णनम्	५७९
११४	नाभागघरित्तवर्णनम्	५८१
११५	नाभागस्यवैश्यत्वनिराकरणेकारणनिरूपणवर्णनम्	५८४
११६	भलन्दनवत्सप्रीचरित्रवर्णनम्	५८६
”	दैत्यकुजृम्भाख्यानवर्णनम्	५८७-
”	कुजृम्भवध्ववर्णनम्	५८९
११७	खनित्रघरित्रवर्णनम्	५९१
११८	खनित्रघरित्रवर्णनम्	५९५
११९	ध्रुपनृपतिघरित्रेणसहचिर्विशचरित्रवर्णनम्	५९७
१२०	नृपखनीनेत्रघरित्रवर्णनम्	५९९
”	राजमृगसम्वादवर्णनम्	६०१

१२१	करन्धमघरित्रवर्णनम्	६०५
१२२	अवीक्षितनृपतिघरित्रवर्णनम्	६०६
१२३	अवीक्षितनृपतिघरित्रवर्णनम्	६०६
”	बन्यास्वयम्बरवर्णनम् <sup>१</sup>	६०७
१२४	अवीक्षितनृपतिघरित्रवर्णनम्	६०८
	करन्धमस्यस्वागतवर्णनम्	६०९
”	राजपुत्र्यासहराजपुत्रस्य सम्वाद्यवर्णनम्	६११
१२५	अवीक्षितघरित्रवर्णनम्	६१३
”	राज्ञ स्वपुत्रेणसम्वाद्यवर्णनम्	६१५
१२६	अवीक्षितघरित्रवर्णनम्	६१६
”	राजपुत्रदानययुद्धवर्णनम्	६१७
”	अवीक्षितविशालपुत्रीसम्वाद्यवर्णनम्	६१९
१२७	अवीक्षितघरित्रेभामिनीराजपुत्र्या-पूर्वजन्मवर्णनम्	६२०
”	अवीक्षितमुत्प्राप्तिवर्णनम्	६२१
१२८	करन्धमपीत्रप्राप्तौराज्येमहाहर्षवर्णनम्	६२३
”	करन्धममुनिवृत्तिवर्णनम्	६२५
१२९	मरुत्तघरित्रवर्णनम्	६२६
”	नापसेनमरुत्तस्वमर्मापेगमनवर्णनम्	६२७
१३०	नागीर्मरुत्तमातुःपार्श्वे प्रार्थनकरणम्	६२९
१३१	मरुत्तेनपितुःसम्वाद्यवर्णनम्	६३१
”	उभयो पितापुत्रयो मन्थिवर्णनम्	६३३
१३२	नरिन्दनघरित्रवर्णनम्	६३५
१३३	दमघरित्रवर्णनम्	६३८
”	दमवपुत्रतोऽङ्गवर्णनम्	६४१

[ ण ]

१३४	दमघरित्रवर्णनेदमस्यपितुर्व्यानन्तरंतेनसहतन्मातुरग्निप्रवेशः	६४२
”	राइयापुत्रसमीपेशूद्रतापसश्रेयणवर्णनम्	६४३
१३५	दमस्यपितृव्यातिनेदण्डंदानुं प्रतिज्ञावर्णनम्	६४५
१३६	दमघरित्रेवपुष्पद्वधवर्णनम्	६४७
”	वपुष्मन्तम्प्रतिदमाह्वानवर्णनम्	”
१३७	उपसंहारेपुराणमाहात्म्यवर्णनम्	६५०

परिशिष्टे :—

( १ )	प्राधानिकरहस्यवर्णनम्	६५३
( २ )	वैकृतिकरहस्यवर्णनम्	६५५
( ३ )	मूर्तिरहस्यवर्णनम्	६५८

समाप्ताचेयं मार्कण्डेयमहापुराणस्य विषयानुक्रमणिका ।

इति विद्वज्जनकृपाभिलाषिणौ लक्ष्मणदुर्गाभिजन ( लक्ष्मणगढ़-सीकरनिवासि )  
ब्रह्मदत्त त्रिवेदि—नवलदुर्गवास्तव्य ( नवलगढ़-जयपुरनिवासि )  
रामनाथमिश्रदाधीचौ ।



सा मा पातु सरस्वती भगवती निःशयनाड्यापहा

\* श्रीगणेशायनमः \*

॥ ॐ नमोभगवतेवासुदेवाय ॥

# मार्कण्डेयपुराणम्

—:~:—

श्रीमन्महर्षिवेदव्यासप्रणीतम्

प्रथमोऽध्यायः

मङ्गलाचरणपूर्वकत्रपुनामाप्सरःशापवर्णनम्

यद्योगिभिर्भ्रमयार्तिचिनाशयोऽग्यमासाद्य चन्द्रितमतीव चिविक्तचित्तैः ।

तद्वः पुनातु हरिपादसरोजयुग्ममाविर्भवत्कमचिलङ्कितभूर्भुघःस्वः ॥ १ ॥

पायात् स चः सकलकलमपभेददक्षः क्षीरोदकुक्षिफणिभोगनिधिष्टमूर्त्तिः ।

श्वासाचभ्रूतसलिलोत्कणिकाकरालः सिन्धुः प्रनृत्यमिव यस्य करोति सङ्घातु

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् ।

देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥

तपःस्वाध्यायनिरतंमार्कण्डेयंमहामुनिम् । व्यासशिष्योमहातेजस्रैमिनिःपर्यपृच्छत

भगवन्!भारताख्यानं व्यासेनोक्तंमहात्मना । पूर्णमस्तमलैःशुभ्रैर्नानाशास्त्रसमुच्चयैः

जातिशुद्धिसमायुक्तं साधुशब्दोपशोभितम् ।

पूर्वपक्षोक्तिसिद्धान्तपरिनिष्ठासमन्वितम् ॥ ३ ॥



त्रिदशाना यथा विष्णुर्द्विपदां ब्राह्मणोयया । भूषणानाञ्च सर्वेषां यथाक्षूडामणिपर  
यथायुधाना कुलिशमिन्द्रियाणाययामन । तथेह सर्वशास्त्राणामहामारतमुत्तमम्  
अत्रापथैव धम्मश्च कामो मोक्षश्चवर्ण्यते । परस्परानुबन्धाश्चसानुबन्धाश्च तं पृथक्  
धम्मशास्त्रामिदं ध्रुष्टमर्थशास्त्रमिदं परम् ।

कामशास्त्रमिदं चाप्रय मोक्षशास्त्र तथोत्तमम् ॥ ७ ॥

अनुराध्रम गमाणामाधारस्थितिसाधनम् । प्रोक्तमेतन्महामागं वेदध्यासेन धीमता  
तथा नातं हृत होतद्व्यासेनोद्धारकमणा । यथा ध्यात महाशास्त्र विरोधैतामिभूयते  
व्यासवान्मजलीघेन कुतकनरुद्धारिणा । येदशैलावतीर्णैर्न नीरनन्का मही हृता  
कलशदमहाहस महाग्यानपराम्बुजम् । कथाविस्तीर्णसलिलकाष्णं वेदमहाहृदम्  
तद्विदमारताभ्यान्बह्वर्थधृतिविस्तरम् । तत्रतोज्ञानुक्तामोऽहमगधस्त्वामुपस्थित  
कस्मान्मानुषता प्राप्तो निर्गुणोऽपि जनादत ।

वासुदेवो जगत्सृष्टिस्थितिसयमकारणम् ॥ १३ ॥

कस्माच्च पाण्डुपुत्राणामेका सा द्रुपदात्मजा ।

पञ्चाना महिषी हृष्टा हात्र न सरायो महान् ॥ १४ ॥

भेषन ब्रह्महत्याया बलदेवो महारथ । तीर्थयात्राप्रसङ्गेन कस्माच्चरे हलायुध  
कथञ्च द्रौपद्यान्तऽहृतदारः महारथा । पाण्डुनाथा महात्मानो धर्ममापुरनाथचन्  
एतन् सर्वं विस्तरशो ममाख्यातुमिहाहसि । भवन्तो मृदबुद्धानामवबोधकरा नदा  
इति तस्य ध्वं ध्रुत्वा माकण्डेयो महामुनि । वशाण्दोपरहितो धक्तु समुपचक्रमे  
माकण्डेय उवाच

स्त्रियाकालोऽयमस्माकसम्प्राप्तो मुनिसत्तम । विस्तरैश्चापिवक्तव्येनैककालप्रशस्यते  
ये तुवक्ष्यन्तिवक्ष्येऽद्य तानहर्षिभिर्नैतव । तथा च नष्टसन्देहत्वा करिष्यन्तिपक्षिण  
विङ्गाश्च विबोधश्च सुपुत्र सुमुखस्तथा ।

द्रोणपुत्रा षण्ण्येष्टास्तत्त्वज्ञा शास्त्रचिन्तका ॥ २१ ॥

वेदशास्त्राधविज्ञाने येषामव्याहृता मति ।

विन्ध्यकन्दरमध्यस्थास्तानुपास्य च पृच्छ च ॥ २२ ॥

एवमुक्तस्तदा तेनमार्कण्डेयेन धीमता । प्रत्युवाचर्षिशार्दूलो विस्मयोत्फुल्ललोचनः

जैमिनिरुवाच

अत्यद्भुतमिदं ब्रह्मन्! खगवागिव मानुषी । यत् पक्षिणस्ते चिञ्चानमापुरत्यन्तदुर्लभम्

तिर्च्यग्योन्यां यदि भवस्तेषां ज्ञानं कुतोऽभवत् ।

कथं च द्रोणतनयाः प्रोच्यन्ते ते पतत्रिणः ॥ २५ ॥

कश्च द्रोणः प्रविख्यातो यस्यपुत्रचतुष्टयम् । जातं गुणवतां तेषांधर्मज्ञानंमहात्मनाम्

मार्कण्डेय उवाच

शृणुष्व्वावहितो भूत्वा यद्वृत्तं नन्दने पुरा । शक्रस्याप्सरसाञ्चैव नारदस्य च सङ्गमे

नारदो नन्दनेऽपश्यत्पुंश्चलीगणमध्यगम् । शक्रंसुराधिराजानंतन्मुखासकलोचनम्

स तेनर्षिवरिष्ठेन द्रष्टमात्रः शचीपतिः । समुत्तस्थौ स्वकं चारुमै ददावासनमाद्रात्

तं द्रष्ट्वावनवृत्रघ्नमुत्थितं त्रिदशङ्गनाः । प्रणेमुस्ताश्च देवर्षिं विनयावनताःस्थिताः

ताभिरभ्यर्चितः सोऽथ उपविष्टे शतक्रतौ । यथाहं कृतसम्भाषःकथाश्चक्रे मनोरमाः

ततः कथान्तरे शक्रस्तमुवाच महामुनिम् ।

शक्र उवाच

देहाज्ञां नृत्यतामासां तव याभिमतेति वै ॥ ३२ ॥

रम्भा वाकर्कशा वाथउर्वश्यथ तिलोत्तमा । वृताची मेनका वापियत्रवाभवतोरुचिः

एतच्छ्रुत्वा द्विजश्रेष्ठो वाचं शक्रस्य नारदः ।

विचिन्त्याप्सरसः प्राह विनयावनताः स्थिताः ॥ ३४ ॥

युष्माकमिहसर्वासारूपौदार्यगुणाधिकम् । आत्मानंमन्यतेयातुसानृत्यतुममात्रतः

गुणरूपविहीनायाः सिद्धिर्नास्त्यस्य नास्ति वै ।

चार्वधिष्ठानवन्नृत्यं नृत्यमन्यद्विङ्ग्वनम् ॥ ३६ ॥

मार्कण्डेय उवाच

तद्वाक्यसमकालञ्चकौकास्तानतास्ततः । अहंगुणाधिकानत्वंनत्वंचान्यान्नवीदिदम्

तामां सम्भ्रममालोक्य भगवान् पाञ्चशासत ।

वृष्टच्छती मुनिरित्याह वक्ता यां वो गुणाधिकाम् ॥ ३८ ॥

रश्मच्छन्दानुयातामि वृष्टस्तामि सनारद । प्रोवाचयत्तदापाक्यं जैमित्तेनप्रियोधमे  
तपस्यन्तं नगेन्द्रस्यं या,यं शोभयते बलात् ।

दुर्ष्यासतं मुनिधेष्टं तां वो मन्ये गुणाधिकाम् ॥ ४० ॥

मार्कण्डेय उवाच

तस्यतद्वचन धृष्ट्यामर्ष्यां येषितकन्धरा । अशक्यमेतदस्माकमितिताश्चकिरे कथाः ।

तत्राप्यरा यपुनांश्च मुनिशोभणश्रिता ।

प्रत्युपाधानुयास्यामि यथाऽर्षो मस्थितो मुनि ॥ ४२ ॥

अथ तद्वचनारं प्रयुक्तेन्द्रियवाजिनम् । स्मरशास्त्रगालुत्रिम् करिष्यामिबुभारधिम्  
प्रज्ञा जनार्दनोवापियदिवा नीललोहित । तमप्यथ करिष्यामिक्वामयाच्छतान्तरम्  
इत्युक्त्वा प्रज्ञागमाय प्रालेयाद्रि यपुस्नदा । मुनेस्तप प्रमादेण प्रशास्त्रभाषदाश्रमम्

सा पुं स्फोक्लिमापुर्ज्यं यत्रास्ते स महामुनि ।

ब्रौशमात्र स्थिता तस्मादगायत घराप्सग ॥ ४४ ॥

तद्गतध्वनिमाकण्य मुनिर्घिस्मितमानस । जगाम तत्रयत्रास्ते सा बालादधिरानता

तां दृष्ट्वा धारमर्ष्यांतीं मुनि सन्तम्यमानसम् ।

शोभणायागतां ज्ञान्या कोपामयममन्वित ॥ ४८ ॥

उवाचेदं ततो पाक्यं महर्षिन्तां महानपा ॥ ४९ ॥

यस्माद्दुर्घाजितस्येदत्तपमोविघ्नकारणान् । आगतासिमदोन्मत्तेममदुःसायखेचरि  
तस्मात् सुपर्णगोत्रे त्व मत्रोद्यकलुपीज्जा ।

जन्म प्रापम्यसि दुष्टत्रे वावङ्गगणि षोडश ॥ ५१ ॥

निद्ररूपं परित्यज्यपक्षिणीरुपधारिणी । चत्वारस्ते चतनया जनिष्यन्तेऽघमाप्सरं  
अप्राप्य तेषु घ प्रीतिं शस्त्रभृता पुनर्दिवि । घासमाप्स्यमिधत्तव्यनोत्तरन्ते कथञ्चन

इति षष्ठमसहस्र कोपसरत्तदृष्टिश्चलकलयत्या ता मानिनीं ध्रावयित्वा ।

तरलतरतरङ्गां गां परित्यज्यविप्रःप्रथितगुणगणौवां संप्रयातःखगङ्गाम् ॥ ५३॥  
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे धनुनानाप्सरःशापवर्णननाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

## द्वितीयोऽध्यायः

### चटकोत्पत्तिवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

अरिष्टनेमिपुत्रोऽभूद्गृहडो नामपक्षिराट् । गरुडस्याभवत् पुत्रःसम्पातिरिति विश्रुतः

तस्याप्यासीत् सुतः शूरः सुपाश्वो वायुचिक्रमः ।

सुपाश्वतनयः कुन्तिः कुन्तिपुत्रः प्रलोलुपः ॥ २ ॥

तस्यापि तनयावास्तां कङ्कः कन्धर एव च ॥ ३ ॥

कङ्कः कैलासशिखरे विद्युद्रूपेति विश्रुतम् । ददर्शांशुजपत्राक्षं राक्षसं धनदानुगम्

आपानासकममलस्रग्दामाम्बरधारिणम् । भार्यासहायमासीनं शिलापट्टेऽमले शुभे

तद्दृष्टमात्रं कङ्केन रक्षः क्रोधसमन्वितम् ।

प्रोवाच कस्मादायातस्त्वमितो ह्यण्डजाधम! ॥ ६ ॥

स्त्रीसन्निकर्षे तिष्ठन्तंकस्मान्मामुपसर्पसि । नैपधर्मःसुबुद्धीनां मिथोनिष्पाद्यवस्तुषु

कङ्क उवाच

साधारणोऽयं शैलेन्द्रो यथा तव तथा मम । अन्येषाञ्चैव जन्तूनांममताभवतीऽत्र का

मार्कण्डेय उवाच

ब्रुवाणमित्थं खड्गेनकङ्कं चिच्छेदराक्षसः । क्षरत्क्षतजवीभत्सं विस्फुरन्तमचेतनम्

कङ्कं चिनिहतं श्रुत्वाकन्धरःक्रोधमूर्च्छितः । चिद्युद्रूपवधायाशु मनश्चक्रोऽण्डजेश्वरः

स गत्वा शैलशिखरं कङ्को यत्रहतःस्थितः । तस्य सङ्कलनञ्चक्रो भ्रातुर्ज्येष्ठस्यखेघरः

कोपामर्षविवृद्धाक्षो नागेन्द्र इव निःश्वसन् ॥ ११ ॥

जगामाय सयत्रास्ते भ्रतृहातस्यराक्षस । पक्षवातेन महता चालयन्भूधरान्वरान्  
 वेगात्पयोदजालानिचिक्षिपन्क्षतजेषण । क्षणात्क्षयितशत्रु सपक्षाम्याक्रान्तभूधर  
 पानासक्तमति तत्र त ददर्श निशाचरम् । आताम्रवज्रनयन हेमपर्च्यङ्गुमाधितम्  
 स्रग्दामापूरितशिखं हरिचन्दनभूषितम् । केतकीपत्रगर्भामैर्नैर्त्तैर्घोरतराननम् ॥ १५

धामोरमाधिता चास्य दृदर्शाऽऽयतलोचनाम् ।

पर्णी मदनिका नाम पु स्कोकिलकलस्यनाम् ॥ १६ ॥

ततो रोपपरातात्मा कण्ठर कन्दरस्थितम् । तमुवाच सुदुष्प्रतमनेहियुध्यस्यवैमया  
 यस्मा जेष्ठो मम भ्राता विश्रब्धो घातितस्त्वया ।  
 तन्मात्त्वा मद्ससक्त नयिष्ये यमसादनम् ॥ १८ ॥  
 विश्वस्तघातिना लोका ये च स्त्रीवालघातिनाम् ।  
 यास्यसे निरवान् सधास्तास्त्वमद्य मया हत ॥ १९ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्येव पतगेन्द्रेण प्रोक्त स्त्रीसन्निधौतदा । रक्ष क्रोधसमाविष्ट प्रत्यभापत पक्षिणम्  
 यदि ते निहतो भ्राता पौरुषतद्धि दर्शितम् । त्वामप्यद्यहनिष्येऽह सङ्गेनामेनखेधर  
 तिष्ठ क्षणमात्र जीवन् पतगा मर्त्यास्यसि । इत्युक्त्वाञ्जनपुञ्जाम विमलसङ्गमाददे  
 तत पतगराजस्य यक्षाधिपमतस्य च । बभूव युद्धमनुल यथा गरुडशत्रयो ॥ २३  
 तत सराक्षसक्रोधात्सङ्गुमाविध्यवेगवत् । चिक्षेपपतगेन्द्रायनिर्वाणाङ्गारधर्चंसम्  
 पतगन्द्रश्च त सङ्गु किञ्चित्प्लुत्यभूतलान् । धक्त्रेणजप्राह तदा गरुड पत्रग यथा  
 धक्त्रपादतलैर्मङ्गसधा चक्षेक्षोममयाण्डज । तस्मिन् मग्नेतत सङ्गुबाहुयुद्धमवर्तत  
 तत पतगराजेन वक्षस्याक्रम्य राक्षस । हस्तपादकरैराशु शिरसा च वियोजित  
 तस्मिन्विनिहते सा स्त्री खग शरणमभ्यगात् ।

किञ्चित् सञ्जातसन्त्रासा प्राह भार्या भवामि ते ॥ २८ ॥

तामादायखगध्रेष्ठस्वक गृहमगात्पुन । गत्वा स निष्कृतिं त्रातुर्विद्युद्रूपनिपातनात्  
 कन्धरस्य च सा वेश्मप्राप्येच्छाङ्कप्यारिणी । मेतकातनया सुभ्रू सीपणै रूपमाददे

तस्यांसजनयामासताक्षीं नामसुतांतदा । मुनिशापोऽग्निविप्लुष्टां घपुमप्सरसांवराम्  
तस्या नाम तदा चक्रे ताक्षीमिति विहङ्गमः ॥ ३१ ॥

मन्दपालसुताश्वासंश्चत्वारोऽमितवुद्धयः । जरितारिप्रभृतयो द्रोणान्ताद्विजसत्तमाः  
तेषां जघन्यो धर्मात्मावेदवेदाङ्गपारगः । उपयेमे सतांताक्षीं कन्धरानुमतेशुभाम्  
कस्यचित्त्वथ कालस्य ताक्षीं गर्भमवाप ह । सप्तपक्षाहिते गर्भे कुरुक्षेत्रं जगाम सा  
कुरुपाण्डवयोर्युद्धे वर्त्तमाने सुदारुणे । भावित्वाच्चैव कार्क्यस्यरणमध्यंविवेशसा  
तत्रापश्यत्तदा युद्धं भगदत्तकिरीटिनोः । निरन्तरं शरैरासीदाकाशं शलभैरिव  
पार्थकोदण्डनिर्मुक्तासन्नमतिभेगवत् । तस्या भल्लमहिश्यामं त्वचं चिच्छेदजाठरीम्  
भिन्नेकोष्टेशशाङ्काभं भूमावण्डवतुष्टयम् । आयुषः सावशेषत्वात्तूलराशाविवापतत्  
तत्पातसमकालञ्च सुप्रतीकाद्भ्रजोत्तमात् । पपात महतीघण्टा वाणसञ्छिन्नबन्धना  
समं समन्तात् प्राप्ता तु निर्भिन्नधरणीतला ।

छादयन्ती खगाण्डानि स्थितानि पिशितोपरि ॥ ४० ॥

हते च तस्मिन्नृपतौ भगदत्ते नरेश्वरे । बहून्यहान्यभूद्युद्धं कुरुपाण्डवसैन्ययोः ॥ ४१ ॥  
वृत्तेयुद्धेधर्मपुत्रे गतेशान्तनवान्तिकम् । भीष्मस्यगदतोऽशेषान्धोतुं धर्मान्महात्मनः  
घण्टागतानि तिष्ठन्ति यत्राण्डानिद्विजोत्तम ! । आजगामतमुद्देशंशमीकोनामसंयमी  
स तत्र शब्दमशृणोच्चिचीकुचीति वाशताम् ।

वाल्यादस्फुटवाक्यानां विज्ञानेऽपि परे सति ॥ ४४ ॥

अथपिःशिष्यसहितोघण्टामुत्पाद्यविस्मितः । अमातृपितृपक्षाणिशिशुकानिददर्शह  
तानि तत्र तथा भूमौ शमीको भगवान्मुनिः ।

दृष्ट्वा स विस्मयाविष्टः प्रोवाचाऽनुगतान् द्विजान् ॥ ४६ ॥

सम्यगुक्तं द्विजाग्रथेण शुक्रेणोशनसास्वयम् । पलायनपरं दृष्ट्वादैत्यसैन्यं सुरार्दितम्  
नगन्तव्यंनिवर्त्तध्वंकस्माद्भ्रजतकातराः । उत्सृज्यशौर्य्ययशसी कगतानमरिष्यथ  
नश्यतो युद्धयतो वापि तावद् भवति जीवितम् ।

यावद्घातासृजत् पूर्वं न याधन्मनसोप्सितम् ॥ ४६ ॥

एके प्रियन्तेस्यगृहे पलायन्तोऽपरे जनाः । भुङ्क्वतोऽग्रतथैवाप प्रियन्तोनिधनगता  
 विलासिनस्तथैवान्ये कामयाना निरामया । अपिहताद्गाम्नाम्ब्रह्मप्रेतराजवशंगता  
 धन्ये तपस्यभिरता नीता प्रेतमृषागुणैः । योगाभ्यासेरताध्यान्ये नैव प्रादुरमृत्युताम्  
 शम्भराय पुरा क्षिमे धन्न कुलिशापाणिना । हृदयेऽभिहतस्तेन तथापि न मृतोऽसुर  
 तेनैव खलु धन्नेन तेनैधन्द्रेण दातया । प्राणैकालेहता देत्यास्तद्दक्षणाप्रिधन गता  
 पिदित्वैवं न सन्ध्याम कर्त्तव्यो पिनियत्तंत ।

ततो निवृत्तास्ते देत्यान्त्यतथा मरणजं भयम् ॥ ५५ ॥

इतिशुक्लध्वज सत्यं हृत्तमभिः खगोत्तमैः । ये युद्धेऽपि न संग्रामात् पञ्चममतिमानुषे  
 षाण्डाना पतनं विप्रा क घण्टापतनंसमम् । क्व च मांसधन्नात्तैर्भूभ्रान्तरणकिया  
 केऽप्येते सपैथा विप्रा नैने सामान्यपक्षिण । देवानुवृत्ता लोके महाभाग्यप्रदर्शनी  
 एवमुत्तथा स तान् र्वाश्यपुनश्चनमश्रवीत् । नियसंताध्रमंयातगृहीत्वापक्षियालफान्  
 मार्जारानुभयं यन्ननैयामण्डजजन्मनाम् । श्येनतोनुलुङ्गापिस्थाप्यन्ता तत्रपक्षिण  
 द्विजा किम्वाऽतिथनेन मार्ज्यन्त कर्मभि स्वकैः ।

रह्यन्त चाखिला जाया यद्यैते पक्षियाल्का ॥ ६१ ॥

तथापि यज्ञ क्तव्यो नरे सर्वेषु कर्मसु । कुर्वन् पुढरकारन्तुवाच्यतायानिनोसनाम्  
 इति मुनिवरघोदितास्ततस्ते मुनितनया परिगृह्य पक्षिणस्तान् ।  
 तद्विष्टपसमाधितालिसद्गुं ययुरथ तापमरुम्यमाध्रम स्वम् ॥ ६३ ॥  
 स चापि धन्य मनसामिकामित प्रगृह्य मूल कुसुमं फल कुशान् ।  
 धकार चक्रायुधद्वयेपसां सुरन्द्रवैवस्वतजातवेदसाम् ॥ ६४ ॥  
 अपामपतेर्गोप्यतिचित्तरक्षिणो समीरणस्यापि तथा द्विजोत्तम ।  
 धानुर्विधानुस वध धैर्भवेदिका धृतिप्रयुक्ता विचिधास्तु सत्क्रिया ॥ ६५ ॥  
 इति धामाकण्डेयपुराणे चटकोत्पत्तिवर्णननाम द्वितीयोऽध्याय ॥ २ ॥

## तृतीयोऽध्यायः

विन्ध्यवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

अहन्यहनि चिप्रेन्द्र! सतेपांमुनिसत्तमः । चकाराहारपयसा तथा गुप्त्या चपोषणम्  
मासमात्रेण जग्मुस्ते भानोःस्यन्दनवर्त्मनि । कौतूहलचिलोलाक्षैर्दृष्ट्वा मुनिकुमारकैः  
दृष्ट्वा महीं सनगरां साम्भोनिधिसरिद्धरान् । रथचक्रप्रमाणां ते पुनराश्रममागताः  
श्रमक्लान्तान्तरात्मानो महात्मानो वियोनिजाः ।

ज्ञानञ्च प्रकटीभूतं तत्र तेषां प्रभावतः ॥ ४ ॥

ऋषेः शिष्यानुकम्पार्थं वदतोऽभर्मनिश्चयम् । कृत्वा प्रदक्षिणं सर्वे चरणावभ्यवाद्यन्  
ऊचुश्च मरणाद्धोरान्मोक्षिताः स्मस्त्वया मुने !।

आवासभक्ष्यपयसां त्वं नो दाता पिता गुरुः ॥ ६ ॥

गर्भस्थानां मृता माता पित्रा नैवाऽपि पालिताः ।

त्वया नो जीवितं दत्तं शिशवो येन रक्षिताः ॥ ७ ॥

क्षितावक्षततेजास्त्वं कृमीणामिव शुष्यताम् ।

गजघण्टां समुत्पाट्य कृतवान् दुःखरेचनम् ॥ ८ ॥

कथं वद्धं युखलाः खस्थान् द्रक्ष्याम्यहंकदा । कदाभूमेर्दुर्मंप्राप्तान् द्रक्ष्येवृक्षान्तरंगतान्  
कदा मे सहजा कान्तिः पांशुना नाशमेप्यति ।

एषां पक्षानिलोत्थेन मत्समीपचिचारिणाम् ॥ १० ॥

इतिचिन्तयतातात! भवता प्रतिपालिताः । ते साम्प्रतं प्रवृद्धाः स्मः प्रवृद्धाः करवामकिम्

इत्यृषिर्वचनं तेषां श्रुत्वा संस्कारवत् स्फुटम् ।

शिष्यैः परिवृतः सर्वैः सहपुत्रेण शृङ्गिणा ॥ १२ ॥

कुतूहलपरो भूत्वा रोमाञ्चपटसम्भृतः । उवाच तस्वतो ब्रूत प्रवृत्तेः कारणं गिरः ॥



कस्य शापादिय प्राणा भवद्विविन्त्रिया परा । रूपस्य ध्वसश्चैव तन्मे धत्तुमिहार्हं च  
पक्षिण ऊचु

विपुलस्वानितिख्यात प्रागासीन्मुनिसत्तम । तस्यपुत्रद्वयजज्ञेसुरपस्तुमुदन्तथा  
मुत्पन्नस्य धय पुत्राद्यचार सपताम्नत । तस्यैर्विनयाचारभक्तिनष्टा सदैव हि  
तपधरणशक्तस्य शास्यमानेन्द्रियस्य च ।

यथाभिमतमस्माभिस्तदा तस्योपपादितम् ॥ १७ ॥

समित्पुष्पादिकं सर्वं पृच्छं गाम्यचहारिवम् । पयनशाययन्नातस्याम्माकषणाने  
आजगाम महावर्मा भद्रपक्षो जराश्वित । आताम्रनेत्रस्त्रन्तात्मापर्क्षाभूवासुरेश्वर  
सत्यशीचक्षमाचारमतीवोदारमानसम् । जिज्ञासुस्तृपिभ्रेष्टमम्मच्छापभवाय च  
पश्युवाच

द्विजेन्द्र ! माधुषाविष्परिभ्रानुनिहार्हसि । भक्षणाधीं महामाग ! गतिर्भवमातुला  
विन्ध्यस्यशिलरेतिष्ठन् परिपन्नरितेन वै । पतिनोऽस्मिमहाभागभवसनेनातिरहसा  
सोऽहमोहसमाधिष्टोभूर्मासप्राहमस्मृति । स्थितस्तत्राप्येताह्मचेतना प्राप्तवानहम्  
प्राप्तचेता भुधाविष्टो भवन्त शरण गत । भद्रवार्थो विगतानन्दो दूयमानेनचेतसा  
तत्कुरुयामलमनेमत्राणायाचलाम्मतिम् । प्रयच्छमश्वविप्रैर्प्राणायात्राक्षममम  
सएवमुक्त प्रोवाचनमिन्द्रपक्षिरूपिणम् । प्राणमन्धारणार्थायदास्येमश्वतपेप्सितम्  
इत्युनवा पुनरप्येनमपृच्छन्स द्विजोत्तम ।

आहार कस्तवार्थाय उपकल्प्यो भवंन्मया ।

सचाऽऽह नरमासेन तृप्तिर्भवति मे परा ॥ २७ ॥

ऋषिरुवाच

तीमारं ते व्यतिक्रान्तमतीतं यौघनञ्च ते । धयस परिणामस्ते धत्तंतेनूत्तमपृच्छ  
यस्मिन्नाराणां सर्वेषामशेषेच्छा निवर्त्तते ।

स कस्माद् वृद्धभावेऽपि मुनृशसात्मको भवान् ॥ २६ ॥

ह मानुषस्य पिशितं च धयश्चरमं तव । सर्वथा दुष्टभाषाना प्रथमो नोपपद्यते

प्रथवा किं मयैतेन प्रोक्तेनास्ति प्रयोजनम् । प्रतिश्रुत्य सदादेयमिति नोभावितं मनः  
इत्युक्त्वा तं स विप्रेन्द्रस्तथेति कृतनिश्चयः ।

शीघ्रमस्मान् समाहूय गुणतोऽनुप्रशस्य च ॥ ३२ ॥

उवाच क्षुब्धहृदयो मुनिर्वाक्यं सुनिष्ठुरम् ।

विनयावनतान् सर्वान् भक्तियुक्तान् कृताञ्जलीन् ॥ ३३ ॥

कृतात्मानो द्विजश्रेष्ठा ऋण्युक्ता मया सह । जातं श्रेष्ठमपत्यं वो यूयं मम यथा द्विजाः  
गुरुः पूज्यो यदि मतो भवतां परमः पिता । ततः कुरुत मे वाक्यं निर्व्यलीकेन चेतसा  
तद्वाक्यसमकालं च प्रोक्तमस्माभिरादृतैः । यद्वक्ष्यति भवांस्तद्वै कृतमेवावधार्यताम्

ऋषिरुवाच

मामेव शरणं प्राप्तो विहगः श्रुत्वा न्वितः । युष्मन्मांसेन येनास्य क्षणं तृप्तिर्भवेत्तवै  
तृष्णाक्षयञ्चरक्तेन तथा शीघ्रं विधीयताम् । ततो वयं प्रव्यथिताः प्रकम्पोद्भूतसाध्वसाः

कष्टं कष्टमिति प्रोच्य नैतत् कर्मेति चाब्रुवन् ॥ ३८ ॥

कथं परशरीरस्य हेतोर्देहं स्वकं बुधः । विनाशयेद्वा तयेद्वा यथा ह्यात्मा तथा सुतः  
पितृदेवमनुष्याणां यान्युक्तानि ऋणानि वै ।

तान्यपाकुरुते पुत्रो न शरीरप्रदः सुतः ॥ ४० ॥

तस्मान्नैतत् करिष्यामो नो चीर्णं यत् पुरातनैः ।

जीवन् भद्राण्यवाप्नोति जीवन् पुण्यं करोति च ॥ ४१ ॥

मृतस्य देहनाशश्च धर्माद्यपरतिस्तथा । आत्मानं सर्वतो रक्ष्यमाहुर्धर्मविदो जनाः  
इत्थं श्रुत्वा वचोऽस्माकं मुनिः क्रोधादिव ज्वलन् ।

प्रोवाच पुनरप्यस्मान् निर्दहन्निष लोचनैः ॥ ४३ ॥

प्रतिज्ञातं वचो मह्यं यस्मान्नैतत् करिष्यथ ।

तस्मान्मच्छापनिर्दग्धास्ति र्थग्योनौ प्रयास्यथ ॥ ४४ ॥

एवमुक्त्वा तदा सोऽस्मांस्तं विहङ्गममब्रवीत् ।

अन्त्येष्टिमात्मनः कृत्वा शास्त्रतश्चौर्ध्वदेहिकम् ॥ ४५ ॥

भक्षयस्य सुविधस्थां मामथ द्विजसत्तम । आहारीवृतमेतसे मया देहमिहामन  
 पतावदेव विप्रस्य आह्वणत्वं प्रचक्ष्यते । यावत् पतगजात्यप्रचम्बसत्यपरिपालनम्  
 नयश्चैर्दक्षिणावाद्द्विस्ततपुण्यप्राप्यतेऽहम् । कमणाम्येनवाविप्रैयतसत्यपरिपालनात्  
 इत्युपैर्बध्नन् अत्या सांस्ततर्विस्मयनिर्भर । प्रत्युवाच मुनि शक्रः पक्षिरूपधरस्तदा  
 योगमास्थाय विप्रन्द्र' त्यजेद् स्वकलेवरम् । जीवन्ननुदिविप्रेन्द्रनभश्चामिक्वाचन  
 तस्यैतद्भवनध्रुत्वायोगयुक्तोऽभवन्मुनि । ततन्मयनिधयज्ञात्वाशान्तोऽप्याहस्वदेहभृत्  
 भो भो विप्रन्द्र' बुध्यान्व बुद्ध्या बोध्य बुधात्मक । ।

जिज्ञासायं मयाऽयं ते अपराधं कृतोऽनन् । ५२ ।

तत्क्षमस्वामलमनेकाचं आक्रियता तव । पालनात्मत्यपाक्यस्यप्रतिर्मेपरमा वयि  
 अद्य प्रभृति ते ज्ञानमेन्द्र प्रादुर्भविष्यति । तपस्यद्य तथा धर्मेनतेविप्रोभविष्यति  
 इत्युक्त्वा तुगतेश्चैपिनाकोपसमन्वित । प्रणम्यशिरसास्माभिरिदमुक्तोमहामुनि  
 विन्यता मरणात्तात'त्यमस्माक महामते । क्षन्तुमहसि दानानानाचिन्तितप्रियताहिन  
 त्वगन्धिमाससङ्घात पूयशोणितपूरिते । कर्त्तव्यान् रतियत्तत्रास्माकमियरति'  
 ध्रूयताञ्च महामाग 'यधालोकोविमुञ्चति । कामक्रोधादिभिर्दोषैरेवश'प्रलारिभि  
 प्रज्ञाप्राकारसयुक्तमस्यिस्पूर्ण पुर महत् । चर्मभित्तिमहारोध मासशोणितलेपनम्  
 नवद्वार महायास सवत आयुषेष्टितम् । नृपश्च पुर्यस्तत्र चेतनादानवस्थित  
 मन्त्रिणी तस्य बुद्धिश्च मनश्चैव विरोधिनौ । यतेत वैरनाशाय तावुभायितरेतम्  
 नृपस्य तस्य चत्वारो नाशमिच्छन्ति विद्विष ।

काम क्रोधस्तथा लोभो मोहश्चान्धस्तथा रिपु ॥ ६२ ॥

यदा तु स नृपस्तानि द्वाराण्यवृष्यतिष्ठति । तदासुस्ययलक्ष्मैवनिरातङ्कधजायते  
 जातादुरागो भवति शत्रुभिर्नांऽभिभूयत ॥ ६४ ॥

यदा तु सयद्द्वारानि विवृतानि स भुञ्जति । रागो नाम तदाशत्रुर्नेत्रादिद्वारमृच्छति  
 सवन्धापा महायाम पञ्चद्वारप्रवेशन । तस्यानुमार्गं विशति तद्देघोर रिपुत्रयम्  
 प्रविश्याथ स घै तत्र द्वारैरिन्द्रियसञ्चकै । राग सश्लेषमायाति मनसाच्च सहेतरै

इन्द्रियाणि मनश्चैव घशे कृत्वा दुरासदः । द्वाराणिघचशेकृत्वा प्राकारं नाशयत्यथ  
मनस्तस्याश्रितं दृष्ट्वा बुद्धिर्नश्यति तदक्षणात् ।

अमात्यरहितस्तत्र पौरुषगोडिभक्तस्तथा ॥ ६६ ॥

रिपुभिल्लब्धविवरः स नृपो नाशमृच्छति । एषंगगस्तथामोहोलोभःक्रोधस्तथैव च  
प्रवर्तन्ते दुरात्मानो मनुष्यस्मृतिनाशकाः ।

रागात्क्रोधः प्रभवति क्रोधाद्दोभोऽभिजायते ॥ ७१ ॥

लोभाद् भवति सम्मोहः सम्मोहात् स्मृतिविभ्रमः ।

स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशान् प्रणश्यति ॥ ७२ ॥

एवं प्रणष्टबुद्धीनां रागलोभानुवर्तिनाम् । जीविते च सलोभानां प्रसादंकुरु सत्तम!  
योऽयं शापो भगवता दत्तः स न भवेत्तथा ।

न तामसीं गतिं कष्टां ब्रजेम मुनिसत्तम! ॥ ७५ ॥

ऋषिरुवाच

यन्मयोक्तं न तन्मिथ्या भविष्यतिकदाचन । न मे घागनृत्प्राह यावदद्येति पुत्रकाः  
दैवमत्र परं मन्ये धिक् पौरुषमनर्थकम् । अकार्यं कारितो येन बलाद्दहमचिन्तितम्  
यस्माच्चयुष्माभिरुहंप्रणिपत्यप्रसादितः । तस्मात्तिर्यक्त्वमापन्नापरंजानमवाप्स्यथ  
ज्ञानदर्शितमार्गाश्च निवृर्ध् तवलेशकल्मषाः ।

मत्प्रसादाद्सन्दिग्धाः परां सिद्धिमवाप्स्यथ ॥ ७८ ॥

एवं शप्ताः स्म भगवन् ! पित्रा दैववशात् पुरा ।

ततः कालेन महता योन्यन्तरमुपागताः ॥ ७९ ॥

जाताश्च रणमध्ये वै भवता परिपालिताः । वयमित्थं द्विजश्रेष्ठ! खगत्वं समुपागताः  
नास्त्यसाचिह संसारे यो न दिष्टेन वाध्यते ॥ ८० ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति तेषां घचः श्रुत्वा शर्माको भगवान् मुनिः ।

प्रत्युवाच महाभागः समीपस्थायिनो द्विजान् ॥ ८१ ॥

पूर्वमेव मयाप्रोक्तं भवता सप्रियायिदम् । सामान्यपक्षिणो नैतेकेऽप्येते द्विजसत्तया  
ये युद्धेऽपि न सम्प्राना पञ्चन्यमतिमानुषे ॥ ८२ ॥

ततः प्रीतिमनानेननेऽनुज्ञातामदान्मना । जन्मु शिखरिणाश्रेष्ठविन्ध्यं द्रुमलतायुतम्  
यावदद्य स्थितास्तस्मिन्नघटे धर्मपक्षिण ।

तप स्वाध्यायनिरता समार्था वृत्तनिश्चया ॥ ८४ ॥

इतिमुनिवरलब्धसत्क्रियान्ते मुनितनया विप्रहृत्वमभ्युपेता ।

गिरिवरगाहनेऽतिपुण्यतोषे यतमनसो निवसन्ति विन्ध्यपृष्ठे ॥ ८५ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे विन्ध्यव्रणन नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

## चतुर्थोऽध्यायः

### चतुर्थं हानतारणार्णम्

मार्कण्डेय उवाच

एवन्तैद्रोणतनया पक्षिणोऽज्ञानिनोऽभवन् । वसन्तिह्यसले विन्ध्येतानुपास्यघपृच्छच्च  
इत्पृथेवघनध्रुत्वा मार्कण्डेयस्यर्जमिति । जगाम विन्ध्यशिखरं यत्र ते धर्मपक्षिण  
तत्रगासप्रभूतश्चशुभ्रावपटनाध्यनिम् । ध्रुत्वाघविस्मयाविष्टश्चिन्तयामासर्जमिति  
स्थानर्माष्टवसम्पन्नं जितश्वासप्रविभ्रमम् । विस्पृग्मपद्मोपञ्च पठ्यते द्विजसत्तमै  
वियोनिमपि सम्प्रानेतान्मुनिकुमारकान् । चित्रमेतद्दृष्ट्वा मध्ये न जहाति सरस्वती  
वन्धुवर्गस्तथा मित्रं यच्छेष्टमपरं गृहे । त्यक्त्वा गच्छति तत्सर्वं न जहाति सरस्वती  
इति सञ्चिन्तयन्नेवविवेशगिरिकन्दरम् । प्रविश्य श्वदशशांशौशिलापट्टगतान्द्विजान्  
पठतस्तान् समालोक्य मुखदोषविवर्जितान् ।

सोऽथ शौकेन हर्षेण सदानैवाम्यभाषत ॥ ८ ॥

स्वस्त्यस्तु वो द्विजश्रेष्ठा ! जर्मिनि मा निरोधत ।

ध्यासशिष्यमनुप्राप्तं भवता दर्शनोत्सुकम् ॥ ९ ॥

मन्युर्न खलु कर्त्तव्योयत्पित्रातीवमन्युना । शप्ताःस्वगत्वमापन्नाःसर्वथादिष्टमेवतत्

स्फीतद्रव्ये कुले केचिज्जाताः किल मनस्विनः ।

द्रव्यनाशे द्विजेन्द्रास्ते शवरेण सुसान्त्विताः ॥ ११ ॥

दत्त्वा याचन्तिपुरुषाहत्वावध्यन्तिचापरे । पातयित्वाघपात्यन्तेतएवतपसःक्षयात्

एतद्द्रष्टुं सुबहुशो विपरीतं तथा मया । भावाभावसमुच्छेदैरजस्रं व्याकुलं जगत्

इति सञ्चिन्त्य मनसा न शोकं कर्तुमर्हथ । ज्ञानस्य फलमेतावच्छोकहर्षैरधृष्यता

ततस्ते जैमिनि सर्वेषाद्यार्घ्याभ्यामपूजयन् । अनामयञ्चप्रच्छुःप्रणिपत्यमहानुनिम्

अथोचुः खगमाः सर्वे व्यासशिष्यं तपोनिधिम् ।

सुखोपविष्टं विश्रान्तं पक्षानिलहतक्लमम् ॥ १६ ॥

पक्षिण ऊचुः

अथा नः सफलं जन्म जीवितञ्च सुजीवितम् ।

यत् पश्यामः सुरैर्वन्द्यं तव पादाम्बुजद्वयम् ॥ १७ ॥

पितृकोपाग्निरुद्धूतो यो नो देहेषु वर्त्तते !

सोऽद्य शान्तिं गतो विप्र ! युष्मद्दर्शनवारिणा ॥ १८ ॥

क्वचित्ते कुशलं ब्रह्मन्नाश्रमे मृगपक्षिषु । वृक्षेष्वथ लतागुलमत्वक्सारवृणजातिषु

अथवा नैतदुक्तं हि सम्यगस्माभिरादृतैः । भवता सङ्गमो येषां तेषामकुशलं कुतः

प्रसादञ्च कुरुष्वान्न ब्रूह्यागमनकारणम् । देवानामिव संसर्गोभवतोऽभ्युदयो महान्

केनाऽस्मद्भाग्यगुरुणा आनीतो दृष्टिगोचरम् ॥ २१ ॥

श्रूयतां द्विजशार्दूलाः ! कारणं येन कन्दरम् ।

विन्ध्यस्येहागतो रम्यं रेवावारिकणोक्षितम् ।

सन्देहान् भारते शास्त्रे तान् प्रष्टुं गतवानहम् ॥ २२ ॥

मार्कण्डेयं महात्मानं पूर्वं भृगुकुलोद्बहम् । तमहं पृष्टवान् प्राप्यसन्देहान् भारतंप्रति

सद्यपृष्टोमयाप्राहसन्तिविन्ध्येमहाचले । द्रोणपुत्रामहात्मानस्तेवक्ष्यन्त्यर्थविस्तरम्

तद्वाक्यचोदितञ्चेममागतोऽहं महागिरिम् ।

तत् शृणुष्वमशेषेण श्रुत्वा व्याख्यातुमर्हथ ॥ २५ ॥

पक्षिण ऊचु

चिरये सति घक्ष्यामो निर्विशङ्क शृणुष्व तत् ।

कथं तन्न घदिष्यामो यदस्मद्बुद्धिगोचरम् ॥ २६ ॥

चतुर्ध्वंपि हि वेदेषु धर्मशास्त्रेषु चैव हि । समस्तेषु तथाङ्गेषु यच्चान्यद्देसम्मिमत्तम्  
एतेषु गोचरोऽस्माकमुद्धेर्ब्राह्मणसत्तमः । प्रतिज्ञान्तुममाचोऽहं तथापिनहि शक्नुम

तस्माद्बुद्धस्य विध्वंस्य सन्दिग्धं यद्धि भारते ।

घक्ष्यामस्तव धर्मज्ञं न चेन्मोहो भविष्यति ॥ २६ ॥

जैमिनिरुवाच

सन्दिग्धानीह वस्तुनि भारत प्रति यानि मे ।

शृणुष्वममलास्तानि श्रुत्वा व्याख्यातुमर्हथ ॥ ३० ॥

कस्मान्मानुषता प्राप्तो निर्गुणोऽपि जनार्दन ।

वासद्वोऽखिलाधार सर्वकारणकारणम् ॥ ३१ ॥

कस्माच्च पाण्डुपुत्राणामेका साद्विपदात्मजा । पञ्चानामहिपीकृष्णासुमहानत्रसशय  
भेषजं ब्रह्महत्याया धलदेवो महाबल । तीर्थयात्राप्रसङ्गेन कस्माच्चक्रेहलायुध

कथञ्च द्रौपदेयास्तेऽहं तदारा महारथ । पाण्डुनाथा महात्मानो घधमापुरनाथवत्

एतन् सचं कथ्यता म सन्दिग्धं भारतम्प्रति ।

वृत्तार्थोऽहं सुख येन गच्छेय निजमाश्रमम् ॥ ३५ ॥

पक्षिण ऊचु

नमस्त्वय सुरेशाय विष्णवे प्रभविष्णवे । पुरुषायाऽप्रमेयायशाश्वतायाऽव्ययाय च  
चतुर्ध्वंहात्मने तस्मै त्रिगुणायाऽगुणाय च । वरिष्ठायरिष्ठायवरिण्यायाऽमृतायच

यस्मादणुतर नास्ति यस्मान्नास्ति बृहन्तरम् ।

येन विध्वमिदं व्याप्तमजेन जगदाि ना ॥ ३८ ॥

आविभावतिरोभावदृष्टादृष्टविलक्षणम् । घदन्तियत् सुप्रमित्थैवाऽन्ते च सहतम्

ब्रह्मणे चादिदेवाय नमस्कृत्य समाधिना ।

ब्रह्मन्नामान्बुधुगिरन्वमर्षयः पुनाति जगत्प्रथम् ॥ ४० ॥

प्रणिपत्य तथेशानसंक्रवाणचिनिर्जितः । यान्यासुग्गर्षयंणमितुष्यन्ते न यच्चिनाम्

प्रवक्ष्यामो मतं कृत्स्नं व्यासस्याऽऽश्रुतकर्मणः ।

येन भारतमुद्दिश्य धर्माणाः प्रकटीकृताः ॥ ४१ ॥

आपो नाम इति प्रोक्ता मुनिभिस्त्वचर्दिभिः ।

अयनं तस्य ताः पूर्वं तेन नागयणः स्मृतः ॥ ४२ ॥

स देवो भगवान् सर्वं प्याप्य नागयणो विभुः ।

चतुर्धा संस्थितो ब्रह्मन् ! समुपो निगुं षान्तथा ॥ ४३ ॥

एषा मूर्तिरनिर्देश्या शुक्लां पश्यन्ति तां बुधः ।

ज्वालामालोपञ्चार्त्नी मिष्टा सा योगिनां परा ॥ ४४ ॥

दूरस्था सान्तिकस्था न तिजेया सा गुणातिगा ।

षानुदंपाभिधानोऽर्त्सा निमन्त्येन दृश्यते ॥ ४५ ॥

रूपवर्णाद्व्यस्तस्यानभावाः कल्पनामयाः । धान्येक्षसा स्वदाशुदानुप्रतिष्ठैकरूपिणी

द्वितीया पृथिवीं मूर्ध्नां दोषाण्या धारयत्यधः ।

तामर्त्सा सा समाप्याता तिर्यन्वं समुपाधिता ॥ ४६ ॥

तृतीया कम्मंकुन्ते प्रजापालनतत्परा । सत्योद्विक्तानुसा जेया धर्मसंस्थानकारिणी

चतुर्थोजलमध्यस्था शेते पन्नगतल्पगा । रजस्तस्यागुणः स्वर्गं सा फरोतिसर्देषदि

यातृतीया इरेम्भुं सिः प्रजापालनतत्परा । सा तु धर्मव्यपस्थानं करोति नियतं भुवि

प्रोदुधृतानसुरान् णन्ति धर्मपिच्छित्तिकारिणः ।

पाति देवान् सतक्षान्पान् धर्मक्ष्णपरायणान् ॥ ४७ ॥

यदायदाहिधर्मस्य ग्लानिर्भवति जैमिने ! अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं चृजत्यर्त्सा

भूत्वा पुराचराहेण तुण्डेनापो निरस्य स । एकयादं प्रयोत्सताता नलिनीप घसुन्धरा

कृत्वा नृसिंहरूपञ्च द्विरण्यकशिपुर्हतः । विप्रचित्तिमुत्साध्यान्वेदानया चिनिपातिताः



वामनादींस्तथैवान्यान्न सख्यानुमिहोत्सहे । अचताराश्चतस्येहमायुर नाम्प्रतत्त्वयम्  
इति सा सात्त्विकीमूर्त्तिस्वतागम् करोति वै ।

प्रद्युम्नेनि च साग्याता रक्षाकर्मण्यवस्थिता ॥ ५७ ॥

देवत्वेऽथ मनुष्यत्वे तिव्यग्योर्नो च सस्थिता ।

गृह्णाति तत्स्वभावञ्च वासुदेवेच्छया सदा ॥ ५८ ॥

इत्येतत्से समाख्यातवृत्तस्योऽपियत्प्रभु । मानुषत्वगतोविष्णुःशृणुष्यास्योत्तरपुन  
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे चतुर्थ्याहायतारखणननाम् चतुर्थोऽध्याय ॥ ४ ॥

— \* —

## पञ्चमोऽध्यायः

### इन्द्रविक्रियार्णनम्

पक्षिण उचु

त्वष्टृपुत्रे हतेपूर्वं ब्रह्मिन्द्रस्य तेजस । ब्रह्महत्यामिभूतस्य परा हानिरजायत  
तद्धर्मं प्रविशेशाऽय शक्रनेजोऽपचारत । निरुतेजाश्चामवच्छक्रोधर्मं तेजसि निर्गते  
तत पुत्र हत ध्रुत्वात्त्वया मृद्ध प्रजापति । अवलुञ्च्य जटामर्कामिद् घचनमजधीत्  
अथ पश्यन्तुमे वीर्यं त्रयो लोका सदेवता । सध पश्यतु दुर्ब द्विर्ब्रह्महा पाकशासनः  
स्वकर्माभिरतो येन मत्सुनो विनिपातित ।

इत्युक्त्वा कोपरकाक्षो जटामर्को जुहाव ताम् ॥ ५ ॥

ततो वृत्र समुत्तस्थौ ज्वालामालीमहासुर । महाकायो महादद्रो मित्राञ्जनवयग्रभ  
इन्द्रशत्रुमेयात्मा त्वष्ट तेजोऽपट्ट हित । अहन्यहनि सोऽवदद्विपुपात महाबल  
यथाय चात्मनोऽदृष्ट्वावृत्र शक्रोमहासुरम् । प्रेष्यान्नाससप्तर्षीन् सन्धिभिच्छन्मयानुर  
सख्यञ्जनुस्ततस्तस्य वृत्रेण समयास्तथा । ऋषय प्रीतमनस सर्वमूनहिते रताः  
समपस्थितिमुद्गङ्गाप्रयदाशक्रेण घातित । वृत्रो हत्यामिभूतस्यतदाबलमशीर्ष्यत

तच्छक्रदेहविभ्रष्टं बलं मारुतमाचिशन् । सर्वव्यापिनमव्यक्तं बलमर्नवाधिर्देवतम्  
 अहत्याञ्च यदाशक्तो गीतमं रूपमान्धितः । धर्मयामासदेवेन्द्रस्तदा रूपमहीयत  
 अङ्गप्रत्यङ्गलावर्ण्यं यदनीव मनोरमम् । विहाय दुष्टं देवेन्द्रं नामत्याचगमत्ततः  
 धर्मेण तेजसा त्यक्तं बलहीनमरूपिणम् । ज्ञात्वा सुरेशं देतेयान्तज्जये चक्रुरयमम्  
 राजामुद्रिकर्षीचर्याणां देवेन्द्रं विजिगीष्वः । कुलैष्वनियत्वादेत्या अजायन्तमहामुने  
 कस्यचित्त्वथ कालस्य धरणीभारपीडिता । जगाममैकशिगरंमदोयत्रदिर्वीफसाम्  
 तेषां सा कथयामास भृग्भिराचर्षीडिता । दनुजात्मजदेत्योत्थं रोदकारणमात्मनः  
 एते भवद्विरसुरा निहताः पृथुलोजसः । ते सर्वे मानुषे लोकेजाता गेहेषु भूभृताम्  
 अक्षोहिण्यो हि बहुलास्तदृभागर्ता व्रजाम्यथः ।

तथा कुरुष्वं त्रिदशा यथा शान्तिर्भवेन्मम ॥ १६ ॥

पश्चिण ऊचुः

तेजोभार्गस्ततो देवा अवतेरुर्दिवो महिम् । प्रजानामुपकारार्थं भृभारहरणाय च  
 यद्दिन्द्रहेहजनेजस्तन्मुमोचन्वयंवृषः । कुन्त्यांजातो महानेजाम्ततोराजायुधिष्ठिरः  
 बलं मुमोघ पवनस्ततो भीमो व्यजायत । शक्रवीर्यद्वितर्ध्वं जज्ञेपार्थोधनञ्जयः  
 उत्पन्नो यमर्जो माद्र्यां शक्ररूपौ महाद्युतो । पञ्चधाभगवानित्थमवर्तार्षःशतक्रतुः  
 तस्योत्पन्ना महाभागा पत्नी कृष्णा हुताशनात् ।

शक्रस्यैकस्य सा पत्नी कृष्णा नान्यस्य कस्यचित् ।

योगीश्वराः शरीराणि कुर्वन्ति बहुलान्यपि ॥ २५ ॥

पञ्चानामेकपत्नीत्वमित्येतत्कथितं तद्य । ध्रूयतांबलदेवोऽपियथा यातः सरस्वतीम्  
 इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे इन्द्रविक्रियावर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

## पष्ठोऽध्यायः

बलदेवब्रह्महत्यावर्णनम्

पक्षिण ऊच.

राम-पार्येपराप्रीतिशाल्याकृष्णस्यलाङ्गुली । चिन्तयामासबहुधाकिंशृतंसुकृतंभवेत्  
कृष्णेन हि चिना नाऽहं यास्ये दुर्व्योधनान्तिकम् ।

पाण्डवान् वा समाधित्य कथं दुर्व्योधनं नृपम् ॥ २ ॥

जामातरतथाशिष्यघातयिष्येनरेश्वरम् । तस्मात्तपार्थं यास्यामिनापिदुर्व्योधनंनृपम्  
तीर्थेष्वाप्लावयिष्यामि तावदात्मानमात्मना ।

कुरूणा पाण्डवानाञ्च यावदन्ताय कल्पते ॥ ४ ॥

इत्यामन्वथ हृषीकेश पार्थदुर्व्योधनावपि । जगामद्वारका शौरि स्वसैन्यपरिवारित-  
गत्वा द्धारधती रामो दृष्टपुष्टजनाकुलाम् । भोगन्तथ्येषु तीर्थेषु पपां पानं हलायुधः  
पीतपानो जगामाथ रैवतोद्यानमृक्षिमत् । हस्ते शृहीत्वासमदारैधतीमप्सरोपमाम्  
स्त्रीकदम्बकमध्यस्थो ययीमत्त पदास्खलन् । ददर्श च वनंवीरो रमणीयमनुत्तमम्

सर्वर्तुफलपुष्पाढ्यं शाखासृगगणाकुलम् ।

पुण्यं पञ्चवनोपेतं सपत्चलमहावनम् ॥ ६ ॥

स शृण्वन् प्रीतिजननान् बहून्मदकलान् शुभान् ।

श्रोत्ररम्यान् सुमधुरान् शब्दान् खगमुखेरितान् ॥ १० ॥

सर्वर्तुफलमाराढ्यान् सर्वर्तुं कुसुमोज्ज्वलान् ।

अपश्यत् पादपास्तत्र विहगैरनुनादितान् ॥ ११ ॥

आघ्रानान्नातकान् भव्यान् नारिरेलान् सतिन्दुकान् ।

आधित्वकास्तथा जीरान् दाडिमान् धीजपूरकान् ॥ १२ ॥

पनसान् लङ्कुञ्चान् मोचान् नीपाश्चातिमनोहरान् ।

पारावतांश्च कङ्कोलान् नलिनानम्लवेतसान् ॥ १३ ॥

भल्लातकानामलकांस्तिन्दुकांश्च महाफलान् ॥

इङ्गुदान् करमदांश्च हरीतकविभीतकान् ॥ १४ ॥

षतानन्यांश्च स तरुन् ददर्श यदुनन्दनः । तथैवाशोकपुत्रागकेतकीवकुलानथ ॥ १४

चम्पकान् सतपर्णांश्च कर्णिकारान् समालतीन् ।

पारिजातान् कोविदारान् मन्दारान् वदरांस्तथा १६ ॥

पाटलान् पुष्पितान् रम्यान् देवदारुद्रुमांस्तथा ।

सालांस्तालांस्तमालांश्च किशुकान् वञ्जुलान् घरान् ॥ १७ ॥

चकोरैःशातपत्रैश्च भृङ्गराजैस्तथा शुकैः । कोकिलैः कलविङ्कैश्चहारीतैर्जीवजीवकैः

प्रियपुत्रैश्चातकैश्च तथान्यैर्विविधैः खगैः । श्रोत्ररम्यं सुमधुरं कूजद्विश्चाप्यधिष्ठितम्

सरांसिच मनोज्ञानि प्रसन्नसलिलानि च । कुमुदैःपुण्डरीकैश्चतथा नीलोत्पलैः शुभैः

कहारैः कमलैश्चापिआचितानि समन्ततः । कादम्बैश्चक्रवाकैश्च तथैव जलकुक्कुटैः

कारण्डवैः प्लवैर्हंसैः कूर्मेर्मद्गुभिरेव च ।

एभिश्चान्यैश्च कीर्णानि समन्ताज्जलचारिभिः ॥ २२ ॥

क्रमेणेतथं वनं शौरिर्वीक्षमाणो मनोरमम् । जगामानुगतः स्त्रीमिलितागृहमनुत्तमम्

स ददर्श द्विजांस्तत्र वेदवेदाङ्गपारगान् ।

कौशिकान् भार्गवांश्चैव भारद्वाजान् सगौतमान् ॥ २४ ॥

विविधेषु च सम्भूतान् वंशेषु द्विजसत्तमान् ।

कथाश्रवणवद्धोत्कानुपविष्टान्महत्सु च ॥ २५ ॥

कृष्णाजिनोत्तरीयेषु कुशेषु च वृषीषु च । सूतं च तेषां मध्यस्थं कथयानं कथाः शुभाः

पौराणिकीः सुरपीणामाद्यानां चरिताश्रयाः ।

दृष्ट्वा रामं द्विजाः सर्वे मधुपानारुणेक्षणम् ॥ २७ ॥

मत्तोऽयमिति मन्वानाः समुत्तस्थुस्त्वंरान्विताः ।

पूजयन्तो हलधरमृते तं सूतवंशजम् ॥ २८ ॥

तत ऋषेःसमाधिष्टो हली सुत महाउल । निजघान विवृत्ताश्च शोभिताशोयदानव-  
अध्यास्यति पदे ब्राह्म तस्मिन् सूते निपातिने ।

निष्क्रान्तास्ते द्विजा सर्वे वनात्कृष्णाजिनाम्बरा ॥ ३० ॥

अचधूत तेषाम्मान मन्यमानो हलायुध । चिन्तयामास सुमहन्मया पापमिदं एतम्  
ब्राह्म स्थान गतो होष यत्सुतो विनिपातित ।

तथा ह्रीमि द्विजा सर्वे मामवेक्ष्य विनिर्गता ॥ ३२ ॥

शरारम्य च मे गन्धो लोहस्येयाऽसुखावह ।

आ मानञ्जावगच्छामि ब्रह्मधूमिव कुत्सितम् ॥ ३३ ॥

धिगमयं तथा मद्यमतिमानमभीरताम् । यैराचिष्टेन सुमहन्मया • पापमिदं एतम्  
तत्क्षयार्थं चरिष्यामि व्रत द्वादशत्रयिकम् ।

स्वकर्मरपापन कुर्वन्प्रायश्चित्तमनुत्तमम् ॥ ३४ ॥

अथ येय समास्था तीर्थयात्रा मयाऽधुना ।

एतामेव प्रयास्यामि प्रतिलोमा सरस्वतीम् ॥ ३६ ॥

अतो जगाम रामोऽसौ प्रतिलोमा सरस्वतीम् ।

तत पर शृणुष्वेव पाण्डवेयकथाश्रयम् ॥ ३७ ॥

\* नि श्रीमार्कण्डेयपुराणे बलदेवप्रह्लादत्यावर्णननाम पष्ठोऽध्याय ॥ ६ ॥

## सप्तमोऽध्यायः

### द्रौपदेयोत्पत्तिवर्णनम्

धर्मपक्षिणं ऊचुः

हरिश्चन्द्रेतिराजपिरासीत्त्रेतायुगे पुरा । धर्मात्मापृथिवीपालः प्रोह्यसत्कीर्तिरुत्तमः  
न दुर्भिक्षं न च व्याधिर्नाकालमरणं नृणाम् । नाधर्मरुचयः पौरास्तस्मिन्शासतिपार्थिवे  
वभूवुर्न तथोन्मत्ता धनव्रीर्य्यतपोमदैः । नाजायन्त स्त्रियश्चैव काश्चिद्प्राप्तयोवनाः  
स कदाचिन्महाबाहुररण्येऽनुसरन् मृगम् ।

शुश्राव शब्दं सकृत्त्रायस्वेति च योपिताम् ॥ ४ ॥

सविहायमृगराजामभैरीरित्यभाषत । मयिशासतिदुर्मैघाः कोऽयमन्यायवृत्तिमान्  
तत्क्रन्दितानुसारी च सर्वारम्भविवातकृत ।

एतस्मिन्नन्तरे रौद्रेण विघ्नराट् समचिन्तयत् ॥ ६ ॥

विश्वामित्रोऽयमेतुलं तप आस्थाय वीर्य्यवान् ।

प्रागसिद्धाभवादीनां विद्याः साधयति व्रती ॥ ७ ॥

साध्यमानाः क्षमामौनचित्तसंयमिनाऽमुना । तावैभयार्त्ताः क्रन्दन्ति कथं कार्श्यमिदं मया  
तेजस्वी कौशिकश्रेष्ठो वयमस्य सुदुर्वलाः ।

क्रोशन्त्येतास्तथाभीता दुष्पारं प्रतिभाति मे ॥ ६ ॥

अथवाऽयं नृपः प्राप्तो माभैरिति वदन् मुहुः । इममेव प्रविश्याशुसाधयिष्येयथेप्सितम्  
इति सञ्चिन्त्य रौद्रेण विघ्नराजेन वै ततः । तेनाविष्टो नृपः कोपादिदं वचनमब्रवीत्  
कोऽयं वध्नातिवस्त्रान्तेपावकं पापकृत्तरः । बलोष्णतेजसादीप्ते मयि पत्यावुपस्थिते  
सोऽद्य मत्कार्मुकाक्षेपविदीपितदिगन्तरैः । शरैर्विभिन्नसर्व्वाङ्गो दीर्घनिद्रां प्रवेक्ष्यति  
विश्वामित्रस्ततः क्रुद्धः श्रुत्वा तन्नृपतेर्वचः । क्रुद्धे चर्षिवरे तस्मिन्नेशुर्विद्याः क्षणेन ताः  
सचापिराजातं हृष्ट्वा विश्वामित्रं तपोनिधिम् । भीतः प्रावेपतात्यर्थं सहसा श्वत्थपर्णघत्

स दुराभ्यधिति यदा मुनिस्तिष्ठेति चाग्रणीत् ।

तत स राजा धिनयान् प्रणिपत्याऽभ्यभाषत ॥ १६ ॥

भगवन्नेव धर्मो मे नापराधो मम प्रभो । न क्रोद्धमहंसि मुने निजधरंरतस्य मे  
दातव्यं रक्षितव्यञ्च धर्मज्ञेन महीक्षिता । चापंचोद्यम्य योद्धव्यं धर्मशास्त्रानुसारत'  
विश्वामित्र उवाच

दातव्यं कस्य के रक्षयाकैर्योद्धव्यञ्च ते नृप । क्षिप्रमेवत् समाचक्ष्वयधधर्ममयतय  
हरिश्चन्द्र उवाच

दातव्यविश्रमुह्यैस्पोयेचान्येहशकृतय । रक्षयामीता'सदायुद्धकनव्यपरिपन्विभि'  
विश्वामित्र उवाच

यदि राजा भयान् सभ्यप्राज यमपेक्षने । निर्वेष्टुकामोविप्रोऽहं दीयतामिष्टदक्षिणा  
पक्षिण ऊचु

एतद्राजा धव ध्रु'वा प्रदृष्टेनान्तरात्मना । पुनन्वातमिवात्मान मेनेप्राह च कौशिकम्  
उच्यता भगवन् । यत्ते दातव्यमविशङ्कितम् ।

दत्तमित्येव तद्विद्धि यद्यपि स्यात् सुदुर्लभम् ॥ २३ ॥

हिरण्यं वा सुवर्णं वा पुत्रं यज्ञा कलेवरम् । प्राणाराज्यपुरलक्ष्मीर्यदभिप्रेतमा मन  
विश्वामित्र उवाच

राजन् 'प्रतिगृहीतोऽप्यवस्तेदन प्रतिग्रह । प्रयच्छप्रथमतावदक्षिणांराजसूयिकीम्  
राजोवाच ।

ब्रह्मस्तामपि दाश्यामि दक्षिणा भवतो हाहम् ।

मियता द्विचरादूल । यस्तवेष्ट प्रतिग्रह ॥ २६ ॥

विश्वामित्र उवाच

सत्तागरा धरामेता सभूहृद्विप्राभपत्तनाम् । रात्र्यञ्च सचलचीर । रथाश्वगनसङ्कुलम्  
कोप्यागारञ्च कोपञ्च यथान्यद्विद्यते तव । विनामाध्याञ्च पुत्रञ्च शरीरञ्च तवानय  
धमञ्चसबधमञ्च । यो यान्तमनुगच्छति । यदुता वा किमुक्तेन सर्वमेतत् प्रदीयताम्

पक्षिण ऊचुः

प्रहृष्टेनैव मनसा सोऽविकारमुखो नृपः । तस्यर्षेर्वचनं श्रुत्वा तथेत्याह कृताञ्जलिः

विश्वामित्र उवाच

सर्वस्वं यदि मे दत्तं राज्यमुर्वीचलंधनम् । प्रभुत्वंकस्यराजर्षे! राज्यस्थेतापसेमयि

हरिश्चन्द्र उवाच

यस्मिन्नपिमयाकालेब्रह्मन्द्त्तावसुन्धरा । तस्मिन्नपिभवानस्वामीकिमुताद्यमहीपतिः

विश्वामित्र उवाच

यदि राजंस्त्वादत्तामम सर्व्वा घसुन्धरा । यत्रमेविपयेस्वाम्यंतस्मान्निष्क्रान्तुमर्हति

श्रोणीसूत्रादिसकलं मुक्त्वाभूपणसङ्ग्रहम् । तद्वल्कलमावध्यसह पत्न्या सुतेनच

पक्षिण उचुः

तथेतिचोक्त्वाकृत्वाचराजागन्तुंप्रचक्रमे । स्वपत्न्याशौच्ययासाद्धैवालकेनात्मजेनच

व्रजतःसततोरुद्धा पन्थानंप्राहंतृपम् । कयास्यसीत्यदस्वामेदक्षिणांराजसूयिकीम्

हरिश्चन्द्र उवाच

भगवन् ! राज्यप्रेतत्ते दत्तं निहतकण्टकम् । अवशिष्टमिदं ब्रह्मन्नद्य देहत्रयं मम

विश्वामित्र उवाच

तथापिखलु दातव्या त्वयामेयज्ञदक्षिणा । विशेषतो ब्राह्मणानांहन्त्यदत्तंप्रतिश्रुतम्

यावत्तोपो राजसूये ब्राह्मणानां भवेन्नृप ! । तावदेव तु दातव्या दक्षिणा राजसूयिकी

प्रतिश्रुत्य च दातव्यं योद्धव्यं चाऽऽततायिभिः ।

रक्षितव्यास्तथा चार्त्तास्त्वयैव प्राक् प्रतिश्रुतम् ॥ ४० ॥

हरिश्चन्द्र उवाच

भगवन् ! साम्प्रतं नास्ति दास्ये कालक्रमेणते । प्रसादंकुरुचिप्रर्षेसद्भावमनुचिन्त्यच

विश्वामित्र उवाच

किंप्रमाणो मया कालः प्रतीक्ष्यस्ते जनाधिप ! ।

शीघ्रमाचक्ष्वशापान्निरन्यथा त्वां प्रभक्ष्यति ॥ ४२ ॥



## हरिश्चन्द्र उवाच

मार्गेण तव विप्रैरे । प्रदास्ये दक्षिणाधनम् । साध्वर्तनं तस्मिन्नेवित्तमनुज्ञांशानुमर्हसि

## विश्वामित्र उवाच

गच्छ गच्छ नृपभ्रेष्ठ । स्वधर्ममनुपाल्य । शिष्यश्च तेऽध्याभयनुमासन्नुपरिपन्थिन  
पक्षिण ऊचु

अनुगत स गच्छेति जगाम घातु गधिय । पद्मश्यामसुचितागन्तुमन्वगच्छतत्रप्रिया  
तं समाप्यै नृपभष्ट त्रिपान्थं मत्तुनं पुमान् । दृष्ट्वा प्रतुम्भु पौंगराश्रमंघानुयायिन  
हा नाथ । किं जहास्यस्मान् तिर्याक्तिपरिधीहितान् ।

त्वं धर्मतपरो गतन् । पौंगनुप्रदृष्टया ॥ ४७ ॥

नयाऽस्मान्पिरानर्षे । यदि धर्मवपेक्षसं । मुहूर्त्ततिष्ठतानेष्ट । भयतो मुगपद्भुजम्  
विषामो नेत्रस्रमरे कदा दृश्यामहे पुन । यस्यप्रयातस्यपुरोवाग्निपृष्ठेधपाधिवा  
तस्याऽनुयाति भाव्यैषं गृहोत्था घातकं सुतम् ।

यस्य भूषा प्रयातस्य यान्प्रभे कुञ्जरस्थिता ॥ ५० ॥

स त्व पद्भ्यां गतेऽत्रो हरिश्चन्द्रोऽद्य गच्छति ।

हा राजन् । मुहुमार ते मुञ्चसु पत्रमुशसम् ॥ ५१ ॥

पथि पाशुपरिक्रिष्टं भुग र्वाङ्गमविष्यति । तिष्ठ तिष्ठ नृपभ्रेष्ठ । स्वधर्ममनुपालय  
आनृशंस्यपरोधम क्षत्रियाणां विशयत । किं दारेः किं सुनेनांघघनेर्धान्यैरघापिवा  
सयमेतन् परित्यज्य छायाभूता यय तव ।

हा नाथ । हा महाराज । हास्यामिन् । किंजहासि न ॥ ५४ ॥

यत्र त्वं तत्र हि धर्मं तत्सुख यत्र वै भवान् । नगरं तद्भवान् यत्रसस्यर्षीयत्रनोहृप  
इति पौरतव ध्रुत्वा राजाशोकपरिप्लुत । अतिष्ठन् स तदामार्गेनैषामेवानुक्त्रपया  
विश्वामित्रोऽपि तं दृष्ट्वा पौरवाक्याकुलीकृतम् ।

रोषामर्षविहृताक्ष समागम्य घषोऽध्वर्यात् ॥ ५७ ॥

धिकवाद्गुणसमाचारमनृत्तंजिह्वमापितम् । ममराज्यचक्ष्णाय पुनप्राक्पट्टमिच्छसि

इत्युक्तः परंप्रतेन गच्छामीति सवेपथुः । द्रुवन्नेवं ययौ शाघ्रमाकर्षन्दयितां करे  
कर्षतस्तां ततो भाज्यासुकुमारीश्रमातुराम् । महासादण्डकाष्टेनताडयामासकौशिकः

तां तथा ताडितां दृष्ट्वा हरिश्चन्द्रो महीपतिः ।

गच्छामीत्याह दुःखार्तो नान्यत्किञ्चिदुदाहरत् ॥ ६१ ॥

अथ विश्वे तदा देवाः पञ्च प्राहुः कृपालवः ।

विश्वामित्रः सुपात्रोऽयं लोकान् कान् समवाप्स्यति ॥ ६२ ॥

येनाऽयं यज्वनां श्रेष्ठःस्वराज्याद्वरोपितः । कस्य वा श्रद्धयापूतंसुतंसोममहाध्वरे  
पीत्वा वयं प्रयास्यामो मुदं मन्त्रपुरःसरम् ॥ ६३ ॥

पक्षिण ऊचुः ।

इति तेषां वचःश्रुत्वा कौशिकोऽतिरुपान्वितः ।

शशाप तान् मनुष्यत्वं सर्वे यूयमवाप्स्यथ ॥ ६४ ॥

प्रसादितंच तैः प्राह पुनरेवमहामुनिः । मानुपत्वेऽपि भवतां भवित्रीनैव सन्ततिः  
न दारसङ्ग्रहश्चैव भविता न च मत्सरः । कामक्रोधविनिर्मुक्ताभविष्यथ सुराः पुनः  
ततोऽवतेरुरंशैः स्वैर्देवास्ते कुरुवेशमनि । द्रौपदीगर्भसम्भूताः पञ्च वै पाण्डुनन्दनाः  
एतस्मात्कारणात्पञ्च पाण्डवेया महारथाः । नदारसङ्ग्रहंप्राताःशापात्तस्यमहामुनेः  
एतत्ते सर्वमाख्यातं पाण्डवेयकथाश्रयम् । प्रश्नंचतुष्टयंगीतं किमन्यच्छोतुमिच्छसि  
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे द्रौपदेयोत्पत्तिवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

## अष्टमोऽध्यायः

हरिश्चन्द्रोपाख्यानवर्णनम्

जैमिनिव्याच

भवद्विरिदमाख्यात यथाप्रथमनुव्रमात् । महत् कर्तृहृत्पुत्रमस्ति हरिश्चन्द्रकथाप्रति  
श्रद्धो महात्मना तेन प्राप्तं वृष्टमनुत्तमम् । कश्चित् सुखमनुमान तादृशेषद्विज्ञोत्तमा  
पक्षिण ऊचु

विश्वामित्रवच श्रुत्वा स राजाप्ययोरौशनै । शंभ्ययाऽनुगतोऽपि धीमार्ययापालपुत्रया  
स गन्वापमुखापालोद्विष्यां वाराणसीपुरीम् । नेषामनुप्यभोग्येतिशृङ्खलाणेपतिग्रह  
जगामपद्भ्यादुध्वान्तं सह पत्न्याऽनुकूल्या । पुरीप्रवेशदृशे विश्वामित्रमुपस्थितम्  
तं दृष्ट्वा समनुप्राप्तं चितयाचनतोऽभवत् । प्राह धैवाञ्जलिं वन्द्या हरिश्चन्द्रो महामुनिम्  
इमप्राणा सुतध्यायमिर्यं पत्नीमुने' मम । येनने वृत्त्यमस्तयाशुतदुष्टहाणाध्यमुत्तमम्  
यद्वाऽन्यत् कायमस्माभिस्तदनुमानुमहंसि ॥ ८ ॥

विश्वामित्र उवाच

पूज स मासोराज्ये' धीयता ममदक्षिणा । राजमूयनिमित्तं हिस्मयते स्थवचोयदि  
हरिश्चन्द्र उवाच

प्रश्नप्रचैवसम्पूर्णेमासोऽग्लानतपोधन । तिष्ठत्येतद्दिनाद्धैयत्तत् प्रतीक्षस्वमाधिरम्  
विश्वामित्र उवाच

एवमस्तुमहाराज' आगमिष्याम्यह पुन । शापतव प्रदास्यामि नवेदत् प्रदास्यति  
पक्षिण ऊचु

इत्युक्त्वा प्रययौ विप्रो राजा चाऽचिन्तयत्तदा ।

कथमस्मै प्रदास्यामि दक्षिणा या प्रतिश्रुता ॥ १२ ॥

तुन पुष्टानिमित्राणिकुतोऽथ साम्प्रतमम । प्रतिग्रह प्रदुष्टो मे नाह यायामघ कथम्

किमु प्राणान् विमुञ्चामि कां दिशं याम्यकिञ्चनः ।

यदि नाशं गमिष्यामि अप्रदाय प्रतिश्रुतम् ॥ १४ ॥

ब्रह्मस्वहृत्कृमिःपापो भविष्याम्यध्रमाध्रमः । अथवाप्रेष्यतांयास्येधरमेवात्मविक्रयः

पक्षिणं ऊचुः

राजानं व्याकुलं दीनं चिन्तयानमधोमुखम् । प्रत्युवाच तदा पत्नीवाप्यगद्गदयागिरा

त्यज चिन्तां महाराज!स्वसत्यमनुपालय । श्मशानवद्वर्जनायो नरः सत्यवहिष्कृतः

नातः परतरं धर्मं वदन्ति पुरुषस्य तु । यादृशं पुरुषव्याघ्र ! स्वसत्यपरिपालनम्

अग्निहोत्रमधीतं वा दानाद्याश्चाखिलाः क्रियाः ।

भजन्ते तस्य वैफल्यं यस्य चाक्षमकारणम् ॥ १६ ॥

सत्यमत्यन्तमुदितं धर्मशास्त्रेषुधीमताम् । तारणाया नृतं तद्वत्पातनायाकृतात्मनाम्

सप्ताश्वमेधानाहृत्य राजसूयञ्च पार्थिवः । कृतिर्नामच्युतःस्वर्गादिसत्यवचनात्सकृत्

राजन् ! जातमपत्यं मे इत्युत्त्वा प्ररुदह । वाप्याम्बुप्लुतनेत्रान्तामुवाचेदंमहीपतिः

हरिश्चन्द्र उवाच

विमुञ्च भद्रे ! सन्तापमयंतिष्ठति बालकः । उच्यतां चक्रुकामासियद्वात्वं गजगामिनि

पत्न्युवाच

राजन् ! जातमपत्यं मे सतांपुत्रफलाःस्त्रियः । समांप्रदायवित्तेन देहिविप्रायदक्षिणाम्

पक्षिण ऊचुः

एतद्वाक्यमुपश्रुत्य ययौमोहंमहीपतिः । प्रतिलभ्यच्चसञ्ज्ञांसविललापाऽतिदुःखितः

महद्दुःखमिदंभद्रे! यत्त्वमेवं ब्रवीषि माम् ।

किन्तवस्मितसंलापा मम पापस्य विस्मृताः ॥ २६ ॥

हा हा ! कथं त्वया शक्यं चक्रुमेतत् शुचिस्मिते !

दुर्व्वाच्यमेतद्वचनं कर्तुं शक्तोम्यहं कथम् ॥ २७ ॥

इत्युत्त्वा सनरश्रेष्ठोधिगिधित्यसकृद्ब्रुवन् । निपपातमहीपृष्ठेमूर्च्छयाभिपरिप्लुतः

शयानं भुवि तं दृष्ट्वा हरिश्चन्द्रं महीपतिम् । उवाचेदं सकरुणं राजपत्नी सुदुःखिता

पन्थुवाच

हामहाराज'कस्येदमपठ्यातमुपस्थितम् । यन्वतिपतितोभूर्मौराट्टुवास्तरणोचित  
येन फोटप्रगोवित्त विप्राणामपरिवितम् । सप्यपृथिवानापोभूर्मास्वपितिमेपति  
हाकष्ट किं तवानेन हतदेव'महाक्षिता । यद्विन्द्रोपेन्द्रतुन्पोऽपतीत प्रस्वापनीदशाम्  
इत्युत्तना सापिसुधोषामृष्टिठनानिपपातह । मत्तृदु रमहामारेणासद्येननिर्षाडिता  
तौतयापतितौमृमावनायौपिनरौशिशु । दृष्ट्वात्यन्तमुधाविष्ट प्राहयाक्यसुदु क्षित  
तात तात ददस्वाभ्रमग्नाम्य भाजन दद । युग्म बलवता जाताजिह्वाप्रशुष्यते तथा  
पक्षिण ऊचु

सवतस्मिन्नन्तरेप्राप्तोविश्वामित्रोमहानपा । दृष्ट्वातुनहरिश्चन्द्रपतिनभुविमूर्च्छितम्  
स चारिणा समभ्युक्ष्य राजानमिदमब्रवीत् ।

उनिष्टोत्तिष्ठ राणेन्द्र! ता ददस्वेष्टदक्षिणाम् ॥ ३७ ॥

ऋण धारयतो दुःखमहस्यहनि षड्दते । आप्याप्यमान स तदा हिमतीर्थेन चारिणा  
धवाप्य चतना राजा विश्वामित्रमवेष्ट्य च । पुनर्मोह समापेदसचक्रोधयथामुनि  
स समाभ्वाह्य राजान धाक्चप्राह द्विजोत्तम । दीयतादक्षिणासाप्रयदिधर्ममवेक्षसे  
सत्येनाऽक प्रतपति सत्येतिष्ठतिमदिनी । सत्यञ्जोरपरो धर्मं स्वर्गं सत्येप्रतिष्ठित  
ब्रह्ममेघसहस्र च सत्यञ्ज तुलया धृतम् । ब्रह्ममेघसहस्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते  
अथवा किं मर्मतेन साध्या प्रोक्तेन कारणम् । अनायं पापसद्वृत्ते भूरेचाहतवादिनि  
त्वयि रानि प्रभवति सद्भाव धूयतामयम् ।

अथ मे दक्षिणा रात्रन्न दास्यति भवान् यति ॥ ४४ ॥

अस्नाचल प्रयातेऽर्कं शप्स्यामि त्वां ततो धुमम् ।

इत्युक्त्वा स यथो विप्रो राजा चासीद्द्वयातुरः ॥ ५० ॥

का निगभूतोऽधमो निःस्वो नृशसधनितादित ।

मायपाम्य भूयः प्राहेद् क्रियता चन्वन मम ॥ ४९ ॥

रा शापानलनिर्दग्ध पञ्च-बभुवयास्यसि । स तथाबोधमानस्तुराजापन्यापुन पुन

प्राह भद्रे करोम्येव विक्रयं तव । निर्वृणः । नृशंसैरपियत्कृत् नशक्यंतत्करोम्यहम्  
यदिमे शक्यतेवाणी वचतुमीदृक् नुदुवचः । एवमुक्त्वाततोभायांगत्वानगरमातुरः  
वाष्पापिहितकण्टाक्षस्ततो वचनमब्रवीत् ॥ ४६ ॥

राजोवाच

भोभो नागरिकाःसर्वेशृणुध्वंचचनंमम । किं मांपृच्छथकस्त्वंभोनृशंसोऽहममानुषः  
राक्षसो वाऽनिकठिनस्ततः पापतरोऽपिवा ।  
विक्रेतुं दयितां प्राप्नो यो न प्राणांस्त्यजाम्यहम् ॥ ५१ ॥  
यदि वः कस्यचित् कार्यं दास्या प्राणेष्ट्या मम ।  
स ब्रवीतु त्वरायुक्तो यावत् सन्धास्याम्यहम् ॥ ५२ ॥

पश्चिण ऊचुः

अथ वृद्धो द्विजः कश्चिदागत्याह नराधिपम् । समर्पयस्व मेदासीमहं क्रेता धनप्रदः  
अस्ति मे वित्तमस्तोकंसुकुमारीचमेप्रिया । गृहकर्मनशक्नोति कर्तुं मस्मात्प्रयच्छमे  
कर्मण्यतावयोरूपशीलानां तव योपितः । अनुरूपमिदं वित्तं गृहाणार्पय मेऽवलाम्  
एवमुक्तस्य विप्रेण हरिश्चन्द्रस्य भूपतेः । व्यदीर्यत मनोदुःखान्नचनंकिञ्चिदब्रवीत्  
ततः स विप्रो नृपतेर्वल्कलान्ते दृढं धनम् । वदुध्वा केशेष्वधादायनृपपत्नीमकर्षयत्  
रुरोद ( रोहिताश्वोऽपि ) रहितास्योऽपि दृष्ट्वा कृष्टां तु मातरम् ।  
हस्तेन वस्त्रमाकर्षन् काकपक्षधरः शिशुः ॥ ५८ ॥

राजपत्न्युवाच

मुञ्चाऽऽर्यं मुञ्च तावन्मां यावत् पश्याम्यहं शिशुम् ।  
दुर्लभं दर्शनं तात पुनरस्य भविष्यति ॥ ५९ ॥  
पश्यैहि वत्स ! मामेवं मातरं दास्यतां गताम् ।  
मां मास्प्रार्क्षीं राजपुत्र अस्पृश्याहं तवाऽधुना ॥ ६० ॥

ततः स बालःसहसादृष्ट्वाकृष्टान्तुमातरम् । समभ्यधावदस्येतिरुदन्साल्नाचिलेक्षण  
त्मागतं द्विजः क्रेताबालमभ्याहनत्पदा । वदंस्तथापिसोऽभ्येतिनैवामुञ्चतमातरम्

## राजपत्न्युवाच

प्रसादं कुटुमे शाय' क्षीर्णाभ्येमशुबालकम् । श्रीतापिनाहंमपतोपिनेनकार्यंसाधिका  
इत्थ ममात्पमाम्याया प्रसादसुमुखोभव । मां संयोजयकालेन घत्सेनेषपयस्विनीम्

## ब्राह्मण उवाच

गृह्यावाचितमेतत्ते दीयता बालको मम । स्त्रीपुंसोर्धर्मशास्त्रज्ञै इतमेव हि येतमम्

शान सहस्र लक्षञ्च कोटिमूल्य तथा परैः ॥ ६५ ॥

## पक्षिण ऊचु

सर्पय तस्य तद्विस्त बहुष्योत्तरपटे तत । प्रगृह्य बालक मात्रा सहैकस्थमयन्धयत्  
नीयमानांतुनोदृष्टामार्यापुत्रोसपार्षिष । विललापसुदु षासोनि भ्रस्योष्णपुन पुन  
या न वायुनेंघादित्यानेन्दुनं च पृथग्जत । दृष्टयन्त पुरा पत्नी सेयंदासोत्वमागता  
सूर्यवशप्रसृतोऽयं सुदुमारकराङ्गुलि । सम्प्राप्तोविक्रयबालोधिद्मामस्तुसुदुमेतिम्  
हा प्रिये' हा शिशो' घत्स' ममानार्यस्य दुर्नयं ।

द्वैवाधीना दशा प्राप्ते न मृतोऽस्मि तथापि धिक् ॥ ७० ॥

## पक्षिण ऊचु

एव विलपतो राज्ञ सविप्रोऽन्तरधीयत । वृक्षगोहादिभिस्तुङ्गस्तावादापत्वरान्वित-  
विश्वामित्रस्तत प्राप्ते नृपं वित्तमयाचत । तस्मैसमर्पयामासहरिश्चन्द्रोऽपितद्वनम्  
तद्विस्त स्तोत्रमालोक्य दारविक्रयसम्भयम् ।

शोकामिभूत राजान कुपित कौशिकोऽधर्वात् ॥ ७३ ॥

क्षत्रबन्धो' ममेमा त्व सट्टरीयजदक्षिणाम् । मन्यसेयदितत्क्षिप्रपश्यत्वमेबलपरम्  
तपसोऽत्रसुतमस्यब्राह्मण्यस्यामलस्य च । मत्प्रभावस्यचोप्रस्यशुद्धस्याध्ययनस्य च  
अन्या दास्यामि भगवन् । काल कश्चित् प्रतीक्ष्यताम् ।

साम्प्रतं नास्ति विक्रीता पत्नी पुत्रश्च बालक ॥ ७५ ॥

## विश्वामित्र उवाच

चतुर्भाग स्थितो योऽय दिवसस्यनरात्रिप । एषत्तप्रतीक्ष्योमेवतध्यनोत्तरत्वया

पक्षिण ऊचुः

तमेवमुक्त्वा राजेन्द्रं निष्टुरंनिघृणं वचः । तदादाय धनं तूर्णं कुपितः कौशिकोययी  
विश्वामित्रे गते राजा भयशोकाब्धिमध्यगः ।

सर्वाकारं चिनिश्चित्य प्रोवाचोच्चैरधोमुखः ॥ ७६ ॥

वित्तकीतेनयोह्यर्थोमयाप्रेष्येणमानवः । सत्रवीतु त्वरायुक्तो यावत्तपति भास्करः  
अथाजगाम त्वरितो धर्मश्चण्डालरूपधृक् । दुर्गन्धोविकृतोरुक्षःशमश्रुलोदन्तुरोघृणी  
कृष्णो लम्बोदरः पिङ्गरुक्षाक्षः परुषाक्षरः । गृहीतपक्षिपुञ्जश्च शवमाल्यैरलङ्कृतः  
कपालहस्तो दीर्घास्यो भैरवोऽतिघदन मुहुः ।

श्वगणाभिवृतो घोरो यष्टिहस्तो निराकृतिः ॥ ८३ ॥

चण्डाल उवाच

अहमर्थोत्वयाशीघ्रं कथयस्वात्मवेतनम् । स्तोकेन बहुना घाऽपि येन वै लभ्यते भवान्

पक्षिण ऊचुः

तं तादृशमथालक्ष्य क्रूरद्वष्टिं सुनिष्ठुरम् । घदन्तमतिदुःशीलं कस्त्वमित्याह पार्थिवः

चण्डाल उवाच

चण्डालोऽहमिहाख्यातः प्रवीरेतिपुरोत्तमे । विख्यातो वध्यवधको मृतकम्बलहारकः

हरिश्चन्द्र उवाच

नाहं चण्डालदासत्वमिच्छेयं सुविगर्हितम् । वरंशापाग्निनादग्धोनचण्डालचशंगतः

पक्षिण ऊचुः

तस्यैवं घदतः प्राप्तो विश्वामित्रस्तपोनिधिः । कोपामर्षचिवृत्ताक्षः प्राहचेदं नराधिपम्

विश्वामित्र उवाच

चण्डालोऽयमनल्पं ते दातुं वित्तमुपस्थितः । कस्मान्नदीयते मह्यमशोपायद्दक्षिणा

हरिश्चन्द्र उवाच

भगवन् ! सूर्यवंशोत्थमात्मानं वेद्मि कौशिक ! ।

कथं चण्डालदासत्वं गमिष्ये वित्तकामकः ॥ ६० ॥



विश्वामित्र उवाच

घण्डालवित्तस्यमात्मविश्रयज्ञं मम । नप्रदास्यसि कालेनशब्द्यामिन्वामसशयम्  
पक्षिण ऊचुः

धन्द्रस्तनोराजाचिन्तावस्थितजीविन । प्रसीदतिघटन् पादादृपेजं प्राद्विद्ध  
दासोऽस्वपातोऽस्मि भीतोऽस्मि त्वद्गुणश्च विशेयत ।

कुट्ट प्रसादं विप्रर्षे ! कण्ठघण्डालसद्वर ॥ ६३ ॥

यं वित्तगोपेण सर्वकर्मकरो घरा । तवैवमुनिराहूँलं प्रेष्यधित्तानुवसकं ॥ ६४

विश्वामित्र उवाच

प्रथोमममगान् घण्डालायतनोमया । दासभायमनुप्राप्तो दत्तो वित्ताहुं देन पै  
पक्षिण ऊचुः

मुने तदातेन श्रपाकोहृष्टमानस । विश्वामित्रायतद्वृद्धय दत्त्वाऽदृष्ट्यातरेभ्यरम्  
प्रहारसम्भ्रान्तमनावव्याकुलमिन्द्रियम् । इष्यन्नुच्चियोगार्तमनथश्रिजपत्तनम्  
धन्द्रस्तनो राजा घमघण्डालपत्तने । प्रातमध्याह्नसमये स्नायञ्जैतदगायत ॥  
वर्दानमुक्त्वा दृष्ट्वा बालदीनमुप पुर । मा स्मरत्यसुखाविष्टामोघविष्यतिनौट्य  
उपात्तचित्तो विप्राय दत्त्वा वित्तमतोऽधिकम् ।

न सा मा मृगशावाक्षी वेत्ति पापतरं हृतम् ॥ १०० ॥

पनाश सुहृत्त्यागोमार्यात्तनयविश्रय । प्राप्ता घण्डालता चेषमदो दुःखपरम्परा  
स निरसत्रित्य सस्मारदयित्सुनम् । मार्वाञ्जात्मसमाधिणाहतसर्धंस्वभ्रानुर  
पचित्त्वथ कालस्यमृतचलापहारक । हरिश्चन्द्रोऽमयद्राजारमरशाने तद्वशानुग  
डालेनानुशिष्टश्च मृतचैलापहारिणा । शवागमनमन्विच्छिहृ तिष्ठ दिवानिशम्  
राज्ञेऽपि देयञ्च षड्भागा तु शव प्रति । त्रयस्तुममभागाः स्युर्हीमागीतववेतनम्  
प्रतिसमादिष्टो जगामशयमन्दिरम् । दिशानुदक्षिणायत्रचाराणस्यांस्थिततदा  
गान घोरसनाद् शिवाशतसमाकुलम् । शवमौलिसमाकीर्णं दुर्गन्धं बहुधूमकम्  
प्राचभूतपैतालडाकिनीयक्षसङ्कुलम् । शृङ्गोमायुसद्दीर्घं श्ववृन्दपरिवारितम्

अस्थिसङ्घातसङ्कीर्णं महादुर्गन्धसङ्कुलम् । नानामृतसुहृन्नादरौद्रकोलाहलायुतम्

हा पुत्र ! मित्र ! हा वन्धो ! भ्रातर्वत्स ! प्रियाद्य मे ।

हा पते ! भगिनि ! मातरहा मातुल ! पितामह ! ॥ ११० ॥

मातामह ! पितः ! पौत्र ! क गतोऽस्येहि वान्धव ! ।

इत्येवं वदतां यत्र ध्वनिः संश्रूयते महान् १११ ॥

ज्वलन्मांसवसामेदच्छमच्छमितसङ्कुलम् ॥ ११२ ॥

अर्द्धदग्धाःशवाःश्यामा विकसद्दन्तपङ्क्तयः ।

हसन्तीवाग्निमध्यस्थाः कायस्येयं दशा त्विति ॥ ११३ ॥

अनेश्चट्टचटाशब्दो वायसामस्थिपङ्क्तिषु । वान्धवाक्रन्दशब्दश्चपुक्त्रसेषु प्रहर्षजः

गायतां भूतवेतालपिशाचगणरक्षसाम् । श्रूयते सुमहान् घोरःकल्पान्तइव निःस्वनः

महामहिपकारीपगोशकृद्राशिसङ्कुलम् । तदुत्थभस्मकूटैश्च वृत्तंसास्थिभिरुन्नतैः ॥

नानोपहारस्त्रग्दीपकाकविक्षेपकालिकम् । अनेकशब्दबहुलं श्मशानं नरकायते ॥

सवह्निगर्भैरशिवैः शिवारुतैर्निनादितं भीषणरावगह्वरम् ।

भयं भयस्याप्युपसञ्जनैर्भृशं श्मशानमाक्रन्दविरावदारुणम् ॥

स राजा तत्र सम्प्राप्तो दुःखितः शौचनोद्यतः ॥ ११८ ॥

हा भृत्या मन्त्रिणो विप्राः क तद्राज्यं विधे ! गतम् ॥ ११९ ॥

हा शैव्ये ! पुत्र ! हा बाल ! मां त्यक्त्वा मन्दभाग्यकम् ।

विश्वामित्रस्य दोषेण गताः कुत्रापि ते मम ॥ १२० ॥

इत्येवं चिन्तयंस्तत्र चण्डालोक्तं पुनः पुनः ।

मलिनो रूक्षसर्वाङ्गः केशवान् गन्धवान् ध्वजी ॥ १२१ ॥

लकुटी कालकल्पश्च धावंश्चापि ततस्ततः ।

अस्मिन् शवइदं मूल्यं प्राप्तं प्राप्स्यामि चाऽप्युत ॥ १२२ ॥

इदंममइदंराशेमुख्यचण्डालके त्विदम् । इतिधावनदिशोराजाजीवन्योन्यन्तरं गतः

जीर्णकर्पटसुग्रन्थिकृतकन्थापरिग्रहः । श्विताभस्मरजोलिप्तमखवाहदराङ्घ्रिकः ॥

नानामिदोषसामञ्जलिप्रपाण्यङ्गुलि श्वसन । नानाशब्दोदनवृत्ताहारतृप्तिपरायण ॥  
 तदीयमाल्यसश्रेयवृत्तमस्नकमण्डन । न रात्रौ न दिवा शोते हा हेति प्रथमं मुहु  
 एवं द्वादशमासास्तु नीता शतसमोपमा ।

स कदाचिन्मृपध्रेष्ठ भ्रान्तो यन्धुवियोगवान् ॥ १२७ ॥

निद्राभिभूतोऽक्ष्णो निश्चेष्ट सुप्त एव च । तत्रापि शयनीये स दृष्टवान्मुक्त महत् ॥  
 श्मशानाभ्यासयोगेन दैवस्य यत्प्रवृत्तयः । अन्यदेहेनदत्त्वात्तु शुरवे शुरुदक्षिणाम्  
 तदाद्वादशवर्षाणि हु कदानात्तुनिष्ठति । आत्मानं सददर्शाद्यपुलकसीगमसम्मधम्  
 तत्रस्यध्याऽप्यसौ राजा सोऽचिन्तयदिद् तदा ।

इतो निष्क्रान्तमात्रो हि दानधर्मं करोम्यहम् ॥ १३१ ॥

अनन्तरं सज्जानस्तु तदापुलकसयात् ॥ श्मशानमृतसम्स्कारवरणेषु सदीप्तत ॥  
 प्राप्ते तु मन्त्रे धर्मं श्मशानेऽथ मृतो द्विज । आनीतोऽयन्धुमिदं दृष्टेनतत्राधनोगुणी  
 मूर्त्यार्धिता तु तेनाऽपि परिभूतास्तु ब्राह्मिणाः ।

ऊतुस्ते ग्राह्यणास्तत्र विभ्रामिप्रस्य चेष्टितम् ॥ १३४ ॥

यापिष्टमशुभं कर्म कुरु त्वं पापकायक । हरिश्चन्द्रपुरातजा विभ्रामिप्रेण पुलकस-  
 हृत पुण्यदिनाशनं घ्राह्यणास्यापनाशनात् । यदा न क्षमतेतेषांते स शमो कया तदा  
 गच्छत्ये नरकं घोरमधुनैव नराधम । इत्युक्तमात्रे वचने स्थजन्स्य स नृपस्तदा  
 अपश्यधमदूतान् घेषाशदन्तान्मपापदान् । ते सङ्गृहीतमागमाननीयमानतदाथलान्  
 पश्यति स्मभृशं विप्रो हामातपितरधमे । यद्यवादीसनरके तैलद्रोण्यां निपातित  
 ब्रह्मणे पान्दमानस्तु शुरुधाशमित्प्यथ । अन्धे तत्रमिदुःपार्तं पृथशोजितमोजन  
 सप्तपरं मृतागमानं पुनस्तथे ददश द । दिनदिनतु नरके दहते पच्यतेऽन्यतः ॥  
 विद्यते क्षीयतेऽन्यत्र मापते पाठयतेऽन्यतः ।

क्षार्यते क्षीयतेऽन्यत्र शीतघाताहतोऽन्यतः ॥ १४२ ॥

एकं दिनं वर्षाशनप्रमाणं नरकेऽमघत् । तथा वर्षाशनं तत्र धावितं नरके मटे ॥  
 ततो निपातितो भूमौ विष्टायी श्वा व्यज्ञापय ।

वान्ताशी शीतदग्धश्च मासमात्रे मृतोऽपि सः ॥ १४४ ॥

अथापश्यत् खरं देहं हस्तिनं वानरं पशुम् ।

छागं विडालं कङ्कं च गामर्वि पक्षिणं कृमिम् ॥ १४५ ॥

मत्स्यं कूर्मवराहश्चश्वाविधं कुक्कुटंशुकम् । शारिकांस्थावरांश्चैव सर्पमन्यांश्च देहिनः  
दिवसेदिवसे जन्म प्राणिनः प्राणिनस्तदा । अपश्यद्दुःखसन्तप्तोदिनं वर्षशतं तथा  
एवं वर्षशतं पूर्णं गतं तत्र कुयोनिषु । अपश्यच्च कदाचित् सराजाततस्वकुलोद्भवम्  
तत्र स्थितस्य तस्यापि राज्यं द्यूतेनहारितम् । भार्याहता च पुत्रश्च सच्चैकाकीवनंगतः  
तत्रापश्यत् ससिंहवैव्यादितास्यं भयावहम् । विभक्षयिषुसायातं शरभेण समन्वितम्  
पुनश्च भक्षितः सोऽपि भार्यां शोचितमुद्यतः ।

हा शैव्ये ! क्व गतास्यद्य मामिहापास्य दुःखितम् ॥ १५१ ॥

अपश्यत् पुनरेवापि भार्यां स्वांसहपुत्रकाम् । त्रायस्वत्वं हरिश्चन्द्र ! किं द्यूतेन तव प्रभो  
पुत्रस्ते शोच्यतां प्राप्तो भार्यया शैव्यया सह । सनापश्यत् पुनरपि धावमानः पुनः पुनः  
अथापश्यत् पुनरपि स्वर्गस्थः सनराधिपः । नीयते मुक्तकेशीसादीना चिवसनावलात्  
हाहावाक्यं प्रमुञ्चन्ती त्रायस्वेत्यसकृत्स्वना ।

अथापश्यत् पुनस्तत्र धर्मराजस्य शासनात् ॥ १५५ ॥

आक्रन्दन्त्यन्तरिक्षस्था आगच्छेह नराधिप ! विश्वामित्रेण विज्ञप्तो यमो राजंस्तवार्थतः  
इत्युत्त्वा सर्पपाशैस्तु नीयते वलचद्विभुः । श्राद्धदेवेन कथितं विश्वामित्रस्य चेष्टितम्  
तत्रापि तस्य विकृतिर्नाधर्मोत्था व्यवर्द्धत ।

एताः सर्वा दशास्तस्य याः स्वप्ने सम्प्रदर्शिताः ॥ १५८ ॥

सर्वास्तास्तेन सम्भुत्त्वा यावद्वर्षाणि द्वादश । अतीते द्वादशे वर्षे नीयमानो भटैर्वलात्  
यमं सोऽपश्यदाकारादुवाच च नराधिपम् ।

विश्वामित्रस्य कोपोऽयं दुर्निवार्यो महात्मनः ॥ १६० ॥

पुत्रस्य ते मृत्युमपि प्रदास्यति सकौशिकः । गच्छत्वं मानुषं लोकं दुःखशेषं च भुङ्क्ष्व चै  
गतस्य तत्र राजेन्द्र ! श्रेयस्तव भविष्यति ॥ १६१ ॥

ध्यर्तते द्वादशे वर्षे दुःखस्थान्तेतराधिप । अन्तरिक्षाय पतितो यमदूतैः प्रणोदितः  
 पतितो यमलोकाच्चविशुद्धोमयसम्भ्रमात् । अहोक्ष्टमितिघ्यात्घातनेक्षारघसेघनम् ।  
 स्वप्नेदुःखमहद्दृष्टंयस्थान्तोनोपलभ्यने । स्वप्नेदृष्टमयायनुकिन्तुमेद्वादशा समा-  
 गतेत्यष्टच्छत्रस्थान्पुञ्जसास्तुसम्भ्रमात् । ने युध्वेघित्तत्रम्याएषमेवापरैऽग्रवन्  
 भ्रुत्वा दुःखी तदा राजा देवान् शरणमधीयान् ।

स्थमित् कुघन्तु मे देवा शैव्याद्या बालकस्य च ॥ १६६ ॥

नमो धर्माय महते नमःशृष्णाय वेधसे । परावराय शुद्धाय पुराणापाय्ययाय च ॥  
 नमो गृहस्पते'नुम्य नमस्ते घासवाय च । एवमुत्वा स राजा नुयुक्तः पुत्रसकर्मणि  
 शयाना मूल्यकरणे पुनर्नष्टमृतिर्यथा । मलिनो जटिलःशृष्णोल्कुटी विह्वलो नृप  
 नेवपुत्रोत्तमायातु तन्मयैस्मृतिगोचरे । नष्टोत्साहोराज्यनाशान्दमशानेतिघसंस्तदा  
 अयात्रगाम स्वमुत्तमृत्तमादाय लापिनी । भार्या तस्यनरेन्द्रस्य सपदष्टं दिवालकम्  
 हावत्स'हापुत्र'शिशो'इत्येववदतीमुदु । अशा वियणाधिमना पाशुष्यस्तशिरोरुहा  
 राजपशुवाच

हा राजन्नाद्य बाल त्वं पश्यसीम महीतले । रममाण पुरा दृष्ट इष्ट पुष्टादिना मृतम्  
 तस्याविलापशब्दम्राकण्य सनराधिप । जगाम त्वरितोऽनेतिभवितामृतकण्यल  
 संतारोरुदतीमार्यान्ताभ्यजानात्तपार्थिव । चिरप्रघाससन्तप्ता पुनर्जातामिधावलाम्  
 सापि तं धारुकेशान्त पुरादृष्टा जटालकम् । नाम्यजानान्नृपसुता शुष्कवृक्षोपम नृपम्  
 सोऽपि शृष्णपट्टेवाल दृष्ट्वायाचि'वर्षाडितम् । नरेन्द्रलक्ष्णोपेत चिन्तामाप नरेश्वर-  
 तस्यास्य चन्द्रविग्राम सुभ्र रम्य समुन्नसम् ।

नीलाकेशा कुञ्जिताश्च समा दीर्घास्तरङ्गिता ॥ १७८ ॥

राजावनेत्रयुगलो विम्बोष्टपुटममृत । घनुदैन्द्रभनु किष्कुर्दीर्घाम्योर्दीर्घबाहुश्च  
 चतुर्लोक करोम'स्ययवयुक् चवपवत । शिरालुपादौगम्भीर'सूक्ष्म'चक्रिबलीधर-  
 अहोक्ष्ट नरेन्द्रस्यकस्याप्येयकुलेशिरु । जानोनीत'वृत्तान्तनफामप्याशादुरात्मना  
 एव दृष्टा हि मे बाल मानुरु'सङ्गशापिनम् ।

स्मृतिमभ्यागतो बालो रोहितास्यो ( श्वो ) ऽब्जलोचनः ॥ १८२ ॥

सोऽप्येतामेव मे घत्सो वयोऽवस्थामुपागतः ।

नीतो यदि न घोरेण कृतान्तेनात्मनो वशम् ॥ १८३ ॥

राजपत्न्युवाच

हावत्स! कस्य पापस्य अपश्यानादिदं महत् । दुःखमापतितं घोरेण स्यान्तो नोपलभ्यते

हा नाथ ! राजन् ! भवता मामनाश्वस्य दुःखिताम् ।

क्वापि सन्तिष्ठता स्थाने विश्रब्धं स्थायते कथम् ॥ १८५ ॥

राज्यनाशः सुहृत्त्यागो भार्यातनयचिक्रयः । हरिश्चन्द्रस्य राजर्षेः किञ्चिधे! न कृतं त्वया

इति तस्या वचः श्रुत्वा राजा स्वस्थानतश्च्युतः ।

प्रत्यभिज्ञाय दयितां पुत्रञ्च निधनं गतम् ॥ १८७ ॥

कैपा नामगृहे युक्ता मम योपिहरा भवेत् ।

बालश्च स मृतः कः स्यादिति राजा विचारयन् ॥ १८८ ॥

कष्टं शैव्येयमेवा हि स बालोऽयमितीरयन् । स्रोद दुःखसन्तप्तो मूर्च्छामभिजगाम च

सा चतंप्रत्यभिज्ञायतामवस्थामुपागतम् । मूर्च्छितानिपपातात्तार्त्तानिश्रेष्ठाधरणीतले

चेतः संप्राप्य राजेन्द्रो राजपत्नीचतौसमम् । विलेपतुःसुसन्तप्तौ शोकभारावर्षाडितौ

राजोवाच

हा वत्स! सुकुमारं ते स्वक्षिभ्र्नासिकालकम् । पश्यतो मेमुखं दीनं हृदयं किं दीर्घ्यते

तात! तातेति मधुरं द्रुवाणं स्वयमागतम् । उपगृह्य वदिष्ये कं वत्स! वत्सैति सौहृदा

कस्य जानुप्रणीतेन पिङ्गेन क्षितिरेणुना । ममोत्तरीयमुत्सङ्गं तथाङ्गं मलमेप्यति

अङ्गप्रत्यङ्गसम्भूतो मनोहृदयनन्दनः ।

मया कुपित्रा हा वत्स विक्रीतो येन वस्तुवत् ॥ १९५ ॥

हृत्वा राज्यमशेषं मे सवान्धवधनं महत् । दैवाहिना नृशंसेन दष्टो मे तनयस्ततः ॥

अहं दैवाहिदष्टस्य पुत्रस्याननपङ्कजम् । निरीक्षन्नपि घोरेण विषेणान्ध्रीकृतोऽधुना

एवमुक्त्वा तमादाय बालकं वाप्यगदष्टः । परिष्वज्य च निश्रेणोमर्त्तगणितगण =

## राजपत्न्युवाच

अथ स पुहयव्याप्त स्वरेणैवोपलक्ष्यते । विद्वज्जनमनश्चन्द्रो हरिश्चन्द्रो न सशय  
 तथास्य नासिका तुङ्गा मप्रतोऽधोमुख गता ।  
 दन्ताश्च मुकुलप्रख्या कषातकीर्त्तमहात्मन ॥ २०० ॥  
 श्मशानमागत कस्मादद्यै स नरेश्वर । अपहाय पुत्रशोकं सापश्यत् पतितपतिम्  
 प्रहृण विस्मिता दीना भर्तृपुत्राधिपीडिता ।  
 धीक्षन्ती सा ततोऽपश्यत् भर्तृदण्डं जुगुप्सितम् ॥ २०२ ॥  
 श्वपाकार्हमतो मोह जगामापतलोचना । प्राप्य घेतश्च शनकै समद्गदमभापत ॥  
 धिक्त्वा देवातिकरुण निर्मयादं जुगुप्सितम् ।  
 येनायममप्रख्यो नीतो राजा श्वपाकताम् ॥ २०४ ॥  
 राज्यताश सुहृत्याग भार्यातनपधिक्रयम् ।  
 प्रापयित्वाऽपि नो मुक्तश्चण्डालोऽयदृतो नृप ॥ २०५ ॥  
 हा राजन् ! जातसन्तापामित्य मा धरणीतलात् ।  
 उत्थाप्य नाद्य पयङ्कमारोहेति किमुच्यते ॥ २०६ ॥  
 नाद्य पश्यामि ते छत्र शृङ्गारमयवा पुन । धामरव्यजनञ्चापिकोऽयविधिविषयय  
 यस्याग्ने मज्जत पूर्वं राजानो भृयतागता । स्वोत्तरीयैरुर्ध्वन्तनीरजस्वमहीतलम्  
 सोऽय कपालसलग्रयदीघटनिरन्तरे । सृननिर्माल्यसूत्रान्तगूढकेशे सुदारुणे ॥  
 घसानित्यन्दसंशुष्कमहीपुटकमण्डिते । भस्माङ्गारादंद्गघास्त्रिमञ्जसङ्घट्टभीषणे  
 शृङ्गगोमायुनादात्तनष्टुद्रविहङ्गमे । चिताधूमाततिरुचा नीलीवृत्तदिगन्तरे ॥  
 कुणपास्वादनमुदा सम्प्रहृणनिशाचरे । धरत्यमध्ये राजेन्द्र श्मशाने दुःखपीडित  
 एवमुक्त्वा समात्रिसृप्य कण्ठ राज्ञो नृपात्मजा ।  
 कण्ठशोकशताधारा विललापाऽऽर्त्तंवा गिरा ॥ २१३ ॥  
 राजपत्न्युवाच  
 राजन् ! स्वप्नोऽथ तप्य वा यदेतन्मन्यते भवान् ।

तत् कथ्यतां महाभाग! मनो वै मुह्यते मम ॥ २१४ ॥

यद्येतदेवं धर्मज्ञ ! नास्ति धर्मे सहायता । तथैव विप्रदेवादिपूजने पालने भुषः  
नास्ति धर्मः कुतः सत्यमार्जवं चानृशंसता । यत्र त्वंधर्मपरमःस्वराज्यादधरोपितः

इति तस्या वचः श्रुत्वा निःश्वस्योष्णं सगद्गदम् ।

कथयामास तन्वङ्ग्या यथा प्राप्ता श्वपाकता ॥ २१७ ॥

रुदित्वा सापि सुचिरं निःश्वस्योष्णञ्च दुःखिता ।

स्वपुत्रमरणं भीरुर्यथावृत्तं न्यवेदयत् ॥ २१८ ॥

श्रुत्वा राजा तदा वाक्यं निपपात महीतले ।

मृतस्य पुत्रस्य तथा जिह्वया लेलिहन् मुखम् ॥ २१९ ॥

राजोवाच

यमस्य भिक्षां यास्त्वावः कृपणौ पुत्रगृह्णतौ ।

तस्माच्छीघ्रं ब्रजावोऽद्य पुत्रो यत्रप्रियोगतः ॥ २२० ॥

प्रिये!नरोचयेदीर्घकालंक्लेशमुपासितुम् । नात्मायत्तश्चतन्वङ्गिपश्यमेमन्दभाग्यताम्  
चण्डालेनाननुज्ञातः प्रवेक्ष्ये उवलनं यदि । चण्डालदासतां यास्येपुनरप्यन्यजन्मनि  
नरके च पतिष्यामिकीटकःकृमिभोजनः । वैतरण्यांमहापूयवसासृक्स्नायुपिच्छिले

असिपत्रवने प्राप्य च्छेदं प्राप्स्यामि दारुणम् ।

तापं प्राप्स्यामि वा प्राप्य महारौरवरौरवौ ॥ २२४ ॥

मग्नस्य दुःखजलधौ पारः प्राणवियोजनम् ।

एकोऽपि बालको योऽयमासीद्वंशकरः सुतः ॥ २२५ ॥

मम देवास्त्रुवेगेनमग्नःसोऽपिवलीयसा । कथंप्राणान्विमुञ्चामिपरायत्तोऽस्मिदुर्गतः  
अथवा नार्तिनाक्लिष्टोनरःपापमवेक्षते । तिर्यक्त्वेनास्तिदुःखंनोसिपत्रवनेतथा  
चैतरण्यां कुतस्तादृग् यादृशं पुत्रविप्लवे । सोऽहं सुतशरीरेण दीप्यमाने हुताशने  
इतिपतिष्यामितन्वङ्गि!क्षन्तव्यंकुकुतं मम । अनुज्ञाताघगच्छत्वंविप्रवेशमशुचिस्मिते

मम वाक्चञ्च तन्वङ्गि!निवोधादृतमानसा ।



यदि दत्तं यदि हुतं गुरवो यदि तोपिताः ॥ २३० ॥

परत्र सद्गमो भूयान् पुत्रेण सह च त्वया । इह लोके हुतस्त्वेतद्द्विष्यतिममेङ्कितम्  
त्वया सह मम श्रेयोगमनं पुत्रमार्गणे । यन्मया हसन्नाकिञ्चिद्रहस्ये वा शुचिस्मिते

अर्थात्समुक्तं तन् सर्वं शन्तव्यं मम याचत ।

राजपत्नीति गर्वेण नाचजेय स ते द्विजः ।

सर्वयत्नेन ते तोषय. स्वामिदैवतयच्छुभे ॥ २३३ ॥

राजपत्न्युवाच

अहमप्यत्र राजर्षे 'र्वाप्यमाने हुताशने । दुःखभारासहायैव सह यास्यामि वै त्वया  
सह स्वर्गं च नरकं सर्वथावा हि भुङ्क्ष्वहे ।

ध्रुव्या राजा तद्दोषाद्यप्यमन्तु पतिव्रते' ॥ २३५ ॥

पक्षिण ऊचुः

नतं कृत्वाचिन्तारज्जाप्रारोप्यतनयस्यम् । भार्ययासहितश्चासौ बद्धाञ्जलिपुटस्तदा  
चिन्तयन् परमात्मानर्माशं नारायणं हरिम् । हृत्कोटरगुहासीनं वासुदेवं सुरेश्वरम्  
अतात्रिनिधनं मत्प्रकृण्वी पीताम्बरशुभम् ॥ २३७ ॥

तस्य चिन्तयमानस्य सर्वे देवाः सवामवा ।

धर्मं प्रमुखतः कृत्वा समाजगमुस्त्वराम्बिता ॥ २३८ ॥

वागन्वसर्वे प्रोचुस्तेभ्यो मोराजन्शृणुमो । अथपितामहसाक्षात्संभ्रमगवान्स्वयम्  
साध्याश्च विश्वे मरुतो लोकपालाः सचारणा ।

नागा सिद्धाः सगन्धर्वाः रद्राश्चैव तथाऽम्बिनी ॥ २४० ॥

एते धान्ये च बहवो विभ्रामित्रस्तर्षयश्च । विभ्रप्रयेण यो मित्रकन्तुं नशक्तिः पुरा  
विभ्रामित्रन्तु ते मीशा मिष्टश्चाहर्तुंमिच्छति ।

आहरोह तत्र प्रभो धर्मं शत्रोऽथ गाधिज ॥ २४२ ॥

धर्मं उवाच

मा राजन् 'सादसं वार्षोर्धर्मोऽहं त्वामुपागतः ।

तितिक्षादमसत्याद्यैः स्वगुणैः परितोषितः ॥ २४३ ॥

इन्द्र उवाच

हरिश्चन्द्र! महाभाग ! प्रातः शक्रोऽस्मि तेऽन्तिकम् ।

त्वया सभार्यपुत्रेण जिता लोकाः सनातनाः ॥ २४४ ॥

आरोह त्रिदिवंराजन्! भार्यापुत्रसमन्वितः । सुदुष्प्रापं नरैरन्यैर्जितमात्मीयकर्मभिः  
पक्षिण ऊचुः

ततोऽमृतमयं धर्मममृत्युविनाशनम् । इन्द्रः प्रासृजदाकाशाच्चितास्थानगतः प्रभुः  
पुष्पवर्षञ्च सुमहद्वेवदुन्दुभिनिस्वनम् । ततस्ततो वर्त्तमाने समाजे देवसङ्कुले ॥  
समुत्तस्थौ ततः पुत्रोराज्ञस्तस्यमहात्मनः । सुकुमारतनुः सुस्थःप्रसन्नेन्द्रियमानसः  
ततो राजा हरिश्चन्द्रः परिष्वज्य सुतं क्षणात् ।

सभार्यः सश्रिया युक्तो दिव्यमाल्याम्बरान्वितः ॥ २४६ ॥

सुस्थःसम्पूर्णहृदयो मुदा परमया युतः । वभूव तत्क्षणादिन्द्रो भूयश्चैनमभापत ॥  
सभार्यस्त्वंसपुत्रश्चप्राप्स्यसेसद्गतिपराम् । समारोहमहाभाग!निजानांकर्मणांफलैः

हरिश्चन्द्र उवाच

देवराजाननुज्ञातः स्वामिनाश्वपत्नेन वै । अगत्वानिष्कृतिस्तस्य नारोक्ष्येऽहंसुरालयम्  
धर्म उवाच

तथैनं भाविनं क्लेशमवगम्यात्ममायया । आत्मा श्वपाकतांनीतोदर्शितंतच्चचापलम्  
इन्द्र उवाच

प्रार्थ्यतेतत्परंस्थानं समस्तैर्मनुजैर्भुवि । तदारोह हरिश्चन्द्र!स्थानंपुण्यकृतांनृणाम्  
हरिश्चन्द्र उवाच

देवराज!नमस्तुभ्यं वाक्यञ्चैतन्निबोध मे । प्रसादसुमुखं यत्त्वां ब्रवीमिप्रश्रयान्वितः  
मच्छ्लोकमग्नमनसः कोशलानगरे जनाः । तिष्ठन्तितानपोह्याद्यकथंयास्याम्यहंदिवम्  
ब्रह्महत्यागुरोर्वातागोवधःस्त्रीवधस्तथा । तुल्यमेभिर्महापापं भक्तव्यागेऽप्युदाहृतम्  
भजन्तं भक्तमत्याज्यमदुष्टं त्यजतःसुखम् । नेहनामुत्रपश्यामि तस्माच्छक्र!दिवंब्रज



शुक्र उवाच

हरिश्चन्द्रसमो राजा न भूतो न भविष्यति ।

यश्चैतच्छृणुयाद् भक्त्या नैरन्तर्येण मानवः ॥ २७५ ॥

तेन वेदापुराणानि सर्वमन्त्राः सुसङ्ग्रहाः । घृष्टाःस्युःपुष्करेतीर्थेप्रयागेसिन्धुसागरे  
देवागारे कुरुक्षेत्रे धाराणस्यां विशेषतः । विपुवद्ग्रहणेचैव यत्फलं जपतो लभेत्  
तत्फलं द्विगुणं चैव संयतात्मा शृणोति यः ।

श्रुत्वा तु पूजयेद् भक्त्या पुराणज्ञं द्विजोत्तमम् ॥ २७८ ॥

गोभूहिरण्यवस्त्रैश्च तथैवाऽन्नेन जैमिने ! । येनैवं यत्कृतं पुण्यं तच्छक्यं नमयोदितुम्  
अहो तितिक्षामाहात्म्यमहोदानफलमहत् । यदागतो हरिश्चन्द्रः पुरीश्चेन्द्रत्वमाप्तवान्

पश्चिण ऊचुः

एतत्ते सर्वमाख्यातं हरिश्चन्द्रविचेष्टितम् ।

यः शृणोति सुदुःखार्त्तः स सुखं महदाप्नुयात् ॥ २८१ ॥

स्वर्गार्थी प्राप्नुयात् स्वर्गं पुत्रार्थी पुत्रमाप्नुयात् ।

भार्य्यार्थी प्राप्नुयाद्भार्य्यां राज्यार्थी राज्यमाप्नुयात् ।

अतःपरं कथाशेषः श्रूयतां मुनिसत्तम ! ॥ २८२ ॥

विपाको राजसूयस्य पृथिवीक्षयकारणम् । तद्विपाकनिमित्तश्चयुद्धमाडिवकं महत्  
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे हरिश्चन्द्रोपाख्यानवर्णनंनामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः  
आटिनरुयुद्धवर्णनम्  
पक्षिण ऊचुः

राज्यच्युनेहरिश्चन्द्रे गते चप्रिदशालयम् । निश्चवाममहातेजाजलघासान्पुरोहित  
वशिष्ठो द्वादशाब्दान्ने गङ्गापर्युपिनो मुनि ।

शुश्राव च समस्त तु विध्वामित्रविघ्नेष्टितम् ॥ २ ॥

हरिश्चन्द्रस्य नाशश्चरत्तद्विदोदारकर्मण । चण्डालसंप्रयोगश्चभार्यातनयविक्रयम् ॥  
सभ्रुन्वा सुमहाभाग प्रीतिमानवनीपती । चकारकोपनेजम्घी विध्वामिरमृषिप्रति  
वशिष्ठ उवाच

मम पुत्रशत नेनविध्वामित्रेणघातितम् । तत्रापि नाभयत्सोधस्तादृशोपादृशोऽयमे  
धत्वा नराधिपमिम स्वराज्यादधरोपितम् । महात्मानं महाभागदेवग्राहणपूजकम्  
यस्मात् स सत्यवाक शान्त शत्रवपि विमन्सर ।

अनागाश्चैव धर्मात्मा अप्रमत्तो यदाधय ॥ ७ ॥

सपत्नीभृत्यपुत्रस्तु प्रापिनोऽन्त्या दशा नृप ।

स राज्याद्यथावितोऽनेन बहुशश्च खिलीकृत ॥ ८ ॥

तस्माद्दुःखरात्मा प्रह्लाद्विद् प्राशानामधरोपित ।

मन्त्रापोपहतोमूढ स चकत्वमवापस्यति ॥ ९ ॥

पक्षिण ऊचुः

श्रन्वा शापं महानेजा विध्वामित्रोऽपि कीर्शिक ।

त्वमप्याडिर्भवन्वेति प्रतिशापमपच्छत ॥ १० ॥

अन्योन्यशापास्तौ प्राप्नोतिर्यक्तव परमचूर्ता ।

वशिष्ठ स महानेजा विध्वामित्रश्च कीर्शिक ॥ ११ ॥

अन्यजातिसमायोगं गतावप्यमितौजसो । युयुधातेऽतिसंरुधोमहाबलपराक्रमौ  
 योजनानां सहस्रे हे प्रमाणेनाडिरुच्छितः । यन्नवत्यधिकं ब्रह्मन् सहस्रत्रितयं वकः  
 तौ तु पक्षप्रहाराभ्यामन्योन्यस्योरुचिक्रमौ । प्रहरन्तौ भयंतीवंप्रजानांचक्रतुस्तदा  
 विभूय पक्षाणि वको रकोद्वृत्ताक्षिराहनत् ।

आडिं सोऽप्युन्नतग्रीवो वकं पदूभ्यामताडयत् ॥ १५ ॥

तयोः पक्षानिलापास्ताःप्रपेतुर्गिरयो भुवि । गिरिप्रपाताभिहताचकम्पे च वसुन्धरा  
 ङ्मा कम्पमाना जलधीनुद्वृत्ताम्बुंश्चकार च । ननामचैकपाश्वर्णेनपातालगमनोन्मुखी  
 केचिद्गिरिनिपातेन केचिदम्भोधिवारिणा ।

केचिन्महीसञ्चलनात् प्रययुः प्राणिनः क्षयम् ॥ १८ ॥

इतिसर्वं परित्रस्तंहाहाभूतमचेतनम् । जगदासीत्सुसम्भ्रान्तंपर्यस्तक्षितिमण्डलम्  
 हा वत्स ! हा कान्त ! शिशो ! प्रयाह्येपोऽस्मि संस्थितः ।

हा प्रिये ! कान्त ! शैलोऽयं पतत्याशु पलायताम् ॥ २० ॥

इत्याकुलीकृते लोके सन्त्रासविमुखे तदा । सुरैः परिवृतःसर्वैराजगाम पितामहः  
 प्रत्युवाच च विश्वेशस्तावुभावतिकोपितो ।

युद्धं वां विरमत्वेतल्लोकाः स्वास्थ्यं व्रजन्तु च ॥ २२ ॥

ऋण्वन्तावपितौवाक्यंब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः । कोपामर्षसमाविष्टौयुयुधातेनतस्थतुः  
 ततः पितामहो देवस्तं दृष्ट्वा लोकसङ्घयम् ।

तयोश्च हितमन्विच्छन् तिर्यग्भावमपानुदत् ॥ २४ ॥

ततस्ती पूर्वदेहस्थो प्राह देवःप्रजापतिः । व्युदस्ते तामसे भावेवशिष्टकौशिकर्षभो  
 जहि वत्स ! वशिष्ठ ! त्वं त्वञ्च कौशिकसत्तम !

तामसं भावमाश्रित्य ईदृग्युद्धं चिकीर्षितम् ॥ २६ ॥

राजसूयविपाकोऽयं हरिश्चन्द्रस्य भूपतेः । युवयोर्विग्रहश्चाऽयं पृथिवीक्षयकारकः  
 नचापि कौशिकश्चेष्टस्तस्यराज्ञोऽपराध्यते । स्वर्गप्राप्तिकरोब्रह्मन्नुपकारपदेस्थितः  
 तपोविघ्नस्य कर्तारी कामक्रोधवशं गतौ । परित्यजत भद्रं वो ब्रह्म हिप्रचुरंचलम्

एवमुक्त्वा ततस्तेनलज्जितौतायुभाषपि । क्षमयामासतु प्रीत्यापरिष्वज्जय परस्परम्  
तत सुरैर्घन्यमानो ब्रह्मा लोक निज ययी ।

धशिष्टोऽप्यात्मन स्थानं कौशिकोऽपि स्वमाश्रयम् ॥ ३१ ॥

एतदाडिबकयुद्धहरिश्चन्द्रकपातथा । कथयिष्यन्तियेमर्त्या सम्यक्श्रोष्यन्तिघैवये  
तेवा पापापनोदतु श्रुत होवकरिष्यति । तत्रैव विघ्नकाप्याणि भविष्यन्तिकदाचन

इति श्रीमाकण्डेयपुराणे आडिबकयुद्धवर्णननाम दशमोऽध्याय ॥ ६ ॥

## दशमोऽध्यायः

### पितापुत्रसम्वादवर्णनम्

जैमिनिस्वाध

सशयं द्विजशार्दूलं प्रभूतं ममपृच्छत । आधिर्माचतिरोभावौभूतानां यत्रसस्थितौ  
कथं सञ्जायते जन्तु कथं धासविवर्द्धते । कथमोदरमध्यस्थस्तिष्ठत्यङ्गनिपीडित  
निष्क्रान्तिमुद्रात्प्राप्यकथमावृद्धिमृच्छति । उत्क्रान्तिकालेष्वथश्चिद्द्वार्यनचियुज्यते  
कृत्स्नो मृतस्तथाश्नाति उभे सुदृढदुष्कृते ।

कथन्तश्च तथा तस्य फलं सम्पादयन्त्युत ॥ ४ ॥

कथं न जीयते तत्र पिण्डीवृत इषाशये । स्त्रीकोष्ठे यत्रजीर्यन्तेभुक्तानिसुगुरुण्यपि  
भक्ष्याणि तत्र नो जन्तुर्जीयते कथमल्पक ॥ ५ ॥

कथं भोक्ता स सर्वस्य कर्मण सुकृतस्य वै ॥ ६ ॥

एतन्मे व्रतं सकलसन्देहोक्तिविचर्जितम् । तदेतत्परमं गुह्यं यत्र मुह्यन्तिजन्तव  
पक्षिण ऊचुः

प्रभ्रमारोऽयमतुलस्त्वयाऽस्मासु निवेशित ।

दुर्भाष्यं सर्वभूतानां भाषाभाषतमाश्रित ॥ ८ ॥

तंशृणुष्व महाभाग ! यथा प्राह पितुः पुरा । पुत्रः परमधर्ममात्मा सुमतिर्नामनामतः  
ब्राह्मणो भार्गवः कश्चित् सुतमाह महामतिः । कृतोपनयनंशान्तंसुमतिजडरूपिणम्  
वेदानधीस्व सुमते! यथानुक्रममादितः । गुरुशुश्रूषणे व्यग्रो भैक्षान्नकृतभोजनः  
ततो गार्हस्थ्यमास्थाय चेट्प्रायज्ञाननुत्तमान् । इष्टमुत्पादयापत्यमाश्रयेथा घनंततः  
घनस्थश्चततोवत्स! परिव्राट् निष्परिग्रहः । एवमाप्स्यसितद्ब्रह्मयत्रगत्वानशोचसि  
पक्षिण ऊचुः

इत्येवमुकोवहुशोजडत्वान्नाऽऽहकिञ्चन । पिताऽपितंसुवहुशः प्राहप्रीत्या पुनः पुनः  
इति पित्रा सुतस्नेहात्प्रलोभिमधुराक्षरम् । सचोद्यमानोवहुशः प्रहस्येदमथाव्रवीत्  
तातैतद्बहुशोऽभ्यस्तं यत्त्वयाऽद्योपदिश्यते ।

तथैवान्यानि शास्त्राणि शिल्पानि विविधानि च ॥ १६ ॥

जन्मनामयुतंसायंमस्मृतिपथं गतम् । उत्पन्नज्ञानबोधस्य वेदैः किं मेप्रयोजनम् ?

निर्वेद्राः परितोपाश्चक्षयवुद्बुधुश्चदये रताः ।

शत्रुमित्रकलत्राणां वियोगाः सङ्गमास्तथा ।

मातरो विविधा दृष्टाः पितरो विविधास्तथा ॥ १८ ॥

अनुभूतानि सौख्यानि दुःखानिचसहस्रशः । वान्धवावहवःप्राप्ताःपितरश्चपृथग्विधाः

विण्मूत्रपिच्छिले स्त्रीणां तथा कोष्ठे मयोपितम् ।

पीडाश्च सुभृशं प्राप्ता रोगाणां च सहस्रशः ॥ २० ॥

गर्भदुःखान्यनेकानि बालत्वे यौवने तथा । वृद्धतायांतथाप्तानि तानिसर्वाणिसंस्मरे

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणाञ्चापियोनिषु । पुनश्च पशुकीटानांमृगाणामथपक्षिणाम्

तथैव राजभृत्यानां राज्ञाञ्चाहवशालिनाम् । समुत्पन्नोऽस्मि गेहेपुतथैवतव वैश्रमनि

भृत्यतां दासताञ्चैव गतोऽस्मि बहुशो नृणाम् ।

स्वामित्वमीश्वरत्वञ्च दग्धत्वं तथा गतः ॥ २४ ॥

हतं मया हतञ्चान्यैर्हतं मे वातितं तथा । दत्तं ममान्यैरन्येभ्यो मया दत्तमनेकशः ॥

पितृमातृसुहृद्भ्रातृकलत्रादिकृतेन च पुत्रोऽसकृत्तथा दैः मयुः ॥



एष ससारघत्रेऽस्मिन् भ्रमतातात'सद्गुटे । ज्ञानमेतन्मया प्राप्तमोक्षसम्प्राप्तिवारकम्

विज्ञाते यत्र सर्वोऽयमृग्यनु'सामसञ्चित' ।

क्रियाकटापो विगुणो न सम्यक् प्रतिभाति मे ॥ २८ ॥

तस्मादुत्पन्नगोधस्य वेदै किमेप्रयोजनम् । गुरुविज्ञानतृप्तस्य निरीहस्य सदात्मन'

षट्प्रकारक्रियादु खसुखहर्परसंक्षयत् । गुणैश्च वर्जितं ब्रह्म तत्प्राप्स्यामि परपदम्

रसहर्ष'भयोद्वेगत्रोधामर्ष'जरातुराम् । विहाता स्वमृगप्राद्विसहृषाशशताकुलाम्

तस्मात् यास्याम्यह तात त्यक्तवेमा दु'खसन्ततिम् ।

त्रयीधर्ममधर्माद्य कि पापफलसत्रिमम् ॥ ३२ ॥

पक्षिण ऊचु

तस्यतद्वचन श्रुत्वा हर्ष'विस्मयगद्गदम् । पिता प्राह महाभाग' स्वसुत हृष्टमानस

पितोवाच

किमेतद्वदसे वत्स ! कुतस्ते ज्ञानसम्भव । केन ते जडता पूर्वमिदानीञ्च प्रमुद्धता

किन्नु शापविकारोऽय मुनिदेवहनस्तय । यत्ते ज्ञान तिरौभूतमाविर्भाषमुपागतम्

पुत्र उवाच

शृणुतात'यथावृत्तममेदमुत्तु खदम् । यश्चाहमात्मन्यस्मिन् जन्मन्यस्मत्पर तुयत्

ब्रह्मास पुरा विप्रोन्वस्तात्मापरमात्मनि । आत्मविद्याविचारेषु परानिष्टामुपागत

सतन योगयुक्तस्य सतताभ्याससङ्गमात् ।

सत्सयोगात् स्वस्वभावाद् विचारविधिशोधनात् ॥ ३८ ॥

तस्मिन्नेव पराप्तीतिमंभासीन् युञ्जत सदा । आचार्यताचसम्प्रात शिष्यसन्देहहृत्तम'

तत' कालेनमहता ऐकान्तिरमुपागत' । अज्ञानादृष्टसद्भावो विपन्नश्च प्रमादत ॥ ४०

उत्क्रान्तिकालादारभ्य स्मृतिलोपो न मेऽमयत् ।

यावद्व्यगर्तं धैव जन्मना स्मृतिमागतम् ॥ ४१ ॥

पूयाम्यासेन तेनैव सोऽष्टतात'जितेन्द्रिय । यतिष्यामितथाकतुं नमधिष्येययापुन'

ज्ञानदानफलं ह्येतद्यज्ञातिस्मरणं मम । भवेत्तत् प्राप्यते तात ! त्रयीधर्माधितैर्नरै'

सोऽहं पूर्वाश्रमादेव निष्ठाधर्ममुपाश्रितः ।  
 एकान्तित्वमुपागम्य यतिप्याम्यात्ममोक्षणे ॥ ४४ ॥  
 तद्ब्रूहि त्वं महाभाग ! यत्ते सांशयिकं हृदि ।  
 एतावतापि ते प्रीतिमुत्पाद्यानृण्यमाप्नुयाम् ॥ ४५ ॥

पक्षिण ऊचुः

पिता ग्राह ततः पुत्रं श्रद्धघत्तस्य तद्वचः । भवता यद्वयंपृष्टाःसंसारग्रहणाश्रयम्  
 पुत्र उवाच

शृणु तात! यथा तत्त्वमनुभूतं मयाऽसकृत् । संसारचक्रमजरं स्थितिर्यस्यनविद्यते  
 सोऽहं घदामि ते सर्वं तवैवानुज्ञया पितः! ।

उत्कान्तिकालादारम्य यथा नान्यो घदिष्यति ॥ ४८ ॥

उष्माप्रकुपितःकायेतीव्रवायुसमीरितः । भिनत्तिमर्मस्थानानि दीप्यमानोनिरिन्धनः  
 उदानो नामपवनस्ततश्चोद्भ्रवं प्रवर्त्तते । भुक्तानामम्बुभक्ष्याणामधोगतिनिरोधकृत्  
 ततो येनाम्बुदानानि कृतान्यन्नरसास्तथा । दत्ताः सतस्यआह्लादमापदिप्रतिपद्यते  
 अन्नानियेन दत्तानि श्रद्धापूतेन चेतसा । सोऽपि तृप्तिमवाप्नोतिविनाप्यन्नेन वै तदा  
 येनानृतानिनोक्तानि प्रीतिभेदःकृतोनच । आस्तिकःश्रद्धघानश्च ससुखंमृत्युमृच्छति  
 देवब्राह्मणपूजायां ये रता नाऽनसूयवः । शुक्ला घदान्या ह्रीमन्तस्ते नराःसुखमृत्यवः  
 योनकामात्ररम्भात्रहेपाद्धर्ममुत्सृजेत् । यथोक्तकारीसौम्यञ्जससुखं मृत्युमृच्छति  
 अवारिदायिनो दाहं क्षुधाञ्जानन्नदायिनः ।

प्राप्नुवन्ति नराः काले तस्मिन् मृत्यावुपस्थिते ॥ ५६ ॥

शीतं जयन्तिधनदास्तापं चन्दनदायिनः । प्राणघ्नीं वेदनांकष्टांये चानुद्वेगकारिणः  
 मोहाज्ञानप्रदातारः प्राप्नुवन्ति महद्वयम् । वेदनाभिरुदग्राभिःप्रपीड्यन्तेऽधमा नराः  
 कूटसाक्षी मृषावादी यश्चासदनुशास्तिवै । ते मोहमृत्यवः सर्वेयथा वेदविनिन्दकाः  
 विभीषणाःपूतिगन्धाःकूटमुद्गरपाणयः । आगच्छन्तिदुरात्मानोथमस्यपुरुषास्तदा  
 प्राप्तेषु दूक्पथं तेषु जायते तस्य वेपथः । कन्दत्यचिरं सोऽपि यथा...

साऽस्य धामस्तुटा तात ! एकघर्णा धिमाप्यते ।

दृष्टिश्च धाम्भ्यते त्रासाच्छ्वासाच्छुष्यत्यघाननम् ॥ ६२ ॥

ऊर्ध्वान्वासान्विन सोऽथदृष्टिमग्नसमन्वित । तत सयेदनाविष्टस्नच्छरीरं पिमुञ्चति  
घाप्यप्रसारी तद्रूप देहमन्यत् प्रपद्यते । तत्कमजं यातनायं न मात्पितृसम्भवम्  
तत्प्रमाणवयोपरुधामस्थाने प्राग्भव यथा ॥ ६४ ॥

ततो दूतो यमस्याशुपाशीर्षञ्जाति दारणै । दण्डप्रहारमम्भ्रान्तकपतेदक्षिणान्शिम  
कुशकण्टक्यन्मीकशङ्कुपापाणककंशे । तथा प्रदीप्तज्वलने च विच्छद्यन्नशानोत्कटे  
प्रदीप्तादित्यतने च दह्यमाने तदशुभि । हृष्यते यमदूनैश्चाशिवमन्नादभीषणै  
विहृष्यमाणस्तैर्दारैर्भक्ष्यमाण शिवाशतै । प्रयातिदारुणे मार्गे पापकमा यमक्षयम्  
छत्रोपानत्प्रदातारो ये च परत्रप्रदा नरा । ते यान्ति मनुजामार्गं तं सुखेनतथाप्रदा  
विमानै सोऽञ्जलैर्यान्ति भूमिदातप्रदा नरा ।

एव षण्शाननुभवप्रवश पापपाडित । नीयते द्वादशाहेन धर्मराजपुरनर ।  
क्लेबरे दह्यमाने महान्तं दाहमृच्छति । ताडयमाने तथैर्धासि छिद्यमानेष्वदारुणाम्  
ङ्घ्रियमाने घिरतर जन्तुर्दुःखमवाप्नुते । स्वेनकर्मविपाकेन देहान्तरगतोऽपि सन्  
तत्र यदुबान्धवास्तोय प्रयच्छन्ति तिलै सह ।

यद्य पिण्ड प्रयच्छन्ति नीयमानस्तदश्नुते ॥ ७३ ॥

तैलाम्यङ्गोरान्धवानामङ्गसम्वाहनञ्चयत् । तेनघाप्यायतेजन्तुर्यञ्चाश्नन्तिसवान्धवा  
भूमौ स्वपट्टभिर्भ्रात्यन्त षण्शेमाप्नोति बान्धवै ।

दान ददुभिश्च यथा जन्तुराप्याप्यते मृत ॥ ७५ ॥

नीयमान स्वक गेह द्वादशाह स पश्यति । उपभुङ्क्तेतथादत्ततोयपिण्डादिकभुवि  
द्वादशाहात्परधोरमावासं भीषणावृत्तिम् । यास्य पश्यत्यधोजन्तु हृष्यमाण पुरतत  
गतमात्रोऽतिरक्ताक्ष मित्राञ्जनघयप्रभम् । मृत्युकागन्तवादीनामध्येपश्यतिवैयमम्  
दग्नाकरालवदन भ्रुकुटिदारुणावृत्तिम् । विरूपैर्भीषणैश्चैवृत्तं व्याधिशतं प्रभुम्  
दण्डासक्त महागद्ग पाशहस्तसुभैरवम् । तत्रिर्दिष्टाततोयातिगतिजन्तु शुभाशुभाम्

रौरवे कूटसाक्षी तु याति यश्चानृती नरः । तस्य स्वरूपं गदतो रौरवस्यनिशामय  
 योजनानां सहस्रे द्वे गौरवो हि प्रमाणतः । जानुमात्रप्रमाणश्चततः श्वन्नःसुदुस्तरः  
 तत्राङ्गारखयोपेतं कृतञ्च धरणीसमम् । जाज्वल्यमानस्तीव्रेणतापिताङ्गारभूमिना  
 तन्मध्ये पापकर्माणं विमुञ्चन्तियमानुगाः । सदह्यमानस्तीव्रेण वह्निना तत्र धावति  
 पदे पदे च पादोऽस्य शीर्यते जीर्यते पुनः । अहोरात्रेणोद्धरणं पादन्यासंचगच्छति  
 एवंसहस्रमुत्तीर्णो योजनानांविमुच्यते । ततोऽन्यत्पापशुद्धयर्थंतादृङ्निरयमृच्छति  
 ततः सर्वेषु निस्तीर्णः पापीतिर्यक्त्वमश्नुते । कृमिकोटपतङ्गेषुश्वापदेमशकादिषु  
 गत्वा गजद्रुमाद्येषु गोष्वश्वेषु तथैव च । अन्यासु चैव पापासुदुःखदासुच योनिषु  
 मानुषंप्राप्यकुञ्जोवाकुत्सितोवामनोऽपिवा । घण्डालपुल्कसाद्यासुनरोयोनिषुजायते  
 अवशिष्टेन पापेन पुण्येन च समन्वितः । ततश्चारोहणीं जार्ति शूद्रवैश्यनृपादिकाम्  
 विप्रदेवेन्द्रताञ्चापि कदाचिद्वरोहणीम् । एवं तु पापकर्माणो नरकेषु पतन्त्यधः  
 यया पुण्यकृतो यान्ति तन्मेनिगदतःशृणु । तेयमेनविनिर्दिष्टां यान्तिपुण्यांगतिनराः  
 प्रगीतगन्धर्वगणाः प्रवृत्ताप्सरसां गणाः । हारनूपुरमाधुर्यशोभितान्युत्तमानि च

प्रयान्त्याशु विमानानि नानादिव्यस्त्रगुज्वलाः ।

तस्माच्च प्रच्युता राज्ञामन्येषाञ्च महात्मनाम् ॥ ६४ ॥

जायन्ते च कुले तत्र सद्रवृत्तपरिपालकाः ।

भोगान् सम्प्राप्नुवन्त्युग्रंस्ततोयान्त्यदूर्ध्वमन्यथा ॥ ६५ ॥

अवरोहणीञ्च सम्प्राप्य पूर्ववद्यान्ति मानवाः । एतत्ते सर्वमाख्यातंयथाजन्तुर्विपद्यते

अतः शृणुष्व विप्रर्षे ! यथा गर्भं प्रपद्यते ॥ ६६ ॥

इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणेपितापुत्रसम्वादेजीवगतिवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १०॥



इति चिन्तयते स्मृत्वा जन्मदुःखशतानि वै । यानिपूर्वानुभूतानि दैवभूतानियानिवै  
ततः कालक्रमाजन्तुः परिवर्त्तत्यधोमुखः । नवमे दशमे वापि मासि सञ्जायते ततः

निष्क्राम्यमाणो घातेन प्राजापत्येन पीड्यते ।

निष्क्राम्यते च विलपन् हृदि दुःखनिपीडितः ॥ १७ ॥

निष्क्रान्तश्चोदरान्मूर्च्छामसह्यां प्रतिपद्यते ।

प्राप्नोति घेतनां चाऽसौ वायुस्पर्शसमन्वितः ॥ १८ ॥

ततस्तं वैष्णवीमायासमास्कन्दतिमोहिनी । तयाविमोहितात्मासौज्ञानभ्रंशमवाप्नुते  
भ्रष्टज्ञानो बालभावं ततो जन्तुः प्रपद्यते । ततः कौमारकावस्थां यौवनं वृद्धतामपि  
पुनश्चमरणंतद्गज्जन्मचाप्नोतिमानवः । ततःसंसारचक्रेऽस्मिन् भ्राम्यतेघट्टियन्त्रवत्  
कदाचित् स्वर्गमाप्नोतिकदाचिन्निरयंनरः । नरकश्चैवस्वर्गश्चकदाचिच्च मृतोऽश्नुते  
कदाचिदत्रैव पुनर्जातःस्वं कर्म सोऽश्नुते । कदाचिद्भुक्तकर्माचमृतः स्वल्पेनगच्छति  
कदाचिदल्पैश्चततोजायतेऽत्रशुभाशुभैः । स्वर्लोकेनरकेष्वैव(वापि)भुक्तप्रायोद्विजोत्तम  
नरकेषु महद्दुःखमेतद्यत् स्वर्गवासिनः । दृश्यन्तेतात!मोदन्ते पात्यमानाश्च नारकाः  
स्वर्गेऽपि दुःखमतुलं यदारोहणकालतः । प्रभृत्यहं पतिष्यामीत्येतन्मनसि वृत्तंते  
नारकाश्चैव सम्प्रेक्ष्य महद्दुःखमवाप्यते । एतां गतिमहं गन्तेत्यहर्निशमनिर्वृतः ॥  
गर्भवासे महद्दुःखं जायमानस्ययोनितः । जातस्य बालभावे च वृद्धत्वे दुःखमेव च  
कामेर्ष्याक्रोधसम्बन्धं यौवनं चाऽतिदुःसहम् ।

दुःखप्राया वृद्धता च मरणे दुःखमुत्तमम् ॥ २६ ॥

कृप्यमाणस्य याम्यैश्च नरकेषु चपात्यतः । पुनश्च गर्भो जन्माऽथ मरणं नरकस्तथा  
एवं संसारचक्रेऽस्मिन् जन्तवो घट्टियन्त्रवत् ।

भ्राम्यन्ते प्राकृतैर्वन्धैर्वद्भवा वध्यन्ति चासकृत् ॥ ३१ ॥

नास्तितात!सुखं किञ्चिदत्रदुःखशताकुले । तस्मान्मोक्षाययतताकथंसेव्यामयात्रयी  
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे पितापुत्रसंवादे जन्मस्थितिसंसारदुःखवर्णनं नाम

एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

## द्वादशोऽध्याय

महारीरराटिनरकाणामनस्यावर्णनम्

पितोवाच

साधुयस ! त्वयाप्यार्तं नसारगहनं परम् । ज्ञानप्रदानसंभूतं समाधित्य महाफलम्  
तत्रते नरका सर्वे यथा वै रौरवस्तथा । घणितास्तान् समाधश्चविस्तरेणमहामते  
पुत्र उवाच

रौरवस्ते समाख्यात प्रथमं नरको मया । महारीरवसप्रसङ्गतु गृणुष्य नरक पित<sup>1</sup>  
व्याभ्यागमनेये च ब्रह्मश्रयमज्ञण रता । मित्रद्रोहकराश्चैव स्वामिषिभ्रम्भवातका  
परत्वाररताश्चैव स्वदारपरिघर्त्तिन । मागमद्गकरा ये च तद्गागारामभेदका ॥ ५ ॥

एतऽन्ये च दुराचारा दहन्ते तत्र किङ्कुरै ।

योननानां सहस्राणि सप्तपञ्च समन्तान् । तत्र ताद्यमयी भूमिरघस्तस्य हुताशन  
तत्तापनता सासया प्रोद्यदिन्दुसमप्रमा । विभायतिमहारीद्रा दशनरूपशनादिषु  
तन्प्राबद्ध करान्याञ्जपद्गाञ्जैवयमानुगे । मुच्यतपापहृन्मध्येनुच्यमानं सगच्छति  
काकैरकवृ कोलूकैवृ धिकैमशकैस्तथा । मक्ष्यमाणस्तथ गृध्रैर्दुर्तं मार्गे विहृष्यते  
दह्यमानं पितमातप्रातस्तानानि चाकु<sup>7</sup> । घन्त्यसहृदुद्विग्नोनशान्तिमधिगच्छति  
एव तस्मात्परैर्मोक्षो ह्यतिक्रान्तेस्वाप्यन । घयायुतायुतै पाप ये कृत दुष्टद्विमि  
तयाभ्यस्तु तमातामसोऽतिशान्त स्वभावत । महारीरववद्दीर्घस्तथातितमसावृत  
गावधश्चरतो येन ज्ञानुणा घात एव च । अथप्रगल्घाती च नीयते शान्तसङ्कुरे ॥  
शातार्तास्तत्र घावन्लीनरास्त्रमसिगरणे । परस्पर समासाद्य परिरम्याश्रयन्ति च

दन्तास्तेवाञ्ज भन्त्यन्त शातार्त्तिपरिक्लिपता ।

मुत्तृष्णाप्रगल्घास्तत्र तथैवान्येऽप्युपद्रवा ॥ १५ ॥

हिमलण्डवहो वायुर्मिनत्यभ्यानि दारुण ।

मज्जासृग्गलितं तस्मादश्नुवन्ति शुभ्रान्विताः ॥ १६ ॥

लेलिह्यमाना भ्राम्यन्ते परस्परसमागमे । एवंतत्रापि सुमहान् क्लेशस्तमसि मानवैः  
प्राप्यते ब्राह्मणश्रेष्ठ! यावद्दुष्कृतसंक्षयः । निहन्तनइति ख्यातस्ततोऽन्योनरकोत्तमः

तस्मिन् कुलालचक्राणि भ्राम्यन्त्यचिरतं पितः! ।

अदृष्टं दृष्टवद् ब्रूयादश्रुतं श्रुतमेव च ॥ १६

एकाक्षरं गुरुं यस्तुदुराधानो न मन्यते । न शृणोतिगुरोर्वाक्यं शास्त्रवाक्यंतथैवच  
एते पापा दुराचारास्तत्रतैर्यमपूरुषैः ।

तेष्वारोप्य निहन्त्यन्ते कालसूत्रेण मानवाः ॥ २१ ॥

यमानुगाङ्गुलिस्थेन आपादतलमस्तकम् । नचैषां जीवितभ्रंशो जायते द्विजसत्तम!  
छिन्नानि तेषांशतशः खण्डान्यैक्यं व्रजन्तिच । एवंवर्षसहस्राणिछिद्यन्तेपापकर्मिणः  
तावद्यावदशेषं वै तत्पापं हि क्षयं गतम् । अत्रतिष्ठश्च नरकं शृणुष्व गदतो मम  
यत्रस्थैर्नारकैर्दुःखमसह्यमनुभूयते । स्वधर्मरतचिप्राणां विघ्नं यस्तु समाचरेत्  
सवद्वेदार्णवैःपाशैर्नीयते चक्रमङ्कुरैः । तान्येव तत्र चक्राणि घटीयन्त्राणिवान्यतः

दुःखस्य हेतुभूतानि पापकर्मकृतां नृणाम् ।

चक्रेष्वारोपिताः केचिद् भ्राम्यन्ते तत्र मानवाः ॥ २७ ॥

यावद्बर्षसहस्राणि नतेषांस्थितिरन्नरा । घटीयन्त्रेषु सैवान्यो वदस्तोये यथा घटी  
भ्राम्यन्ते मानवा रक्तमुद्गिरन्तःपुनःपुनः । अन्त्रैर्मुखविनिष्क्रान्तैर्नेत्रैरस्त्रविलम्बिभिः  
दुःखानि तेषांप्नुवन्ति यान्यसह्यानि जन्तुभिः । असिपत्रवनंनामनरकंशृणु चापरम्  
योजनानां सहस्रं योज्वलदग्न्यास्वृतावनिः ।

ब्रह्मचारिव्रतानाञ्च तपसां विघ्नमाचरेत् ॥ ३१ ॥

असिपत्रवनंयान्ति ये सदाद्वेगकारिणः । तप्ताः सूर्यकरैश्चण्डैर्यत्रातीवसुदारुणैः  
प्रपतन्ति सदा तत्र प्राणिनो नरकौकसः । तन्मध्येचघनं रम्यं स्निग्धपत्रंविभाव्यते  
पत्राणि तत्र खड्गानां फलानि द्विजसत्तम ! ।

श्वानश्च तत्र सचलाः स्वनन्त्ययुतशोभिताः ॥ ३४ ॥



महावक्त्रा महार्द्रप्राच्याघ्राय भयानका । ततस्तद्वनमालोक्य शिशिरच्छाद्यमग्रत  
प्रयान्ति प्राणिनस्तत्र तीक्ष्णदृ ( दृष्टपाप ) परिपीडिता ।

हा मातर्हा तान् ! इति मन्दन्तोऽनीय दु खिता ॥ ३६ ॥

दृश्यमानाद्दग्धियुगला धरणीन्ध्वेन घट्टिता । तेषांगतानां तत्रासिपत्रपाती समीरण  
प्रयाति तेन पात्र्यन्तेतपासङ्गास्तद्योपरि । तत्र पतन्तितेभूमौज्वलत्पावकसञ्जये  
रेल्लिह्यमाने चान्यत्र ध्याताशेषमर्हीतले । मारमेघास्तत शीघ्र शान्तयन्ति शरीरत  
तेषामद्गानि म्दतान्घघघ्घाताघर्मापणा । असिपत्रघनं तानां मयैतत् कीर्तितं तत्र  
अनं परभीमतरं तत्रकुम्भ निरोध मे । समन्ततस्तत्रकुम्भा घट्टिचालासमावृता  
ज्वलद्दग्धिघयोत्तृत्ततैलायधूर्णपूर्तिता । तेषदुष्टनकर्माणोयाम्यैक्षिता ह्यधोमुखा  
दृश्येद्धमशास्त्राणि ये चान्ये तीर्थदूपका ।

भुक्तभोगान्तु यो नारीमिष्यमाण प्रिया शुभाम् ॥ ४३ ॥

अदृष्टामपि क्षोपणं त्यजते सुदधेनन ।

नैवमार्तीयं पच्यन्ते लोहकुम्भेषु शीघ्रत ॥ ४४ ॥

वाप्यन्ते विष्णुदद्गादा ज्वलन्मद्भ्रजलाविला ।

स्फुटत्कपालनेत्रास्थिच्छिद्यमाना विभीरणै ॥ ४५ ॥

गृध्रैरुत्पाट्य मुच्यन्ते पुनस्तेष्वेव धेगितै ।

पुन सिमसिमायन्ते तैलेनैक्यं प्रजन्ति च ॥ ४६ ॥

द्रवीभूते शिरोगात्रस्तायुमासत्वगस्थिति । ततोयाम्यैर्मरैराशुदर्ष्या घट्टनघट्टिता  
हृतावर्त्से महातैले मध्यन्ते पापकर्मिणः । एतदेविस्तरैणोक्तस्तत्रकुम्भो मयापित ।  
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे पितापुत्रमघारे महारौरवादिनकाशान

घर्षणं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

## त्रयोदशोऽध्यायः

सुमतिपुत्रस्यस्वानुभूतनरकप्राप्तिक्लेशवर्णनम्

पुत्र उवाच

अहं वैश्यकुले जातो जन्मन्यस्मात्तुसप्तमे । समतीते गवां रोधं निपाने कृतवान् पुरा  
विपाकात्कर्मणस्तस्य नरकं भृशदारुणम् ।

सम्प्राप्तोऽग्निशिखाघोर ( नाथ ) मयोमुखखगाकुलम् ॥ २ ॥

यन्त्रपीडनगात्रासूक्ष्मवाहोद्भूतकर्दमम् । विशस्यमानदुष्कर्मितन्निपातरवाकुलम्  
पात्यमानस्यमे तत्र साग्रं चर्षशतंगतम् । महातापार्चिततप्तस्य तृष्णादाहान्वितस्यच  
तत्राह्लादकरः सद्यः पवनःसुखशीतलः । करम्भवालुकाकुम्भमध्यस्थे वै समागतः  
तत्सम्पर्काद्देशेपाणां नाभवद्यातना नृणाम् ।

मम चापि यथा स्वर्गे स्वगिणां निर्वृतिः परा ॥ ६ ॥

किमेतदिति चाह्लादविस्तारस्तिमितैक्ष्णैः । दृष्टमस्माभिरासन्नं नररत्नमनुत्तमम्  
याम्यश्च पुरुषो घोरो दण्डहस्तोऽशनिप्रभः । पुरतो दर्शयन्मार्गमित एहीति चागथ  
ततस्ते जन्तवः सर्वे मत्वा तद्दर्शनात्सुखम् ।

ऊचुः प्राञ्जलयो भूपं क्षणमात्रं स्थिरो भव ॥ ६ ॥

त्वद्गात्रसङ्गीपवनो ह्यस्माकंसुखकारकः । ततोऽसौ नरकाभ्याशे उपविष्टः कृपान्वितः  
पुरुषः स तदा दृष्ट्वा यातनाशतसङ्कुलम् । नरकं प्राह तं याम्यं किङ्करं कृपयान्वितः

पुरुष उवाच

भोयाम्यपुरुषाचश्चकिं मयादुष्कृतंकृतम् । येनेदं यातनाभीमंप्राप्तोऽस्मिनरकंपरम्  
विपश्चिदिति चिरुयातो जनकानामहंकुले । जातो विदेहचिपयेसम्पद्मनुजपालकः  
चातुर्वर्ण्यंस्वधर्मस्थं कृत्वा संरक्षितं मया । धर्मतो धर्मकल्पेन मनुनाऽत्र यथा पुरा  
यज्ञैर्मयेष्टं बहुभिर्धर्मतः पात्रिना गतौ । नोत्सवन्मृत्युं संग्रामो नानिधिर्निधायो मया



राजोवाच

यास्यामि देवानुघर ! यत्र त्वं मां नयिष्यसि ।

किञ्चित् पृच्छामि तन्मे त्वं यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ ८ ॥

षड्रतुण्डास्त्वमी काकाः पुंसां नयनहारिणः । पुनःपुनश्चनेत्राणितद्वदेपांभवन्ति हि  
किं कर्म कृतवन्तश्च कथयैतज्जुगुप्सितम् । हरन्त्येपांतथाजिह्वां जायमानां पुनर्नवाम्

करपत्रेण पाट्यन्ते कस्मादेतेऽति दुःखिताः ।

करम्भवालुकास्वेते पच्यन्ते तैलगोघराः ॥ ११ ॥

अयोमुखैः खगैश्चैते कृष्यन्ते किंविधावद । विस्मिद्वद्रेहयन्धार्त्तिमहारावविराविणः  
अयश्चञ्चुनिपातेन सर्वाङ्गश्चतदुःखिताः । किमेतेऽनिष्टकर्त्तारस्तुद्यन्तेऽहर्निशं नराः  
पताश्चान्याश्च दृश्यन्ते यातनाः पापकर्मिणाम् । येन कर्मविपाकेन तन्ममोद्देशतो घद्

यमकिङ्कर उवाच

यन्मां पृच्छसि भूपाल ! पापकर्मफलोदयम् । तत्तेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि संक्षेपेण यथातथम्

पुण्यापुण्ये हि पुरुषः पर्यायेण समश्नुते । भुञ्जतश्चक्षयं याति पापं पुण्यमथापि वा

नतु भोगादृते पुण्यं पापम्वा कर्म मानवः । पापकंवापुनात्याशुश्रयोभोगात्प्रजायते

परित्यजति भोगाच्च पुण्यापुण्ये निबोध मे ।

दुर्मिक्षादेव दुर्मिक्षं क्लेशात् क्लेशं भयाद्भयम् ॥ १८ ॥

मृतेभ्यः प्रमृतायान्ति दरिद्राः पापकर्मिणः ।

गतिं नानाविधां यान्ति जन्तवः कर्मबन्धनात् ॥ १९ ॥

उत्सवादुत्सवं यान्ति स्वर्गात् स्वर्गं सुखात् सुखम् ।

श्रद्धधानाश्च दान्ताश्च धनदाः शुभकारिणः ॥ २० ॥

व्यालकुञ्जरदुर्गाणि सर्पघ्नौरभयानि तु । हताः पापेन गच्छन्ति पापिनः किमतः परम्

सुगन्धिमाह्वयसद्वस्त्रसाधुयानासनाशनाः ।

स्तूयमानाः सदा यान्ति पुण्यैः पुण्यादृवीष्वपि ॥ २२ ॥

अनेकशतसाहस्रजन्मसञ्चयसञ्चितम् । पुण्यापुण्यं नृणां तद्रत्नसखदःखाडरोद्वचम

यथा पीजं हि भूपाल ! पयानि समयेक्षते ।

पुण्यापुण्ये तथा काण्डेशान्धकर्मकारकम् ॥ २४ ॥

स्वल्पं पापं हर्तुं सादेशकालोपवादितम् । पादग्यामहर्तुं दुःखकण्ठकोपप्रयच्छति  
तन् प्रभूततरं स ह्यं शूलकालकर्ममपम् । दुःखवच्छतितद्व्यशिशोरोरोगादिदुःसहम्  
अपध्याशानशातोणधमतापादिकारकम् । तद्यान्योन्यमपेशन्ते पापानि वल्लसद्गमे

एवं महान्ति पापानि क्षीयरोगादिविषियाम् ।

तद्वच्छत्राग्निदृष्ट्यासिपन्धनादिफल्यै ॥ २८ ॥

स्वल्पं पुण्यं शुभं गन्धं हेत्या समप्रयच्छति ।

स्पर्शं चाप्ययथा शब्दं रसं रूपमद्यापि वा ॥ २९ ॥

चिरात्पुण्यं तद्वन्महान्तमपि कल्पजम् । एवञ्च मुग्धु पानिपुण्यापुण्योद्भवानिवै  
भुञ्जानोऽनेकसंसारमम्भयानीह तिष्ठति । जातिदेशावयद्धानि ज्ञानाज्ञानरालानि च  
तिष्ठन्ति तत्र युक्तानि लिङ्गमात्रेण चात्मनि ।

एषुया मनसा वाचा न कदाचिन् क्वचिन्नर ॥ ३२ ॥

अदुषन् पापकं कर्म पुण्यं चाप्ययतिष्ठते । यद्यन् प्राप्नोति पुरुषोदुःखतुल्यमद्यापिवा  
प्रभूतमद्यथा स्वल्पं विम्रियाकारि चेतसः । तावता तस्य पुण्यवापापवाप्ययचेतरत्  
उपभोगात् क्षयं याति भुज्यमानमिवाशनम् ।

एवमेते महापापं यातनाभिरहर्त्रिशम् ॥ ३१ ॥

क्षययन्ति नरा घोरं नरकान्निर्विघ्नितं । तथैव राजन् पुण्यानि स्वगलोकंऽमरं सह  
गन् प्रवृत्तिज्ञापसरमां गीताघैरुपभुञ्जते । दयत्ये मानुषत्ये च तियक्त्येवशुभाशुभम्  
पुण्यपापोद्भवं भुङ्क्ते सुखदुःखोपलक्षणम् ।

यत्तु पृच्छति मां राजन् यातना पापकर्मिणाम् ।

केन केनेति पापेन तत् ते वक्ष्याम्यशयन ॥ ३८ ॥

दुष्टेन चक्षया दृष्टा परदारानराधमै । मानसेन च दुष्टेन परद्रव्यं च सस्पृहै ॥

अज्ञतुण्डा अगास्तेषां हरत्येते विलोचने । पुनः पुनश्च समूतिरक्षणेऽप्याभयत्यथ

यावतोऽक्षिनिमेयांस्तुपापमेभिर्नृभिःकृतम् । तावद्वर्षसहस्राणिनेत्रास्तिप्राप्नुवन्त्युत  
 असच्छास्त्रोपदेशास्तुयैर्दत्तार्थैश्चमन्त्रिताः । सम्यग्दृष्टेर्विनाशायरिपूणामपिमानवैः  
 यैः शास्त्रमन्यथा प्रोक्तं यैरसद्वागुदाहता । वेददेवद्विजादीनां गुरोर्निन्दाच यैः कृता  
 हरन्ति तेषां जिह्वाश्चजायमानाःपुनः पुनः । तावतोवत्सरानेतेवज्रतुण्डाःसुदाख्याः  
 मित्रभेदं तथा पित्रा पुत्रस्य स्वजनस्य च ।

यज्वोपाध्याययोर्मात्रा सुतस्य सहचारिणः ॥ ४५ ॥

भार्यापत्योश्च ये केचिद्भेदं चक्रुर्नराधमाः । त इमे पश्यपाट्यन्ते करपत्रेणपार्थिव!  
 परोपतापका ये च ये चाहादनिपेधकाः । तालवृन्तानिलस्थानचन्द्रनोशीरहारिणः  
 प्राणान्तिकं ददुस्तापमदुष्टानाञ्च येऽधमाः । करम्भवालुकासंस्थास्तइमेपापभागिनः

भुङ्क्ते श्राद्धं तु योऽन्यस्य नरोऽन्येन निमन्त्रितः ।

दैवे वाऽप्यथवा पैत्र्ये स द्विधा कृष्यते खगैः ॥ ४६ ॥

मर्माणि यस्तु साधूनामसद्वाग्भिर्निकृन्तति ।

तमिमे तुदमानास्तु खगास्तिष्ठन्त्यचारिताः ॥ ५० ॥

यः करोतिचपैशुन्यमन्यवागन्यधामतिः । पाट्यतेहिद्विधाजिह्वातस्येत्यनिशितैःक्षुरैः  
 मातापित्रोर्गुरूणाञ्च येऽवज्ञां चक्रुस्त्वताः । त इमे पूयविष्मृत्रगर्त्तमज्जन्त्यधोमुखाः  
 देवतातिथिभूतेषु भृत्येष्वभ्यागतेषु च । अभुक्त्वत्सु येऽश्रन्ति तद्वत्पित्रग्निपक्षिषु  
 दुष्टास्ते पूयनिर्यासभुजःसूचीमुखास्तु ते । जायन्तेगिरिवर्ष्माणःपश्यंतेयादृशानराः  
 एकपङ्क्त्या तु ये विप्रमथयेतरवर्णजम् । विपमं भोजयन्तीह विड्भुजस्त इमेयथा  
 एकसार्थप्रयातं येनिःस्वमर्थार्थिनंनरम् । अपास्यस्वान्नमश्नन्तितइमेश्लेष्मभोजिनः  
 गोब्राह्मणाग्नयःस्पृष्टार्थैरुच्छिष्टैर्नरेश्वर ! ॥ तेषामेतेऽग्निकुम्भेषुलेलिहन्त्याहिताःकराः

सूर्येन्दुतारका दृष्टा यैरुच्छिष्टैस्तु कामतः ।

तेषां याम्यैर्नरैर्नेत्रे न्यस्तो वह्निः समिध्यते ॥ ५८ ॥

गावोऽग्निर्जननी विप्रो ज्येष्ठमाता पिता स्वसा ।

जामयो गुरवो वृद्धा यैः स्पृष्टास्तु पदा नृभिः ॥ ५९ ॥

ब्रह्माहमयमे निगद्येतीहैरिन्द्रजापिने ।

मन्नामगामिष्यन्त्यामित्तुम्वात्रापुरादिम् ॥ ६० ॥

पापान् वृत्तं त्तान् देवायानि च यानि धे ।

भुक्तानि चैतान्कृत्वा तेषां नैकानि पापिणाम् ॥ ६१ ॥

निगानिनासा भूयुषे इदृशुणासि निरीक्षणाम् । तन्मते परकृत्प्यग्नेरैवांस्यंमुंरालन

गुरुदेवद्विजानासां यदानाञ्च मयाधमे । निगः निगामिना चैतान्पापकामिभ्यस्तः

निगामयोमवान् जीवन्निवर्त्तन् पुनः पुनः । कर्त्तुं प्रेरयन्नेतेषां पापिण्यनामनि

धे प्रगादेवविषीकोदेवात्पत्तमा शुभा ।

मन्त्रकथा विष्णुसमाप्तीना कोपलोमत्रुर्लमि ॥ ६५ ॥

मयाधमे शानेऽन्वेमुदुर्पित्तना स्वय । वृषभ बुधश्चिषवेवाम्याशरीरानिदादत्ता

गात्राज्ञानाहमागोऽप्युदेऽप्येदंविजमानवा । तेषामेकानिदृश्वग्नेमुदेनात्रात्तिपावसे

दत्त्वा कथां च वक्त्रसि द्वितीयाव प्रवच्छति ।

त स्वयं नैकथा त्तिश्च क्षारतयो प्रवच्छते ॥ ६८ ॥

स्वपापलपरो धम्नु परित्यजतिमानव । पुत्रभूयवत्त्रादिदम्नुवर्म्मविश्रम

पुमिः। मन्त्रमयापिपोऽप्येवंपमकिदूरे । इदृश्वदत्तानिगुणैस्त्वमांसान्यश्नुनेतुषा

शरणागतान् वस्यजति लोमानु उरकोषजीविष ।

नोऽप्येवं वक्त्रादाभि र्वाहते धमकिदूरे ॥ ७१ ॥

गुह्यं वे प्रवच्छन्ति पापज्ञानं हतं मया । ते त्तिप्यग्ने शिलापेरैवंछेने पापकर्मिण-

स्वासायहारिणोवद्वाः सवगात्रेषु धम्यने । इमिदृश्विषकाकोलैर्भुं उयग्नेऽद्विंशंरता

धुन्क्षामाभ्युदयमग्निज्वालान्तपो धेदनातुरा । दिवामिभुनिन पापा परदारभुजधये

तयैव कण्टकं शौचैरायसैः पश्य शान्तमलिम् ।

भारोपिता विभिन्नाङ्गाः प्रभूतासूत्रवायिला ॥ ७५ ॥

मूशयामपि पश्यैतान् ध्यायमानान् यमागुर्ग ।

पुत्रैः पुत्र्यव्याप्तः परदारधमविण ॥ ७६ ॥

उपाध्यायमधः कृत्वा स्तब्धो योऽध्ययनं नरः ।

गृह्णाति शिल्पमथवा सोऽप्येवं शिरसा शिलाम् ॥ ७७ ॥

विघ्नत् क्लेशमवाप्नोति जनमार्गेऽतिपीडितः ।

श्रुत्क्षामोऽहर्निशं भारपीडाव्यथितमस्तकः ॥ ७८ ॥

मूत्रश्लेष्मपुरीषाणि यैरुत्सृष्टानि चारिणि । त इमे श्लेष्मविण्मूत्रदुर्न्धनरकांगताः

परस्परञ्च मांसान्ति भक्षयन्ति श्रुधान्विताः ।

भुक्तं नातिथ्यविधिना पूर्वमेभिःपरस्परम् ॥ ८० ॥

अपविद्धास्तु यैर्वेदा षड्यश्चाहिताग्निभिः । तश्मेशैल्यङ्गान्नात्पात्यन्तेऽधपुनःपुनः

पुनर्भूपतयोजीर्णायावजीवन्तिये नराः । इमे कृमिद्वयमापन्नाभक्ष्यन्तेऽत्रपिपीलिकैः

नीचप्रतिग्रहादानाद्याजनान्नित्यसेवनात् । पापाणमध्यकांस्टवं नरः सततमश्नुते

पश्यतो भृत्यवर्गस्य मित्राणामतिथेस्तथा ।

एको मिष्टान्नभुग् भुङ्क्ते ज्वलद्रङ्गारसञ्चयम् ॥ ८४ ॥

वृकैर्भयङ्करैः पृष्टंनित्यमस्योपभुज्यते । पृष्टमांसं नृपैतेन यतो लोकस्यमक्षितम्

अन्धोऽथ वधिरोमूकोभ्राम्यतेऽयंक्षुधातुरः । अकृतज्ञोऽधमःपुं सामुपकारेपुवर्त्तताम्

अयं कृतघ्नो मित्राणामपकारी सुदुर्मतिः । तत्रकुम्भेनिपतितोविलपन्यातिशोषणम्

करम्भवालुकां तस्मात्ततो यन्त्रावपीडनम् । असिपत्रचनंतस्मात् करपत्रेणपाटनम्

कालसूत्रे तथा च्छेदमनेकाश्चैव यातनाः । प्राप्य निष्कृतिमेतस्मान्नवेदिकथमेप्यति

श्राद्धेसङ्गतिनो चिप्राः समुपेत्य परस्परम् ।

दुष्टा हि निःसृतं फेनं सर्वाङ्गैर्मयः पिबन्ति वै ॥ ९० ॥

सुवर्णस्तेयी विप्रघ्नः सुरापो गुरुतल्पगः । अथश्चोद्दुर्ध्वञ्चदीप्ताग्नीदह्यमानाःसमन्ततः

तिष्ठन्त्यद्दसहस्राणि सुवह्नि ततः पुनः ।

जायन्ते मानवाः कुष्ठक्षयरोगादिचिह्निताः ॥ ९२ ॥

मृताः पुनश्च नरकं पुनर्जाताश्चतारुशाम् । व्याधिमृच्छन्तिकल्पान्तपरिमाणंनराधिप

गोघ्नो न्यूनतरं याति नरकेऽथ त्रिजन्मनि । तथोपपातकानाञ्च सर्वेषामितिनिश्चयः



नरकप्रच्युता यान्ति यैर्ये विहितपातके.

प्रयान्ति योनिजातानि तन्मे निगदत शृणु ॥ १५ ॥

इतिथी मार्कण्डेयपुराणे यमकिङ्करसंवादे स्वकृतकर्मभुक्तिवर्णननाम  
चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

### पञ्चदशोऽध्यायः

वृकृत्यप्रभावान्मानादुष्टयोनिजनवर्णनम्

यमकिङ्कर उवाच

पतितात्प्रतिगृह्यार्थं खरयोर्नि प्रजेद्विज । नरकात्प्रतिमुक्तस्तुष्टमि पतितयाजक-  
उपाध्यायध्वलीक तु हृत्वा श्वा भवति द्विज ।

तज्जाया मनसा पाञ्चत्र तद्द्रव्यं चाप्यसशयम् ॥ २ ॥

गर्दभो जायते जन्तु पित्रोश्चाप्यघमानक । मातापितराद्यान्नुद्यसारिकासम्प्रजायते  
भ्रातु पत्न्यवमन्ता च कपोतत्व प्रपद्यते । तामेव पीडयित्वा तु कच्छपत्वप्रपद्यते  
मर्तुं पिण्डमुपाश्रन् यस्तदिष्ट न निषेवते । सोऽपि मोहसमापन्नो जायते वानरो मृत  
न्यासापहर्त्ता नरकाद्विमुक्तो जायते इमि । अमृत्यकश्च नरकान्मुक्तो भवति राक्षस-  
चिन्वासहन्ता च नरो मीनयोर्गो प्रजायते ।

धान्यं यवास्त्रिलान्माषान् कुलत्थान् सर्पपाक्षणान् ॥ ७ ॥

कलायान् कलमान्मुद्गान् गोधूमानतसीस्तथा ।

शस्यान्यन्यानि चा हृत्वा मोहाज्जन्तुरचेतन ॥ ८ ॥

सज्जायते महावक्त्रो मूयिको वन्नसन्निभ । परदारामिमर्षान् वृको योरोऽभिजायते  
श्वा शृगालो वक्रो गृध्रो व्याल कडूस्तथा क्रमात् ।

भ्रातृभाष्यां च दुर्बुद्धिर्षो धर्षयति पापहृत् ॥ १० ॥

पुंस्कोकिलत्वमाप्नोति स चापि नरकाच्च्युतः ।

सखिभार्यां गुरोर्भार्यां राजभार्याञ्च पापकृत् ॥ ११ ॥

प्रधर्षयित्वा कामात्मा शूकरो जायते नरः । यजदानविवाहानां विघ्नकर्त्ता भवेत्कृमिः  
पुनर्द्राता तु कन्यायाः कृमिरेवोपजायते । देवतापितृचिप्राणामदत्त्वा योऽन्नमश्नुते  
प्रमुक्तो नरकात्सोऽपि वायसः सम्प्रजायते । ज्येष्ठं पितृसमं चापि भ्रातरं योऽवमन्यते  
नरकात्सोऽपि विघ्नष्टः क्रौञ्चयोर्नोप्रजायते । शूद्रश्च ब्राह्मणर्णागत्वा कृमियोर्नोप्रजायते  
तस्यामपत्यमुत्पाद्य काष्ठान्तःकोटको भवेत् । शूकरः कृमिकोमद्गुश्चण्डालश्च प्रजायते  
अकृतज्ञोऽधमः पुंसां विमुक्तो नरकात्तरः । कृतघ्नः कृमिकः कोटः पतङ्गो वृश्चिकस्तथा

मत्स्यस्तु घायसः कूर्मः पुङ्गवो जायते ततः ।

अशस्त्रं पुरुषं हत्वा नरः सञ्जायते खरः ॥ १८ ॥

कृमिः स्त्रीवधकर्त्ता च बालहन्ता च जायते ।

भोजनं चोरयित्वा तु मक्षिका जायते नरः ॥ १६ ॥

तत्राऽप्यस्ति विशेषो वै भोजनस्य शृणुष्व तत् ।

हत्वाऽन्नन्तु स मार्जारो जायते नरकाच्च्युतः ॥ २० ॥

तिलपिण्याकसंमिश्रमन्नं हत्वा तु मूषकः । घृतं हत्वा च नकुलः काकोमद्गुरजामिषम्

मत्स्यमांसापहृत्काकः श्येनो मेपोमिपापहृत् ।

चीरीवाकस्त्वपहृते लवणे दधनि कृमिः ॥ २२ ॥

चोरयित्वा पयश्चापि बलाका सम्प्रजायते । यस्तु चोरयते तैलं तैलपायी स जायते  
मधुहत्वानरो दंशोऽपूषं हत्वा पिपीलिका । चोरयित्वा तु हविष्यान्नं जायते गृहगोधकः

आसवश्चोरयित्वा तु तित्तिरित्वमवाप्नुयात् ।

अयो हत्वा तु पापात्मा घायसः सम्प्रजायते ॥ २५ ॥

पात्रेकां स्येऽपि हारीतः कपोतोरौप्यभाजने । हत्वा तु काञ्चनं भाण्डं कृमियोर्नोप्रजायते  
कौशेयं चोरयित्वा चक्रवाकत्वमृच्छति । कोपकारश्च कौपेये हृते घस्त्रेऽभिजायते  
दुकूले शार्ङ्गकः पापो हृते चैवांशुके शुक्रः । ऋक्षश्चैवाविकं हत्वा च स्त्रं क्षीमञ्च जायते

कार्पासिके हने कौञ्चो पाद्मेर्हर्तायकस्तथा । मयूरोवर्णकान् हृत्याशाकपत्रञ्जजार  
जीवञ्जीवकर्ता याति रक्षयस्त्रापहृन्नरः ।

ध्रुवुन्दरिः शुभान् गन्धान्घासो हृत्वा शशो भवेत् ॥ ३० ॥

खञ्ज. पलालहरणान् काष्ठदृष्टं पुणर्काटकः । पुष्पापहृद्दिरिद्धं पङ्कुर्यानापहृन्नर  
शाकहर्ता घहारीतस्तोपहृत्तां चचातरः । भूमिदृन्नरकान् गत्वारीखाश्चीन्सुदारुण  
तृणगुल्मलतावह्नित्वक्सारतस्ता कमात् । प्राप्यक्षीणाल्पपापस्तुनरो भवतिधैत  
वृषस्य वृषणी छित्त्वा पण्डत्पद्मानुयान्नरः ।

परिहृत्य तथा भूयो जग्मनामेकविंशतिः ॥ ३१ ॥

हृमिः कीटः पतङ्गोऽथ पक्षी तोयचरो मृगः ।

गोत्व प्राप्य च चाण्डालपुल्कसादि जुगुप्सितम् ॥ ३२ ॥

पङ्कवन्धो यधिरकुष्ठोयश्मणा चप्रपीडितः । मुखरोगाक्षिरोगैश्चगुदरोगैश्चयाध्य  
अपस्मारी च भवति शूद्रत्वं च न गच्छति । एषस्वक्मोदृष्टो गोसुवर्णापहारिणा  
चिद्यापहारिणाचैव निष्वयन्नंशितागुरोः । आयामन्यस्यपुरुष पारक्याप्रतिपादय  
प्राप्नोति पण्डतामद्रोयातनाभ्य परिच्युत । य करोतिनरोहोममसमिद्धेविभावस्  
सोऽजीर्णव्याधिदुःखास्तो मन्दाग्नि सम्प्रजायते ।

परनिन्द्रा हृतघ्नत्वं परमर्मावघट्टनम् ॥ ४० ॥

नैष्ठुर्यं निर्घृणत्तश्च परदारोपसेवनम् । परस्वहरणाशाश्च देवतानाञ्च कुत्सनम्  
निहृत्यावञ्जनं नृणाकार्पण्यञ्चदृष्टनावधः । यानिचप्रतिपिद्धानि तद्वृत्तिचप्रशसता  
उपलक्ष्याणि जानीयान्मुक्ताना नरकादनु । दया भूनेषु संवादः परलोकप्रतिक्रि  
सत्यं भूतहितायोर्किर्वेदप्रामाण्यदर्शनम् । गुरुदेवविंसिद्धविपुजनं साधुसङ्ग  
सत्क्रियाम्यसन मैत्रीमिति बुद्धये त पण्डितः ।

अन्यानि चैव सद्धर्मक्रियामृतानि याति च ॥ ४५ ॥

स्वर्गच्युताना लिङ्गानि पुरुषाणामपापिनाम् । एतदुद्देशतोराजन्भवत कथितंम  
स्यकर्मफलभोक्त्रा पुण्याना पापिनां तथा । तदेतन्न्यत्रगच्छामोदृष्टं सर्वंत्वयाधु

त्वया दृष्टो हि नरकस्तदेहान्यत्र गम्यताम् ॥ ४८ ॥

पुत्र उवाच

ततस्तमग्रतः कृत्वा स राजागन्तुमुद्यतः । ततश्च सर्वैरुत्कृष्टं यातनास्यायिभिर्नृभिः  
प्रसादं कुरु भूपेति तिष्ठ ताघन्मुहूर्त्तकम् । त्वदङ्गसङ्गीपघनो मनो ह्लादयते हि नः ॥  
परितापञ्च गात्रेषु पीडावाधाश्च कृत्स्नशः । अपहन्ति नरव्याघ्र! दयां कुरुमहीपते  
एतच्छ्रुत्वा वचस्तेषां तं याग्यपुरुषं नृपः ।

पप्रच्छ कथमेतेषामाह्लादो मयि तिष्ठति ॥ ५२ ॥

किं मया कर्म तत्पुण्यं मर्त्यलोके महत्कृतम् । आह्लाददायिनी दृष्टिर्येनेयं तदुदीरय  
यमपुरुष उवाच

पितृदेवातिथिप्रेष्यशिष्टेनान्नेन ते तनुः । पुष्टिमभ्यागता यस्मात्तद्गतञ्च मनो यतः  
ततस्त्वद्गात्रसंसर्गो पघनो ह्लाददायकः । पापकर्मकृतो राजन्! यातना न प्रयाधते  
अश्वमेधादयो यज्ञास्त्वयेष्टाविधिघद्यतः । ततस्त्वद्दर्शनाद्याम्या यन्त्रशस्त्राग्निवायसाः  
पीडनच्छेददाहादिमहादुःखस्य हेतवः । मृदुत्वमागता राजन्! तेजसोपहृतास्तव  
राजोवाच

न स्वर्गे ब्रह्मलोके वा तत्सुखं प्राप्यते नरैः । यदार्त्तजन्तुनिर्वाणदानोत्थमिति मे मतिः  
यदि मत्सन्निधावेतान् यातना न प्रयाधते ।

ततो भद्रमुखाऽत्राहं स्थास्ये स्थाणुस्त्रिवाचलः ॥ ५६ ॥

यमपुरुष उवाच

एहि राजेन्द्र! गच्छामि निजपुण्यसमार्जितान् ।

भुङ्क्ष्व भोगानपास्येह यातनाः पापकमणाम् ॥ ६० ॥

राजोवाच

तस्मान्न तावद् यास्यामि यावदेते सुदुःखिताः ।

मत्सन्निधानात्सुखिनो भवन्ति नरकौकसः ॥ ६१ ॥

धिक् तस्य जीवितं पुंसः शरणार्थिनमात्रम् । योनार्त्तमनुगृह्णाति वैरिपक्षमपि ध्रुवम्

यद्भयानतपांसीह परब्रह्म न भूतये । भवन्ति तस्य यम्यात्तपरिवापे न मानस  
 नरस्व यस्य ऋष्टिन मनोवालातुरादियु । वृद्धेषु च न त मन्ये मानुष राक्षसो हि  
 एतेषा सन्निकर्षांस्तु यद्यन्निपरितापजम् । तथोपग्रन्धर्ष घापि दुःख नरकसम्भव  
 क्षुत्पिपासाभव दुःखं यच्चमृन्डाप्रर्षमहन् । विनाशमेतितद्गद्ग मन्येस्वगमुखापा  
 प्राप्स्यन्त्यात्तां यदि सुख यदयो दुःखिते मयि ।

किन्तु प्राप्त मया न स्यात्तस्मात्त्व मय मा घितम् ॥ ६७ ॥

यमपुरेण उवाच

एष धर्मश्च शत्रुश्च त्वा नेतु समुपागती ।

अवश्यमस्माद्गन्तव्यं तस्मात् पार्थिव ! गम्यताम् ॥ ६८ ॥

धर्म उवाच

नयामित्थामह स्वर्गं त्वया सम्यगुपासित । विमानमेतद्दृष्ट्वा प्राविलम्बस्व गम्यता  
 राजोवाच

नरके मातया धर्म! पीडयन्तेऽत्र सदृशश ।

आहीति घात्ता ऋन्दन्ति मामतो न वचाम्यहम् ॥ ७० ॥

इन्द्र उवाच

कर्मणा नरकप्राप्तिरेतेषा पापकर्मिणाम् । स्वर्गं स्वर्गपापिगन्तव्योऽप्युपुण्यैर्न कर्म  
 राजोवाच

यदिजानासिधर्मं त्वं त्वं वा शक्यं शचीपते ! । प्रमयावत्प्रमाणं तु शुभतद्वक्तुमर्हं  
 धर्म उवाच

अग्निन्द्वयो यथाम्भोर्धौ यथा वा दिवि तारका ।

यथा वा घर्षतो धारा गङ्गाया सिकता यथा ॥ ७३ ॥

असहस्रैर्यामहाराजश्रानायोनिषु भन्तव । तथा तत्रापिपुण्यस्य सङ्ख्या नैवोपपद्यं  
 अनुकम्पामिमामद्य नारकेष्विह कुचत । तदेव शनसाहस्र सङ्ख्यामुपगतं तत्र  
 तद्ब्रूच्छ त्वं वृषधेष्ठ ! तद्बोक्तुममरालयम् । एतेऽपि पावनरके क्षपयन्तु स्वकर्मजम्

राजोवाच

कथं स्पृहां करिष्यन्ति मत्सम्पर्केषु मानवाः ।  
यदि मत्सन्निधावेषामुत्कर्षो नोपजायते ॥ ७७ ॥  
तस्मात् यत् सुकृतं किञ्चिन्ममाऽस्ति त्रिदशाधिप ॥  
तेन मुच्यन्तु नरकात् पापिनो यातनां गताः ॥ ७८ ॥

इन्द्र उवाच

एवमूर्ध्वतरंस्थानंत्वयाचारमंहीपते! । एतांश्चनरकात्पश्यविमुक्तान् पापकारिणः

पुत्र उवाच

ततोऽपतत् पुष्पवृष्टिस्तस्योपरि महीपतेः ।  
विमानञ्चाऽधिरोष्यैनं स्वर्लोकमनयद्धरिः ॥ ८० ॥  
अहंचान्ये च ये तत्रयातनाभ्यःपरिच्युताः । स्वकर्मफलनिर्दिष्टं ततो जात्यन्तरंगताः  
एवमेते समाख्याता नरका द्विजसत्तम! ।  
येन येन च पापेन यां यां योनिमुपैति वै ॥ ८२ ॥  
तत्तत् सर्वं समाख्यातं यथादृष्टं मया पुरा । पुरानुभवजं ज्ञानमवाप्य कथितं तव ॥  
अतः परं महाभाग! किमन्यत् कथयामि ते ॥ ८३ ॥  
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे पितापुत्रसम्वादे नरकोद्धारवर्णनं नाम

## पोडशोऽध्याय.

### पुत्रेणपित्रेमोक्षमार्गशिक्षणवर्णनम्

पितोवाच

कथितमेत्वयावत्स'ससारस्यव्यवस्थितम् । स्वरूपमतिहेयस्यघटीयन्त्रवदप्ययम्  
तदेवमेतद्विदुः मयावगतमीदृशम् । किं मया वदकर्तव्यमेवमस्मिन् व्यवस्थिते ॥

पुत्र उवाच

यदिमद्वचनं तात' धर्मास्यविशुद्धित् । त'परित्यज्यगार्हस्थ्यं दानप्रस्थपरो भव  
तमनुष्ठायविधिवद्विहायाग्निपरिग्रहम् । आत्मन्यात्मानमाधायनिर्द्वन्द्वोनिष्परिग्रह  
एकान्तशालोचश्यात्मा भवभिभुरतन्द्रित् । तत्र योगपरोभूत्वावाह्यन्पशविर्जित  
ततः प्राप्स्यसि तं योगदुःखसयोगमेवजम् । मुक्तिहेतुमनौपम्यमनाल्येयमसङ्कितम्  
तत् सयोगाश्च ते योगो भूयो भूतैर्भविष्यति ॥ ६ ॥

पितोवाच

वत्स' योगममाऽऽश्चमुक्तिहेतुमतः परम् । येनभूते पुनर्भूतोनेदृग्दुःखमथाप्नुयाम्  
यत्राशक्तिपरस्यात्मा ममससारबन्धने । नैतियोगमयोगोऽपि तं योगमधुना वद  
ससारादित्यतापार्त्तिविप्लुष्यद्देह ( हि ) मानसम् ।  
ब्रह्मज्ञानाम्बुशीतेन सिञ्च मां वाक्यधारिणा ॥ ६ ॥

अविद्याकृष्णसर्पेण दष्टं तद्विषपीडितम् । स्ववाक्यामृतज्ञानेन मां जीवयपुनर्मुक्तम्  
पुत्रदारगृहेक्षेत्रममत्पनिगडादितम् । मां मोक्षयेष्टसद्वाचविज्ञानोद्धारणैस्त्वरन् ॥

पुत्र उवाच

शृणुतात' यथायोगो दत्तात्रयेणधीमता । अलंकार्यपुराप्रोक्तं सम्यक्पृष्टेनविस्तरात्  
पितोवाच

दत्तात्रेय सुत कस्यकथंवायोगमुक्तवान् । कश्चात्को महाभागो योयोगपरिपृष्टवान्

पुत्र उवाच

कौशिको ब्राह्मणः कश्चित् प्रतिष्ठानेऽभवत्पुरे ।

सोऽन्यजन्मकृतैः पापैः कुष्ठरोगातुरोऽभवत् ॥ १४ ॥

तं तथा व्याधितं भार्ग्या पतिं देवमिवार्चयत् ।

पादाभ्यङ्गाङ्गसंवाहस्तानाच्छादनभोजनैः ॥ १५ ॥

श्लेष्ममूत्रपुरीपासृक्प्रवाहक्षालनेन च । रहश्चैवोपचारेण प्रियसम्भाषणेन च ॥

सततं पूज्यमानोऽपिसदातीवचिनीतया । अतीवतीव्रकोपत्वाच्चिर्भत्सयतिनिष्ठुरः

तथापिप्रणता भार्ग्यातममन्यतदैवतम् । तं तथाप्यतिवीभत्सं सर्वश्रेष्ठममन्यत

अचङ्क्रमणशीलोऽपि स कदाचिद्द्विजोत्तमः ।

प्राहभार्या नयस्वेति त्वं मां तस्या निवेशनम् ॥ १६ ॥

यासा वेश्यामया दृष्टाराजमार्गे गृहोपिता । तां मां प्रापयधर्मज्ञे! सैव मे हृदि वर्तते

दृष्ट्वा सूर्योदये चाला रात्रिश्चैयमुपागता । दर्शनानन्तरं सा मे हृदयान्नापसर्पति ॥ २१

यदि साचारुसर्वाङ्गीपीनश्रोणिपयोधरा । नोपगृह्णतितन्वङ्गी!तन्मांद्रक्ष्यसिचैमृतम्

धामः कामोमनुष्याणां बहुभिःप्रार्थ्यतेचसा । ममाशक्तिश्च गमनेसङ्कुलंप्रतिभातिमे

तत्तदावचनं श्रुत्वाभर्तुः कामातुरस्य सा । तत्पत्नीसत्कुलोत्पन्ना महाभागापतिव्रता

गाढं परिकरंवद्भवाशुल्कमादायघाधिकम् । स्कन्धेभर्त्तारमादायजगाममृदुगामिनी

निशि मेवास्तुते व्योम्नि चलद्विद्युत्प्रदर्शिते ।

राजमार्गे प्रियं भर्तुं श्चिकीर्षन्ती द्विजाङ्गना ॥ २६ ॥

पथि शूले तथाप्रोतमघोरंघोरशङ्कया । माण्डव्यमतिदुःखार्त्तमन्धकारेऽथ सद्विजः

पत्नीस्कन्धे समारूढश्चालयामास कौशिकः ।

पादावमर्षणात् कुड्मो माण्डव्यस्तमुवाच ह ॥ २८ ॥

यैनाहमेवमत्यर्थं दुःखितश्चालितः पदा । दशांकप्रामनुप्राप्तः स पापात्मा नराधमः

सूर्यादयेऽवशःप्राणैर्विद्योक्ष्यति नसंशयः । भास्करालोकमादेवसचिनाशमवाप्स्यति

तस्यभार्याततः श्रुत्वा तं शापमतिदारुणम् । प्रोवाच व्यथितासूर्योत्तैचोदयमुपेप्यति



ततःसूर्यो दद्यात्प्राणान्ममत् सन्तता निशा । यदृष्यह प्रमाणानि ततो देवा भयं ययु-  
नि न्वाध्मायवपत्कारन्वधास्वाहायिर्वाहितम् ।

कथं नु स्वल्पिदं सर्वं न गच्छेत् सक्षयं जगत् ॥ ३३ ॥

सहोरात्रव्यवस्थाया विना मासतुं सक्षय । तत्सक्षयात्प्रवचने ज्ञायते दक्षिणोत्तरे  
विना चायनविज्ञानान् कालं सवत्सरं कुत । सवत्सरं विना नान्यत्कालज्ञानप्रवर्तते  
पतिव्रतापावचनान्नोद्गच्छति दिवाकर । सूर्योऽयं विना नैव ज्ञानदानादिका क्रिया  
नाग्नेर्विहरणं च यथा यथा लभ्यते । न कालेन विना चेष्टिनं च यज्ञादिका क्रिया  
नश्यन्ति सर्वभूतानि तमोभूते चराचरे । नैवाप्यायनमस्माकं विना होमेन जायते  
वयमाप्यायिना मर्त्यैर्यज्ञभागैर्यथोचितैः ।

वृष्ट्यादिनातु गृह्णीमो मर्त्यान् ग्राम्यादिमिदृशे ॥ ३६ ॥

निष्पादितास्वोर्धीषु मर्त्या यज्ञैर्यजन्ति न ।

तेषां वयं प्रयच्छामः कामान् यज्ञादिपूजिता ॥ ४० ॥

अधोहि वषां वयं मर्त्याश्चोद्गुर्ध्वं प्रथगिणः । तोयवर्षेण हिवयं हविर्वर्षेण मानवा-  
येनास्माकं प्रयच्छन्ति नित्यनैमित्तिका क्रिया ।

ऋतुभागं दुरा मानः स्वयं वा ( वा ) श्रन्ति लोलुपा ॥ ४२ ॥

विनाशाय वयं तेषां तोयसयाग्निमाहृतान् । क्षितिञ्जसन्दूपयाम पापानामपकारिणाम्  
दुष्टतोयादिभोगेन तेषां दुष्टकर्मिणाम् । उपसर्गां प्रवर्त्तन्ते मरणाय सुदारुणा  
ये त्वस्मान् प्रीणयित्वा तु भुञ्जन्ते शेषमात्मना ।

तेषां पुण्यान् वयं लोकात् विदधाम महात्मनाम् ॥ ४५ ॥

( तेषां पुण्यतर्माह्लोकान् विदधामो महात्मनाम् । )

तज्जास्ति सचमेव तद् विनैषा व्युष्टिसंस्थितिम् ।

कथं नु दिनसर्गं न्यादन्योन्यमवदन् सुरा ॥ ४६ ॥

तेषामेव समेताना यज्ञव्युच्छित्तिशङ्किनाम् । देवानावचनश्रुत्वाप्राह देव प्रजापति-  
तेज पर तेजसैव तपसा च तपस्तथा । प्रशाम्यत्यमरास्तस्माच्छुणुष्व वचनं मम

पतिव्रतायामाहात्म्यात्तोद्गच्छति दिवाकरः । तस्य सानुदयाद्भानिर्मर्त्यानां भवतां तथा  
तस्मात् पतिव्रतामत्रे स्नसूयां तपस्विनीम् । प्रसादयत वै पर्त्वा भानोरुदयकाम्यया

पुत्र उवाच

तैः सा प्रसादिता गत्वा प्राहेष्टं दियतामिति । अत्रान्त दिने देवा भवत्वितियथापुरा

अनसूयोवाच

पतिव्रताया माहात्म्यं न हीयेत कथन्त्विति ।

सम्मान्य तस्मात्तां साध्वीमहः ( तथाप्रेष्याम्यहं ) स्रक्ष्याम्यहं सुराः ॥ ५२

यथा पुनरहोरात्रसंस्थानमुपजायते । यथा च तस्याः स्वपतिर्न साध्व्यानाशमेप्यति

पुत्र उवाच

एवमुक्त्वा सुरांस्तस्या गत्वा सामन्दिरं शुभा । उवाच कुशलं पृष्ट्वा धर्मं भर्तुं स्तथात्मनः

अनसूयोवाच

कञ्चिन्नन्दसि कल्याणि ! स्वमर्तुं मुखदर्शनात् ( मुखदायिनी ) ।

कञ्चिच्चाखिलदेवेभ्यो मन्यसे ऽभ्यधिकं पतिम् ॥ ५ : ॥

भर्तुं शुश्रूषणादेवमया प्राप्तं महत् फलम् । सर्वकामफलावाप्तिः प्रत्यृहाः परिवर्तिताः

पञ्चर्णानि मनुष्येण साध्वि ! देयानि सर्वदा । तथात्मवर्णधर्मणकर्त्तव्यो धनसञ्चयः

प्राप्तश्चार्थस्ततः पात्रे विनियोज्यो विधानतः । सत्यार्जवतपोदानैर्दथायुको भवेत्सदा

क्रियाश्च शास्त्रनिर्दिष्टा रामद्वेषविचर्जिताः । कर्त्तव्याश्च न च हंश्रद्धापुरस्कारेण शक्तिः

स्वजातिविहितानेवं लोकानाप्नोति मानवः ।

कलेशेन महता साध्वि ! प्राजापत्यादिकान् क्रमात् ॥ ६० ॥

स्त्रियस्त्वेवं समस्तस्य न रैर्दुःखार्जितस्य वै । पुण्यस्यार्द्धापहारिण्यः पतिशुश्रूषयैव हि

नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न श्राद्धं नाप्युपोषितम् ।

भर्तुं शुश्रूषयैवैतान् लोकानिष्ठान् व्रजन्ति हि ॥ ६२ ॥

तस्मात् साध्वि ! महामागे ! पतिशुश्रूषणं प्रति ।

त्वया मतिः सदा कार्या यतो भर्ता परा गतिः ॥ ६३ ॥



ततो विवस्वान् भगवान् फुल्लपद्मारुणाकृतिः । शैलराजानमुदयमारुरोहोरुमण्डलः  
समनन्तरमेवास्या भर्ता प्राणैर्व्ययुज्यत । पपात च महीपृष्ठे पतन्तं जगृहे च सा

अनसूयोवाच

नविपादस्त्वयाभद्रे ! कर्त्तव्यः पश्यमेवलम् । पतिशुश्रूषयावाप्तं तपसः किञ्चिरेण(ति)मे  
यथाभर्तृ समनान्यमपश्यं पुरुषं क्वचित् । रूपतःशीलतोबुद्धत्यावाङ्माधुर्यादिभूपणैः  
तेनसत्येन विप्रोऽयं व्याधिमुक्तः पुनर्युवा । प्राप्नोतुजीवितंभार्यासहायः शरदांशतम्  
यथाभर्तृसमं नान्यमहं पश्यामि दैवतम् । तेन सत्येन विप्रोऽयं पुनर्जीवत्वनामयः  
कर्मणा मनसा वाचा भर्तुराराधनंप्रति । यथाममोद्यमो नित्यंतथायंजीवतां द्विजः

पुत्र उवाच

ततोविप्रःसमुत्तस्थौव्याधिमुक्तःपुनर्युवा । स्वभाभिर्भासयन्वेश्मवृन्दारकइवाजरः  
ततोऽपतत् पुष्पवृष्टिर्देववाद्यानि सस्वनुः । लेभिरे च सुदं देवाअनसूयामथाऽब्रुवन्

देवा ऊचुः

घरंवृणीष्वकल्याणिदेवकार्यमहत्कृतम् । आदित्योदयसद्भावाद्घरंवरयसुव्रते !।

त्वया यस्मात्ततो देवा वरदास्ते तपस्विनि !। ८६ ॥

अनसूयोवाच

यदि देवाः प्रसन्ना मे पितामहपुरोगमाः । वरदा वरयोग्या च यद्यहं भवतां मता  
तद्यान्तु मम पुत्रत्वं ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । योगंच प्राप्नुयां भर्तृसहिता क्लेशमुक्तये

पुत्र उवाच

एवमस्त्वितितांदेवाब्रह्मविष्णुशिवाद्यः । प्रोक्ताजगुर्मुर्यान्ध्यायमनुमान्यतपस्विनीम्  
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे पितापुत्रसम्वादे अनसूयावरप्राप्तिवर्णनं नाम

षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ \*

\* इतःपरंमोहमयीस्थ वेङ्कटेश्वरयन्त्रालयमुद्रितपुराणग्रन्थे सप्तदशाष्टा-  
दशाध्यायौ षोडशोऽस्मिन्नध्यायेऽन्तर्भावंप्रापितौ मुद्रितौतत्वा-  
नुसन्धित्सुभिःसुधीभिरवलोकनीयम् ।

सप्तदशोऽध्यायः  
दत्तात्रेयोत्पत्तिर्णनम्  
पुत्र उवाच

तत्र काले यदुतिथे द्वितीयो ब्रह्मणः सुत । स्वभायांभगवानत्रिरनसूयामपश्यत्  
ऋतुघ्नातां सुवार्चद्वीं लोभनीयोत्तमावृत्तिम् ।

सवामो मनसा भेदे न मुनिस्तामनिन्दिताम् ॥ २ ॥

तस्याभिपश्यतस्तां (अभिध्यायत) तु विकारो योऽन्वनायत ।

तमेवोवाह पवनस्तिरच्छोदुर्ध्वञ्च वेगवान् ॥ ३ ॥

ब्रह्मरूपञ्च शुक्लाम पतमान समन्तत । सोमरूप रजोपेत दिशस्त जगृहुर्दश ॥  
स सोमो मानसो जज्ञे तस्यामत्रे प्रजापते । पुत्र समरुतसत्वानामायुरागारणवध  
तुष्टेन विष्णुनायज्ञेदत्तात्रेयोमहा मना । स्वशरीरात्समुत्पाद्यसत्वोद्विजोद्विजोत्तम  
दत्तात्रेय इति ख्यातः सोऽनुसूयास्तन पथी ।

विष्णुरेवाऽवर्तार्णोऽसौ द्वितीयोऽत्रे सुतोऽभवत् ॥ ७ ॥

सप्राहात्प्रच्युतो मानुरुदरत्कुपितो यत । हैहयेन्द्रमुपावृत्तमपराध्यन्तमुद्धतम् ॥  
दृष्ट्वात्रो कुपित सयो दग्धुक्काम सहेहयम् । गर्भंवासमहायासदुःखामपंसमन्वित  
दुवासास्तमसोद्विको रद्राश समजायत । इति पुत्रत्रय तस्या जज्ञेऽश्वेष्वप्यम्  
सोमो ब्रह्मामवद्विष्णुदत्तात्रेयोव्यजायत । दुर्वासा शङ्करोजशेखरदानाद्विर्वाक्साम्  
सोम स्वरश्मिभि शीतैर्वीरुर्वापधिमातवान् ।

वाप्याययन् सदा स्वर्गे वतते स प्रजापति ॥ १२ ॥

दत्तात्रेयः प्रजा पाति दुर्द्वैत्यनिग्रहणात् । शिष्टानुग्रहदृष्टो गीज्ञेयश्चाश सवैष्णवः  
निर्द्वैत्यवमन्तार दुर्वासा भगवानज । रौद्र समाधित्य वपुर्द्वंजनोवाग्मिरुद्धत ॥  
सोमत्व भगवानत्रि पुनश्चक्रे प्रजापति । दत्तात्रेयोऽपि विषयान्योगस्योवुभुजेहरि

दुर्वासाः पितरं हित्वा मातरं चोत्तमं व्रतम् ।

उन्मत्ताख्यं समाश्रित्य परिवभ्राम मेदिनीम् ॥ १६ ॥

मुनिपुत्रवृत्तोयोगीदत्तात्रेयोऽप्यसङ्गिताम् । अभीप्स्यपमानःसरसिनिमज्जच्चिरंप्रभुः

तथापि तं महात्मानमतीव प्रियदर्शनम् । तत्यजुर्न कुमारास्ते सरसस्तीरमाश्रिताः

दिव्ये वर्षशते पूर्णे यदातेनत्यजन्तितम् । ततःप्रीत्यासरसस्तीरंसर्वेमुनिकुमारकाः

ततो दिव्याम्बरधरां सुरूपां सुनितम्बिनीम् ।

नारीमादाय कल्याणीमुत्तार जलान्मुनिः ॥ २० ॥

स्त्रीसन्निकर्पाद्यद्येते परित्यक्ष्यन्ति मामिति ।

मुनिपुत्रास्ततो योगे स्थास्यामीति विचिन्तयन् ॥ २१ ॥

तथापि ते मुनिस्तुता न त्यजन्ति यदामुनिम् । ततः सहतयानार्यामद्यपानमथापिचत्

सुरापानरतं तेन सभार्यं तत्यजुस्ततः । गीतवाद्यादि वनिताभोगसंसर्गदूषितम् ॥

मन्यमाना महात्मानं तया सह घहिष्क्रियम् ।

नावाप दोषं योगीशो धारुर्णां स पिचन्नपि ॥ २४ ॥

अन्तावसायिवेशमान्तर्मातरिश्वावसन्निव ।

सुरां पिबन्सपत्नीकस्तपस्तेपे स योगचित् ॥

योगीश्वरश्चिन्त्यमानो योगिभिर्मुक्तिकाङ्क्षिभिः ॥ २५ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे दत्तात्रेयोत्पत्तिवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

# अष्टादशोऽध्यायः

द्वारात्रं यमहिममर्णनम्

पुत्र उपाय

काम्यचित्त्यथ काम्य वृत्तर्षीर्षात्मजाऽर्जुन ।

एतर्षीर्षे दिव याते मन्त्रिणि सपुरोहिते ॥ १ ॥

परिरेखाऽऽत्माभिनेकथं समाहृतोऽप्रर्षादिदम् ।

नाह राज्यं कल्पिष्यामि मन्त्रिणो नरकोत्तरम् ॥ २ ॥

यद्यं गृह्णते शुभ्य तदनिष्पादयन् गृधा । पण्यानां द्वादशभागंभूयात्पणित्जन

द्व्याऽऽमरशिभिर्नागं रक्षितो याति दम्पुन ।

गोपाथ गृह्णतवादे पञ्चभागश्च एर्षावरा ॥ ४ ॥

द्वयान्यदुभूमुनेदद्यभिभागंततोऽधिकम् । पण्यार्षीनामशापांषणित्जोऽर्जुनस्ततः

अग्निदोषतप सत्यं देवानां शेषमाधनम् । आतिथ्यचैश्चदेवं च इष्टमित्यभिधीयते

वार्षाकृपतडागानि देवतायतनानि च । अथज्ञानमर्षिभ्य पूर्णमित्यभिधीयते ॥

इष्टानूत्तविनाशाय तडाग्रश्चैरर्षिभिः ।

पथस्ये पथ्यते ऋकस्तदुपूषवन्तरसंधित ॥ ८ ॥

गृह्णतो कल्पिष्यद्भाग गृह्णतेनरको भूयम् । निरुपितमिदं राज पूर्वेत्सपयेतनम् ॥

अर्षाश्चैरर्षांषंनदेनेऽवतभयम् । तस्मात्परि तपस्वत्पथ्यत्रतोयोगिषमीधितम्

भुवत्पत्न्यामप्यपुनरवामरीपति । पृथिव्यांशस्त्रभूद्भान्यस्त्वहमेव द्विसंयुत

ततो मर्षिभ्ये नामानं कल्पिष्ये पापमाहितम् ॥ १२ ॥

पुत्र उपाय

तस्य तद्विधायं ज्ञात्वा मन्त्रिमये स्थितोऽप्रर्षीत् ।

गणो नाम महानुत्तिमुत्तिभूषणं वयोऽस्तिग ॥ १३ ॥

भक्त्या तु रूपया विष्टुस्तं तोषयितुमर्हति ॥ १० ॥

यद्येवं कर्तुकामस्त्वं राज्यं सम्यक् प्रशासितुम् ।

ततः शृणुष्व मे वाक्यं कुरुष्व च नृपात्मज ॥ ११ ॥

दत्तात्रेयं महाभागं सहद्रोणीकृताश्रमम् । तमाराध्य भूपाल पाति यो भुवनत्रयम्

योगयुक्तं महाभागं सर्वत्र समदर्शिनम् । विष्णोरंशं जगद्धातुरवतीर्णं महीतले ॥

यमाराध्य सहस्राक्षः प्राप्तवान्पद्मात्मनः । हतं दुरात्मभिर्दैत्यैर्जवान च दितेः सुतान्

अर्जुन उवाच

कथमाराधितो देवैर्दत्तात्रेयः प्रतापवान् । कथञ्चापहतं दैत्यैरिन्द्रत्वं प्राप वासवः

गर्ग उवाच

देवानां दानवानाञ्च युद्धमासीत्सुदारुणम् । दैत्यानामीश्वरे जम्भेदेवानाञ्च शचीपती

तेषाञ्च युध्यमानानां दिव्यः संवत्सरो गतः ।

ततो देवाः पराभूता दैत्या विजयिनोऽभवन् ॥ १७ ॥

विप्रचित्तिमुखैर्देवा दानवैस्ते पराजिताः । पलायनकृतोत्साहा निरुत्साहा द्विपज्जये

वृहस्पतिमुपागम्य दैत्यसैन्यवधेप्सवः । अमन्त्रयन्तसहितावालखिल्यैस्सहर्षिभिः

वृहस्पतिरुवाच

दत्तात्रेयं महात्मानमत्रेः पुत्रं तपोधनम् । विकृताचरणं भक्त्या सन्तोषयितुमर्हथ

सवो दैत्यविनाशाय वरदो दास्यते वरम् । ततो हनिष्यथसुरासहितादैत्यदानवान्

गर्ग उवाच

हन्तुं शक्ता न सन्देहो दत्तात्रेयप्रसादतः ।

इत्युक्त्वास्ते तदा जग्मुर्दत्तात्रेयाश्रमं सुराः ।

ददृशुश्च महात्मानं तं ते लक्ष्म्या समन्वितम् ॥ २२ ॥

उद्वीयमानं गन्धर्वैः सुरापानरतं मुनिम् । ते तस्य गत्वाप्रणतिमवदन्साध्यसाधनम्

स्रक्ः स्तवं चोपजहूर्भक्ष्यभोज्यस्नगादिकम् ।

तिष्ठन्तमनुतिष्ठन्ति यान्तं यान्ति दिवोकसः ॥ २४ ॥



भाराधयामासुरथ न्मिनास्तिष्ठन्तमासने । सप्राहप्रणतान्देवान्दत्तात्रेय'किमिष्यते  
मत्तो भवद्विर्येनेय शुभ्रूपा त्रिपने मम ॥ २५ ॥

देवा ऊचु

दानवैर्मुनिशार्दूल' जम्भायैर्भु'र्षादिकम् ।

हृत प्रैलोक्यमाक्रम्य व्रतुभागाश्च हृत्केश' ॥ २६ ॥

तद्बन्धे कुरु बुद्धिं त्व परित्राणाय नोऽनघ ! ।

त्वत्प्रसादादभीप्साम पुन प्राप्त त्रिचिष्टपम् ॥ २७ ॥

दत्तात्रेय उवाच

मघासन्नोऽहमुच्छिष्टोनर्घैवाहजितेन्द्रिय । कथमिच्छथमत्तोऽपिदेवा शत्रुपराभवम्

देवा ऊचु

अनघस्त्व जगन्नाथ' न लेपस्तयधियते । विद्याक्षालनशुद्धान्तर्निविष्टज्ञानदीधिते ।

दत्तात्रेय उवाच

सत्यमेतत्सुराविद्याममास्ति समदर्शिन । अस्यास्तुयोपित सङ्गादहमुच्छिष्टतागतः

स्त्रीसम्भोगो द्वि दोषाय सातत्येनोपसेधित । एवमुक्तास्ततोदया पुनर्वचनमब्रुवन्

देवा ऊचु

अनघेय द्विजश्रेष्ठ' जगन्माता न दुष्यति ।

यासा विद्या तव विमो' सर्वज्ञस्य हृदिस्थिता ॥ ३२ ॥

न दुष्यति जगन्नाथ ! तथेयवरघर्णिनी । यथाशुमालासूर्यस्य द्विजघण्डालसङ्घिनी

गर्ग उवाच

एवमुक्तस्ततोदेवैर्दत्तात्रेयोऽब्रवीद्विदम् । प्रहस्यत्रिदशान्सर्चान् यद्येतद्भवता मतम्

तदाह्वयासुरान् सर्चान् युद्धायसुरसत्तमाः । इहानयतमद्ब्रह्मिणोचर मा विलम्बताम्

मद्ब्रह्मिणोतद्दुतभुक्त प्रक्षीणचलतेजस । येननाशमशेषास्ते प्रयान्ति मम दर्शनात् ॥

गर्ग उवाच

तस्यतद्ब्रह्मन धृत्या देवैर्देव्या महायला । बाह्वयायसमाहृता जग्मुर्देवगणाश्रमम्

ते हन्यमाना दैतयैर्देवाःशीघ्रं भयातुराः । दत्तात्रेयाश्रमं जग्मुः समेताः शरणार्थिनः  
 तमेव विविशुर्देव्याः कालयन्तो दिवोकसः । दद्रुशुश्चमहात्मानं दत्तात्रेयं मदालसम्  
 वामपार्श्वस्थितामिष्टामशेषजगतां शुभाम् ।

भाष्यार्थाज्ञास्य सुचार्वङ्गीं लक्ष्मीमिन्दुनिभाननाम् ॥ ४० ॥

नीलोत्पलाभनयनां पीनश्रोणिपयोधराम् ।

सुदतीं मधुराभायां सर्वैर्योपिद्रुगुणैर्युताम् ॥ ४१ ॥

तेतां दृष्ट्वाग्रतो दैत्याःसाभिलाषामनोभवम् । नशेकुरुद्धतंधैर्यान्मनसा वोढुमातुराः  
 त्यस्त्ववा देवान् स्त्रियं तां तु हर्तुकामा हर्तोजसः ।

प्रेरितास्तेन पापेन संसक्तास्ते ततोऽब्रुवन् ॥ ४२ ॥

स्त्रीरत्नमेतत्त्रैलोक्ये सारं नोयदि वै भवेत् । कृतकृत्यास्ततःसर्वङ्गतिनोभावितंमनः  
 तस्मात् सर्वे समुत्क्षिप्य शिविकायां सुरार्दनाः ।

धारोप्य स्वमधिष्ठानं नयाम इति निश्चिताः ॥ ४५ ॥

गर्ग उवाच

सानुरागास्ततस्ते तु प्रोक्ताश्चेत्थं परस्परम् ।

तस्य तां योषितं साध्वीं समुत्क्षिप्य स्मरार्दिताः ॥ ४६ ॥

शिविकायां समारोप्य सहिता दैत्यदानवाः ।

शिरःसु शिविकां कृत्वा स्वस्थानाभिमुखं ययुः ॥ ४७ ॥

दत्तात्रेयस्ततोदेवान् विहस्येदमथाऽब्रवीत् ।

दिप्ट्या वर्द्धथ ( स हन्त ) दैत्यानामेषा लक्ष्मीः शिरोगता ।

सप्तस्थानान्यतिक्रान्या नवमन्यमुपैष्यति ॥ ४८ ॥

देवा ऊचुः

कथयस्वजगन्नाथ ! केपुस्थानेष्ववस्थिता । पुरुषस्य फलंकिवाप्रयच्छत्यथनश्यति

दत्तात्रेय उवाच

नृणां पदे स्थिता लक्ष्मीर्निलयं सम्प्रयच्छति ।

सर्वधन्योश्च संस्थिता धत्ते तथा नानाविध धसु ॥ ५० ॥

कलत्रञ्चगुह्यमस्थाक्रोडस्यापत्यदापिनी । मनोरथान् पुरयतिपुरवाणाहृदिस्थिता  
लक्ष्मीर्लक्ष्मीवता श्रेष्ठा कण्ठस्थाकण्ठभूषणम् ।

अर्माष्टवन्धुदारैश्चतथादलेष प्रवामिभि ॥ ५२ ॥

सृष्टानुवाक्यलावण्यमाज्ञामबितघातथा । मुखस्थिताकवित्त्वचयच्छत्युदधिसम्भवा  
शिरोगता सन्त्यजनि ततोऽन्य याति चाश्रयम् ।

सेयं शिरोगता सैतान् ( दैत्यान् ) परित्यक्ष्यति साग्रतम् ॥ ५४ ॥

प्रगृह्याऽन्त्राणि धन्यन्ता तस्माद्देने सुरारय ।

न भेतव्यं भृशत्वेते मयानिहनेज्जम कृता । परदारवमर्षाश्च दम्भपुण्याहतौजस्त-  
तस्माद्देते विहन्यन्ता भवद्विरविशङ्किते ।

गमं उवाच

ततन्तेविविधैरस्त्रैर्धयमाना सुरारय ।

मृष्टिं लक्ष्म्या समाक्रान्ता विनेशुरिति न धृतम् ॥ ५६ ॥

लक्ष्मीश्चोत्पत्य सम्प्राप्ता दत्तात्रेय महामुनिम् ।

स्नूयमानासुरैः सर्वैर्देवनाशान् मुदा विवर्ते ॥ ५७ ॥

प्रणिपत्य ततो देवा दत्तात्रेयं मनीषिणम् ।

जयवृष्ण जगन्नाथ ! दैत्यान्तक ! हर प्रभो ! ॥ ५८ ॥

नारायणाःपुतानन्तैः वासुदेवाक्षयांजर ।

त्पन्प्रसादात्सुखं लक्ष्मीं राज्यं सम्पन्ननादेन ।

शाङ्गधन्यक्षयपाणे भक्ताना नित्यपरत्सल ॥ ५९ ॥

( इतिस्तुत्या नाकपृष्ठं यथापूर्वं गता सुरा )

नाकपृष्ठमनुमाता यथापूर्वं गतज्वरा ॥ ६० ॥

तथा स्वमपि राजेन्द्र'पर्दाच्छसियथेस्मितम् । मानुर्मैश्वर्यमनुलवर्णमाराधयत्यतम्

इति धर्माकण्डेयपुराणे दत्तात्रेयमाहात्म्यवर्णननामाष्टादशोऽध्याय ॥ १८ ॥

## एकोनविंशोऽध्यायः

कार्तवीर्यार्जुनकृतदत्तात्रेयोपासनवर्णनम्

पुत्र उवाच

इत्यृषेवचनं श्रुत्वा कार्तवीर्यीं नरेश्वरः । दत्तात्रेयाश्रमंगत्वा तं भक्त्या समपूजयत्  
पादसम्वाहनाद्येन मध्वाद्याहरणेन च । स्रक्चन्दनादिगन्धाम्युफलाद्यानयनेन च  
तथान्नसाधनैस्तस्य उच्छिष्टापोहनेन च । परितुष्टो मुनिर्भूषं तमुवाच तथैव सः

ययैवोक्ताः पुरा देवा मद्यभोगादिकुत्सनम् ।

स्त्री चैयं मम पार्श्वस्थेत्येतद्भोगाच्च कुत्सितम् ॥ ४ ॥

जडैवाहं न मामेवमुपरोद्भुं त्वमर्हसि । अशक्तमुपकाराय शक्तमाराधयस्व भोः ॥

जड उवाच

तेनैवमुको मुनिना स्मृत्वागर्गवधश्चनत् । प्रत्युवाचप्रणम्यैनं कार्तवीर्यार्जुनस्तदा

अर्जुन उवाच

( देवस्त्वं हि पुराणो यः स्वां मायां समुपाश्रितः )

किं मां मोहयसे देव! स्वांमायांसमुपाश्रितः । अनवस्त्वंतथैत्रेयं देवीसर्वभवारणिः

इत्युक्तः प्रीतिमान् देवोभूयस्तं प्रत्युवाच ह । कार्तवीर्यमहाभागंवशीकृतमहीतलम्

घरं वृणीष्व गुह्यं मे यत् त्वया समुदीरितम् ।

तेन तुष्टिः परा जाता त्वय्यद्य मम पार्थिव ! ॥ ६ ॥

ये न मां पूजयिष्यन्ति गन्धमाल्यादिभिर्नराः ।

मांसमद्योपहारैश्चमिष्टान्नेश्चाऽऽज्यसंयुतैः ॥ १० ॥

लक्ष्मीसमेतं गीतैश्चब्राह्मणानां तथाचर्चनैः । वाद्यैर्मनोरमैर्घोणावेणुशब्दादिभिस्तथा

तेपामहं परां तुष्टिं पुत्रदारधनादिकम् । प्रदास्याम्यवधूतश्चहनिष्याम्यवमन्यताम्

स त्वं धरय भद्रं ते घरं यन्मनसेच्छसि । प्रसादसुमुखस्तेऽहं गुह्यनामप्रकीर्तनात्

कात्तवीर्यं उवाच

यदिदेव ! प्रसन्नस्त्वत्प्रयच्छिद्धिमुत्तमाम् । ययाप्रजा पालयेऽहंनद्याधमंमधाप्नुयाम्  
परानुसरणे ज्ञानमप्रतिद्वन्द्वता रणे । सहस्रमन्नमिच्छामि बाहूनां लक्ष्मतागुणम् ॥  
असङ्गागतय सन्तुशीलाकाशाम्बुभूमिषु । पातालेषु च सर्वेषु पथध्याप्यधिकान्नरात्  
तथोन्मार्गप्रवृत्तस्य सन्तु सन्मार्गदेशिका ।

सन्तु मेऽतिथयः श्लाघ्या वित्तदाने तथाक्षये ॥ १७ ॥

अनष्टद्रव्यता राष्ट्रे ममानुस्मरणेन च । त्वयि भक्तिर्ममेवास्तु नित्यमव्यभिचारिणी  
दत्तात्रेय उवाच

यत्रतेकीर्तिना सर्वैतान्वरान्पमवाप्स्यसि । मप्रसादाद्यभयिताद्यक्रवर्त्तित्वमैश्वरम्  
( पुत्र ) अड उवाच

प्रणिपत्य ततस्तस्मै दत्तात्रेयायसोऽर्जुन । आनाय्य प्रवृत्ती सम्यगभिपेक्षमगृह्यत  
आगताश्चाऽपि गन्धर्वास्तथैवाऽप्सरसा गणा ।  
ऋषयश्च धसिष्टाद्यमेवाद्या पवतास्तथा ॥ २१ ॥

गङ्गाया सरित सर्वासमुद्रान्नसम्भवा । प्लक्ष्याद्याश्चतथावृक्षा देवा वै वासवाद्यः  
वासुकिप्रमुखानागात्रभिपेक्षापमागता । ताक्ष्याद्याःपक्षिणश्चैवपीराजानपदास्तथा  
सम्मारा सम्भृता सर्वेदत्तात्रेयप्रसादत । अयसञ्ज्वाल्यतैर्बह्विदैर्पैत्रंहादिभि सह  
नारायणेनामिपित्तो दत्तात्रेयस्वरूपिणा । समुद्रैश्चनदीभिश्चऋषिभिश्चाभिपेक्षित  
आधोपयामास तदा स्थितो राज्ये सहैहय ।

दत्तात्रयात् परामृद्धिमषाप्यातिबलान्वितः ॥ २६ ॥

अद्यप्रभृतिपशास्त्रमामृतेऽन्योप्रहीप्यति । हन्तव्य समयादस्यु परार्हिसास्तोऽपिधा  
इत्याहतेन तद्राष्ट्रे कश्चिदायुधधृडनरः । तमृत पुरुषव्याघ्र बभूवोरुपराक्रमम् ॥  
सपवप्रामपालोऽभूत् पशुपालः सएवच । क्षेत्रपालः सएवासीद्वृद्धिजातीनाश्चरक्षिता  
तपस्विना पालयिता सार्धंपालस्तुसोऽभवत् ।

दस्युष्यालाग्निशस्त्रादिभयेष्वर्धो निमज्जताम् ॥ ३० ॥

अन्यासुचैव मग्नानामापत्सुपरवीरहा । स एव संस्मृतः सद्यः समुद्धर्ताऽभवन्नृणाम्  
अनष्टद्रव्यता चासीत्तस्मिन् शासतिपार्थिवे । तेनेष्टं बहुभिर्यज्ञैः समाप्तवरदक्षिणैः ॥  
तेनैवच तपस्तप्तं संग्रामेष्वतिचेष्टितम् । तस्यर्द्धिमतिमानञ्च दृष्ट्वाप्राहाङ्गिरा मुनिः ॥

न नूनं कार्त्तवीर्यस्य गर्ति यास्यन्ति पार्थिवाः ।

यज्ञैर्दानैस्तपोभिर्वा संग्रामे चाऽतिचेष्टितैः ॥ ३४ ॥

दत्तात्रेयाद्विने यस्मिन् सम्प्राप्तर्द्धिं नरेश्वरः ।

तस्मिंस्तस्मिन् दिने यागं दत्तात्रेयस्य सोऽकरोत् ॥ ३५ ॥

तत्रैव सप्रजाः सर्वास्तस्मिन्नहनि भूपतेः । तस्यर्द्धिपरमां दृष्ट्वा यागञ्चक्रुःसमाधिना  
इत्येतत्तस्य माहात्म्यं दत्तात्रेयस्य धीमतः । विष्णोश्चराचरगुरोरनन्तस्यमहात्मनः  
प्रादुर्भावाः पुराणेषु कथ्यन्ते शार्ङ्गधन्वनः । अनन्तस्याप्रमेयेस्य शङ्खचक्रगदाभृतः  
एतस्य परमं रूपं यश्चिन्तयति मानवः ।

स सुखी स च संसारात् समुत्तीर्णोऽचिराद्भवेत् ॥ ३६ ॥

सदैव वैष्णवानाञ्च भक्त्याहंसुलभोऽस्मि भोः । इत्येवंयस्यवैवाचस्तंकथं नाश्रयेज्जनः  
अधर्मस्य विनाशायधर्मास्वारार्थमेव च । अनादिनिधनोदेवः करोतिस्थितिपालनम्  
तथैव जन्म चाख्यातमलकं कथयामि ते । तयाच योगः कथितोदत्तात्रेयेण तस्यर्द्धिं

पितृभक्तस्य राजर्षेरलर्कस्य महात्मनः ॥ ४३ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे दत्तात्रेयोपाख्यानवर्णनंनानामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

## विशोऽध्यायः

शत्रुजिदुपाख्यानेतु मलयाश्रीयवर्णनम्

( पुत्र )जड उवाच

प्रागवभूवमहावीर्यं शत्रुजिद्वाम पार्थिव । तुतोप यस्य यज्ञेपुसोमायापत्यापुरन्दर  
तस्यात्मजो महावीर्यो बभूवाऽरिविदारण ।

बुद्धिचिक्ममलावण्यैर्गुणशक्ताश्विभि सम ॥ २ ॥

स समानवयोबुद्धिसत्त्वचिक्ममचेष्टिनै । नृपपुत्रो नृपसुतैर्नित्यमास्ते समावृत ॥  
कदाचिच्छास्त्रसम्भारविधेककृतनिश्चय । कदाचित् काव्यसँह्यापगीतनाटकसम्भवं  
तथैवाक्षचिनोदैश्च शास्त्रास्त्रविनयेषु च ।

योग्यानि बुद्धनागाश्वस्यन्दनाभ्यासतत्पर ॥ ५ ॥

रेमे नरेन्द्रपुत्रोऽसौ नरेन्द्रतनयै सह । यथैव हि दिवा तद्ब्रह्मात्रावपि मुदा युत ॥  
तेषां तुक्रीडता तत्रद्विजभूपविशा सुता । समानवयस प्रीत्यारन्तुमापिन्त्यनेकश'  
कस्यचिन्वद्य कालस्य नागलोकान्महीतलम् ।

कुमारावागतौ नागौ पुत्रावश्वतरस्य तु ॥ ८ ॥

ब्रह्मरूपप्रतिच्छत्रौ तरुणौ प्रियदर्शनौ । तीतेनृपसुते साद्रे तथैवान्यैर्द्विजन्मभि  
चिनोदैर्विभिर्धैस्तत्र तस्थतु प्रीतिसयुतौ । सर्वेचने नृपसुतास्तेच ब्रह्मविशासुता  
नागराजात्मजौ तौ च स्नानसंघाहनादिकम् ।

वस्त्रगन्धानुसयुक्ता चक्रुर्भागभुजिज्जियाम् ॥ ११ ॥

बहन्यहन्यनुग्रामे तौ चनागकुमारकौ । आजग्मतुमुदा युक्तौ प्रीत्या सुनोर्महीपते  
स च ताभ्यामनृपसुत परनिर्वाणमात्रवान् । चिनोदैर्विभिर्धैर्हास्यसलापादिभिरेषच  
चिना ताभ्या न बुभुजे न सस्त्रौनपपौ मधु । नररामन जग्राह शास्त्राण्यात्मगुणद्वये  
रसातले च तौ रात्रिं चिना तेन महात्मना ।

निःश्वासपरमौ नीत्वा जग्मतुस्तं दिने दिने ॥ १५ ॥

मर्त्यलोके पराप्रीतिर्भवतोः केनपुत्रकौ । सहेति पप्रच्छ पिता तावुभौ नागदारकौ  
दृष्टयोरत्र पाताले वह्नि दिवसानि मे । दिवा रजन्यामेवोभौ पश्यामि प्रियदर्शनी

जड उवाच

इति पित्रा स्वयंपृष्टौ प्रणिपत्य कृताञ्जली । प्रत्यूचतुर्महाभागानुरगाधिपतेः सुतौ

पुत्रावूचतुः

पुत्रःशत्रुजितस्नात ! नाम्नाख्यातऋतध्वजः । रूपवानार्जवोपेतः शूरो मानीप्रियंवदः

अनावृत ( पृष्ट ) कथोवाग्मी विद्वान् मैत्रो गुणाकरः ।

मान्यमानयिता धीमान् श्रीमान् विनयभूषणः ॥ २० ॥

तस्योपचारसम्प्रीतिसम्भोगापहृतं मनः । नागलोकेभुवोलोकेन रतिं विन्दते पितः

तद्वियोगेन नस्तात ! निशापातालशीतलाम् । परितापायतत्सङ्गादाहादायरविर्दिवा

पितोवाच

पुत्रः पुण्यवतोऽधन्यःसयस्यैवंभवद्विधैः । परोक्षस्यापिगुणिभिःक्रियतेगुणकीर्तनम्

सन्ति शास्त्रविदोऽशीलाः सन्ति मूर्खा सुशीलिनः ।

शास्त्रशीले समं मन्ये यस्मिन् धन्यतरं तु तम् ॥ २४ ॥

यस्य मित्रगुणान् मित्राण्यमित्राश्च पराक्रमम् ।

कथयन्ति सदा सत्सु पुत्रवांस्तेन वै पिता ॥ २५ ॥

तस्योपकारिणः कच्चिद्भवद्भ्यामभिवाञ्छितम् ।

किञ्चिन्निष्पादितं घत्सौ ! परितोपाय चेतसः ॥ २६ ॥

सधन्योजीवितंतस्यतस्य जन्मसुजन्मनः । यस्यार्थिनोनविमुखामित्रानर्थेच दुर्बलः

मद्गृहे यत्सुवर्णादि रत्नंवाहनमासनम् । यच्चान्यत्प्रीतयेतस्यतद्देयमविशङ्क्या

धिकं तस्य जीवितं पुंसो मित्राणामुपकारिणाम् ।

प्रतिरूपमकुर्वन् यो जीवामीत्यघगच्छति ॥ २६ ॥

उपकारंसुहृद्गर्गे योऽपकारं च शत्रुपु । नृमेवो वर्पति प्राज्ञस्तस्येच्छन्ति सदोन्नतिम्



## पुत्रायुचतु

किं तस्य दृष्टं दृश्यं कर्तुं शक्येत केनचित् । यस्य मया धिनो गृहे सर्वं कामं स्याद्विधा  
यानि रक्षानि तद्गृहे पाताले तानि न पुन । धादनासतयानानि भूषणा यम्बराणि  
विज्ञानं तत्र यथास्ति तद् यत्र न विद्यत । प्राज्ञानामप्यमो तात । सर्वसद्देहहृत्तम  
एकं तस्य विहितं कर्तव्यममाध्यतद्य मोक्षतम् । दिश्यागर्भगोविन्दरावादीनां भ्रमणदूरे

## पितोपाध

तथापि धानुमिच्छामि तस्य यत्कायमुत्तमम् ।

अमाध्यमद्यथा माध्यं किं वाऽमाध्यं विपश्चिन्ताम् ॥ ३४ ॥

दप्यममरशब्धं तस्युच्यते मानसम् । प्रयान्ति धाञ्छ्रितं धान्यदुष्टदयेष्वपसायिन  
नाऽपिज्ञानं तथाऽगम्यं नाऽप्राप्यं द्विषि चेद् वा ।

उद्यतानां मनुष्याणां यतचित्तेन्द्रियात्मनाम् ॥ ३७ ॥

यो जनानासहस्राणि न न्याति विपरीतिक । अगच्छन्पैतनेयोऽपि पादमेकतगच्छति  
हभूतं च चर्माध्यं स्थानं यत् प्राप्तवान् ध्रुव । उत्तानपादनृपत पुत्रसन्भूमिगोधर  
तत्कथ्यतां महाभागं कायवान्येतपुत्रकौ । सभूपालमुत साधुर्येनादृष्यमभवत् धाम

## पुत्रायुचतु

तेनाख्यातमिदं तात । पूषतृप्त महात्मना । कौमार्ये यथा तस्य वृत्तं सद्बृत्तरालिन  
तस्य ( तन्तु ) शत्रुजितं तात । ( तात ) पूर्वं कथितं द्विजोत्तम ।

गालघोऽभ्यागमर्द्धीमान् गृह्णात्या तुरगोत्तमम् ॥ ४२ ॥

प्रत्युवाच च राजान स मुनूषेयाऽऽश्रम मम ।

कोऽपि देत्याधमो राजन् । विधत्स्वयति पापहृत् ॥ ४३ ॥

तत्तद्वृषं समास्थाय सिद्धे भवतधारिणाम् । अन्ये वाञ्छात्पकायानामहर्निशमकारणात्  
समाधिध्यानयुक्तस्य मौनव्रतरतस्य च । तथाऽरोति धिग्नानियथा नेच्छामि पार्थिव  
दग्धु कोपाग्निनासद्य समधस्त्ववयततु । दुःखार्जितस्य तपसोऽप्ययमिच्छामि पार्थिव  
एकदा तु मयारा न प्रतिनिर्विण्णचेतसा । तत्केशितैरनिभ्वासो निरीक्ष्यासुरमुज्झित

ततोऽम्बरतलात् सद्यः पतितोऽयं तुरङ्गमः ।

वाक् चाऽशरीरिणी प्राह नरनाथ ! शृणुष्व तत् ॥ ४८ ॥

अश्रान्तः सकलं भूमेर्वलयं तुरगोत्तमः । समर्थः क्रान्तुमर्केण तवायं प्रतिपादितः  
पातालाम्बरतोयेषु न चास्य विहतागतिः । समस्तदिक्ष्व्रजतो न भङ्गः पर्वतेष्वपि  
यतो भूवलयं सर्वमश्रान्तोऽयंचरिष्यति । ततःकुवलयोनाम्नाख्यातिलोकेप्रयास्यति  
क्लिश्यत्यहर्निशं पापो यश्च त्वां दानवाधमः । तमप्येनं समारुह्यद्विजश्रेष्ठ!हनिष्यति  
शत्रुजिन्नामभूपालस्तस्य पुत्रऋतध्वजः । प्राप्यैतदश्वरत्नञ्च ख्यातिमेतेन यास्यति

सोऽहं त्वां समनुप्राप्तस्तपसो विघ्नकारिणम् ।

तं निवारय भूपाल ! भागभाङ्गनृपतिर्यतः ॥ ५४ ॥

तदेतदश्वरत्नं ते मया भूप ! निवेदितम् । पुत्रमाज्ञापयतथा यथाधर्मो न लुप्यते ॥  
स तस्य घचनाद्राजा तं वै पुत्रमृतध्वजम् । तमश्वरत्नमारोप्य कृतकौतुकमङ्गलम्  
अप्रेषयत धर्मात्मा गालवेन समं तदा । स्वमाश्रमपदं सोऽपि तमादाय ययौ मुनिः  
ईत श्रीमार्कण्डेयपुराणे पितापुत्रसम्वादे कुवलयाश्वीयवर्णनं नाम

विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

## एकविंशोऽध्यायः

नागराजतत्पुत्रसम्वादेऋतध्वजविक्रमवर्णनम्

पितोवाच .

गालवेनसमं गत्वा नृपपुत्रेणतेन यत् । कृतंतत्कथ्यतांपुत्रो ! विचित्रायुचयोः कथाः

पुत्रावूचतुः

स गालवाश्रमे रम्ये तिष्ठन्नगोपालनन्दनः । सर्वविघ्नोपशमनं चकार ब्रह्मवादिनाम्  
वीरं कुवलाश्वं तं वसन्तं गालवाश्रमे । मदावलेपोपहतो नाजानाद्दानवाधमः ॥ ३

ततस्तं गालवं विर्यं सन्धयोशासनतन्परम् । शौकरं रूपमान्ध्याय प्रथयन्पितुमागतम्  
मुनिशिष्यैरघोत्कृष्टे शीघ्रमात्स्य तं हृद्यम् । मन्वधावद्वराहं तं शृपुत्र शरासनी  
धाजवान च धापेन चन्द्राङ्गाकारवचंसा । मातृप्यथलपथापञ्जादचिथोपशोमितम्  
नाराचामिहत शीघ्रमात्मशरणपरो मृगः ।

गिरिपादपसम्बन्धा सोऽन्वकामग्मदाटधीम् ॥ ७ ॥

तमन्वधावद्वेगेन तुरगोऽसौ मतो जय । घोदितो राजपुत्रेण पितुषदेशकारिणा ॥  
अतिव्रम्याऽधरोगेन योक्रानानि सहस्रश । धरण्या चितृने गर्जे निपपान लघुक्रमः  
तस्यानन्तरमेवाऽथ सोऽप्यर्ध्वी नृपते सुत । निपपान महागर्जे तिमिरौचसमावृते  
ततो नादृश्यत मृगः स तस्मिन् शत्रुमनुना ।

प्रकाराञ्च स पातालमपश्यन्न चार्शिया ॥ ११ ॥

तत्रोऽपश्यन् स मौवर्णप्रासादरानसङ्कुलम् । पुरन्दरपुरप्रख्यं पुरं प्राकारशोमितम्  
तन् प्रविश्य स नापश्यन्न कञ्चिन्नर पुरे ।

भ्रमता च ततो दृष्टा तत्र योपित्वरान्विना ॥ १३ ॥

सा पृष्ठा तेन तन्वद्वा प्रस्थिता केन कस्य वा ।

नोवाच किञ्चिन् प्रासादम्राहरोह च मामिनी ॥ १४ ॥

सोऽप्यभ्येकतोयदृग्वातामेवानुससार वै । विस्मयोत्कुह्यनयनोनि शङ्कोनृपते सुतः  
ततोऽपश्यत् सुविस्तीर्णं पर्यङ्के सर्वकाञ्चने ।

निपण्णा कन्यकामैकां कामयुक्ता रतीमिव ॥ १६ ॥

विस्पण्णेषु मुर्खां सुभ्रू पीनधोणिपयोधराम् ।

विग्नाधरोष्ठीं तन्वद्गीं नीलोत्पलविलोचनाम् ॥ १७ ॥

रक्तनुङ्गनर्षीं श्यामा मृद्धीं ताम्रकराङ्गिकाम् ।

करभोरु सुदशना नीलसूक्ष्मस्थिरालकाम् ॥ १८ ॥

ता दृष्ट्वा चारुसर्वाङ्गीमनद्गागलनामिव । सोऽमन्यत्पार्थिवसुतस्तारसातलदेवताम्  
सा च दृष्ट्वैव तं बाला नालकुञ्चिनमूर्द्धजम् । पीनोरुस्कन्धबाहुतममस्तमदन शुभा

उत्तस्थौ च महाभागा विसृक्षोभमवाप सा ।

लज्जाविस्मयदैर्न्यानां सद्यस्तन्वी घशं गता ॥ २१ ॥

कोऽयं देवो नु यक्षो वा गन्धर्वो घोरगोऽपि वा । विद्याधरो घासंप्रातःकृतपुण्यरतिर्नरः  
एवंचिन्वित्ययहुध्रानिःश्वस्य च महीतले । उपविश्यततोभेजे सामूच्छ्रामद्विरेक्षणा  
सोऽपि कामशरावातमवाप्यनृपतेः सुतः । तांसमाश्वासयामास न भेतव्यमितिब्रुवन्  
सा च स्त्री यातदादृष्टा पृथं तेनमहात्मना । तालवृन्तमुपादाय पर्यर्चीजयदाकुला ॥ १

समाश्वास्य तदा पृष्टा तेन सम्मोहकारणम् ।

किञ्चिल्लज्जान्विता बाला तस्याः सख्यं न्यवेदयत् ॥ २६ ॥

साचास्मै कथयामास नृपपुत्राय विस्तरात् । मोहस्य कारणं सर्वं तद्दर्शनसमुद्भवम्  
यथा तथा समाख्यातं तद्बृत्तान्तञ्च भामिनी ॥ २७ ॥

सख्यु ( सख्यु ) इवाच

विश्वावसुरिति ख्यतो द्विचि गन्धर्वराट् प्रभो ! ।

तस्येयमात्मजा सुभ्रूत्रांघ्रा ख्याता मदालसा ॥ २८ ॥

षड्रकेतोः सुतश्चोग्रोदानवोऽरिचिदारणः । पातालकेतुर्विख्यातः पातालान्तरसंश्रयः  
तेनेयमुद्यानगता कृत्वा मायां तमोमयीम् । अपहृत्य मया हीना बालानीतादुरात्मना  
आगामिन्यां त्रयोदश्यामुद्दक्ष्यतिकिलासुरः । सनुनार्हतिस्त्वावङ्गीशूद्रोवेदश्रुतीमिष

अतीते ष दिने बालामात्मध्यापादनोद्यताम् ।

सुरभिः प्राह नायं त्वां प्राप्स्यते दानवाधमः ॥ ३२ ॥

मर्त्यलोकमनुप्राप्तं यएनं भेतस्यते शरैः । सते भर्ता महाभागो! अचिरेण भविष्यति  
अहं चास्याः सखी नाम्ना कुण्डलेति मनस्विनी ।

सुता विन्ध्यवतः पत्नी वीर ! पुष्करमालिनः ॥ ३४ ॥

हते भर्त्तरि शुम्भेन तीर्थात्तीर्थमनुवता । चरामि दिव्यया गत्या परलोकार्थमुद्यता  
पातालकेतुर्दृष्टात्मावाराहंघपुरास्थितः । केनापि विद्वोन्नाणेन मुनीनां त्राणकारणात्  
तथाहं तत्त्वतोऽन्विष्यत्वव्रितासमुपागता । सत्यमेव सकेनापिताडितोदानवाधमः

इयञ्चमूर्च्छामगमन् कार्त्तं यश्चतुष्पदतन् । स्वयिर्प्राणिमर्तापाला दशानादपमानद'  
 देवतुवोपमं वाक्वाक्सादिगुणशक्तिम् । भार्यावाग्व्यव्यविहितादेनविद्युत्सदानप'  
 एतन्मन्त्रकारणात्मोर्महान्तमिवमागतम् । वापञ्चोपश्च तन्मूर्च्छादु समेषोपमोक्ष्यते  
 स्वव्यवस्था हृद्यं वागि भर्ता वाग्यो मविष्यति ।

वापञ्चापमनो बुभुक्षे सुरभ्या नान्यथा वष ॥ ४१ ॥

मर्दं स्वभ्यां प्रमो ! प्रीत्या दुःखिताऽत्र ममागता ।

यतो विदोयो नैवाऽस्मि स्वगर्त्तानिज्जदेहयो ॥ ४२ ॥

यद्येवामिमं वीरं पतिमाप्नोति शोभता । तन्मन्त्रपञ्चदं बुभुक्षेनिर्घर्त्तानिज्जदेहता  
 स्य तुवोवाक्चिर्मर्धवासप्रतोऽत्रमहामने' । देवोर्देवोऽगुणध्वर्यपत्रात् किन्नरोऽपिवा  
 नक्षत्रमानुषगतिनेवेद्देहमातुरं यतु' । तस्वमारयाहि कथितं यथैवाऽवितथ प्रया  
 बुयलवाभ्य उधाष

यन्मूर्च्छामिधमहे'कम्भविषासमागत । तच्छुभ्रुवामलप्रज्ञे'कथवाग्यादितस्तव  
 राज शयुजित् पुत्र विवा सम्प्रेषित शुभे' । मुनिरक्षणमुद्दिश्य गालवाधममागत ॥  
 बुभुक्षे मम रक्षाञ्च मुर्तानो धर्मचारिणाम् ।

विप्रायंमागत कोऽपि शौकरं रूपमास्थितः ॥ ४८ ॥

मया स विद्वोवाजेतच्छ्राद्धांकरपञ्चमा । अपत्रान्तोऽतिरेगेन तन्मन्त्रयुगतोहृषी  
 पपात सहसा गर्त्तसत्राद्धोऽध्वध्वमामक' । सोऽहमद्य समारुहस्तमभ्येकपरिभ्रमन्  
 प्रकाशमासादितपात्र दृष्टा धमयती मया । वृष्टयाद्य न मे किञ्चिद्भयत्यादत्तमुत्तरम्  
 त्वाद्येवानुप्रपिष्टोऽहमिमप्रासादमुत्तमम् । इत्येत'कथितं सरथं न देवोऽहं न दानघः  
 न पन्नगो नमन्धर्यं किन्नरोवा शुचिस्मिते' । समन्ता'वृष्मपश्चाथै देवाद्याममकुण्डले  
 मन्त्रध्वोऽस्मि विशङ्का ते न कर्त्तव्याऽत्र कर्हिचित् ॥ ५३ ॥

पुत्रायुञ्जतु'

तत्त'प्रदृष्टा साफन्यासखीपदनमुत्तमम् । लज्जाजहर्वाक्षमाणा किञ्चिन्नोवाचभामिनी  
 सा सखी पुनरप्येन प्रदृष्टा प्र'युधाद्य ह । यथापन् कथितनेन सुरभ्या वषनानुगम्

## कुण्डलोवाच

वीरसत्यमसन्दिग्धं भवताभिहितं वचः । नान्यत्र हृद्यं त्वस्या दृष्ट्वा स्वं च्यं प्रयास्यति  
चन्द्रमेवाधिका कान्तिः समुपैति रविप्रभा । भूतिर्धन्यं धृतिर्धीरं शान्तिरभ्येति चोत्तमम्  
त्वयैव विद्वोऽसंदिग्धं स पापो दानवाधमः ।

सुरभिः सा गवां माता कथं मिथ्या वदिष्यति ॥ ५८ ॥

तद्वन्द्येयं सभाग्या च त्वत्सम्बन्धं समेत्य वै । कुरुष्व वीर्यकार्यं विधिर्नैव समाहितम्

## पुत्रावचनतुः

परवानहमित्याह राजपुत्रः सतां पितः ! सा च तन्त्रिन्तयामास तुम्युरुतत्कुले गुरुम्  
सचापितत्क्षणात्प्राप्तः प्रगृहीतसमित्कुशः । मदालसायाः संप्रीत्या कुण्डलागौरवेण च

प्रज्वाल्य पाचकं हुत्वा मन्त्रचित् कृतमङ्गलाम् ।

वैवाहिकविधिं कन्यां प्रतिपाद्य यथागतम् ॥ ६२ ॥

जगाम तपसेधीमान् स्वमाश्रमपदं तदा । साचाहतां सखीं चालोक्य तार्थस्मिचरानने  
संयुक्ताममुना दृष्ट्वा त्वामहं रूपशालिनीम् । तपस्तपस्येऽहमतुलं निर्व्यलीक्रेतचेतसा  
तीर्थास्तुर्धौतपापा च भवित्री नेदृशीयथा । तंचाह राजपुत्रं सा प्रश्रयावनता तदा ॥

गन्तुकामा निजसखीस्नेहविकलचभापिणी ।

## कुण्डलोवाच

पुम्भिरप्यमितप्रदो नोपदेशो भवद्विधे । दातव्यः किमुत स्त्रीभिरतो नोपदिशामिते  
किं त्वस्यास्तनुमध्यायाः स्नेहाकृष्टेन चेतसा ।

त्वया विश्रम्भिता चास्मि स्मारयाम्यरिसूदन ॥ ६७ ॥

भर्तव्या रक्षितव्यां च भार्या हि पतिना सदा ।

धर्मार्थकामसंसिद्धैर्भार्या भर्तुः सहायिनी ॥ ६८ ॥

यदा भार्या च भर्ता च परस्परवशानुगौ । तदा धर्मार्थकामानां त्रयाणामपिसङ्गतम्  
कथं भार्यामृते धर्ममर्थं वापुरुषः प्रभो ! प्राप्नोति काममर्थं वा तस्यां त्रितयमाहितम्  
तथैव भर्तारमृते भार्या धर्मादिसाधने । न समर्था त्रिवर्गोऽयं दाम्पत्यं समुपाश्रितः

देवतापितृभृत्यानामतिथीनाञ्च पूजनम् । न पु भि शक्यतेकर्तुंमृतेभार्यामृपात्मः  
प्राप्तोऽपि चार्थो मनुजैरानीतोऽपि निज गृहम् ।

क्षयमेति विना भार्या कुभार्यासश्रयेऽपि वा ॥ ७३ ॥

कामस्तु तस्यनैवास्तिप्रयक्षेणोपलक्ष्यते । दम्पत्यो सहधर्मेणश्रयीधर्ममघाप्नुयात्  
पुत्राणा योनिरन्या चै नान्यतो भायया विना ।

पितृमुपैस्तथैवाग्रसाधनैरतिथीश्रर । पूजाभिरमरास्तद्वद् साध्वीभार्यानरोऽपि  
स्त्रियाश्चापि विना भर्त्रा धर्मकामार्थसन्तति ।

नैव तस्मात्त्रिवर्गोऽय दाम्पत्यमधिगच्छति ॥ ७६ ॥

एतन्मयोक्त युवयोर्गच्छामि च यथेप्सितम् । वदन्त्वमनयासाहं धनपुत्रसुखायुष  
पुत्रावूचतु

इत्युक्त्वा सा परिष्वज्य स्वसखीं त नमस्य च ।

जगाम दिव्यया गत्या यथाभिप्रतमात्मन ॥ ७८ ॥

सोऽपिशशुजित पुनस्तामारोप्यतुरङ्गमम् । निगन्तुकाम पातालाद्विज्ञातोदनुसम्भवे  
ततस्नै सहसोत्प्लुष्ट हियते हियतऽपि चै । अन्यारत्नयद्गानीतं दिव पातालकेतुनः

तत परिवनिर्त्रिशगदाशूलशरायुधम् । दानवानां षड् प्राप्त सहपातालकेतुना ।  
तिष्ठ तिष्ठेति जल्पन्तस्ते तदा दानघोत्तमा ।

शरव्यंस्तथा शूलैश्चपु नृ यनन्दनम् ॥ ८० ॥

स च शशुजित पुत्रस्तदस्त्राण्यतिर्घार्यवान् ।

विच्छेद शरजात्रेण प्रहसन्निव लील्या ॥ ८३ ॥

क्षणोत् पातालतल्मसिशतपृष्टिसायकै । छिन्नै सहस्रप्रभवदृत्तभ्यजशरोत्करै  
ततोऽस्य त्वापूमादाय चिक्षेप प्रति दानवान् । तेन ते दानया सर्वेसहपातालकेतुना

ज्वालाभालातिर्तामिण स्फुटदम्बिघया कृता ।

निदग्धा वापिलं तेज समासाद्येव सागरा ॥ ८६ ॥

तत स राजपुत्रोऽर्ध्वीतिदग्ध्यासुरसत्तमान् । स्त्रारत्नेनसर्मतनसमागच्छत्पितृ पुरम्

प्रणिपत्य च तत् सर्वं सतु पित्रेन्यवेदयत् । पातालगमनंचैवकुण्डलायाश्चदर्शनम्  
तद्वन्मदालसाप्राप्तिं दानवैश्चापि सङ्गरम् । वधञ्च तेषामस्त्रेण पुनरागमनं तथा ॥  
इतिश्रुत्वापिता तस्य चरितंचारुचेतसः । प्रीतिमानभवच्चेदंपरिष्वज्याहचात्मजम्  
सत्पात्रेण त्वया पुत्र! तारितोऽहं महात्मना । भयेभ्योमुनयस्त्रातायेनसद्धर्मचारिणः  
मत्पूर्वैः ख्यातमानीतं मया विस्तारितं पुनः ।

पराक्रमवता वीर! त्वया तद्ववहुलीकृतम् ॥ ६२ ॥

यदुपात्तं यशः पित्रा धनं वीर्यमथापि वा । तन्न हापयते यस्तुस नरोमध्यमःस्मृतः  
तद्वीर्यादधिकं यस्तु पुनरन्यत्स्वशक्तितः । निष्पाद्यति तंप्राज्ञाःप्रवदन्तिनरोत्तमम्  
यः पित्रा समुपात्तानि धनवीर्ययशांसि वै । न्यूनतां नयतिप्राज्ञास्तमाहुःपुरुषाधमम्  
तन्मया ब्राह्मणत्राणं कृतमालीद्यथा त्वया । पातालगमनं यच्च यच्चासुरविनाशनम्  
एतदप्यधिकं वत्स तेन त्वंपुरुषोत्तमः । तद्वन्योऽस्म्यथ वानत्वमहमेवगुणाधिकम्  
त्वां पुत्रमीदृशं प्राप्य श्लाघ्यः पुण्यवतामपि ।

न स पुत्रकृतां प्रीतिं मन्ये प्राप्नोति मानवः ॥ ६८ ॥

पुत्रेण नातिशयितो यः प्रज्ञादानविक्रमैः । धिग्जन्म तस्ययःपित्रालोकेचिज्ञायतेनरः  
यः पुत्रात् ख्यातिमभ्येति तस्य जन्म सुजन्मनः ।

आत्मना ज्ञायते धन्यो मध्यः पितृपितामहैः ॥ १०० ॥

मातृपक्षेण मात्रा च ख्यातिमेति नराधमः । तत् पुत्रधनवीर्यैस्त्वं विवर्द्धस्वसुखेनच  
गन्धर्वतनया चैयं मा त्वया वै वियुज्यताम् । इतिपित्रावहुधिधंप्रियमुक्तःपुनः पुनः  
परिष्वज्य स्वमावासं सभार्यः स विसर्जितः । स तयाभार्ययासाद्धं रेमेतत्रपितुःपुरे  
अन्येषु च तथोद्यानवनपर्वतसानुषु । श्वश्रूश्वशुरयोः पादौ प्रणिपत्य च सा शुभा ॥

प्रातः प्रातस्तत्तस्तेन प्रणिपत्य ( सहरेमे ) सुमध्यमा ॥ १०४ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे कुचलयाश्वीये मदालसापरिणय-

वर्णनंतामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥



## द्वाविंशोऽध्यायः

### मदालसाप्राणवियोगवर्णनम्

#### पुत्रवचनम्

तत काठे बहुतिथे गते राजापुन सुतम् । प्राहगच्छाशुचिप्राणाप्राणायचरमेदिनीः  
शश्वमेन समागत्य प्रातः प्रातर्दिने दिने । आयाथा द्विजमुख्यानामन्वेष्टव्या सदैव ।  
दुर्हंसा सन्ति शतशो दानया पापयोनय ( पापनुद्धय ) ।

नेभ्यो न स्याद्यथा याथा मुनीना त्व तथा कुरु ॥ ३ ॥

स यथोक्तस्ततः पित्रा तथाचनेनृपात्मज । परिक्रम्यमर्द्धीसर्षावचन्द्रे चरणी पितु  
अहन्यह-यनुप्राप्ते पूर्वाह्निनृपनन्दन । ततश्च शीघ्रं दिघसं तथा रम सुमध्यया ॥ ५ ॥  
एकदा तु चरन् सोऽथ ददर्श यमुनागटे । पातालनेतोरनुज तालकेतु हनाश्रमम् ।  
मायावी दानव सोऽथ मुनिरूपं समास्थित ।

स प्राह राजपुत्र त पूर्वचैरमनुस्मरन् ॥ ७ ॥

राजपुत्र! प्रवीमिन्वा तत्कुरुष्वयदिच्छसि । नचतेप्रार्थनाभङ्गकाय सत्यप्रतिश्रवा  
यक्ष्ये यज्ञेन धर्माय कत-याश्च तयोष्टय । धितयस्तप्रकर्तव्या नान्तरिक्षगता यत-  
तत प्रयच्छ मे धीर ! हिरण्यार्थं स्वभूषणम् ।

यदेतत् कण्ठलग्न ते रक्ष चेमं ममाऽऽश्रमम् ॥ १० ॥

यावदन्तजज्ञे द्वेष वरुण यादसा पतिम् । वैदिकैर्वारुणैर्मन्त्रैः प्रजाना पुष्टिहेतुकै  
शभीष्टूय स्वरायुक्त समभ्येमीतिवादिनम् ।

त प्रणम्य ततः प्रादात् स तस्मै कण्ठभूषणम् ॥ १२ ॥

प्राह चैन भवान् यातु निर्व्व्यलीकेन चेतसा । स्यात्स्यामिताघद्वैवतवाश्रमसमीपत  
तवादेशान्महाभाग! यावदाममन तव । न तेऽत्र कश्चिदाशाशोकश्चिप्यतिमयिस्थिते  
विश्रब्धश्चात्परव ब्रह्मन् । कुरुष्व त्व ( स्वमुनिश्रेष्ठकुरुष्व च ) मनोगतम् ॥ १४ ॥

ध्यायः ]

\* मदालसयापतिविरहिण्याप्राणत्यागः \*

पुत्रावूचतुः

एवमुक्तस्तस्तेन स ममज्ज नदीजले । ररक्ष सोऽपि तस्यैव मायाविहितमाश्रमम्  
गत्वाजलाशयात्तस्मात्तालकेतुश्च तत्परम् । मदालसायाःप्रत्यक्षमन्येषांघैतदुक्तवान्  
तालकेतुस्वाच

वीरःकुवलयाम्बोऽसौ ममाश्रमसमीपतः । केनापिदुष्टद्वैत्येनकुर्वत्रक्षां तपस्विनाम्  
युध्यमानो यथाशक्ति निघ्नन् ब्रह्मद्विषो युधि ।  
मायामाश्रित्य पापेन भिन्नः शूलेन वक्षसि ॥ १८ ॥

प्रियमाणेन तेनेद्रं दत्तं मे कण्ठभूषणम् । प्रापितश्चाग्निसंयोगं स घने शूद्रतापसैः  
कृतार्तहोपाशब्दो वै त्रस्तः साश्रुविलोचनः । नीतःसोऽश्वश्चतेनैव दानवेनदुरात्मना  
एतन्मया नृशंसेन दृष्टं दुष्कृतकारिणा । यदत्रानन्तरं कृत्यं कुरुष्वोत्तरकालिकम्  
हृदयाश्वासनञ्चैतद् गृह्यतां कण्ठभूषणम् ।

नास्माकं हि सुवर्णेन कृत्यमस्ति तपस्विनाम् ॥ २२ ॥

पुत्रावूचतुः

इत्युक्तोत्सृज्य तद्भूमौ स जगाम यथागतम् ।

निपपात जनः सोऽथ शोकात्तो मूर्च्छयाऽऽतुरः ॥ २३ ॥

स्तक्षणात्चेतनांप्राप्यसर्वास्तानृपयोपितः । राजपत्न्यश्चराजास्रविलेपुरतिदुःखिताः  
मदालसा तु तद्दृष्ट्वा तदीयं कण्ठभूषणम् ।

तत्याजाऽऽशु प्रियान् प्राणान् श्रुत्वा च निहतं पतिम् ॥ २५ ॥

ततः पुरो महाक्रन्दः पौराणां भवनेष्वभूत् । यथैव तस्य नृपतेः स्वगेहे समवर्तत  
राजा च तां मृतां दृष्ट्वा विना भर्त्रा मदालसाम् ।

प्रत्युवाच जनं सर्वं विमृष्य स्वस्थमानसः ॥ २७ ॥

न रोदितव्यं पश्यामि भवतामात्मनस्तथा ।

सर्वेषामेव सञ्चिन्त्य सम्बन्धानामनित्यताम् ॥ २८ ॥

किन्तु शोचामि तनयं किन्तु शोचाम्यहं स्तुपाम् ।



गर्मक्लेशः स्त्रियोमन्येसाफल्यं भजतेतदा ।

यदारिविजयी वा स्यात् सङ्ग्रामे वा हतः सुतः ॥ ४५ ॥

पुत्रावूचतुः

ततः स राजा संस्कारंपुत्रपत्नीमलम्भयत् । निर्गम्यचवहिःस्नातोददौपुत्रायचोदकम्  
तालकेतुश्च निर्गम्य तथैव यमुनाजलात् । राजपुत्रमुवाचेदं प्रणयान्मधुरं वचः ॥

गच्छ भूपालपुत्र! त्वं कृतार्थोऽहं कृतस्त्वया ।

कार्यं चिरामिलयितं ( वाञ्छितं तु कृतं कार्यं ) त्वय्यत्राऽविचले स्थिते ॥ ४६ ॥

चारुणं यज्ञकार्यं जलेशस्य महात्मनः । तन्मयासाधितं सर्वयन्ममासीदभीप्सितम्  
प्रणिपत्य स तं प्रायाद्राजपुत्रः पुरं पितुः । समारुह्य तमेवाश्वं सुपर्णानिलचिक्रमम्  
इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणेकुवल्याश्वीयेमदालसाप्राणवियोगवर्णनं नामद्वाविंशोऽध्यायः

—:~:—

## त्रयोविंशोऽध्यायः

### कुवल्याश्वपातालगमनवर्णनम्

पुत्रावूचतुः

स राजपुत्रःसम्प्राप्यवेगादात्मपुरं ततः । पित्रोर्वचन्दिपुः पादौ दिदृशुश्चमदालसाम्  
ददर्श जनमुद्दिग्मप्रहृष्टमुखं पुरः । पुनश्च विस्मिताकारं प्रहृष्टवदनं ततः ॥ २ ॥

अन्यमुत्फुल्लनयनं दिष्ट्यादिष्ट्येति वादिनम् ।

परिष्वजन्तमन्योन्यमतिकौतूहलान्वितम् ॥ ३ ॥

स राजपुत्रो मित्रं तमुत्फुल्लनयनं शुभम् । आलिलङ्ग तदा काले सौहृदेन परेण च  
ततः पौरास्तदाऽऽलोक्य दिष्ट्यादिष्ट्येति वादिनः ॥

चिरं जीवोरुकल्याण ! हतास्ते परिपन्थिनः ।

पित्रोः प्रहादय मनस्तथास्माकमकण्ठकम् ॥ ५ ॥

## पुत्रावृत्तु

इत्येवम्वादिभि पौरै पुर पृष्ठे च समृत । तत्क्षणप्रमथानन्द प्रविशेषापितृर्हम्

पिता च त परिष्वज्य माता चाऽन्ये च वाम्भवा ।

धिरंजीवोरुक्ल्याण' द्रुहस्तस्मै तदाशिष ॥ ६ ॥

प्रणिपत्य तत सोऽथ किमतदिति धिस्मित ।

पप्रच्छ पितर तात' सोऽस्मै सम्यक् तदुक्तवान् ॥ ७ ॥

समार्यातामृताश्रुत्वा हृदयेष्टामदालसाम् । पितरौचपुरोदृष्ट्वालज्जाशोकाधिमध्यग

चिन्तयामास सा बाला मा श्रुत्वा निधन गतम् ।

तत्याज जीवित साध्या धिडमा निष्टुरमानसम् ॥ ८ ॥

मृशसोऽहमनार्योऽहचिनातामृगलोचनाम् । मत्कृतेनिधनप्राप्तायजीवाम्यतिनिर्गुण

पुन स चिन्तयामास परिसस्तभ्य प्रातमम् ।

मोहोद्गममपास्याऽऽशु (स्यैधं) नि भ्रम्वोच्छ्वस्य चाऽऽतुर ॥ ११ ॥

मृनेति सा मधिमित्त त्यजामि यदि वावितम् ।

किं मयोपहत तस्या श्लाघयमेतन्नु योपिताम् ॥ १२ ॥

यद्विरोदिमिषादीनोद्दामियेतिवदमुद् । तथाप्यश्लाघयमनप्रा घयहि पुरुषा किल

अघशोरजडोर्दीनोम्रजादीनोमगन्धित । चिपक्षस्यमविध्यामिततपरिसयास्पदम्

मपारिशातनकार्यं राड् शुभ्रुपणं पितु । जीविनेनस्यचायत्त सन्त्याम्यतरकधमया

किन्त्वत्र मन्ये कसंध्यस्यगो भागस्य योपित ।

न चापि नोपकाराय तन्वद्भया किन्तु सर्वथा ॥ १६ ॥

मया मृशस्य कसंध्यं नोपकारयकारि च ।

यामदर्धेऽन्यजन् प्राणास्तदर्थेऽल्पमिदं मम ॥ १७ ॥

## पुत्रावृत्तु

इतिवृत्त्या मति सोऽथ निष्पाद्योदकदानिकम् ।

क्रियाभानन्तरं हृत्वा प्रयुषाद्य क्षतभ्यज ॥ १८ ॥

ऋतध्वज उवाच

यदि सा मम तन्वङ्गी न स्याद्द्वार्या मदालसा ।

अस्मिन् जन्मनि नाऽन्या मे भवित्री सहघारिणी ॥

ऋमृतेमृगशावार्क्षीगन्धर्वतनयामहम् । न भोक्ष्येयोषितंकाञ्चिदितिसत्यंमयोदितम्

सद्धर्मवारिणीं पत्नीं तां मुक्त्वा गजगामिनीम् ।

काञ्चिन्नाङ्गीकरिष्यामीत्येतत् सत्यं मयोदितम् ॥ २१ ॥

पुत्रावूचतुः

परित्यज्य च स्त्रीभोगान् तात! सर्वांस्तया विना ।

क्रीडन्नास्ते समं तुल्यैर्वयस्यैः शीलसम्पदा ॥ २२ ॥

एतत्तस्य परंकार्यंतात! तत्केन शक्यते । कर्तुमत्यन्तदुष्प्राप्यमीश्वरैःकिमुतेतरैः

जड ( पुत्र ) उवाच

इतिवाक्यंतयोःश्रुत्वा धिमर्षमगमत्पिता । विमृष्यन्नाहतीं पुत्रीं नागराट्प्रहसन्निघ

नागराडश्वतर उवाच

यद्यशक्यमिति ज्ञात्वा न करिष्यन्ति मानवाः ।

कर्मण्युद्यममुद्योगहान्याहानिस्ततः परम् ॥ २५ ॥

आरभेत नरःकर्म स्वपौरुषमहापयन् । निष्पत्तिः कर्मणांदैवे पौरुषे च व्यवस्थिता  
तस्माद्दहंतयायत्नंकरिष्येपुत्रकाचितः । तपश्चर्यांसमास्थाययथैतत्साध्यतेऽचिरात्

जड ( पुत्र ) उवाच

एवमुत्तवास नागेन्द्रः प्लक्ष्वावतरणंगिरेः । तीर्थंहिमवतो गत्वा तपस्तेपे सुदुश्चरम्  
तुष्टाववाग्भिरिष्टाभिस्तत्रदेवींसरस्वतीम् । तन्मनानियताहारोभूत्वात्रिपघणाप्लुतः

अश्वतर उवाच

जगद्धात्रीमहंदेवीमारिष्ययिषुःशुभाम् । स्तोभ्येप्रणम्यशिरसाब्रह्मयोर्निसरस्वतीम्

सःसद्देवि! यत्किञ्चिन्मोक्षवचार्थवत्पदम् ।

तत्सर्वत्वय्यसंयोगं योगवद्देवि! संस्थितम् ॥ ३१ ॥

त्वमक्षरं परं देवि! यत्र सर्वं प्रतिष्ठितम् । अक्षरं परमं देवि ! स्थितं परमाणुवत्  
 अक्षरं परमब्रह्म विश्वञ्चैतत् क्षरात्मकम् । दारुण्यदल्लिखतो वह्निर्भोमाक्ष परमाणवः  
 तथा त्वयि स्थितं ब्रह्म जगत्त्रैलोक्यम् ।

उंकाराक्षरसंस्थानं यत्तं देवि ! स्थिरास्थिरम् ॥ ३४ ॥

तत्रमात्रात्रयं सवमस्ति यद्वैविनास्ति च । त्रयोलोकास्त्रयो वैदार्यपिचं पावकत्रयम्  
 श्रीणिज्योतींषि धर्माश्च त्रयो धर्मागमास्तथा ।

त्रयो गुणास्त्रयं शब्दास्त्रयो वेदास्तथाधमा ॥ ३६ ॥

त्रयं कालास्तथावस्थां वितरोऽहर्निशादयः । एतन्मात्रात्रयं देवि ! तथरूपसरस्वति  
 विभिन्नदर्शनामाद्यां प्रश्रणो हि सनातना ।

सोमसंस्थां हवि संस्थां पाकसंस्थां च मत्तया ॥ ३८ ॥

तास्त्यदुच्चारणाद्देवि ! त्रियन्नेन्द्रवादिभिः । अनिर्देश्यतथा चान्यदद्दमाश्चान्वितपरम्  
 अधिकार्यं श्रुयं दिव्यं परिणामविर्जातम् । तथैतत्परमं रूपं यत्र शक्यं मयोदितुम्  
 न चास्ये न च तज्जिह्वा तास्रोष्ठादिभिरुच्यते ।

इन्द्रोऽपि धसवो ब्रह्मा चन्द्राकीं ज्योतिरेषु च ॥ ४१ ॥

विश्वावासं विश्वरूपं विश्वेशं परमेश्वरम् ।

सात्त्विक्येदान्तवादानं बहुशाखाभिधरीहृतम् ॥ ४२ ॥

अनादिमध्यनिधनं सदस्रं सद्वत् यत् । एकत्वनेकं नाप्येकं भवमेकसमाधितम्  
 अनास्यं पदगुणास्यञ्च धर्मास्यं त्रिगुणाध्रयम् ।

नानाशक्तिप्रतामेकं शक्तिचैभयिकं परम् ॥ ४४ ॥

सुखामुष्णमहामौख्यरूपं त्वयि विभाष्यते । एवं द्विषिं ग्यपात्पार्श्वसकलनिष्कलश्रयत्  
 ब्रह्मैतत्स्थितं ब्रह्म यद्यद्वैतं व्यथस्थितम् ॥ ४५ ॥

येऽर्था निष्ठा ये विनश्यन्ति चान्ये ये वा स्थूला ये च सूक्ष्माऽतिसूक्ष्माः ।

ये वा भूमी येऽन्तरिक्षेऽन्यतो वा तेषां तेषां त्वत्त एवोपलब्धिः ॥ ४६ ॥

यथाऽमृतं यथाऽमृतं समस्तं यद्वा भूतेष्वेकमेकञ्च किञ्चित् ।

यद्विद्येऽस्ति क्षमातले खेऽन्यतो वा त्वत्सम्बन्धं त्वत्स्वरैर्व्यञ्जनैश्च ॥ ४७ ॥

जड उवाच

एवं स्तुता तदादेवीविष्णोर्जिह्वासरस्वती । प्रत्युवाच महात्मानं नागमश्वतरं ततः

सरस्वत्युवाच

घरतेकम्बलभ्रातः प्रयच्छाम्युरगाधिप ! तदुच्यतां प्रदास्यामि यत्ते मनसि वरति

अश्वतर उवाच

सहायं देहि देवि ! त्वं पूर्वकम्बलमेव मे । समस्तस्वरसम्बन्धमुभयोः सम्प्रयच्छ च

सरस्वत्युवाच

सप्तस्वराग्रामरागाः सप्तपन्नगसत्तम ! । गीतकानि च सप्तैव तावतीश्चापि मूर्च्छनाः  
तालाश्चैकोनपञ्चाशत्तथा ग्रामत्रयञ्चयत् । एतत्सर्वं भवान्गता कम्बलश्च तथानव !  
ज्ञास्यसे मत्प्रसादेन भुजगेन्द्र ! परं तथा । चतुर्विधं पदं तालं त्रिःप्रकारं लयत्रयम्  
यतित्रयं तथा तोद्यं मया दत्तं चतुर्विधम् । एतद्ववान्मत्प्रसादात्पन्नगेन्द्रापरञ्चयत्  
अस्यान्तर्गतमायत्तं स्वरव्यञ्जनसम्मितम् । तदशेषंप्रयादत्तं भवतः कम्बलस्य च  
तथानान्यस्यभूर्लोकैपातालेत्रापिपन्नग ! । प्रणेतारो भवन्तौ च सर्वस्यास्यभविष्यतः  
पाताले देवलोके च भूर्लोकै चैव पन्नगौ ॥ ५६ ॥

जड उवाच

इत्युक्त्वासा तदादेवीसर्वजिह्वासरस्वती । जगामादर्शनंसद्यो नागस्यकमलेक्षणा  
तयोश्च तद्यथावृत्तं भ्रात्रोः सर्वमजायत । विज्ञानमुभयोरग्रयं पदतालस्वरादिकम्  
ततःकैलासशैलेन्द्रशिखरस्थितमीश्वरम् । गीतकैः सप्तभिर्नागैस्तन्त्रीलयसमन्वितौ  
आरिराधयिषू देवमनङ्गाङ्गहरं हरम् । प्रचक्रतुः परं यत्नमुभौ संहतवाक्कलौ ॥ ६० ॥

प्रातर्निशायां मध्याह्ने सन्ध्ययोश्चापि तत्परौ ।

तयोः कालेन महता स्तूयमानो वृषध्वजः ॥ ६१ ॥

तुतोपगीतकैस्तौ च प्रादेशो गृह्यतां घरः । ततः प्रणम्याश्वतरः कम्बलेन समं तदा  
व्यज्ञापयन्महादेवं शितिकण्ठमुमापतिम् । यदि नौ भगवान् प्रीतो देवदेवखिलोचनः



त्वमक्षरं परं देवि यत्र सर्वं प्रतिष्ठितम् । अक्षरं परमं देवि ! संस्थितं परमाणुवत्  
अक्षरं परमब्रह्म विश्वश्चेतन् शरत्तमकम् । द्वादशव्यवस्थितो वह्निर्मौमाद्यः परमाणवः  
तथा त्वयि स्थितं ब्रह्म जगत्त्रेदमशीपत ।

ॐकाराक्षरसंस्थानं यत् देवि ! स्थिरास्थिरम् ॥ ३४ ॥

तत्रमात्रात्रयं सर्वमस्ति यद्देविनास्ति च । त्रयो लोकास्त्रयो वेदास्त्रयविद्यं पापकत्रयम्  
प्रीणित्योतींषि धर्माश्च त्रयो धर्मागमास्तथा ।

त्रयो गुणास्त्रयं शस्त्रास्त्रयो वेदास्तथाध्रमा ॥ ३६ ॥

त्रयं कालास्तथावस्या पितरोऽहर्निशादयः । एतन्मात्रात्रयं देवि त्वरूपसरस्वति  
विभिन्नदर्शितामाद्या ब्रह्मणो हि सनातना ।

मोमसस्या हवि सस्या पाकसस्याश्च सप्त याः ॥ ३८ ॥

तास्त्वदुच्चारणाद्देवि त्रियन्नेन्द्रयादिभिः । अनिर्देश्यतयाचान्यदर्शमावान्वितपरम्  
अधिकार्यक्षयदिव्यं परिणामविवर्जितम् । तवेतत्परमं रूपं यत्र शक्यं मयोदितुम्  
न चान्ये न च तज्जिह्वा ताप्रोष्ठादिभिर्लक्ष्यते ।

इन्द्रोऽपि धसवो ब्रह्मा चन्द्राकीं ज्यातिरेव च ॥ ४१ ॥

विष्वावासं विश्वरूपं विश्वेश परमेश्वरम् ।

साङ्ख्यवेदान्तवादीकं षट्शालास्थिरहितम् ॥ ४२ ॥

अनादिमध्यनिधनं सद्सद्मं सद्द्वयं यत् । एकन्वनेकं नाप्येकं भवभेदसमाधितम्  
अनाख्यं षट्गुणान्यञ्च धर्मान्यं त्रिगुणाध्रयम् ।

नानाशक्तिप्रतामेकं शक्तिवैभक्तिं परम् ॥ ४४ ॥

सुखामुखमहासौख्यरूपत्वयिविमात्यते । एवं देवि त्वयाध्यातंसकलं निष्कलञ्च यत्  
अद्वैतावस्थितं ब्रह्म यच्च द्वैतं व्यवस्थितम् ॥ ४५ ॥

येऽर्था नित्या ये चित्तशयिनः चान्ये ये धा स्थूला ये च सूक्ष्माऽतिसूक्ष्माः ।

ये धा भूर्मां येऽन्तरिक्षेऽन्यतो वा तीर्था तीया त्वत्त एवोपलब्धिः ॥ ४६ ॥

यथाऽमृतं यथाऽमृतं समस्तं यद्वा मूनेष्वेकमेकञ्च किञ्चित् ।

तावाह नृपुत्रोऽसौ नन्विदं भवतोर्गृहम् ॥ ७६ ॥

धनवाहनवस्त्रादि यन्मर्दीयं तदेवचाम् । यस्य वां वाञ्छितं धनं स्तामथापि वा ॥  
तद्वायतां द्विजसुतो यदिवां प्रणयोमयि । पनाचनारं देवेन घञ्चितोऽस्मिदुरात्मना  
यद्भवदुभ्यांममत्वंनोमर्दीयेक्रियतां गृहे । यदिवांमत्प्रियंकार्यमनुप्राप्तोऽस्मिवांयदि  
तद्धने मम गेहेष्व ममत्वमनुकल्प्यताम् । युवयोर्यन्मर्दीयं तन्मासकं युवयोः स्वकम्  
एतत् सत्यं विजानीतं युवां प्राणा यद्विधराः ।

पुननवं विभिन्नार्थं वक्तव्यं द्विजसत्तमो ! ॥ ८४ ॥

मत्प्रसादपरो प्रीत्या शापितो हृदयेन मे । ततःस्नेहार्द्रचदर्नो नाबुभौ नागनन्दनो ॥  
ऊचतुर्नृपतेः पुत्रंकिञ्चित्प्रणयकोपितो । ऋतध्वज! न सन्देहो यथैवाहभवानिदम्

तथैव घास्मन्मनसि नात्र चिन्त्यमतोऽन्यथा ।

किन्त्वावयोः स्वयं पित्रा प्रोक्तमेतन्महात्मना ॥ ८७ ॥

द्रष्टुं कुचलयाश्वं तमिच्छामीति पुनः पुनः ।

ततः कुचलयाश्वोऽसौ समुत्थाय घरासनात् ॥

यथाह तातेति वदन् प्रणाममकरोद् भुवि ॥ ८८ ॥

कुचलयाश्व उवाच

धन्योऽहमतिपुण्योऽहं कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया ।

यत्तातो मामभिद्रष्टुं करोति प्रघणं मनः ॥ ८९ ॥

तदुत्तिष्ठतगच्छामस्तामाशां क्षणमप्यहम् ।

नातिक्रान्तुमिहेच्छामि पदुभ्यां तस्य शपास्यहम् ॥ ९० ॥

जड उवाच

एवमुक्त्वाययोसोऽथसहताभ्यांनृपात्मजः । प्रातश्चगीतमीपुण्यांनिर्गत्यनगरादुचहिः  
तन्मध्येनययुस्ते धैनागेन्द्रनृपनन्दनाः । मेनेच राजपुत्रोऽसौपारे तस्यास्तयोर्गृहम्  
ततश्चाकृष्य पातालं ताभ्यां नीतो नृपात्मजः । पातालेददृशेघोभौस पन्नगकुमारकौ  
फणामणिकृतोद्योतौ व्यक्तस्वस्तिकलक्षणौ ।

ततो यथाभिलषितं धर्मेन प्रयच्छ नी । मृताकुचलयाभ्यस्य पत्नी हेय ! मद्दालसा  
तेनैव वयसा सद्यो दुष्टितृण्यं प्रयातु मे । जातिस्मरायथा पूर्वंतद्भक्तान्निसमन्विता  
योगिनी योगमाता च मद्गृहेजायता भव ! ॥ ६५ ॥

महादेव उवाच

यथोक्तं वप्रगधेष्टं सर्वमेतद्विष्यति । मत्प्रसादादसन्दिग्धं शृणु चेदं भुजङ्गम् !  
धाडेतु समनुवासे मध्यम पिण्डमात्मना । भक्षयेयां कणिधेष्टं शुचिं प्रयतमानसः  
मग्निने तु ततस्त्वस्मिन् भवती मध्यमान् कणात् ।

समुत्पत्स्यति कल्याणी तथारूपा यथामृता ॥ ६८ ॥

कामञ्जममिध्याय शुद्धं त्वं पितृपरणम् ।

तत्क्षणादेव सा सुदुःखसतो मध्यमान् कणात् ॥ ६९ ॥

( मध्यमेषोपमुवान ततः सर्वं भविष्यति । )

समुत्पत्स्यति कल्याणी तथारूपा यथा मृता ।

एतच्छ्रुत्वा ततस्तौ तु प्राणिपय महेश्वरम् ॥ ७० ॥

रसातलं पुनः प्राप्तां परितोषसमन्वितां । तथाचकृतवान् धाद सनाग कम्बलानुजः  
पिण्डञ्जमध्यम तद्व्यथायदुपभुक्तवान् । तज्जापिध्यायत कामं ततः सा तनुमध्यमा  
जत्रे निश्चमतःसद्यस्त्वद्रूपा मध्यमान् कणात् ।

न चापि कथयामास कस्यचित्स्य भुजङ्गम् ॥ ७३ ॥

अन्तर्गृहे ता सुदतीर्ताभिसुं प्रामधारयत् । तौ चानुदिनप्रागत्यपुष्पानागपते सुसम्  
ऋतध्वजेन सहितौ शिक्रीडानेऽप्रधाविव । एकदा तु सुनीप्राहनागराजोमुदान्वितः  
यन्मया पूर्वंमुक्तन्तु क्रियते किं न तत्तथा । स राजपुत्रो युवयोर्नकारोममग्निकम्  
ऋत्माप्रानीयते घन्सातुपकाराय मानदः । एवमुक्तीततस्तेन पित्रा स्नेहवता तु तौ

गन्वा तस्य पुरं सस्यू रैमाते तेन धीमता ।

ततः कुचलयाद्वं तौ हृत्वा किञ्चिद्विषयान्तरम् ॥ ७८ ॥

अमृता प्रणयोपेतं स्वर्गोहगमन प्रति ।



समेत्य तैरात्मजभूपनन्दनैर्महोखाणामधिपः स सत्यवाक् ।  
मुदान्वितोऽन्नानि मयूनि चात्मघान् यथोपयोगं बुभुजे स भोगभु (भा) क् ॥  
इति मार्कण्डेयपुराणे मदालसोपाख्यानेकुचलयाश्वपातालगमन  
घर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

—:#:—

## चतुर्विंशोऽध्यायः

मदालसाश्राप्तिवर्गनम्

पुत्रोवाच

कृताहारं महात्मानमधिपं पवनाशिनाम् । उपासाञ्चक्रिरे पुत्रो भूपालतनयास्तथा  
कथाभिरनुत्सुपाभिः स महात्माभुजङ्गमः । प्रीतिं सञ्जनयामास पुत्रसत्सुखाच्च च  
तव भद्र! सुखं ब्रूहि गृहेमभ्यागतस्त्वयत् । कर्त्तव्यमुत्सृजाशुद्धां पितरीव सुतोमयि  
रजतं वा सुवर्णं वावस्त्रं वाहनमासनम् । यद्वाभिमतमत्यर्थं दुर्लभं तद्वृणुष्वमाम्

कुचलयाश्व उवाच

तव प्रसादाद्गमवन्! सुवर्णादि गृहेमम । पितुरस्तिमस्ताद्यापिनकिञ्चिन्कार्यमीदृशम्  
ताने वर्यसहस्राणि शान्तीमां वसुन्धराम् । तथैवत्वयिपातालं नमै याञ्चोन्मुखं मनः  
नेम्यर्ग्याश्च सुपुण्याक्षयेषांपितरिजीवति । तृणकोटिसमंचिसंताडण्याहिसकोटिपु  
मिश्राणि तुल्यशिष्टानि तद्देहेमनामयम् । जनिताधियनेविसंयौवनंफिन्तुनास्तिमे  
वसत्यर्षेणृणां याज्ञापयणं जायते मनः । सत्यशेषकथंयाञ्चं मम जिहा करिष्यति  
येनं चिन्त्यं घनं किञ्चिन्मम गेहेऽस्मिन् नास्ति वा ।

पितृशालुतस्त्वयायां न्वधिताः सुगिनो हि ते ॥ १० ॥

ये तु बाल्यात्प्रभृद्येव पिता पित्रा कुटुम्बिनः ।

ते सुगाम्नाद्विभ्रंशान्मन्ये धार्प्रय पञ्चिताः ॥ ११ ॥

तदर्थं स्वप्नसादेन धनरघ्नादिसञ्ज्ञवान् । पितृमन्त्राः प्रयत्नतामःकामनोनिदपमर्चिनाम्

विलोक्य तौ सुरूपान्नी विस्मयोत्कुहुल्लोचन ॥ १४ ॥

विद्वस्यचाप्रवीत् प्रेम्णामाधुमोद्विजसत्तमौ । कथयामासतुस्नौचपितरंपन्नमोश्वरम्  
शान्तमश्वनरनाम माननीयद्विर्धाकसाम् । रमणीय ततोऽपश्यत् पातालसन्धुपातमजं  
कुमारैस्तरुणैर्द्वैदरगंरपशोभितम् । तथैव नागकन्याभि मीडन्तीभिरितस्तन  
चारुकुण्डलहारमिस्तारामिगंगन यथा । गीतशदैस्तथान्यत्र धीणावेषुस्वनानुगै  
मृदङ्गपणवातोद्य हारिवेशमशताकुलम् । धीक्षमाण सपाताल ययौ शत्रुजित सुन  
सह ताम्भ्याममीष्टाभ्या पत्रगाभ्यामरिन्दम । ततःप्रविश्यतेसर्वे नागराजनिवशनम्  
दृशुस्तेमहात्मानमुरगाधिपति स्थितम् । दिव्यमालयाम्बरधर मणिकुण्डलभूषणम्  
स्वच्छमुक्ताफलताहारिहारोपशोभितम् । केयूरिण महाभागमासने सर्वकाञ्चने  
मणिविद्रुमधैद्रूपजालान्तरितरूपके । सताभ्यां दर्शितस्तस्यतातोऽस्माकमसाधिति  
धार कुचलयाभ्योऽयपित्रेचासीं निवेदित । ततोतनाम चरणौनागन्द्रस्य श्रतध्वज  
समुत्थाप्य बलाद्रुगाड नागेन्द्रपरिपस्वने । मूर्ध्नि सैनमुपाग्रापचिरंजीवेत्युवाचस  
निहतामित्रवर्गश्च पित्रोशुभ्रूषण कुह । धत्संधन्यस्यकथ्यन्ते परोक्षस्यापिनेगुणा  
भवतो मम पुत्रान्यामसामान्या निवेदिता । त्वमेयानेन धर्मेयामनोवाहायचेष्टितै  
जावितगुणिन शगप्यजीवनेवमृतोऽगुणी । गुणवाञ्छित्तिपित्रो शत्रूणाद्दयउधरम्  
करोत्यामहित कुर्षेन विश्वासञ्च महाजने ।

देवता पितरो विश मित्रार्थिविभवादय ॥ १०६ ॥

चान्धवाश्च तथेच्छन्तिजावित गुणिनाश्चिरम् । परिधादनिवृत्तानादुर्गतपुदयावतम्  
गुणिना सफल जन्म सश्रिताना विपदुर्गत ॥ ११० ॥

अथ उवाच

एवमुक्त्वा सत धारं पुत्रादिदमयाऽप्रवीत् । पूजाकुचलयाश्वस्य कर्तुकामोभुजङ्गम  
स्नानादिक्रमं कृत्वा सर्वमेव यथाक्रमम् । मधुपानादिसम्भोगमाहारश्च यथेप्सितम्  
ततः कुचलयाश्चैन हृदयोत्सवभूतया । कथयास्वल्पकं कालं स्यास्यामोहएचेतस  
अनुमेने च तन्मानी धध शत्रुजितः सुतः । तथा धकार श्रुपति पत्रगातामुदारधी

ताताऽस्य पत्नी दयिता श्रुत्वेमं चिनिपातितम् ।

अत्यजद्वयिता प्राणान् चिप्रलब्धा दुरात्मना ॥ २७ ॥

नापि कृतवैरेण दानवेन कुबुद्धिना । गन्धर्वराजस्य सुता नाम्ना ख्याता मदालसा

कृतज्ञोऽयं ततस्तात! प्रतिज्ञां कृतवानिमाम् ।

नान्या भार्या भवित्रीति वर्जयित्वा मदालसाम् ॥ २६ ॥

द्रष्टुं तां चारुसर्वाङ्गीमयं वीरो ऋतध्वजः ।

तात! वाञ्छति यद्येतत् क्रियते तत्कृतं भवेत् ॥ ३० ॥

अश्वतर उवाच

मूर्तेर्विग्रोमिनोयोगस्तादृशैरेव तादृशः । कथमेतद्विना स्वप्नोमायांवाशम्बरोदिताम्

जड (पुत्र) उवाच

प्रणिपत्य भुजङ्गेशं पुत्रः शत्रुजितस्ततः । प्रत्युवाच महात्मानं प्रेमलज्जासमन्वितः

मायामयीमप्यधुना मम तातो मदालसाम् । यदिदर्शयते मन्ये परं कृतमनुग्रहम्

अश्वतर उवाच

तस्मात् पश्येह वत्स! त्वं मायाञ्चोद् द्रष्टुमिच्छसि ।

अनुग्राह्यो भवान् गेहं वालोऽप्यभ्यागतो गुरुः ॥ ३४ ॥

जड (पुत्र) उवाच

आनयामास नागेन्द्रो गृहगुप्तांमदालसाम् । तेषांसन्मोहनार्थायजजल्पचततःस्फुटम्

दर्शयामास च तदा राजपुत्राय तां शुभाम् । सेयंनवेति ते भार्या राजपुत्र! मदालसा

जडं (पुत्र) उवाच

स दृष्टा तां तदा तन्वीतत्क्षणात्चिगतत्रपः । प्रियेतितामभिमुखंययौवाचमुद्गीरयन्

निचारयामास च तं नागः सोऽश्वतरस्त्वरन् ॥ ३७ ॥

अश्वतर उवाच

मायेयं पुत्र मास्प्राक्षीः प्रागेवकथितंतव । अन्तर्द्धानमुपेत्याशुमायासंस्पर्शनादिभिः

ततः पपात मेदिन्यां स तु मूर्च्छापरिप्लुतः ।

तत्सर्वमिह सप्राप्तं यद्दृग्भियुगलतव । मन्चूडामणिनां स्पृष्टं यच्चान्कुरांशमातवात्  
जड (पुत्र) उवाच

इत्येव प्रसूतं वाक्पमुक्तं पत्रगसत्तम । प्राह राजसुतः प्रीत्या पुत्रयोरुपकारिणम् ॥  
नाग उवाच

यदि रत्नसुवर्णादि मत्तोऽघाप्नुं ननेमन । यदन्यग्मनसः प्रीत्यैतद्ब्रूहि त्वं ददाम्यहम्  
कुचलयाम्भ उवाच

भगवस्त्वत्प्रसादेन प्रार्थितस्यगृहे मम । सर्वमस्ति विशेषेण सम्प्राप्तं तव दर्शनात् ॥  
कृतश्रुत्योऽस्मि चैतेन सफलं जीवितञ्चमे । यद्दङ्कसश्लेषमितस्तव देवस्य मानुष-  
ममोत्तमाङ्गे त्वत्पादरजसा यद्विहारूपदम् । कृतं तेनैव न प्राप्तं किं मया पन्नगेभ्वरं  
यदि त्ववश्यदातव्योवरो मम यद्येत्सित । तं पुण्यकर्मसत्कारो हृदयान्माव्यपैतुमे  
सुवर्णमणिरत्नादि वाहनं गृहमाप्तनम् । स्त्रियोऽत्रपानं पुत्राक्षघातमाख्यानुत्पन्नम्  
एते च विविधा कामा गीतवाद्यश्चदिकञ्च यत् ।

सर्वमेतन्मम मनः फलं पुण्यचनस्पते ॥ २१ ॥

तस्मान्नरेण तन्मूलं कार्यो यन्न कृतात्मना ।

कर्त्तव्यं पुण्यसत्त्वानां न किञ्चिद्भुवि दुर्लभम् ॥ २२ ॥

मन्वन्तर उवाच

एष भविष्यति प्राज्ञः । तव धर्माधिता मतिः ।

सत्यज्ञेनत् फलं सर्वं धर्मस्योक्तं यथा त्वया ॥ २३ ॥

तथाऽप्यवश्यं मदुगेहमागतं त्वयाऽधुना । प्राह्यपन्मानुपेलोके दुष्प्रापं भवतोमतम्  
जड (पुत्र) उवाच

तस्यैतद्ब्रह्म धृत्या न तदा नृपनन्दन । मुखाघलोकनञ्चनेपन्नगेभ्वरपुत्रयो ॥ २४ ॥

तनस्तौ प्रणिपत्योर्मां राजपुत्रस्य यन्मतम् ।

तरिपनु सफलं पारो ऋषयामासतु स्फुटम् ॥ २५ ॥

पुत्राचूषतु

काननेषु च रम्येषु तथैवोपवनेषु च । पुण्यक्षयं वाञ्छमाना सापि कामोपभोगतः  
सहतेनातिकान्तेन रेमे रम्यासु भूमिषु । ततः कालेन महता शत्रुजित् स नराधिपः

सम्यक् प्रशास्य घसुधां कालधर्ममुपेयिवान् ।

ततः पौरा महात्मानं पुत्रं तस्य ऋतध्वजम् ॥ ७ ॥

अभ्यपिञ्चन्त राजानमुदाराचारचेष्टितम् ।

सम्यक् पालयतस्तस्य प्रजाः पुत्रानिघोरसान् ॥ ८ ॥

मदालसायाः सञ्ज्ञो पुत्रःप्रथमजन्ततः । तस्यचक्रे पितानाम चिक्रान्त इति धीमतः  
तुतुपुस्तेन वैभृत्याजहाम च मदालम्ना । न्ना वै मदालम्ना पुत्रं बालमुत्तानशायिनम्

उह्लापनच्छलेनाऽऽह रुदमानमचिन्वरम् ॥ १० ॥

शुद्धोऽसि रे तात! न तेऽस्तिनाम कृतं हि ते कल्पनयाऽधुनैव ।

पञ्चात्मकं देहमिदं तथैतन्मैवास्य त्वं रोदिषि कस्य हेतोः ॥ ११ ॥

न वा भवात्रोदिति वै स्वजन्मा शब्दोऽयमासाद्य महीशसन्तुम् ।

विकल्प्यमाना विविधा गुणास्तेऽगुणाश्च भौताः सकलेन्द्रियेषु ॥ १२ ॥

भूतानि भूतैः परिदुर्बलानि वृद्धिं समायान्ति यथेह पुंसः ।

अन्नाम्बुदानादिभिरेव कस्य न तेऽस्ति वृद्धिर्न च तेऽस्ति हानिः ॥ १३ ॥

त्वं कञ्चुके शीर्यमाणे निजेऽस्मिस्तस्मिन्स्वदेहे मूढतां मा व्रजेथाः ।

शुभाशुभैः कर्मभिर्देहमेतन्मदादिमूढैः कञ्चुकस्तेऽपिनङ्गः ॥ १४ ॥

तातेति किञ्चित्तनयेति किञ्चिदम्बेति किञ्चिद्व्ययितेति किञ्चित् ।

ममेति किञ्चिन्न ममेति किञ्चित् त्वं भूतसङ्घं बहूमानयेथाः ॥ १५ ॥

दुःखानि दुःखोपशमाय भोगान् सुखाय जानाति चिमूढचेताः ।

तान्येव दुःखानि पुनःसुखानि जानात्यविद्वान् सुधिमूढचेताः ॥ १६ ॥

हासोऽस्त्विसन्दर्शनमक्षियुग्ममत्युज्ज्वलं तर्जनमङ्गनायाः ।

कुचादिपीनं पिशितं धनं तत् स्थानं रतेः किं नरकं न योषित् ॥ १७ ॥

यानं क्षितौ यानगतञ्च देहं देहेऽपि चान्यः पुरुषो निधिष्टः ।



हा प्रियेति वदन् सोऽथ चिन्तयामास भामिनीम् ॥ ३६ ॥

मोहो ममाऽय नो वेति नाऽल प्रत्ययधानहम् ।

अहो स्नेहोऽस्य नृपतेममोपयधल मन । येनायप्रातनोऽरीणाविनाशस्त्रेणपातित  
मायेति (ममेति) दर्शिताऽनेन मिध्या मायेति यत्स्फुटम् ।

वाप्वम्बुनेजसा भूमेरकाशस्य च ज्ञेया ॥ ४१ ॥

पुन उवाच

तत कुवलाश्व त समाश्वस्यभुजङ्गम । कथयामास ततसर्वं मृतसजीवनादिकम्

तत प्रहृष्ट प्रतिलभ्य कान्ता प्रणम्य नाम निजगाम सोऽथ ।

सुशोभमान स्वपुर तमश्वमाच्छ सञ्चिन्तितमभ्युपेतम् ॥ ४३ ॥

शृणुयाद्वक्तिपूर्वं यो नैरन्तर्येण मानव । वेदघोषफल तन प्राप्त वै भुविदुर्लभम्  
सम्प्राप्नोति सुख नित्य सर्वकामसमन्वित ।

लोकेऽस्य दुर्लभ तस्य नास्ति किञ्चिन् विद्यते ॥ ४५ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराण मदालसाप्रातिवणन नाम चतुर्विंशोऽध्याय ॥ २४ ॥

## पञ्चविंशोऽध्यायः

कुवलाश्वीयेऋतध्वजस्यराज्याभिषेकवर्णनम्

जड उवाच

आगम्यस्वपुरसोऽथपित्रो सवमशेषत । कथयामासनन्वङ्गी यथा प्राप्ता पुनर्मृता  
ननामसाधवरणीश्वश्रुशुरयो शुभा । स्वजनञ्च यथापूर्वं वन्दनाश्लेषणादिभि

पूजयामास तन्वङ्गी यथान्यायं यथावय ।

ततो महोत्सवो जज्ञे पौराणां तत्र वै पुरे ॥ ३ ॥

ऋतध्वजश्चसुखिरंतयारेमेसुमध्यया । निर्भरेषु च शैलाना निम्नमापुलिनेषु च ॥

## मदालसोवाच

मयाज्ञाभवतःकार्प्या महाराज! यथात्थमाम् । तथा नामकरिष्यामिचतुर्थस्यसुतस्यते  
अलर्क इति धर्मज्ञः ख्यातिलोकेप्रयास्यति । कनीयानेष तेपुत्रो मतिमांश्चभविष्यति

## पुत्र उवाच

तच्छ्रुत्वानाम पुत्रस्यकृतं मात्रा महीपतिः । अलर्क इत्यसम्बद्धं प्रहस्येदमथाब्रवीत्

## राजोवाच

भवत्या यदिदं नाममत्पुत्रस्य कृतं शुभे! । किमीदृशमसम्बद्धमर्थः कोऽस्यमदालसे!

## मदालसोवाच

कल्पनेयं महाराज! कृतासा व्यवहारिकी । तत्कृतानां तथानाम्नांशृणुभूषांनिरर्थताम्  
वदन्ति पुरुषाः प्राज्ञाव्यापिनं पुरुषंयतः । क्रान्तिश्च गतिरुद्दिष्टादेशाद्देशान्तरन्तु या  
सर्वगोन प्रयातीति व्यापी देहेश्वरोयतः । ततो विक्रान्तसङ्घेयं मता मम निरर्थका  
सुबाहुरिति यासंज्ञाकृतान्यस्य सुतस्यते । निरर्थासाप्यमूर्त्तत्वात् पुरुषस्यमहीपते!  
पुत्रस्ययत् कृतं नाम तृतीयस्यारिमर्दनः । मन्ये तदप्यसम्बद्धंशृणुचाप्यत्र कारणम्  
एक एव शरीरेषु सर्वेषु पुरुषो यदा । तदास्यराजन्! कः शत्रुःको वा मित्रमिहेष्यते  
भूतैर्भूतानिमृद्यन्तेअमूर्त्तां मृद्यते कथम् । क्रोधादीनांपृथग्भावात् कल्पनेयंनिरर्थका  
यदि संव्यवहारार्थमसन्नाम प्रकल्प्यते । नास्मि कस्मादलर्काख्ये नैरर्थ्यं भवतोमतम्

## जड उवाच

एवमुक्तस्तयासाधुमहिष्यासमहीपतिः । तथेत्याहमहाबुद्धिर्दयितां सत्यवादिनीम्  
तञ्चापिसा सुतं सुभूर्यथापूर्वसुतांस्तथा । प्रोवाच बोधजननं तामुवाच सपार्थिवः  
करोपि किमिदं मूढे ! मम भावाय सन्ततेः । दुष्टावबोधदानेन यथापूर्वं सुतेषु मे ॥  
यदि ते मत्प्रियं कार्यं यदिग्राह्यं वचोमम । तदेनं तनयं मार्गं प्रवृत्तेः सन्नियोजय ॥  
कर्ममार्गःसमुच्छेदंमेवेदेचि!गमिष्यति । पितृपिण्डनिवृत्तिश्च नैवंसाधिव!भविष्यति  
पितरो देवलोकस्थास्तथा तिर्यक्त्वमागताः ।

तद्वन्मनुष्यतां याता भूतवर्गे च संस्थिताः ॥ २६ ॥

ममत्वबुद्धिर्न तथा यथा स्वे देहेऽतिमात्रं घत मूढतया ॥ १८ ॥

त्यजधर्ममधर्मं च उभे सत्यानृते त्यज । उभेसत्यानृतेत्यक्तवा येन त्यजसितस्यज  
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेमदालसोपाख्यानवर्णननाम पञ्चविंशोऽध्याय ॥ २५ ॥

## पञ्चविंशोऽध्यायः

अलर्नाय प्रवृत्तिमार्गानुशासनम्

जड उवाच

वर्द्धमान सुत सा तु राजपत्नीदिने दिने । तमुद्धापादिना बोधमनयत्रिमलात्मकम्  
यथायथ यत्नं लेभे यथादेभे मर्ति पितु । तथातयात्मबोधञ्च सोऽद्यापमानुभापितै  
इत्थ तथा स तनयो जन्मप्रभृति बोधित ।

सकार न मर्ति प्राप्ते गार्हस्थ्य प्रति निर्मम ॥ ३ ॥

द्वितीयोऽस्या सुनोज्ज्वलस्थनामाकरोत्पिता । सुराहुरयमित्युत्तंसाजहासमदालसा  
तमप्येव यथापूर्वं बालमुल्लापनादिना । प्राह बाल्यात्सच्चप्रापतथा बोध महामति  
वर्नीय तनय जात स राना शत्रुमर्दनम् । यदाह तेन सा सुभ्रूर्जहासातिघिर पुन  
तथैव सोऽपि तन्यङ्ग्या बालत्वादेव बोधित ।

त्रियाश्वकार निष्कामो न किञ्चिदुपकारकम् ॥ ७ ॥

चतुर्थस्यसुतस्याथचिक्रापुंश्रामभूमिष । षडशताशुभावारामीरद्धासा मदालसाम्  
तामाह राजा हसतीं किञ्चिन् कर्तुहलान्वितं ॥ ८ ॥

राजोवाच

नियमाणेसदृश्राग्नि कल्पताहास्यकारणम् । चिक्रान्तश्चमुषाहुश्चतथान्वशशत्रुमर्दनं  
शोभनार्नीतिनामानि मयामन्येहृतात्रिवै । योगयानिश्चबन्धूना शीर्षाटोपयुतानिच  
असत्येतानिचैद्धेऽयदिनेमनसि स्थितम् । तदस्यकियता नामचतुर्थस्यसुतस्यमे

मदालसोवाच

मयाज्ञाभवतःकार्या महाराज! यथात्थमाम् । तथा नामकरिष्यामिचतुर्थस्यसुतस्यते  
अलर्क इति धर्मज्ञः ख्यार्तिलोकेप्रयास्यति । कनीयानेष तेपुत्रो मतिमांश्चभविष्यति

पुत्र उवाच

तच्छ्रुत्वानाम पुत्रस्यकृतं मात्रा महीपतिः । अलर्क इत्यसम्बद्धं प्रहस्येदमथाब्रवीत्

राजोवाच

भवत्या यदिदं नाममत्पुत्रस्य कृतं शुभे! । किमीदृशमसम्बद्धमर्थः कोऽस्यमदालसे!

मदालसोवाच

कल्पनेयं महाराज! कृतासा व्यवहारिकी । तत्कृतानां तथानाम्नांशृणुभूप! निरर्थताम्  
घदन्ति पुरुषाः प्राज्ञाव्यापिनं पुरुषंयतः । क्रान्तिश्च गतिरुद्दिष्टादेशाद्देशान्तरन्तु या  
सर्वगोन प्रयातीति व्यापी देहेश्वरोयतः । ततो विक्रान्तसञ्ज्ञेयं मता मम निरर्थका  
सुवाहुरिति यासंज्ञाकृतास्यस्य सुतस्यते । निरर्थासाप्यमूर्त्तत्वात् पुरुषस्यमहीपते!  
पुत्रस्ययत् कृतं नाम तृतीयस्यारिमर्दनः । मन्ये तदप्यसम्बद्धंशृणुचाप्यत्र कारणम्  
एक एव शरीरेषु सर्वेषु पुरुषो यदा । तदास्यराजन्! कः शत्रुःको घा मित्रमिहेष्यते  
भूतैर्भूतानिमृद्यन्तेअमूर्त्तौ मृद्यते कथम् । क्रोधादीनांपृथग्भावात् कल्पनेयंनिरर्थका  
यदि संव्यवहारार्थमसन्नाम प्रकल्प्यते । नाम्नि कस्मादलर्कार्थ्ये नैरर्थ्यं भवतोमतम्

जड उवाच

एवमुक्तस्तयासाधुमहिष्यासमहीपतिः । तथेत्याहमहाबुद्धिर्द्रयितां सत्यचादिनीम्  
तञ्चापिसा सुतं सुभ्रूयथापूर्वसुतांस्तथा । प्रोवाच बोधजननं तामुवाच सपार्थिवः  
करोपि किमिदं मूढे ! मम भावाय सन्ततेः । दुष्टावबोधदानेन यथापूर्वं सुतेषु मे ॥  
यदि ते मत्प्रियं कार्यं यदिग्राह्यं चोमम । तदेनं तनयं मार्गं प्रवृत्तेः सन्नियोजय ॥  
कर्ममार्गःसमुच्छेदंमैवंदेवि! गमिष्यति । पितृपिण्डनिवृत्तिश्च नैवंसाध्वि! भविष्यति

पितरो देवलोकस्थास्तथा तिर्यक्त्वमागताः ।

तद्वन्मनुष्यतां याता भूतवर्गे च संस्थिताः ॥ २६ ॥

सपुण्डानसपुण्याश्च मुत्क्षामान् तृप्परिप्लुतान् ।

पिण्डोदकप्रदानेन नरा कर्मण्यवस्थित ॥ ३० ॥

सदाप्याययने क्षुभ्रं तद्देष्टव्यतिथीनपि । देधेमंनुष्यैः पितृभिः प्रेतैर्भूतैः सगुह्यकैः  
वयोमिः हृमिकीटैश्चनरपयोपनीव्यते । तस्मात्सन्वद्भिः पुत्रमेवत्काज्यैः क्षत्रयोनिभिः  
पेहिकामुष्मिकफल तन्सम्यक् प्रतिपादय । तेनैवमुक्ता सा भर्त्रा वरनारी मदालसा  
अल्कं नाम तनयमुवाचोह्लापवादिना । पुत्र ! यद्गम्य मद्भक्तमनो नन्दय कममि ॥

मिश्राणामुपकाराय दुर्हंदा नाशनाय च ॥ ३४ ॥

धन्योऽसि रे यो वसुधामशपुरेकधिरं पालयिताऽसि पुत्र ! ।

तपालनादस्तु सुखोपभोगो धमात् पत्न्यं प्राप्स्यसि वामरत्वम् ॥ ३५ ॥

घराभरान् पर्वसु तपयेथा समीहितं वन्धुषु पुरयेथा ।

हितं परस्मै हृदि चिन्तयेथा मन परत्रीषु निवृत्तयेथा ॥ ३६ ॥

सदा मुरारि हृदि चिन्तयेथान्तद्वयानतोऽन्तःपदरीञ्जयेथा ।

माया प्रबोधेन निवारयेथा ह्यनित्यतामेव विचिन्तयेथा ॥ ३७ ॥

अयांगमाय हितिपाञ्चयेथा यशोऽर्जनायाधर्मपिच्ययेथा ।

परापयाद्भवणात् निर्माथा विपत्समुद्राज्जमुद्धरेथा ॥ ३८ ॥

यज्ञैरनेकैर्विबुधाननधर्मैर्द्विनान् प्राणय सध्रिताश्च ।

स्त्रियश्च कामैर्गुलैश्चिराय सुद्वन्द्व्यारींस्तोषयितासि धीर ! ॥ ३९ ॥

यालो मनो नन्दय बान्धवानां गुरोस्त्वयाहाकरणे कुमार !

स्वाणा युवा सत्कुलभूषणानां वृद्धो वने वस ! वनेधराणाम् ॥ ४० ॥

राज्यं कुर्वन् सुहृदो न दयेथा साधून्वर्षन्तात ! यद्गम्ययेथा ।

दुष्कान्निघ्नन् वैरिणश्चान्तिमध्ये गोविप्रार्थं वत्स ! मृत्युं वनेथा ॥ ४१ ॥

इति ध्रामाकण्डेयपुराणे पुत्रायप्रवृत्तिमायानुशासनवर्षननाम

पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ -६ ॥ \*

## सप्तविंशोऽध्यायः

पुत्रायनृपनीतिविषयेराज्यतन्त्रानुशासनम्

जडउवाच

एवमुल्लाप्यमानस्तु सतु मात्रा दिने दिने । घवृधे घयसावालोबुद्ध्याचालर्कसञ्चितः  
सकौमारकमासाद्य ऋतध्वजसुतस्ततः । कृतोपनयनः प्राज्ञः प्रणिपत्याऽऽह मातरम्  
मया यदत्र कर्त्तव्यमैहिकामुष्मिकाय वै । सुखाय घद तत् सर्वं प्रश्रयावनतस्य मे ॥  
ममार्थं चैव धर्मार्थं प्रजानां चैव यद्वितम् । श्रेयसे यच्च तत्सर्वं प्रजारञ्जनमादितः ॥

मदालसोवाच

घत्स! राज्येऽभिपिक्तेन प्रजारञ्जनमादितः । कर्त्तव्यमविरोधेन स्वधर्मस्य महीभृता  
व्यसनानिपरित्यज्यसप्तमूलहराणिवै । आत्मारिपुभ्यः संरक्ष्योवहिर्मन्त्रविनिर्गमात्  
अप्रधा नाशमाप्नोति सुचक्रात् स्यन्दनाद्यथा ।

तथा राजाऽप्यसन्दिग्धं बहिर्मन्त्रविनिर्गमात् ॥ ७ ॥

दुष्टादुष्टांश्च जानीयाद्मात्यानपिद्रोपतः । स्ररैश्चरास्तथा शत्रोरन्वेष्टव्याः प्रयत्नतः ॥  
विश्वासो न तुकर्त्तव्योराज्ञामित्राप्तवन्धुषु । कार्ययोगादमित्रेऽपि विश्वसीतनराधिपः  
स्थानवृद्धिक्षयज्ञेन पाङ्गुण्यगुणिनात्मना । भवितव्यं नरेन्द्रेण न कामवशवर्तिना

प्रागात्मा मन्त्रिणश्चैव ततो भृत्या महीभृता ।

जेयाश्चानन्तरं पौरा विरुध्येत ततोऽरिभिः ॥ ११ ॥

यस्त्वेतानविजित्यैष चैरिणो विजिगीषते ।

सोऽजितात्मा जितामात्यः शत्रुवर्गेण वाध्यते ॥ १२ ॥

तस्मात्कामादयःपूर्वजेयाः पुत्र!महीभुजा । तज्जयेहिजयोऽवश्यं राजानश्यतितैर्जितः  
कामः क्रोधश्चलोमश्च मदोमानस्तथैव च । हर्षश्च शत्रवो ह्येतेविनाशायमहीभृताम्  
कामप्रसक्तमात्मानं स्मृत्वा पाण्डुं निपातितम् ।

नियतं ये स्याद्वा क्रोधादनुहाद् हतात्मजम् ॥ १५ ॥

हतमैल तथालोमान्मदाह्नेनं द्विजैर्हतम् । मानादनायुष पुत्रं हतं हर्षात् पुरञ्जयम् ॥

एभिर्जितैर्जितं सर्वमवतेनमहात्मना । स्मृत्वा विपश्चिदेतान्दोषान्स्वीयान्महीपति-

काककोकिलभृङ्गाणां मृगव्यालशिखण्डिनाम् ।

हसकुचकुन्डलोहानां शिशेते चरितं नृप ॥ १८ ॥

कीटकस्यमिवाकुर्पात् विपक्षे मनुजेश्वर । खेटापिपीलिकानाञ्च कालेभूप प्रदर्शयेत्

शेयाग्निविस्फुलिङ्गानां वीजघेष्टाघशात्मले । चन्द्रसूर्यस्वरूपेणतीत्यर्धेपृथिवीक्षिता

बन्धकीपद्मशरभशूलिकागुर्विणीस्तनात् । एष सामेन भेदेन प्रदानेन च पार्थिव ॥

दण्डेन च प्रकुर्वीत नीत्यर्धं पृथिवीक्षिता ।

प्रज्ञा नृपेण चादेया तथा गोपालयोपित ॥ २२ ॥

शकार्कयमसोमाना तद्द्वयायोर्महीपति । रूपाणि पञ्च कुर्वीत महीपालनकर्मणि ॥

यथेन्द्रश्चनुरो मासान् तोयोत्सर्गेण भूगतम् । आध्याययेत्तथालोकपरिहारैर्महीपति

मासानष्टौ यथा सूर्यस्तोय हरति रश्मिभि ।

सूक्ष्मणैवाभ्युपायेन तथा शुक्रादिक नृप ॥ २५ ॥

यथायम प्रियङ्गेप्ये प्राप्तकाले नियच्छति । तथाप्रियाप्रियेराजादुष्टादुष्टे समो भवेत्

पूर्णेन्दुमालोक्वयधाप्रीतिमान् जायतनर । एवयत्रप्रजा सर्वांनिवृत्तास्तच्छशिमतम्

मास्तु सवभूतेषु निगूढश्चरत यथा । एव नृपश्चरेश्वरै र्परामात्यास्त्विन्धुषु ॥ २८

न लोभाद्वा न कामाद्वा नार्थाद्वा यस्य मानसम् ।

यथाऽन्यै कृष्यन्ते घत्स । स राजा स्वर्गमृच्छति ॥ २९ ॥

उत्पथग्राहिणोमूढान्स्वधर्माच्चलतोन्नरान् । य करोतिनिजेधर्मेत्तराजास्वर्गमृच्छति

घर्णधर्मा न सीदन्ति यस्य राज्ये तथाऽऽध्रमा ।

घत्सां तस्य सुखं प्रेत्य परत्रेह च शाश्वतम् ॥ ३१ ॥

एतद्ग्राह परहृत्यतथैतत्सिद्धिकारकम् । स्वधर्मस्थापन नृणाञ्चालयतेयतबुद्दिभि-

पालनेनैव भूतानास्तदृत्योमहीपति । सम्यक्पालयिताभाग धर्मस्याप्नोति यज्ञत.

एवमाचरते राजा चातुर्वर्णस्य रक्षणे । स सुखी विहरत्येष शक्रस्यैति सलोकताम्  
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे पुत्रायनृपनीतिविषये राज्यतन्त्रानुशासनवर्णनं  
नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

## अष्टाविंशोऽध्यायः

वर्णाश्रमधर्मवर्णने पुत्रानुशासनम्

जड ( पुत्र ) उवाच

तन्मातुर्वचनं श्रुत्वा सोऽलकोमातरंपुनः । पप्रच्छ वर्णधर्मांश्च धर्मान्ये चाश्रमेषु च  
अलक उवाच

कथितोऽयं महाभागे ! राज्यतन्त्राश्रितस्त्वया ।

धर्मं तमहमिच्छामि श्रोतुं वर्णाश्रमात्मकम् ॥ २ ॥

मदालसोवाच

दानमध्ययनं यज्ञो ब्राह्मणस्य त्रिधामतः । नान्यश्चतुर्थो धर्मोऽस्ति धर्मस्तस्य पदं विना  
याजनाध्यापने शुद्धे तथा पूतप्रतिग्रहः । एषा सभ्यकृत्समाख्याता त्रिविधा चास्य जीविका  
दानमध्ययनं यज्ञः क्षत्रियस्याप्ययं त्रिधा । धर्मः प्रोक्तः क्षितेरक्षा शस्त्राजीवश्च जीविका

दानमध्ययनं यज्ञो वैश्यस्यापि त्रिधैव सः ।

वाणिस्यं पाशुपाल्यञ्च कृषिश्चैवाऽस्य जीविका ॥ ६ ॥

दानं यज्ञोऽथ शुश्रूषा द्विजातीनां त्रिधा मया ।

व्याख्यातः शूद्रधर्मोऽपि जीविका कारुकर्म ( जा ) च ॥ ७ ॥

तद्वद् द्विजातिशुश्रूषा पोषणं क्रयविक्रयो ( यैः ) ।

वर्णधर्मास्त्वमे प्रोक्ताः श्रूयन्तां चाश्रमाश्रयाः ॥ ८ ॥



यावन् नोपनयनं क्रियते वै द्विजन्मनः । कामचेष्टोक्तिमक्ष्यञ्च तापद्वयति पुत्रक  
 एतोपनयनं सम्भक्त्वा ब्रह्मचारीगुरोर्गृहे । वसेत्तत्र च घर्मोऽस्य कथ्यते तं निषोषं ।  
 स्वाध्यायोऽघाग्निशुभ्रया क्षान्तिमिहाटनं तथा । गुरोर्निवेद्य तत्राद्यमनुज्ञातेन सर्वं ।  
 गुरोर्ब्रह्मणिसौयोगं सम्भक्त्वा प्रीत्युपपादनम् । तेनाहृतं पठेच्चैव तत्परो नान्यमानसः

एकं ह्येकं सकलान् घापि वेदान् प्राप्य गुरोर्मुखात् ।

अनुवातोऽथ वन्दित्वा दक्षिणां गुरवे ततः ॥ १४ ॥

गार्हस्थ्यधर्मकामस्तु गृहस्थाधर्ममावसेत् ।

घान्तमस्याधर्मं घापि घतुष्यं घेच्छयाऽऽत्मनः ॥ १५ ॥

तथैव घानुरोर्गृहे द्विजो निष्ठां यथाप्नुयात् । गुरोरेवात्रै तत्पुत्रे तच्छिष्ये तत्सुतमिह  
 शुभ्रपुर्निरमीमानोश्च भवत्यधर्मं वसेत् । उपावृत्तस्ततस्तस्मात् गृहस्थाधर्मकाम्यत्  
 ततोऽसमानं कुरुत्वां तुर्यां भार्यामरो गिणीम् ।

उद्धर्तव्यायतोऽप्यद्वा गृहस्थाधर्मकारणात् ॥ १६ ॥

स्य कर्मणा घनं लब्ध्वा पितृदेवातिथीं स्तथा ।

सम्भक्त्वा सर्म्यणयन् मत्तया पोषयेद्यथाश्रितास्तथा ॥ १७ ॥

भृत्यान्मज्जात् जामयोऽथ क्षान्तिम् (सिं) पतितानपि ।

यथाशक्त्याऽप्रदानेन यथासि पशयस्तथा ॥ २० ॥

एव घर्मो गृहस्थस्य श्रमावसिगमस्तथा । पञ्चयज्ञपिधानस्तु यथाशक्तं यानहापयेत्  
 पितृदेवातिथिज्ञानिमुनशेषं स्वयं नरः । भुञ्जीत च सर्म भृत्यैर्यथाविमयमाहृतम् ॥  
 एतन्नुदेशतः प्रोक्तो गृहस्थस्याऽऽधर्मो मया । घान्तमस्यस्य घमेनेत्तैश्च यथाशक्तं यथाशक्तम्  
 यथाशक्तं तद्विद्वान्मार्गोऽस्यैव घानतिम् । घान्तमस्याधर्मं गच्छेत्तदात्मनः शुद्धिकारणात्  
 तत्रारण्योपमो गच्छेत्तपोमिद्वानुत्तरणम् । भूर्माशक्त्याश्चैव पितृदेवातिथिभिर्या  
 होमस्त्रिर्यणधानं अटायत्तन्धारणम् । योगाभ्यासं सदाशैव घन्यस्त्रैहृतिरिषणम्  
 इत्येव घान्गुरुद्वयं मात्मानं प्रोक्तकारकम् । घान्तमस्याधर्मस्तस्माद्द्विशोःस्तु घतयोऽपर  
 घतुष्यस्य स्वर्गं तु धयतामाधर्मस्य मे ।

यः स्वधर्मोऽस्य धर्मज्ञेः प्रोक्तस्तात ! महात्मभिः ॥ २८ ॥

सर्वसङ्गपरित्यागो ब्रह्मचर्यमकोपिता । यतेन्द्रियत्वमावासे नैकस्मिन्वसतिश्चिरम्  
अनारम्भस्तथाहारो भैक्षान्नेनैककालिना (भिक्षान्नं वैककालिकम्) ।

आत्मज्ञानावबोधेच्छा तथा चात्मावलोकनम् ॥ ३० ॥

चतुर्थे त्वाश्रमे धर्मो मयाऽयं ते निवेदितः । सामान्यमन्यवर्णानामाश्रमाणाञ्चमेशृणु  
सत्यं शौचमहिंसा च अनसूया तथा क्षमा ।

आनृशंस्यमकार्पण्यं सन्तोषश्चाप्रमोगुणः ॥ ३२ ॥

एते सङ्क्षेपतः प्रोक्ता धर्मा वर्णाश्रमेषु ते । एतेषु च स्वधर्मेषु स्वेषु तिष्ठेत् समन्ततः  
यश्चोल्लङ्घ्य स्वकं धर्मं स्ववर्णाश्रमसञ्ज्ञितम् ।

नरोऽन्यथा प्रवर्त्तत स दण्ड्यो भूभृतो भवेत् ॥ ३४ ॥

ये च स्वधर्मसन्त्यागात् पापं कुर्वन्ति मानवाः । उपेक्षतस्ता नृपतेरिष्टापूर्त्तं प्रणश्यति  
तस्माद्वाज्ञा प्रयत्नेन सर्वे वर्णाः स्वधर्मतः ।

प्रवर्त्तन्तोऽन्यथा दण्ड्याः स्थाप्याश्चैव स्वकर्मसु ॥ ३६ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे पुत्रानुशासने वर्णाश्रमधर्मवर्णनं

नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

## एकोनत्रिंशोऽध्यायः

गार्हस्थ्यकृत्यानां समुपदेशवर्णनम्

अलर्क उवाच

यत् कार्यं पुरुषाणाञ्च गार्हस्थ्यमनुवर्त्तताम् ।

बन्धश्च स्यादकरणे क्रियाया यस्य चोच्छ्रितः ॥ १ ॥

उपकाराय यन्नृणां यच्चवर्ज्यं गृहे सताम् । यथाच क्रियते तन्मेयथा चत् पृच्छतो घद

मन्त्रार्थव्याख्यान

वसन्तर्णस्यमहाय ( मन्त्रार्थव्याख्यान ) इति मन्त्रार्थव्याख्यानम् ।

सुखादिभिर्भोगैश्चैव वा त्रयस्त्रयस्त्रयस्त्रयम् ॥ १ ॥

विपत्तौ मुक्तयोदया भूयानि मनुजास्तथा । इतिर्वाद्यनूनाश्च सप्तमित्यन्वयेऽनुताः

गृहस्यसुखत्रयसि तत्रस्युति मन्त्रसि च ।

मुनिं वाच्यं निर्वाहान् चपि नो वाच्यमतीति वे ॥ २ ॥

सप्तम्यापारभूनेव वसन्तर्णस्यमहाय ( मन्त्रार्थव्याख्यान ) इति मन्त्रार्थव्याख्यानम् ।

सप्तम्यापारभूनेव वसन्तर्णस्यमहाय ( मन्त्रार्थव्याख्यान ) इति मन्त्रार्थव्याख्यानम् ।

सप्तम्यापारभूनेव वसन्तर्णस्यमहाय ( मन्त्रार्थव्याख्यान ) इति मन्त्रार्थव्याख्यानम् ।

स्वाहावाच्यमप्युक्तं चपि नो वाच्यमतीति वे ॥ ३ ॥

इत्येवमन्त्रार्थव्याख्यानस्यसुखम् ॥ ३ ॥

स्वाहावाच्यं चपि नो वाच्यमतीति वे ॥ ४ ॥

इत्येवमन्त्रार्थव्याख्यानस्यसुखम् ॥ ४ ॥

इत्येवमन्त्रार्थव्याख्यानस्यसुखम् ॥ ५ ॥

इत्येवमन्त्रार्थव्याख्यानस्यसुखम् ॥ ६ ॥

देवादीनिगिराण्येषु मन्त्रार्थव्याख्यानम् ॥ १३ ॥

तेषामुक्तं चपि नो वाच्यमतीति वे ॥ १४ ॥

तेषामुक्तं चपि नो वाच्यमतीति वे ॥ १५ ॥

तेषामुक्तं चपि नो वाच्यमतीति वे ॥ १६ ॥

मन्त्रार्थव्याख्यानस्यसुखम् ॥ १७ ॥

मन्त्रार्थव्याख्यानस्यसुखम् ॥ १८ ॥

मन्त्रार्थव्याख्यानस्यसुखम् ॥ १९ ॥

मन्त्रार्थव्याख्यानस्यसुखम् ॥ २० ॥

मन्त्रार्थव्याख्यानस्यसुखम् ॥ २१ ॥

मन्त्रार्थव्याख्यानस्यसुखम् ॥ २२ ॥

दद्याद्वात्रेविधात्रे चवलिद्वारे गृहस्यतु । अर्घ्यम्णेऽथ वहिर्दद्याद्गृहेभ्यश्चसमन्ततः  
नक्तञ्चरेभ्यो भूतेभ्यो वलिमाकाशतोहरेत् ।

पितृणां निर्वपेच्चैव दक्षिणाभिमुखस्थितः ॥ २२ ॥

गृहस्थस्तत्परो भूत्वा सुसमाहितमानसः । ततस्तोयमुपादाय तेषामाचमनाय वै  
स्थानेषु निक्षिपेत् प्राज्ञस्तास्ताऽद्विश्यदेवताः । एवंगृहवलिंकृत्वागृहेगृहपतिःशुचिः  
आप्यायनाय भूतानां कुर्यादुत्सर्गमादरात् ।

श्वभ्यश्च श्वपत्रेभ्यश्च वयोभ्यश्चावपेद् भुवि ॥ २५ ॥

वैश्वदेवंहिनामैतत् सायंप्रातरुदाहृतम् । आचम्यच ततः कुर्यात्प्राज्ञोद्वारावलोकनम्  
मुहूर्त्स्याष्टमं भागमुदीक्ष्योऽप्यतिथिर्भवेत् । अतिथितत्र सम्प्राप्तमन्नाद्येनोदकेन च  
सम्पूजयेद्यथाशक्ति गन्धपुष्पादिभिस्तथा ।

नमित्रमतिथिं कुर्यान्नैकग्रामनिवासिनम् ॥ २८ ॥

अज्ञातकुलनामानं तत्कालसमुपस्थितम् । बुभुक्षुमागतं श्रान्तं याचमानमकिञ्चनम्  
ब्राह्मणंप्राहुरतिथिसंपूज्यःशक्तितोबुधैः । नपृच्छेद्गोत्रचरणंस्वाध्यायश्चापिपण्डितः  
शोभनाशोभनाकारं तं मन्येत प्रजापतिम् ।

अनित्यं हि स्थितो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते ॥ ३१ ॥

तस्मिंस्तृप्ते नृयज्ञोत्थाट्टणान्मुच्येद् गृहाश्रमां ।

तस्याअदत्त्वा तुयो भुङ्क्ते स्वयं किल्बिषभुङ्गनरः ॥ ३२ ॥

सपापं केवलं भुङ्क्ते पुरीषञ्चान्यजन्मनि । अतिथिर्यस्य भग्नाशोगृहात्प्रतिनिवर्त्तते  
स दत्त्वा दुष्कृतं तस्मै पुण्यमादाय गच्छति ।

अप्यम्बुशाकदानेन यच्चाप्यश्नाति स स्वयम् ॥ ३४ ॥

पूजयेत्तु नरः शक्त्या तेनैवातिथिमादरात् । कुर्याच्चारहरः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन च ॥

पितृनुद्विश्य चिप्रांश्च भोजयेद्विप्रमेव वा । अन्नस्याग्रं तदुद्धृत्यब्राह्मणायोपपादयेत्  
भिक्षाञ्च याचितां दद्यात् परिव्राड्ब्रह्मचारिणाम् ।

ग्रासप्रमाणा भिक्षा स्यादग्रं ग्रासचतुष्टयम् ॥ ३७ ॥

अथ चतुर्गुणं प्राहुर्हन्तकारं द्विजोत्तमा ।  
भोजनं हन्तकारं वामघ्नं भिक्षामयापि वा  
भक्षया तु न मोक्षस्यं यथापिभयमारमत ।

पूजयित्वाऽतिथीनिष्ठान् ज्ञातीन् यन्धू स्तथापिनः ॥ ३६ ॥

विषगन् पात्तृदांश्च भोजयेच्छातुरांस्तथा ।

पाम्पठते भुम्परातात्मा यच्चान्योऽन्नमश्नुत ॥ ४० ॥

कुटम्बिना भोजनीय समर्थोपिमयेसति । श्रीमन्तं ज्ञातिमासाद्ययोऽज्ञातिरवसीदति  
स्त्रीदतायत् वृत्तेनतत्पापं ससमश्नुते । सायधैवविधि कार्यं सूर्योद्गतवयातिधिम  
पूजयेद्य यथाशक्ति शयनाशनभोजने । यद्यमुद्गतस्तात । गार्हस्थ्यं मात्माहितम्  
स्कन्धविधातादेवाश्चपितरश्च महर्षयः । श्रेयोऽभिवर्षिण सर्वैतथैवातिथियान्धया-  
पशुपक्षिगणास्तृमा ये चान्येसुश्मकीटका । गाथाश्चात्र महामाग'स्ययमत्रिरगायत  
ता शृणुष्व महामाग'गृहस्थाश्रमसंस्थिता ।

देवान् पितृ ज्ञातिर्षींश्च तद्रत् सम्पूज्य बान्धवान् ॥ ४६ ॥

जामयश्च गुरु श्वैव गृहस्थोपिभवेसति । श्वम्यश्चश्वपचेम्यश्च ययोम्यश्चापपेदुमुधि  
धैश्वद्वं हि नामैतत् कुर्यात् स्थाय तथर दिने ।

भासमन्न तथा शाकं गृहे यच्छोपसाधितम् ॥

न च तत् स्वयमर्धीयाद्विधिघद्यत्र निर्घपेत् ॥ ४८ ॥

इति श्रीमाकण्डेयपुराणे मद्गालसोपदेशवर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

## त्रिंशोऽध्यायः

### नैमित्तिकादिश्राद्धकल्पवर्णनम्

#### मदालसोवाच

नित्यं नैमित्तिकं चैव नित्यनैमित्तिकं तथा । गृहस्थस्य तु यत्कर्म तन्निशामयपुत्रक!  
पञ्चयज्ञश्रितं नित्यं यदेतत् कथितं तव । नैमित्तिकं तथैवान्यत् पुत्रजन्मक्रियादिकम्  
नित्यनैमित्तिकं ज्ञेयं पर्वश्राद्धादि पण्डितैः । तत्र नैमित्तिकं वक्ष्ये श्राद्धमभ्युदयंतव  
पुत्रजन्मनि यत्कार्यं जातकर्म समं नरैः । विवाहादौ च कर्त्तव्यं सर्वसम्यक्कमोदितम्

पितरश्चात्र सम्पूज्याः ख्यातः नान्दीमुखास्तु ये ।

पिण्डांश्च दधिसंमिश्रान्दद्याद्यवसमन्वितान् ॥ ५ ॥

उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा यजमानः समाहितः ।

वैश्वदेवधिहीनन्तत्केचिदिच्छन्ति मानवाः ॥ ६ ॥

युग्माश्चात्र द्विजाः कार्यास्ते च पूज्याः प्रदक्षिणम् ।

एतन्नैमित्तिकं वृद्धौ तथान्यच्चौर्ध्वदेहिकम् ॥ ७ ॥

मृताहनि च कर्त्तव्यमेकोद्विष्टं शृणुष्व तत् । दैवहीनंतथैकाऽऽद्यंतथैवैकपवित्रकम्  
आवाहनं न कर्त्तव्यमग्नौ करणवर्जितम् । प्रेतस्य पिण्डमेकञ्च दद्यादुच्छिष्टसन्निधौ  
तिलोदकंचापसव्यंतन्नामस्मरणान्वितम् । अक्षय्यममुकस्येति स्थानेचिप्रविसर्जने

अभिरम्यतामिति ब्रूयाद् ब्रूयुस्तेऽभिरताः स्मह ।

प्रतिमासं भवेदेतत्कार्यमावत्सरं नरैः ॥ ११ ॥

अथ संवत्सरे पूर्णे यदा वा क्रियते नरैः । सपिण्डीकरणं कार्यं तस्यापिविधिरुच्यते  
तच्चापि दैवरहितमेकार्यं कपवित्रकम् । नैवाग्नौ करणं तत्र तच्चावाहनवर्जितम् ॥

अपसव्यञ्च तत्रापि भोजयेद्युजो द्विजान् ।

विशेषस्तत्र चान्योऽस्ति प्रतिमासं क्रियाधिकः ॥ १४ ॥

तं वक्ष्यमानमेकाप्रां वदन्त्या मे निशामय ।

तिलगन्धोदकैर्पुंक्तं तत्र पात्रवत्तुण्यम् ॥ १५ ॥

कुप्यांस्तिपतृणां त्रितयमेकं प्रेतस्य पुत्रक ॥ पात्रप्रये प्रेतपात्रमर्घ्यंशुष प्रसेवयेत् ॥

ये समाना इति जपन् पूर्णवच्छेदमाचरेत् । स्त्रीणामप्येवमर्घ्यं तदेकोद्विष्टमुदाहृतम्

सपिण्डीकरणं तासापुत्रामार्घ्येन विद्यते । प्रतिमवत्सरकार्यमेकोद्विष्टं नरैस्त्रिधा

मृताहनि यथान्यायनृणायद्विद्विहोदितम् । पुत्रामावेसपिण्डान्तुतदभावेसहोदका

मानु सपिण्डा ये च स्युर्ये च मानु सहोदका ।

कुर्युरेते विधिं सम्यगपुत्रस्य सुतास्तुत ॥ २० ॥

कुर्युर्मातामहायैव पुत्रिकास्तनयान्तथा ।

द्वयामुप्यायणसञ्ज्ञास्तु मातामहपितामहान् ॥ २१ ॥

पूजयेदुर्यथान्यायश्राद्धैर्नैमित्तिकैरपि । सर्वामार्गैस्त्रियं कुर्युं स्वमतृणाममन्त्रकम्

तदभावे च नृपतिं कारयेत् स्वकुटुम्बिना ।

तज्जातीयैर्नरैः सम्यक्दाहाया सकला क्रिया ॥ २३ ॥

सर्वेषामेव वर्णानां दान्धवो नृपतियत ।

एतास्ते कथिता घटम' नि दानैर्मित्तिका क्रिया ॥ २४ ॥

क्रिया श्राद्धाध्यामन्या नित्यनैमित्तिकीं शृणु ।

दर्शस्तत्र निमित्तं वै कालश्चन्द्रक्षयात्मक ।

नित्यता नियत कालस्तस्या ससृक्षयत्यथ ॥ २९ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेमहात्मोपाख्यानेऽलर्कानुशासने गार्हस्थ्यकथने

नैमित्तिकादिश्राद्धकटपदणन नामत्रिंशोऽध्याय ॥ ३० ॥

## एकत्रिंशोऽध्यायः पार्वणश्राद्धकल्पवर्णनम् मदालसोवाच

सपिण्डीकरणाद्बुधं पितुर्यः प्रपितामहः । सतुलेपभुजोयातिप्रलुप्तःपितृपिण्डतः  
तेषामन्यश्चतुर्थो यः पुत्रलेपभुजान्नभुक् । सोऽपि सम्बन्धतो हीनमुपभोगं प्रपद्यते  
पिता पितप्रहश्चैव तथैव प्रपितामहः । पिण्डसम्बन्धिनो ह्येते विज्ञेया पुरुषास्त्रयः  
लेपसम्बन्धिनश्चान्ये पितामहपितामहात् । प्रभृत्युक्तास्त्रयस्तेषां यजमानश्च सप्तमः

इत्येष मुनिभिः प्रोक्तः सम्बन्धः सातपौरुषः ।

यजमानात्प्रभृत्यूर्ध्वमनुलेपभुजस्तथा ॥ ५ ॥

ततोऽन्ये पूर्वजाः सर्वे ये चान्ये नरकौकसः ।

ये च तिर्यक्त्वमापन्ना ये च भूतादिसंस्थिताः ॥ ६ ॥

तान् सर्वान् यजमानो वै श्राद्धं कुर्वन् यथाविधि ।

समाध्याययते वत्स ! येन येन शृणुष्व तत् ॥ ७ ॥

अन्नप्रकिरणं यत्तु मनुष्यैः क्रियते भुवि । तेन तृप्तिमुपायान्तियेपिशाचत्वमागतः  
यद्भुक्ष्णानवस्त्रोत्थं भूमौ पतति पुत्रक । तेन ते तरुतांप्रासास्तेषां तृप्तिः प्रजायां

यास्तु गात्राम्बुकणिकाः पतन्ति धरणीतले ।

ताभिराप्यायनं तेषां ये देवत्वं कुले गताः ॥ १० ॥

उद्धृतेष्वथ पिण्डेषु याश्चान्नकणिका भुवि ।

ताभिराप्यायनं प्राप्ता ये तिर्यक्त्वं कुले गताः ॥ ११ ॥

ये वा दग्धाः कुले बालाः क्रियायोग्या ह्यसंस्कृताः ।

क्षिपन्नास्तेऽन्नविकिरसम्मार्जनजलाशिनः ॥ १२ ॥

अस्तुवा चाचामतां यच्च जलं यच्चाङ्घ्रिसेचने । ब्राह्मणानां तथैवान्ये तेन तृप्तिप्रयान्ति त्वं



पिशाचन्वमनुप्राप्ता वृमिर्काटत्वमेव ये ॥ १३ ॥

एव यो यजमानस्ययश्चतेषाद्विजन्मनाम् । कश्चिज्जलाघ्नविशेष शुचिरच्छिष्टेष्ववशा  
तेन तेन कुले तत्र तत्तद्योन्यन्तरं गता ।

प्रयान्त्याप्यायन घत्स' सप्यक्श्चाद्भ्रियावतम् ॥ १५ ॥

अन्यापोपार्जितरथैर्यच्छ्रद्ध क्रियते नरैः । तृप्यन्ते तेन घाण्डालपुत्रस्तापामुयोतिषु  
एवमाप्यायन घत्स ! बहूनामिह वान्धवै ।

धाद् कुर्वद्विरध्राम्बु ( शाकैरपिहि ) जिन्दुभेपेण जायने ॥ १७ ॥

नम्माच्छ्राद् नरो मनया शाकैरपि यथाविधि ।

कुर्वीत कुच्यन धाद् कुले कश्चिन्न मीदति ॥ १८ ॥

तस्य कालानर्हं घश्ये निस्थनैमित्तिका मकात् ।

विधिना येन च नरैः क्रियते तत्रिशोध मे ॥ १६ ॥

कार्यं धाद्ममावास्या मासि माम्युद्दुपश्ये ।

तथाऽष्टकास्वप्यवश्यमिष्टकालान्निशोध म ॥ २० ॥

विशिष्टप्राज्ञपश्र्मा सूर्येन्दुग्रहणेऽयने । विपुत्रैरविमङ्कान्तोऽध्यर्तापाते च पुत्रक !  
धाद्वाहद्रव्यमग्रामो तथादुःस्वप्नदर्शने । जन्मशंभ्रहर्षाडासु धाद् कुर्वीत चेच्छया

विशिष्ट श्रोत्रियो योगी वेदविन्द्येष्टमामग ।

त्रिणाचिकेन श्रुतवान विद्वत्प्रतपारक ।

त्रिणाचिकेनस्त्रिमधुस्त्रिमुषणं पटङ्गवित् ॥ २१ ॥

दौहित्रसृत्विगतामामृम्बध्रीया श्वशुरस्तथा ।

पञ्चाग्निमनिष्टश्च तपानिष्टोऽथ मातुल ॥ २४ ॥

मातापितृपरध्वेन शिष्यसम्बन्धिसान्धवा । ष्णैद्विजोत्तमाःधाद्देसमस्ताकेतनशमाः  
अवर्षाणीतधारोगीन्यूनेचाङ्गेतथाचिके । पानमयस्तथाकाण कुण्डोगोलोऽप्युत्रक !

मिश्रधृक् कुनर्मी कर्लीष श्यावद्रन्ता निरावृति ।

धमिशस्तस्तु तातेन पिशुन' सोमविश्रया ॥ २७ ॥

कन्यादूपयितावैद्योगुरुपित्रोस्तथोज्झकः । भृतकाध्यापकोमित्रः परपूर्वापतिस्तथा  
वेदोऽङ्कोऽथाग्निस्त्यागी वृषलीपतिदूपितः ।

तथाऽन्ये च विकर्मस्था वज्र्याः पैत्रेषु वै द्विजाः ॥ २६ ॥

निमन्त्रयेत् पूर्वेषुः पूर्वोक्तान् द्विजसत्तमान् । दैवेनियोगेपित्र्ये च तांस्तथैवोपकल्पयेत्  
तैश्च संयतिभिर्माव्यं यश्च श्राद्धं करिष्यति ।

श्राद्धं दत्त्वा च भुक्त्वा च मैथुनं योऽनुगच्छति ॥ ३१ ॥

पितरस्तु तयोर्मासं तस्मिन् रेतसि शेरते ।

गत्वा च योपितं श्राद्धे यो भुङ्क्ते यश्च गच्छति ॥ ३२ ॥

रेतोमूत्रकृताहारास्तन्मासं पितरस्तयोः । तस्मात्तु प्रथमं कार्यं प्राज्ञेनोपनिमन्त्रणम्  
अप्राप्तौ तद्दिने चापि वज्र्या योपितप्रसङ्गिनः ।

मिश्रार्थमागतान् वाऽपि काले संयमिनो यतीन् ॥ ३४ ॥

भोजयेत् प्रणिपाताद्यैः प्रसाद्य यतमानसः । यथैवशुक्लपक्षाद्वैपितृणामसितः प्रियः  
तथापराह्नः पूर्वाह्णात्पितृणामतिरिच्यते । संपूज्यस्वागतेनैतानभ्युपेतान् गृहेद्विजान्  
पवित्रपाणिराचान्तानासनेपूपवेशयेत् । पितृणामयुजः कामं युग्मान् देवैर्द्विजोत्तमान्  
एकैकं चापितृणाञ्च देवानाञ्च स्वशक्तितः । तथामातामहानाञ्चतुल्यं वा वैश्वदेविकम्  
पृथक् तयोस्तथा घान्ये केचिदिच्छन्ति मानवाः ।

प्राङ्मुखान् देवसङ्कल्पान् पैत्र्यान् कुर्यादुदङ्मुखान् ॥ ३६ ॥

तथैवमातामहानां विधिरुक्त्वा मनोपिभिः । विप्ररार्थैकुशान् दत्त्वा पूज्यवाघ्यादिनावुधः  
पवित्रकादि वै दत्त्वा तेभ्योऽनुज्ञामवाप्य च ।

कुर्यादावाहनं प्राज्ञो देवानां मन्त्रतो द्विजः ॥ ४१ ॥

यवाम्भोभिस्तथा घार्घ्यं दत्त्वा वै वैश्वदेविकम् ।

गन्धमाल्याम्बु धूपञ्च दत्त्वा सम्यक् सदीपकम् ॥ ४२ ॥

अपसव्यं पितृणाञ्च सर्वमेवोपकल्पयेत् । दर्भाञ्चद्विगुणान् दत्त्वा तेभ्योऽनुज्ञामवाप्य च  
मन्त्रपूर्वं पितृणाञ्च कुर्यादावाहनं बुधः । अपसव्यं तथा चार्घ्यं यवार्थैव तथातिलैः



ततस्तदन्नं भुञ्जीत सह भृत्यादिभिर्नरः । एवं कुर्वीतधर्मज्ञः श्राद्धं पितृभ्यं समाहितः  
यथा वा द्विजमुख्यानां परितोपोऽभिजायते ।

त्रीणि श्राद्धे पवित्राणि दौहित्रं कुत (तु) पस्तिलाः ॥ ६३ ॥

चर्याणां चाहुविप्रैश्च कोपोऽध्वगमनं त्वरा । राजतश्च तथा पात्रं शस्तं श्राद्धेषु पुत्रकं  
रजतस्य तथा कार्यं दर्शनं दानमेव वा । राजते हि स्वधाद्गुग्धा पितृभिः श्रूयते मही  
तस्मात् पितृणां रजतमभीष्टं प्रीतिवर्द्धनम् ॥ ६५ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽलकानुशासने पार्वणश्राद्धकल्पवर्णनं नाम

एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

## द्वात्रिंशोऽध्यायः

### श्राद्धकल्पवर्णनम्

मदालसोवाच

अतः परं शृणुष्वेवं पुत्रभक्त्या प्रदाहृतम् । पितृणां प्रीतये यद्वाचज्यं वा प्रीतिकारकम्  
मासं पितृणां तृप्तिश्च हविष्शान्नेन जायते । मासद्वयं मत्स्यमांसैस्तृप्तियान्ति पितामहाः

त्रीन्मासान् हारिणं मांसं चिञ्जेयं पितृभ्ये ।

चतुर्मासांस्तु पुष्पाति शशस्य पिशितं पितृभ्यः ॥ ३ ॥

शाकुनं पञ्च वै मासान् पण्मासान् शूकरामिपम् ।

छागलं सप्त वै मासानैणेयञ्चाष्टमासिकीम् ॥ ४ ॥

करोति तृप्तिं नववै स्रोमांसं न संशयः । गव्यस्यामिपंतृप्तिं करोति दशमासिकम्  
तथैकादशमासांस्तु औरभ्रं पितृभ्यः । सन्वत्सरं तथा गव्यं पयः पायसमेव वा  
चाध्रौणसामिपंत्रौहंकालशाकंतथामधु । दौहित्रामिपमन्यच्चयच्चान्यत्स्वकुलोद्भवैः

अनन्तां वै प्रयच्छन्ति तृप्तिं गौरीसुतस्तथा ।

पितृणां नात्र सन्देहो गयाश्राद्धञ्च पुत्रकं ॥ ८ ॥

श्यामाकराजश्यामाकीं तद्वच्चैव प्रसातिकां ।

नीचाराः पीष्कलाश्चैव धान्यानां पितृणामये ॥ ९ ॥

यवर्षाहिसगोधूमतिलमुद्गाससर्षपाः । प्रियङ्गुश्च कोविदारगनिष्यावाश्चातिशोभतां  
घञ्यांमर्कटकाश्चाद्धेराजमापास्तयाणवः । विप्रपिकामसूराश्च धाद्वकर्मणिगर्हिताः  
लशुनगृञ्जनं चैव पलाण्डुं पिण्डमूलकम् । करम्भयानिधान्यानिर्हीतानिरसवर्णतः  
शान्धारिकाप्रलाम्बूनिलवणान्यूपराणि च । आरकायेचनिर्यासां प्रत्यक्षलवणानि च  
घर्षान्देतानि चै धाद्वे यच्चवाचा न शस्यते ।

यश्चाभ्युत्कोचत प्राप्त पतिताग्रदुपाजितम् ॥ १४ ॥

अन्यायकन्याशुल्कोत्थं द्रव्यञ्चात्र धिगर्हितम् ।

दुर्गन्धिकेनिलञ्चाऽम्बुतघैवाऽल्पतरोदकम् ॥ १५ ॥

नलमेघत्रगोस्तुप्तिं नक्तयच्छाप्युपाहृतम् । यन्नसघापद्योत्सृप्यच्छामोज्यनिपानजम्  
तद्वज्यं सलिलं तातं सदैव पितृकर्मणि । मार्गमाधिकर्मोपृञ्च सर्वमेकशकञ्चपत्  
माहिषञ्चामरश्चैव धेन्वागोधाऽप्यनिर्गमम् ।

पित्रयं मे प्रयच्छन्वे युक्तञ्च यच्छाऽप्युपाहृतम् ॥ १८ ॥

घर्षनीयंसदासहितस्तप्य धाद्वकर्मणि । वन्यांजनुमतारुक्षाभिति प्लुष्टातथाग्निता  
अनिष्टदुग्धशन्दोद्गुग्गुंघा चात्रकर्मणि । कुलापमानका धाद्वे व्यायुज्य कुलहिंसका  
नप्रापातकिनश्चैव हन्युर्हृष्ट्यापितृक्रियाम् । अपुमानपविद्वश्च कुक्कुटोयामशूकर  
श्वा चैव हन्ति धाद्वानि यातृधानाश्च दर्शनात् ।

तस्मात्सुसम्भृतो दद्यात्तिलैश्चावकिरन्मर्हाम् ॥ २२ ॥

एधरक्षा भवेच्छ्राद्धे कृतातातोभयोरपि । शायसूनकसत्पृष्टे दीर्घरोगिभिरैव च ॥  
पतितैर्मैलिनैश्चैव न पुष्पाति पितृमहान् । घर्षनीयतयाधाद्वे तयोदक्याश्च दर्शनम्  
मुण्डशोण्डसमाम्बासो यजमानेन चाद्रात् । केशकीटवपन्नश्चतथाश्वभिरवेक्षितम्  
पुतिपुं पितृञ्चैववार्ताक्वमिषवांस्तथा । घर्षनीयानि चैधाद्वेयश्चवस्त्रानिलाहृतम्

श्रद्धया परया दत्तं पितृणां नामगोत्रतः । यदाहारास्तु तेजातास्तदाहारत्वमेतितत्  
तस्माच्छ्रद्धाघता (युत) पात्रे यच्छस्तं (यच्छत्वं) पितृकर्मणि ।

यथावच्चैव दातव्यं पितृणां तृप्तिमिच्छता ॥ २८ ॥

योगिनश्च सदा श्राद्धे भोजनीया विपश्चिता ।

योगाधारा हि पितरस्तस्मात्तान् पूजयेत् सदा ॥ २९ ॥

ब्राह्मणानां सहस्रेभ्यो योगी त्वग्राशनो यदि ।

यजमानश्च भोक्तुंश्च नौरिवाऽम्भसि नारयेत् ॥ ३० ॥

पितृगाथास्तथैवात्रगीयन्तेब्रह्मवादिभिः । यागीताःपितृभिः पूर्वमैलस्यासीन्महीपतेः

कदा नः सन्ततावग्रयः कस्यचिद्द्विचिता सुतः ।

यो योगिभुकशेषाद्भो भुवि पिण्डं प्रदास्यति ॥ ३२ ॥

गयायामथवा पिण्डं खड्गमांसं महाहविः । कालशाकंतिलाद्यं वाकृसरंमासतृप्तये  
वैश्वदेव्यञ्चसौम्यञ्चखड्गमांसंपरंहविः । विपाणचञ्ज्यंखड्गाप्त्याभासूर्यञ्चाशुवामहे

दद्याच्छ्राद्धं त्रयोदश्यां मघासु च यथाविधि ।

मधुसर्पिसमायुक्तं पायसं दक्षिणायने ॥ ३५ ॥

तस्मात्सम्पूजयेत् भक्त्या स्वपितृन् पुत्र! मानवः ( यतमानसः ) ।

कामानभीप्सन् सकलान् पापाद्यात्मविमोचनम् ॥ ३६ ॥

वसुन्सुद्रांस्तथादित्यान्नक्षत्रग्रहतारकाः । प्रीणयन्तिमनुष्याणांपितरःश्राद्धतर्पिताः

आयुः प्रज्ञां धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च ।

प्रयच्छन्ति तथा राज्यं पितरः श्राद्धतर्पिताः ॥ ३८ ॥

एतत्ते पुत्र! कथितं श्राद्धकर्म यथोदितम् ।

काम्यानां श्रूयतां घत्स! श्राद्धानां तिथिकीर्तनम् ॥ ३९ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽलर्कानुशासने श्राद्धकल्पवर्णनं

नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

## त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

### काम्यथाद्धफलवर्णनम्

मदालसोवाच

प्रतिपद्मनलाभाय द्वितीया द्विपदप्रदा । परार्थिना तृतीया तु चतुर्थी शत्रुनाशिनी

धिय प्राप्नोति पञ्चम्या षष्ठ्या पूज्यो मंत्रेण

गाणाधिपत्यं ( राजाधिपत्यं ) सप्तम्यामष्टम्या वृद्धिमुत्तमाम् ॥ २ ॥

स्त्रियो नवम्या प्राप्नोति दशम्या पूर्णकामताम् ।

वेदास्तथाप्नुयात् सर्वानेकादश्या क्रियापर ॥ ३ ॥

द्वादश्याजपलामञ्जप्राप्नोतिपितृवृजक । प्रजामेधापशु वृद्धिं स्वातन्त्र्यपुष्टिमुत्तमाम्

दीर्घमायुर्यशस्वयं क्रुपाणस्तु त्रयोदशीन् । अवाप्नोति न सन्देहं धाद् धदापतेन

यथासम्भाविताग्नेतथाद्धसम्पन्नमन्वित । युवान् पितरोयस्यमृता शस्त्रेणधाहता

तेन कार्यं चतुर्दश्यातेयार्थातिमत्रोप्मता । धाद् कुर्वन्प्रमावास्यायत्नेनपुरुषशुचि

सर्वान्कामानवाप्नोतिस्वर्गं ज्ञानन्तमश्नुते । ऋषिः सतुपितृनर्यं स्वर्गं प्राप्नोतिमानव

अपत्यवामो रोहिण्या मोमे र्थोजस्विता लभेत् ।

शौर्यमाद्रांसु चाप्नोति श्रेष्ठादि च पुनर्वसौ ॥ ६ ॥

पुष्टिं पुष्ये सदाऽभ्यर्च्य भस्त्रे गानु धरान् सुतान् ।

मयानु स्वजनप्रैष्ट्यं सौभाग्यं फलानीषु च ॥ १० ॥

प्रदानशीलो भवति नाप यक्षात्तरासुर्व । प्रयाति श्रेष्ठता सम्य हस्ते धाद्प्रदोने

रूपयुक्तश्च धिधासु तथाऽपरवान्यवाप्नुयात् ।

घाणिज्यलामदा स्वातिर्विशाला पुत्रकामदा ॥ १२ ॥

दुर्घन्तश्चानुपधासु लभन्ते चक्रवर्तिनाम् । माधिपत्यञ्च जेष्ठासुमूलेधारोग्यमुत्तमम्

सर्वान्कामानवाप्नोतिस्वर्गं ज्ञानन्तमश्नुते । ऋषिः सतुपितृनर्यं स्वर्गं प्राप्नोतिमानव

श्रवणे च शुभान् लोकान् धनिष्ठासु धनं महत् ॥ १४ ॥

वेदवित्त्वमभिजिति भिषक्सिद्धिन्तु धारुणे ।

अजाचिकं प्रौष्ठपदे विद्यागावस्तथोत्तरे ॥ १५ ॥

रेवतीषु तथा कुप्यमश्विनीषुतुरङ्गमान् । श्राद्धं कुर्वंस्तथाप्नोतिभरणीष्वायुरुत्तमम्

तस्मात्काम्यानि कुर्वीत ऋक्षेष्वेतेषु तत्त्वचित् ॥ १६ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽलर्कानुशासनेकाम्यश्राद्धफलवर्णनं नाम

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

## चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

मदालसालर्कसम्वादेसदाचारवर्णनम्

मदालसोवाच

एवं पुत्रागृहस्थेनदेवताःपितरस्तथा । सम्पूज्या हव्यकव्याभ्यामन्नेनातिथिवान्धवाः

भूतानि भृत्याः सकलाः पशुपक्षिपिपीलिकाः ।

भिक्षवो याचमानाश्च ये चान्ये वसता गृहे ॥ २ ॥

सदाचारवता तातसाधुनागृहमेधिना । पापंभुङ्क्तेसमुल्लङ्घ्यनित्यनैमित्तिकीःक्रियाः

अलर्क उवाच

कार्यतं मे त्वयामातर्नित्यनैमित्तिकञ्चयत् । नित्यनैमित्तिकञ्चैवत्रिविधंकर्मपौरुषम्

सदाचारमहं श्रोतुमिच्छामिकुलनन्दिनि ! यत्कुर्वन् सुखमाप्नोतिपरत्रेहच मानवः

मदालसोवाच

गृहस्थेन सदा कार्यमाचारपरिपालनम् । न ह्याधारविहीनस्य सुखमत्रपरत्र वा

यज्ञदानतपांसीह पुरुषस्य न भूतये । भवन्ति यः सदाचारं समुल्लङ्घ्य प्रवर्त्तते ॥

दुराचारो हि पुरुषो नेहायुर्विन्दते महत्-।-कार्योयत्नःसदाचारेआचारोहन्त्यलक्षणम्



तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि सदाचारस्य पुत्रक ! ।

तन्ममैकमना ( समाहितमना ) धृत्या तथैव परिपालय ॥ १ ॥

त्रिपर्यंसाधने यज्ञ कर्त्तव्यो गृहमधिना । तत्सतिद्वौ गृहस्थस्य सिद्धिरत्रपरत्रय  
पादेनार्थस्य पारश्रयं कुर्यात्सञ्जयमात्मवान् ।

अर्द्धेन घातममरण नित्यनैमित्तिकान्वितम् ॥ ११ ॥

पादञ्जातमार्थमायन्व मूर्त्तभूतवियर्द्धयेत् । एवमाचरत पुत्र'भयं साफल्यमर्हति ॥  
तद्गुणानिवेषाय धर्मं कार्षीं विपश्चिता । परत्रार्थं तथैवान्य- कार्षींऽत्रैवबलप्रद-  
प्रत्ययायमपातकाम्यन्तपान्यद्वाऽपिरोषवान् ।

द्विधाकामोऽपिगदितस्त्रिधर्मस्याऽपिरोषतः ॥ १४ ॥

परम्परा ( परस्पर ) नुषन्धांश्च सप्तानेतान् विचिन्तयेत् ।

विपरीतानुबन्धांश्च धर्मादीन्तान् शृणुष्व मे ॥ १५ ॥

धर्मोपमानुषन्धार्षीं धर्मोनात्सार्थं वाचक । उभाभ्याञ्चद्विधाकामस्तेततोपद्विधापुन  
प्राप्ते मुहुर्त्तं कुष्येन धर्मार्षीं चाऽपि चिन्तयेत् ।

उत्पायावश्यं कृत्वा कृत्सोऽथ समाहित ।

समुत्पाय तथाऽऽप्यत्र प्राहमुद्यो नियत शुचिः ॥ १७ ॥

पूर्वां सन्ध्यां सतसत्रां पश्चिमां सदिपाकराम् ।

ऽवामीन यद्यन्वार्थं मैत्रां ज्ञायादनापदि ॥ १८ ॥

अमात्राणाममूर्त्तं वाक्पाण्यश्च यज्ञदेत् । अमच्छान्त्रमसद्वादमसत्सोषाश्च पुत्रक  
सार्थं प्राणमनसा हार्मं कुर्यात् नियतात्मवान् । सोऽद्यात्मनेविष्यमुदीक्षेत्पिपस्यत  
ईशान्माधनादरादशनं दग्धघातनम् । पूर्वांश्च पश्चिमांश्च द्वैवतांश्च तपन्म् ॥  
प्राणावसधर्माधानां धर्माणाञ्चैव यत्ननि । विष्णुर्धर्मं ज्ञानुतिष्ठेत् न कष्टे न च मोक्षत्रे  
नप्रां परस्त्रियं नैक्षत्र परदेशान्ननःसाम् । उदकादशनं स्यसोऽवर्ग्यं सन्माधनमघा  
नप्यु मूर्धं पुराणं धर्मेगुनं वासमाचरेत् । साधितिष्ठेत् उहन्म् कष्टेणमस्मकगान्धिका  
नसाहागान्धिराधानि दग्धबन्धादिकानि च ।

नाधितिष्ठेत्तथा प्राणः पश्चि चैवं तथा ( पश्चाणिद्या ) भुवि ॥ २५ ॥

पितृदेवमनुष्याणां भूतानाञ्जनथाय नमः । कृत्वाचिभयतःपश्चाद्गृहस्थोभोक्तुमर्हति

प्राङ्मुखोदङ्मुखोचाऽपि स्वाचान्तो घाग्रतः शुचिः ।

भुञ्जीतान्नञ्च तच्चित्तो ह्यऽन्तर्जालुः सदानरः ॥ २७ ॥

उपप्रातामृते दोषं नान्यस्योदीर्येदुबुधः । प्रत्यक्षलक्षणं वन्यमन्नमद्युष्णमेव च

न गच्छन्न च तिष्ठन् चै विष्मन्नोत्सर्गमात्ममान ।

कुर्वीत नैव चाधामन् यत्किञ्चिदपि भक्षयेत् ॥ २६ ॥

उच्छिष्टो नालपेत्किञ्चित्स्वाध्यायञ्च चिवर्जयेत् ।

गां ब्राह्मणं तथा चाग्निं स्वमूर्झानञ्च न स्पृशेत् ॥ २० ॥

न च पश्येद्वि नेन्दुं ननक्षत्राणि कामतः । भिक्षासनं तथाशय्यांभाजनञ्चचिवर्जयेत्

गुरूणामासनं देयमभ्युत्थानादिसत्कृतम् । अनुकूलं तथालापमभिवादनपूर्वकम् ॥

तथानुगमनं कुर्यात्प्रतिकूलं न सञ्जयेत् । नैकवस्त्रञ्च भुञ्जीत नकुर्याद्देघताघनम् ॥

न चाहयेद्विजात्राग्रीं मेहं कुर्वीत बुद्धिमान् ।

स्नार्यात न नरो नग्नो न शर्यात कदाचन ॥ ३५ ॥

न पाणिभ्यामुभाभ्याञ्च कण्ठयेत शिरस्तथा ।

न सार्भीक्षणं शिरः स्नानं कार्प्यं तिष्कारणं नरैः ॥ ३५ ॥

शिरः स्नातश्च तैलेन नाङ्गं किञ्चिदपि स्पृशेत् ।

अनध्यायेषु सर्वेषु स्वाध्यायञ्च चिवर्जयेत् ॥ ३६ ॥

ब्राह्मणानिलगोसूर्यान्न मेहेत कदाचन । उदङ्मुखो दिवा रात्रायुत्सर्गं दक्षिणामुखः

आवाधाषु यथाकामं कुर्यान्मूत्रपुरीषयोः । दुष्कृतं न गुरोर्ब्रूयात्कुड्गं चैनंप्रसादयेत्

परिवादं न शृणुयादन्येषामपि कुर्वताम् । पन्था देयो ब्राह्मणानांराज्ञोदुःखातुरस्यच

विद्याधिकस्यगुर्विण्याभारत्तस्ययवीयसः । मूकान्धधधिराणाञ्चमत्तस्योन्मत्तकस्यच

पुंश्चलयाः कृतघ्नस्य बालस्य पतितस्य च । दीवालयां चैत्यतरुंतथैवचचतुष्पथम्

विद्याधिकं गुरुं देवं बुधःकुर्यात्प्रदक्षिणम् । उपानहस्त्रमाल्यादिधृतमन्यैर्नधारयेत्

उपवीतमलङ्कार करकश्चैव व्रजयेत् । प्रशास्तानि च कर्माणि कुर्वाणादीर्घजीविन

धनुर्दश्या तथाऽऽश्या पञ्चदश्याञ्च पर्वसु ॥

तैलाभ्यङ्ग तथा भोग योपितश्च विवर्जयेत् ।

न क्षिप्तपादजङ्घश्च प्राज्ञस्तिष्ठेत्कदाचन ॥ ४४ ॥

न चापि विक्षिपेत्पादौ पाद पादेन नाक्रमेत् ।

मर्माभिघातमाक्रोश पैशुन्यञ्च विवर्जयेत् ॥ ४५ ॥

दम्भाभिमानतीक्ष्णानिनकुर्वीतविषक्षण । मुखोन्मत्तव्यसनिनोविरूपान्मायिनस्तथा

न्यूनाङ्गाश्चाधिकाङ्गाश्च नोपहासैर्विदूषयेत् ।

परस्य दण्ड नोद्यच्छेच्छिऽक्षार्थं पुत्रशिष्ययो ॥ ४७ ॥

तद्वज्रोपविशेत्प्राज्ञः पादेनाऽऽक्रम्य चासनम् ।

सयाद्य वृषरं मास नात्मार्यमुपसाधयेत् ॥ ४८ ॥

साय प्रातश्च भोक्तव्यं कृ वा चातिधिपूजनम् ।

प्राङ्मुखोदडमुखो चापि धाम्यतो दन्तधावनम् ॥ ४९ ॥

कुर्वीत सततं यत् स' वर्जयेद्दुर्ज्यवीरुश्च । नोदक्शिरा स्वपेज्जातुनश्च प्रत्यक्शिरानर

शिरस्यगस्त्यमास्थायशयीताऽधपुरन्दरम् । नतुगन्धवतीष्वप्सुस्नायीततथातिशि

उपरागे पर स्नानमृते दिनमुदाहनम् । अवमृश्याश्चास्नातो गात्राप्यम्बरपाणिभि

नचापि धूनयेत्केशान् वाससी न चरूयेत् । नानुलेपनभादद्यादस्नात कर्हिचिद्बुध

नचापि रक्तवासा स्याच्चित्रासितधरोऽपिवा ।

न च कुर्व्याद्विपय्यास वाससोर्नापि भूषणे ॥ ५४ ॥

घजश्च विदश वस्त्रमत्यग्नोपहतञ्च यत् । केशकीटावपत्रञ्चक्षण श्वभिरवेशितम्

अवलीढावपन्नञ्च सारोद्धरणदूषितम् । पृष्ठमास वृधामास घर्जश्चमासञ्च पुत्रक' ॥

न भक्षयीत सततं प्रत्यक्षलवणानि च ।

वर्ज्यं चिरोपितं पुत्र' भक्तं पर्युषितञ्च यत् ॥ ५७ ॥

गिण्टसाकेषुपयसा विकारानृपनन्दन । तथामासविकाराश्चते च घर्ज्याश्चिरोपिता

उदयास्तमने भानोःशयनञ्च विवर्जयेत् । नास्नातो नैव सस्विष्टो न चैवान्यमना नरः  
न चैवशयनेनोर्व्यामुपविष्टो न शब्दवत् । 'न चैकवस्त्रो न चदन् प्रेक्षतामप्रदाय च  
भुञ्जीत पुरुषःस्नातः सायं प्रातर्यथाचिधि । परदारानगन्तव्याः पुरुषेण विपश्चिता  
इष्टापूर्त्तायुषां हन्त्री परदारगतिर्नृणाम् । न हीदृशमनायुष्यं लोके किञ्चन विद्यते  
यादृशं पुरुषस्येह परदाराभिमर्षणम् । देवार्चनाग्निकार्याणि तथा गुर्वभिवादनम्  
कुर्वीत सम्यगाचम्य तद्वदन्नभुजिक्रियाम् । अफेनाभिरगन्धाभिरद्विरच्छाभिरादरात्

आचामेत् पुत्र! पुण्याभिः प्राङ्मुखोद्ङ्मुखोऽपि वा ।

अन्तर्जलादावसथाद्वल्मीकान्मूपिकस्यलात् ॥ ६५ ॥

कृतशौचावशिष्टाश्च वर्जयेत् पञ्चवैमृदः । प्रक्षाल्यहस्तौपादौचसमभ्युक्ष्यसमाहितः  
अन्तर्जानुस्तथाचामेत्त्रिश्चतुर्धा विवेदपः । परिमृज्यद्विरास्यान्तं खानिमूर्धानमेवच  
सम्यगाचम्य तोयेन क्रियां कुर्वीत वै शुचिः । देवतानामृषीणाञ्चपितृणांचैव यत्नतः  
समाहिनमना भूत्वा कुर्वीत सतत नरः । क्षत्वा निष्ठीव्य वासश्चपरिधायान्चमेद्बुधः  
क्षतेऽवलीढे वान्ते च तथानिष्ठीवनादिषु । कुर्यादाचमनंस्पर्शं गोपृष्ठस्यार्कदर्शनम्  
कुर्वीतालम्बनं चापि दक्षिणश्रवणस्य चै । यथाविभवतोक्षेतत्पूर्वाभावे ततः परम्  
अविद्यमाने पूर्वोक्ते उत्तरप्राप्तिरिष्यते । न कुर्याद्वन्तसङ्घर्षं नात्मनोदेहताडनम् ॥

स्वप्नाध्ययनभोज्यानि सन्ध्ययोश्च विवर्जयेत् ।

सन्ध्यायां मैथुनञ्चाऽपि तथा प्रस्थानमेव च ॥ ७३ ॥

पूर्वाहे तात! देवानामनुप्याणांच मध्यमे । भक्त्या तथापराह्णेच कुर्वीत पितृपूजनम्  
शिरःस्नातश्च कुर्वीत दैधं पैज्यमथापि वा ।

प्राङ्मुखोद्ङ्मुखो वापि श्मश्रुकर्म च कारयेत् ॥ ७५ ॥

व्यङ्गिनीं वर्जयेत् कन्यां कुलजामपि ( अकुलां ) रोगिणीम् ।

विकृतां पिङ्गलाञ्चैव वाचाटां सर्वदूषिताम् ॥ ७६ ॥

अव्यङ्गिनीसौम्यनासाञ्चसर्वलक्षणलक्षिताम् । तादृशीमुद्ग्रहेत्कन्यांश्रेयःकामोनरःसदा  
उद्ग्रहेत् पितृमात्रोश्च सप्तमीं पञ्चमीं तथा । रक्षेद्दरान्त्यजेदीपां दिवाचस्वप्नमैथुने

परोपतापकं कर्म जन्तुपीडाञ्च घञ्जयेत् । उदकयोःसर्ववर्णानांघर्ष्यां रात्रिचतुष्टयम्  
 स्त्रीजन्मपरिहारार्थं पञ्चमीमपिघञ्जयेत् । ततः षष्ठ्यांयजेद्वाग्रवांघ्नेष्टायुग्मासुपुत्रकं  
 पवांणिघञ्जयेन्नित्यं मृतुकालेऽपियोपित । तस्माच्चित्यंनरोगच्छेच्छेत्पयुग्मासुपुत्रकं

युग्मा सुपुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु ।

तस्माद्युग्मासु पुत्रार्थी सम्यग्जेत सदा नरः ॥ ८१ ॥

विधर्मिणोऽह्नि पूर्वांघ्ने सन्ध्याकाले च षष्ठका (षण्डका) ।

ध्रुवर्मणि घाते च स्त्रीसम्भोगं च पुत्रक ! ॥ ८२ ॥

स्त्रीयत घेलचान्प्राञ्च षड्मूमिमुपेय च । देववेदद्विजातीनाम्नाधुमत्यमहात्मनाम्  
 गुरोः पतिव्रतानाञ्च तथायज्यतपस्विनाम् । परिवादं न कुर्वीत परिहासञ्च पुत्रकं

कुर्वतामघिर्नाताना न ध्योतव्यं कथञ्चन ।

देवपिड्यातिघेयाश्च विषाःकुर्वीत घै बुध ॥ ८५ ॥

स्वाध्यायज्ञाऽपि कुर्वीत यथाशकत्याद्य तन्द्रित ।

नोत्कृष्टशय्यासनयोर्प्राणदृष्टस्य चादहेत् ॥ ८६ ॥

न चामद्भ्यवेशं स्यान्नचामद्भ्यवगमयेत् । धवलाम्बरसम्वीत सितपुष्पविभूषित  
 नोदुधूतोन्मत्समूर्द्धश्चनाचिनीतीक्ष्णपण्डित । गच्छेन्मैत्रीनघाशीलैर्नघर्षोयांदिदृषितै

न घातिव्ययशालेश्च न लुब्धैर्नाऽपि घेरिमि ।

नानृतकंस्तथा क्रूरः सहासीत कदाचन ।

नवन्धकीमिर्नन्यूनैर्नन्धकीपतिमिस्तथा ॥ ८९ ॥

सार्द्धं न घटिमि कुन्यान्न च न्यूतेर्न निन्दितैः ।

न सवशाद्भिर्नित्यं न च देवपरैर्नरे ॥ ९० ॥

कुर्वीतसाधुभिर्मैत्रासदाचारावलम्बिमि । प्राञ्चै रपिशुनै शक्ते कर्मण्युद्योगमागिमि  
 सुहृद्दीक्षितमूपालस्नातकभ्रशुरैः सह । ऋत्विगादीन् षडर्वाहानर्घ्येषु गृह्यगतान्

वेदघिघ्यामतस्नातैः सहासीत सदा बुध ॥

यथाचिन्नवतः पुत्रं द्विजान्सम्बत्सरोपितान् । अर्घ्यैर्गमधुपर्केणयथाकालमतन्द्रितः

तिष्ठेच्च शासने तेषां श्रेयस्कामो द्विजोत्तमः ।

न च तान् विवदेद्भीमानाक्रुष्टश्चापि तैः सदा ॥ ६४ ॥

सम्यग्गृहार्चनं कृत्वा यथास्थानमनुक्रमात् ।

सम्पूजयेत्ततो वह्निं दद्याच्छर्वाहुतीः क्रमात् ॥ ६५ ॥

प्रथमां ब्रह्मणे दद्यात् प्रजानां पतयेत्ततः । तृतीयाञ्चैवगुह्येभ्यः कश्यपाय तथापराम्  
ततोऽनुमतयेदच्चा दद्याद्गृहवलिन्ततः । पूर्वाख्यातंमयायत्ते नित्यकर्मक्रियाविधौ  
चैवदेवं ततःकुर्याद्बलयस्तत्र मे शृणु । यथास्थानविभागान्तुदेवानुद्दिश्य चै पृथक्  
पर्जन्याय धरित्रीणां ( पर्जन्याद्भ्योधरित्र्यैश्च ) दद्याच्च मणिके त्रयम्  
ततो धातुर्विधातुश्च दद्याद् द्वारेगृहस्य तु ।

वायवे च प्रतिदिशं दिग्भ्यः प्राच्यादितः क्रमात् ॥ १०० ॥

ब्रह्मणेचान्तरीक्षाय सूर्यायश्च तथाक्रमम् । विश्वेभ्यश्चैवदेवेभ्यो विश्वभूतेभ्य एव च  
उपसे भूतपतये दद्याच्चोत्तरतस्ततः । स्वधानमइतीत्युक्त्वा पितृभ्यश्चाऽपि दक्षिणे  
कृत्वाऽपसव्यं वायव्यां यश्मैतत्तेति भाजनात् ।

अन्नावशेषमिच्छन् चै तोयं दद्याद्यथाविधि ॥ १०३ ॥

ततोऽन्नाग्रं समुद्भृत्य हन्तकारोपकल्पनम् ।

यथाविधि यथान्यायं ब्राह्मणायोपपादयेत् ॥ १०४ ॥

कुर्यात् कर्माणि तीर्थेन स्वेन स्वेन यथाविधि ।

देवादीनां तथा कुर्याद् ब्राह्मण्येणाऽऽचमनक्रियाम् ॥ १०५ ॥

अङ्गुष्ठोत्तरतो रेखा पाणेर्यादक्षिणस्यतु । एदद्ब्राह्मण्यमितिख्यातं तीर्थमाचमनायचै  
तर्जन्यङ्गुष्ठयोन्तः पैत्र्यं तीर्थमुदाहृतम् । पितृणांतेनतोयादिदद्यान्नान्दीमुखाद्वृते  
अङ्गुल्यग्रेतथादेवं तेनदिव्यक्रियाविधिः । तीर्थं कनिष्ठिकामूले कार्यं तेन प्रजापतेः  
एवमेभिः सदातीर्थैर्देवानांपितृभिःसह । सदाकार्याणिकुर्वीतनान्यत्तीर्थेनकर्हिषित्  
ब्राह्मण्येणाचमनं शस्तं पित्र्यं पैत्र्येण सर्वदा । देवतीर्थेनदेवानांप्राजापत्यं निजेन च  
नान्दीमुखानां कुर्वीत प्राज्ञःपिण्डोदकक्रियाम् ।

प्राजापत्येन तीर्थेन यच्च किञ्चिन् प्रजापते ॥ १११ ॥

युगपज्जलमग्निञ्च विभूयान् विचक्षण । गुरुदेवान् प्रति तथा न च पादौ प्रसारयेत्  
 नाचक्षीतधयर्त्तौ गा जल नाञ्जलिनापिवेत् । शौचकालेषु सर्वेषुगुरुष्वल्पेषुया पुन  
 न विलम्बेत् शौचार्थं नमुषेनानल धमेत् । तत्रपुत्रानवस्नञ्च यत्र नास्ति चतुष्टयम्  
 ऋणप्रदाता वैद्यश्च श्रोत्रिय सज्जलानदी । जितामित्रोऽनृपोयत्र बलवान् धर्मतत्पर  
 तत्र नित्यवसेत्प्राञ्च कुत कुट्टपती सुखम् । यत्रापृष्योऽनृपतियप्रशस्यवती मही  
 पौरा सुसयता यत्रसततन्यायवर्तिन । यत्रामत्सरिणो लोकास्तत्रवास सुखोदय  
 यस्मिन्कृषीबलाराष्ट्रे प्रायशोनातिभोगिन । यत्रौषधान्यशेषाणिवसेत्तत्रविचक्षण  
 तत्र पुत्रं न वस्तव्य यत्रैतद्विगतय स्या । जिगापु पूर्ववैरश्च जनश्च सततोत्सव  
 वसेन्नित्य सुशीलेषु सहवासिषु पण्डित ।

इत्येतत् कथितं पुत्रं मया ते द्वितकाम्यया ॥ १२० ॥

इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणेऽलर्कानुशासने सदाचाराध्यायवर्णननाम  
 चतुस्त्रिंशोऽध्याय ॥ ३४ ॥

## पञ्चत्रिंशोऽध्याय.

### वज्र्यांज्यवर्णनम्

मदालसोवाच

अन परशृणुष्व वज्र्यांज्यप्रतिक्रियाम् । भोज्यमन्नपयु पितृह्नेहाक्तधिरसभृतम्  
 अह्नेहाश्वापि गोमूत्रयवगोरसविक्रिया ।

शशक कच्छपो गोधा श्वाच्चित्पङ्कोऽथ पुत्रक' ॥ २ ॥

भक्ष्या ह्येते तथावज्र्यां प्रामशूकरकुक्कुर्त्तौ । । पितृद्वादिशयश्चभ्राद्धेप्राह्मणकाम्यया  
 प्रोक्षितञ्चौप सार्थञ्च सादन्मांस न दुष्यति ।

शङ्खाश्मस्वर्णरूप्याणां रज्जनामथ वाससाम् ॥ ४ ॥

शाकमूलफलानाञ्च तथाविदलचर्मणाम् । मणिघञ्जप्रवालानां तथा मुक्ताफलस्य च  
गात्राणाञ्च मनुष्याणामम्बुना शौचमिष्यते ।

पात्राणां चमसानां च वारिणा शुद्धिरिष्यते ॥ ६ ॥

ताम्रायःकांस्यरैत्यानां त्रपुपः शीशकस्य च ।

शौचं यथार्थं कर्तव्यं क्षाराम्लोदकवारिणा ।

तथायसानां तोयेन ग्राहणः सङ्घर्षणेन च ॥ ७ ॥

सस्नेहानाञ्चभाण्डानांशुद्धिरूपणेनवारिणा । सूर्पधान्याजिनानाञ्चमुसलोलूखलस्यच  
संहतानाञ्च रस्त्राणां प्रोक्षणात्सञ्चयस्यच । वल्कलानामशेषाणामम्बुमृच्छौचमिष्यते

तृणकाष्ठौषधीनाञ्च प्रोक्षणाच्छुद्धिरिष्यते ।

आविकानां समस्तानां केशानाञ्चापि मेध्यता ॥ १० ॥

सिद्धार्थकानां कल्केन तिलकल्केन वा पुनः । साम्बुना तात भवतिउपघातवतांसदा  
तथा कार्पासिकानाञ्च विशुद्धिर्जलभस्मना ।

दारु ( नाग ) दन्तास्थिशृङ्गाणां तक्षणाच्छुद्धिरिष्यते ॥ १२ ॥

पुनः पाकेन भाण्डानां पार्थिवानाञ्च मेध्यता । शुचिर्भक्षंकारुहस्तःपण्यंयच्चप्रसारितम्  
योपिन्मुखं बालमुखमात्मवृद्धमुखं तथा ।

रथ्यागतमविज्ञातं दासमार्गादिनाहृतम् । वाक्प्रशस्तं चिरातीतमनेकान्तरितं लघु ॥

अतिप्रभूतं बालञ्चवृद्धानुरविचेष्टितम् । कर्मान्ताङ्गारशालाश्चस्तनन्धयसुताःस्त्रियः  
शुचिन्यश्च तथैवापः स्रवन्त्योऽगन्धवुद्बुदाः ।

भूमिर्विशुध्यते कालाद्दाहमाज्जनगोक्रमैः ॥

लेपादुल्लेखनात्सेकाद्वेश्मसंमार्जनार्घनात् । केशकीटावपन्नेऽत्रे गोघ्रातेमक्षिकान्विते  
मृदम्बुमस्मना तात! प्रोक्षितव्यं विशुद्धये ।

औदुम्बराणामम्लेन क्षारेण त्रपुसीसयोः ॥ १८ ॥

भस्माम्बुभिश्च कांस्यानां शुद्धिः प्लावोद्वस्य च ।



अमेध्यात्स्य मृतोयैर्गन्धापहरणेन च ॥ १६ ॥

मन्येगार्श्वेय तद् द्रव्यैर्घणं गन्धापहारत ।

चाण्डालैरन्त्यजैर्धैयम्लेच्छैरन्मृश्यजातिभिः ॥ २० ॥

नृष्टमक्षालितधान्यमनहं सर्वकर्मणि । द्रोणाद्घस्तुपद्दु गान्यतरुषार्थं विधिरुच्यते  
द्रोणाद्द्रव्यं तु यद्दान्य प्रोक्षणादेशुद्धयति । रथ्यासुपतितधान्यद्रुष्याकत्नेनवन्दयेत्

उद्धृत्य मूर्ध्ना चादद्यात्तस्मीर्निश्यति चान्यथा ।

शुचि गोतृत्तिष्ठतोय प्रवृत्तिरुच्यं मर्हागतम् ॥ २३ ॥

तथा मासञ्च चण्डालत्रय्यादादिनिपातितम् ।

रथ्यागतञ्च घेलादि तात ! पातान्शुचि स्मृतम् ॥ २४ ॥

गजोऽग्निरश्वोर्गाशु त्रयारश्मय पवनोमर्ही । विष्णुसोमशिक्षायाश्चतुष्पसङ्गाद्दोषिणः  
अजाश्वौ मुखतो मेध्या न गोवत्सस्य चानतम् ।

मातु प्रधरण मेध्य शकुनि फलगतने ॥ २६ ॥

आसन शयन यान नाव पथितृणानि च । सोमस्योशुपवने शुध्यन्तेतानिपण्यपत्  
रथ्याप्रसपणे स्नाने नुतपातान्नकर्मसु । आचामेन यथान्यार्थं चासोविपदिधाय च ॥

नृष्टानामन्त्यमसर्गैर्विरथ्याकर्दमात्मसाम् । पङ्केष्टरचितानाञ्च मेध्यतावायुसङ्गमात्  
प्रभृतोपहताद्भ्रादप्रमुद्धृत्य सन्त्यजेत् । शयस्प्रोक्षणं कुर्यात्शचम्याद्विस्तथामृदा

उपवासस्त्रिरात्रन्तु दुष्टमध्याशिनो भवेत् । अजाते ज्ञानपूर्वन्तु तद्दोषोपशमेन तु  
उदक्याश्वशृगालादीन् स्तिकाभ्यामन्त्यायिन ।

स्वृष्टा स्नार्यात शौचार्थं तथैव मृतहारिणः ॥ ३२ ॥

नार स्वृष्टास्थि सस्नेह स्नात शुद्धयति मानव ।

आधम्यैव तु निस्नेह गामालभ्यार्कमाश्पवा ॥ ३३ ॥

न लङ्घयेत्तथैवास्तु कृषीचनोद्धर्तानिच । नोद्यानादीं धिकालेषुप्राहस्तिष्ठेत्कदाचन ॥  
न चात्पेन्नद्विष्टा पार्वीना तथा सित्रयम् ।

गृह्णादुच्छिद्यन्मूत्रपादाग्भासि क्षिपेद्गृहि ॥ ३५ ॥

पञ्चपिण्डाननुधृत्य न स्नायात् परवारिणि । स्नायीतदेवखातेपुगाङ्गाहृदसरित्सु च  
 देवतापितृसञ्छास्त्रयज्ञमन्त्रादिनिन्दकैः । कृत्रातुस्पर्शनालापंशुद्ध्येतार्कावलोकनात्  
 अवलोक्य तथोदक्यामन्त्यजं पतितं शवम् ।

विधर्मिसूतिकापण्डविवस्त्रान्त्यावसायिनः ॥ ३८ ॥

सूतनिर्यातकाश्चैव परदाररताश्च ये । एतदेव हि कर्तव्यं प्राज्ञैः शोधनमात्मनः ॥

अभोज्यं ( अभोज्य ) सूतिकापण्डमार्जाराग्वुश्वकुक्कुटान् ।

पतिताविद्वचण्डालमृतहारांश्च धर्मवित् ॥ ४० ॥

संस्पृश्यशुध्यतेस्नानादुदक्याग्रामशूकरौ । तद्द्रव्यमूनिकाशीषदूषितौपुरुषावपि ॥

अतःपरं शृणुष्व त्वं स्त्रीधर्मान्ननु विस्तरात् । उदुम्बरे वसेन्नित्यंभवानीसर्वदेवता

ततःसाप्रत्यहं पूज्यागन्धपुष्पाक्षतादिभिः । अशून्यादेहलीकार्याप्रातःकालेचिशेषतः

यस्य शून्या भवेत्सा तु शून्यं तस्य कुलं भवेत् ।

पादस्य स्पर्शनं तत्र असम्पूज्य च लङ्घनम् ॥ ४४ ॥

कुर्वन्नरकमाप्नोति तस्मात्तत्परिवर्जयेत् । प्रातःकालेस्त्रिया कार्यं गोमयेनानुलेपनम्

प्रत्यहं सद्ने तस्मान्नैव दुःखानि पश्यति । स्पृशन्ति रश्मयोयस्यगृहंसम्मार्जनादृते

भवन्ति विमुखास्तस्य पितरो देवमातरः ।

निशायाः पश्चिमे यामे धान्यसंस्करणादिकम् ॥ ४७ ॥

कुरुते या तु मोहेन घन्ध्या जन्मनि जन्मनि ।

सन्ध्याकाले तु सम्प्राप्ते मार्जनं न करोति या ॥ ४८ ॥

भर्तृहीना भवेत्सा तु निःस्वा जन्मनि जन्मनि ।

अकृतस्वस्तिकां या तु कामलितां च मेदिनीम् ॥ ४९ ॥

तस्याःस्त्रिया विनश्यन्ति वित्तमायुर्यशस्तथा ।

मार्जनी चुह्लिका छीषद् दूषदश्चोपलं तथा ॥ ५० ॥

नाक्रमेदङ्घ्रिणाजातु पुत्रदारधनक्षयात् । उलूखलं च मुसलं तथाचैव तु वर्षणम्  
 पदाक्रमणात्पापीयान्नाप्तोत्युत्तमतां गतिम् । भिन्नासनं योगपट्टं तथैव मृगचर्म च

हृष्णाधिक तथा तात' धनयेत्पुत्रवान् शही ।

दक्षिणामिमुखो यस्तु चिदिक् सन्मुख एव च ॥ ५३ ॥

केशान् सस्कुटन मर्त्यो धननाश च विन्दति ।

वनूदस्तु न कुर्वीत मुख्या दन्तघिशोधनम् ॥ ५४ ॥

पादुकारोहणं चैव तिलेधापि सतर्पणम् । न जीवत्पितृश्च कुर्यात्तर्पणसोत्तरीयकम्

दशधाद् न कुर्वीत दशस्नानं कथञ्चन । पादुकारोहणं चैव योगपट्टकमय च ॥ ५६ ॥

न जीवत्पितृश्च कुर्याद् नयाध्राद्धतर्पणम् । दीपमाण्डमयीछायाविर्भीतकुरण्डजा

पत्रनीया सदापुत्र' यदिजायतुमिच्छति । अधोपत्रेण योवायु कुर्येशिरसिद्धिं'

स्यात्तेन समशुभाभ्यां सुग्नं तस्य नश्यति ॥ ५८ ॥

अथ उवाच

मय्या कारिता माया य एन सुतिकाश्य ।

धर्माया धातुमिच्छामि तस्यतो लक्षणाणि ह ॥ ५९ ॥

मदालसोवाच

अक्षया शालास्येद्द यावो वयमायता । तापुमौस्तिकेऽपुकोतयोस्त विगर्हितम्

न जुगोत्युजिन चाले नाश्नाति न ददाति च ।

पितृदवाधनाद्धानं पण्डं म परिगीयते ॥ ६१ ॥

दम्भार्थं यत्न यश्च तप्यते च तपस्नया । न परप मिद्वैर्युत' समाज्ञात्स्मृतोपुधे

विमय सति मेधासि न ददाति जुहाति च ।

तमादुराग्युस्तम्यात्रं मुख्या हृत्त्रेण शुद्धयति ॥ ६३ ॥

समागतानां मर्यानां पशुपानं समाधयेत् ।

तमादुः कुक्कुट द्यास्तम्याऽप्यथ विगर्हितम् ॥ ६४ ॥

स्वधर्मं च समुच्छिद्य परधर्मं समाधयेत् । मनापदि सविद्विपतिभ-परिकीर्तित

देवभ्यामी गुह्ययामी गुह्यभ्युत्सुक्यस्तथा । गोमूत्रजपत्रीपपहृदपिह प्रचक्षते

येनां कुल न वेदोऽस्ति न शस्त्रं नैव च धतम् ।

ते नग्नाः कीर्त्तिताः सद्भिस्तेषामन्नं विगर्हितम् ॥ ६७ ॥

आशाकर्त्तस्त्वदाता च दाता च प्रतिपेधकः ।

शरणागतं यस्त्यजति स चाण्डालो नरोऽधमः ॥ ६८ ॥

यो वान्धवैः परित्यक्तः साधुभिर्ब्राह्मणैरपि ।

कुण्डाशी यश्च तस्याऽन्नं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥ ६९ ॥

यो नित्यकर्मणो हानिं कुर्यान्नैमित्तिकस्य च ।

भुक्त्वाऽन्नं तस्य शुद्ध्यै च त्रिरात्रोपोषितो नरः ॥ ७० ॥

यस्य चानुदिनं हानिर्गृहे नित्यस्य कर्मणः ।

यश्च ब्राह्मणसन्त्यक्तः किल्विपी स नराधमः ॥ ७१ ॥

नित्यस्यकर्मणो हानिं न कुर्वीत कदाचन । तस्य त्वकरणे बन्धः केवलं मृतजन्मसु

दशाहं ब्राह्मणस्तिष्ठेद्दानहोमादिवर्जितः । क्षत्रियो द्वादशाहञ्च वैश्यो मासार्द्धमेव च

शूद्रस्तु मासमासीत निजकर्मविवर्जितः ।

रोगग्रहादिविधिना नित्यकर्मविविच्युतः ॥ ७४ ॥

पादकृच्छ्रं ततः कृत्वा गां दत्त्वा शुद्धिमाप्नुयात् ।

ततः परं निजं कर्म कुर्युः सर्वे यथोदितम् ॥ ७५ ॥

प्रेताय सलिलं देयं बहिर्गेहाच्च गोत्रिकैः । प्रथमेऽह्नि चतुर्थे च सप्तमे नवमे तथा

भस्मास्थिचयनं कार्यं चतुर्थे गोत्रिकैर्दिने । ऊर्ध्वं सञ्चयनात्तेषामङ्गुलीं विधीयते

सोदकैस्तु क्रियाः सर्वाः कार्याः सञ्चयनात्परम् ।

स्पर्श एव सपिण्डानां मृताहनि तथोभयोः ॥ ७८ ॥

वृक्षाहिगोदंष्ट्रिशस्त्रतोयोद्बन्धनवह्निषु । विषप्रपातादिमृते प्राथो नाशकयोरपि

चाले देशान्तरस्थे च तथा प्रजिते मृते । सद्यः शौचमथान्यैश्च त्र्यहमुक्तमशौचकम्

नैवोर्ध्वदैहिकं कार्यं न च कार्योदकक्रिया । गर्भस्त्रावे तदेषोक्तं पूर्णकालेन शुद्ध्यति

ब्राह्मणानामहोरात्रं क्षत्रियाणां दिनत्रयम् । पद्भ्यात्रमपि वैश्यानां शूद्राणां द्वादशाहिकम्

सपिण्डानां सपिण्डस्तु मृतेऽन्यस्मिन्मृतो यदि ।

पूयांशौघसमाख्याते कार्यास्तस्यत्र दिने क्रिया ॥ ८३ ॥

एष एषविधिर्द्रष्टो जन्मन्यविहि स्तुके । सपिण्डानासपिण्डेषुयथायत्सोदयेषु घ  
जाते पुत्रे पितु स्नान सघैलन्तु विधीयते ।

मृते हि सर्वथन्धूनामित्याह भगवान् मृगु ।

तत्रापि यदि धान्यस्मिन् जाते जायेत चापर ॥ ८५ ॥

तत्रापिशुद्धिरद्विषा पूर्वजन्मवतो दिने । दशद्वादशमासादंमाससहस्र्यैर्दिनैर्गत  
न्वा म्वा कर्मक्रिया कुज्युं सर्वे वर्णा यथाविधि ।

प्रेतमुद्दिश्य कतम्यमेकोद्दिष्ट तत परम् ॥ ८७ ॥

सपिण्डीकरणं घैव कार्यमाच-सराश्ररै । तत पितृघमापन्ने दर्शपूर्णादिभिल्लिभि  
प्रीणयंस्तस्य कतव्य यथाश्रुतिनिदर्शनम् ॥ ८८ ॥

दानानिघैव देयानि ब्राह्मणेभ्यो मनीषिभि । यथादिष्टतम लोके यथापि दयित गृहे  
तत्तद्गुणवते द्यै तद्देवाऽक्षयमिच्छता ॥ ८९ ॥

प्रेतंप्रेत समुद्दिश्य भूमिधेग्वादिक्लेशयम् । दद्याद्येनास्यसम्प्रीता पितर सन्तिपुत्रक  
पूर्णस्तु दिघसै स्पृष्टा सलिल वाहनायुधम् ॥ ९० ॥

प्रतोद्दण्डौ घतथा सम्यग्घणा वृतक्रिया । स्वघणधर्मनिर्दिष्टमुवादानतथाक्रिया  
कुयुं समस्ता शुचिन परत्रेह च भूतिदा ।

अध्येतव्या श्रयी निग्य भवितव्य विपश्चिता ॥ ९२ ॥

धर्मतो धनमाहार्यं यष्टव्यञ्चाऽपियत्नत । यथापिकुर्षंतोनात्मा जुगुप्सामेतिपुत्रकै  
तत्कस्तर्ध्वमशङ्केन यत्र गोप्य महाजने । एवमाचरतो घत्स ! पुह्यस्य गृहे सत

धमार्थकामसम्प्राप्त्या परत्रेह च शोभनम् ॥ ९५ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽल्काऽनुशासने घ-र्यांथर्ज्यवर्णननाम

पञ्चत्रिंशोऽध्याय ॥ ३५ ॥

## षट्त्रिंशोऽध्यायः

मदालसोपाख्याने पुत्रायोपदेशवर्णनम्

जड( पुत्र ) उवाच

स एवमनुशिष्टःसन् मात्रासम्प्राप्ययौवनम् । ऋतध्वजसुतश्चक्रे सम्यग्दारपरिग्रहम्  
पुत्रांश्चोत्पादयामास यज्ञैश्चाप्ययजद्विभुः । पितुश्चसर्वकालेषुचकाराऽऽज्ञानुपालनम्  
ततःकालेनमहता सम्प्राप्य चरमं वयः । चक्रेऽभिपेकं पुत्रस्य तस्य राज्ये ऋतध्वजः  
भार्यया सह धर्मात्मा यियासुस्तपसे घनम् ।

अवतीर्णो महारक्षो महाभागो भहीपतिः ॥ ४ ॥

मदालसा च तनयं प्राहेदं पश्चिमं वचः । कामोपभोगसंसर्गं प्रहाणाय सुतस्य वै ॥

मदालसोवाच

यदादुःखमसह्यं ते प्रियचन्धुवियोगजम् । शत्रुत्राधोद्वचं वापि चित्तनाशात्मसम्भवम्  
भवेत्तत् कुर्वतोराज्यं गृहधर्मावलम्बिनः । दुःखायतनभूतो हि ममत्वालम्बनो गृही  
तदास्मात् पुत्र ! निष्कृष्य मद्दत्तादङ्गुलीयकात् ।

वाच्यन्ते शासनं पट्टे सूक्ष्माक्षरनिवेशितम् ॥ ८ ॥

जड ( पुत्र ) उवाच

इत्युक्त्वाप्रददौ तस्मैसौवर्णसाङ्गुलीयकम् । आशिषश्चापियायोग्याःपुरुषस्यगृहेसतः  
ततःकुषलयाश्वोऽसौसाचदेवी मदालसा । पुत्राय दत्त्वा तद्राज्यं तपसे काननं गतो  
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मदालसोपाख्यानवर्णनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

## सप्तत्रिंशोऽध्यायः

### आत्मनिवेकरणम्

जड ( पुत्र ) उवाच

सोऽप्यलर्को यथान्याय पुत्रवन्मुदिता प्रजा ।

पालयामास धर्मात्मा स्वै स्वै कर्मण्यवस्थिता ॥ १ ॥

दुष्टेषुदण्ड शिष्टेषु सम्यक् च परिपालनम् । कुप्यन्परा मुद लेभे ह्याज च महामलै  
भजायन्तसुताश्चास्य महारत्नपराप्रमा । धर्मात्मानोमहा मानो विभ्रागपरिपन्थिन  
चकारसोऽयं धर्मेण धर्ममर्थेन वा पुन । तयोश्चैवाऽविरोधेन बुभुजे विपयानपि ॥  
एव बहूनि वर्षाणि तस्य पालयतो महीम् । धर्मार्थंरामसकल्प जगमुरेकमहर्षया  
वैराग्यं नाऽस्य सञ्चने भुङ्गतो विपयान् प्रियान् ।

न धाप्यलमभूत्तस्य धर्माधीपात्रंनःप्रति ॥ ६ ॥

तं तथा भोगसमगप्रमत्तमजिनेन्द्रियम् । सुबाहुनांम शुभ्राव स्राता तस्य घनेचर  
तंबुवोधयिषु सोऽय चिरंध्यात्वामहीपति । तद्वैरिसप्रपतस्यध्रेयोऽमन्यतभूपते  
तत स काशिभूशालमुदीणंश्रलवाहनम् । स्वराज्यं प्राप्नुमागच्छदुषदुश शरणं वृती  
सोऽपिघने क्लोद्योगमलकं प्रतिपार्थिव । दूनञ्जयेष्यामास राज्यमस्मै प्रदीयताम्  
सोऽपिनेच्छसदा दानुमाज्ञाप्यं न्यधर्मयित् । प्रायुषाचचतंदूनमलकं काशिभूभूत  
मामेवाभ्येत्यहार्देन याचतां राज्यमप्रज ।

नाशान्या सम्प्रशाम्यामि भयेनाऽल्पामपि क्षितिम् ॥ १२ ॥

सुबाहुरपिनोयाज्ञाञ्जकार मतिमांस्तदा । न धम क्षत्रियस्येतियाञ्जार्थीयंधनोदिसा  
तत समस्यसैन्येन कारीश परिवारित । भाषाणुमभ्यगाद्राष्ट्रमन्त्रकंस्य महीपते,  
बनन्तरैश्च मन्त्रेणमभ्येय तदनन्तरम् । नेयामन्यतमैभूर्त्यै समावभ्यानयद्वशम्

।पालांश्चक्षेत्रेणदधिकान्परी

कांश्चिन्नोपप्रदानेन कांश्चिद्भेदेन पार्थिवान् ।

साम्नेवान्यान् घशं निन्ये निभृतास्तस्य येऽभवन् ॥ १७ ॥

ततःसोऽल्पबलो राजा परस्त्रकाचपीडितः । कोपक्षयमवापोर्ध्वःपुरञ्चारुध्यतारिणा  
इत्थं सम्पीड्यमानस्तु क्षीणकोरोद्दिनेदिने । चिन्तादमागात्परमं व्याकुलत्वञ्चनेतसः  
आत्तिपरमांप्राप्यतत्संसारान्कुरीयकम् । यदुद्दिश्य पुरा प्राह माता तस्य मद्रालसा

ततः स्नातः शुचिभूत्वा घात्रयित्वा द्विजोत्तमान् ।

निष्कप्य शासनं तस्माद्दृशे प्रस्फुटाक्षरम् ॥ २१ ॥

तत्रैव लिखितंमात्रावाचयामास पार्थिवः । प्रकाशपुलकाङ्गोऽसौ प्रहर्षत्कुहलोचनः  
सङ्गः सर्वात्मना त्याज्यः स चेत्त्यक्तुं न शक्यते ।

स सद्भिः सह कर्तव्यः सतां सङ्गो हि भेजजम् ॥ २३ ॥

कामः सर्वात्मना हेयो प्रानुञ्जेच्छक्यते न सः ।

मुमुक्षां प्रति तत्कार्यं सैव तस्याऽपि भेजजम् ॥ २४ ॥

घात्रयित्वातु बहुशोभनांश्रेयःकथंत्विति । मुमुक्षयेतिनिश्चित्यसाधतत्सङ्गतोयतः  
ततः ससाधुसम्पकंचिन्तयन्पृथिवीपतिः । दत्तात्रेयंमहाभागमगच्छत्परमार्त्तिमान्  
त समेत्य महात्मानमकल्पमसङ्गिनम् । प्रणिपत्यामिसम्पूजयथान्यायमभाषत  
ब्रह्मन्! कुरुप्रसादंमे शरण्यःशरणाधिनाम् । दुःखापहारं कुरुमेदुःखार्त्तास्यातिकामिनः

दत्तात्रेय उवाच

दुःखापहारमद्यैव करोमितवपार्थिव! । सत्यं ब्रूहि किमर्थं ते दुःखंतत् पृथिवीपते!

कस्य त्वं कस्य वा दुःखं तत्त्वमेवं विचार्यताम् ।

अङ्गान्ङ्गी निरङ्गं च सर्वाङ्गानि विचिन्तय ॥ ३० ॥

जड ( पुत्र ) उवाच

इत्युक्त्वचिन्तयामासराजातेनधीमता । त्रिविधस्यापिदुःखःस्यस्थानमात्मानमेवच  
सविमृश्यचिरं राजा पुनःपुनरुदारधीः । आत्मानमात्मनाधीरः प्रहस्येदमथाब्रवीत्  
नाहमुर्वीनसलिलंनज्योतिरनिलोनच । नाकांशंकिन्तु शारीरं समेत्य सुखमिष्यते ॥



न्यूनातिरिक्ता याति पञ्चकेऽस्मिन् सुष्वासुखम् ।

यदिम्यान्मम बिभ्र स्यादन्यस्थेऽपि हित मयि ॥ ३४ ॥

निःश्वसन्मृतसद्भावे न्यूनाधिक्याप्रतोषते । तथा च ममताम्यक्तोषितोपेणोपलभ्यते  
तन्मात्रायस्थितेर्मूर्ध्ने तृतीयांशेवपश्यत । तथैवभूतमद्भावं शरीरं किंसुष्वासुखम्  
मनस्ययस्थितं दुःखं सुखं वा मानमञ्ज यत् । यतस्ततोतमेहुःससुरं वा नष्टाहं मन  
नाहङ्कारोत्पन्नो बुद्धिर्नाहं यतस्ततः । अन्तःकरणज दुःखं पारस्पर्यं मम तत्त्वयम्  
नाहं शरीरं न मनो यतोऽहं पृथक्शरीरान्मनसस्तथाऽहम् ।

तत्सन्तु क्षेत्रम्यथाऽपि देहे सुखानि दुःखानि च किं ममाऽत्र ॥ ३६ ॥

राजस्य पाण्डा कुठनेऽप्रज्ञोऽस्य देहस्य चेत् पञ्चमय स शशिः ।

शुणप्रवृथा मम बिभ्रु तत्र तस्य स चाऽहञ्ज शरीरतोऽन्य ॥ ४० ॥

न यस्य हस्तादिकमप्यशयं मांसं न चाऽर्थाणि शिराधिभागः ।

बन्धस्य नागाश्वरथादिकेने स्थानोऽपि सम्पत्त्य इहाऽस्ति तु सः ॥ ४१ ॥

तस्मात्प्र मेऽन्धिं च मेऽस्मिद् मं म मे सुखं नापि पुरं न कोणम् ।

न चाऽभ्यन्तागादि यं न तस्य नाऽयस्य वा कस्यचिद्वा ममाऽस्ति ॥ ४२ ॥

यथा घटा कुम्भकमण्डलुम्यमावाशमेकं धृथा हि हृष्टम् ।

तथा सुधादुः स च वाशितोऽहं मन्ये च देहेषु शरीरभेदे ॥ ४३ ॥

इति धीमाण्डेयपुराणे पितापुत्रसम्वाद् भारतमविधेयवर्जनं नाम

सप्तविंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

## अष्टत्रिंशोऽध्यायः

अलर्कद्वारादत्तात्रेयसमीपपरमार्थचिन्तनविषयकप्रदनकरणम्

जड ( पुत्र ) उवाच

दत्तात्रेयं ततोविप्रं प्रणिपत्य स पार्थिवः । प्रत्युवाच महात्मानं प्रश्रयावनतोचचः  
सम्यक्प्रपश्यतो ब्रह्मन् !ममदुःखं न किञ्चन । असम्यग्दर्शिनोमग्नाःसर्वदैवामुखार्णवे  
यस्मिन् यस्मिन्ममासक्ता ( ममत्वेन ) बुद्धिःपुंसः प्रजायते ।

ततस्ततः समादाय दुःखान्येव प्रयच्छति ॥ ३ ॥

मार्जारमक्षिते दुःखं यादृशं गृहकुक्कुटे । न तादृहमताशून्ये कलविक्लेऽथ मूपिषे  
सोऽहं न दुःखी न सुखी यतोऽहं प्रकृतः परः ।

यो भूताभिभवो भूतैः सुखदुःखात्मको हि सः ॥ ५ ॥

दत्तात्रेय उवाच

एवमेतन्नख्याय! यथैतद्दृश्याहृतंत्वया । ममेतिमूलंदुःखस्यनममेतिच निवृत्तेः (तिः  
मत्प्रश्नादेव ते ज्ञानमुत्पन्नमिदमुत्तमम् । ममेति प्रत्ययो येन क्षिप्तः शालमलितूलव  
अहमित्यङ्कुरोत्पन्नोममेतिस्कन्धवान् महान् । गृहक्षेत्रोच्चशाखाश्चपुत्रदारादिपल्लव  
धनधान्यमहापत्रो नैककालप्रवर्द्धितः । पुण्यापुण्याप्रपुष्पश्च सुखदुःखमहाफल  
तत्रमुक्तिपथ ( अपवर्गपथ ) व्यापी मूढसम्पर्कसेचनः ।

विधित्साभृङ्गमालाढ्यो कृत्यज्ञानमहातरुः ॥ १० ॥

संसाराध्वपरिश्रान्ता ये तच्छायां समाश्रिताः ।

भ्रान्तिज्ञानसुखाधीनास्तेपामात्यन्तिकं कुतः ॥ ११ ॥

यैस्तुसत्सङ्गापाणशितेन ममतातरुः । छिन्नो विद्याकुठारेण तेगतास्तेन घर्त्मः  
प्राप्यब्रह्मवनं शीतं नीरजस्कमकण्टकम् । प्राप्नुवन्तिपरांप्राज्ञानिर्वृतिं वृत्तिवर्जित  
भूतेन्द्रियमयं स्थूलं न त्वं राजन्न चाप्यहम् ।

न तन्मात्रं मया वाच्यं नैवान्तं करणात्मका ॥ १४ ॥

कथापश्यामिराजेन्द्रा प्रधानमिदमवाचथी । यत् परोद्विषेत्रञ्च सद्वातो द्वि गुणात्मक  
मशकौदुश्चरेरीक्षामुजमत्स्याभ्रमायथा । एष वैऽविपृथग्भावस्तथाक्षेत्रात्मनोर्नृप  
अलकं उवाच

भगवस्त्यत्रसादेन ममविभूतमुत्तमम् । ज्ञान प्रधानविच्छक्ति विवेककर्तृशाम्  
किञ्चन विप्रवाक्त्रागत स्यैययत् न चेतसि ।

न चापि येषि मुच्येय कथं प्रवृत्तियन्धनात् ॥ १८ ॥

कथनभूयां भूयश्च कथं निगुंजतामियाम् । कथं च ब्रह्मणैकत्वं यजेत शश्वतेन वै  
तन्मैयोगतथाप्रन्नप्रणतायामिथाचने । सम्यग्ब्रह्मिहमहाप्राज्ञसत्सङ्गोद्गुपवृन्तृणाम्  
इतिथ्रीमार्कण्डेयपुराणे पितापुत्रसम्वादे दत्तात्रेयालकंसम्वादे प्रश्नाध्यायवर्णन  
नामाऽष्टविंशोऽध्याय ॥ ३८ ॥

— # —

## एकोनचत्वारिंशोऽध्याय

### योगाध्यायवर्णनम्

दत्तात्रेय उवाच

ज्ञानपूर्वोवियोगो योऽज्ञानेन सहयोगिन । सामुक्तिप्रज्ञणाद्यैक्यमनैकं प्राकृतेर्गुणै

योगे च शक्तिर्विदुषा येन ध्येयं परं भवेत् ।

मुक्तिर्योगात्तथायोग सम्यग्ज्ञानान्महीपते ।

ज्ञानं तु स्रोद्धव ( सङ्गदोरोद्धव ) तु ख ममत्वासक्तचेतसाम् ॥ २ ॥

तस्मात्सङ्गं प्रयत्नेनमुमुषु सन्न्यसेत्तर । सङ्गाभावेममेत्यस्या ख्यातेर्हानि प्रजायते  
निममत्व सुखायैव वैराग्याद्दोषदर्शनम् । ज्ञानादेव च वैराग्यं ज्ञानं वैराग्यपूर्वकम्  
नृदुष्टं यत्र वसतिस्तद्दोष्य येन जीवति । यन्मुक्तये तदेवोक्तं ज्ञानमज्ञानमन्यथा

उपभोगेनपुण्यानामपुण्यानाञ्च पार्थिव! । कर्त्तव्यानाञ्च नित्यानामकामकरणात्तथा  
असञ्चयादपूर्वस्य क्षयात्पूर्वार्जितस्य च । कर्मणोबन्धमाप्नोतिशारीरंन(घ)पुनःपुनः

कर्मणा मोक्षमाप्नोतिवैपरीत्येन तस्य तु ।

एतत्ते कथितं राजन् ! योगं चेमं निबोध मे ।

यं प्राप्य ब्रह्मणो योगी शाश्वतान्नान्यतां व्रजेत् ॥ ८ ॥

प्रागेवात्माऽऽत्मना जेयोयोगिनांसहिदुर्जयः । कुर्वीततज्जयेयत्नंतस्योपायंशृणुष्वमे

प्राणायामहेतुहेतुपान् धारणाभिश्च किल्विषम् ।

प्रत्याहारेण चिपयान् ध्यानेनानीश्वरान् गुणान् ॥ १० ॥

यथापर्वतधातूनां दोषाद्ब्रह्मन्ति धाम्यताम् । तथेन्द्रियकृतादोषाद्ब्रह्मन्तेप्राणनिग्रहात्

प्रथमं साधनं कुर्यात् प्राणायामस्य योगवित् ।

प्राणापाननिरोधस्तु प्राणायाम उदाहृतः ॥ १२ ॥

लघुमध्येोत्तरीयाख्यःप्राणायामस्त्रिधोदितः । तस्यप्रमाणंवक्ष्यामिदंलोकेशृणुष्वमे

लघुर्द्वादशमात्रस्तु द्विगुणःसतुमध्यमः । त्रिगुणाभिस्तुमात्राभिर्वृत्तमःपरिकीर्त्तितः

निमेषोन्मेषणे मात्राकालो लघ्वक्षरस्तथा ।

प्राणायामस्य सङ्ख्यार्थं स्मृतो द्वादशमात्रिकः ॥ १५ ॥

प्रथमेन जयेत् खेदं मध्यमेन च वेपथुम् । चिपादं हि तृतीयेन जयेद्दोषाननुक्रमात्

मृदुत्वंसेव्यमानस्तुसिंहशार्दूलकुञ्जराः । यथायान्तितथाप्राणावश्योभवतियोगिनः

घश्यं मत्तं यथेच्छातो नागं नयति हस्तिपः ।

तथैव योगी सच्छन्दः प्राणं नयति साधितम् ॥ १८ ॥

यथा हि साधितः सिंहो मृगान् हन्ति न मानवान् ।

तद्वन्निपिद्धपवनः किल्विषं न नृणां तनुम् ॥ १९ ॥

तस्माद्युक्तः सदा योगीप्राणायामपरोभवेत् । श्रूयतांमुक्तिफलदंतस्यावस्थाचतुष्टयम्

ध्वस्तिः प्राप्तस्तथा संवित् प्रसादश्च महीपते! ।

स्वरूपं शृणु घैतेषां कथ्यमानमनुक्रमात् ॥ २१ ॥



व्योमादिपरमाणून्श्चतथात्मानमकल्मषम् । इत्थं योगी यथाहारःप्राणायामपराय

जितां जितां शनैर्भूमिमारोहेत यथा गृहम् ।

दोषान् व्याधींस्तथा मोहमाक्रान्ता भूरनिर्जिता ॥ ३६ ॥

विवर्द्धयति नारोहेत्तस्माद्भूमिमनिर्जिताम् ।

प्राणानामुपसंरोधात् प्राणायाम इति स्मृतः ॥ ४० ॥

धारणेत्युच्यते चेयं धार्यते यन्मनोयया । शब्दादिभ्यः प्रवृत्तानिषदक्षायितात्मनि  
प्रत्याह्वियन्ते योगेन प्रत्याहारस्ततःस्मृतः । उपायश्चात्रकथितोयोगिभिःपरमर्षि

येन व्याध्यादयो दोषा न जायन्ते हि योगिनः ।

यथा तोयार्थिनस्तोयं यन्त्रनालादिभिः शनैः ॥ ४३ ॥

वापिवेगुस्तथा वायुं पिवेशोगीजितध्रमः । प्राङ्गताभ्यां हृदयेचात्रतृतीयेचतथोर  
कण्ठे मुखे नासिकाग्रेनेत्रभ्रूमध्यमूर्द्धसु । किञ्चतस्मात्परस्मिंश्चधारणापरमास्त्  
दर्शता धारणाः प्राप्य प्राप्नोत्यक्षरसाम्यताम् ।

नाधमातः क्षुधितः श्रान्तो न च व्याकुलचेतनः ॥ ४६ ॥

युञ्जीत योगं राजेन्द्रयोगी सिद्धयर्थमाह्वनः । नातिशीतेनचोष्णेवैनद्वन्द्वेनानिलात्  
कालेष्वेतेषु युञ्जीत न योगं ध्यानतत्परः । सशब्दाग्निजलाभ्यासेजीर्णगोष्ठेचतु  
शुष्कपर्णचये नद्यां श्मशाने ससरीसृपे । समये कूपतीरे वा घृत्यवलमीकसञ्च  
देशेष्वेतेषु तत्रवहो योगाभ्यासं विवर्जयेत् । सर्वस्यानुपपत्तौ च देशकालं विवर्ज  
नासतो दर्शनं योगे तस्मात्तत्परिवर्जयेत् । देशानेताननाहृत्य मूढत्वाद्यो युनक्ति  
विघ्नाय तस्य वै दोषा जायन्ते तन्निबोधमे । चाधियंजडतालोपःस्मृतेर्मूर्कत्वमन  
ज्वरश्च जायते सद्यस्तत्तदज्ञानयोगिनः । प्रमादाद्योगिनो दोषायद्येतेस्युश्चिकित्सि

तेषां नाशाय कर्त्तव्यं योगिनां तन्निबोध मे ।

स्निग्धां यवागूमत्युष्णां भुक्त्वा तत्रैव धारयेत् ॥ ५४ ॥

घातगुल्मप्रशान्त्यर्थमुदावर्त्तं तथोदरे । यवागूं वापि पवनं वायुग्रन्थिप्रतिदि  
तद्वत्कम्पे महाशैलं सि

विधाते यवसो वाचं वाधिर्व्ये ध्यजेन्द्रियम् ॥ ५६ ॥

यथैवाऽऽन्नफलं ध्यायेत् सृष्ट्वात्तौ रस्नेन्द्रिये ।

यस्मिन् यस्मिन् रुजा देहे तस्मिंस्तदुपकारिणीम् ॥ ५७ ॥

धारयेद्धारणामुष्णे शीता शीते च दाहिनीम् ।

कीलं शिरसि सन्धाप्य ऋष्टं काष्ठेन ताडयेत् ॥ ५८ ॥

लुप्तस्मृते. स्मृति मद्यो योगिनस्नेन जायते ।

द्यावापृथिव्यां वाय्वग्रां स्वापिनाद्यपि धारयेत् ॥ ५९ ॥

अमानुषात्सत्त्वजाद्वा याधास्त्वैताश्चिकित्सिता ( याधास्त्वितिचिकित्सितम् )।

अमानुष सत्त्वमन्तर्योगिनं प्रचिशेद्यदि ॥ ६० ॥

वाय्वग्निधारणेन देहसस्य चिनिर्दहेत् । एव सर्वात्मनारक्षा कार्यायोगविदा नृप !

धर्मार्थकाममोक्षाणां शरीरसाधनयत । प्रवृत्तिलक्षणाख्यानाद्योगिनोविस्मयात्तथा

विज्ञान विलयं याति तस्माद्गोप्या. प्रवृत्तय. ॥ ६२ ॥

अलोल्य ( अलौल्य ) मारोग्यमनिन्दुरन्व गन्ध शुभोमूत्रपुरीषमल्पम् ।

कान्ति प्रसाद. स्वरसौम्यता च योगप्रवृत्ते प्रथमं हि विह्वम् ॥ ६३ ॥

अनुराग जनो याति परोक्षेगुणकीर्तनम् । नविभ्यतिघसत्त्वानिसिद्धेर्लक्षणमुत्तमम्

शीतोष्णादिभिरत्युग्रैर्यस्य याधा न विद्यते ।

न भीतिमेति चान्येभ्यस्तस्य सिद्धिरपस्थिता ॥ ६५ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे जज्ञोपाख्याने योगाध्यायवर्णननामैकोन-

चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

## चत्वारिंशोऽध्यायः

### योगसिद्धिवर्णनम्

दत्तात्रेय उवाच

उपसर्गाः प्रवर्तन्ते तृष्टे हात्मनियोगिनः । येतांस्तेसम्प्रचक्ष्यामि समासेननिबोधमे  
काम्याः क्रियास्तथा कामान् मानुषानभिवाञ्छति ।

स्त्रियो दानफलं विद्यां मायां कुप्यं धनं दिवम् ॥ २ ॥

देवत्वममरेशत्वं रसायनत्रयःक्रियाः । मरुत्प्रपतनं यज्ञं जलाग्न्यावेशनन्तथा ॥ ३ ॥

श्राद्धानां सर्वदानानां फलानि नियमास्तथा ।

तथोपवासान्पूर्त्ताञ्चदेवताभ्यर्चनादपि ॥ ४ ॥

तेभ्यस्तेभ्यश्चकर्मभ्य उपसृष्टोऽभिवाञ्छति । श्रित्तमित्यं वर्तमानं यत्नाद्योगीनिवर्तयेत  
ब्रह्मसङ्गि मनः कुर्वन्नुपसर्गात्प्रमुच्यते । उपसर्गैर्जितैरेभिरुपसर्गास्ततः पुनः ॥ ६ ॥

योगिनः सम्प्रवर्तन्ते सांस्वराजसतामसाः । प्रातिभःश्रावणोर्देवोन्नमावर्त्तोतथापरौ  
पञ्चैते योगिनां योगविघ्नाय कटुकोदयाः ।

वेदार्थाः काव्यशास्त्रार्थाः विद्याशिल्पान्यशेषतः ॥ ८ ॥

प्रतिभान्ति यदस्येति प्रातिभः स तु योगिनः ।

शब्दार्थानखिलान् वेत्ति शब्दं गृह्णाति चैव यत् ॥ ९ ॥

योजनानां सहस्रेभ्यः श्रावणः सोऽभिधीयते ।

समन्ताद्दीक्षते चाष्टौ स यदा देवतोपमः ( देवयोनयः ) ॥ १० ॥

उपसर्गन्तमप्याहुदधमुन्मत्तचद्वुधाः । भ्राम्यते यन्निरालम्बं मनो दोषेणयोगिनः  
समस्ताघारविभ्रंशाद् भ्रमःसपरिकीर्तितः । आवर्तइव तोयस्यज्ञानावर्त्तो यदाकुलः  
नाशयेच्चित्तमावर्त उपसर्गः स उच्यते । पतैर्नाशितयोगास्तु सकला देवयोनयः ॥  
उपसर्गैर्महाघोरैरावर्त्तन्तेपुनः पुनः । प्रावृत्त्या कम्बलं शुक्लं योगी तस्मान्मनोमयम्



शरीरमण्डले दृष्ट्वा गुह्यज्ञानं ततो हि यन् ।

ज्ञानपूर्वोऽपि यो योगो ज्ञातव्यो वै विपश्चिता ॥ १५ ॥

धिन्तयेत्परमं ब्रह्मकृत्वा तन्व्ययणमन । योगयुक्तं सदा योगीलब्धाहारोज्ज्वलेन्द्रियं  
सूक्ष्मास्तु धारणा सन्नभूराग्रामूर्ध्निधारयेत् । धरित्र्योधारयेद्योगीतत्सौख्यप्रतिपद्यते

आ मानं मन्यते चोर्वीं तद्गुणधञ्जं जहाति स ॥

तर्धयाप्सु रसं सूक्ष्मं तद्ब्रह्मञ्जं तेनसि ॥ १८ ॥

स्पर्शं धार्यो तथा तद्ब्रह्मिभ्रतस्तस्य धारणाम् ।

व्योमनं सूक्ष्मां प्रवृत्तिञ्च शब्दं तद्ब्रह्महाति स ॥ १६ ॥

मनसा सत्यभूतानां मनस्याविशते यदा । मानसीं धारणाविघ्नमनसं सूक्ष्मञ्च जायते  
तद्ब्रह्मदुद्धिमशेषाणां सत्त्वानामेत्यं योगवित् ।

परित्यजति सम्प्राप्य बुद्धिसौक्ष्ममनुत्तमम् ॥ २१ ॥

परित्यजति घृदमाणि सन्न वेदानियोगवित् । सग्यग्विज्ञाययोऽलम्बतस्यावृत्तिर्न विद्यते  
एतासां धारणानां तु सन्नानां सौक्ष्ममात्मवान् ।

दृष्ट्वा दृष्ट्वा ततः सिद्धिं त्यक्त्वा त्यक्त्वा परां व्रजेत् ॥ २३ ॥

यस्मिन् यस्मिन् च कुर्वते भूते रागं महीपते ।

तस्मिन् स्तस्मिन् समासक्तिं सम्प्राप्य स विनश्यति ॥ २४ ॥

तस्माद्ब्रह्मिणा घृदमाणि ससक्तानि परस्परम् ।

परित्यजति यो देही स परं प्राप्नुयात् पदम् ॥ २५ ॥

एतान्येव तु सन्धाय सततं सूक्ष्माणि पार्थिव । भूतादीनां विनाशोऽप्रसङ्गाद्यज्ञस्य मुक्तये  
गन्धादिषु समासक्तिं सम्प्राप्य स विनश्यति ।

पुनराद्यत्ते भूपः स ब्रह्मापरमानुषम् ॥ २७ ॥

सत्प्रैता धारणा योगी समतीत्य यदिच्छति ।

तस्मिन् स्तस्मिन् ह्यसूक्ष्मे भूते याति नरेभ्यः ॥ २८ ॥

देवानामसुराणाम्बा गन्धर्वोरगरक्षसाम् । देहेषु लयमायाति सङ्गनाप्नोति च क्वचित्

शनिमा लघिमा चैव महिमा प्राप्तिरेवच । प्राकाम्यञ्च तथेशित्वं च शित्वञ्च तथापरम्  
यत्र कामावशायित्वंगुणानेतांस्तथैश्वरान् । प्राप्नोत्यष्टौ नरव्याघ्रपरं निर्वाणसूचकान्

सूक्ष्मात्सूक्ष्मतमोऽर्णीयान् शीघ्रत्वं लघिमागुणः ।

महिमाशेषपूज्यत्वात्प्राप्तिर्नाप्राप्यमस्य यत् ॥ ३२ ॥

प्राकाम्यमस्य व्यापित्वादीशित्वञ्चेश्वरो यतः ।

च शित्वाद्द्विशिमा नाम योगिनः सप्तमो गुणः ॥ ३३ ॥

यत्रेच्छास्थानमप्युक्तं यत्र कामावशायिता ।

प्रेष्यकारणैरेभिर्योगिनः प्रोक्तमष्टधा ॥ ३४ ॥

ऋसंसूत्रकं भूप! परं निर्वाणमात्मनः । ततो न जायते नैववर्द्धते न चिनश्यति ॥

पे क्षयमवाप्नोति परिणामं न गच्छति । छेदं क्लेदं तथादाहंशोषं भूरादितो न च ॥

त्वर्गादवाप्नोति शब्दाद्यैः हियते न च । न चास्य सन्ति शब्दाद्यास्तद्भोक्ता तैर्न युज्यते

ग्राहि कनकं खण्डमपद्रव्यवदग्निना । दग्धद्रोषं द्वितीयेन खण्डेनैक्यं ब्रजेन्त्प

विशेषमवाप्नोति तद्वद्योगाग्निनायतिः । निर्दग्धद्रोषस्तेनैक्यं प्रयाति ब्रह्मणा सह

थाग्निरग्नौ सहितः समानत्वमनुब्रजेत् । तदाख्यस्तन्मयोभूतो न गृह्येत विशेषतः

परेण ब्रह्मणा तद्वत् प्राप्यैक्यं दग्धकिल्बिपः ।

योगी याति पृथग्भावं न कदाचिन्महीपते! ॥ ४१ ॥

।था जलं जलेनैक्यं निक्षिप्तमुपगच्छति । तथात्मा सात्म्यमभ्येतियोगिनः परमात्मनि

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे योगिसिद्धिर्नामाऽध्यायवर्णनं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥

## एकचत्वारिंशोऽध्यायः

### योगिपरिचर्यापापमनियमादिवर्णनम्

अलक्षं उवाच

भगवन् । योगिनश्चर्यां श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ।

प्रश्नचर्मन्यनुसरन् यथा योगी न सीदति ॥ १ ॥

दत्तात्रेय उवाच

मानापमानौ यापेतौ प्रयुद्धवेगश्रूरी नृणाम् ।

ताप्रेच विपरातार्थौ योगिनः सिद्धिकारकौ ॥ २ ॥

मानापमानौ यापेतौ तावदाहुर्विषामृते । अपमानोऽमृत तत्र मानस्तुचिपम चिपम्  
चभु पूतन्यसेत्पाद पल्लूतत्त्रपिवेत् । सत्यपूता घदेद्वार्षी बुद्धिपुनश्च चिन्तयेत्  
आतिथ्यश्राद्धयज्ञेषु देषयानोत्सवेषु च । महाजनश्चमिदुध्यर्धनगच्छेद्योगचित्कवित्  
व्यस्ने विभ्रमे व्यङ्गारे सबस्मिन् भुक्तवज्जने । अनेतयोगचिद्वैश्यनतुतेष्वेव नित्यश  
यधैवप्रवमन्यन्ते जना परिभ्रयन्ति च । तथायुक्तश्चरेद्योगी सता घर्म न दूषयन्  
भैश्यश्चरेद्गृहस्थेषु यायाचरगृहेषु च । श्रेष्ठा तु प्रथमा चेति वृत्तिरत्योपदिश्यते  
अथ नित्य गृहस्थेषु शालीनेषु चरेद्यति । श्रद्धधानेषु दान्तेषु श्रोत्रियेषु महात्मसु  
अतऊर्ध्वं पुनश्चापि अदुष्टापतितेषु च । भैश्यचर्यां विधर्षेषु जन्मया वृत्तिरिष्यते  
भैश्य यवाग् तक्रवा पयोयावकमेववा । फल मूल प्रियङ्गु वा कणपिण्याकसकव  
इत्येते च शुभाहारा योगिनः सिद्धिकारकाः ।

तत् प्रयुञ्जथान्मुनिभक्त्या परमेण समाधिना ॥ १२ ॥

अप पूर्वं सद्दत् प्राश्य नृष्णीं भूत्वा समाहित ।

प्राणायामेति ततस्तस्य प्रथमा ह्याहुति स्मृता ॥ १३ ॥

अपानाय द्वितीया तु समानायेति चापरा । उदानायचतुर्थीत्याह्वानायेतिचपञ्चमी

प्राणायामैः पृथक्कृत्वाशेषं भुञ्जीत कामतः । अपः पुनः सरुतप्राश्य आचम्य हृदयं स्पृशेत्  
 चस्तेयं ब्रह्मचर्यञ्च त्यागोलोमस्तर्धैव च । घृतानि पञ्चमिक्षणामहिंसापरमाणि वै  
 अक्रोधोगुरुशुभ्रूपाशौचमाहारलाघवम् । नित्यस्वाध्यायइत्येतेनियमाः पञ्चकीर्त्तिताः  
 सारभूतमुपासीत ज्ञानंयत्कार्यसाधकम् । ज्ञानानां बहुतायेयं योगविघ्नकर्त्री हि सा  
 इदं क्षेपमिदं ज्ञेयमिति यस्तृपितश्चरेत् । अपि कल्पसहस्रेषु नैव क्षेयमवाप्नुयात्  
 त्यक्तसङ्गो जितक्रोधो लब्धाहारो जितेन्द्रियः ।

विधाय बुद्ध्या द्वाराणि मनो ध्याने निवेशयेत् ॥ २० ॥

शून्येष्वेवावकाशेषु गुह्यासु च घनेषु च । नित्ययुक्तः सदायोगी ध्यानं सम्यगुपक्रमेत्  
 चाग्दण्डः कर्मदण्डश्च मनोदण्डश्च तत्रयः । यस्यैतेनियतादण्डाः सत्रिदण्डमहायतिः  
 त्वमात्ममयं यस्य सदसज्जगदीदृशम् । गुणागुणमयंतस्य कः प्रियः को नृपाऽप्रियः

विशुद्धबुद्धिः समलोप ( छ ) काञ्चनः समस्तभूतेषु च तत् समाहितः ।

ध्यानं परं शाश्वतमव्ययञ्च परं ( यतिर्हि ) हि मत्वा न पुनः प्रजायते ॥ २१ ॥

वेदाच्छ्रेष्ठाः सर्वयजक्रियाश्च यथाज्जप्यं ज्ञानमार्गश्च जप्यात् ।

ज्ञानाद्ध्यानं सङ्गरागव्यपेतं तस्मिन्प्राप्ते शाश्वतस्योपलब्धिः ॥ २५ ॥

समाहितो ब्रह्मपरोऽप्रमादो शुचिस्तथैकान्तरतिर्यतेन्द्रियः ।

समाप्नुयाद्योगमिमं महात्मा चिमुक्तिमाप्नोति ततः स्वयोगतः ॥ २६ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे योगिचर्याध्यायवर्णनं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

## द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

ॐकारमाहात्म्यवर्णनम्

दत्तात्रेय उवाच

एव योश्चत्ते योगी सम्यग्योगव्यवस्थित । नस न्यावर्त्तितुशक्योजन्मान्तरातैरपि  
दृष्ट्वा च परमात्मान प्रत्यक्षविश्वरूपिणम् । विश्वपाद्शिरोम्रीषं विश्वेशविश्वभावनम्  
तत्प्राप्तये महत्पुण्यमोमित्येकाक्षरं जपेत् । तदेवाध्ययनतस्य स्वरूपशृण्वत परम्  
अकारश्च तथोक्तो मकारश्चाक्षरत्रयम् । एताएव त्रयोमात्रा सात्त्वराजसतामसा  
निर्गुणा योगिगम्याऽन्या चार्द्धमात्रोऽध्वसस्थिता ।

गान्धारीति च विज्ञेया गान्धारस्वरसध्या ॥ ५ ॥

पिपीलिकागतिरुपशा प्रयुक्तमूर्ध्निलयते । यथाप्रयुक्तओङ्कार प्रतिनिर्यातिमूर्द्धनि  
तथोङ्कारमयो योगी त्वक्षरे चक्षरो भवेत् ।

प्राणोधनुशरोह्यात्मा ब्रह्मवेध्यमनुत्तमम् । अप्रमत्तेन वेदव्य शखत्तन्मयो भवेत्  
ओमित्येतत्त्रयो वेदास्त्रयोऽलोकास्त्रयोऽग्रय ॥ ८ ॥

विष्णुर्ब्रह्माहर्षैवभृक् सामानियजू पिच । मात्रा सार्द्धाश्चित्स्त्रिभुविश या परमार्यता  
तत्र युक्तस्तु योयोगीसतह्यमवाप्नुयात् । अकारस्त्वयभूर्लोकउकारश्चोन्व्यतेभुव  
सव्यञ्जनोमकारश्चस्यलोक परिकल्पते । व्यक्तानुप्रथमामात्राद्वितीयाव्यक्तसद्भ्रिता  
मात्रातृतीया चिच्छचिरर्द्धमात्रा परं पदम् । अनेनैव त्रमेणैता विज्ञेया योगभूमयः  
ओमित्युच्चारणात् सर्वं गृहीतं सदसद्भवेत् ।

ह्रस्वा तु प्रथमा मात्रा द्वितीया दैर्घ्यंसयुता ॥ १३ ॥

तृतीया च प्लुतार्द्धाख्या वचस सा न गोचरा । इत्येतदक्षरं ब्रह्मपरमोङ्कारसद्भ्रितम्  
यस्तुवेदनर सम्यक् तयाध्यायति दापुन । ससारावक्रमुत्सृज्यत्यक्तत्रिभिधयन्धन  
प्राप्तोति ब्रह्मजिलय परमे परमात्मनि । अक्षीणकर्मन्धश्च शास्त्रामृत्युमरिषित ॥

उत्क्रान्तिकाले संस्मृत्य पुनर्योगित्वमृच्छति ।

तस्मादसिद्धयोगेन सिद्धयोगेन वा पुनः ।

ज्ञेयान्यरिष्टानि सदा येनोत्क्रान्तौ न सीदति ॥ १७ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे योगधर्मोद्गाराध्यायवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥

## त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

### मृत्युज्ञानकरारिष्टवर्णनम्

दत्तात्रेय उवाच

अरिष्टानि महाराज! शृणु वक्ष्यामि तानि ते ।

येषामालोकनान्मृत्युं निजं जानाति योगचित् ॥ १ ॥

देवमार्गं ध्रुवं शुक्रं सोमच्छायामरुन्धतीम् ।

यो न पश्येन्न जीवेत् स नरः सम्बत्सरात्परम् ॥ २ ॥

अरश्मिचिम्बं सूर्य्यस्य वह्निं चैवांशुमालिनम् ।

दृष्ट्वाकादशमासात् तु नरो नोदूर्ध्वं तु जीवति ॥ ३ ॥

चान्तेमूत्रपुरीषे च यःस्वर्णरजतं तथा । प्रत्यक्षं कुरुतेस्वप्ने जीवेत्स दशमासिकम्

दृष्ट्वा प्रेतपिशाचादीन् गन्धर्वनगराणि च । सुवर्णवर्णान् वृक्षांश्चनवमासान्सजीवति

स्थूलः कृशःकृशःस्थूलो योऽकस्मादेव जायते ।

प्रकृतेश्च निवर्तेत तस्यायुश्चाष्टमासिकम् ॥ ६ ॥

स्रण्डयस्यपदंपाण्ड्यापादस्याग्रेचवाभवेत् । पांशुर्कर्मयोर्मध्येसप्तमासान्सजीवति

गृध्रः कपोतः काकोलो घायसो वापि सूर्द्धनि ।

क्रव्यादौ वा खगो नीलः पणमासायुःप्रदर्शकः ॥ ८ ॥

हन्यते काकपङ्कीभिःपांशुवर्षेणवानरः । स्वांच्छायामन्यथाद्रष्टाचतःपञ्चसजीवति

अनघ्रे विद्युत्तं दृष्ट्वा दक्षिणा दिशमाश्रिताम् ।

रात्राविन्द्रधनुर्ध्वापि जीवितं द्वित्रिमासिकम् ॥ १० ॥

यूने तैले तदादर्शं तीयेषानात्मनस्तनुम् । य पश्येदशिरस्काधामासाद्दृष्ट्वानजीवति  
यस्य वस्तसमो गन्धो गात्रे शयसमोऽपिवा ।

तस्यार्द्धमासिकं ज्ञेयं योगिनो मृषा जीवितम् ॥ १२ ॥

यस्य वै स्नातमात्रस्य हृत्पादमवशुष्यते । पिबन्धजलशोपोदशाहं सोऽपि जीवति  
सग्निरो मारुतो यस्य ममस्थानानि वृन्तति ।

हृष्यते नाम्बु सरुपर्शात् तस्य मृत्युरुपस्थित ॥ १४ ॥

ऋक्षवानरयानस्यो गायत्रो यो दक्षिणा दिशम् ।

स्वप्ने प्रयाति तस्यापि न मृत्युः कागमिच्छति ॥ १५ ॥

रक्तवृष्णाम्बरधरा गायन्तीहसताश्रयम् । दक्षिणाशानयेत्रीस्वप्नेसोऽपि न जीवति  
नग्नशृण्णकस्वप्नेहसमानमहाबलम् । एवंसम्वाद्यवल्गन्तविद्या मृत्युमुपस्थितम्

धामस्तकृतलाघस्तु निमग्नं पङ्कसागरे । स्वप्नेपश्यन्वधामानं न सधोप्रियतेनर  
केशाङ्गारान्तधामम्म भुजङ्गात्रिजलानदीम् । दृष्ट्वा स्वप्नेदशाहात्तु मृत्युरेकादशेदिने

करालैर्विकटे वृष्णे पुरुषैरुद्यतायुधैः । पाशाणैस्ताडितस्वप्नेसधो मृत्युलभैर्भ्रत  
सूर्योदयेप्रस्यशिवात्रोशन्तीयातिसम्भुलम् । विपरातपरीतवाससधोमृत्युमृच्छति

यस्य वै भुक्तमात्रस्य हृदयं याधते शुभा । जायते दन्तशपथं स गतायुर्न मशयम्  
दीपागन्धनं यौत्रेति त्रस्यत्यहितघानिधि । नात्मानपरनेत्रस्यर्वाक्षने न स जीवति

शत्रायुधं चाद्भरात्रे दिवाग्रहगणन्तथा । दृष्ट्वा मन्येत सक्षीणमात्मजीवितमात्मधित्  
नासिका घत्रतामेति कर्णयोर्नमनोभ्रती । नेत्रञ्च घामस्त्रवति यस्य तस्यायुर्द्वतम्

भारकृतामतिमुखजिह्वावाश्यामतायदा । तदाप्राणोचिजानीयान्मृत्युमासध्रमात्मनः  
उद्धरासमयानेन य स्वप्ने दक्षिणा दिशम् ।

प्रयाति तं घं जानीयान् सधो मृत्युः न सशयः ( नरेभरः ) ॥ २३ ॥

विधाय कर्णां निर्घोषं न शृणोत्यात्मसम्भवम् ।

नश्यते चक्षुषोर्ज्योतिर्यस्य सोऽपि न जीवति ॥ २८ ॥

पततो यस्य वैगर्ते स्वप्ने द्वारं पिपीयते । न चोत्तिष्ठति यः श्वन्नासदन्तं तस्य जीवितम्

ऊर्ध्वा घट्टिर्न घ सम्प्रतिष्ठा रक्ता पुनः सम्परिवर्तमाना ।

मुखस्य चोष्मा शुषिरञ्च नाभेः शंसन्ति पुंसामपरं शरीरम् ॥ ३० ॥

स्वप्नेऽग्निं प्रविशेद्यस्तु न घ निष्क्रमते पुनः ।

जलप्रवेशादपि घा तद्दन्तं तस्य जीवितम् ॥ ३१ ॥

यश्चाभिहन्यते दुष्टैर्भूतैरात्राचयोदिघा । समृत्युं ममराच्यन्ते नरः प्राप्नोत्यसंशयम्

स्ववस्त्रममलं शुक्लं रक्तं पश्यत्यघाऽसितम् ।

यः पुमान् मृत्युमासन्नं तस्यापि हि विनिर्दिशेत् ॥ ३३ ॥

स्वभाववैपरीत्यन्तु प्रकृतेश्च चिपर्ययः । कथयन्ति मनुष्याणां सदा सन्नोयमान्तर्को

येषां चिनीतः सततं येऽस्य यूज्यत मामताः । तानेव घावजानाति तानेव च विनिन्दति

देवाश्चाचर्यते वृद्धान् गुरुन्धिप्रांश्च निन्दति । मातापित्रोर्नन्तकारं जामातृणां करोति च

योगिनां ज्ञानविदुषामन्येषाञ्च महात्मनाम् । प्राप्ते तु काले पुरुषस्तद्विषेयं चिचक्षणः

योगिनां सततं यज्ञादग्निष्ठान्यवनीपते ।

सम्बत्सरान्ते तज्ज्ञेयं फलदानि दिवानि शम् ॥ ३८ ॥

विलोक्त्वा विशदास्यैषां फलपङ्क्तिः सुभीषणा । विज्ञाय कार्यामनसि सघकालो नरेश्वर

ज्ञात्वा कालं च तं सम्यगभयस्थानमाश्रितः ।

युञ्जीत योगी कालोऽसौ यथा नास्याफलो भवेत् ॥ ४० ॥

दृष्ट्वाऽरिष्टं तथा योगी त्यक्त्वा मरणजं भयम् ।

तत्स्वभावं तदालोक्य काले यावत्पुपागतम् ( कालो यावद्विपाकदः ) ॥

तस्य भागे तथैवाहो योगं युञ्जीत योगवित् ।

पूर्वाह्ने चापराह्णे च मध्याह्ने चापि तद्दिने ॥ ४२ ॥

यत्र वा रजनीभागे तदरिष्टं निरीक्षितम् । तत्रैव तावद्युञ्जीत यावत् प्राप्तं हि तद्दिनम्

... ततस्त्यक्त्वा भयं सर्वं जित्वा तं कालमोत्सवान् ।



तत्रैवावसथे स्थित्वा यत्र धा स्वर्यमात्मनः ॥ ४४ ॥

युञ्जीत योगं निर्जित्य श्रीन् गुणान् परमात्मनि ।

तन्मयध्यात्मना भूत्वा चिद्वृत्तिमपि सन्त्यजेत् ॥ ४५ ॥

तत परमनिर्वाणमतोन्द्रियमगोचरम् । यद्बुद्धेर्यत्रघाष्यातु शक्यते तत् समस्तुते  
यतत् सर्वं समाख्याततवाल्कां यथार्थवत् । प्राप्त्यसेयेनतद्ब्रह्म सक्षेपात्तन्निबोधमे

शशाङ्करश्मिसयोगाच्चन्द्रकान्तमणि पय ।

समुत्सृजति नायुक्त सोपमा योगिन स्मृता ॥ ४८ ॥

यथाकर्कश्मिसयोगादक्षकान्तो हुताशनम् ।

धाषिष्करोति नैक सन्नुपमा साऽपि योगिन ॥ ४९ ॥

पिपीलिकाऽऽखुनकुलमृहगोधाकपिञ्जला ।

यसन्ति स्वामिषद्दु गेहे ध्वस्ते यान्ति ततोऽन्यत ॥ ० ॥

दु खन्तुस्यामिनोध्यसेतस्ययेषा नकिञ्चन । वेश्मनोयत्रराजेन्द्रसोपमायोगसिद्धये  
मृद्देहिकालपदेहापि मुखाम्रे षाप्यणीयसा । करोति मृद्धारषयमुपदेश स योगिन

पशुपक्षिमनुष्याद्यै पत्रपुष्पफलान्वितम् । वृक्षचिलुप्यमानतु दृष्ट्वासिष्यन्तियोगिन  
रुश्रावविषाणाग्रमालश्य तिलकाहृतिम् ।

सह तेन विषदन्ते योगी सिद्धिमवाप्नुयात् ॥ ५४ ॥

द्रघपूर्णमुपादाय पात्रमारोहतो भुव । तुङ्गमङ्गु चिलोक्योञ्चैर्षिज्ञात किं नयोगिना  
सवस्वे जीवनायाल निखाते पुरुषस्य धा ।

चेष्टा ता तत्त्वतो ज्ञात्वा योगिन छतष्टयता ॥ ५६ ॥

तद्गृह यत्र वसति तद्द्वोन्य येन जीवति । येन सम्पद्यतेचार्यस्तत्सुखममताऽत्रका  
अभ्यर्चितोऽपि तै काप्यं करोति करणैर्यथा ।

तथा बुध्यादिभिर्योगी पारक्यै साधयेत्परम् ॥ ५८ ॥

अइ उवाच

११

तत प्रणम्यात्रिपुत्रमलकं स महीपति । प्रथयाषनतो धारुचमुषाषातिमुदान्वितः

अलर्क उवाच

दिष्ट्यादेवैरिदं ब्रह्मन् ! पराभिमवसम्भवम् । उपपादितमत्युग्रप्राणसन्देहदं भयम्  
दिष्ट्याकाशिपतेर्भूस्विलसम्पत्पराप्रमः । यदुच्छेदादिद्यायातः सयुष्मत्सङ्गदोमम

दिष्ट्या मन्दबलध्वाहं दिष्ट्या भृत्याश्च मे हताः ।

दिष्ट्या कोपः क्षयं यातो दिष्ट्याऽहं भीतिमागतः ॥ ६२ ॥

दिष्ट्या त्वत्पादयुगलं मम स्मृतिपर्यं गतम् ।

दिष्ट्या त्वदुक्तयः सर्वा मम चेतसि संस्थिताः ॥ ६३ ॥

दिष्ट्याज्ञानंममोत्पन्नं भवतश्चसमागमात् । भवतार्धवकारुण्यंदिष्ट्याब्रह्मन् । कृतंमम  
अनर्थोऽप्यर्थतां याति पुरुषस्य शुभोदये । तथेदमुपकाराय व्यसनं सङ्गमात्तव ॥

सुवाहुरूपकारी मे स च काशिपतिः प्रभो ! ।

तयोःकृतेऽहंसम्प्राप्तो योगीश! भवतोऽन्तिकम् ॥ ६६ ॥

सोऽहं तवप्रसादाग्निनिर्दग्नाज्ञानकिल्बिषः । तथायतिष्येयेनेदृङ्मनभूयां दुःखभाजनम्  
परित्यजिष्ये गार्हस्थ्यमार्त्तिपादपकाननम् ।

त्वत्तोऽनुज्ञां समासाद्य ज्ञानदातुर्महात्मनः ॥ ६८ ॥

दत्तात्रेय उवाच

गच्छ राजेन्द्र! भद्रं ते यथा ते कथितं मया । निर्ममोनिरहङ्कारस्तथा चर चिमुक्तये

जड उवाच

एवमुक्तः प्रणम्यैनमाजगाम त्वरान्वितः । यत्रकाशिपतिर्भ्रातासुवाहुरास्यसोऽग्रजः  
समुत्पत्य महाबाहुं सोऽलर्कःकाशिभूपतिम् । सुवाहोरप्रतोवीरसुवाच प्रहसन्निव

राज्यकामुक ! काशीश! भुज्यतां राज्यमूर्जितम् ।

तथा च रोचते तद्वत् सुवाहोः सम्प्रयच्छ वा ॥ ७२ ॥

काशिराज उवाच

किमलर्क! परित्यक्तं राज्यं ते संयुगंविना । क्षत्तियस्यनधर्माऽयंभवांश्चक्षत्रधर्मचित्  
निर्जितामात्यवर्गस्तुत्यक्त्वामरणजंभयम् । सन्दधीतशरंराजालक्ष्यमुद्दिश्यघैरिणम्



## चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

सुबाहुनाकाशिराजायभ्यसाहाय्यकरणार्थंप्रार्थितायस्वकीयकनिष्ठभ्रातृ-

बांधलम्यनायसमुद्यमवर्णनम्

सुबाहुकथाञ्च

यदर्थंनृपशाद्वूल! त्वामहं शरणं गतः । तन्मयासकलदंशानं याम्यामि त्वं सुती भव  
काशिराज उवाच

किं निमित्तंभवान्प्राप्तोनिष्पन्नोऽर्थश्चकम्तव । सुबाहो!तन्ममान्धश्चपरंकोनृएलंहिमे  
समाक्रान्तमलकैण पितृपतामहं महत् । राज्यं देहीतिनिजित्य त्वयाहमभिन्नोदितः  
ततोमयासमाक्रम्यराज्यमस्यानुजस्यते । एतत्तेयलमानीतंतदृभुर्द्वयस्वकुलोचितम्  
सुबाहुकथाञ्च

काशिराज!निघोधत्वं यदर्थमयमुद्यमः । कृतोमयाभवांध्वं कारितोऽत्यन्तमुद्यमम्  
भ्राताममायंप्राम्येषुशक्तोभोगेषु तत्त्वचित् । विमूर्द्धोद्योद्यन्तोचभ्रानरावप्रजो मम  
तयोर्मम च यन्मात्रा बाल्येस्तन्यंयथामुने । तथावयोद्योविन्प्रस्तःकर्णयोस्वनीपते  
तयोर्मम च विज्ञेयाः पदार्था ये मता नृभिः

प्रकाश्यं मनसो नीतास्ते मात्रा नास्य पार्थिव ! ॥ ८ ॥

यथैकमर्थपातानामेकस्मिन्नवसोदति । दुःखंभवति साधूनां तथाऽस्माकं महीपते!  
गार्हस्प्यमोहमापन्ने सीदत्यस्मिन्नरेश्वर !

सम्बन्धिन्यस्य देहस्य विन्नति भ्रातृकल्पनाम् ॥ १० ॥

ततो मया विनिश्चित्य दुःखाद्द्वैराग्यभाचना ।

भविष्यतीत्यस्य भवानित्युद्योगाय संश्रितः ॥ ११ ॥

तदस्य दुःखाद्द्वैराग्यं सम्बोधादवनीपते! । समुद्रभूतं कृतंकार्यमद्वंतेऽस्तुवजास्यहम्



ततः कालेन महता निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः । प्राप्ययोगिर्द्धिमतुलां परंनिर्वाणमाप्तवान् ।  
पश्यन् जगद्दिदं सर्वं सदेवासुरमानुषम् । पाशैर्गुणमयैर्वन्दं बध्यमानञ्च नित्यशः  
पुत्रादि भ्रातृपुत्रादिस्वपारक्यादिभावितैः । आरूप्यमाणंकरणैर्दुःखात्तन्मित्रदर्शनम्  
अज्ञानपद्मगर्भंस्थमनुद्धारं महामतिः । आत्मानञ्च समुत्तीर्णं गाथामेतामगायत ॥  
अहोकर्ण्यदस्मामिः पूर्वराज्यमनुष्ठितम् । इतिपश्चान्मयाज्ञातंयोगात्तास्तिपरंसुखम्

जड (पुत्र) उवाच

तातेनं त्वं समातिष्ठ मुक्तये योगमुत्तमम् । प्राप्स्यसेयेनतद्ब्रह्मत्रयत्रगत्वा नशोचसि  
ततोऽहमपि यास्यामि किं यज्ञैः किं जपेन मे । हृतहृत्यस्यकरणंब्रह्मभावायकल्पते  
त्वत्तोऽनुज्ञामवाप्याहं निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः ।

प्रयतिष्ये तथा मुक्तौ यथा यास्यामि निवृत्तिम् ॥ ३६ ॥

पक्षिण ऊचुः

एवमुक्त्वा स पितरं प्राप्यानुजां ततश्च सः । ब्रह्मन् ! जगाममेधार्वीपरित्यक्तपरिग्रहः  
सोऽपितस्यपितातद्वत्क्रमेणमुमहामतिः । वानप्रस्थं तमास्थायचतुर्थाश्रममभ्यगात्  
तत्रात्मजं समासाद्य हित्वा बन्धं गुणादिकम् ।

प्राप सिद्धिं परां प्रागस्तत्कालोपात्तसन्मतिः ॥ ३६ ॥

एतत्तेकथितंब्रह्मन् ! यत्पृष्टाभवतावयम् । सुविस्तरं यथावद्यकिमन्यच्छोतुमिच्छसि  
यश्चैतच्छृणुयाद्दिप्रपठेद्वासुसमाहितः । यदश्वमेधावभृथस्नातः प्राप्नोति धै फलम्  
सकलं तदवाप्नोति श्रुत्वैव मुनिसत्तम! ॥ ४२ ॥

एतत्संसारत्रमणपरित्राणमनुत्तमम् । अलर्कात्रेयसम्वाद्मशुभान्मुच्यतेनरः ॥ ४३ ॥  
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे पितापुत्रसम्वादे जडोपाख्याने चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥

## पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

जैमिनिनापक्षिभ्यः परुळमृष्टिप्रपञ्चस्थितिप्रभृतिज्ञानायप्रश्नरुणम्  
जैमिनिरुवाच

पणेतन्मयाख्यातं भवद्विद्विजसत्तमा । प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च द्विविधं चर्मवैदिकम्  
। पितृप्रसादेन भयताज्ञानमोहशम् । येनतिर्यक्त्वमप्येतत् प्राप्यमोहस्तिरस्त्वत्  
धन्या भवन्तः ससिद्धयै प्रागयस्यास्थितयत ।

भवता विषयोऽभूतैर्भ्रमोहैश्चाल्यते मन ॥ ३ ॥

ऋग भगवतातेनमार्कण्डेयेन धीमता । भवन्तो धैसमाख्याताः सर्घसन्देहहृत्तमा-  
ससारेऽस्मिन्मनुष्याणां भ्रमतामतिसद्गुटे ।

भवद्विधै सम सद्गो जायते न तपस्विनाम् ॥ ५ ॥

ए सद्गमामाद्य भवद्विज्ञानदृष्टिभिः । न स्याद्विज्ञानंस्तन्न्यूनं नमोऽन्यप्रवृत्तार्थता  
ते च निवृत्ते घमयताज्ञानरमणि । मतिमस्तमला मन्थैयधानान्यस्यकस्यचिन्  
। त्वनुग्रहवर्ता मयि बुद्धिर्द्विजोत्तमा । भवता तस्मात्प्रयानुमहंतेदमशोपत ॥

मैतन्समुद्भूत जगत्स्थायरजङ्गमम् । अथञ्चप्रलयकाले पुनर्याम्यति सत्तमा  
अ वंशाद्देवर्षिपितृभृतादिसम्भवा । मन्वन्तराणि चकथं यशानुचरितञ्च यन्  
यावत्स्य मृष्यधैय याचन्तः प्रलयास्तथा ।

यथा कल्पविभागश्च या च मन्वन्तरस्थिति ॥ ११ ॥

यथा च श्रितिमन्थान यत्प्रमाणञ्च धै मुष ।

यथास्थितिसमुद्राद्रिनिघ्नगा ज्ञानतानि च ॥ १२ ॥

भूर्गोवादिस्वर्गोवातां गण पातालमथय ।

गतिमन्थाऽवसोमादिप्रहृशंस्योतिषामपि ॥ १३ ॥

। मिच्छाम्यहं सर्वं मनदाभूतसत्त्वम् । उपमहते च पच्छेत्तज्जगत्पस्मिन्मविष्यति

पक्षिण ऊचुः

प्रश्नमारोऽयमतुलो यस्त्वया मुनिसत्तम ! पृष्टस्तंते प्रवक्ष्यामस्तच्छृणुष्वेहर्जमिने  
मार्कण्डेयेन कथितं पुरा क्रीष्टुकयेयथा । द्विजपुत्राय शान्ताय व्रतस्नातायर्धामते  
मार्कण्डेयं महात्मानमुपासीनं द्विजोत्तमैः । क्रीष्टुकिः पस्विप्रच्छयदंतपृष्टवान्प्रभो  
तस्य चाकथयत्प्रीत्या यन्मुनिर्भृगुनन्दनः । तत्तेप्रकथयिष्यामःशृणुत्वंद्विजसत्तम

प्रणिपत्य जगन्नाथं पद्मयोनिं पितामहम् ।

जगद्योनिं स्थितं सृष्टौ स्थितौ विष्णुस्वरूपिणम् ।

प्रलये चान्तकत्तारं सौद्रं गद्रस्वरूपिणम् ॥ १६ ॥

मार्कण्डेय उवाच

उत्पन्नमात्रस्य पुरा ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः । पुराणमेतद्वेदाश्चमुनेभ्योऽनुचिनिःसृताः  
पुराणसंहिताश्चकुर्यदुलाः परमर्षयः । वेदानां प्रविभागश्च श्रुतस्तैस्तु सहस्रशः ॥  
वर्मज्ञानञ्च चैराग्यमैश्वर्यञ्चमहात्मनः । तान्योपदेशेन विना नहि सिद्धञ्चतुष्टयम् ॥२२  
वेदान्समर्षयस्तस्माज्जगृहुस्तस्यमातसाः । पुराणंजगृहुश्चाग्रामुनयन्तस्यमानसाः

भृगोः सकाशाच्चयवनस्तेनोक्तञ्च द्विजन्मनाम् ।

ऋषिभिश्चापि दक्षाय प्रोक्तमेतन्महात्मभिः ॥ २४ ॥

दक्षेण चापि कथितमिदम्रासीत्तदा मम ।

तत्तुभ्यं कथयाम्यद्य कलिकल्मषनाशनम् ॥ २५ ॥

सर्वमेतन्महाभाग श्रूयतां मे समाधिना । यथाश्रुतं मया पूर्वं दक्षस्य गदतो मुने ॥  
प्रणिपत्य जगद्योनिमज्जमव्ययमाश्रयम् । चराचरस्य जगतो धातारं परमं पदम् ॥  
ब्रह्माणमादिपुरुषमुत्सृष्टिस्थितिसंश्रमे । यत्कारणमनोरस्थं यत्र सर्वं प्रतिष्ठितम्  
तस्मै हिरण्यगर्भाय लोकतन्त्राय धीमते । प्रणम्य सम्यग्वक्ष्यामिभूतवर्गमनुत्तमम्  
अहदाद्यंविशेषान्तंसर्वैरूप्यंसलक्षणम् । प्रमाणैःपञ्चभिर्गम्यंस्तोतोभिःपङ्क्तिभिरन्वितम्

पुरुषाधिष्ठितं नित्यमनित्यमिव च स्थितम् ।

तच्छ्रूयतां महाभाग! परमेण समाधिना ॥ ३१ ॥



प्रधानं कारणं यत्तद्व्यकाख्यमहर्षय । यदाहु प्रकृतिस्सूमानित्यासदसदात्मिकाम्  
 ध्रुवमक्षय्यमजरममेयं नान्यसश्रयम् । गन्धरूपरसैर्हीनशब्दस्पर्शविभर्जितम् ॥ ३३ ॥  
 अनाद्यन्तजगद्योर्नित्रिगुणप्रमवाप्ययम् । असाप्रतमविज्ञेयब्रह्माग्रे संमर्त्तन ॥ ३४ ॥  
 प्रलयस्यानु तेनेदं व्याप्तमासीदशेषत । गुणसाम्यात्ततस्तस्मात्क्षेत्रशाधिष्ठितान्मुने  
 गुणभावात्सृज्यमानात्सर्गकाले तत पुन । प्रधानंतत्त्वमुद्भूतमहान्ततत्समावृणोव  
 यथाधीजत्वघानद्द्वय्यक्तेनावृतो महान् । सात्त्विकोराजसश्चैव तामसश्चत्रिधोदित  
 ततस्तस्माद्दृढकारस्त्रिधो वै व्यजायत ।

वैकारिकस्तेजसश्च भूतादिश्च स तामस ॥ ३८ ॥

महता घावृत सोऽपि यथाऽव्यक्तेन वै महान् ।

भूतादिस्तु विबुधाण शब्दस्तन्मात्रकन्तत ॥ ३६ ॥

ससर्जशब्दतन्मात्रादाकाश शब्दलक्षणम् । आकाशशब्दमात्रन्तुभूतादिश्चावृणोत्त  
 स्पर्शतन्मात्रमेवेह जायते नात्र सशय । चलघाञ्जायतेवायुस्तस्य स्पर्शगुणो मत्  
 वायुश्चापि विबुधाणो रूपमात्र ससर्ज ह । ज्योतिरूपघतेवायोस्तद्रूपगुणमुच्यते  
 रूपशमात्रस्तु वैवायूरूपमात्रसमावृणोत् । ज्योतिश्चापि विबुर्धाणस्समात्रससर्जह  
 सम्भवन्ति ततो हापश्चासन् वै ता रसात्मिका ।

रसमात्र तु साह्यापो रूपमात्र समावृणोत् ॥ ४४ ॥

आपश्चापि विबुर्वत्योगन्धमात्रसर्जिरे । सद्भातो जायनेतस्मात्तत्त्वगन्धोगुणोमत  
 तस्मिन्स्त्वस्मिन्स्तु तन्मात्र तेन तन्मात्रता स्मृता ।

अचिशेषयाचकत्वादचिशेषास्ततश्च तं ॥ ४६ ॥

नशान्तानादि घोरास्तेनमृदाश्चाविशेषत । भूततन्मात्रसर्गोऽयमहङ्कारान्तताद्भसात्  
 वैकारिकाद्दृढङ्कारात्सत्त्वोद्रिक्तास्तु सात्त्विकात् ।

वैकारिक स सर्गस्तु युगपत्सम्प्रवृत्तत ॥ ४८ ॥

शुद्धीन्द्रियाणि पञ्चैव पञ्चमेन्द्रियाणि च । तैजसान्दीन्द्रियाण्याशुर्देहावैकारिकादश  
 एकादशं मनस्तत्र द्वा वैकारिका स्मृता ।

### शवर्युवाच

निषेधश्च कृतः पूर्वं सर्व्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् । सत्येनतपते सूर्यःसत्येन ज्वलतेऽनलः  
 सत्येन तिष्ठत्युदधिर्वायुः सत्येन चाति हि ।  
 सत्येन पच्यते सस्यं गायः क्षीरं स्रवन्ति च ॥ ६६ ॥  
 नत्याधारमिदं सर्व्वं जगत्स्थायवरजङ्गमम् ।  
 तस्मात्सर्व्वप्रयत्नेन सत्यं सत्येन पालयेत् ॥ १०० ॥  
 देवकार्यं तु मे मुक्त्वा नाऽन्या बुद्धिः प्रवर्त्तते ।  
 गृहाण राक्षि! पुष्पाणि कुरु पूजां गदाभृतः ॥ १०१ ॥  
 श्रूयते द्विजवाक्यैस्तु न दोषो विद्यते क्वचित् ।  
 कुशाः शाकं पयो मत्स्या गन्धाः पुष्पाक्षता दधि ॥  
 मांसं शय्याऽऽसनं धानाः प्रत्याख्येया न वारि च ॥ १०२ ॥

### राज्युवाच

रामोपहृतं पुष्पमारण्यं पुष्पमेव च । क्रीतं प्रतिग्रहे लब्धं पुष्पमेधं चतुर्विधम् ॥  
 तमं पुष्पमारण्यं गृहीतं स्वयमेव च । मध्यमं फलमारामे त्वधमं क्रीतमेव च ॥  
 प्रतिग्रहेण यद्दुग्धं निष्फलं तद्विदुर्बुधाः ॥ १०४ ॥

### पुरोहित उवाच

हाणराक्षि! पुष्पाणिकुरुपूजां गदाभृतः । उपकारःप्रकर्त्तव्योव्यपदेशेन कर्हिचित्  
 इश्वर उवाच

श्रीफलानि सपद्मानि दत्तानि शवरेण तु ।

गृहीत्वा तानि राक्षी सा पूजाञ्चक्रे सुशोभनाम् ॥ १०६ ॥

।पाजागरणञ्चक्रेश्रुत्वापौराणिकीकथाम् । शवरस्तुततोभार्यामिदं वचनमब्रवीत्  
 दीपार्थं गृह्यतां स्नेहो यथालाभेन सुन्दरि !।

कृत्वां दीपं ततस्तौ तु कृत्वा पूजां हरः शुभाम् ॥ १०८ ॥

अकतुर्जागरंरात्रौध्यायन्तो धरणीधरम् । ततः प्रभातसमये दृष्ट्वास्नानोत्सुकं जनम्

स्नाति वै शूत्रभेदे तु देवनद्यातयाऽपरे । सरस्यन्त्या नरा त्रेचिन्मार्कण्डस्यहृदेऽप  
 चत्रतीर्थं गताश्चक्रुः स्नानं केचिद्विधानतः ।

शुचयस्ते जना सर्व्वे स्नात्वा देवशिलोपरि ॥ १११ ॥

श्राद्धं चक्रुः प्रयत्नेनश्रद्धयापूतचेतसा । तान्द्रष्ट्वा शररो वित्तुं पिण्डाश्चक्रुःप्रयत्न  
 भानुमत्या तथा भक्तुं पिण्डनिक्षणं कृतम् ।

अनिन्द्या भोजिता विप्रा दम्भवार्युप्यर्जिता ॥ ११२ ॥

हविष्यान्नैस्तथा दध्ना शर्करामधुसर्पिणा । पायसेनतु गव्येन कृतान्नेनविशेषत  
 भोजयित्वा तथा राज्ञी ददौ दानं यथाविधि ।

पादुकोपानहौ छत्रं शय्या गोवृषमेव च ॥ ११५ ॥

विविधानि च दानानिहेमरत्नं प्रानानि च । चत्रतीर्थंमहाराजकपिलायप्रयच्छति  
 पृथ्वी नेत भवेद्भक्ता सशौचनकानता ॥ ११६ ॥

उत्तानपाद उवाच

यानि यानि च दानानि शस्त्रानि जगतीपने ।

नानि सदाणि देवेश! कथयस्व प्रसादतः ॥ ११७ ॥

ईश्वर उवाच

तिलप्रदं प्रजामिष्टा दीपदध्नुस्तमम् । भूमिदं स्वर्गमाप्नोति दीधमायुर्हिरण्यद  
 गृहदो रोगरहितो रूप्यदो रूपवान्भवेत् । वासोदध्नुःसालोक्यमर्कसायुज्यमश्वद  
 वृषदस्तु श्रियपुण्यं गोदाताश्च त्रिविण्णम् । यानशय्याप्रदो भार्यामैश्वर्यमभयप्रद  
 धान्यदं शाश्वतसौम्य ब्रह्मदो ब्रह्मशाश्वतम् ।

पायश्रुथिथीवासस्तिलकाञ्जनसर्पिणाम् ॥ १२१ ॥

सर्व्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते । येनयेन हि भावेन यद्यद्दानं प्रयच्छति ॥  
 तेननेन सभावेन प्राप्नोतिप्रतिपूजितम् । दृष्ट्वा दानानिसर्वाणिराज्ञीदत्तानियानिच  
 उवाच शररो भार्या यत्तच्छृणु नरेश्वर । पुराणं पठितं भद्रे ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥  
 धृतञ्च तन्मया सर्वं दानधर्मफलं शुभम् । पूर्वजन्मार्जितं पापं स्नानदानप्रतादिभि

शरीरं दुस्त्यजं मुक्त्वा लभते गतिमुत्तमाम् ।  
 संस्तरसागराद्गीतः सत्यं भद्रे! यदामि ते ॥ १२६ ॥  
 अनेकानि च पापानि कृतानि बहुशो मया ।  
 घातिता जन्तवो भद्रे निर्दग्धाः पर्वताः सदा ॥ १२७ ॥  
 तेन पापेन दग्धोऽहं दारिद्र्यं न निवर्त्तते ।  
 तीर्थावगाहनं पूर्वं पापेन न कृतं मया ॥ १२८ ॥  
 तेनाऽहं दुःखितो भद्रे !दारिद्र्यमनिवर्त्तकम् ।  
 मानुर्गृहं प्रयाहि त्वं त्यज स्नेहं ममोपरि ॥  
 नगच्छद्गं समाख्या मोकतुमिच्छाम्यहं तनुम् ॥ १२९ ॥

श्रावयुं वाच

मात्रा पित्रा न मे कार्यं नाऽपि स्वजनवान्धर्वैः ।  
 या गतिस्तव जीवेश! सा ममापि भविष्यति ॥ १३० ॥  
 न खीणामीदृशो धर्मो विना भर्त्रा स्वजीवितम् ।  
 श्रूयन्ते बहवो द्रोया धर्मशास्त्रेष्वनेकधा ॥ १३१ ॥

पारणं कुरुभोजेन्द्रव्रतयेनननश्यति । यत्तेऽभिवाञ्छितं फिञ्चिद्विष्णवेकर्त्तुं महसि  
 भार्याया वचनं श्रुत्वा मुमुदे शबरस्ततः ।  
 गृहीत्वा श्रीफलं शोभ्रं ह्योमं कृत्वा यथाविधि ॥ १३३ ॥  
 सर्वदेवानामस्मृत्य भुक्तोऽपि च तथा सह ।  
 चैत्र्यां तु चिपुवं ज्ञात्वा तस्यौ तत्र दिनत्रयम् ॥ १३४ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे  
 रेवाखण्डे सगङ्गाचरणव्याधवाक्योपदेशकथनपूर्वकं दानादिफलवर्णनं नाम

पट्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

## सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्याय

### व्याधस्वर्गगमनवर्णनम्

इधर उवाच

भानुमतीद्विजान्भोज्य सुभुजेभुक्तशेषत । भुक्त्वा सुसुखमास्थायतदनपरिणाम्य  
त्रयोदश्या ततो गत्वा मदनारण्यतिथौ तदा ।

मावण्डस्य हृदे स्नात्वाऽऽनच्य देव गुहाशयम् ॥ २ ॥

वृत्तोपचासनियमा स्नापयित्वा महेश्वरम् । पञ्चासृतसुगन्धेन धूपदीपनिघ्नेन  
आचयद्विविधैः पुष्पैर्नैवेद्यैश्च सुशोभितैः ।

क्षपानागरणं कृत्वा श्रुत्वा पौराणिकीं कथाम् ॥ ४ ॥

नृत्यगीतेस्तथास्तोत्रैर्दध्यौदेवमहेश्वरम् । अत्रयिस्तारितसर्वदेवस्याऽप्रेयथाविधि  
घातुवण्यसुता सर्वे भोजिता सपरिच्छदा ।

घातुदश्या दिनं यावत्सम्पूज्य वृषभध्वजम् ॥ ६ ॥

शङ्खवादित्रभेरीभिः पटहध्वनिनाम्निम् । क्षयाजागरणं कृत्वा प्रभूतजनसङ्घम्  
नृत्यगीतेस्तथा स्तोत्रैः प्रेरिता सा निशा तदा ।

प्रभाते भोजिता विप्रा पादमेधुसर्पिषा ॥ ८ ॥

दत्त्वा दानानि विप्रभ्यः शक्त्या विद्रानुसारत ।

अचयित्वा महापुष्पैः सुगन्धैर्मदनेन च ॥ ९ ॥

विधिरैः सङ्मचस्त्रैश्च देव सम्पूज्यवेष्टित । स्यादामलम्भमानैश्चषट्पदीपसमुच्चयैः  
षड्भानैर्विविधैर्मर्ष्यैः सुवृत्तीर्मादकादिभिः । यतस्त्रेऽप्राहणा सर्वैर्वेदाध्ययनसुतपर

तपय कान्तयाञ्चकृ पञ्चक नाम नामत ।

आदित्यस्य दिनं त्वच तिथि पञ्चदशी तथा ॥ १२ ॥

त्याध्रमेव न नक्षत्र सक्रान्तिर्विपुवतथा ।

व्यतीपातस्तथा योगः करणं विष्टिरेव च ॥ १३ ॥

पञ्चकंताम पर्वतदयनादिघनगुणम् । अत्र दत्तं हृतं जप्तं सर्वं भवति घ्राऽक्षयम् ॥

ते द्विजा भानुमत्याऽथ शूलभेदं गताः सह ।

दृशुः शयरं कुण्डे भार्यया सह संस्थितम् ॥ १५ ॥

पेशान्ती स दिशंगत्वा पर्वते भृगुमूर्द्धनि । पतितुं च समारूढोभार्ययासहपार्थिव

भानुमन्युवाच

एतिष्ठतिष्ठ महासत्त्व शृणुष्ववघ्ननंमम । किमर्थं त्यजसि प्राणानद्यापिअयुवाभवान्

कः सन्तापः क उद्वेगः किं दुःखं व्याधिरेव च ।

शिशुः संदृश्यसेऽद्याऽपि कारणं कथ्यतामिदम् ॥ १८ ॥

शयर उवाच

कारणं नास्ति मे किञ्चिन्न दुःखं किञ्चिदेव तु ।

संसारभयभीतोऽहं नान्याः बुद्धिः प्रवर्तते ॥ १६ ॥

दुःखेनलभ्यतेयस्मान्मानुष्यजन्मभाग्यतः । मानुष्यजन्मचासाद्ययोनधर्मसमाचरेत्

स गच्छेन्निरत्यं योगमात्मद्रोपेण सुन्दरि !

तस्मात्पतितुमिच्छामि तीर्थेऽस्मिन्पापनाशने ॥ २१ ॥

राश्युवाच

अद्यापि वसते कालो धर्मस्योपार्जनेतव । कृतापकृतकर्माणि व्रतदानैर्घिशुद्ध्यति ॥

अहं दास्यामि धान्यं वा वासांसि द्रविणं बहु ।

नित्यमाचर धर्मं त्वं ध्यायन्नित्यं महेश्वरम् ॥ २३ ॥

शयर उवाच

नैवाहं कामये वित्तं न धान्यं वस्त्रमेव च ।

यो यस्यैवान्नमश्नाति स तस्याऽश्नाति किल्बिषम् ॥ २४ ॥

राश्युवाच

कन्दमूलफलाहारो भ्रमित्वा भैक्ष्यमुत्तमम् । अवगाह्यसुतीर्थानि सर्वपापैः प्रमच्यं

ततो विमुक्तपापस्तु यत्किञ्चित्कुस्ते शुचि ।

कर्मणा तेन पूतस्त्व सद्गतिं प्राप्स्यसि ध्रुवम् ॥ २१ ॥

शबर उवाच

अन्नमद्यमयात्यक्तप्राणेभ्योऽपिमहत्तरम् । सत्यं न लोपयेदुदेविनिश्चिताऽन्नमतिर्मम  
प्रसादं क्रियतां देवि क्षमस्वाऽथ जनैः सह । अर्धोत्तरीयवस्त्रेणसयम्यात्मानमुद्यत

भार्यया सहितो व्याधो हरिं ध्यात्वा पपात ह ।

नगार्द्धात्पतितो यावद्गतजीवो नराधिप ॥ २६ ॥

चूर्णोभूर्तो हि तौ दृष्ट्वा कुण्डस्योपरि भूमिप ।

त्रिमुहूर्ते गते काले शररो भार्यया सह ॥ ३० ॥

दिव्यं विमानमारूढो गतध्यानोत्तमां गतिम् ॥ ३१ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणप्रकाशीतिसाहस्र्या सहिताया एञ्चमेऽध्यायस्रष्टे  
रेवास्रष्टे व्याघ्रस्वर्गगमनवर्णननाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

शूलभेदतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

उत्तानपाद उवाच

अधातां देवदेवेश भानुमन्यकरोष किम् । एष मे सशयोदेव ऋषयस्त्व प्रसादतः ॥

शुभर उवाच

चिन्तयित्वा मुहुर्त्तं सा गता कुण्डस्य सश्रिणी ।

दृष्ट्वा कुण्डस्य माहात्म्यं राक्षा हर्येण पूरिता ॥ २ ॥

विप्रान्वहन्समाह्वयं पूनवामास तःश्रणात् ।

दत्त्वा तु विधिचद्दानं ब्राह्मणेभ्यो नृपात्मज ॥ ३ ॥

निश्चयंपरमं कृत्वा स्थिताशान्तेन चेतसा । ततः सम्पूज्य विधिवत्पितृन्देवान्नराधिप  
क्षपयित्वा पक्षमेकं मधुमासस्य सा स्थिता । अमावास्यां ततो राज्ञी गता पर्वतसन्निधौ  
नगशृङ्गं समारुह्य कृत्वा मुकुलितीं करौ । विज्ञाप्य ब्राह्मणान्सर्वा निदं घघनमब्रवीत्

मम माता पिता भ्राता ये चान्ये सखियान्धवाः ।

क्षमापयित्वा सर्वास्तान्वचनं मम कथ्यताम् ॥ ७ ॥

त्वत्पुत्री शूलभेदे तु तपः कृत्वा स्वशक्तिः ।

विसृज्य चैव साऽऽत्मानं तस्मिंस्तीर्थे दिवं ययौ ॥ ८ ॥

ब्राह्मणा ऊचुः

सन्देशं कथयिष्यामस्त्वयोक्तं शोभनव्रते । मातापितृभ्यां सुश्रोणिमातेभ्युद्वेगसंशयः  
ततो विसृज्य ताल्लोकान्स्थिताः पर्वतमूर्द्धनि । अर्धोत्तरीयवस्त्रेण गाढं च दृष्ट्वा पुनः पुनः

ततश्चिक्षेप साऽऽत्मानमेकचित्ता नराधिप !

नगाद्धं पतिता यावत्तावद्दृष्टाः सुराङ्गनाः ॥ ११ ॥

भोभो वत्से महाभागे! भानुमत्यतितापसि ।

दिव्यं विमानमारुह्य कौलासम्प्रतिगम्यताम् ॥ १२ ॥

ततः सा पश्यतां तेषां जनानां त्रिदिवं गता ॥ १३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति ते कथितः सर्वः शूलभेदस्य विस्तरः । यः श्रुतः शङ्करात्पूर्वमृषिद्वेषसमागमे ॥

यद्दं पठते भक्त्या तीर्थे देवकुलेऽपि वा । स मुच्यते महापापादपि जन्मशतार्जितात्  
ब्रह्महास्यसुरापीषस्तेयी च गुरुतल्पगः । गोघाती स्त्रीविघाती च देवब्रह्मस्वहारकः

स्वामिद्रोही मित्रघाती तथा विश्वासघातकः ।

परन्यासापहारी च परनिक्षेपलोपकः ॥ १७ ॥

रसभेदी तुलामेदी तथा वाद्भुङ्क्विकस्तु यः ।

यः कन्याविघ्नकर्ता च तथा विक्रयकारकः ॥ १८ ॥



परभार्या भ्रातृभार्या शौ स्तुराकन्वया तथा । अमिगामीपच्छेर्गतथाधर्मप्रदूषका  
मुच्यन्ते सर्वे ष्वैते शूत्रभेदप्रभाषत ॥ २० ॥

य इदधावयेच्छास्त्रे विप्राणाभुषतानृप । मुदं प्रयान्ति संहृष्टा पितरस्तस्यमर्षश  
यक्षेदं शृणुयाद्भवत्या पश्यमानं नरोपशौ ।

स मुत सर्वपापेभ्य सर्वकल्याणभागमवेत् ॥ २२ ॥

इद यशान्यमायुष्यमिदं पावनमुत्तमम् । पठनांशृष्वता नृणामायु कीर्त्तिविरद्धः

इति कथितमिदं ते शूत्रभेदम् पुण्य महिम न हि मनुष्यै धूयते यत्सपापे ।

मदनरिपुतद्विन्या याम्पकूलस्थितस्य प्ररुद्रुरितकन्दोच्छेदत्रुडात्कल्पम् ॥११

इति धीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्या सहिताया पञ्चमेऽध्वन्तीखण

रेखाखण्डे शूत्रभेदनीर्धमाहात्म्यवर्णननामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्याय ॥ ५८ ॥

शूत्रभेदमाहात्म्यं समाप्तम्

एकोनषष्टितमोऽध्यायः

पुष्करिण्यामादित्यतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

धीमार्कण्डेय उवाच

तत पुष्करिणीं गच्छेत्सर्वपापप्रणाशिनीम् ।

श्रुते यस्या प्रभावे तु सर्वपापे प्रमुच्यते ॥ १ ॥

रेखाया उत्तरे कूले तीर्थं परमशोभनम् । यत्राऽस्ते सर्वदा देवो घेदमूर्त्तिर्दिवाच

कुरक्षेत्रं यथापुण्य सार्धकामिकमुत्तमम् । इद तीर्थं तथा पुण्यं सर्वकामफलप्रद

कुरक्षेत्रे यथावृद्धिर्दानस्य जगतीपते । पुष्करिण्यातथा नाऽत्र घर्द्धते नाऽप्रसङ्ग

यद्यमेक तु यो दद्यात्सौघर्णं मस्तके नृप ।

पुष्करिण्यां तथा स्थानं यथा स्थानं नरे स्मृतम् ॥ ५ ॥

सूर्यग्रहे तु यः स्नात्वा दद्याद्दानं यथाविधि ।

हस्त्यश्वरथरत्नादि गृहं गाश्च युगन्धरान् ॥ ६ ॥

सुवर्णरजतं वाऽपि ब्राह्मणेभ्योददाति यः । त्रयोदशदिनं यावत्त्रयोदशगुणम्भवेत्  
तिलमिश्रेण तोयेन तर्प्ययेत्पितृदेवताः । द्वादशाब्दे भवेत्प्रीतिस्तत्र तीर्थं महीपते!

यस्तत्र कुरुते श्राद्धं पायसैर्मधुसर्पिणा । श्राद्धदो लभते स्वर्गं पितृणां दत्तमक्षयम्  
अक्षतैर्वदरैर्विल्वैरिडुदैर्वा तिलैः सह । अक्षयं फलमाप्नोति तस्मिन्स्तीर्थे न संशयः

तत्र स्नात्वा तु यो देवं पूजयेच्च दिवाकरम् ।

आदित्यहृदयं जप्त्वा पुनरादित्यमर्चयेत् ॥

स गच्छेत्परमं लोकं त्रिदशैरपि वन्दितम् ॥ ११ ॥

ऋचमेकां जपेद्यस्तु यजुर्वासामएव च । स समग्रस्य वेदस्य फलमाप्नोति वै नृप  
यस्त्र्यक्षरं जपेन्मंत्रं ध्याधमानो दिवाकरम् ।

आदित्यहृदयं जप्त्वा मुच्यते सर्वपातकैः ॥ १३ ॥

यस्तत्र विधिवत्प्राणांस्त्यजते नृपसत्तम ।

स गच्छेत्परमं स्थानं यत्र देवो दिवाकरः ॥ १४ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे

“रेवाखण्डे पुष्करिण्यामादित्यतीर्थमाहात्म्यवर्णनं

नामैकोनविंशतमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

## षष्ठितमोऽध्यायः

आदित्येश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

धर्माकर्ण्डेय उवाच

भूयोऽप्यहं प्रवक्ष्यामि आदित्येश्वरमुत्तमम् । सवदुःखहरपार्थसर्वविघ्नविनाशनम्  
आयुर्धीवद्भननित्यपुत्रदस्वर्गादशिषम् । यस्यतीर्थस्यैषाऽन्यानितीर्थानिदुःखनन्दन  
नालभन्त धिय नाके मर्त्ये पातालगोचरे ।

कुरुक्षेत्रे गया गङ्गा नैमिषे पुष्करे तथा ॥ ३ ॥

घाराणसी च केदार प्रयागं रद्रनन्दनम् । महाकालं सहस्राक्षं शुक्रतीर्थं नृपोत्तम  
रवितीर्थस्य सर्वाणि कला नार्हन्ति षोडशीम् ।

रवितीर्थे हि यद्वृत्त तच्छृणुष्व नृपोत्तम ॥ ५ ॥

स्नेहात्तेवथयिष्यामिवाद्भैनातिपीडित । शृणुष्व तुभ्यस्य सर्वतगोनिष्ठामहोत्सव  
श्रुत मे रद्रनानिधये नन्दिस्कन्दगणे सह ।

पायत्या वृष्ट शम्भुश्च रवितीर्थस्य यत्फलम् ॥ ७ ॥

शम्भुना च यदाख्यात गिरिजाया ससम्भ्रमम् ।

तत्सर्वमेकचित्तेन रुद्रोद्गीत श्रुत मया ॥ ८ ॥

तत्तेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि शृणुयत्नेनपाण्डव । दुर्मिक्षोपहतायिभ्रान्तमदानुसमाधिता  
उद्दालको घशिष्टश्च माण्डव्यो गीतमस्तथा ।

याज्ञवल्क्योऽथ गर्गश्च शाण्डिल्यो गाल्वस्तथा ॥ १० ॥

नाचिकेतो विभाण्डश्च बालखिल्यादयस्तथा ।

शातातपश्च शङ्खश्च जैमिनिर्गोभिरस्तथा ॥ ११ ॥

तैर्वाक्यैश्चैतानि श्रुत्वा सर्वे महामयागता । तीर्थयात्रावृत्तातेऽस्तु नर्मदाया समन्तत

जम्बीरैरजुं नैःकुञ्जैःशमीकेशरकिंशुकैः । तस्मिंस्तीर्थमहापुण्ये सुगन्धिकुन्तुमाकुले  
पुत्रागनारिकेलैश्च खदिरैः कल्पपादपैः । अनेकधापदाकीर्णं मृगमार्जारसङ्कुलम् ॥  
ऋक्षहस्तिसमाकीर्णं चित्रकैश्चोपशोभितम् । प्रविष्टाऋषयः सर्वे घनेपुष्पसमाकुले

घनान्ते च स्त्रियो वृष्ट्रा रक्ता रक्ताम्बरान्विताः ।

रक्तमाल्यानुशोभाढ्या रक्तचन्दनचर्चिताः ॥ १७ ॥

रक्ताभरणसंयुक्ताः पाशहस्ताभयावहाः ।

तासां समीपगा वृष्ट्राः कृष्णजीभूतसन्निभाः ॥ १८ ॥

महाकाया भीमवक्त्राः पाशहस्ता भयावहाः ।

अनावृष्ट्युपमा वृष्ट्रा आतुराः पिङ्गलोचनाः ॥ १९ ॥

दीर्घजिह्वा करालास्या तीक्ष्णदंष्ट्रा दुरासदा ।

वृद्धानारी कुरुश्रेष्ठ वृष्ट्राऽन्या ऋषिपुङ्गवैः ॥ २० ॥

ततः समीपगा वृद्धा तस्य वृन्दस्य भारत !

स्वाध्यायनिरता विप्रा वृष्ट्रास्तेः पापकर्मभिः ॥ २१ ॥

ऊचुस्ते तु समूहेन ब्राह्मणांस्तपसि स्थितान् ।

अस्माकं स्वामिनः सर्वे तिष्ठन्ते तीर्थमध्यतः ॥

ते प्रस्थाप्या महाभागाः सर्वथैव त्वरान्विताः ॥ २२ ॥

तच्छ्रुत्वा वचनं तेषांसर्वेष्वेव त्वरान्विताः । जग्मुस्तेनर्मदाकक्षं वृष्ट्रारेवां द्विजोत्तमाः

ततः केचित्स्तुवन्त्यन्ये जय देवि! नमोऽस्तु ते ॥ २४ ॥

नमोऽस्तु ते सिद्धगणैर्निषेचिते! नमोऽस्तु ते सर्वपवित्रमङ्गले !

नमोऽस्तु ते विप्रसहस्रसेचिते! नमोऽस्तु रुद्राङ्गसमुद्भवे! घरे ! ॥ २५ ॥

नमोऽस्तु ते सर्वपवित्रपावने! नमोऽस्तु ते देवि! घरप्रदे! शिवे !

नमामि ते शीतजले! सुखप्रदे! सखिदरे! पापहरे! विचित्रिते ! ॥ २६ ॥

अनेकभूतौघसुसेचिताङ्गे ! गन्धर्वयक्षोरगापचिताङ्गे !

महागजौघैर्महिषैर्वराहैरापीयसे ऋषिसहोर्मिमाले ! ॥ २७ ॥

नमामि ते सर्ववरे' सुखप्रदे' विमोघयास्मानघपाशवद्भान् ॥ २८ ॥  
 भ्रमन्ति तावन्नरक्षेपु मर्त्या यावत्तवाम्भो नहि मथ्रयन्ति ।  
 रघुप करंध्रन्द्रमसो रवेक्षेत्रेवि दद्यात्परम परम पद तु ॥ १६ ॥  
 अनेकमस्तारभयार्दिताना पापैरनेकैरभिवेष्टितानाम् ।  
 गतिस्त्वमम्भोजसमानवक्रे' इन्द्रैरनेकैरभिसम्भृतानाम् ॥ ३० ॥  
 नद्यश्च पूता विमग्ना भरन्ति त्वा देवि' मग्नाप्य न सशयोऽत्र ।  
 तु सानुराणामभय ददासि शिष्टैरनेकैरभिपूजिताऽसि ॥ ३१ ॥  
 विष्णुत्रदहाश्च निमग्नदेहा भ्रमन्ति तावन्नरक्षेपु मया ।  
 महायत्नस्तनरद्गुमद्गु जठ न यावत्तव ससृशति ॥ ३२ ॥  
 म्नेच्छा पुलिन्दास्त्वथ यानुधाना पियन्ति येऽम्भस्तवदेवि' पुण्यम् ।  
 तेऽपि प्रमुच्यन्ति भयाच्च घोरात्किमत्र विप्रा भवपाशभीता ॥ ३३ ॥  
 सरामि नद्य क्षयमभ्युपेता घोरे युगेऽस्मिन्क्लिन्नावसृष्टे ।  
 त्व भ्राजस देवि जगोवपूणा दिवीव नक्षत्रपथे च गङ्गा ॥ ३४ ॥  
 तव प्रासादाद्वरदे विशिष्टे काच यथेम परिवाचयित्वा ।  
 याम्याम मोक्षं तव सुप्रसादाद्वयं यथा त्वं कुरु न प्रमादम् ॥ ३५ ॥  
 त्वामाश्रिता ये शरण गताश्च गतिस्त्वमग्नेव पितेव मुत्रान् ।  
 त्वत्पालिता यावदिम सुवोर काल त्वनावृष्टित क्षिपाम ॥ ३६ ॥

षष्ठस्तुता तदादेवी नमदास्मरिता वरा । प्रयक्षासापरामर्धिप्राह्मणानायुधिष्टि

धामाकण्डेय उवाच

पठन्ति ये स्तोत्रमिदं नरन्द्र' शृण्वन्ति भक्त्या परया प्रशान्ता ।  
 ते यान्ति रद्रं वृषसयुतत यानेन दिव्याम्बरभूपिताङ्गा ॥ ३७ ॥  
 ये स्तोत्रमेतत्सतत जपन्ति स्नात्वा च तोयेन तु नमदाया ।  
 तन्मयोऽन्तकाले सरिदुत्तमेयं गतिं विशुद्धामधिराद्दाति ॥ ३८ ॥  
 प्रातः समुधाय तथा शयानो य कीर्तयेतानुदिन स्तवेन्द्रम् ।

देहक्षयं स्वे सलिले ददाति समाश्रयं तस्य महानुभाव ॥ ४० ॥

पापैर्विमुक्ता द्विवि मोदमानाः सम्भोगिनश्चैव तु नान्यथा च ॥ ४१ ॥

प्रसन्नानर्मदादेवीस्त्रोत्रेणाऽनेनभारत । जलेनाप्यायितान्विप्रान्दक्षिणापथवाहिनी  
अमृतत्वं तु घो दक्षि योगिभिर्यज्ञगम्यते । दुह्यंभं यत्सुरैःसर्वैर्मत्प्रसादाह्लमिष्यथ  
इति ते ब्राह्मणाराजह्यं वधा वरमनुत्तमम् । गमिष्यन्तःप्रीतचित्तादृशुश्चित्रमद्भुतम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

दृष्टास्तेः पुरुषाःपार्थनर्मदातटसंस्थिताः । ज्ञानदेवार्चनासक्ताःपञ्चण्वमहाबलाः  
ते दृष्टा ब्राह्मणैः सर्वैर्वेदवेदाङ्गपारगैः । सम्पृष्टास्तेर्महाराज यथा तदवधारय ॥

विप्रा ऊचुः

वनान्ते खीयुगं दृष्ट्वा महारौद्रं भयावहम् । वृद्धाश्चपुरुषास्तत्रपाशहस्ताभयावहाः  
दुर्धर्षा दुर्निरीक्ष्याश्च इतश्चेतश्च,चञ्जलाः । व्याहरन्तःशुभांवाचं न तत्रगतिरस्तिधै

अपरस्परयोः सर्वे निरीक्षन्तः पुनः पुनः ।

तैस्तु तद्वचनं प्रोक्तं तत्सर्वं कथ्यतामिति ॥ ४६ ॥

अस्माकं,पुरुषाः पञ्च तिष्ठन्ति तत्र सत्तमाः ।

ते प्रस्थाप्या महाभागाः सर्वथैव त्वरान्विताः ॥ ५० ॥

अथ ते पुरुषाः पञ्च श्रुत्वा वाक्यमिदं शुभम् ।

परस्परं निरीक्षन्तो वदन्ति च पुनः पुनः ॥ ५१ ॥

कृते कस्य कुतो याताः किमुक्तं तैर्भयावहैः ॥ ५२ ॥

पुरुषा ऊचुः

तीर्थावगाहनंसर्वैः पूर्वदक्षिणपश्चिमैः । उत्तरैश्चकृतंभवत्या न पापं तैर्व्यपोहितम्

निष्पापाश्चाथ सञ्जातास्तीर्थस्याऽस्य प्रभावतः ।

शृण्वन्तु ऋषयः सर्वे बह्विकालोपमा द्विजाः ॥ ५४ ॥

पातकानि च घोराणि यान्यचिन्त्यानि देहिनाम् ।

पापिष्टेन तु कैकेल गुरुदारा निषेधिता ॥ ५५ ॥

हनघाऽन्येनमित्रस्यंमुचर्षं घनन्तया । प्रह्लाहत्यामदारौद्रावृताघाऽन्येनपातकम्

सुरापानं तु धान्यस्य सञ्जातं घाप्यकामेन ।

गोवध्या घाप्यकामेन वृता धीकेन पापिना ॥ ५७ ॥

अकामतोऽपि सर्वेषां पातकानि नराधिप ।

ब्राह्मणानां तु ने ध्रुत्वा घाप्यं तद्विस्मयान्विता ॥ ५८ ॥

सद्यप्यतदाजातापापिष्ठागतर्लमरा । तीघस्याऽस्यप्रभावेणनर्मदाया प्रमाद्यत

। षड्विपातकानां तु प्रवेशाऽप्रजायते । परं सञ्चित्यनेसर्वेषापिष्ठाधपरस्परम्

चित्रमानु स्मृतस्तेस्तु चिचिन्त्य हृदये हरिम् ।

स्नात्वा रीधाजने पुण्ये तर्पिता पितृदेवता ॥ ६१ ॥

नन्वा तु माम्बर देव हृदि ध्यात्वा जनादनम् ।

प्रदक्षिण तु त भक्त्या ज्वलन्त जातवेदसम् ॥ ६२ ॥

पतिता पाण्डवध्रेष्ठं पापोद्विद्रा महीपते ।

सार्विकीं वासनां वृत्वा त्यक्त्वा रजस्तमस्तया ॥ ६३ ॥

इत ते पावके सर्वंत्वायाउत्तरे तरे । विमानस्थास्तदादृष्टाब्राह्मणीस्त्रीयुधिष्ठिरं

भाक्षयमनुलं दृष्टमृषिभिनमदातरे । तदाप्रभृति ते सर्वे रागद्वेषविवर्जिता ॥ ५॥

रविनीधं द्विजाहृष्टा सेवन्ते मोक्षकाडक्षया ।

तीघस्याऽस्य च यत्पुण्यं तच्छृणुष्व नराधिप ॥ ६६ ॥

पीडितो वृद्धभावेन भक्त्या प्रीतो नरोवर ।

उद्देश कथयिष्यामि द्विकोशाभ्यन्तरे स्थित ॥ ६७ ॥

हरक्षत्र यथा पुण्य रविनीध धन मरा । ईश्वरेण पुरारुगत यण्मुखस्य नराधिप

ध्रुव रद्राघ ते सर्वैरह तत्र समीपग ।

ईश्वर उवाच

रातण्डप्रहणे प्राप्ते ये प्रजन्ति यदानन । रविनीधं कुक्षीये तु यमेतत्कर्म लभेत् ॥

स्नाने दाने तथा जप्ये होमे चैव विशेषत ।

कुरुक्षेत्रे समं पुण्यं नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ ७० ॥

ग्रामे वा यदि घाऽरण्ये पुण्या सर्वत्रनमंदा । रवितीर्थंविशेषेण रेवा पुण्यफलप्रदा  
पृच्छ्यां सूर्यदिने भक्त्या व्यतीपाते च वैधृतौ ।

सङ्क्रान्तौ ग्रहणेऽमायां ये व्रजन्ति जितेन्द्रियाः ॥ ७१ ॥

कामक्रोधैर्विमुक्ताश्चरागद्वेषैस्तथैवच । उपोष्यपरया भक्त्या देवस्याऽग्नेनराधिप  
रात्रौजागरणं कृत्वा दीपंदेवस्त्रयोधयेत् । कथां चै वैष्णवींपार्थ वेदाभ्यसनमेवच  
ऋग्वेदं वा यजुर्वेदं सामवेदमथर्वणम् । ऋचमेकां जपेद्यस्तु स वेदफलमाप्नुयात्  
गायत्र्या च घतुर्वेदफलमाप्नोति मानवः । प्रभाते पूजयेद्विप्रानन्नदानहिरण्यतः ॥  
भूमिदानेन वस्त्रेण अन्नदानेन शक्तितः । छत्रोपानहशय्यादि गृहदानेनपाण्डवः ॥  
ग्रामधूर्वहदानेन गजकन्याहयेन च । विद्याशकटदानेन सर्वेषामभयं भवेत् ॥ ७८ ॥

शत्रुश्च मित्रतां याति चिपं चैवाऽमृतं भवेत् ।

ग्रहा भवन्ति सुप्रीताः प्रीतस्तस्य दिवाकरः ॥ ७६ ॥

एतत्ते सर्वमाख्यातंरवितीर्थफलंनृप । ये शृण्वन्ति नराभक्त्या रवितीर्थफलंशुभम्  
तेऽपि पापविनिर्मुक्ता रविलोके वसन्ति हि । गोदानेनचयत्पुण्यं यत्पुण्यंभृगुदर्शने  
केदार उदकं पीत्वा तत्पुण्यं जायते नृणाम् ।

अब्दमभ्वत्थसेवायां तिलपात्रप्रदो भवेत् ॥ ८२ ॥

तत्फलं समवाप्नोति आदित्येऽभरकीर्त्तनात् ।

श्रुते यस्य प्रभावे न जायते यन्नृपात्मजः ॥ ८३ ॥

तत्सर्वकथयिष्यामिभक्त्यातव महीपते । पापानिघप्रलीयन्तेभिन्नपात्रेयथाजलम्  
तीर्थस्याऽभिमुखोनित्यंजायतेनाऽत्रसंशयः । गुह्याद्गुह्यतरंतीर्थकथितंतवपाण्डव  
पापिष्ठानां कृतघ्नानां स्वामिमित्रावघातिनाम् ।

तीर्थाऽख्यानं शुभं तेषां गोपितव्यं सदा बुधैः ॥ ८६ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे  
रेवाखण्डे आदित्येऽभरतीर्थमाहात्म्यवर्णनंताम पष्ठितमोऽध्यायः ॥६०॥





## द्विषष्टितमोऽध्यायः

### करोडीश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्त्राजेन्द्रकरोडीश्वरमुत्तमम् । यत्र वै निहतास्तात दानवाःसपदानुगाः  
इन्द्रादिदेवैः संहृष्टैः सततं जयवुद्धिभिः । तेषां ये पुत्रपौत्राश्च पूर्ववैरमनुस्मरम् ॥

कुड्मैर्द्वेषसमूहैश्च दानवा निहता रणे ।

तेषां शिरांसि संगृह्य सर्वे देवाः सवासवाः ॥ ३ ॥

निक्षिप्य नर्मदातोये वन्धुभाघमनुस्मरम् ।

तत्र स्नात्वा सुराः सर्वे स्थापयित्वा उमापतिम् ॥ ४ ॥

इन्द्रेणसहिताःसर्वेऽपूजयँल्लोकसिद्धये । हृष्टचित्ताःसुराःसर्वे जग्मुराकाशमण्डलम्

दानवानां महाभाग सूदिता कोटिरुत्तमा ।

तदाप्रभृति तर्त्तीर्थं करोडीति महीतले ॥ ६ ॥

विख्यातं तु तदा लोके पापघ्नं पाण्डुनन्दन ॥

अष्टम्यां च घनतुर्दश्यामुभौ पक्षौ च भक्तितः ।

उपोष्य शूलिनश्चाग्रे रात्रीं कुर्वीत जागरम् ॥ ७ ॥

सत्कथापाठसंयुक्तो वेदाध्ययनसंयुतः । प्रभातं विमले प्राप्ते पूजयेत्त्रिदशेश्वरम् ॥

पञ्चामृतेन संस्नाप्य श्रीखण्डेन च गुण्डयेत् । शस्तैः पल्लवपुष्पैश्च पूजयेत्तु प्रयत्नतः

बहुरूपंजपन्मन्त्रं दक्षिणाशां व्यवस्थितः । यथोक्तेन विधानेन नाभिमात्रेजलेक्षिपेत्

तिलाञ्जलिं तु प्रेताय दक्षिणाशामुपस्थितः ।

श्राद्धं तत्रैव विप्राय कारयेद्विजितेन्द्रियः ॥ ११ ॥

विपमैरग्रजातैश्च वेदाध्ययनतत्परैः । गोहिरण्येन सम्पूज्य ताम्बूलैर्भोजनैस्तथा ॥

भूपणैःपादुकाभिश्च ब्राह्मणान्पाण्डुनन्दन ।

भवेत्कोटिगुणं तस्य नात्र फार्या विचारणा ॥ १३ ॥

तस्मिन्नीधे तु यः कश्चिरपेदेहं विधानतः ।

तस्य भयति यत्पुण्यं तच्छृणुष्य नराधिपः ॥ १४ ॥

यापद्मयीति त्रिष्टुप्ति मर्त्यंस्य नमंदाजले ।

नाहसति घमांश्चा शिवगोके सुदुर्हभे ॥ १५ ॥

ततः कालाञ्च्युतम्लन्मादिह मानुषता गतः ।

कोटीधनति धीमाञ्जायते राजपूजितः ॥ १६ ॥

विधर्मममायुक्तो मेधायी धीज्ञपुत्रकः । विख्यातो घमुधापृष्टेदीर्घायुर्मानवोभवेत्

तस्मरति तर्तीयंनत्र गन्धा नृपोत्तमः ॥ करोतीश्वरमभ्यर्च्यं प्राप्नोति परमायतिम्

शुचन्द्रयमे शूद्रादिर्येषंशुभिस्तथा । विज्ञेदेवैस्तथासर्वे स्थापितस्त्रिदशेश्वर

वेद्याया उत्तरे कृते लोकाणां हितकाम्यया ।

मानवो मन्त्रिस्युक्तः प्रामादे कारयेत्तु यः ॥ २० ॥

स्मिन्नीधे नरश्रेष्ठ सद्गति ममयाप्नुयान् । न्यायोपात्तप्रतिनैवदाक्यापाणकेशुर्के-

ब्राह्मणे. क्षत्रियैर्वैश्ये शूद्रे. स्त्रीमिश्र शक्ति ।

नेऽपि यान्ति नरा लोके शादूरे सुरपूजिते ॥ २० ॥

यः शृणोति सदा मन्यया माहान्ध्र्यं जीर्यते नृपः ।

तस्य पाप प्रणश्येत् वणमामाभ्यन्तरं च यत् ॥ २१ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिमाहृष्यामहिताया पञ्चमेखाखण्डे

करोतीश्वरतीर्थमाहान्ध्रवर्णनं नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

## त्रिपष्टितमोऽध्यायः

कुमारेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तुराजेन्द्र! कुमारेश्वरमुत्तमम् । प्रसिद्धं सर्वतीर्थानामगस्त्येश्वरसन्निधौ

पण्मुखेन पुरा तात! सर्वपातकनाशनम् ।

आराध्य परया भक्त्या सिद्धिः प्राप्ता नराधिप ! ॥ २ ॥

देवसैन्याधिपो जातः सर्वशत्रुनिवर्हणः ।

उग्रतेजा महात्माऽसौ सञ्जातस्तीर्थसेवनात् ॥ ३ ॥

तदा प्रभृतितत्तीर्थसञ्जातं नर्मदातटे । तत्रतीर्थे तु यो गत्वा एकचित्तो जितेन्द्रियः

कार्तिकस्य चतुर्दश्यामष्टम्यां च विशेषतः । स्नापयेद्द्विरिजानाथं दधिदुग्धेन सर्पिणा

गीतं तत्र प्रकर्त्तव्यं पिण्डदानं यथाविधि । ब्राह्मणैः श्रोत्रियैः पार्थपट्कर्मनिरतैः शुभैः

यत्किञ्चिद्दीयते तत्र अक्षयं पाण्डुनन्दन । सर्वतीर्थमयं तीर्थं निर्मितं शिखिना नृप

एतत्ते सर्वमाख्यातं कुमारेश्वरजं फलम् । कुमारदर्शनात्पुण्यं प्राप्यते पाण्डुनन्दन!

मृतः स्वर्गमवाप्नोति सत्यमीश्वरभाषितम् ॥ ६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे

कुमारेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रिपष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥



## चतुःषष्टितमोऽध्यायः

अगस्त्येश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र तीर्थं परमशोभनम् । नराणां पापनाशाय भ्रगान्त्येऽश्वरमुत्तमम्  
नमस्कृत्या नरोराजमुच्यते ब्रह्महत्याया । कार्तिकस्य तु मासस्य वृष्णिपक्षे घनुर्दशी

घृतेन स्नापयेद् देवं समाधिस्थो जितेन्द्रिय ।

एकविंशतिमुत्तरेपेतो न च्यवेदैः श्वरात्पदात् ॥ ३ ॥

धनस्योपानर्हो छत्रद्वयाच्च घृतकम्बलम् । भोजनं चैव सर्वपापसर्वं कौटिल्येण भवेत्  
इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्या सहिताया पञ्चमोऽध्यायः

अगस्त्येश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णननाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

## पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

आनन्देश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र आनन्देश्वरमुत्तमम् । रद्रस्य परमानन्दो यत्र जातो युधिष्ठिर  
तत्तीर्थं कथयिष्यामि सर्वपापक्षयं वरम् ॥ १ ॥

युधिष्ठिर उवाच

आनन्देश्वरस्य सजातो रद्रस्य द्विजसत्तम । कथयतामेव तत्सर्वं सङ्क्षेपात्सहयान्धवै-  
श्रीमार्कण्डेय उवाच

कथयामि नृपथेष्ठ ! आनन्देश्वरमुत्तमम् । दानवानां चर्षं कृत्वा देवदेवीमहेश्वर ॥

पूजितो देवतेः सर्वैः किन्नरैर्यक्षपन्नैः । आनन्दसंगुतो देवो ननर्त चुपवाहनः ॥  
 मृगयन् रूपमाभ्याय गौर्याद्यार्जाङ्गुसंस्थितः । भूतघ्नतालकद्रुत्तर्भैरवैर्भैरवो मृतः ॥  
 ननर्त नर्मदातीरे दक्षिणेपाण्डुनन्दन ! । तुष्टैर्मरुद्गणैः सर्वैः स्थापितः कमलासनः  
 तदाप्रभृति तत्तीर्थमानन्देश्वरमुच्यते । अप्रम्यां च मनुदंश्यां पीर्णमास्यां नगाधिप  
 चिद्विषयाच्छर्चयेद्देवं मुगन्धेन चित्तेपयेत् । ब्राह्मणान्पूजयेत्तत्रयथाशक्त्यायुधिष्ठिर  
 सोदानं तत्र कर्त्तव्यं चक्रदानं शुभाचरम् । पसन्तम्प्रयोदश्यांश्राद्धं तत्रैव कारयेत्  
 इन्द्रैर्द्वन्द्वैर्विन्ध्यैरक्षतैश्च जलेन वा । प्रेतानां कारयेच्छ्राद्धमानन्देश्वर उत्तमे ॥ १०॥  
 आनन्दिताभयेगुम्नेयाचदाभूतगम्प्लवम् । सन्ततेर्वै न चिच्छेदः सप्तजन्ममुजायते  
 आनन्दोहि भयेत्तेषां प्रतिजन्मनि भारत ॥ ११ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणप्रकाशीतिमाहन्त्र्यांमंहितायांपञ्चमेऽध्यायः

आनन्देश्वरमाहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चपष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

## पट्टपष्टितमोऽध्यायः

### मातृतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततोगच्छेत्तु राजेन्द्र! मातृतीर्थमनुत्तमम् । सङ्गमस्य समीपस्थं नर्मदादक्षिणे तटे  
 मातरस्तत्र राजेन्द्र! सञ्जाता नर्मदा तटे । उमार्द्धनारिदिवेशो व्यालयज्ञोपवीतधृक्  
 उवाचयोगिनीवृन्दं कष्टं कष्टमहो हर । अजेयाः सर्वदेवानां त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥

तीर्थमत्र विधानेन प्रख्यातं वसुधातले ।

पवं भवतु योगिन्य इत्युक्त्वाऽन्तराच्छिवः ॥ ४ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

तत्र तीर्थं तु यो भक्त्या नवम्यां नियतः शुचिः ।

उपोष्य परया भक्त्या पूजयेन्मातृगोचरम् ॥ ५ ॥

तस्यस्युमांतर प्रीताप्रीतोऽयंबृषवाहन । वन्यायासृत्पत्सायाभपुत्रायायुधिष्ठिर  
स्नापनधारभेत्तत्र मन्त्रशास्त्रविदुत्तम । सहिरण्येन कुम्भेन पञ्चरत्नफलान्वित  
स्नापयेत्पुत्रकामाया वास्यपात्रेण देशिकः ।

पुत्र सा लभते नारी धीर्यवन्त गुणान्वितम् ॥ ८ ॥

योयं काममभियायेत्ततः सलभते नृप । मातृतीर्थत्परंतीर्थं न भूत न भविष्यति  
इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिमाहस्रया सहितायांपञ्चमेऽध्यायतण्डे  
मातृतीर्थमाहात्म्यवर्णननाम पञ्चदशितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

### सप्तपष्टितमोऽध्यायः

#### लुङ्गे श्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

तस्यैवानन्तरं तात' जन्मध्ये व्यपस्थितम् ।

लुङ्गेश्वरमितिख्यातं सुरासुरनमात्मनम् ॥ १ ॥

इदंतीर्थं महापुण्यं नानाधर्मं मदीतले । अम्यतीर्थस्यमाहात्म्यमुत्पत्तिरनुभागत  
भार्गीवपुरामहाधीर्यो दानशोभश्चरितम् । बालभृष्ट इतिख्यातं सुरासुरासुरनस्य च  
गङ्गातटे समाधित्य चचार विपुत्रं तप ॥

अधोमुक्तोऽपि संस्थित्वाऽपिबद्ध भुजमहतिशाम् ॥ ४ ॥

ततश्चानन्तरं देवस्त्रिण्डेह्य मयामह । दृष्ट्वा न वार्यती सा तु तपस्सुषेणवन्वितम्  
परस्परस्य महाशेष भुमारी तिष्ठत नरा । प्रगीत् तं कुत्स्याऽऽदेहि शीघ्रं वरं विमो'

ईश्वर उवाच

यदुत्तं वचनं देवि' अतस्सरोचन शिरो । स्वकार्यं च सदाशिल्यं परकार्यं विगतशोभम्

मूर्खस्त्रीवाल्मीकिणां यश्छन्देनाऽनुवर्तते । व्यसने पतते घोरे सत्यमेतदुद्दरितम्

देव्युवाच

भार्यायाऽभ्यर्थितो भर्ता कारणं बहु भाषते ।

लघुत्वं याति सा नारी एवं शास्त्रेषु पठ्यते ॥ ६ ॥

प्राणत्यागं करिष्यामि यदि मां त्वं न मन्यसे ।

पार्वत्या प्रेरितो देवो गतोऽसौ दानवं प्रति ॥ १० ॥

ईश्वर उवाच

किमर्थं पितृसेधूमं किमर्थं तप्यसेतपः । किं दुःखं किं नुसन्तापो वदकार्यमभीप्सितम्  
युवा त्वं दृश्यसेऽद्यापि वर्षातिरेव च । तदाश्च हि मे सर्वं तपसः कारणमहत्

दानव उवाच

अचला दीयतां भक्तिर्मम स्यैर्यं तवोपरि । अपरं वर्षसाहस्रं निर्विघ्नं मे गतं विभो  
दिवसानां सहस्रे द्वे पूर्णे त्वत्तपसा मम ॥ १४ ॥

ईश्वर उवाच

याचयाऽभीप्सितं कार्यं तुष्टोऽहं तव सुव्रत । देवस्य वचनं श्रुत्वा चिन्तयामास दानवः  
किं नाकं याचयाम्यद्य किमद्य सकलां महीम् ।  
एवं सचिन्तयामास कामवाणेन पीडितः ॥ १६ ॥

दानव उवाच

यदि तुष्टोऽसि मे देव वरं दास्यसि मे प्रभो ।

नंग्रामैस्तु न तुष्टोऽहं बलं नास्तीति किञ्च न ॥ १७ ॥

यस्य मूर्धन्यहं देवपाणिनासमुपस्पृशे । देवदानवगन्धर्वोभस्मसाद्यातु तत्क्षणात्

ईश्वर उवाच

यत्त्वया चिन्तितं किञ्चित्तत्सर्वं सफलं तव । उत्तिष्ठ गच्छशीघ्रं त्वं भवनं प्रति दानव

दानव उवाच

सर्थायतां देवदेवेश! यावज्ज्ञास्यामि ते वरम् ।





नारद उवाच

देवदानवसिद्धानां गन्धर्वोरगरक्षसाम् । सर्वेषामेव देवेशो हरते ध्रुवमापदम् ॥  
असंभाव्यं न चक्रव्यंमनसापि न चिन्तयेत् । ईदृशीनैवबुद्ध्यामिथापदंचविभोतव

ईश्वर उवाच

गच्छ नारद शीघ्रं त्वं यत्र देवो जनार्दनः । विदितं च त्वया सर्वं यत्कृतंदानवेनतु  
अवध्यो दानवो ह्येव सेन्द्रैरपि मरुद्गणैः । गत्वा तु केशवं देवं निवेद्य महामुने ॥

नारद उवाच

न तु गच्छाम्यहं देव सुप्तः क्षीरोद्ग्रीसुखी । केशवःप्रेरणे ह्येषामादेशोदीयतांप्रभो

मात्रा स्वस्त्रा दुहित्रा वा राजानं च तथा प्रभुम् ।

गुरुं चैवाऽदितः कृत्वा शयानं न प्रबोधयेत् ॥ ४३ ॥

ईश्वर उवाच

यदि कचिदगारेषु बहिरूपयते महान् । निधनंयान्ति तत्रस्था यद्बुद्ध्येरन्नसूरयः

नारद उवाच

शीघ्रं गच्छ महादेवआत्मानं रक्ष सुप्रभो । गच्छाम्यहं न सन्देहो यत्रदेवोजनार्दनः

ततो नन्दिमहाकाली स्तम्भहस्तौ भयानकौ ।

जघ्नतुर्दानवं तत्र मुद्रादिभिरायुधैः ॥ ४६ ॥

त्रयोऽपि च महाकायाः सप्ततालप्रमाणकाः ।

न शमो जायते तेषां युध्यतां च परस्परम् ॥ ४७ ॥

ततश्चानन्तरंचिप्रोऽगच्छत्तंकेशवं प्रति । सुप्तं क्षीरार्णवेऽपश्यच्छेषपर्यङ्कसंस्थितम्

लक्ष्म्या पादयुगं गृह्य ऊरुपरि निवेशितम् ।

अप्सरोगीयमानं तु भक्त्याऽऽनम्य च केशवम् ॥ ४६ ॥

अद्य मे सफलंजन्मजीवितंचसुजीवितम् । उत्थापयस्वदेवेशंलक्ष्मिस्त्वमविशंकिता

नारदस्यवचः श्रुत्वा पदाङ्गुष्ठं व्यमर्दयत् । नारदस्तिष्ठतेद्वारिउत्तिष्ठमधुसूदन

देवोऽपि नारदं दृष्ट्वापरंर्हर्षमुपागतः । स्वागतं तु मुनिश्रेष्ठ ! सुप्रभाताऽद्यशर्वरी ॥

नारद उवाच

अथ मे सफल देवप्रभात तवदशनात् । कुशलं च न देवानां शीघ्रमुत्तिष्ठगम्यताम्  
धीविष्णुरुवाच

प्रह्लादन्द्रश्च रुद्रश्च ये ध्यान्ये तु मरुद्गणा । आपद् कारणघघतत्ममास्थानुमहसि  
नारद उवाच

दानयेन महार्ताय तपान्तत सुदारुणम् । रुद्रेण च घरो दत्तोभस्मत्वं मनसेत्मितम्  
घरदानयतेनैव स दय हन्तुमहति । ईदृशं चेष्टितं प्रात्वा नीतो देवोऽमरं सह ॥  
नारदस्य घघ ध्रुवात्तगामस्यमुहिर्हिरि । दृष्ट्वा देवस्तर्माशातगच्छन्तदिशमुत्तराम्  
दृष्ट्वा देव च रुद्रोऽथ परिष्वज्य पुन पुन । नमस्सृत्य जगन्नाथ देव घ मधुसूदन  
विष्णुरुवाच

भयस्य कारण देव' कथ्यता च महेश्वर । देवदानवयक्षाणां प्रेययेय यमालयम् ॥  
ललाटे च रतो यम्मो युष्माकश्च महेश्वर ।

छित्वा शिरस्तथाङ्गानि इन्द्रियाणि न मशय ॥ १० ॥

ईश्वर उवाच

नास्ति सौम्यं च मुखपु नास्ति सौम्यं च रोगिषु ।

परार्थिने न सौम्यं तु स्त्रीजिते च विशोयत ॥ ११ ॥

स्त्रीजितेन मया विष्णो' घरो दत्तस्तु दानये ।

यस्य मूर्ध्नि न्यसेत्पार्णि स भवेद्भस्मपुञ्जवत् ॥ १२ ॥

अनेयश्चामरक्षीव मया ह्युक्तं न केशव । हन्तुमिच्छतिमा पापउपायस्तवविघने  
विष्णुरुवाच

गच्छन्तु अमरा सच युष्माभि महेश्वर । उपाय सज्जयाम्यथ वधार्थं दानवस्यघ  
देवायाश्च तटे तिष्ठ देव त्वममरं सह । कालक्षेपो न कस्तव्योगम्यतात्वरितम्प्रभो

दक्षिणा यत्र गङ्गा च रवा चैव महानदी ।

यत्र यत्र च दृश्येत् प्राचीञ्चैव सरस्वती ॥ १६ ॥

सप्तपष्टितमोऽध्यायः ] \* विष्णुमाययादानवमोहवर्णनम् \* ७५१

तत्समं च महातीर्थं न मर्त्यैर्धैव दृश्यते । स्नानं त्रै तत्रकुर्वन्तिदानञ्चैवतुभक्तिः  
सप्तजन्मकृतं पापं नश्यते नात्र संशयः । एतत्तीर्थं महापुण्यं सर्वपातकनाशनम् ॥

गम्यतां तत्र देवेश! लुङ्केशं त्वं सहामरैः ।

विष्णोस्तु वचनादेव प्रविष्टो हृदमुत्तमम् ॥ ६६ ॥

रतिं सुमहतीञ्चक्रे सह तत्र मरुद्गणैः । ततश्चानन्तरं देवो मायां कृत्वा ह्यनेकधा ॥

वसन्तमासं संसृज्य उद्यानवनशोभितम् । अशोकैर्बकुलैश्चैव ब्रह्मवृक्षैः सुशोभनैः ॥

श्रीवृक्षैश्च कपित्थैश्च शिरीषै राजचम्पकैः ।

श्रीफलैश्च तथा तालैः कदम्बोदुम्बरैस्तथा ॥ ७२ ॥

अश्वत्थादिद्रुमैश्चैव नानावृक्षैरनेकशः । नानापुष्पैःसुगन्धाद्यैर्भ्रमरैश्चनिनादिनम्

तस्मिन्मध्ये महावृक्षो न्यग्रोधश्च सुशोभनः ।

बहुपक्षिसमायुक्तः कोकिलारावनादिनः ॥ ७४ ॥

कृष्णेन च कृतं तस्मिन्कन्यारूपं च तत्क्षणात् ।

न तस्याः सदृशी कन्या त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ ७५ ॥

अन्याश्च कन्यकाः सप्त सुरूपाः शुभलोचनाः ।

दिव्यरूपधराः सर्वा दिव्याभरणभूषिताः ॥ ७६ ॥

पुमांसमभिकाङ्क्षन्त्यो यद्येकः कामयेत्स्त्रियः ।

मौक्तिकै रत्नमाणिक्यैर्वैडूर्यैश्च सुशोभनैः ॥ ७७ ॥

कामहारैश्चवंशीश्चबद्धोहिन्दोलकःकृतः । आरूढाश्च महाकन्या गायन्ते सुस्वरंतदा

मारुतः शीतलो वाति वनं स्पृष्ट्वा सुशोभनम् ।

वातेन प्रेरितो गन्धो दानवो घ्राणपीडितः ॥ ७८ ॥

ततः कुसुमगन्धेन चिस्मयं परमंगतः । आघ्राय चेदृशं पुण्यं न दृष्टं न श्रुतं मया

वने चिन्तयतः किञ्चिद्दुध्वनिगीतं सुशोभनम् ।

गीतस्य च ध्वनिं श्रुत्वा मोहितो मायया हरिः ॥ ८१ ॥

व्याधस्यैव महाकूटे पतन्ति च यथा मृगाः ।

कालस्पृष्ट ( कालपृष्ट ) स्तथा वृष्ये पतितश्च नराधिप ॥ ८२ ॥

दृष्ट्वा कन्या च तां दैत्यो मूर्च्छया पतितो भुवि ।

पतितेन तु दृष्ट्वा कन्या घटतले स्थिता ॥ ८३ ॥

आस्यं दृष्ट्वा तु नारीणां पुनः कामेन पीडितः ।

गृहीत्वा हेमदण्डं तु ता पातयितुमिच्छति ॥ ८४ ॥

कन्योवाच

मा मानुष्यशय त्वं हि कुमार्यहं कुलोत्तम !।

भो मुञ्चमुञ्च मा शीघ्रं यावद्गच्छाम्यहं गृहम् ॥ ८५ ॥

दातव उवाच

अहं विद्यामिच्छामि त्वयासहसुराशोभने । भूयुष्टे मरुते रात्री भवन्त्येवंनसंशयः

कन्योवाच

पितारश्चति कौमार्ये भर्तांश्चतिर्योवने । पुत्रोरक्षतिवृद्धत्वे न स्त्रीस्वातन्त्र्यमर्हति

न स्वातन्त्र्य मर्मावास्ति उत्पन्नाऽहं महत्कुलैः ।

याच्यस्तु मन्थिता भ्राता मातापि हि तर्षय च ॥ ८८ ॥

दातव उवाच

यदि मा नैच्छसे त्वय न्वातन्त्र्यं नावलम्बसे ।

ममापि च तदा हत्या सत्यं च शुभलोचने ! ॥ ८९ ॥

कन्योवाच

विश्वासो नैव कर्तव्यो यादृशे तादृशे नरे ।

नराः स्त्रीषु विचित्राश्च लम्पटाः काममोहिताः ॥ ९० ॥

परिणीय तु मा त्वं हि भुङ्क्ष्य भोगान्मया सह ।

जन्मनाशो भयेत्पश्चात् त्व नाम्न्यो भयेन्मम ॥ ९१ ॥

ब्राह्मणी क्षत्रिणी वैशी शूद्रा यावत्तर्षय च ।

द्वितीयो न भवेद्द्वर्ता एकाकी चेह जन्मनि ॥ ९२ ॥

दानव उवाच

यत्त्वया गदितं वाक्यं तन्मया धारितं हृदि ।  
प्रत्ययं मे कुदृष्याऽद्य यत्ते मनसि रोचते ॥ ६३ ॥

कन्योवाच

जानीष्व गोपकन्यां मां क्रीडामि सखिभिः सह ।  
अस्मत्कुलेषु यद्विष्यं तत्कुरुष्व यथाविधि ॥ ६४ ॥  
न तद्विष्यं कुलेऽस्माकं चिपं कोशं न तत्तुला ।  
गोपान्वयेषु सर्वेषु हस्तः शिरसि दीयते ॥ ६५ ॥  
कामान्धेनैव राजेन्द्र! निक्षिप्तो मस्तके करः ।

तत्क्षणाद्गस्मसाद्भूतो दग्धस्तृणचयो यथा ॥ ६६ ॥

केशवोपरिदेवैस्तुपुष्पवृष्टिः शुभाकृता । हृष्टाःसर्वेऽगमन्देवास्वस्थानंविगतज्वराः  
क्षीरोदं केशवोऽगच्छत्कालपृष्ठे निपातिते । यद्दंष्ट्रणुयाद्भवत्याचरितंदानवस्यस्र

स जयी जायते नित्यं शङ्करस्य चसोयथा ।

एतस्मात्कारणाद्राजैल्लिङ्केश्वर ( लुङ्केश्वर ) मितिश्रुतम् ॥ ६६ ॥

लीनं च पातकं यस्मात्त्वानमात्रेण नश्यति ।

त्वगस्थिशोणितं मांसं मेदस्नायुस्तथैव च ॥ १०० ॥

मज्जाशुक्रगतंपापं नश्यते जन्मकोटिजम् । लुङ्केश्वरे महाराज तोयं पिवति भक्तिः

त्रिभिःप्रसृतिमात्राभिः पापं याति सहस्रधा ।

विशेषेण चतुर्दश्यामुभौ पक्षौ तु चाष्टमी ॥ १०२ ॥

उपोष्य यो नरो भक्त्या पितॄणां पाण्डुनन्दन !

उद्भृतान ते सर्वे नारकीयाःपितामहाः ॥ १०३ ॥

काकिणीं चैव यो दद्याद्ब्राह्मणेवेदपारगे । तेन दानफलंसर्वंकुरुक्षेत्रादिकं च यत्  
प्राप्तं तु नान्यथा राजञ्छङ्करो चदते त्विदम् ।

स्पर्शल्लिङ्गमिदं राजञ्छङ्करेण तु निर्मितम् ॥ १०५ ॥

स्पर्शमात्रे मनुष्याणाद्यद्रवासोऽभिजायते । तेन दानफलसर्वं ब्रुहक्षेत्रादिकञ्च यत्  
एतस्मात्कारणाद्राजंलोकपालाश्च रक्षका ।

दुर्गा च रक्षणे सृष्टा घनुर्हस्तघरा शुभा ॥ १०७ ॥

धनदो लोकपालेशो रक्षकश्चेश्वरस्य च । रक्षति च सदा कालं ग्रहव्यापाररूपतः ॥

पुत्रभ्रातृसमारूपं स्वामिसम्बन्धरूपिभि । लुङ्केश्वर घराजेन्द्रदेवीनांऽद्यापिमुच्यते  
इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिमाहस्रचासहितायापञ्चमेऽध्यायस्य  
रेखाखण्डे लुङ्केश्वरतीयंमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तपष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

## अष्टपष्टितमोऽध्याय

### धनदतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

धनदस्य तु नत्तीर्थं ततो गच्छेद्युधिष्ठिर । नर्मदादक्षिणे कूले सर्वपापक्षयङ्करम् ॥  
सर्वतीर्थफल तत्र प्राप्यते नात्र मशय । क्षेत्रमासत्रयोदश्या शुरुषक्षे जितेन्द्रिय-  
उपोष्य परया भक्त्या राश्री कुर्वीत जागरम् ।

पञ्चामृतेन राजेन्द्र! स्नानपयेद्धनर्द्धं बुध ॥ ३ ॥

दीर्घं शृतेन दातव्यं गीतं वाचसकारयेत् । प्रभातेपूजयेद्विप्रानात्मन श्रेय इच्छति  
प्रतिग्रहममर्यां च विद्यासिद्धान्तपादिन ।

श्रीतस्मात्तत्रियायुक्तान्परदारपराङ्मुखान् ॥ ५ ॥

पूजयेद्गोहिरण्येन यत्त्रोपानहभोजने । उग्रशय्याप्रदानेन सर्वपापक्षयोभवेत् ॥  
त्रिजन्मजनित्रं पापधनदस्यप्रभाचत । स्वगर्दं दुर्विनीतानाधिनीतानांघमोक्षदम्  
अचर्दं च दृष्टिाणाभवेज्जन्मनिजन्मनि । कुलीनत्वदुःखहानि स्वभाषाज्जायतेनरे  
एवाधिभ्यसो भवेत्तेषां नर्मदोदकसेवनात् ।

धनदस्य तु यस्तीर्थं विद्यादानं प्रयच्छति ॥ ६ ॥

स याति भास्करे लोके सर्वव्याधिविचर्जिते ।

देवद्रोणीं च तत्रैव स्वशक्त्या पाण्डुनन्दन ॥ १० ॥

ये प्रकुर्वन्ति भूयिष्ठां रेवाया दक्षिणे तटे । तेयान्ति शाङ्करे लोकेसर्वदुःखविचर्जिते

इति श्रीस्कान्दे महापुराणएकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायांपञ्चमेऽवन्तीखण्डे

रेवाखण्डे धनदतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नामाष्टमप्रष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

## एकोनसप्ततितमोऽध्यायः

### मङ्गलेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तुराजेन्द्रमङ्गलेश्वरमुत्तमम् । स्थापितंभूमिपुत्रेणलोकानांहितकाम्यया

तोपितः परया भक्त्या शङ्करः शशिशेखरः ।

चतुर्दश्यां गुरुर्देवः प्रत्यक्षो मङ्गलेश्वरः ॥ २ ॥

ब्रूहि पुत्र! वरं शुभ्रं तत्ते दास्यामि मङ्गल ॥ ३ ॥

मङ्गल उवाच

प्रसादं कुरु मे शम्भो प्रतिजन्मनि शङ्कर । त्वदङ्गस्वेदसम्भूतो ग्रहमध्येवसाम्यहम्

त्वत्प्रसादेन ईशान पूज्योऽहं सर्वदैवतैः । कृतार्थोह्यद्य सञ्जातस्तव दर्शनभाषणात्

स्थानेऽस्मिन्देवदेवेश मम नाम्ना महेश्वरः । एवं भवतुतेपुत्रेत्युक्त्वाघान्तरधीयत

मङ्गलोऽपि महात्मा वै स्थापयित्वा महेश्वरम् ।

आत्मयोगवलेनैव शूलिनाऽपूजयत्ततः । ७ ॥

सर्वदुःखहरंलिङ्गं नाम्नावै मङ्गलेश्वरम् । तत्र तीर्थेतु वैराजन्ब्राह्मणान्प्रीणयेत्सुधीः

सपत्नीकान्पृथग्पृथग् चतुर्थ्यङ्गारके व्रते । पत्नीभर्तारसंयुक्तं चिद्वासं श्रोत्रियं द्विजम्



प्रतान्ने घैव गौर्धुर्यै शिवमुद्दिश्य दीयते ।

प्रीयतां मे महादेव सपत्नीको वृषध्वज ॥ १० ॥

वख्युग्म प्रदातव्यंलोहित पाण्डुनन्दन । पूर्वही रत्नवर्णां च शुभ्रं वृष्ण तथैव च  
उत्र शय्या शुभा घैव रत्नमालयानुलेपनम् ।

दातव्यं पाण्डवश्रेष्ठ विशुद्धेनान्तरात्मना ॥ १२ ॥

खतुर्ध्यान्तु तथाऽष्टम्या पक्षयो शुक्लवृष्णयो ।

श्राद्ध तत्रैव कर्त्तव्यं विस्रशाठयेन धर्जित ॥ १३ ॥

प्रेता भयन्तिमुप्रीता युगमेरु महीपते । मपुत्रो जायते मस्य प्रतिजन्म नृपोत्तम  
तस्य तीर्थस्य भावेन सर्वाङ्गरुचिरो नृप । मङ्गलभवते घरोनाऽशुभं विद्यते षड्विन्  
भवत्या य कीर्त्तयेन्नित्य तस्य पापं व्यपोहति ॥ १६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्रपा [सहितायापञ्चमेऽवन्तीखण्डे  
रेखाखण्डे मङ्गलेऽथरतीथमाहात्म्यवर्णननामैकोनत्रितितमोऽध्याय ॥ ६६ ॥

## सप्ततितमोऽध्याय

### रवितीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमाकण्डेय उवाच

रेवाया उत्तरे कुटे तीर्थं परमशोभनम् । रविणा निर्मितं पाथं सर्वपापक्षयङ्करम्  
स्वारीन भास्करस्तत्र तिष्ठत घोत्तरे तटे ।

सवव्याधिहरं पु सा नर्मदाया व्यवस्थित ॥ २ ॥

पृथ्वापृथ्वावृषभ्रष्टह्यम्याचक्षतुर्दशीम् । ज्ञानय कारयेन्मर्त्यं श्राद्धप्रनेषु भक्ति  
तस्य पापक्षयं पाथं सूयलोके महीयते ॥ ३ ॥

ततः स्वर्गाच्चयुतः सोऽपि जायते विमले कुले ।

धनाढयोव्याधिनिर्मुक्तो जीवेज्जन्मनि जन्मनि ॥ ४ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे  
रेवाखण्डे रवितीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

एकसप्ततितमोऽध्यायः

कामेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

कामेश्वरंततश्चान्यच्छृणु पाण्डवसत्तम । सिद्धोयत्रगणाध्यक्षो गौरीपुत्रो महाबलः

तत्रतीर्थे तु यो भक्त्या भक्तियुक्तो जितेन्द्रियः ।

पञ्चामृतेन संस्नाप्य धूपनैवेद्यपूजनैः ॥ २ ॥

प्रसाद्यजगतामीशं सर्वपापः प्रमुच्यते । अष्टम्यां मार्गशीर्षस्य तत्र स्नात्वायुधिष्ठिर

यो येन यजते तत्र स तं काममवाप्नुयात् ॥ ४ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे

रेवाखण्डे कामेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नामैकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

## द्विमप्ततितमोऽध्याय

मणिनागेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

नतो गच्छेन्नु राजेन्द्र मणिनागेश्वरशुभम् । उत्तर नर्मदाकूले सर्वपापक्षयकृत् ॥  
स्थापित मणिनागेन लोकाना हितकाम्यया ॥ १ ॥

युधिष्ठिर उवाच

आशीर्विधेण सर्पेण ह्यम्बरस्तोयित कथम् ।

शुद्रासर्वस्य लोकस्य भयदा विशालिनि ॥ २ ॥

कथ्यतातात मे सर्वं पातकस्योपशान्तिदम् । मम सत्तापत्रदुःखदुर्योधनसमुद्भवम्

कणभीष्मोद्भव रौद्र दुःख पाञ्चालिसम्भवम् ।

नव वक्रशम्भुर्जाघेन प्लावित निवृत्ति गत ॥ ४ ॥

ध्रुवा नव मुम्बोर्द्गीता कथा वै पापनाशिनीम् ।

अयुक्तमिद्रमस्माक द्विज' क्लेशो न शाम्यति ॥ ५ ॥

अथवाप्राप्स्यतेतातविद्यादानस्ययत्फलम् । तत्फलप्राप्यननित्यकथाध्वजणतोहर

श्रीमार्कण्डेय उवाच

यथा यथा त्व नृप' भापसे च तथा तथा मे सुखमेति भारती ।

शोधिलयता वा जरयान्वितस्य त्वन्सौहृद नश्यति नीच तात ॥

शृणुष्व तस्मात्सह बान्धवैश्च कथामिमा पापहरा प्रशान्ताम् ॥ ७ ॥

कथयामि यथावृत्तमितिहासं पुरातनम् ॥ ८ ॥

कथित पूर्वतो वृत्ते पारम्पर्येण भारत ॥ ९ ॥

हे भाय कश्यपरास्तासबलोत्रैष्यनुत्तमे । गरुत्मन्त च विनताऽसूतकद्रुहानथ  
सन्तोषेण च ते तात तिष्ठत कश्यपे गृहे । कद्रुश्च विनतानाम द्वेष्य धनिने सदा

ताभ्यां साद्धं क्रीडते च कश्यपोऽपि प्रजापतिः ।

ततस्त्वेकदिने प्राप्ते आश्रमस्था शुभानना ॥ १२ ॥

उच्चैःश्रवं ह्यं दृष्ट्वा मनोवेगसमन्वितम् । पश्यपश्य हि तन्वद्गीहयंसर्वत्रपाण्डुरम्  
धावमानमविश्रान्तंजवेनमनसोपमम् । तं दृष्ट्वासहस्राघ्राऽध्वमीर्ष्याभावेनचात्रवीत्

कद्रूखाच

ब्रूहिभद्रेसहस्रांशोरुवःकिंचरणकोभवेत् । अहं ब्रवीमि कृष्णोऽयं त्वं किं वदसितद्वद्  
चिनतोवाच

पश्यसे ननु नेत्रैश्च कृष्णंश्वेतं न पश्यसि । असत्यभाषणाद्भद्रे यमलोकांगमिष्यसि  
सत्यानृते तु वचने पणस्तव ममैव तु । सहस्रं चैव वर्षाणां दास्यहं तव मन्दिरे ॥

असत्या यदि मे घाणी कृष्ण उच्चैःश्रवा यदि ।

तदाऽहं त्वद्गृहे दासी भवामि सर्पमातृके ॥ १८ ॥

दिउच्चैःश्रवाःश्वेतोऽहंदासीचतर्वैवतु । एवं परस्परंद्वाभ्यां सम्वादोऽयंब्यवर्द्धत  
आश्रमेषु गता बाला रात्रौ चिन्तापरा स्थिता ।

वन्धुवर्गस्य कथितं समस्तं तद्विचेष्टितम् ॥ २० ॥

पुत्राणांकथितंपार्थपणञ्चैवमयाकृतम् । हाहाकारःकृतःसर्पैःश्रुत्वामात्रापणंकृतम्  
तादासीनसन्देहःश्वेतोभास्करवाहनः उच्चैःश्रवाहयःश्वेतोनकृष्णोविद्यतेकचित्

कद्रूखाच

यथाऽहंनभवेदासीतत्कार्यं च विचिन्त्यताम् । विषध्वंरोमकूपेषुह्यञ्चैःश्रवहयस्यतु  
एकं मुहूर्त्तमात्रं तु यावत्कृष्णःस दृश्यते । क्षणमात्रेणचैकेन दासीसा भवते मम  
दासीं कृता तु तां तन्वीं चिनतां सत्यगर्विताम् ।

ततः स्वस्थानगाः सर्वे भविष्यथ यथासुखम् ॥ २५ ॥

सर्पा ऊचुः

यथात्वंजननीघाम्यसर्वपांभुवि पूजिता । तथासाऽपिचिशेषेण चञ्चिव्यानमातरः  
माता च पितृभार्या च मातृमाता पितामही ।

कर्मणा मनसा वाचा हित तासा समाचरेत् ॥ २७ ॥

साततस्नेन वाक्येन वृद्धाकालानलोपमा । ममवास्पमकुर्वाणायैकेषिद्भुविपद्मगा  
हृद्यवाहमुखेसर्वेते यास्यन्त्यविचारितम् । मातुस्नद्वचनभ्रुत्वासर्वेष्वैवभुजङ्गमा  
क्वचित्प्रविण रोमेषु उच्चैर्ध्रुवहृदयस्य च । नष्टा केचिद्देशदिश कद्रुशापभयात्तत ॥

केचिद्गङ्गाजले नष्टा केचिन्नष्टा सरस्वतीम् ।

केचिन्महोदधौ लीना प्रविण विन्ध्यकन्दरे ॥ ३१ ॥

आश्रिन्य नमदातोये मणिनागोत्तमो नृप । तपश्चधार विपुल्मुत्तरे नर्मदातटे ॥

मातृशापभयात्पार्थ' ध्यायते कामनाशतम् ।

अच्छेयमप्रतर्क्य' च विनाशोत्पत्तिवर्जितम् ॥ ३३ ॥

वायुभक्ष शत साग्र तदर्धं रचिर्वाक्षक' । एव ध्यानरतस्यैव प्रत्यक्षखिपुरान्तक'  
साधुसाधुमहाभागसत्त्ववास्तुभुजङ्गम । त्वयामक्त्यागृहीतोऽहप्रीतस्तेह्य रगेऽवर

चर याचय मे क्षिप्रं यत्ते मनसि वत्तते ॥ ३५ ॥

मणिनाग उवाच

मातृशापभयात्ताथङ्किष्टोऽह नर्मदातटे । त्वत्प्रसादेन मे नाथ मातृशापोभरेद्दृष्ट्या

ईश्वर उवाच

हृद्यवाहमुख चन्स' न प्राप्स्यसि ममाऽङ्गया ।

मम लोके तिवासश्च तव पुत्र' भविष्यति ॥ ३७ ॥

मणिनाग उवाच

अत्र स्थाने महादेव स्थायतामशमागत । सहस्राशेन भागेन स्थायतानमदाजटे

उपकाराय लोकाना मम नाम्नैव शङ्कर' ॥ ३८ ॥

ईश्वर उवाच

स्थापस्व परलिङ्गमाश्रया मम पन्नग । इत्युक्तवान्तर्हितो देवो जगामह्य मयासह

मार्कण्डेय उवाच

सप्ततीर्थे तु येगन्वाशुचिप्रयत्नमानसा । पञ्चम्यावाचतुर्दृश्यामष्टम्याशुक्ल'णयो

अर्चयन्ति सदा पार्थं नोपसर्पन्ति ते ममम् ।

दध्ना च मधुना चैव घृतेन क्षीरयोगतः ॥ ४१ ॥

स्नापयन्ति विरूपाक्षमुमादेहार्धधारिणम् । कामाङ्गदहनं देवमघासुरनिपूदनम् ॥

स्नाप्यमानञ्च ये भक्त्या पश्यन्ति परमेश्वरम् ।

ते यान्ति च परे लोके सर्वपापविजिते ॥ ४३ ॥

श्राद्धं प्रेतेषु ये पार्थं चाप्टम्यां पञ्चमीषु च । ब्राह्मणैश्चसदायोग्यैर्वेदपाठकचिन्तकैः

स्वदारनिरतैः श्लक्ष्णैः परदारविजितैः । पट्कर्मनिरतैस्तात शूद्रप्रेषणवर्जितैः

खज्जाश्च ददुराः पण्डा वाद्भुप्याश्च कृपीचलाः ।

भिन्नवृत्तिकराः पुत्र! नियोज्या न कदाचन ॥ ४६ ॥

घृपली मन्दिरे यस्य महिषीं यस्तु पालयेत् ।

स विप्रो दूरतस्त्याज्यो व्रते श्राद्धे नराधिप ! ॥ ४७ ॥

काणाण्डुपटाश्च मण्डाश्च वेदपाठविचर्जिताः ।

नते पूज्या द्विजाः पार्थ! मणिनागेश्वरे शुभे ॥ ४८ ॥

यदीच्छेदूर्ध्वगमनमात्मनः पितृभिः सह ।

सर्वाङ्गरुचिरां ध्रेनुं यो दद्यादग्रजन्मते ॥ ४९ ॥

स याति परमं लोकं यावदाभूतसंप्लवम् ।

ततः स्वर्गाच्च्युतः सोऽपि जायते विमले कुले ॥ ५० ॥

ये पश्यन्ति परं भक्त्या मणिनागेश्वरं नृप !

न तेषां जायते वंशे पन्नगानां भयं नृप ! ॥ ५१ ॥

पन्नगः शङ्कते तेषां मणिनागप्रदर्शनात् । सौपर्णरूपिणस्ते वै दृश्यन्ते नागमण्डले

फलानि घैवदानानांशृणुष्व्वाऽथनृपोत्तम । यत्रसंस्कारसंयुक्तं ये ददन्तेनरोत्तमाः

तोयं शय्यां तथा छत्रं कन्यां दासीं सुभाषिणीम् ।

पात्रे देयं यतो राजन्यदीच्छेच्छ्रेय आत्मनः ॥ ५४ ॥

सुरभीणि च पुष्पाणि गन्धवस्त्राणि दापयेत् ।

दीपं धान्य गृह शुद्धं सर्वोपस्करसयुतम् ॥ ५१ ॥

येद्ददन्तेपरं भक्त्या ते मज्जन्ति त्रिविष्टपम् । मणिनागे नृपश्रेष्ठे यद्यदानप्रदीयते  
तस्य दानस्य भावेन स्वर्गे धाम्ना भवेद्भुवम् ।

पातकानि प्रलीयन्ते आमपात्रे यथा जलम् ॥ ५२ ॥

नमंदातोयमसिद्धभोज्य विप्रेददातिथ । सोऽपिपापैर्विनिमुक्तं क्रीडते देवते सह  
तत्र स्वर्गच्युताना हि लक्षणं प्रवदाम्यहम् ।

दीर्घायुगोनीवपुत्राधनयन्त सुशोभना ॥ ५३ ॥

सर्वव्याधिविनिमुक्ता सुतभृत्यै समन्विता ।

त्यागिनो भोगमयुक्ता धर्माख्यातरता सदा ॥ ६० ॥

देवद्विनगुरोर्मन्त्रास्तीर्थसेवापरायणा ।

मातापितृवशा नित्यं द्रोहकापविचर्जिता ॥ ६१ ॥

एभिरेवगुणैर्युं जायेतरा पाण्डुरन्दन । सत्यन्नेस्वगादायाना स्वर्गोवासप्रवन्तिने  
सवर्नाधवर तीर्थं मणिनाग नृपोत्तम । तीर्थाख्यातमिदं पुण्यं यदेच्छुणुयादपि  
सोऽपि पापैर्विनिमुक्तं शिष्यलोकेमर्हायने । न विप्रव्रमते तेषाविचरन्ति यथेच्छया  
माद्रपद्या च यत्पृष्टपापुण्यं सूर्यस्यदर्शने । तत्फलसमाप्नोतिभारुवानभ्रवणेनतु

इति श्रीस्वान्देमहापुराण एकाशातिसाहस्र्या सहिताया पञ्चमोऽधर्माखण्ड

रेखाखण्डेमणिनागेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्षनताम द्विसप्ततितमोऽध्याय ॥ ७२ ॥

## त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

### गोपारेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

नर्मदादक्षिणे कूले तीर्थं परमशोभनम् । सर्वपापहरं पार्थ! गोपारेश्वरमुत्तमम्  
गोदेहान्निःसृतं लिङ्गं पुण्यं भूमितले नृप ॥ १ ॥

युधिष्ठिर उवाच

गोदेहान्निःसृतं कस्माल्लिङ्गं पापक्षयङ्करम् ।

दक्षिणे नर्मदाकूले मणिनागसमीपतः ॥

संक्षेपात्कथ्यतां विप्र! गोपारेश्वरसम्भवम् ॥ २ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

कामधेनुस्तपस्तत्र पुरा पार्थ चकार ह्रः । ध्यायते परया भक्त्या देवदेवं महेश्वरम्  
तुष्टस्तस्या जगन्नाथःकपिलायामहेश्वरः । निःसृतो देहमध्यात्तुच्छ्लेद्यःपरमेश्वरः  
तुष्टो देवि! जगन्मातः कपिले परमेश्वरि । आराधनं कृतंयस्मात्तद्ब्रदाऽऽशुशुभानने

सुरभ्युवाच

लोकानामुपकाराय सृष्टाऽहं परमेष्ठिना ।

लोककार्याणि सर्वाणि सिद्धयन्ति मत्प्रसादतः ॥ ६ ॥

लोकाः स्वर्गं प्रयास्यन्ति मत्प्रसादेन शङ्कर !

तीर्थे त्वं भव मे शम्भो! लोकानां हितकाम्यया ॥ ७ ॥

तथेति भगवानुक्त्वा तीर्थे तत्रावसन्मुदा ।

तदाप्रभृति तत्तीर्थं विख्यातं वसुधातले ।

स्नानेनैकेन राजेन्द्र! पापसङ्गं व्यपोहति ॥ ८ ॥

गोपारेश्वरगोदानं यस्तु भक्त्या च कारयेत् ।



योग्ये द्विजोत्तमे देया योग्या धेनु सकाञ्चना ॥ ६

मयन्मा तरुणी शुभ्रा बहुशीरासवस्त्रका । वृणपक्षे चतुर्दश्यामष्टम्यावाप्रदापयेत्  
 सर्वेषुचैव मासेषुकार्तिके षचिशोरन । दापयेत्पत्यामकन्या द्विजेस्वाध्यायतत्परै  
 विधिना षप्रदद्याद्योपिधिनायस्नुगृह्णते । तापुर्मापुण्यकर्माणीप्रेक्षक पुण्यभाजनम्  
 पिण्डदानप्रकुशांघ प्रेतानामकिसयुत । पिण्डेनैकेतराजेन्द्र प्रेतायान्तिपरागतिम्  
 भक्त्या प्रणाम रद्रस्य ये कुर्वन्ति दिनेदिने । तेषापापंप्रलीयेतभिन्नपात्रेञ्च यथा  
 तत्र तीर्थे तुयो राजन्वृग्भ ष समु सृजेत् । पितरन्धोदुपृतास्तेनशिवलोकेप्रदीयते  
 युधिष्ठिर उवाच

वृणोत्सर्गे हृते तात फले यज्ञायते वृणाम् । तत्सर्वकथयस्वाशु प्रयत्नेन द्विजोत्तम  
 श्रीमार्कण्डेय उवाच

सवलक्षणसपूर्णे वृषे धैव तु यत्फलम् । तदहं सप्रश्यामि शृणुष्व धर्मनन्दन ॥  
 कार्तिके धैव वैशाखे पूर्णिमाया नराधिप ।।

रद्रस्य मन्त्रिर्धौ भूत्वा शुचि स्नातो जिनन्द्रिय ॥ १८ ॥  
 वृषस्यैवसमुत्सर्गं कारयेत्प्रीयताहर । सान्निध्येकारयेत्पुत्रघतस्रोषतिसकाःशुभा  
 दन्वा तु विप्रमुत्प्राय सर्लक्षणसयुता । प्रीयताश्चमहादेवो ब्रह्मा विष्णुर्महेश्वर  
 वृग्भे रौमसङ्ख्या या सर्वाङ्गेषु नराधिप । तावद्रूपंप्रमाणं तु शिवलोके महीयते  
 शिवलोके वसित्वा तु यदामर्त्येषु जायते । कुले महतिसम्भूतिर्धनधान्यसमाकुले  
 नीरोगो रूपवाञ्छैव विद्याद्यै सत्यवाक्च्युधि ।

गोपारेभ्वरमाहात्म्य मया ख्यात युधिष्ठिर ।।  
 गोदेहात्रिंशत् लिङ्ग नर्मदादक्षिणे तटे ॥ २३ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराणप्रकाशीतिसाहस्रया संहिताया पञ्चमेऽधर्नाखण्डे  
 रेवाखण्डे गोपारेभ्वरमाहात्म्यवर्णननाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

चतुःसप्ततितमोऽध्यायः  
गौतमेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

रेवाया उत्तरे कूले तीर्थं परमशोभनम् । सर्वपापहरं मर्त्ये नाम्ना वै गौतमेश्वरम्  
स्थापितं गौतमेनैव लोकानां हितकाम्यया ।

स्वर्गसोपानरूपं तु तीर्थं पुंसां युधिष्ठिर ! ॥ २ ॥

तत्र गच्छ परंभक्त्यायत्रदेवोजगद्गुरुः । पातकस्यचिनाशार्थं स्वर्गवासप्रदस्तथा  
सौभाग्यवर्द्धनं तीर्थं जयद्रं दुःखनाशनम् । पिण्डदानेन चैकेन कुलानामुद्धरेत्त्रयम्  
यत्किञ्चिद् दीयते भक्त्या स्त्रलपं वा यदि वा बहु ।

तत्सर्वं शतसाहस्रमाज्ञया गौतमस्य हि ॥ ५ ॥

तीर्थानां परमं तीर्थं स्वयं रुद्रेण भाषितम् ॥ ६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे  
रेवाखण्डे गौतमेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

## पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

### शङ्खचूडतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

नर्मदादक्षिणे कृते तीर्थं पामशोभनम् । शङ्खचूडस्य नाम्ना वै प्रसिद्धं भूमिमण्डले  
शङ्खचूडं स्वयं तत्र स्थितं पाण्डुनन्दन । वैनतेयभयात्पार्थं मुखद् नर्मदातटे  
तत्र तीर्थं तु यो भक्त्या शुचिर्भूत्वा समाहित ।

स्नापयेच्छङ्खचूडं तु क्षीरक्षीट्रेण सर्पिणा ॥ ३ ॥

रात्रीजागरणकुर्याद्देवस्याग्नेरराधिप । दधिभक्तेनसपूज्यब्राह्मणाञ्छसितव्रतान्  
गोप्रदाने द्विजेन्द्रोऽयं सर्वपापक्षयङ्कर ॥ ४ ॥

तस्मिन्स्तीर्थे तु यः पार्थं सर्पदण्डप्रतर्पयेत् । सयातिपरमलोकां शङ्करस्यचघोयथा  
इति श्रीस्कान्दे महापुराणपकाशीतिसाहस्र्या सहिताया पञ्चमेऽयन्तीखण्डे  
रेवाखण्डे शङ्खचूडतीर्थमाहात्म्यवर्णननाम पञ्चसप्ततितमोऽध्याय ॥ ७१ ॥

## षट्सप्ततितमोऽध्यायः

### पारेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततोगच्छेत्तु राजेन्द्र पारेश्वरमनुत्तमम् । पराशरो महात्मा वै नर्मदायास्तटे शुभे  
तपश्चचार विपुलं पुत्रार्थं पाण्डुनन्दन । हिमवददुहिता तेन गौरी नारायणी नृप  
तोयिता परया भक्त्यानमदोत्तरके तटे । तस्य तुष्ठा महादेवी शङ्करार्द्धाङ्गधारिणी  
भोभोःपिवर श्रेष्ठा तुष्ठाऽहं तव भक्ति । वर याचयमेधिप्र पराशर महामने ॥१॥

पराशर उवाच

परितुष्टाऽसि मे देवियदिदेयोचरोमम । देहि पुत्रं भगवतिसत्यशीचगुणान्वितम्  
वेदान्यसनशीलं हि सर्वशास्त्रविशारदम् ।

तीर्थं चाऽत्र भवेद् देवि! सन्निधानवरेण तु ॥ ६ ॥

लोकोपकारहेतोश्च स्थीयतां गिरिनन्दिनि !। पराशराभिधानेन नर्मदादक्षिणे तटे  
श्रीदेव्युवाच

एवं भवतु ते विप्र! तत्रैवान्तरधीयत । पराशरोमहात्मा वै स्थापयामास पार्वतीम्  
शङ्करं स्थापयामास सुरासुरनमस्कृतम् । अच्छेद्यमप्रतर्क्यं च देवानां तुदुरासदम्  
पराशरो महात्मा वै कृतार्थो ह्यभवन्नृप ! ॥ १० ॥

तत्र तीर्थं तु यो भक्त्या शुचिः प्रयतमानसः ।

स्त्र्यथवा पुरुषो वाऽपि कामक्रोधविवर्जितः ॥ ११ ॥

माघे चैत्रेऽथ वैशाखेश्रावणे नृपदन्दन !। मासिमार्गशिरे चैव शुक्लपक्षे तुसर्वदा  
तत्र गत्वा शुभे स्थाने नर्मदादक्षिणे तटे ॥ १३ ॥

उपोष्य पर्या भक्त्या व्रतमेतत्समाधरेत् ।

रात्रौ जागरणं कृत्वा दीपदानं स्वशक्तितः ॥ १४ ॥

गीतं नृत्यं तथा वाद्यं कामक्रोधविवर्जितः ।

प्रभाते विमले प्राप्ते द्विजाः पूज्याः स्वशक्तितः ॥ १५ ॥

संपूज्य ब्राह्मणान्पार्थ धनदानहिरण्यतः । वस्त्रेण छत्रदानेनशय्याताम्बूलभोजनेः  
प्रीणयेन्नर्मदातीरे ब्राह्मणाञ्छंसितव्रतान् । श्राद्धं कार्यं नृपश्रेष्ठआमैः पक्वैर्जलेनच  
स्त्रीणां चैव तुशूद्राणामामश्राद्धं प्रशस्यते । आमंचतुर्गुणं देयं ब्राह्मणानां युधिष्ठिर  
वेदोक्तेनविधानेन द्विजाः पूज्याः प्रयत्नतः । हस्तमात्रैः कुशिक्षेचितिलैश्चैवाक्षतैर्नृप

चिप्रा उदङ्मुखाः कार्याः स्वयं वै दक्षिणामुखाः ।

दर्भेषु निक्षिपेदन्नमित्युच्चार्य द्विजाव्रतः ॥ २० ॥

प्रेता यान्तु परेलोके तीर्थस्याऽस्य प्रभावतः । पापं मेप्रशमं यानुण्तुवृद्धिं शुभंसदा

वृद्धिं यातु सदा वशो ज्ञानिवर्गोद्विजोत्तम । एवमुच्चार्यविप्राय दानदेयंस्वशक्तिं  
 गौभृतिसाहिरण्यादि घात्रं वस्त्रस्वशक्तिं । दातव्यपाण्डुवध्रेष्ठं पारोक्ष्यवराधमे  
 यं शृण्वन्ति परं भक्त्या मुच्यन्ते सयथात्मैः ॥ २४ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्रपा सहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे  
 रेखाखण्डे पारोक्ष्यवराधीयं माहात्म्यवर्णननामप्रदसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

भीमेश्वरतीर्थं माहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

भीमेश्वर ततो गच्छेत्सर्वपापक्षयङ्कुरम् । मेचितं ऋषिसङ्घं भीमवतधरं शुभे ॥

तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा सोपवासो जितेन्द्रियः ।

अपेदेवाक्षर मन्त्रमूर्धवाद्बुद्धिवाकरे ॥ २ ॥

तस्य जन्मार्जितपापं तत्क्षणादेव नश्यति । सप्तवन्मार्जित पापगायत्र्यानश्यते ध्रुवम्  
 दशभिर्जन्मभिनातशतेन तु पुराकृतम् । सहस्रेण त्रिजन्मोत्थगायत्री हन्ति क्विल्यम्  
 र्घदिक् लौकिकं चापि जाप्यं जप्तं नरोत्तरं । तत्क्षणाद्ब्रह्मैतं सर्वं तृणन्तु ज्वलन्तो यथा  
 न देववत्मा धित्य कदाचित्पापमाचरेत् । अज्ञाना प्रश्यते क्षिप्रं नोत्तरं तु कदाचन  
 तत्र तीर्थे तु यो दानशक्तिमाधित्यं चाचरेत् । तदक्षयफलसर्वं जायते पाण्डुतन्दनं  
 इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्रपा सहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे  
 रेखाखण्डे भीमेश्वरतीर्थं माहात्म्यवर्णननामसप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

अष्टसप्ततितमोऽध्यायः  
नारदेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्रनारदेश्वरमुत्तमम् । तीर्थानां परमं तीर्थं निर्मितं नारदेन तु ॥

युधिष्ठिर उवाच

नारदेन मुनिश्रेष्ठ कस्मात्तीर्थं चिनिर्मितम् । एतदाख्याहिमे सर्वंप्रसन्नोयदिसत्तम!

श्रीमार्कण्डेय उवाच

परमेष्ठिसुतः पार्थ! नारदो मुनिसत्तमः । रेवायाश्चोत्तरे कूले तपस्तेन पुरा कृतम् ॥

नवनाडीनिरोधेन काष्ठावत्यां गतेन च । तोपितः पशुभर्ता वै नारदेन युधिष्ठिर !

ईश्वर उवाच

तुष्टोऽहं तव विप्रेन्द्र! योगिनाथ अयोनिज !। चरंप्रार्थय मे वत्स यत्ते मनसि वर्तते

नारद उवाच

त्वत्प्रसादेन मे शम्भो योगश्रैव प्रसिध्यतु । अचलाते भवेद्भक्तिः सर्वकालं ममेव तु  
स्वेच्छाघारी भवे देव वेदवेदाङ्गपारगः । त्रिकालज्ञोजगन्नाथगीतज्ञोऽहं सदा भवे  
दिनेदिने यथा युद्धं देवदानवमानुषैः । पातालेमर्त्यलोके वा स्वर्गे वाऽपि महेश्वर  
पश्येयं त्वत्प्रसादेन भवन्तं पार्वतीं तथा । तीर्थं लोकेषु विख्यातं सर्वपापक्षयङ्करम्

ईश्वर उवाच

एवं नारद! सर्वं तु भविष्यति न संशयः । चिन्तितं मत्प्रसादेन सिद्धं यत्तेनात्र संशयः

स्वेच्छाघारो भवेर्वत्स स्वर्गे पातालगोचरे ।

मर्त्ये वा भ्रम वै योगिन्न केनाऽपि निवार्यसे ॥ ११ ॥

सप्त स्वराख्यो ग्रामा मूर्च्छनाश्चैकविंशतिः ।

ताना एकोनपञ्चाशत्प्रसादान्मे तव ध्रुवम् ॥ १२ ॥

मम प्रियङ्कर दिव्य नृत्यगीत भविष्यति । कलिं च पश्यसेनित्य देवदानवकिन्नरै  
 र्वत्तीर्थं भूतले पुण्य मप्रसादाद्भविष्यति । वेद्वेदाद्गतस्वज्ञो ह्यशेषज्ञानकोविदः ॥

एकस्त्वममि नि सङ्गो मत्प्रसादेन नारदः ॥ १४ ॥

इत्युक्त्यान्तदधे देवो नारदस्तत्र शूलिनम् ।

स्थापयामास राजेन्द्र सर्वसत्त्वोपकारकम् ॥ १५ ॥

पृथिव्यामुत्तम तीर्थं निर्मितनारदेन तु । तत्र तीर्थे नृपश्रेष्ठ यो गच्छेद्विजितेन्द्रिय  
 मासि भाद्रपदे पाथः कृष्णपक्षे चतुर्दशी ।

उपोष्य परया भक्त्या रात्रौ कुर्वीत जागरम् ॥ १७ ॥

छत्र तत्र प्रदातव्य ब्राह्मणे शुभलक्षणे । शस्त्रेणतु हता येवै तेषां श्राद्ध प्रदापयेत् ॥  
 ते यान्ति परम लोक पिण्डदानप्रभाषतः ॥ १८ ॥

कपिलास्तत्रदातव्यापितृनुदिश्यभारतः । इत्युच्चार्यद्विजेदेव्यायान्तु ते परमागतिम्  
 अस्य श्राद्धस्य भावेन ब्राह्मणस्यप्रसादतः । नमदातोयभावेनन्यायार्जितधनस्यच

तेषां चैव प्रभावेण प्रेता यान्तु परा गतिम् ॥ २० ॥

इत्युच्चार्य द्विजे देवा दक्षिणा च स्वशक्तिः ।

हविष्यान्न विशालाक्षः द्विजानां चैव दापयेत् ॥ २१ ॥

दीपं भक्त्या प्रदातव्य नृत्य गीत च कारयेत् ।

अवाप्त तैर्न वै सर्वं यः करोतीश्वरात्पथे ॥ २२ ॥

न याति रुद्रसाक्षिभ्यमिति रुद्र स्वयं जगौ ।

विद्यादानेन चैत्रेण अक्षया गतिमाप्नुयात् ॥ २३ ॥

ध्रुवहास्तत्रदातव्याभूमि सस्यवती नृप । चित्रभानु शुभेमन्त्रे प्रीणयेत्तत्रमक्तिः  
 आज्येन सुप्रभूतेन होमद्रव्येणभारतः । ये यजन्ति सदा भक्त्या त्रिकालनृत्यग्रेयश्च

तीर्थे नारदनामाख्ये रेवायाश्चोत्तरे तटे । चित्रभानुमुखादेवा सर्वदेवमयो ऋषि  
 ऋषिणा प्रीणिता सर्वे तस्मात्प्रीत्योः\* हुताशनः ।

पूजिते हव्यवाहे तु दारिद्र्यं नैव जायते ॥ २७ ॥

धनेन विपुला प्रीतिर्जायते प्रतिजन्मनि । कुलीनाश्च सुवेपाश्च सर्वकालं धनेन तु  
प्लवो नदीनां पतिरङ्गनानां राजा च सद्वृत्तरतः प्रजानाम् ।

धनं नराणामृतवस्तरूपां गतं गतं यौचनमानयन्ति ॥ २६ ॥

धनदत्वं धनेशेन तस्मिंस्तीर्थे ह्यर्पितम् । यमेनच यमत्वं हि इन्द्रत्वंघैवचज्जिणा  
अन्यैरपि महीपालैः पार्थिवत्वमुपार्जितम् ।

नारदेश्वरमाहात्म्याद् ध्रुवो निश्चलतां गतः ॥ ३१ ॥

सर्वतीर्थवरं तीर्थं निर्मितं नारदेन तु । पृथिव्यां सागरान्तायां रेवायाश्चोत्तरे तटे  
तद्वरं सर्वतीर्थानां महापातकनाशनम् ॥ ३२ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे  
रेवाखण्डे नारदेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥७८॥

## एकोनाशीतितमोऽध्यायः

दधिस्कन्दमधुस्कन्दतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमाण्डेय उवाच

गतो गच्छेत्तु राजेन्द्र! तीर्थद्वयमतुत्तमम् । दधिस्कन्दंमधुस्कन्दं सर्वपापक्षयङ्करम्

दधिस्कन्दे नरः स्नात्वा यस्तु दद्याद् द्विजे दधि ।

उपतिष्ठेत्ततस्तस्य सप्तजन्मनि भारत ! ॥ २ ॥

न व्याधिर्न जरा तस्य न शोको नैव मत्सरः ।

दशचन्द्रशतं यावज्जायते विमले कुले ॥ ३ ॥

मधुस्कन्देऽपि मधुना मिश्रितान्यस्तिलान्ददेत् ।

नाऽसौ वैवस्वतं देवं पश्येद्द्वै जन्मसप्ततिम् ॥ ४ ॥



मधुनासह सम्मिथ पिण्डयस्तुप्रदापयेत् । तस्यपीत्रप्रपीत्रेम्योदारिद्र्यनैवजायते  
 दधिभिः सहसमिथ पिण्ड यस्तु प्रदापयेत् ।  
 तस्मिंस्तीर्थे नर स्नात्वा विधिषदक्षिणामुख ॥ ६ ॥  
 पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामह ।  
 द्वादशाश्वानि तुप्यन्ति नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ ७ ॥  
 इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां सहिताया पञ्चमेऽवन्तीखण्डे  
 रेवाखण्डे दधिस्कन्दमधुस्कन्दतीर्थमाहात्म्यवर्णन  
 नामैकोनाशीतितमोऽध्याय ॥ ७६ ॥

### अशीतितमोऽध्यायः

नन्दिकेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र नन्दिकेश्वरमुत्तमम् । यत्रसिद्धो महानन्दीतलेसर्ववदाम्यहम्  
 रेवाया पुरतः कृत्वा पुरा नन्दीगणेश्वर । तपस्तपजयं कुर्वंस्तीर्थात्तीर्थंजगाम ह  
 दधिस्कन्द मधुस्कन्द यावत्स्यत्वा तु गच्छति ।  
 तावत्तुणे महादयो नन्दिनाथमुवाच ह ॥ ३ ॥

श्वर उवाच

भोभो प्रमन्नो नन्दीश परकृणुयथेप्सितम् । तपसातेनतुष्टोऽह तीर्थंवात्राहृतेन ते  
 नन्दीश्वर उवाच

न चाऽहं कामये वित्त न चाऽहं कुलसन्ततिम् ।  
 मुक्त्वा न कामये काम तप पादाम्बुजात्परम् ॥ ५ ॥  
 वृमिर्काटपतङ्गेषु तियग्योनि गतस्य वा ।

जन्म जन्मान्तरेऽप्यस्तु भक्तिस्त्वयि ममाऽचला ॥ ६ ॥

तथेत्युक्त्वा महादेवः परया कृपया नृप !।

गृहीत्वा तं करे सिद्धं जगाम निलयं हरः ॥ ७ ॥

तस्मिंस्तीर्थे तु यः स्नात्वा भक्त्या व्यक्षं प्रपूजयेत् ।

अग्निप्रोमस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥ ८ ॥

तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा प्राणत्यागं करोति चेत् ।

शिवस्याऽनुचरो भूत्वा मोदते कल्पमक्षयम् ॥ ९ ॥

ततः कालेन महता जायते विमले कुले । वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो जीवेच्च शरदां शतम्  
एतत्तेकथितं तात ! तीर्थं माहात्म्यमुत्तमम् । दुर्लभं मर्त्यसञ्ज्ञस्य सर्वपापक्षयं करम्  
इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे  
रेवाखण्डे नन्दिकेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नामाशीतितमोऽध्यायः ॥८०॥

## एकाशीतितमोऽध्यायः

### वरुणेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेन्महाराज वरुणेश्वरमुत्तममम् । यत्र सिद्धो महादेवो वरुणो नृपसत्तम  
पिण्याकशाकपर्णेश्च कृच्छ्रचान्द्रायणादिभिः ।

आराध्य गिरिजानाथं ततः सिद्धिं परां गतः ॥ २ ॥

तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा सन्तर्प्य पितृदेवताः ।

पूजयेच्छङ्करं भक्त्या स याति परमां गतिम् ॥ ३ ॥

कुण्डिकावर्द्धनीं वाऽपि महद्वा जलभाजनम् । अन्नेन सहितं पार्थतस्य पुण्यफलं शृणु  
यत्फलं लभते मर्त्यः सन्नेद्वादशवर्षिके । तत्फलं समवाप्नोति नाऽत्र कार्या विचारणा  
सर्दपामेव दानानामन्नदानं परं स्मृतम् । सद्यः प्रीतिकरं तोयमन्नं च नृपसत्तम ! ॥ ६ ॥

तत्र तीर्थे मृतानां तु नराणां भावितात्मनाम् ।

घरुणास्य पुरे वासो यावदाभूतसप्लवम् ॥ ७ ॥

पश्चात्पूर्णे तत्र काले मर्त्यलोके प्रनायने । अन्नदानप्रदो नित्य जीवेद्वर्षशतं नरः ।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्या सहिनाया पञ्चमेऽध्यायखण्डे

रेवाखण्डे वरुणेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णननामैकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

## द्विचशीतितमोऽध्यायः

### दधिस्कन्दादिपञ्चतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

सतो गच्छेन्महीपालवह्नितीर्थमनुत्तमम् । यत्रसिद्धोमहातेजास्तप कृत्वाहुताशनः

सर्वभक्ष्यं कृतो योऽसौ दण्डके मुनिना पुरा ।

नमदातदमाधित्य पूतो जातो हुताशनः ॥ २ ॥

तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा पूजयित्वा महेश्वरम् ।

अग्निप्रवेशं कुरुते स गच्छेदग्निस्ताम्यताम् ॥ ३ ॥

भक्त्या स्नात्वा तु यस्तत्र तर्पयेत्पितृदेवताः ।

अग्निष्टोमस्य यज्ञस्य फलमाप्नोत्यसशयम् ॥ ४ ॥

नस्येयाऽनन्तरराजन्कौबेरतीर्थमुत्तमम् । कुबेरोयत्र भसिद्धोयक्षाणामधिपः पुरा

तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा समन्यच्य जगद्गुहम् ।

उमया सहितः भक्त्या सवपापं प्रमुच्यते ॥ ६ ॥

तत्र तार्यं तु यः स्नात्वा दद्याद्विप्राय काञ्चनम् ।

नाभिमात्रं जले तिष्ठन्म लभेतावुर्द्धं फलम् ॥ ७ ॥

दधिस्कन्दे मधुस्कन्दे नन्दीशो घरुणालये ।

आग्नेये यत्फलंतात स्नात्वा तत्फलमाप्नुयात् ॥ ८ ॥

ते वन्द्या मानुषे लोके धन्याःपूर्णमनोरथाः । यैस्तुदृष्टंमहापुण्यंनर्मदातीर्थपञ्चकम्  
ते यान्ति भास्करे लोके परमे दुःखत्राशने । भास्करादैश्वरेलोकेचैश्वरादनिवर्त्तके  
नीयतेसपरेलोकेयावदिन्द्राश्चतुर्दश । ततःस्वर्गाच्चयुतोमर्त्यो राजाभवतिधार्मिकः  
सर्वरोगविनिर्मुक्तोभुनक्तिसञ्चराचरम् । विष्णुश्च देवता येषानर्मदातीर्थसेविनाम्  
अखण्डितप्रतापास्ते जायन्ते नाऽत्र संशयः ।

गङ्गा कनखले पुण्या कुरुक्षेत्रे सरस्वती ॥ १३ ॥

ग्रामे वा यदिवाऽरण्ये पुण्यासर्वत्रनर्मदा । रेवातीरेवसेन्नित्यं रेवातोयंसदापिवेत्  
स स्नातः सर्वतीर्थेषुसोमपानंदिनेनिने । गङ्गाद्याःसरितःसर्वाःसमुद्राश्चसरांसिघ  
कल्पान्ते सङ्क्षयं यान्ति न मृता तेन नर्मदा ॥ १५ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणएकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां पञ्चमेऽवन्ताखण्डे  
रेवाखण्डे दधिस्कन्दादिपञ्चतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम द्वयशीतितमोऽध्यायः.

## त्रयशीतितमोऽध्यायः

हनूमन्तेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेन्महाराज तीर्थं परमशोभनम् । ब्रह्महत्याहरं प्रोक्तं रेवातटसमाश्रयम् ॥

हनूमताभिधं ह्यत्र विद्यते लिङ्गमुत्तमम् ॥ १ ॥

युधिष्ठिर उवाच

हनूमन्तेश्वरं नाम कथं जातं वदस्व मे । ब्रह्महत्याहरं तीर्थं रेवादक्षिणसंस्थितम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

साधुसाधु महाबाहो! सोमवंशविभूषण !

गुह्याद् गुह्यतर तीर्थं नाख्यात कस्यचिन्मया ॥ ३ ॥

नव स्नेहात्प्रथम्यामि पीडितो वाङ्मकेन तु । पूर्वं जात महद्युद्धं रामरावणयोरपि  
पुत्रस्तयो ब्रह्मण पुत्रो विश्रवास्तस्य वै सुत ।

रावणम्लेन संवातो दशास्यो ब्रह्मराक्षस ॥ ५ ॥

शैलोन्मविजयीभूत प्रसादाच्छूलिन स ध ।

गीर्वाणा विजिता सर्व रामस्य गृहिर्णा हुता ॥ ६ ॥

धारित कुम्भकर्णेन सीता मोघयमोघय । विभावणेन वै पापोमन्दोदर्यापुन-पुन-  
त्वं जित कान्तवीयणरेणुकेयेनमोऽपि ध । सरामोराममद्रेणतस्यसडब्धेक्यजय

रावण उवाच

यानरेक्ष नरेऋर्धैर्धराहेक्ष निरायुधे । देवासुरसमूहेक्ष न जितोऽह फदाचन ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

सुप्रीचहनुमद्गया ध कुमुदेनाङ्गदेन ध । एतैरन्यै महावीक्ष रामचन्द्रेण वै जित  
रामचन्द्रेण पौलस्त्यो हत सडब्धे महाबल । घनभग्नहताशूरा भ्रमजनसुतेन ध

रावणस्य सुतो जन्येहतध्याक्षकुमारक । शायामोरक्षसां भीम सपिष्टीवानरेणतु  
एवं रामायणे वृते सीतामोक्षे वृते सति । अयोभ्यातुगतैरामेहनुमान्समहाकपि

कीलासाख्य गत शील प्रणामाय महेशितु ।

तिष्ठतिष्ठेत्यऽसी प्रोक्तो नन्दिना धानरोत्तम ॥ १४ ॥

ब्रह्महत्यायुतस्त्वं हि राक्षसाना धधेन हि । भैरवस्य सभानूत नद्रण्यत्त्वयाकपे  
हनुमानुवाच

नन्दिनाथं हरं पूच्छ पातकन्योपशान्तिदम् ।

पापोऽहं प्लवगो यस्मात्सञ्जात कारणान्तरात् ॥ १६ ॥

नन्दुवाच

रुद्रदेहोद्भवार्कि ते न श्रुताभूतले स्थिता । अधणाञ्जन्मजनितं द्विगुणकीर्तनाद्दृग्नेत्  
त्रिशञ्जन्मार्जितं पापं न श्येद्रेयापगाहनात् । तस्मात्त्वं नर्मदातीरगन्थाघत्तपोमहत्

गन्धवाहसुतोऽप्येवंनन्दिनोक्तंनिशम्य च । प्रयातोर्नर्मदातीरमौर्व्यादक्षिणसङ्गमम्  
दध्यौ सुदक्षिणे देवं विरूपाक्षंत्रिशूलिनम् । जटामुकुटसंयुक्तंव्यालयज्ञोपवीतिनम्  
भस्मोपचितसर्वाङ्गं डमरुस्वरनादितम् । उमार्द्धाङ्गहरंशांतंगोनाथासनसंस्थितम्  
चत्सरान्तसुवह्न्यावदुपासाञ्चक्र ईश्वरम् । तावत्तुष्टो महादेव आजगामसहोमया  
उवाच मधुरां वाणीं मेवगम्भीरनिस्वनाम् ।

साधुसाध्वित्युवाचेशः कष्टं वत्स त्वया कृतम् ॥ २३ ॥

नचपूर्वत्वयापापंकृतंरावणसङ्क्षये । स्वामिकार्यंरतस्त्वंहिसिद्धोऽसिममदर्शनात्  
हनुमांश्च हरं द्रष्टु उमार्द्धाङ्गहरं स्थितम् ।

साष्टाङ्गं प्रणयोऽवोचजय शम्भो! नमोऽस्तु ते ।

जयाऽन्धकविनाशाय जय गङ्गाशिरोधर ! ॥ २५ ॥

एवं स्तुतो महादेवो वरदो वाक्यमब्रवीत् । वरं प्रार्थय मे वत्स प्राणसम्भवसम्भव  
श्रीहनूमानुवाच

अह्नरक्षोवधाज्जाता मम हत्या महेश्वर । न पापोऽहंभवेदेव युष्मत्सम्भाषणेक्षणात्  
ईश्वर उवाच

नर्मदातीर्थमाहात्म्याद्धर्मयोगप्रभावतः । मन्मूर्त्तिदर्शनात्पुत्र निष्पापोऽसिनसंशयः  
अन्यञ्च ते प्रयच्छामि वरं वानरपुङ्गव ! । उपकारायलोकानां नामानितव मारुते  
हनूमानञ्जनिस्तुतोवायुपुत्रोमहाबलः । रामेष्टःफाल्गुनोगोत्रःपिङ्गाक्षोऽमितविक्रमः  
उदधिक्रमणश्रेष्ठो दशग्रीवस्य दर्पहा । लक्ष्मणप्राणदाता च सीताशोकनिवर्त्तनः  
इत्युक्त्वाऽन्तर्दधेदेव! उमयासह शङ्करः । हनूमानीश्वरंतत्र स्थापयामासभक्तिः  
आत्मयोगवलेनेव ब्रह्मचर्यप्रभावतः । ईश्वरस्य प्रसादेन लिङ्गं कामप्रदं हि तत् ॥

अच्छेद्यमप्रतर्क्यं च विनाशोत्पत्तिवर्जितम् ॥ ३३ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

हनूमन्तेश्वरे पुत्र! प्रत्यक्षप्रत्ययं शृणु । यद्ब्रूत्तं द्वापरस्यादौ त्रेतान्ते पाण्डुनन्दन  
सुपर्वा नाम भूपालो बभूव वसुधातले ।

तस्य राक्ष सदा सौख्यं नरा दीर्घायुषः सदा ॥ ३७ ॥

स पुत्रधनसयुक्तश्चारीरोपद्रव्यजितः । शतबाहुर्बभूवाऽस्य पुत्रो भीमपराक्रमः ॥

आसक्तोऽस्मीं सदा कालं पापधर्मनरेभ्यः ।

अटाटपत घरा सर्वा पर्वताश्च वनानि च ॥ ३७ ॥

षडधार्मं मृगयूयानामागतो विन्ध्यपर्वतम् ।

तद्वृजानिममार्कणं हस्तियूयसमाचिने ॥ ३८ ॥

सिंहघित्रकशोभाढ्यं मृगवाराहसङ्कुले । ब्राह्मिणत्वासवनेराजा नर्मदामानत वचितः ॥

हनुमन्तघनेप्राप्तः शतक्रोशप्रमाणके । घिघिणावनशोभाढ्यं कदम्बनरसङ्कुले ॥

नियं पालाशजम्बीरं करद्वखदिरैस्तथा ।

पाटलैर्वदरैर्युक्तं शमीतिन्दुकशोभितम् ॥ ४१ ॥

मृगयूयं समाच्छत्रशिखण्डिस्वरनादितम् ।

पारावतकसङ्घाना समन्तात्स्वरशोभितम् ॥ ४२ ॥

शरत्कालेऽरमद्राजा बहुले चाऽश्विनस्य स ।

धनमध्यगतोऽद्राक्षीद् भ्रमन्त पिङ्गलद्विजम् ॥ ४३ ॥

पुस्तिकाकरसस्थं च पप्रच्छ षपत्र द्विजम् ॥ ४४ ॥

शतबाहुरयाच

एकार्कं त्वं घने कस्माद् भ्रमसे पुस्तिकाकर ।

इतस्तोऽपि सम्पश्यन्कथयस्य द्विजोत्तम ॥ ४५ ॥

ब्राह्मण उवाच

कान्यकुब्जात्समायात प्रेषितो राजकन्यका ।

अस्थिक्षेपाय वै राजन्हनुमन्तेभ्यरे जले ॥ ४६ ॥

राजोवाच

अस्थिक्षेपो जले कस्माद्दनुमन्तेभ्यरे द्विज ।

क्रियते केन कायण साध्वर्यं कथ्यता मम ॥ ४७ ॥

सुपर्वणः सुतोऽयानं त्यक्त्वा भूमौ प्रणम्य च ।

कृताञ्जलिपुटोभूत्वाब्राह्मणायनरोऽवर ! । तमस्तं कथयामासवृत्तान्तंस्वं पुरातनम्

ब्राह्मण उवाच

शिवण्डीनाम राजाऽस्ति कान्यकुब्जे प्रतापवान् ।

अपुत्रोऽसौ महीपालः कन्या जाता मनोरथः ॥ ४६ ॥

जातिस्मरा सुघार्वङ्गी नर्मदायाः प्रभावतः ।

पित्रा च सैकदा कन्या विवाहाय प्रजल्पिता ॥ ५० ॥

वनित्ये पुत्रि! संसारे कन्यादानं ददाम्यहम् ।

श्वः कृत्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्ने चाऽपराह्निकम् ॥

न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतं घास्य न घाकृतम् ॥ ५२ ॥

कन्योवाच

दृच्छेयं यत्र काले हि तत्र देया त्वया पितुः ।

पुत्रीवाक्पादसौ राजा विस्मितो घातमववर्षीत् ॥ ५२ ॥

शिष्यण्ड्युवाच

कथ्यतां मे महाभागे! साश्चर्यं भाषितं त्वया ।

पितुर्वाक्येन सा बाला उत्तमा हागतान्तिकम् ॥ ५३ ॥

कथयामास वदवृत्तं हनूमन्तेश्वरे नृप । कलापिनी एहं तात युता भर्त्रावसं तदा

रेवोर्व्यासंगमान्निःस्र्या रेवायादक्षिणेतटे । हनूमन्तवनेपुण्येचिक्रीडाहं यदृच्छया

भर्तृयुक्ता च संसुभारजन्यां सरलेनगे । आगतालुब्धकास्तत्र क्षुधात्ताविनमुत्तमम्

भर्तृयोगयुता पापैर्दृष्टाऽहं वधच्छिन्तकैः । पाशवधंसमादाय बद्धाहं स्वमिनासह

श्रीषां ते मोटयामासुः पिच्छाच्छोदनकं कृतम् ।

दुताशनमुखे तैस्तु सह कान्तेन लुब्धकैः ॥ ५८ ॥

परिमज्ज्यावयोर्मांसं भक्षयित्वा यथेष्टतः ।

सुप्ताः स्वस्थेन्द्रियाः रात्रौ सा गताः शर्वरी क्षयम् ॥ ५९ ॥



प्रभाते मासशेखरं जम्बुकैर्गृध्रघातिमि ।

मच्छरीरोद्भवं चास्थि ख्यायुमांसेन घावृतम् ॥ ६० ॥

गृहीत घातिर्नकेन चाकाशात्पतित तदा ।

त मामभक्षणं दृष्ट्वा परे पक्षिण आगता ॥ ६१ ॥

दृष्ट्वा पक्षिसमूहं तु अस्थिखण्डं व्यसर्जयत् ।

विहगानां समस्नानां घावतां चैव पश्यताम् ॥ ६२ ॥

पतित नर्मदातोये हनूमन्लेश्वरे नृप । मदीयमस्थिखण्डं च पतित नर्मदाजले ॥ ६३

तस्यतीर्थस्यपुण्येनजाताऽहपुरिका तव । भूपकन्यात्वद्विजातापूर्णचन्द्रनिमानना

जातिस्मरानरेन्द्रस्यमज्जाताभगत कुत्रे । तस्माद्विवाहं नेच्छामिममभर्तानृपोत्तम

विषमे वसन्तेऽद्यापि शत्रुन्तमृगजातिषु ।

तस्यास्थिशेषं राजेन्द्र! तस्मिंस्तीर्थे भविष्यति ॥ ६६ ॥

तत्क्षेपणार्थं वै तात प्रेय्याऽद्य द्विजोत्तमम् । एतत्ते सर्वमाख्यात कारणनृपसत्तम

मद्भर्ता विषमे स्थाने शत्रुन्तमृगजातिषु । यदि प्रेयसे नात कञ्चित्त्वं नर्मदातटे

तस्याहं कथयिष्यामि स्थानैर्द्विद्वैश्वलक्षितम् ।

शिरण्डिनाऽप्यहं तत्र द्वादशो ह्यवनीपने ॥ ६६ ॥

दास्यामिचिशतिप्रामाण्यगच्छत्वं नर्मदातटे । प्रेरणमेप्रतिज्ञातमलक्ष्म्यापीडितेनतु

वन्योघाघ

गच्छ त्वं नर्मदापुण्यांसर्वपापक्षयद्वुरीम् । आग्नेष्यांसोमनाथस्यहनूमन्लेश्वरपर

अक्षप्रवेशेन रेखाया विस्तीर्णो वटपादप । करञ्ज कटहलैश्च सन्निधाने घटान्य च

न्यप्रोधमूलमाश्रित्ये सूक्ष्मान्यस्वीनि द्रश्यमि ।

समृद्य तानि सगृह्य गच्छ रेवां द्विजोत्तम ॥ ७३ ॥

आभिनसत्याऽन्नित पक्षे त्रिपुरारस्तु ये तिथी ।

स्नाप्य त्रिशूलिनं भक्त्या राश्रीं त्वं कुरु जागरम् ॥ ७४ ॥

क्षिपे प्रमात तानि त्वं नाभिमात्रजलस्थित ।

इत्युच्चार्यं द्विजश्रेष्ठ! विमुक्तिन्तस्य जायताम् ॥ ७१ ॥

क्षिप्त्वाऽस्यीनि पुनः स्नानं कर्त्तव्यं त्वघनाशनम् ।

पयं कृते तु राजेन्द्र! गतिन्तस्य भविष्यति ॥ ७६ ॥

कथितं कन्यया यच्च तत्सर्वं पुस्तिकाकृतम् ।

आगतोऽहं नृपश्रेष्ठ! तीर्थेऽप्र दुरितापहो ॥ ७७ ॥

सोऽमिरानंततोदृष्टानीत्वाऽस्यीनिनरेश्वरः! पूर्वोक्तेनविधानेनप्राक्षिपंतर्मदाम्भसि

पुष्यवृष्टिःपपाताऽऽशु साधुमाध्विति पाण्डव !

विमानं च ततो दिव्यमागतं वर्हिणस्तदा ॥ ७६ ॥

दिव्यरूपधरो भूत्वा गतो नाफे कलापवान् ।

पयं तु प्रत्ययं दृष्ट्वा हनूमन्तेश्वरे नृप ॥ ८० ॥

चकारानशनं विप्रः शतबाहुश्च भूपतिः । शोषयामासतुस्तीं स्वर्माश्वराराधनेरतीं

ध्यायन्तीं तस्यतुर्द्वयं शतबाहुद्विजोत्तमीं । मासाधेनमृतोराजा शतबाहुर्महामनाः

किङ्कणीजालशोभाढ्यं विमानं तत्रचागतम् । साधुस्ताधुनृपश्रेष्ठविमानारोहणंकुरु

शतबाहुरुवाच

नायामि स्वर्गमार्गाग्रं विप्रो याचन्न नंस्थितः ।

उपदेशप्रदो मह्यं गुरुरूपी द्विजोत्तमः ॥ ८४ ॥

अप्सरस ऊचुः

लोभावृतो ह्ययं विप्रो लोभात्पापस्य संग्रहः ।

हनूमन्तेश्वरे राजन् ! ये मृताः सत्त्वमास्थिताः ॥ ८५ ॥

ये यान्ति शाङ्करेलोके सर्वपापक्षयङ्करे । नैवपापक्षयध्यास्य ब्राह्मणस्य नरेश्वर ! ॥

गृहं च गृहिणीञ्चित्तब्राह्मणस्य प्रवर्त्तते । शतबाहुस्ततो विप्रमुवाच विनयान्वितः

त्यजमूलमनर्थस्यलोभमेनंद्विजोत्तम । इत्युक्त्वास्वर्ग्ययोराराजास्वर्गकन्यासमावृतः

दिनेः कौश्विद्रतो विप्रः स्वर्गं वेतालिकैर्धृतः ।

चर्हो च काशीराजस्य पुत्रस्तीर्थप्रभवतः ॥ ८६ ॥

आत्मानं कन्यया दत्तं पूर्वजन्म व्यचिन्तयन् ।

सा च तं प्रौढमालोक्य पितुराज्ञामवाप्य च ॥

स्वयम्बरे स्वभर्तारं लेभे साध्या नृपात्मजम् ॥ ६० ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

एतद्वृत्तान्तमभवत्स्मिन्स्तीर्थेनृपोत्तम । एतस्मात्कारणान्मेभ्यताधमेतत्सदात्

अप्रम्याचा चतुर्दश्या सर्वकालनरेभ्यः । विशेषाच्चाग्निनेमामि वृष्णपक्षेचतुर्दशी

स्नापयेद्दाश्वर भक्त्या क्षौद्रक्षीरेण सर्पिणा ।

दध्ना च खण्डयुक्तेन कुरातोयेन वै पुनः ॥ ६३ ॥

श्रीखण्डेन सुगन्धेन गुण्डयेच्च महेश्वरम् । ततः सुगन्धपुष्पीञ्च विश्वपत्रैश्च पूजये

मुचुकुन्देनकुन्देन जातीकाशकुशोद्भवैः । उमन्नमुनिपुष्पीञ्चैः पुष्पैस्तत्कालसम्भवं

अभयेत्परया भक्त्या हनूमन्तेश्वर शिवम् । गुनन दापयेद्द्वीप मैलेन तद्भायत

श्राद्धं च कारयेत्तत्र ब्राह्मणैर्वेदपारगैः । सर्वलक्षणसम्पूर्णैः कुर्वाणैर्गृहपालैर्ब

तपयेद्ब्राह्मणान् भक्त्या घसनाभ्रहिरण्यतः ।

नरकस्था दिव यान्तु प्रोच्येति प्रणमेद् द्विजान् ॥ ६८ ॥

पतितान्वजयेद्ब्रह्मविप्रान्वृषली यस्य गेहिनी । स्ववृषश्चापस्तिवज्यवृषैरन्यैर्गुणाय

वृषलीं तां चिदुर्द्धवा न शूद्री वृषली भवेत् । ब्रह्महत्या सुरापान गुरदारनियेण

सुवर्णहरणन्यास मित्रद्रोहोद्भव तथा । नश्यते पातकं सर्वमियेव शङ्करोऽग्रवी

श्रीमार्कण्डेय उवाच

वाक्प्रलापेन भो घत्स यदुनोक्तेन किं मया । सर्वपातकसयुक्तो दद्याद्दानद्विजन्मं

गोदानञ्च प्रकृतव्यमस्मिन्स्तीर्थ विशेषतः ।

गोदानं हि यत् पाथं सर्वदानाधिकं स्मृतम् ॥ १०३ ॥

मघदेवमया गावसचदेवास्तदात्मका । शृङ्गाश्रेणुमर्हापाल शक्रोवसतितिव्यश

उरस्कन्दशिरोऽखाललान्पृथग्भव्यज । चन्द्रार्कलोचनेर्देशोजिह्वायाञ्चसरस्यर्त

मण्डपानां सदा साध्या यस्या दन्ता नरेभ्यः ।

हुङ्कारे चतुरो वेदान्विद्यात्साङ्गपदक्रमान् ॥ १०५ ॥

ऋषयो रोमकूपेषु ह्यसङ्ख्यातास्तपस्विनः ।

दण्डहेस्तो महाकायः कृष्णो महिषवाहनः ॥ १०६ ॥

यमः पृष्टस्थितो नित्यं शुभाशुभपरीक्षकः ।

चत्वारः सागराः पुण्याः क्षीरधाराः स्तनेषु च ॥ १०७ ॥

विष्णुपादोद्भवा गङ्गा दर्शनात्पापनाशिनी ।

प्रस्रावे संस्थिता यस्मात्तस्माद्बन्धा सदा बुधैः ॥ १०८ ॥

लक्ष्मीश्च गोमये नित्यं पवित्रा सर्वमङ्गला ।

गोमयालेपनं तस्मात्कर्त्तव्यं पाण्डुनन्दन ! ॥ १०९ ॥

गन्धर्वाप्सरसोनागाः खुराश्रेषु व्यवस्थिताः ।

पृथिव्यां सागरान्तायां यानि तीर्थानि भारत !

तानि सर्वाणि जानीयाद्दौर्गव्यं तेन पाचनम् ॥ ११० ॥

युधिष्ठिर उवाच

सर्वदेवमयी धेनुर्गोर्वाणाद्यैरलङ्कृता । एतत्कथयमे तात कस्माद्गोषु समाश्रिताः

श्रीमार्कण्डेय उवाच

सर्वदेवमयो विष्णुर्गावो विष्णुशरीरजाः ।

देवास्तदुभयात्तस्मात्कल्पिताविविधा जनैः ॥ ११२ ॥

श्वेता वा कपिला वापि क्षीरिणी पाण्डुनन्दन ।

सवत्सा च सुशीला च सितवस्त्राऽवगुण्ठिता ॥ ११३ ॥

कांस्यद्रोहनिका देया स्वर्णशृङ्गी सुभूषिता ।

हनुमन्तेश्वरस्याऽग्रे भक्त्या विप्राय दापयेत् ॥ ११४ ॥

नियमस्थेनसा देयास्वर्गमानन्त्यमिच्छता । असमर्थायैवेद्युर्विष्णुलोकेप्रयान्तिने  
असौलोकेच्युतोर्राजन्भूतले द्विजमन्दरे । कुशलोजायतेपुत्रोगुणविद्याधनर्द्धिमान्  
सर्वपापहरं तीर्थं हनुमन्तेश्वरं नृप ! शृण्वन्विमुच्यते पापाद्घर्णसङ्कुसम्भवात् ॥

दूरस्थश्चिन्तयन्परयन्मुच्यते नाऽत्र संशयः ॥ ११८ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्या संहिताया पञ्चमेऽवन्तीखण्डे

रेवाखण्डे हनुमन्तेभरतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम

अशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

### चतुरशीतितमोऽध्यायः

कपितीर्थरामेश्वरलक्ष्मणेश्वरकुम्भेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

अश्वेतोदाहरन्तीभमितिहामं पुरातनम् ।

कैलासे पृच्छन्ते भक्त्या यणमुत्साय शिचोदितम् ॥ १ ॥

इति उवाच

पूर्वत्रेतायुगेस्कन्दं हतोरामेणरावण । चतुर्दश तदा कोट्यो निहता ब्रह्मरक्षसाम्

हनेषु तेषु धी तत्र रक्षणाय दिवीकसाम् । महानन्दस्तदा जातस्त्रिषु लोकेषु पुत्रक

तत मीतासमासाद्यममवानरपुङ्गवै । रामोऽप्ययोध्यामायातो भरतेनकृतोत्सव

तरुमे समर्पयामास स राज्यं लक्ष्मणाग्रज ॥ ४ ॥

तस्मिन्प्रशासति ततो राज्यं निहतकण्टकम् ।

कृतकार्योऽथ हनुमान्कैलासमत्पुरा ॥ ५ ॥

ततो नन्दीप्रतीहारोरुद्राशमपि तं कपिम् । नक्षत्रङ्गमयामानख्द्रेणाऽधोचहारिणा

तेन पृणस्तदा नन्दी किं मया पानक वृतम् ।

येन खद्वपुः पुण्यं न पश्याम्यम्बिकान्वितम् ॥ ७ ॥

नन्दुवाच

त्यथाऽचतरणं खने

थाऽपि हि कृत पापमुपमोगेनशाम्यति

हनुमानुवाच

किं मयाऽकारि तत्पापं नन्दिन्दैवार्थकारिणा ।

राक्षसाश्च हता दुष्टा चिप्रयशाङ्गवातिनः ॥ ६ ॥

ततन्तदालापकुतूहली हरो निजांशभाजं कपिमुग्रतेजसम् ।

उवाच द्वारान्तरदत्तदृष्टिः पुरः स्थितं प्रेक्ष्य कपीश्वरं पुनः ॥ १० ॥

ईश्वर उवाच

गङ्गा गया कपे! रेवा यमुना च सरस्वती । सर्वपापहरानद्यस्तामुन्नानं समाचर

नर्मदादक्षिणे कूले तीर्थं परमशोभनम् । सोमनाथसमीपस्थं तत्र त्वं गच्छ वानर

तत्र स्नात्वा महापापं गमिष्यति ममाऽऽजया ।

उत्पत्य वेगाद्धनुमाञ्छीरेवादक्षिणे तटे ॥ १३ ॥

जगाम सुमहानादस्तपश्चक्रे सुदुष्करम् । तस्य चै तप्यमानस्य रक्षोवधकृतं तमः

विलीनं पार्थ कालेन कियतेशप्रसादतः । ततो देवैः समं देवस्तत्तीर्थमगमद्भरः ॥

कपिमालिङ्ग्यामास घरं तस्मैप्रदत्तवान् । अद्यप्रभृति ते तीर्थं भविष्यति न संशयः

कपितीर्थं ततो जातं तस्यौ तत्र स्वयं हरः । हनूमन्तेश्वरोनाम्नासर्वहत्याहरस्तदा

तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा भक्त्या लिङ्गं प्रपूजयेत् ।

सर्वपापानि नश्यन्ति हरस्य घघनं यथा ॥ १८ ॥

तत्राऽस्थीनि विलीयन्ते पिण्डदानेऽक्षया गतिः ।

यत्किञ्चिद्दीयते तत्र तद्भि कोटिगुणं भवेत् ॥ १९ ॥

हनुमानप्ययोध्यायां रामद्रष्टुमथाऽगमत् । चकार कुशलप्रश्नंस्वस्वरूपंन्यवेदयत्

श्रीराम उवाच

कुर्वतोदेवकार्यं तेममकार्यं च कुर्वतः । ततोऽहमपिपापीयांस्तपस्तपस्याभ्यसंशयम्

तत्रैव दक्षिणे कूले रेवायाः पापहारिणि । षतुर्विंशतिवर्षाणि तपस्तेपेऽथराघवः

ज्योतिष्मतीपुरीसंस्थः श्रीरेवास्नानमाचरन् ।

स्थापयामासतुलिङ्गे तौ तदारामलक्ष्मणौ । प्रभावात्सत्यतपसोरेवार्तीरेमहामती

निष्पापता तदा वीरी जग्मन् रामलक्ष्मणौ ॥ २४ ॥

ततस्तदा देवपुरोगमो हरो गतो हि धै पुण्यमुनीवरै सह ।

आगत्य तीर्थं ध वर ददौ तदा निजा कला तत्र विमुच्य तीर्थे ॥ २५ ॥

मुनिभि सवतीर्थाता क्षित कुम्भोदक भुवि ।

एकस्य लिङ्गनामाध कलाकुम्भस्तथाऽभवत् ॥ २६ ॥

कुम्भेऽवर् इति ख्यातस्तदा देवगणार्धित ।

रामोऽपि पूजयामास तलिङ्गं देवसेवितम् ॥ २७ ॥

ततो धर ददौ देवो रामकीर्त्यभिदृष्टये । चतुर्विंशतिमे धर्षे रामो निष्पापतागत

यदा कन्यागत पद्भुगुरुणा सहितो भवेत् । तदेवदेवयात्रेयमिति देवा जगुमुदा ॥

यथा गोदावरीतीर्थं सवतीर्थफल भवेत् । तथाऽत्रेवास्नानेनलिङ्गानादर्शनेऽपि नाम्

करिष्यन्त्यत्र ये श्राद्धपितृणामप्रदातटे । कुम्भेऽवसमीपस्थास्तत्फलशृणुषुमुख

याचन्तो शोभकृपा स्यु शरीरेसवद्देहिताम् । ताचद्वर्षप्रमाणेनपितृणामभयाभति

पृथिव्या देवता सर्गं सर्वतीर्थानि यानि तु ।

तन्मन्त्रे तत्फल मर्त्या लिङ्गत्रयचिलोकनात् ॥ ३३ ॥

अपुत्रो लघनेपुत्रनिद्वनोधतमाप्नुयान् । सरोगोमुच्यतेरोगाक्षाऽत्रकायाविघारणा

सिंहराशिगते जीवे यत्स्याद्गोदावरीफलम् ।

तद्वद्वादशगुण स्वन्दं कुम्भेऽवसमीपत ॥ ३५ ॥

ये जानन्ति न पश्यन्ति कुम्भशम्भुमुपापतिम् ।

नर्मदादक्षिणे कृते तेषा जन्म निरथकम् ॥ ३६ ॥

यथा गोदावरीयात्राकसंगामुनिशासनात् । चतुर्विंशतिमे धर्षेनयेयदेवमापितम्

यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च यावद्धै दिवि नारका । तावत्तदक्षयं दानंरेवाकुम्भेऽवसान्तिके

महादानानि दीयानि तत्र लीकीर्विघ्नशून्ये । गोदान्प्रशंसन्ति सौम्यं राजनतया

स्नानेन किं पुनः स्कन्द ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥ ४० ॥

तत्र तीर्थेतुयःस्नात्वाश्राद्धं कुर्याद्युधिष्ठिर । एकोत्तरंकुलशतमुद्धरेच्छिवशासनात्  
यानि कानि च तीर्थानि चासमुद्रसरांसि च ।

शिवलिङ्गाच्च नस्येह कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ ४२ ॥

एवं देवा वरं दत्त्वाहरीश्वरपुरोगमाः । स्वस्थानमगमनपूर्वमुक्त्वातन्नामचोत्तमम्  
तीर्थस्याऽस्य वरं दत्त्वा स रामो लक्ष्मणाग्रजः ।

अयोध्यां प्रविवेशाऽसौ निष्पापो नर्मदाजलात् ॥ ४४ ॥

सौवर्णीं च ततः कृत्वा सीतां यज्ञं चकार सः ।

अनुमन्त्र्य मुनील्लोकान्देवताश्च निजं कुलम् ॥ ४५ ॥

पुरा त्रेतायुगे जातं तत्तीर्थं स्कन्दनामकम् ।

नियमेन ततो लोकैः कर्त्तव्यं लिङ्गदर्शनम् ॥ ४६ ॥

तावत्पापानि देहेषु महापातकजान्यपि । यावन्नप्रेक्षते जन्तुस्तत्तीर्थं देवसेवितम्  
ते धन्यास्ते महात्मानस्तेषां जन्म सुजीवितम् ।

ज्योतिष्मतीपुरीसंस्थं ये द्रक्ष्यन्ति हरं परम् ॥ ४८ ॥

तस्मान्मोहं परित्यज्य जनैर्गन्तव्यमादरात् ।

तीर्थाऽशेषफलावाप्त्यै तीर्थं कुम्भेश्वराह्वयम् ॥ ४९ ॥

मार्कण्डेय उवाच

श्रुत्वेति शम्भुवचसा स पडाननोऽथ नत्वा पितुःपदयुगाम्बुजमादरेण ।

सम्प्राप्य दक्षिणतटं गिरिशखवन्त्याःकीशाग्रयरामकलशाख्यशिवान् ददर्श  
इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायांपञ्चमैऽवन्तीखण्डे  
रेवाखण्डे कपितीर्थरामेश्वरलक्ष्मणेश्वरकुम्भेश्वरमाहात्म्यवर्णननामः

चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥



## पञ्चाशीतितमोऽध्यायः.

सोमनाथतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्रनर्मदाया पुरातनम् । ब्रह्महत्याहरतीर्थं वाराणस्यासमहितम् ।  
युधिष्ठिर उवाच

भाक्ष्यं कथ्यता ब्रह्मन्यद्वृतनमदातटे । वाराणस्या सम कस्मादेतत्कथयमे प्रभो  
निमग्नो दुःखससारे हृतराज्यो द्विजोत्तम ।  
युष्मद्गार्गीजठस्नातो निर्दुःख सह बान्धवै ॥ ३ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

माधुमाधु महाबाहोसोमवशविभूषण । पृणोऽस्मिदुल्लभतीर्थं शुराद्गुणतरपम्  
आदौ पितामस्तावत्समस्तजगत प्रभु ।  
मनसा तस्य सञ्जाता दशैव ऋषिपुङ्गवाः ॥ ५ ॥

मरीचिमथ्यङ्गिरसो पुत्रस्त्य पुलह मतुम् । प्रचेतस यमिष्ठ च भृगु नागमेव च  
जज्ञे प्राचेतस दश महातेजा प्रजापति ।  
दक्षस्याऽपि तथा जाता पञ्चाशद् दुहिता वि ॥ ७ ॥

ददौ स दश धमाय कश्यपाय त्रयोऽश । तथैव स महाभाग समविशतिमिन्द्रे  
रोहिणी नाम या नामामभीष्टा साऽभवद्विधो ।  
शेयामु वरुणा वृथा शनो दक्षेण चन्द्रमा ॥ ९ ॥

क्षयरोग्यमवशन्द्रो दक्षस्याय प्रजापते । सच शापप्रभावेण निस्तेजाः शर्वरीपति  
गत पितामह सोमो धेपमानोऽमृताशुमान् ।  
पद्मयोने नमस्तभ्य देवगम नमोऽस्तु ते ॥

ब्रह्मोवाच

निस्तेजाः शर्वरीनाथ कलाहीनश्च दृश्यसे । उद्विग्नमानसस्तात सञ्जातश्चेनहेतुना  
सोम उवाच

दक्षशापेन मे ब्रह्मन्निस्तेजस्त्वंजगत्पते । निहार्श्वाऽस्यशापस्यकथ्यतांमेपितामह  
ब्रह्मोवाच

सर्वत्र सुलभा रेवा त्रिपु स्थानेषु दुर्द्धभा । ओङ्कारेऽथभृगुक्षेत्रे तथाचैवोर्विसङ्गमे  
तत्र गच्छ क्षपानाथयत्र रेवान्तरं तदम् । त्वरितोऽसौ गतस्तत्रयत्ररेवोर्विसङ्गमः  
काष्ठावस्थः स्थितः सोमो दध्यौ त्रिपुरवैरिणम् ।

यावद्वर्षशतं पूर्णं तावत्तुष्टोमहेश्वरः ॥ १६ ॥

प्रत्यक्षः सोमराजस्य वृषासन उमापतिः ।

नाष्टाङ्गं प्रणिपत्योच्चैर्जय शम्भो! नमोऽस्तुते ॥ १७ ॥

जय शङ्कर! पापहराय! नमोजय ईश्वर ते जगदीश! नमः ।

जय वासुकिभूषणधार! नमो जय शूलकपालधराय नमः ॥ १८ ॥

जय अन्धकदेहविनाश! नमो जय दानववृन्दवधाय नमः ।

जय निष्कलरूप! सकलाय नमोजय काल कामदहाय नमः ॥ १९ ॥

जय मेचककण्ठधराय नमो जय सूक्ष्मनिरञ्जनशब्द! नमः ।

जय आदिरनादिरनन्त! नमो जय शङ्कर! किङ्करमीश भज ॥ २० ॥

एवं स्तुतोमहादेवःसोमराजेनपाण्डव । तृप्तस्तस्य नृपश्रेष्ठ! शिवयाशङ्करोऽब्रवीत्  
ईश्वर उवाच

वरं प्रार्थय मे भद्र! यत्ते मनसि वर्त्तते । साधुसाधुमहासत्त्व तुष्टोऽहं तपसा तव  
सोम उवाच

दक्षशापेन दग्धोऽहं क्षीणसत्वो महेश्वर । शापस्योपशमं देव कुरु शर्म मम प्रभो ! ॥  
ईश्वर उवाच

तव भक्तिगृहीतोऽहमुमया सह तोषितः ।



स्युवाच

सन्देशं श्रूयतां विप्र! यदि गच्छसि सङ्गमे ।

मद्भर्ता तिष्ठते तत्र शीघ्रमेव विसर्जय ॥ ४१ ॥

काकिनी च ते भार्या तिष्ठते वनमध्यगा । इत्याकर्ण्यगतोविप्र सङ्गमे सुगदुर्लभे  
वृक्षच्छायाऽन्वितः कण्वो ब्राह्मणेनाऽवलोकितः ।

उवाच तं प्रति तदा वचनं ब्राह्मणोत्तमः ॥ ४३ ॥

ब्राह्मण उवाच

वनान्तरे मया दृष्टा बाला कमललोचना । रक्ताम्बरधरा तन्वी रक्तचन्दनचर्चिना  
रक्तमालया सुशोभाढ्या पाशहस्तामृगेशणा ।

वृक्षारूढाऽवदृष्टाक्यं मद्भर्ताप्रेष्यतामिति ॥ ४२ ॥

कण्व उवाच

कस्मिन्स्थाने तु विप्रेन्द्रविद्यते मृगलोचना । कस्यसाकेनकार्येणसर्वमेतद्ब्रूयाशु मे-

ब्राह्मण उवाच

सङ्गमादर्द्धकोशे सा उद्यानान्तेहिविद्यते । वचनाद्ब्राह्मणस्यैतन्नजानापार्थिवेन तु  
तदा स कण्वभूपालः स्वकं दूतं समादिशत् ।

कण्व उवाच

गच्छ त्वं पृच्छतां तां काऽऽगता क्व च गमिष्यसि ।

प्रेषितस्त्वरितो दूतो गतो नारीन्मीपतः ॥ ४८ ॥

वृक्षस्थां ददृशे बालामुवाच नृपसत्तम !

मन्नाथः पृच्छति त्वां तु काऽसि त्वं क्व गमिष्यसि ॥ ४६ ॥

कन्योवाच

गुरुरात्मवतां शास्ता राजा शास्ता दुरात्मनाम् ।

इह प्रच्छन्नपापानां शास्ता वैवस्वतो यमः ॥ ५० ॥

ब्रह्महत्याघसञ्जाता मृगरूपधरद्विजात् । मयायुक्तोऽपितैराजामुक्तस्तीर्थप्रभावतः

अर्द्धत्रोशान्तरान्मध्ये ब्रह्महत्या न सम्भिशोत् ।

सोमनाथप्रभाचोऽय घाराणस्या समं स्मृतं ॥ ५२ ॥

गच्छन्व प्रप्यता राजाशास्त्रमत्र न मगध । गतोभृत्यस्ततःशीघ्रंविपमानमुचिह्व  
समन्वकथयामासपटुवृत्तहि पुरातनम् । तस्यवाक्पादमौराजापतितोधरणीतन  
मृत्य उवाच

कम्मात्त्व शोचसे नाथ' पूर्वोपात्त शुभाशुभम् ।

इयाकर्ण्य वचमनस्य राजा वचनमप्रवीत् ॥ ५० ॥

प्राण राग करिष्यामि सामनाथममोपत ।

शोत्रमानीयता वद्विरिन्धनानि बहूनि च ॥ ५१ ॥

आनात तन्पणात्मवर्धं भृशैस्त्रिदशवर्तिभि । स्नानकृत्वाशुमेतोयेसङ्गमेपापताशने  
वर्धित परया मकन्या सोमनाथो प्रहोभृता ।

त्रि प्रदक्षिणत कृत्वा ज्वरन्त जातरेदसम् ॥ ५८ ॥

प्रविष्ट वप्यराजाऽमो हृदि ध्यात्वा जनादनम् ।

पीताम्बरधर देव जटामुकुटधारिणम् ॥ ५६ ॥

धियायुक्तं सुपणस्य शङ्खध्वजगदाधरम् । सुरारिखरन दध्यां सुरातिर्मे भवत्विति  
पपात पुष्यवृष्टिस्तु साधुसाधु नृपात्मज ।

आध्वयमनुलं दृष्ट्वा किरीड्य च परस्परम् ॥ ६१ ॥

मृत ते पाचरे भृशं हृदि ध्यात्वा गदाधरम् ।

विमानस्यास्तत सर्वे सञ्जाता पाण्डनन्दन ॥ ६२ ॥

निपापान्निर्दिशता सामनाथप्रभायत । छाह्वणेसङ्गमेतप्रध्यायमानेवृषच्चक्रम्  
धीमावण्डेय उवाच

सोमनाथप्रभाचोऽयःशुभ्यैकमनाविधिम् । ब्रह्मया धा वनुदस्यामवषात्ररेदिने  
विशाराच्छुभ्रपक्षवेत्सूयवारणसप्तमी । उपोष्य यानरोमव पाराश्रीकुर्योतनागरम्  
पञ्चामृतत गव्येन छापर्यन्परमेधरम् । धीघण्डेन ततो गुण्यपुष्पपूपादिषु ददत्

नवोधयेद्दीपं नृत्यंगीतं च कारयेत् । सोमवारे तथाऽष्टम्यां प्रमाते पूजयेद्द्विजान् ।  
जितक्रोधानात्मवतः परनिन्दाविचर्जितान् ।

सर्वारुचिराञ्छस्तान् स्वदारपरिपालकान् ॥ ६८ ॥

त्यत्रीपाठमात्रांश्च चिकमं विरतान्सदा । पुनर्भूवृषली शूद्री चरेयुर्यस्य मन्दिरं ॥

दूरतोऽसौ द्विजस्त्याज्य आत्मनः श्रेय इच्छता ।

हीनाङ्गाऽनतिरिक्तांगान्येषां पूर्वापरं न हि ॥ ७० ॥

व्रजे श्राद्धे तथा दाने दूरतस्तान् विचर्जयेत् ।

धायसीतरुणीतुल्या द्विजाः स्वाध्यायवर्जिताः ॥ ७१ ॥

आत्मानं सह याज्येन पातयन्ति न संशयः ।

शाल्मलीनावतुल्याः स्युः पट्टकर्मनिरता द्विजाः ॥ ७२ ॥

तारंघतथाऽऽत्मानं तारयन्ति तरन्ति च । श्राद्धं सोमेश्वरेपर्य्युः कुर्याद्गतमत्सरं :

प्रेतास्तस्य हि सुप्रीता यावदाभूतसम्प्लवम् ।

अन्नं वस्त्रं हिरण्यं च यो दद्यादप्रजन्मने ॥ ७४ ॥

स यातिशाङ्करेलोक इति मे सत्यभाषितम् । ह्यंगयोयच्छते तत्र सम्पूर्णतरुणंसितम्

रक्तं वा पीतवर्णं वा सर्वलक्षणसंयुतम् । कुङ्कुमेन चिल्लिताङ्गावप्रजन्महयावपि ॥

स्रग्दामभूपितौ कार्यौ सितवस्त्रावगुण्डितौ ।

अङ्घ्रिः प्रदीयतां स्कन्धे मदीये ह्यमारुह ॥ ७७ ॥

आरूढे ब्राह्मणे प्रूयाद्वास्करः प्रीयतामिति । स यातिशाङ्करं लोकं सर्व्वपापविचर्जितः

उपरागे तु सोमस्य तीर्थं गत्वा जितेन्द्रियः ।

सत्यलोकाच्च्युतश्चाऽपि राजा भवति धार्मिकः ॥ ७६ ॥

तस्य वासः सदारान्न नश्यति कदाचन । दीर्वायुर्जायते पुत्रो भार्या च वशवर्तिनी

जीवेद्दर्पशतं साग्रं सर्वदुःखविचर्जितः । सोपवासो जितक्रोधो धेनुं दद्याद्द्विजन्मने

सवत्सां क्षीरसंयुक्तं श्वेतवस्त्रावलोकिताम् ।

शबलां पीतवर्णाञ्च धूम्रां वा नीलकवुराम् ॥ ८२ ॥

कपिला धा सवत्सां च घण्टामरणमूयिताम् ।

रूप्यामुरा काम्यदोहा स्वर्णशङ्की नरेभर ॥ ८३ ॥

श्रेतवापद्भतेवशोरत्तासौभाग्यवर्द्धिनी । शवलापीतवर्णाश्च दुःखघ्न्योमम्प्रकीर्तिने

कपितानाशयेत्पाप समजन्मममुद्भवम् । मत्पत्रोक्तमवाप्नोति गोप्रदाया नरेभर ॥

पक्षान्तेऽथव्यतीपानेवै तृतीरधिसडनमे । दिनक्षये गनच्छाया ग्रहणेमास्करम्यथ

ये व्रजन्ति महात्मान सद्भ्रमेसुरदुर्हभे । मृदाचगुण्टयित्वातुघातमानसङ्गमेविशंन

हृद्यान्तजलेजाप्याप्राणायामोऽथवानृष । गायत्रीवैष्णवीर्षीर्षीश्चसौरीशैवायदृच्छया

तेऽपि पापै प्रमुच्यन्त इत्येवं शङ्करोऽप्रवीन् ॥ ८८ ॥

जगतीं सोमनाथस्य यस्नु कुर्या प्रदक्षिणाम् ।

प्रदक्षिणीकृता तेन समङ्गीपा यसुन्धरा ॥ ८९ ॥

अदहत्या मुरापानगुरुदारनिषेवणम् । भ्रणहा स्वणहन्ता च मुच्यन्तेनाऽनमशय

तीर्थात्पानमिद पुण्यं य शृणोति जितेन्द्रिय ।

व्याधितो मुच्यते रोगी चारोगी सुखमाप्नुयात् ॥ ९१ ॥

यत्ते सन्दहते चेत शृणु तन्मे युधिष्ठिर ।

नैकाऽपि नृप' लोकेऽम्मिन्भ्रणहत्या सुदुस्त्यया ॥ ९२ ॥

किमु पद्भिशति पाथ' प्राप या क्षणदाकर ।

सोऽपि तीवमिद प्राप्य तपस्तपत्वा सुदुधरम् ॥ ९३ ॥

विमुक्त सवपापेभ्य शीतरश्मिभू सुखी । श्रूयतेनृपर्षीरार्णीगाथागीतामहर्षिभि

त्किं प्रतिष्ठितलोकदशभ्रणहन भवेत् । अतोत्किं श्रूयंमोम स्थापयामासभारत

मेचोरिसद्भ्रमे द्वाय द्वितीयभृगुच्छ्लोके । तत सिद्धि परा प्राप्यप्रभासे तुकृतायकम्

इति ते कथित मयै तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम् ।

धर्म्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं मशुद्धिदृन्तृणाम् ॥ ९७ ॥

पुत्रार्थो लभते पुत्राश्लिष्काम स्वर्गमाप्नुयात् ।

मुच्यते सर्वपापेभ्यस्तार्थं कृत्वा पर नृप ॥ ९८ ॥

एतत्ते सर्वमाख्यातं सोमनाथस्य यत्फलम् ।

श्रुत्वा पुत्रमवाप्नोति स्नात्वा चाऽष्टौ नसंशयः ॥ ६६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे णकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे  
रेवास्रण्डे सोमनाथतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

## पञ्चशीतितमोऽध्यायः

### पिङ्गलेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेन्महाराज पिङ्गलावर्त्तमुत्तमम् । सङ्गमस्य समीपस्थं रेवायाउत्तरेतटे  
हव्यवाहेन राजेन्द्र! स्थापितः पिङ्गलेश्वरः ॥ १ ॥

युधिष्ठिर उवाच

हव्यवाहेन भगवन्तीश्वरः स्थापितः कथम् । एतदाख्याहि मे सर्वप्रसादाद्वक्तुमहंसि  
मार्कण्डेय उवाच

शम्भुना रेतसाराजं स्तर्पितो हव्यवाहनः । प्राप्तसौख्येन रौद्रेण गौर्याक्रीडनचेतसा  
हव्यवाहमुखे क्षिप्तं रुद्रेणामिततेजसा । रुद्रस्य रेतसा दग्धस्तीर्थयात्राकृतादरः ॥  
सागरांश्च नदीर्गत्वाक्रमाद्रेवां समागतः । घञ्चारपरयाभक्त्या ध्यानमुग्रं हुताशनः  
वायुभक्षः शतं साग्रं यावत्तपे हुताशनः । तावत्तुष्टो महादेवो वरदो जातवेदसः ॥  
नन्निधौ समुपेत्याथ वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ६ ॥

ईश्वर उवाच

वरं वृणीष्व हव्याश! यत्ते मनसि वर्तते ॥ ७ ॥

वह्निस्त्वाच

नमन्ते सर्वलोकेश! उग्रमूर्ते नमोऽस्तु ते । रेतसा तव सन्दग्धः कण्ठीजानो महेन्द्र



उपा कुरु महादेव' मम रोग विनाशय ॥ ८ ॥

ईश्वर उवाच

हव्यवाह' भवारोगो मत्प्रमादाच्च मत्पथम् ।

अत्रतीर्थे वृत्तम्नान स्वरूप प्रतिपस्यसे ॥ ९ ॥

इयुस्त्वा च महादेवस्तत्रैवान्तर्धीयत । अनन्तरहव्यवाह सम्भारैवान्नेत्वरत्न  
तदेवरोगनिमुक्तोऽभवद्दिव्यस्यरूपवान् । स्थापयामासदेवेशमचद्वि'पिङ्ग'श्वरम्  
नाम्नामभून्वयामासनुषाचस्तुतिभिमुदा । ततोऽनगामदेश स्व देवानाहव्यवाहन'  
हव्यवाहेन भूषेच स्थापित पिङ्ग'श्वर' । जितकोऽरोहियस्तत्रउपवाससमाचरत्  
अतिरात्रफ' तस्य अन्ते हृदत्वमाप्नुयात् ।

गुणान्विताय विप्राय कपिला तत्र भारत ॥ १४ ॥

अलङ्कृत्य'मयत्सा च शक्त्याऽलङ्कारभूषिताम् ।

य प्रयच्छति रात्रेन्द्र' स गच्छेत्परमा गतिम् ॥ १५ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्या संहिताया पञ्चमेऽध्यायखण्डे  
रेखाखण्डे पिङ्ग'श्वरनाथमाहात्म्यवर्णननाम एकाशीतितमोऽध्याय' ॥ ८६ ॥

## सप्ताशीतितमोऽध्यायः

ऋणप्रयमोचनतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमाकण्डेय उवाच

ततो गच्छेन्महीपाल तीर्थं परमशामनम् । स्थापितमुनिमण्डपदुद्रहर्षशसमुद्भवे  
ऋणमोचनमि'याख्यंरेवात'समाश्रितम् । यन्मासमनुजोभक्त्यातपयन्पितृदेयता'  
देवे पितृमनुष्यैश्च ऋणमात्महन च यत् ।

मुच्यते तत्क्षणमर्त्यं स्नातो षे नमदाजले ॥ ३ ॥

स्वयं नृपिणं तत्र दृश्यते फलरूपनः । तत्र तार्थं नु यो राजप्रेकषितो जितेन्द्रियः  
स्नात्वा दानं च वै श्यादसंयद्विनिज्ञापतिम् ।

शृणुष्वयविनिर्मुक्तो नाथे दीप्यति देववत् ॥ १ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतितमाहस्यां पञ्चमोऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे  
रेवाखण्डेशृणुष्वयमोचनतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

## अष्टाशीतितमोऽध्यायः

कपिलेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

तस्यैवानन्तरं पार्थं कापिलं तीर्थमाश्रयेत् । स्थापितं कपिले नैव स चंपानफलाशनम्  
अष्टम्यां च मिते पक्षे चतुर्दश्यां नरेश्वर ॥

स्नापयेत्पण्या भक्त्या कपिलाक्षीरमर्षिणा ॥ २ ॥

श्रीखण्डेन मुगन्धेन गुण्डयेत महेश्वरम् । ततः मुगन्धपुष्पैश्च श्येतेऽश्वत्थसस्तमः ॥ ३ ॥

येऽर्चयन्ति जिनक्रोधा न ते यान्ति यमालयम् ।

असिपत्रवनं घोरं यमचुही मुदारुणा ॥ ४ ॥

दृश्यते नैव चिह्निः कपिलेश्वरपूजनात् ।

स्नात्वा रेवाजले पुण्ये भोजयेद् ब्राह्मणाञ्जुमान् ॥ ५ ॥

गोप्रदानेन घस्त्रेण तिलदानेन भारतम् । छत्रशय्या प्रदानेन राजा भवति धार्मिकः  
तीव्रतेजाविद्योरश्च जीवत्पुत्रः प्रियम्बदः । शत्रुवर्गो न तस्य स्यात्कदाचित्पाण्डुनन्दनः

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतितमाहस्यां संहितायां पञ्चमोऽवन्तीखण्डे  
रेवाखण्डे कपिलेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

## एकोनवतितमोऽध्यायः

### पूतिकेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र! पूतिकेश्वरमुत्तमम् । नर्मदादक्षिणेकूले सर्वपापक्षयद्वार  
स्थापितं जाम्बवन्तेन लोकानां तु हितार्थिना ।

राजा प्रसेनजित्नाभ तस्या वक्षस्थलान्मणौ ॥ २ ॥

समुत्क्षिप्ते तु नेत्रैव सपूतिरभवद्ब्रह्मण । तत्र तीर्थं तपस्तत्पथा निर्घणं समजाय  
तेन तस्यापितं लिङ्गं पूतिकेश्वरमुत्तमम् । यस्तत्रमनुजोभक्त्यास्नायाद्भ्रमस्त  
सर्वान्कामानवाप्नोति सम्पूज्य परमेश्वरम् ।

वृष्णाष्टभ्यां चतुर्दश्यां सर्वकालं नराधिप !

येऽर्चयन्ति सदा देव ते न यान्ति यमालयम् ॥ ५ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्या सहिताया पञ्चमेऽवन्तीखण्डे  
रेवाखण्डे पूतिकेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नामैकोनवतितमोऽध्यायः ॥८६॥

## नवतितमोऽध्यायः

### जलाशायितीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

रेवायाउत्तरेकूलेवृष्णाद्य ताधमुत्तमम् । जलाशायीति चे नाम चिख्यात धनुधातले  
दानवानां धध क्त्वा सुप्तस्तत्र जनार्दन । अत्र प्रशालिते तत्र देवदेवेन धमिणा  
सुदर्शनं ध निष्पाप रेवाजगत्समाध्रयात् ॥ २ ॥

युधिष्ठिर उवाच

घक्रतीर्थं समाचक्ष्व मुनिसङ्घ्यश्च वन्दितम् ।

चिष्णोः प्रभावमतुलं रेवायाश्चैव यत्फलम् ॥ ३ ॥

श्रीमाकण्डेय उवाच

साधुसाधु महाप्राज्ञ! विरक्तस्त्वं युधिष्ठिर !।

गुह्याद्गुह्यतरं तीर्थं निर्मितं घक्रिणा स्वयम् ॥ ४ ॥

तत्तेहं सम्प्रवक्ष्यामि कथां पापप्रणाशिनीम् ।

आसीत्पुरा महादैत्यस्तालमेव इति श्रुतः ॥ ५ ॥

नेनदेवा जिताःसर्वेहृतराज्यानराधिप । यज्ञभागान्तस्वयंभुङ्क्तेथहंविष्णुर्नसंशयः  
धनदस्य हृतं वित्तं हृतः शक्रस्य चारणः । इन्द्राणीं चाञ्छतेपापो ह्यरत्नरत्नैरपि  
तालमेवभयात्पार्थरविरुद्राःसवासवाः । यमःस्कन्दोजलेशोऽग्निर्वायुर्देवोधनेश्वरः  
सवाक्पतिमहेशाश्चनष्टचित्ताःपितामहम् । गतादेवाब्रह्मलोकं तत्र दृष्ट्वापितामहम्  
तुण्डुबुर्विविधैः स्तोत्रैर्वागीशप्रमुखाः सुराः । शुणत्रयविभागाय पश्चाद्भेदमुपेयुषे  
दृष्ट्वा देवान्निरुत्साहान्विवर्णानवनीपते । प्रसादाभिमुखोदेवः प्रत्युवाचदिवोकसः

ब्रह्मोवाच

स्वागतं सुरसङ्घस्यकान्तिर्नष्टापुरातनी । हिमक्लिष्टप्रभावेणज्योतींशीघमुखान्विचः

प्रशमादधिपामेतदनुद्वीणं सुरायुधम् ।

वृत्रस्य हन्तुः कुलिशं कुण्डितश्रीच लक्ष्यते ॥ १३ ॥

किं चायमरिदुर्वारः पाणोः पाशः प्रचेतसः ।

मन्त्रेण हतवीर्यस्य फणिनो दैन्यमाश्रितः ॥ १४ ॥

कुबेरस्य मनः शल्यं शंसतीव पराभवम् । अपविद्गतो वायुर्भग्नशाख इवद्रुमः ॥

यमोऽपि विलिखन्भूमिं दण्डेनास्तमितत्विया ।

कुरुतंऽस्मिन्नमोशोऽपि निर्वाणालातलाघवम् ॥ १६ ॥

अमी च कथमादित्याः प्रतापश्रुत्स्त्रीवत्सः ।

पित्रम्यस्ता इय गता प्रकामालोक्नीयताम् ॥ १७ ॥

तदुग्रत यत्सा किमित् प्रार्थयध्वं समागता ।

किमागमनदृश्य यो ग्रूत नि मशयं सुरा ॥ १८ ॥

मयि सृष्टिर्दिलोकानां रक्षा युष्माभ्यवस्थिता ।

ततो मन्दानिगेदुग्रतकमगच्छशोभिता ॥ १९ ॥

शुचि नेत्रमहश्चेण प्रेक्ष्यामाम वृत्रहा । म छिनेत्र हरश्चभु सहस्रतयताधिकम् ॥

पाघम्यतिग्वायेद प्राञ्जलिर्जलचामनम् ।

युष्मदशोद्धमन्नात' ताग्नेयो महायत् ॥ २१ ॥

उपनापयते देवान्भूमकेतुरियोष्कित । तेनदेवाणां मर्षे दुःखितादानयेन च ॥ २२

ताग्नेयो देवपति मघाघ्नो याधते यथा ।

तन्मात्स्यां शरण प्राप्ता शरण तो विधे भय ॥ २३ ॥

तत प्रमन्ना भगवान्प्रेषास्तानर्ष्यादृष ॥ २४ ॥

प्रप्रोयाच

ताग्नेयेन वा मध्ये यथा तेन मम सुरा । विनामाधवद्वेनमाध्योमे नैददानव

तत सुराणां मर्षेद्विरज्जिप्रमुखा नृप । क्षीरोदप्रस्थिता मर्षे दुःखितास्तनवैरिणा

त्वरिता प्रस्थिता दवा वेश्य द्रष्टुकाम्यया ।

क्षीरोद् मागर गत्वाऽस्तुवस्ते जलशायिनम् ॥ २७ ॥

देवा ऊचु

जगदादिरनादिस्त्वं जगन्तोऽप्यनन्तक' ।

जगन्मूर्तिरमूर्तिस्त्वं जय गीर्वाणपूजित' ॥ २८ ॥

जय क्षीरोदशयन जय लक्ष्म्या सदावृत' । जय दानवनाशाय जय देवकिनन्दन'

जय शङ्खगदापाण जय चक्रधरप्रभो' । इति द्ववस्तुति ध्रुवा प्रवृद्धोजलशाय्यय

उवाच मधुरावाणी मेवगम्भीरनिस्वनाम् ।

किमर्थं बोधितो ब्रह्मन्समर्षेयं सुरासुरै ॥ ३१ ॥

ब्रह्मोवाच

तालमेघभयात्कृष्णं! सम्प्राप्ता तव मन्दिरम् ।

न वध्यः कस्यचित्पापतालमेघो जनार्दन ! ॥ ३२ ॥

त्वमेव जहि तं दुष्टं मृत्युं यास्यति नान्यथा ॥ ३३ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

स्वस्थानं गम्यतां देवाः स्वकीयां लभत प्रजाम् ।

दुष्टात्मानं हनिष्यामि तालमेघं महाबलम् ॥ ३४ ॥

स्थानं ब्रुवन्तु मे देवा! वसेद्यत्र स दानवः ॥ ३५ ॥

देवा ऊचुः

हिमाचलगुहायां सवसते दानवेश्वरः । चतुर्विंशतिसाहस्रैः कन्याभिःपरिवारितः

तुरङ्गैः स्यन्दनैः कृष्ण! सङ्ख्या तस्य न विद्यते ।

नष्टा नानाविधास्तत्र असङ्ख्यातगुणा हरे ! ॥ ३७ ॥

द्विरद्राः पर्वताकारा हयाश्च द्विरदोपमाः । महाबलो वसेत्तत्र गीर्वाणभयदायकः

श्रुत्वादेवोवचस्तेपां देवानामातुरात्मनाम् । अचिन्तयद्गुरुमन्तं शत्रुसङ्घविनाशनम्

घक्रं करेण संगृह्य गदास्रकधरः प्रभुः । शाङ्गं च मुशलं सीरं करैर्गृह्य जनार्दनः ॥

आरूढः पक्षिराजेन्द्रं वधार्थं दानवस्य च । दानवस्य पुरेपेतुस्तपाता घोररूपिणः

गोमायुर्गृध्रमध्ये तु कपोतैः सममाविशत् । विनापातेनतस्यैव ध्वजदण्डःपपातह

सर्पमूपकयोर्गुह्यं तथा केसरिनागयोः । उन्मार्गाःसरितस्तत्रावहन्नक्तविमिश्रिताः

अकालतरुपुष्पाणि दृश्यन्ते स्म समन्ततः ॥ ४३ ॥

ततः प्राप्तोजगन्नाथो हिमवन्तंनगेश्वरम् । पाञ्चजन्यश्च सहसा पूरितः पुरसन्निधौ

तेन शब्देन महता ह्यारूढो दानवेश्वरः ।

उवाच च तदा वाक्यं तालमेघो महाबलः ॥ ४५ ॥

तालमेघ उवाच

कोऽयं मृत्युवशं प्राप्नो ह्यज्ञात्वा मम विक्रमम्

धुन्धुमाराशया ह्याशु स्वमैन्यपरिचारित ॥ ४२ ॥

उलादानय त वदुक्त्वा भ्रमाग्रे बाहुशालिनम् ॥ ४३ ॥

धुन्धुमार उवाच

आनयामि न मदेह सुरोयक्षोऽथकिञ्चर । स्थन्दनीर्घे समायुक्तोगजवाजिभट्टे मह  
हृष्टस्ततो जगद्योनि सुपर्णस्थो महावठ । श्रुयतामृचतामेवस्त्युक्तास्तेनकिङ्करा  
घतुर्दृदिभु प्रधाचन्त इतश्चेतश्च सर्वत । सुपर्णेनाऽग्निरूपेण दग्धास्ते शल्भा यथा  
धुन्धुमारोऽपिकृष्णेनशरघातेन ताडित । इतोवक्षस्थले पापोमृतावस्थोर्धोपरि  
हाहाकार तत सर्वे दानघाश्चकुरातुरा । तालमेघस्तत बृद्धोरधारुढो चिनिर्गत  
दृष्टो केशव पाथ' शङ्खघ्नगदाधरम् ॥ ५२ ॥

तालमेघ उवाच

अन्ये ते दानघा कृष्ण' ये हता समरे त्यया ।

हिरण्यकशिपुप्रव्या न पुमासो हि तेऽच्युत ॥ ५३ ॥

इत्युक्त्वा दानव पाथ' वषयामास सायकै ।

दानवस्य शरान्मुक्ताश्छेदयामास केशव ॥ ६४ ॥

गरुमानवधीत्मैन्यमवध्य यत्सुरासुरै ।

कृष्णेन द्विगुणास्तस्य प्रेषिता स्वशिलीमुष्मा ॥ ५ ॥

द्विगुण द्विगुणीकृत्य प्रेषयामास दानव ।

तानप्यष्टगुणै कृष्णश्छेदादयामास सायकै ॥ ५६ ॥

तत बृद्धेन दैत्येन श्याग्नेय वाणमुत्तमम् ॥ ५७ ॥

धारण प्रेषयामास त्वाग्नेय शमित तत । धारणेनैववापव्यं तालमेघो व्यमजम्  
सापं श्वेवहरीकेशोवायव्यस्यप्रशान्तये । नारसिंह नृसिंहोऽपिप्रेषयामासपाण्डव'  
नारसिंह तनो दृष्टान्तालमेघोमहावठ । उत्तीर्य स्रन्दनाच्छीघ्रगृहीत्वाधङ्कघर्मणी  
कृष्ण त्वा प्रेषयिष्यामि यममार्गं सुदारुणम् ।

इत्युक्त्वा दानव पाथ' आगत केशव प्रति ॥ ६१ ॥

खड्गेनाताडयद्देव्यो गदापाणिजनार्दनम् । मण्डलाग्रंततो गृह्य केशवो हृष्टमानसः  
जवनोरःस्थले पार्थ तालमेघं महाहवे । जनार्दनस्तदा देत्यर्देत्यो हरिमहन्मुध्रे ॥  
जनार्दनस्ततः क्रुद्धस्तालमेघाय भारत ! । अमोघं चक्रमादाय मुक्तं तस्यघ मूर्द्धनि  
निपपातशिरस्तस्यपर्वताश्च चक्रम्पिरे । समुद्राः क्षुभिताः पार्थनद्यन्मार्गगामिनीः  
पुष्पवृष्टिं ततो देवा मुमुक्षुः केशवोपरि । अवध्यः सुरसङ्घानां सूदितः केशवत्वया  
स्वस्थाश्चैव ततो देवास्तालमेघे निपातिते ।

जनार्दनोऽपि कौन्तेय ! नर्मदातटमाश्रितः ॥ ६७ ॥

क्षीरोदां नर्मदां मत्वा अनन्तभुजगोपरि । लक्ष्म्यासमन्वितः कृष्णो निलीनध्वो नरनटे  
चक्रं विभीषणं मर्त्यं ज्वालामालासमन्वितम् ।

पतितं नर्मदानोये जलशायिसमीपतः ॥ ६६ ॥

निद्रधूर्तकलमपं जातं नर्मदातोययोगतः । तालमेघवभ्रोत्पन्नं यत्पापं नृपनन्दन ! ॥  
तत्सर्वं क्षालितं सद्यो नर्मदाम्भसि भारत ! । तदाप्रभृतिलोकेऽस्मिञ्जलशायीमहीपते  
चक्रतीर्थं घटन्त्यन्येकेचित्कालाघनाशनम् । चिन्व्यान् भारत चर्ये नर्मदायां महीपते  
तत्तीर्थस्य प्रभावोऽयं श्रूयतामवनीपते ! ॥

यथाऽनन्तो हि नागानां देवानां च जनार्दनः ॥ ७३ ॥

मासानां मार्गशीर्षोऽस्ति नदीनां नर्मदा यथा ।

मासि मार्गशिरे पार्थ ! ह्येकादश्यां सितेऽहनि ॥ ७४ ॥

गत्वा यो मनुजो भक्त्या कामक्रोधचिर्वर्जितः ।

वैष्णवीं भावनां कृत्वा जलेशं तु व्रजेत वै ॥ ७५ ॥

एकमुक्तं च नक्तं च तथैवाऽयाचितं नृप । उपवासं तथा दानं ब्राह्मणानां च भोजनम्  
करोति च कुरुध्रे ! न स याति यमालयम् । यमलोकभयाद्दीताये लोकाः पाण्डुनन्दन  
ते पश्यन्तु श्रियः कान्तं नागपर्यकशाश्रितम् । गोपीजनसमावृत्तं योगनिद्रां समाश्रितम्  
विश्वरूपं जगन्नार्थं संसारभयनाशनम् ॥ ७८ ॥

स्नापयेत्परया भक्त्या श्लोद्रक्षीरेण सर्पिया । खण्डेन तोयमिश्रेण जगद्योनिं जनार्दनम् ॥



स्नाप्यमानं च पश्यति ये लोका गतमत्सरा ।

ते याति परमं लोकं सुरासुरनमस्तृतम् ॥ ८० ॥

धृतेन बोधयेद्रीपमथवा तैः पूरितम् । रात्रौ जागरणं कृत्वा देवस्याग्ने विमत्सरा  
ये कथा चैष्णर्वी भक्त्या शृण्वन्ति च ऋषोत्तम ।

ब्रह्महत्यादिपापानि नश्यन्ते नाऽत्र सशय ॥ ८२ ॥

प्रदक्षिणन्ति ये मया जलशायिजगद्गुहम् ।

प्रदक्षिणीकृता तैस्तु समष्टीषा चसुधरा ॥ ८३ ॥

ततः प्रभाते विमतेपिनन्सतल्पवेज्जते । श्राद्धघ्नाह्वणैस्तत्र योग्यै पाण्डवमानवा  
स्वदारनिरते शांते परदारविवर्जके । घ्नन्त्यस्यमनशीलैश्च स्वकमनिरते शुभै  
नित्यं यजनशीलैश्च त्रिमयापरिपात्रकैः ।

श्रद्धया कारयेच्छ्राद्धं यदीच्छेच्छय आत्मन ॥ ८४ ॥

ने ध्याया मानये त्रैके घ्नन्त्या हि भुवि मानवा ।

ये घ्नन्ति सदाकात्र पादपद्माश्रया हरे ॥ ८७ ॥

जलशायं प्रपश्यति प्रयक्षं सुरनायकम् ।

पक्षोपवासं पाराकं प्रतः चाम्द्रायणं शुभम् ॥ ८८ ॥

माम्नेषवासमुग्रं च वष्टान्नपञ्चमवतम् । तत्र तावत्सु कथाम्मोऽभयानगतिमाप्नुयात्  
धीमाकण्डेय उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि निलधेनोश्च यत्फलम् ।

यथा यस्मिन्मया दया ताने तरुषा शुभं फलम् ॥ ९० ॥

एतन्वधात्तरपुण्यमपेक्षेपायनात्परा । धनं हि नैमिषं पुण्ये नारण्यैरनेकधा ॥  
इत् परममायुष्यमङ्गल्यकीर्तिवदनम् । विप्राणाश्चाययच्चिद्दान्फत्रानन्त्यसमश्नुते  
बहुभ्यो न प्रदेयानिर्गायुः शयनमिष्य । विभक्तदक्षिणाहोताद्रातारताप्नुवन्ति च  
एकमेतं प्रदातव्यं न बहुता युधिष्ठिर । सा च विक्रयमापन्ना दहत्यासमम कुलम्

तिगा श्रेतान्तिगा वृष्णास्तिगा गोमृषसधिभा ।

तिलानां तु विधित्राणां धेनुं वत्सं च कारयेत् ॥ ६५ ॥

यथालाभा तु सर्वेषां घनुद्रोणा तु गौः स्मृता ।

द्रोणस्य वत्सकः कार्यो बहुना चाऽपि कामतः ॥ ६६ ॥

यस्मिन्देशे तु यन्मानं विषये वा विचारितम् ।

तेन मानेन तां कुर्वन्नश्वयं फलमश्नुते ॥ ६७ ॥

मुखपूर्वं शुष्मो भूमौ पुष्पधृपाक्षतेस्तथा । कर्णाभ्यांरत्नेदातव्ये दीपानेत्रद्वये तथा  
श्रीखण्डमुरमिस्थाप्यन्ताभ्यां वैवतुकाञ्जनम् । उद्धर्ध्वमधुघृतं देयंकुर्यात्सर्पपरोमकम्  
कम्बलेकम्बलंदद्याच्छोण्यां मधुघृतंतथा । यवसं पायसंदद्याद्घृतं क्षौद्रसमन्वितम्  
स्वर्णशुद्धीरुप्यशिकारुक्मलांगुलसंयुता । रत्नपृष्ठीतुदातव्याकांस्यपात्रावदोहिनी  
यत्स्याद्दद्यात्कृतं पापं यद्वा कृतमजानता ।

वाघा कृतं कर्मघृतं मनसा यद्विचिन्तितम् ॥ १०२ ॥

जले निष्ठीवितं त्रैव मुशालं चापि लङ्कितम् ।

वृपलीगमनञ्चैव गुरुदारनिषेवणम् ॥ १०३ ॥

कन्याया गमनञ्चैव सुवर्णस्नेयमेव च । सुरापानं तथा घान्यत्तिलधेनुःपुनातिहि  
अहोरात्रोपवासेनविधिवत्तां विसर्जयेत् । या सा यमपुरेवोरे नदीवैतरणीस्मृता  
वालुकाऽयोऽश्मस्थला च पच्यतेयत्रदुष्कृती । अर्वाचिर्नरकोयत्रयत्रयामलपर्वती  
यत्र लोहमुखाःकाका यत्र श्वानो भयङ्कराः । अस्त्रिपत्रवतञ्चैवयत्रसाकूटशात्मली  
तान्नुवेन व्यतिक्रम्य धर्मराजालयं व्रजेत् । धर्मराजस्तु तं दृष्ट्वा सन्नतं वक्तिभारत  
विमानमुत्तमं योग्यं मणिरत्नविभूषितम् । अत्रारुह्य नरश्रेष्ठ! प्रयाहि परमां गतिम्  
मा च घाटु भटे देहि मैव देहि पुरोहिते ।

मा च काणे विरूपे च न्यूनाङ्गे न च देवले ॥ ११० ॥

अवेदविदुषे नैव ब्राह्मणे सर्वधिक्रये । मित्रघ्ने च कृतघ्ने च मन्त्रहीने तथैव च ॥  
वेदान्तगाय दातव्या श्रोत्रियाय कुटुम्बिने । वेदान्तगसुते देयाश्रोत्रिये गृहपालके  
सर्वाङ्गरुचिरे विप्रे सद्वृत्ते च प्रियन्वदे ।

पूर्णिमाया तु माघस्य कार्तिकामथ मारुत ॥ ११३ ॥  
 वेशाम्या मागशीथ्या धाऽऽपारुया चैरामथाऽपिवा ।  
 अयने विषुवे चैव व्यतापाने च सरदा ॥ ११४ ॥  
 पडशान्तिमुक्ते पुण्ये छायाया कुङ्करस्य वा ।  
 एष ते कथित कल्पस्तित्रधेतोमयाऽनन्त ॥ ११५ ॥  
 ब्रह्मन्नि वैष्णव लोक दत्त्वा पार्दं यमोपरि ।  
 प्राणत्यागात्पर लोक वैष्णव नाश मशय ॥  
 भित्त्वाऽशु भास्वर यान्ति नाऽथ काया विधारणा ॥ ११६ ॥  
 एतत्ते सवमाग्यात श्ववतीर्थफल नृप ॥  
 यच्छ्रुत्वा मानवो भक्त्या सवपापे प्रमुच्यते ॥ ११७ ॥

इति श्रीस्कन्दमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्या सहिताया पञ्चमेऽवन्ताखण्ड  
 रवाखण्डे जलाशायितीर्थमाहात्म्यवर्णन नाम  
 नवतिसप्तमोऽध्याय ॥ ६० ॥

### एकनवतिसप्तमोऽध्यायः

चण्डादित्यतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

तत्रा गच्छेन्महीपाल' तार्थ परमपावकम् ।  
 चण्डादित्य नृपध्वज' स्थापित चण्डमुण्डयो ॥ १ ॥  
 आस्ता पुरा महादेयी चण्डमुण्डो सुदारुणो ।  
 नमदातारमाधित्य चैरतुर्विपुल तप ॥ २ ॥

ध्यायन्तो भास्वर देव तमोनाशंजगत्त्रये । नृपस्तत्तपसादेव सहस्राशुरिवाच ह



साधुसाध्वितितौपार्थनर्मदायाःशुभे तटे । वरंप्रार्थयतोवीरो यथेष्टंचेतसेच्छितम्  
 षण्डमुण्डावूचतुः

अजेयो सर्वदेवानां भूयास्वावांसमाहितौ । सर्वरोगैःपरित्यक्तौसर्वकालंदिवाकर  
 एवमस्त्वितितौप्राह भास्करो वारितस्करः ।

इत्युक्त्वान्तर्दधे भानुर्देत्याभ्यां तत्र भास्करः ॥ ६ ॥

स्थापितः परया भक्त्या तं गच्छेदात्मसिद्धये ।

गीर्वाणांश्च मनुष्यांश्च पितृस्तत्राऽपि तपयेत् ॥ ७ ॥

स वसेद्भास्करे लोके विरञ्चिदिव संवृष । घृतेन द्योधयेद्वीपं पण्ड्यां स च नरेश्वर  
 मुच्यते सर्वपापैस्तु प्रतियाति दुरं रवेः ॥ ८ ॥

उत्पत्तिषण्डभानोर्यःशृणोतिभरतर्षभ । विजयी ससदानूनमाधिव्याधिविवर्जितः  
 इति श्रीस्कान्दे महापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे  
 रेवाखण्डे षण्डादित्यतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नामैकनवतितमोऽध्यायः ॥६१॥

## द्विनवतितमोऽध्यायः

### यमहास्यतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततोगच्छेत्तुराजेन्द्र यमहास्यमनुत्तमम् । सर्वपापहरं तीर्थं नर्मदातटमाश्रितम् ॥

युधिष्ठिर उवाच

यमहास्यं कथं जातं पृथिव्यां द्विजपुङ्गव ! एतत्सर्वसमाख्याहिपरंकौतूहलं हि मे

श्रीमार्कण्डेय उवाच

साधुसाधु महाप्राज्ञ पृष्टोऽहं नृपनन्दन । स्नानार्थंनर्मदांपुण्यामागतस्तेपितापुरा  
 रजकेनयथाधीतं वखं भवति निर्मलम् । तथाऽसौनिर्मलोजातो धर्मराजोयुधिष्ठिर

स पश्यन्निर्मलं देहं हसन्प्रोवाच विस्मित ॥ ५ ॥

यम उवाच

मन्पुरकथमायान्तिमनुजा पापवृद्धिता । स्नानेनैवेनरेवाया प्राप्यनेवैष्णवम्पदम्

समर्था ये न पश्यन्ति रेवा पुण्यजला शुभाम् ।

यात्यन्धैस्ते समाज्ञेया मृते पद्भिरैव वा ॥ ७ ॥

समर्था ये न पश्यन्ति रेवा पुण्यजला नदीम् ।

एतस्मात्कारणाद्राजन्हसितो लोकशासन ॥ ८ ॥

स्यापयित्वायमस्तत्रदेवस्वर्गजगाम ह । यमहासेऽबरे राजञ्जितक्रोधोजितेन्द्रिय  
विशेषाद्याऽऽश्विनेमासि कृष्णपक्षे चतुदशीम् ।

उपोष्य परया भक्त्या सर्वपापे प्रमुच्यते ॥ १० ॥

रात्रौ जारणकुर्वाद्दीप देवस्य बोधयेत् । एतेनचैवराजेन्द्र! शृणुतत्राऽस्तितत्फलम्  
मुच्यते पातके सर्वैरगम्यागमनोद्भवे । अभक्ष्यभक्षणोद्भूतैरपेयापेयजैरपि ॥ १० ॥

अवाहयवाहितेयत्स्याद्दोहादोहनेयथा । स्नानमात्रेणतस्यैवयान्तिपापान्यनेकधा  
यमलोक न धीक्षेत मनुज स कदाचन । पितृणा परम गुणमिदं भूमौ नरेव ॥  
ददतामक्षय सर्वं यमहास्ये न सशय । अमावास्याजितक्रोधोयस्तुपूजयतेद्विजान्  
हिरण्यभूमिदानेन तिग्दानेन भूयसा । कृष्णाजितप्रदानेन तिग्धेनुप्रदानत ॥

विधानोक्तद्विजाप्रथाय ये प्रदास्यन्ति भक्ति ।

हयं वा कुम्भार चाऽथ धूमही सीरसयुतौ ॥ १७ ॥

कन्या बभ्रुमती वा च महिषी वा पयस्विनीम् ।

ददते ये नृपश्रेष्ठ ! नोपसपन्ति ते यमम् ॥ १८ ॥

यमोऽपिभवतिप्रीत प्रतिजन्मयुधिष्ठिर । यमस्यवाहोमहिषो महिष्यस्तस्यमातर  
तासादानप्रभावेणयम प्रीतोभवेद्ब्रह्मवम् । नाऽसीयममवाप्नोतिपदिपापे ममावृत  
एतस्मात्कारणाद्ब्रह्महिषीदानमुत्तमम् । तस्याऽशृङ्गेजलकार्यं धृष्यन्मानुवेष्टिता  
धायसस्य सुरा कार्यास्ताम्रपृष्ठा सुभूषिताः ।

लवणाचलं पूर्वस्यामाग्नेय्यां गुटपर्चतम् ॥ २२ ॥

कार्पासं याम्यभागं तु नवनीतं तु नैऋते ।

पश्चिमे सप्तधान्यानि वायव्ये तन्दुलाः स्मृताः ॥ २३ ॥

सौम्ये तु काञ्चनं दद्याद्दीशानि मृतमेव च । प्रदद्याद्यमराजो मे प्रीयतामित्युद्दीरयन् ।

इत्युच्चार्य द्विजस्याग्रे यमलोकं महाभयम् । अग्निपत्रवनं घोरं यमसुहृन्सुदारुणा

रौद्राद्यैतरुणा घैव कुम्भीपाको भयाचहः । कालसूत्रो महाभीमस्तथायमलपर्वतौ

ककचं तैलयन्त्रं च श्वानो गृध्राः सुदारुणाः ।

निरुच्छ्रास्ता महानादा भैरवो रौरवस्तथा ॥ २७ ॥

एते घौरा याम्यलोके श्रूयन्ते द्विजस्तत्तम !

त्वत्प्रसादेन ते सौम्यास्तीर्थस्याऽस्य प्रभावतः ॥ २८ ॥

दानस्याऽस्य प्रभावेण यमराजप्रसादतः ।

नरकेऽहं न यास्यामि द्विज! जन्मनि जन्मनि ॥ २९ ॥

यमहास्यस्य चाख्यानमिदं शृण्वन्ति ये नराः ।

तेऽपि पापविनिर्मुक्ता न पश्यन्ति यमालयम् ॥ ३० ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकदाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे

यमहास्यतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

## त्रिनवतितमोऽध्यायः

कल्होडीतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमाकण्डेय उवाच

ततो गच्छेत् राजेन्द्र' कल्होडीतीर्थमुत्तमम् ।

विरयात् भारते लोके गङ्गाया पापनाशनम् ॥ १ ॥

दुल्भं मनुने पार्थ रेवातटममाश्रितम् । प्राणिना पापनाशाय ऊपर पुष्कर तथा  
तत्तु तीर्थमिदं पुण्यमित्येव शृण्वीवच । जाह्नवी पशुरुदेण तत्र कानार्थमागता  
अतस्तद्विधतलोके कल्होडीतीर्थमुत्तमम् । त्रिरात्रकारयेत्तत्र पूर्णिमायायुधिष्ठिर  
रजस्तमस्तथा प्रोथ दम्भ मात्स्यमेव च ।

पतास्यजति य पाथ तेनाम मोक्षत्र फलम् ॥ ५ ॥

पयसाम्नापयेद्देवश्रिमन् यद्यत्र्यहृतथा । पयोगोसम्भय सद्य रुचत्माजीवपुत्रिर्षी  
वृत्वा तत्ताम्रने पात्रे क्षीद्रेण चैव योजिते ।

ॐ नम श्रीशिवायेति स्नान देवस्य कारयेत् ॥ ७ ॥

स याति त्रिदशस्थान नाकस्त्रीभि समावृत ।

यस्तत्र विधियत्स्नात्वा दान प्रैतेषु यच्छति ॥ ८ ॥

शुक्ला गा दापयेत्तत्रप्रीयन्ता मे पिनामहा । ब्राह्मणेशीघसम्पत्रेस्वदाग्निरतेसदा  
मवत्सा वस्त्रसयुक्ता हिरण्योपरि मस्थिताम् ।

सत्त्वयुक्तो ददद्राजश्च्छाम्भय लोकमाप्नुयात् ॥ १० ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्या सहिताया पञ्चमेऽवन्ताखण्डे  
रेवाखण्डे कल्होडीतीर्थमाहात्म्यवर्णन नाम त्रिनवतितमोऽध्याय ॥६३॥

## चतुर्नवतितमोऽध्यायः

नन्दिकेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

तस्यैवानन्तरं राजन्नन्दितीर्थं ब्रजेच्छुभम् । सर्वपापहरंपुंसां नन्दिनानिर्मितम्पुरा  
पापौघहतजन्तूनां मोक्षदं नर्मदातटे । अहोरात्रोपितो भूत्वा नन्दिनाथे युधिष्ठिर  
पञ्चोपचारपूजायामर्चयेन्नन्दिकेश्वरम् । रत्नानि चैव विप्रेभ्यो यो दद्याद्धर्मनन्दन!

स याति परमं स्थानं यत्र वासः पिनाकिनः ।

सर्वसौख्यसमायुक्तोऽप्सरोग्भिः सह मोदते ॥ ४ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे  
रेवाखण्डे नन्दिकेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम  
चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

## पञ्चनवतितमोऽध्यायः

नारायणीतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र! वदर्याश्रममुत्तमम् । सर्वतीर्थवरं पुण्यं कथितं शम्भुना पुरा  
यश्चैप भारतस्याऽर्थे तत्र सिद्धः किरीटभृत् ।

भ्राता ते फाल्गुनो नाम विद्वेयं नारदैवतम् ॥ २ ॥

नरनारायणी द्वौ तावतातौ नर्मदातटे । क्षान्तस्रष्ट्रैव यो राजन्भक्तिमान् वैजनादने  
समम्पश्यति सर्वेषु स्थानेषु चरेत्तु च । ब्राह्मणं श्रुत्वा चैव तत्र प्रीतो जवाह्वनः



ऐकान्त्य पश्य कीन्तव' मयि चाऽऽमनि नान्तरम् ।

नरनारायणाम्यां हि ह्यन बदरिकाधमम् ॥ ५ ॥

स्यापि शङ्करस्त्र लोकाणुग्रहवारणात् ।

त्रिमूर्तिस्थापितं त्रिह स्वर्गमार्गानुमुक्तिदम् ॥ ६ ॥

तत्र गथा शुचिभूत्या होक्वराश्रोपयामहत् ।

रजस्नमस्तथा त्यक्त्वा सात्त्विक भावप्राधयेत् ॥ ७ ॥

सार्थो जागरण वृत्त्यामधुमात्ताण्मीदिने । अथवाच चतुर्दश्यामुभौपशौचकारं  
आभिनम्य विशेषेण कथितं तव पाण्डव ।

ध्यापयपरया भक्त्या क्षीरेण मधुना मह ॥ ८ ॥

दध्नाशकरया युक्तं पुत्रेण समदृष्टम् । पञ्चामृतमिदपुण्यं स्थापयेदुत्तमध्वज

स्नाप्यमान शिव भक्त्या धीक्षते यो विमन्सर ।

तस्य घाम शिवोपान्ते शङ्करोके न सशय ॥ ११ ॥

शाठ्यं नाऽपि नमस्कारं प्रयुक्तं शृङ्गपाणिने ।

ससारमूल्यदानामुद्वेष्टनकरो हि यः ॥ १२ ॥

तेनार्थात् धुन तन तेनसवमनुष्ठितम् । येनोनम शिवायेतिमन्त्राभ्यास स्थिराह

य पुन ध्यापयेद् भक्त्या एकभक्तो जितेन्द्रिय ।

तस्याऽपि यत्फलं पायं पश्ये तल्लेशतस्तव ॥ १४ ॥

पाडितो वृद्धभावेन तव भक्त्या षडाम्यहम् ।

ते यान्ति परमं स्थान भित्त्वा भास्करमण्डलम् ॥ १५ ॥

ससारे सवसौल्याना नित्यास्ते भवन्ति च ।

आध्यं ज्ञातिवगाणा धर्माणा नित्यास्तु ते ॥ १६ ॥

सन्पन्ना सधकामैस्तेपृथिव्यापृथिवीपते । धादतत्रैव यं कुयान्नमदोदकमिधित

योग्यैश्च ब्राह्मणै राजन्कुर्लनैर्वेदपारगै । सुरूपैश्च सुरशीलैश्च स्वदारनिरतै शुभं

आयदेशप्रनृतेश्च रुग्णैश्चैव सरूपिमि । कारयेत्पिण्डदान वै भास्वरेकुतपस्थिं

पितृणांपरमंलोकंयदीच्छेद्धर्मनन्दन ।  
 पुरुषान्क्रूरपण्डांश्च ब्राह्मणानां च निन्दकान् ।

एतांश्च वर्जयेद्विप्रान्यदीच्छेच्छ्रेय आत्मनः ॥ २१ ॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेनयोग्यंविप्रंसमाश्रयेत् ।  
 नरकान्मोचयेत्प्रेतान्कुम्भीपाकपुरोगमान् ।  
 मोक्षो भवति सर्वेषां पितृणां नृपनन्दन !

विप्रेभ्यः काञ्चनं दद्यात्प्रीयतां मे पितामहः ॥ २३ ॥

अन्नं च दापयेत्तत्रभक्त्या वस्त्रं च भारत ।  
 गां वृषभेदिनीं दद्याच्छत्रंशस्तंनृपोत्तम!

स पुमान्स्वर्गमाप्नोति इत्येवं शङ्करोऽब्रवीत् ।

प्राणत्यागं तु यः कुर्याच्छिखिना सलिलेन वा ॥ २५ ॥

अनाशकेन वा भूयः स गच्छेच्छिवमन्दिरम् ।

नरनारायणीतीरे देवद्रोण्यां च यो नृप ! ॥ २६ ॥

स वसेदीश्वरस्याग्रे यावदिन्द्राश्चतुर्दश ।

पुनः स्वर्गाच्च्युतः सोऽपि राजा भवति वीर्यवान् ॥ २७ ॥

सर्वैश्वर्यगुणैर्युक्तः प्रजापालनतत्परः ।  
 ततः स्मरति तत्तीर्थं पुनरेवाऽऽगमिष्यति  
 इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे

रेवाखण्डे नारायणीतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम

पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

पेकात्म्य पश्य कौन्तेय' भयि चाऽऽत्मनि नान्तरम् ।

नरनारायणाभ्या हि हृत यदरिकाग्रमम् ॥ ५ ॥

स्थापित शङ्करस्तत्र लोकानुग्रहकारणात् ।

त्रिमूर्त्तिस्थापित लिङ्ग स्वर्गमार्गानुमुक्तिदम् ॥ ६ ॥

तत्र गत्वा शुधिभूत्या ह्येकरात्रोपयासहृत् ।

रजस्तमस्तथा त्यक्त्वा मास्त्विक भाषमाधयेत् ॥ ७ ॥

रात्रौ जागरण कृत्वामधुमानाष्टमीदिने । भयबाध घतुर्दृश्यामुर्मोपशौचकार्ये  
आभ्यिनस्य विशेषेण कथित तव पाण्डव ॥

स्नापयेत्परया भक्त्या क्षीरेण मधुना सह ॥ ८ ॥

दध्नाशर्करया युक्त घृतेन समगृह्यन्तम् । पञ्चामृतमिदपुण्यं स्नापयेद्दुष्टुरमन्त्र  
स्नाप्यमान शिव भक्त्या धीक्षणे यो विमन्सर ।

तस्य घाम शिवोपान्ते शबलोके न सशय ॥ ११ ॥

शाठ्येनाऽपि नमस्कार प्रयुक्त शूलपाणिने ।

ससारमूलप्रदानामुडेण्णकरो हि य ॥ १२ ॥

तेनार्थित धृत तेन तेनसद्यमनुष्ठितम् । येनोनम शिवायेतिमन्त्राभ्यास स्थिरीकृ  
य पुन स्नापयेद्द भक्त्या एकभक्तौ जितेन्द्रिय ।

तस्याऽपि यत्कल पाय' घश्ये तल्लैशतस्तव ॥ १४ ॥

पीडितो वृद्धभावेन तव भक्त्या धदाम्यहम् ।

ते यान्ति परमं स्थान मिच्छ्वा भास्करमण्डलम् ॥ १५ ॥

मसारे सवसौख्याना निलयास्ते भवन्ति च ।

आध्यं ह्यातिवर्गाणा धर्माणा निलयास्तु ते ॥ १६ ॥

सन्पत्रा'सधकामैस्तेपृथिव्यापृथिवीपते । धाद्धतत्रैव य' कुर्यात्प्रमदौदकमिश्रित  
योग्यैश्च ब्राह्मणे राजन्कुलीनैर्बेदपारगै । सुरूपैश्च सुरशीलैश्च स्वदारनिरतै शुभै  
आयदेशप्रसूनैश्च शृङ्गैश्चैव सरूपिभि' । कार्येत्पिण्डदान वै भास्करेकुतपस्वि

पितृणांपरमंलोकंयदीच्छेद्धर्मनन्दन । वर्जयेत्तान्प्रयत्नेन काणान्दुष्टांश्चदाम्भिकान्  
 पुरुषान्क्रूरपण्डांश्च ब्राह्मणानां च निन्दकान् ।

एतांश्च वर्जयेद्विप्रान्यदीच्छेच्छ्रेय आत्मनः ॥ २१ ॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेनयोग्यंविप्रंसमाश्रयेत् । नरकान्मोचयेत्प्रेतान्कुम्भीपाकपुरोगमान्  
 मोक्षो भवति सर्वेषां पितृणां नृपनन्दन !

चिप्रेभ्यः काञ्चनं दद्यात्प्रीयतां मे पितामहः ॥ २३ ॥

अन्नं च दापयेत्तत्रभक्त्या वस्त्रं च भारत । गां वृषंमेदिनीं दद्याच्छत्रंशस्तंनृपोत्तम !

स पुमान्स्वर्गमाप्नोति इत्येवं शङ्करोऽब्रवीत् ।

प्राणत्यागं तु यः कुर्याच्छिखिना सलिलेन वा ॥ २५ ॥

अनाशकेन वा भूयः स गच्छेच्छिवमन्दिरम् ।

नरनारायणीतीरे देवद्रोण्यां च यो नृप ! ॥ २६ ॥

स वसेदीश्वरस्याग्रे यावदिन्द्राश्चतुर्दश ।

पुनः स्वर्गाञ्च्युतः सोऽपि राजा भवति धीर्यवान् ॥ २७ ॥

सर्वैश्वर्यगुणैर्युक्तः प्रजापालनतत्परः । ततः स्मरति तत्तीर्थं पुनरेवाऽऽगमिष्यति

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे

रेवाखण्डे नारायणीतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम

पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥



## सप्तनवतितमोऽध्यायः

व्यासतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततोगच्छेन्महीपालव्यासतीर्थमनुत्तमम् । दुर्लभंमनुजैःपुण्यमन्तरिक्षेव्यवस्थितम्

युधिष्ठिर उवाच

कस्माद्द्वै व्यासतीर्थं तदन्तरिक्षे व्यवस्थितम् ।

एतदाख्याहि संक्षेपात्त्यज ग्रन्थस्य विस्तरम् ॥ २ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

साधुसाधुमहावाहो धर्मवान्साधुवत्सल । स्वकर्मनिरतः पार्थतीर्थयात्राकृतादरः  
दुर्लभं सर्वजन्तूनां व्यासतीर्थं नरेश्वर । पीडितोवृद्धभावेन अकल्पोऽहंनृपात्मज

विसञ्ज्ञो गतचित्तस्तु सञ्जातः स्मृतिवर्जितः ।

गुह्याद् गुह्यतरं तीर्थं नाऽऽख्यातं कस्यचिन्मया ॥ ५ ॥

कलिस्तत्रैव राजेन्द्र न विशेद् व्याससंश्रयात् ।

अन्तरिक्षे तु सञ्जातं रेवायाश्चेष्टितेन तु ॥ ६ ॥

विरिञ्चिर्नैव शक्नोति रेवाया गुणकीर्त्तनम् ।

कथं ज्ञास्याम्यहं तात रेवामाहात्म्यमुत्तमम् ॥ ७ ॥

व्यासतीर्थंविशेषेण लवमात्रं ब्रवीम्यतः । प्रत्यक्षः प्रत्ययो यत्र दृश्यतेऽद्यकलौयुगे  
विहङ्गो गच्छतेनैवभिच्चाशूलंसुदारुणम् । तस्योत्पत्तिसमासेनकथयामिनृपात्मज

आसीत्पूर्वमहीपालमुनिर्मान्यःपराशरः । तेनात्युग्रंतपश्चीर्णं गङ्गाम्भसिमहाफलम्  
प्राणायामेन सन्तस्थौप्रविष्टो जाह्नवीजले । पूर्णंद्वादशमेवर्षे निष्क्रान्तोजलमध्यतः

मिक्षार्थी सञ्चरेद् ग्रामं नाचा यत्रैव तिष्ठति ।

तत्र तेन परा दृष्टा बाला घृवं मनोहरा ॥ १२ ॥

ता दृष्ट्वा स न कामार्त्तं उपाय मधुरं तदा ।  
मां नयस्व पर पारं काऽमि ह्य मृगगेघने ॥ १३ ॥

नाचाण्डे नदीतीरे मम चित्तप्रमाथिनि । एषमुक्ता तु सा तेन प्रणम्यस्रपिपुद्गया  
कथयामास धाऽऽमान दृष्ट्वा न काममोहितम् ।  
षेपत्तानां गृहे दाम्नी कन्याऽह छिनमत्तम् ॥ १५ ॥  
नाद्या सरक्षणार्थाय धादिण स्वामिना विमो ।  
मया विज्ञपित वृत्तमदोष ज्ञानुमर्हसि ॥ १६ ॥  
एवमुक्त्वा तथा सोऽथ क्षण ध्यात्वाऽग्रवीदिहम् ॥ १७ ॥

पराशर उवाच

अहंज्ञानरगाद्भेदेतवजानामिसम्भयम् । क्वचित्तंपुत्रिका न त्वराजरन्याऽमितुन्दरि  
कन्योवाच

क पिता कथ्यता ब्रह्मन्कन्या वा इ दरोद्भवा ।  
कस्मिन्वंशे प्रसताऽह क्व वत्ततनया कथम् ॥ १६ ॥

पराशर उवाच

कथयामि समस्तवस्त्वया पृष्ठमशेषत । वसुनामेतिभूपाल सोमशशिभूयण ॥  
जम्बूद्वीपाधिपो भद्र शत्रुणा भयवधन । शतानि सप्तभार्याणा पुत्राणाञ्चदशीवतु  
धर्मेण पात्र्येहोक्तानीशवत्पूज्यने रुदा ।  
म्लेच्छास्तन्याविधेयाश्च क्षीरद्वीपनिधामिन ॥ २२ ॥

तेषामुन्सादनाथायथावृत्तद्यसामरम् । सयुक्त पुत्रभूर्यैश्चर्षीरुपेमहति स्थिने  
समरते समारब्धम्लेच्छैश्चवसुनासह । जिताम्लेच्छा समस्तास्ने वसुनामृगगेघने  
वरदास्ते वृतास्नेन सपुत्ररत्नवाहना । प्रजाना तस्य साराशा तवमातामृगक्षणे  
प्रवासस्थे मर्हीपाले सञ्जाता सा रजस्वरा ।  
नारीणा तु सदाकालं मन्मथो ह्यधिको भवेत् ॥ २१ ॥  
विदोषण ऋतो काले भिद्यन्ते कामसायकै ।

मन्मथेन तु सन्तप्ताऽचिन्तयत्सा शुभेक्षणा ॥ २७ ॥

दूतं वै प्रेषयाम्यद्य वसुराज्ञः समीपतः । आहूतः सत्वरं दूत! गच्छत्वं नृपसन्निधौ  
दूत उवाच

परतीरं गतो देवि वसुराजाऽरिशासनः । तत्र गन्तुमशक्येत जलयानैर्विना शुभे  
तानि यानानि सर्वाणि गृहीतानि परे तटे ।

दूतवाक्येन सा राज्ञी विपण्णा कामपीडिता ॥ २० ॥

तत्सखी तामुवाचाऽथ कस्मात्त्वं परितप्यसे ।

स्वलेखः प्रेष्यतां देवि ! शुकहस्ते यथार्थतः ॥ ३१ ॥

समुद्रं लङ्घयित्वा तु शकुन्ता यान्ति सुन्दरि !

सखिवाचयेन सा राज्ञी स्वस्था जाता नराधिप ! ॥ ३२ ॥

व्याहृतोलेखकस्तत्रलिखलेखं ममाज्ञया । त्वद्धीनासत्यभामाद्यवसोराजन्नजीवति  
ऋतुकालोऽद्यसञ्जातो लिखलेखं तु लेखक ! । लिखितेभूर्जपत्रे तु लेखे वै लेखकेनतु  
शुकः पञ्जरमध्यस्थ आनीतोऽद्यैव सन्निधौ ॥ ३५ ॥

सत्यभामोवाच

नीत्वालेखं गच्छशीघ्रंवसुराज्ञःसमीपतः । शकुनिःप्रणतोभूत्वागृहीत्वालेखमुत्तमम्  
उत्पत्य सहसाराजज्ञगामाऽऽकाशमण्डलम् । ततःपक्षीगतःशीघ्रंवसुराजसमीपतः  
क्षिप्ते लेखेशुकेनैव सत्यभामाविसर्जिते । वसुराज्ञा ततो लेखोगृह्यहस्तेऽवधारितः  
लेखार्थं चिन्तयित्वातुगृह्यवीर्यं नरेवरः । अमोघंपुट्टिकांकृत्वाप्रतिलेखेनमिथितम्  
शुकस्य सोऽर्पयामास गच्छरःशीसमीपतः । प्रणम्यवसुराजानं वीजंगृह्योत्पपातह  
समुद्रोपरि सम्प्राप्तः शुकः श्येनेन वीक्षितः ।

सामिपं तं शुकं ज्ञात्वा श्येनस्तमभ्यधावत ॥ ४१ ॥

हतश्चञ्चुप्रहारेण शुकः श्येनेन भारत ! । मूर्च्छया तस्यतद्द्वीजंपतितंसागराम्भसि  
मत्स्येन गिलितंतच्च वीजंवसुमहीपतेः । कन्यामत्स्योदरंजातातेन वीजेन सुन्दरि  
प्राप्तोऽसौ लुब्धकैर्मत्स्यं आनीतः स्वग्रहं ततः ।



यावद्विदारितो मन्स्यस्तावद् दृष्टा त्वमुत्तमे ॥ ४४ ॥

शशिमण्डलमद्भाशा म्यनज समप्रभा । दृष्टा त्वां हर्षितामर्वे वीचर्ताजाह्वया  
हर्षिताम्नेगतामर्वे प्रधानरूपधमन्दिग्म् । खरितनकथयाप्रासुर्गृह्णाणत्वमहाप्रम  
गर्हाना नेन तन्वद्गीह्यपुत्रेणमृगेशणा । भार्या स्वामाहृतन्वद्विपाल्यस्वमृगेश  
नत सा धिन्तयामाम पराशरवचस्तदा ।

पत्रमुक्त्वा तु सा नेन दत्ताऽऽमान नरेवर ॥ ४८ ॥

उवाच साधु मे व्रतम् । मन्स्यगन्धोऽनुवर्त्तते ।

नतस्मै न तु सा वाग दिव्यगन्धाधियामिता ॥ ४६ ॥

वृत्तायोगरतेनैव ज्वालयित्वा विभायसुम् । हृत्वाप्रदक्षिणवह्निमूढातेनरमान्त  
जग्यानम्य मथ्ये तु कामम्यातान्यमस्पृशन् ।

ब्राह्म्या कामोसुर विप्रं भीता सा धर्मनन्दन ॥ ५१ ॥

हमन्तीतमुपाधाऽयद्गत्त्यलोकमधिधौ । नःत्रसेकधधीमन्नुवाण पामरोचिता  
नतस्मै न क्षण ध्यात्वा मस्मृता हृदि तामसी ।

श्रगता तामसी भाया यथा व्याप्त घराघरम् ॥ ५३ ॥

नत साविस्मितानेन कमणैवतुरज्जिता । ब्रह्मधर्याभितप्तेनखीसौम्यभीडिततद  
नत सा तक्षणादेव गमभारणर्पाडिता । प्रमृतावात्कतत्रजटिलदण्डधारिणा  
कमण्डलुधर शान्त मेखगकटिमूपितम् ।

उत्तरीयव्रतन्कन्ध विष्णुभायावियर्जितम् ॥ ५५ ॥

ततोऽपि शङ्किता पाथ' दृष्टा त कलत्रालकम् ।

वेपमाना ततो थाला जगाम शरण मुने ॥ ५७ ॥

रक्ष रक्ष मुनिधेष्ट । पराशर मद्दामने । जात मेऽयद्भुत पुत्र कौपीनचरमेवम् ।  
दण्डहस्त जटायुक्तमुत्तरायविमूपितम् ॥ ५८ ॥

पराशर उवाच ।

मा भेरी स्वसुते जाते कुमारी त्व भविष्यसि ।

नाम्ना योजनगन्धेति द्वितीयं सत्यवत्यपि ॥ ५६ ॥

शन्तनुर्नाम राजा यः स ते भर्ता भविष्यति ।

प्रथमा महिषी तस्य सोमवंशविभूषणा ॥ ६० ॥

गच्छत्वस्वाश्रयंशुभ्रो पूर्वरूपेणसंस्थिता । माविपादंकुरुष्व्याऽत्रदृष्टं ज्ञानस्यमेवलम्  
इत्युक्त्वा प्रययौ विप्रः सा बाला पुत्रमाश्रिता ।

नत्वोचे मातरं भक्त्या साष्टाङ्गं चिनयानतः ॥ ६२ ॥

श्रम्यतां मातरुक्तं मे प्रसादः क्रियतामपि । ईश्वराराधने यत्नंकरिष्याम्यहमन्विके  
ततः सा पुत्रवाक्येन विषण्णा चाक्रमतीत् ॥ ६४ ॥

योजनगन्धोवाच

मा त्यक्त्वा गच्छ वत्साद्य मातरं मामनागसम् ।

त्वद्वियोगेन मे पुत्र! पञ्चत्वं भाव्यसंशयम् ॥ ६५ ॥

नास्ति पुत्रसमः स्नेहो नास्ति भातृसमं कुलम् ।

नाऽस्ति सत्यपरो धर्मो नानृतात्पातकं परम् ॥ ६६ ॥

बालभावे मयाजात आधारः किल जायसे । न मे भर्ता न मे पुत्रः पश्य कर्मविद्वन्वनम्

व्यास उवाच

मा विपादं कुरुष्वान्तः सत्प्रमेतन्मयेरितम् ।

आपत्कालेऽस्मि ते देवि ! स्मत्तन्व्यः कार्यसिद्धये ॥ ६८ ॥

आपद्स्तारधिष्यामि श्रम्यतां मे दुरुत्तरम् ।

इत्युक्त्वा प्रययौ व्यासः कन्या साऽपि गता गृहम् ॥ ६९ ॥

पराशरस्तुतस्तत्र विषण्णो चनमश्रयतः । त्रेतायुगावसाने तु द्वापरादौ नरेश्वर ॥

व्यासार्थं चिन्तयामासुर्देवाः शक्रपुरोगमाः । आख्यातो नारद्रेनैवपुत्रः पराशरस्यसः

कीवर्तपुत्रिकाजातो शानीजह सुतातटे । ततो नारदवाक्येन आगताः सुरसत्तमाः

रामः पितामहः शक्रो मुनिसङ्घैः समावृताः ।

पितामहेन वै बालो गर्भाधानादिमस्मृत ।

ह्रीपायनो ह्रीपजन्मा पाराशर्य पराशरात् ॥ ७४ ॥

वृष्णाशात् वृष्णनामायं ध्यामो वेदान्यमिष्यति ।

विरञ्जिनाऽभिपिक्तोऽनौ मुनिसद्वै पुन पुन ॥ ७५ ॥

व्यासस्य सवर्गेषु श्रुत्वा प्रययु सुरा ।

तीर्थयात्रा समारब्धा वृष्णह्रीपायनेन तु ॥ ७६ ॥

गङ्गायगाहितानेन वेदारब्ध मपुष्कर । गयाच्च नैमिष तीर्थं कुरक्षेत्रं सरस्वती ॥

उज्जयिन्या महाकात्रं न्योमनाथ प्रभासके ।

पृथिषा सागरान्ताया स्नात्वा यातो महामुनि ॥ ७७ ॥

अमृता नमदाप्रामो म्द्रदेहोद्गवाशुभाम् । साहासो नमदां दृष्ट्वा चित्तविधान्तिमापद्य

तपधधारविपुत्र नमदात्तमाश्रित । श्रीधमपञ्चाङ्गि मध्यस्थो वपानुस्यण्डिशय

साद्रवामाद्य हेमन्ते तिष्ठन्द्ध्यौ महेश्वरम् ।

स्वान्तहृत्कमरे रघाप्य ध्यायते परमेश्वरम् ॥ ८१ ॥

सृष्टिमहारक्षत्तारमच्छेद्य परं शुभम् । नित्यं सिद्धेश्वरं लिङ्गं पूजयेत्पान्ततरपर

अघनात्मिद्धिङ्गस्य ध्यानयोगप्रभाषत । प्रयत्नं शङ्करोज्जात वृष्णह्रीपायनस्य म

श्वर उवाच

तोषितोऽहं त्वया वस' परं धरय शोभनम् ॥ ८४ ॥

ध्याम्य उवाच

यदिनुणोऽसि मे दय यदि दया धरामम । प्रयत्नो नमदातीरे स्वयमेवमविष्यसि

अनीनातागततोऽहं स्वप्नमादाहुमापने ॥ ८५ ॥

श्वर उवाच

एवं भवतु मे पुत्र' म्प्रमादात्संशयम् । त्वयिमनिगृहीतोऽहं प्रयत्नो नमदातटे

राहस्यांशात्तभाषत प्रयत्नोऽहं त्वदाधमे । श्रुत्वा प्रयत्नो देव' किलात्मनगमुत्तमम्

पत्नीसंग्रहणं जातं वृष्णह्रीपायनस्य त् । शीघ्रोन्नेन विधातेन पत्नीं पालयतस्तथा

पुत्रो जातो ह्यपुत्रस्य पराशरस्तुतस्य च । देवैर्बद्धापितः सर्वैर्विरिञ्चेन्द्रपुरोगमैः  
पुत्रजन्मन्यथाजग्मुर्वशिष्टाद्या मुनीश्वराः । तीर्थयात्राप्रसङ्गेन पराशरपुरोगमाः ॥

मन्वत्रिविष्णुहारातयाज्जवल्गोशनोद्दिताः ।

यमापस्तम्बसम्बर्त्ता कात्यायनवृहस्पती ॥ ६१ ॥

एवमाद्रिसहस्राणि लक्षकोटिशतानि च । सशिष्याश्च महाभागानर्मदातटमाश्रिताः  
व्यासाश्रमे शुभे रम्ये सन्तुष्टा आश्रयुर्नृप ।

दृष्ट्वा तान्सोऽपि विप्रेन्द्रानभ्युत्थानवृत्तोद्यमः ॥ ६३ ॥

पितुःपूर्वप्रणम्याऽर्दोसर्वेषां च यथाविधि । आसनानिर्दोभक्त्या पाद्यमर्चन्यवेद्यत्  
कृताञ्जलिपुटोभूत्वा चाक्यमेतदुवाच ह । उद्धतोऽहं नसन्देहोयुष्मत्सम्भाषणार्चनात्  
आरण्यानि च शाकानि फलान्यारण्यजानि च ।

तानि दास्यामि युष्माकं सर्वेषां प्रीतिपूर्वकम् ॥ ६६ ॥

न्यमन्त्रयत तान्सर्चान्प्रत्येकं प्रणिपत्य च । ततस्ते प्रणतं दृष्ट्वा कृष्णद्वैपायनं मुनिम्  
वर्द्धयित्वा जयाशीर्भिरचलोक्य परस्परम् । पराशरःसमस्तेश्च वीक्षितो मुनिपुङ्गवैः  
उत्तरं दीयतां तात कृष्णद्वैपायनस्य च । एवमुक्तस्तु तेः सर्वैर्भगवान्स पराशरः ॥

प्रोवाच स्वात्मजं व्यासमृषीणां यच्चिकीर्षितम् ॥ ६६ ॥

श्रीपराशर उवाच

नेच्छन्ति दक्षिणे कूले व्रतभङ्गभयादथ । भोजनं भोक्तुकामास्ते श्राद्धे चैव विशेषतः

व्यास उवाच

करोमिभयतामुक्तमत्रैवस्थीयतां क्षणम् । यावत्प्रसाद्यसरितं करोमि विधिमुत्तमम्  
एवमुक्त्वा शुचिर्भूत्वा नर्मदातटमास्थितः ।

स्तोत्रं जगाद् सहसा तन्नियोध नरेश्वर ! ॥ १०२ ॥

जय भगवति! देवि! नमो वरदे! जय पापविनाशिनि! बहुफलदे !

जय शुम्भनिशुम्भकपालधरे! प्रणमामि तु देवनरात्तिहरे ! ॥ १०३ ॥

जय चन्द्रदिवाकरनेत्रधरे! जय पावकभूपितधक्त्रवरे !

जय मैत्रयदेहनिर्गनपरे' जय मन्धपरतविशोपकरे' ॥ १०४ ॥

जय महिषयिमर्दिनि' शूलकरे जय लोचममस्त्ररूपापहरे' ।

जय देवि' पितामहरामनते' जय भाम्ब्यशमगितोऽचनते ॥ १०५ ॥

जय षण्मुग्गमायुधैशानुते' जय सागरगामिनि' शम्भुनुते' ।

जय दुःखदग्निविनाशकरे' जय पुत्रकण्ठप्रविवृद्धिकरे' ॥ १०६ ॥

जय देवि' समस्त्रशरीरधरे' नय नाकविदर्शिनि' दुःसहरे' ।

जय व्याधिचिनाशिनि' माश्रकरे' जय चाञ्छितपायिनि' मिद्धकरे' ॥ १०७ ॥

एतन्व्यामहृतस्तोत्रय एतच्छिवमग्निर्धौ । गृहे धाशुद्धमायनशामक्रोशविवर्षित  
तस्य व्यासो भवेत्प्रीत प्रातश्च धृतवाहन । प्रातारव्याघ्रमदादेवीसवपापशयदूरी  
न ते यान्ति समादाक ये स्तुता भुवि नर्मदा ।

पितामहोऽपि मुञ्चेत देवि' चण्डगुणकीर्त्तनात् ॥ ११० ॥

चावयतिर्नैव न वक्तुम्वरुष धेदु नमदे' । कथं गुणानह देवि त्वत्पायाञ्छानुमुत्सहे  
इति ज्ञात्वा शुषिभायदाडमनकायकममि । प्रसन्नानमदादेवी ततोवचनमप्रवीत्  
मन्यदादेन तुणाऽह भोमो व्यास महासुने' ।

यदीच्छसि वर किञ्चित्त ते सर्वं ददाम्यहम् ॥ ११३ ॥

व्यास उवाच

यदि तुष्णमि मे देवि यदि देशो धर्मो मम । धानिप्यमुत्तरेकृत्स्नरीणादानुमर्हसि  
नमदोवाच

अयुक्त्याचित्त व्यास विमार्गेयप्रचनम् । इन्द्रधनुर्मै रक्षासुमार्गेनश्चर्त्तितुम्  
याद्यम्यान्व वर पुत्र' यत्किञ्चिद्भुवि दुःखम् ।

एतच्छ्रुत्वा वधो दया व्यासो मृच्छा गतस्तदा ॥ ११४ ॥

उया क्लेशोऽद्य मे ज्ञात इति मत्वा पपात ह ।

धरणा चञ्चिता मया सशोचनकानता ॥ ११७ ॥

मृच्छापन्न वतो व्यास दृष्ट्वा देवा मयासवा ।

हाहाकारमुखाः सर्वे तत्राऽऽजग्मुः सहस्रशः ॥ ११८ ॥

व्यासमुत्थापयामासुर्वेदव्यसनतत्परम् ।

ब्राह्मणार्थं च संक्लिष्टो नात्महेतोः सखिद्वरे ॥ ११९ ॥

गवार्थं ब्राह्मणार्थं च सद्यः प्राणान्परित्यजेत् ।

एवं सा नर्मदा प्रोक्ता ब्रह्माद्यैः सुरसत्तमैः ॥ १२० ॥

सुशीतलैस्तं बहुभिश्चवातै रेवाऽभिपिञ्चत्स्वजलेन भीता ।

सन्नेतनः सत्यवतीसुतोऽपि प्रणम्य देवान्सरितं जगाद् ॥ १२१ ॥

व्यास उवाच

तीर्थैः समस्तैः किल सेवनाय फलं प्रदिष्टं मम भन्द्रभाग्यात् ।

यद्वै वि पुण्या विफला ममाशा आरण्यपुष्पाणि यथा जनानाम् ॥ १२२ ॥

नर्मदोवाच

यतो यतो मां हि महानुभाव! निनीपते चित्तमिलातलेऽत्र ।

विन्ध्येन सार्द्धं तत्र मार्गमद्य यास्याम्यहं दण्डधरस्य पृष्ठे ॥ १२३ ॥

एवमुक्तो महातेजाः व्यासः सत्यवतीसुतः ।

दक्षिणे चालयामास स्वाश्रमस्य सखिद्वराम् ॥ १२४ ॥

दण्डहस्तो महातेजा हुङ्कारमकरोन्मुनिः ।

व्यासहुङ्कारभीता सा घलिता रुद्रनन्दिनी ॥ १२५ ॥

दण्डेन दर्शयन्मार्गं देवीतत्र प्रवर्तिता । व्यासमार्गं गता देवी दृष्टाशक्रपुरोगमैः

पुष्पवृष्टिं ततोदेवा व्यमुञ्चन्त्सहकिङ्करैः । प्रोत्फुल्लनयनाजाताःपराशरमुखाद्विजाः

किं कुर्मो ब्रूहि मे पुत्र ! कर्मणा ते स्म रञ्जिताः ॥ १२७ ॥

व्यास उवाच

तपश्च विपुलं कृत्वा दानंदत्त्वा महाफलम् । एतदेवनरैः कार्यसाधूनांयत्सुखावहम्

यदि तुष्टा महाभागअनुप्राहोह्यहंयदि । तस्मान्ममाश्रमेसर्वैःस्थीयतांनाऽत्रसंशयः

आतिथ्यं शाकपर्णेन रेवामृतविमिश्रितम् । प्रतिपन्नं समस्तैर्वैः पराशरमुखैर्ममः

स्यात्तत्र्यं स्याध्रम सर्वे र्वाया उत्तर त्पे ॥ १३० ॥

माकण्डेय उवाच

स्नानतपणनिधानि कृत्वाति द्विनसत्तमे ।

व्यासपुण्ड तना गवा होम सर्वे प्रकल्पित ॥ १३१ ॥

श्रीपुण्ड्रिल्वपत्रैश्च जुहुवनातवेदसम् । गौतमो भृगुमाण्डव्यो नारदो गोमशस्तथा

पराशरस्तथा शङ्ख षीशिश्वर्यवनो मुनि ।

पिप्यगदो वसिष्ठश्च नाचिनेनो महातपा ॥ १३३ ॥

चिन्वामिश्रोऽप्यगम्यश्च उद्दालक्यमी तथा ।

शाण्डिल्यो जैमिनि ऋषयो यागवत्स्योशनोङ्गिरा ॥ १३४ ॥

शातातपो दर्धीधिश्चरुपिगेगान्वस्तथा । जैर्गीय यस्तथादक्षोमरतोमुद्गलस्तथा

घात्स्यायनो महानेना सम्बन्त शक्तिरव च ।

नानृष्यो भरद्वाजो घाग्विल्यारुणिस्तथा ॥ १३५ ॥

पयमादिसहस्राणि जुहुवनातवेदसम् । अग्नागकरोत्कीणाध्यानयोगपरायणा

एकधिता द्विना सव चतुर्होमक्रिया तदा ।

ततममुत्थित िङ्ग मोक्षद व्याधिनाशनम् ॥ १३६ ॥

अच्छेद्य परम देवदृष्टाव्यासस्तुतोपु च । पुण्ड्रिददुर्देवा आशीवादाद्विजोत्तमा

मागङ्ग प्रणतो व्यासो देवं दृष्ट्वा त्रिलोचनम् ।

ब्राह्मणान्पूजयामास शाकमुत्फलेन च ॥ १४० ॥

पितृपूय द्विजा सर्वे भोनिता पाण्डुनन्दन ।

आशावादास्तत पुण्यान्दत्त्वा विशा ययु पुन ॥ १४१ ॥

तदा प्रभृति तर्तीयं व्यासाय प्रोच्यत बुधे ॥ १४२ ॥

युधिष्ठिर उवाच

व्यासतीथस्य यत्पुण्य तत्सर्वं कथयन्व मे ।

स्नानदानविधान च यस्मिन्काले महाफलम् ॥ १४३ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

कथयामिसमस्तंतेभ्रातृभिःसहपाण्डव । कार्तिकस्यसितेपक्षेघतुर्दश्यांजितेन्द्रियः  
उपोष्य यो नरो भक्त्या रात्रौ कुर्वीत जागरम् ।

स्नापयेदीश्वरं भक्त्या क्षौद्रक्षीरेण सर्पिषा ॥ १४५ ॥

दध्ना च खण्डयुक्तेन कुशतोयेन वै पुनः । श्रीखण्डेन सुगन्धेन गुण्डयेत्परमेश्वरम्  
ततः सुगन्धकुमुमैर्विल्वपत्रैश्च पूजयेत् । मुचुकुन्देन कुन्देन कुशजातीप्रसूतकैः ॥  
उन्मत्तमुनिपुष्पैश्च तथान्यैः कालसम्भवैः । अर्चयेत्परयाभक्त्या द्वीपेश्वरमनुत्तमम्  
इक्षुगडुकदानेन तुष्यते परमेश्वरः । गडुकाष्टकदानेन पातकं यात्यहोजितम् ॥ १४६  
मासार्जितं च नश्येत् गडुकाष्टशतेन च । प्राण्मासिकं सहस्रेण द्विगुणैरद्विकंतथा  
आजन्मजनितं पापमयुतेन प्रणश्यति । द्विगुणैर्नश्यतेव्याधिस्त्रिगुणैःस्याद्धनागमः  
षड्गुणैर्जायते चाग्मी सिद्धस्तद्द्विगुणैस्तथा ।

रुद्रत्वं दशलक्षैश्च जायते नाऽत्र संशयः ॥ १५२ ॥

पौर्णमास्यां नृपश्रेष्ठ! स्नानं कुर्वीतभक्तितः । मन्त्रोक्तेन विधानेनसर्वपापक्षयङ्करम्  
चारुणं च तथाग्नेयंब्राह्मयंचैवाक्षयङ्करम् । देवान्पितॄन्मनुष्यांश्चविधिवत्तर्पयेद्बुधः  
ऋषा ऋग्वेदजं पुण्यं साम्ना सामफलं लभेत् ।

यजुर्वेदस्य यजुषा गायत्र्या सर्वमाप्नुयात् ॥ १५५ ॥

अक्षरं च जपेन्मन्त्रं सौरं वा शिवदेवतम् । अथवाचैष्णवंमन्त्रंद्वादशाक्षरसञ्ज्ञितम्  
पूजयेद् ब्राह्मणान्भक्त्या सर्वलक्षणलक्षितान् ।

स्वदारनिरतान्विप्रान्दम्भलोभचिर्वर्जितान् ॥ १५७ ॥

भिन्नवृत्तिकरान्पापान्पतिंताञ्छुद्रसेवनान् ।

शूद्रीग्रहणसंयुक्तान्शृपली यस्य मन्दिरे ॥ १५८ ॥

परोक्षवादिनो दुष्टान्गुरुनिन्द्रापरायणान् । वेदद्वेषणशीलांश्चहेतुकान्चकवृत्तिकान्  
ईदृशान्वर्जयेच्छास्त्रे दाने सर्वव्रतेषु च । गायत्रीसारमात्रोऽपिचरंविप्रःसुयन्त्रितः  
नायन्त्रितश्चतुर्वेदी सर्वाशी सर्वचिक्रयी । ईदृशान्पूजयेद्विप्रान्त्रदानहिरण्यतः





सप्तनवतितमोऽध्यायः ] \* व्यासतीर्थमाहात्म्यवर्णनम् \*

न तेषां जायते शोको न हानिर्न च दुष्कृतम् । प्रथमंपूजयेत्तत्र लिङ्गं सिद्धेश्वरं ततः  
यत्र सिद्धो महाभागा व्यासः सत्यवतीमुतः ।

अस्यैव पूजनात्सिद्धो धारासर्पो महामतिः ॥ १७८ ॥

तत्र तीर्थं तु यो राजन्प्राणत्यागं करोति च ।

सूर्यलोकमसौ भित्त्वा प्रयाति शिवसन्निधौ ॥ १७९ ॥

समाःसहस्राणि च सप्त वै जले दशैकमग्रीं पतने च षोडश ।

महाहवे पश्चिरीति गोग्रहे ह्यनाशके भारत! चाक्षया गतिः ॥ १८० ॥

पिता पितामहश्चैव तथैवप्रपितामहः । वायुभूतं निरीक्षन्ते ह्यागच्छन्तंस्वगोत्रजम्

अस्मद्गोत्रेऽस्ति कः पुत्रो यो नो दद्यात्तिलोदकम् ।

कार्त्तिक्यां च विशेषेण वैशाख्यां वा तथैव च ॥ १८१ ॥

स्वर्गतिं च प्रयास्यामस्तत्र तीर्थोपसेवनात् ।

एतत्ते कथितं सर्वं द्वीपेश्वरमनुत्तमम् ॥ १८२ ॥

यः पटेत्परया भक्त्या शृणुयात्तद्गतो नृप !

सोऽपि पापविनिर्मुक्तो मोदते शिवमन्दिरे ॥ १८३ ॥

ऊपरं सर्वतीर्थानां निर्मितं मुनिपुङ्गवैः । कामप्रदं नृपश्रेष्ठ! व्यासतीर्थं न संशयः ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे

रेवाखण्डे व्यासतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

## अष्टनवतितमोऽध्यायः

प्रभासतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्रप्रभासेश्वरमुत्तमम् । विख्यातं त्रिपुलोकेषु स्वर्गसोपानमुत्तमम्

युधिष्ठिर उवाच

प्रभामं तात! मे ब्रूहि कथं ज्ञातं महाफलम् । स्वर्गसोपानदं दृश्यं संक्षेपात्कथयाशुमे

श्रीमार्कण्डेय उवाच

दुर्भंगा रविपत्नी च प्रभा नामेति विश्रुता ।

तथा चाऽऽराधितः शम्भुरुद्रेण तपसा पुरा ॥ ३ ॥

वायुभक्षा स्थिता चर्षकपंध्यानपराधना । ततस्तुष्टोमहादेवः प्रभायाः पादुनन्दन

श्वर उवाच

कस्मात्संहृश्यमे बाले! कथ्यता यद्विवक्षितम् ।

अहं हि मास्करोऽप्येको नानात्वं नैव विद्यते ॥ ५ ॥

प्रभोवाच

नान्यो देवः स्त्रियः शम्भो! चिना भर्त्रा क्वचिन्प्रभो!।

सगुणो निर्गुणो चाऽपि घनाढ्यो चाऽप्यकिञ्चनः ॥ ६ ॥

प्रियो वा यदि वा द्वेष्यः स्त्रीणां भर्तृव देवतम् । दुर्भगत्वेन दग्धाहं सखीमध्ये सुरेश्वर

भर्तृर्यत्सु सौख्यास्मि तेन त्रिश्याम्यहं भृशम् ॥ ७ ॥

श्वर उवाच

वह्निना मास्करस्यैव मन्त्रसादाह्वयिष्यसि ॥ ८ ॥

पार्श्वत्युवाच

अप्रमाण भवद्वाक्यं मास्करोऽपि करिष्यति ।

वृथा क्लेशो भवेदस्याः प्रभायाः परमेश्वर ! ॥ ६ ॥

उमावाक्पान्महेशान ध्यातस्तिमिरनाशनः ।

आगतो गगनाद्गानुर्नर्मदोत्तररोधसि ॥ १० ॥

भानुरुवाच

आहृतोऽस्मि कथं देव! ह्यघासुरनिपूदन ॥ ११ ॥

ईश्वर उवाच

प्रभं पालय भो भानो! सन्तोषेण परेण हि ॥ १२ ॥

उमावाच

प्रभायामन्दिरेनित्यंस्थीयतां हिमनाशन । अग्रपत्नीसमस्तानां भार्याणां क्रियतांखे

भानुरुवाच

एवंदेविकरिष्यामितववाक्प्रभवरानने । पतच्छ्रुत्वाप्रभाऽऽहता प्रत्युवाचमहेश्वरम्

प्रभोवाच

स्वांशेन स्थीयतां देव! मन्मथारे! उमापते !

एकांशः स्याप्यतामत्र तीर्थस्थोन्मीलनाय च ॥ १५ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

सर्वदेवमयं लिङ्गं स्थापितं तत्र पाण्डव! । प्रभासेशइतिख्यातं सर्वलोकेषुदुर्लभम्

अन्यानि यानि तीर्थानि काले तानि फलन्ति वै ।

प्रभासेशस्तु राजेन्द्र सद्यः कामफलप्रदः ॥ १७ ॥

माघमासे सितेपक्षे सप्तम्यां च विशेषतः । अश्वं यः स्पर्शयेत्तत्र यथोक्तब्राह्मणेनृप

इन्द्रत्वं प्राप्यते तेन भास्करस्याऽथवा पद्मम् ।

स्नात्वा परमया भक्त्या दानं दद्याद् द्विजातये ॥ १६ ॥

नोप्रदातालभेत्स्वर्गसत्यलोकंवरेश्वर । सर्वाङ्गसुन्दरीं शुभ्रां क्षीरिणीं तिरुणीं शुभाम्

सवत्सां वण्टासंयुक्तां कांस्यपात्रावदोहिनीम् ।

ददते ये नृपश्रेष्ठ! न ते यान्ति यमालयम् ॥ २१ ॥



एकोनशततमोऽध्यायः

नागेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततोगच्छेन्महीपालनर्मदादक्षिणे तटे । स्थापितंवासुकीशंतु समस्ताघौघनाशनम्

युधिष्ठिर उवाच

कस्माच्च कारणात्तात रेवाया दक्षिणे तटे ।

वासुकीशः स्थापितो वै विस्तराद्बद्ध मे गुरो ॥ २ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

एतत्सर्वं समास्थाय नृत्यं शम्भुश्चकार वै ॥ ३ ॥

श्रमादजायत स्वेदो गङ्गातोयविमिश्रितम् ।

पतन्तमुरगोऽश्नाति हरमौलिविनिर्गतम् ॥ ४ ॥

मन्दाकिनी ततः क्रुद्धा व्यालस्योपरि भारत !।

प्राप्नुह्यजगरत्वं हि भुजङ्ग क्षुद्रजन्तुकः ॥ ५ ॥

वासुकिरुवाच

अनुग्राह्योऽस्मिन्ने पापोदुर्नयोऽहंहराद्भूते । त्रैलोक्यपावनीपुण्यासरित्त्वंशुभलक्षणा  
संसारच्छेदनकरीह्यार्त्तानामार्त्तिनाशनी । स्वर्गद्वारेस्थितात्त्वंहिदयांकुरुमयीश्वरि

गङ्गोवाच

कुरुष्व विपुलं चिन्ध्यं तपस्त्वं शङ्करं प्रति ।

ततः प्राप्स्यसि स्वं स्थानं पन्नगत्वं ममाज्ञया ॥ ८ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततोऽसौ त्वरितो चिन्ध्यं नागो गत्वा नगं शुभम् ।

तपस्तप्तुं समारंभे शङ्कराराधनोद्यतः ॥ ९ ॥

नित्यं दध्यौ महादेवं श्यशंभमरक्षीयतम् । ततो धपशनेपूर्णं उपरुद्धो जगद्गुरु ॥

आगतस्तत्संसार्यं तु श्शृणां वाणीमुदाहरत् ॥ १० ॥

घरं वरय मे वत्स' पन्नग' त्वं वृषादर ॥ ११ ॥

वासुकिरवाच

यदि तुष्णोऽसि मे देव घरं दास्यसिशङ्कर । प्रसादात्तव देवेश भूयात्रिप्यापनामम  
ताथं किञ्चित्समाख्याहि सर्यपापप्रणाशनम् ॥ १२ ॥

ईश्वर उवाच

पन्नगन्धमहाभाहोरेषागच्छगुभङ्करीम् । याम्येतस्यास्त्येपुण्ये स्नानकुर्यायाचिधि  
इत्युक्तवान्तदधेदेवोवासुकिस्त्वरयान्वित । रूपेणाऽजगरैर्षवप्रविष्टो नर्मदान्ध्रम  
मार्गेण तस्य सञ्जात जाह्वया स्रोत उत्तमम् ।

निष्पूतकल्मष सप सञ्जातो नर्मदाजने ॥ १५ ॥

स्थापित शङ्करस्तत्रनमदायापुधिष्ठिर । ततो नागोऽरलिङ्ग प्रसिद्ध पापनाशनम्  
अश्रम्या वा स्रतुद्दश्या स्नापयेन्मधुना शिवम् ।

विमुक्तकल्मष सद्यो जायन्नाऽत्र सशय ॥ १७ ॥

अपुत्रा ये नरा पाथ' स्नान कुवन्ति सङ्गमे ।

ते लभन्ते सुलाञ्छ्रेष्ठान्भाक्तवीर्योपमाञ्छुभान् ॥ १८ ॥

श्रद्ध तत्रैव य कुर्यादुपवासपरायण । कुच प्रमोघयेत्प्रेतामरकाशुपनन्दन ॥ १९ ॥

सपाणा च मय वशे स्नातिवर्गे न जायते । निर्दोष नन्दते तस्य कुलनागप्रसादत  
एतत्ते सवमाख्यात तव स्नेहान्मृपोत्तम ॥ २० ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्रपांसंहितायापञ्चमेऽध्यायखण्डे

रेवाखण्डे नागेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णननामैकोनशततमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

## शततमोऽध्यायः

मार्कण्डेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेन्महीपाल तीर्थं परमरोचनम् । मार्कण्डेशमिति ख्यातं नर्मदादक्षिणेतटे

उत्तमं सर्वतीर्थानां गीर्वाणैर्चन्दितं शिवम् ।

गुह्याद् गुह्यतरं पुत्र! नाख्यातं कस्यचिन्मया ॥ २ ॥

स्थापितं तु मया पूर्वं स्वर्गलोपानसन्निभम् ।

ज्ञानं तत्रैव मे जातं प्रसादाच्छङ्करस्य च ॥ ३ ॥

अन्यस्तत्रैव यो गत्वा द्रुपदामन्तर्जलेजपेत् । स पातकैरशेषैश्च मुच्यतेपाण्डुनन्दन

वाचिकैर्मानसैश्चैव कर्मजैरपि पातकैः ।

पिण्डिकां स्याप्यवष्टभ्य याम्यामाशां च संस्थितः ॥ ५ ॥

योजयेच्छूलिनंभक्त्याद्वात्रिशद्वहुरुपिणम् । देहपातेशिवं गच्छेदितिमेनिश्चयोनृप

आज्येनबोधयेद्दीपमष्टम्यांनिशिभारत । स्वर्गलोकमवाप्नोति इत्येवं शङ्करोऽब्रवीत्

श्राद्धं तत्रैवयोभक्त्याकुर्वीतनृपनन्दन । पितरस्तस्यतृप्यन्तियावदाभूतसम्प्लवम्

इद्गुदैर्बदरैर्विल्वैरक्षतेनजलेन वा । तर्प्येत्तत्र यो वंश्यानास्नुयाज्जन्मनः फलम् ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे

रेवाखण्डे मार्कण्डेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम शततमोऽध्यायः ॥१००॥



## एकाधिकशततमोऽध्यायः

सङ्कर्षणतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र! तीर्थं परमशोभनम् । उत्तरे नर्मदाकूले यज्ञवाटस्य मध्यत  
सङ्कर्षणमिति ग्यात पृथिव्या पापनाशनम् । तपश्शीर्षं पुरा राजन्यलभद्रेण तत्र वै  
र्षावाणा अपि तत्रैव सन्निधीनृपनन्दन ! । उमयामहित शम्भुस्त्यतस्तत्रैववेशवः  
यलभद्रेण राजेन्द्रप्राणिनामुपकारत । स्थापित परत्या भक्त्या शङ्कर पापनाशन  
यस्तत्र स्नाति घै भक्त्या जितबोधो जिनेन्द्रिय ।

एकादश्या सिते पक्षे मधुना स्नापयेच्छिवम् ॥ ५ ॥

श्राद्ध तत्रैव यो भक्त्या पितृणामथ दापयेत् ।

स याति परम स्थानं यलभद्रेण यथा ॥ ६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणएकाशीतिसाहस्र्या सहिताया पञ्चमेऽवन्तीखण्डे  
रेवाखण्डे सङ्कर्षणतीर्थमाहात्म्यवर्णननामैकाधिकशततमोऽध्याय ॥ १०१ ॥

## द्व्यधिकशततमोऽध्यायः

मन्मथेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

मन्मथेश ततो गच्छेत्सर्वदेवनमस्कृतम् । स्नानमात्राक्षरो राजन्यमलोकनपश्यति  
अनपत्या या च क्षत्री-स्त्राया द्वैपाण्डुनन्दन । पुत्रसारभतेपार्थ सत्यसन्धदृढमतम्  
तत्र स्नात्वा नरो राजञ्छुचि प्रयतमानस ।

उपोष्य रजनीमेकां गीसहस्रफलं लभेत् ॥ ३ ॥

कामिकंतीर्थराजंतु तादृशं न भविष्यति । त्रिरात्रं कुरुते राजन् स गोलक्षफलं लभेत् ।  
तत्र नृत्यं प्रकर्त्तव्यं तुष्यते परमेश्वरः । गीतवादित्रनिर्वोपि रात्रौ जागरणेन च ॥

परणट्यां च महादेवो दृष्टो मे मन्मथेश्वरः ।

किं समर्था यमो रूढो भद्रो भद्राणि पश्यति ॥ ६ ॥

कामेन स्थापितः शम्भुरेतस्मात्कामदो नृप !

सोपानः स्वर्गमार्गस्य पृथिव्यां मन्मथेश्वरः ॥ ७ ॥

विशेषश्चात्र सन्ध्यायां श्राद्धदाने च भारत । अन्नदानेन राजेन्द्र ! कीर्त्तितं फलमुत्तमम् ।  
एतत्ते सर्वमाख्यातं तव भक्त्या तु भारत !

पृथिव्यां सागरान्तायां प्रख्यातो मन्मथेश्वरः ॥ ८ ॥

गोदानं पाण्डवश्रेष्ठत्रयोदश्यां प्रकारयेत् । क्षेत्रे मासि सिते पक्षे तत्र गत्वा जितेन्द्रियः ।  
रात्रौ जागरणं कृत्वा देवस्याग्रे नृपोत्तम !

दीपं भक्त्या घृतेनैव देवस्याग्रे निवेदयेत् ॥ ११ ॥

स्वयथवा पुरुषो वाऽपि सममेतत्फलं स्मृतम् ॥ १२ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽध्यायखण्डे

रेवाखण्डे मन्मथेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम

द्वयधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥

## एकाधिकशततमोऽध्यायः.

सङ्कर्षणतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

तनो गच्छेत्सु राजेन्द्र! तीर्थं परमशोभनम् । उत्तरे नर्मदाकूले यज्ञवाटस्य मध्यत  
सङ्कर्षणमितिख्यातं पृथिव्या पापनाशनम् । तपस्वीर्षणं पुरा रानन्बलभद्रेणतत्र वै  
गीवाणा अपि तत्रैव सन्निधौनृपनन्दन । उग्रयासहितशम्भुस्थितस्तत्रैवकेशव  
बलभद्रेणराजेन्द्रप्राणिनामुपकारत । स्थापितपरया भक्त्या शङ्कर पापनाशन  
यस्तत्र स्नाति वै भक्त्या जितक्रोधो जितेन्द्रिय ।

एकादश्या सिते पक्षे मधुना क्षापयेच्छिवम् ॥ ५ ॥

श्राद्धं तत्रैव यो भक्त्या पितृणामथ दापयेत् ।

न याति परमं स्थानं बलभद्रवक्षो यथा ॥ ६ ॥

इति धास्कान्दे महापुराणव्याशतिसाहस्र्या संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे  
रेवाखण्डे सङ्कर्षणतीर्थमाहात्म्यवर्णननामैकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥

## द्व्यधिकशततमोऽध्यायः

मन्मथेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

मन्मथेश तनो गच्छेत्सर्वदेघनमस्मृतम् । स्नातमाश्राधरो राजस्यमलोकनपश्यति  
अनपत्या या सन्धारीभ्राज्याद्विपाण्डुनन्दन । पुत्रसालभतेपाथ सत्वमन्मथेदृढप्रतम्  
तत्र ज्ञात्वा नरोराजञ्छुचिः प्रयतमानसः ।

उपोष्य रजनीमेकां गोमहस्रफलं लभेत् ॥ ३ ॥

कामिकंतीर्थराजं तु नादृशं न भविष्यति । त्रिरात्रं कुम्भे राजन् स गोतक्षफलं लभेत् ।  
नत्र नृत्यं प्रकृतं च तुष्यते परमेश्वरः । गीतवादित्रनिर्गोरे रात्रौ जागरणेन च ॥

एषण्ड्यां च महादेवो दृष्टो मे मन्मथेश्वरः ।

किं समर्था यमो रष्टो भद्रो भद्राणि पश्यति ॥ ६ ॥

कामेन स्थापितः शम्भुरेतस्मान्कामदो नृप !

सोपानः स्वर्गमार्गस्य पृथिव्यां मन्मथेश्वरः ॥ ७ ॥

विशेषश्चात्र सन्ध्यायां श्राद्धदाने च भारत । अन्नदानेन राजेन्द्र ! कीर्तितं फलमुत्तमम्

एतत्ते सर्वमाग्यातं तत्र भवत्या तु भारत !

पृथिव्यां नागरान्तायां प्रग्यातो मन्मथेश्वरः ॥ ९ ॥

गोदानं पाण्डवश्रेष्ठत्रयोदश्यां प्रकाशयेत् । क्षेत्रे मासि मिते पक्षे तत्र गत्वा जितेन्द्रियः

रात्रौ जागरणं कृत्वा देवस्याग्रे नृपोत्तम !

दीपं भक्त्या घृतेनैव देवस्याग्रे निवेदयेत् ॥ ११ ॥

सूत्र्यथवा पुरुषो वाऽपि सममेतत्फलं स्मृतम् ॥ १२ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमोऽध्यायः खण्डे

स्वाखण्डे मन्मथेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम

द्वयधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८२ ॥

## एकाधिकशततमोऽध्यायः

मद्भूषणतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

धीमार्फण्डेय उपाद्य

ततो गच्छेत् रात्रेन्द्रा नीयं परमरोमनम् । उत्तरे नर्मदाकृते यज्ञपाटस्य मध्यत  
मद्भूषणमितिष्यात् वृधिव्या पापनाशनम् । तत्रर्धाणं पुरा राजन्यमग्नेमतत्र धी  
गीषाणा यधि तत्रैव मन्त्रिर्धौतृपनन्दन । उमयामहित-शम्भु-म्वितस्तत्रैवपैराव  
वाम्भ्रेणराजन्द्रमणिनामुपकारत । स्थापित-परया भक्त्या शङ्करः पापनाशन  
यस्तत्र स्नानि धै भक्त्या जितत्रोषो जितेन्द्रिय ।

एकादश्यां मिते पक्षे मधुना स्थापयेच्छिवम् ॥ ५ ॥

धाद्व तत्रैव यो भक्त्या विनृणामय दापयेत् ।

न याति परम स्यान् वाम्भ्रेयसो यथा ॥ ६ ॥

इति धीम्वान्द महापुराणरक्षाशीतिमाह्वयं सहिताया पञ्चमेऽपनीपण्डे  
रपाद्यण्डे मद्भूषणतीर्थमाहात्म्यवर्णननामैकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥

## द्व्यधिकशततमोऽध्यायः

मन्मथेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

धीमार्फण्डेय उपाद्य

मन्मथेशं ततो गच्छेत्सर्वदेयतमस्तृतम् । स्नानमात्राश्रयो राजन्यमग्रेकनपश्यति  
अनपत्या या च नारी-स्त्रायाद्वैपाण्डुनन्दन । पुत्रसालमतेपार्थ सत्यसन्धइष्टमतम्  
तत्र स्नात्वा नरोऽजऽब्दुधि प्रयतमानसः ।

पतन्तं रक्षयेद्वैचि महापातकिनं यदि । महादोरे गता घापि दुष्टकर्मपितामहाः ॥

तद्वरन्ति सुपुत्राश्च चैतरण्यां गतानपि ।

पुत्रेण लोकाञ्जयति पौत्रेण परमा गतिः ॥ १४ ॥

अथ पुत्रस्य पौत्रेण प्रगच्छेद् ब्रह्म शाश्वतम् ।

नास्ति पुत्रसमो यन्धुरिह लोके परत्र च ॥ १५ ॥

अहश्चमध्यरात्रे च धिन्तयानस्य तर्षदा । शुष्यन्तिममगात्राणि श्रीग्मेनश्लुदकंयथा

अनसूयोवाच

यस्त्वया शोचिनं चिप्र! तत्सर्वं शोषयाम्ग्रहम् ।

तयोद्वेगकरं यद्य तन्मे दहति चेतसि ॥ १७ ॥

येन पुत्रा भविष्यन्ति आयुष्मन्तो गुणान्विताः ।

तत्कार्यं च समीक्षस्व येन तुन्येत्प्रजापतिः ॥ १८ ॥

अत्रिस्वाच

तपस्तप्तं मया भद्रे जातमात्रेण दुष्करम् । व्रतोपवासनियमैः शाकाहारेणसुन्दरि

क्षीणदेहस्तु तिष्ठामि ह्यशक्तोऽहंमहाव्रते । तेन शोचामिचात्मानंरहस्यंकथितंमया

अनसूयोवाच

भर्तुः पतिव्रतानाशीरतिपुत्रचिचर्धिनी । त्रिचर्गसाधनासाध श्लाघ्याचविदुषांजने

जपस्तपस्तीर्थयात्रा मृडेज्यामन्त्रसाधनम् ।

देवताराधनं चैव स्त्रीशूद्रपतनानि पट् ॥ २२ ॥

ईदृशं तु महादोषं स्त्रीणां तु व्रतसाधने । वदन्ति मुनयः सर्वे यथोक्तं वेदभाषितम्

अनुज्ञाता त्वया ब्रह्मंस्तपस्तप्स्यामि दुष्करम् ।

पुत्रार्थित्वं समुद्दिश्य तोषयामि सुरोत्तमान् ॥ २४ ॥

अत्रिस्वाच

साधुसाधु महाप्राज्ञे ममसन्तोषकारिणि । आज्ञाता त्वं महाभद्रेपुत्रार्थतपसाश्रय

देवतानां मनुष्याणां पितृणामन्वृणोभूवे । नभार्यासदृशो बन्धुखिपुलोकेपुचिद्यते

तेन देवा प्रशमन्ति न भार्यामदृश सुखम् ।

सन्मुने मन्मुखा पुराः विलोमे तु पराद्मुखा ॥ २७ ॥

तेन भार्या प्रशमन्ति सदेवासुरमानुषाः । महानने महाप्राज्ञे सहरथति शुभेज्ञे  
तपस्नपस्व शीघ्रं त्वं पुरार्थं तु ममाज्ञया ।

एतद्वाक्यावमाने तु माष्टान् प्रणताऽऽर्वात् ॥ २६ ॥

त्वत्प्रसादेन विदेन्द्र! सर्वान्कामानवाप्नुयाम् ।

हमर्लालामति मा च मृगार्क्षा वरवर्णिनी ॥ ३० ॥

नियमस्था ततो भूत्वा सम्प्राप्ता नर्मदा नदीम् ।

शिरस्त्र्येदोद्भवां देवीं सर्वपापप्रणाशनीम् ॥ ३१ ॥

यस्मादशतमात्रेण नश्यते पापमञ्जय । स्नानमात्रेण वै यस्या अश्वमेधकल्मशेन  
ये पिबन्ति महादेवि ' धृष्टधाना' एव स्वयम् ।

सामपानेन तन्नृत्य नाऽत्र काया विधारणा ॥ ३३ ॥

ये स्मरन्तिशिवारार्यायाऽत्रनाता गर्तरथि । मुच्यन्तेसद्यपापेभ्योऽदृष्टलोकप्रयान्तिने  
नमदाया समापेतु तावुर्भा याननद्वये । न पश्यन्ति यम तत्र ये मृतावरवर्णिनि

तपस्नहुत्वा कृते एरण्ड्या मद्गमे शुभे ।

नियमस्था विशालार्क्षी शाकाहारण सुन्दरि ॥ ३६ ॥

तापयन्ती प्रीक्ष देवाऽच्छमै स्तोत्रैर्ब्रतीस्तया ।

प्रीक्षेपु च महादेवि ' पञ्चाग्नि साधयेत्तत' ॥ ३७ ॥

वगकाले चाद्रवासाश्चरेष्वान्द्रायणानि च ।

हेमन्ते तु तत्र प्राप्ते त्तोयमध्ये धमेत्सदा ॥ ३८ ॥

प्रातस्नानतनमन्ध्या बुधाद्देवर्षितर्पणम् । देवानामर्चनकृत्वा होमेषु पापप्राविधि  
यत्ने वृण्वर्षाङ्गाकान्प्रातर्जाप्यदुतेन च । एष वर्षाने प्राप्ते रद्विष्णुपितामहाः

सम्प्राप्ता द्विजकूपेभ्यु येरण्या मद्गमे प्रिये ।

पुरा मस्तिनास्तस्या येदममुदरन्ति च ॥ ४१ ॥

अनसूया जपं त्यक्त्वा निरीक्ष्य ताऽमुहुर्मुहुः !

उत्थिता सा विशालाक्षी अर्धं दत्त्वा यथाचिधि ॥ ४० ॥

अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलं तपः । दर्शनेन तु विप्राणां सर्वपापैः प्रमुच्यते  
प्रदक्षिणं ततः कृत्वा साष्टाङ्गं प्रणताऽवतीत् ।

कन्दमूलफलं शाकं नीचारानपि पावनान् ।

प्रयच्छाम्यहमद्यैव मुनीनां भावितात्मनाम् ॥ ४१ ॥

विप्रा ऊचुः

तपसा तु विचित्रेण तपःसत्येन सुव्रते । तृप्ताः स्म सर्वकामैस्तु सुव्रते तवदर्शनात्  
अस्माकं कौतुकं जातं तापसेन व्रतेन यः । स्वर्गमोक्षसुतस्याऽर्थतपस्तपसिदुष्करम्

अनसूयोवाच

तपसा सिध्यते स्वर्गस्तपसा परमा गतिः । तपसा चार्थकामौ च तपसा गुणवान्सुतः

तप एव च मे विप्राः सर्वकामफलप्रदम् ॥ ४२ ॥

विप्रा ऊचुः

तन्वी श्यामा विशालाक्षी क्षिग्धाङ्गी रूपसंयुता ।

हंसलीला गतिगमा त्वं च सर्वाङ्गसुन्दरी ॥ ४३ ॥

किं च ते तपसा कार्यमात्मानं शोच्यसे कथम् ॥ ४६ ॥

अनसूयोवाच

यदि रुद्रश्च विष्णुश्च सत्रयं साक्षात्पितामहः । गूढरूपधराः सर्वे तच्चिह्नमुपलक्ष्ये ॥

तस्या वाक्यावसाने तु स्वरूपं दर्शयन्ति ते ।

स्वस्वरूपैः स्थिता देवाः सूर्यकोटिसमप्रभाः ॥ ५१ ॥

चतुर्भुजो महादेवि! शङ्खचक्रगदाधरः । अतसीपुष्पवर्णस्तु पीतवासा जनार्दनः  
गरुत्मान्वाहनं यस्य श्रिया च सहितो हरिः । प्रसन्नवदनः श्रीमान्स्वयं रूपो व्यवस्थितः  
पीतवासा महादेवि! चतुर्वदनपङ्कजः । हंसोपरि समारूढो ह्यक्षमालां करोद्यतः ॥  
आगतो नर्मदातीरे ब्रह्मा लोकपितामहः ।



योऽसौ सयजगदुष्वापी स्वय साक्षात्प्रहेश्वर ॥ ५५ ॥

चुम्भ तु समारुढोदशथाहुसमन्वित । भस्माङ्गरागशोमाल्य पञ्चपत्रखिलोचन  
जगमुकुत्सयुक्तं हृत्तघन्द्रादशेखर । एवरुपधरो देव सवध्यापी प्रहेश्वर ॥ ५७

अतसूया निरीक्ष्यैतद्देवाना दशन परम् । वेपमाना ततःसार्ध्वीसुरान्दृष्ट्वा मुहुमुहु  
अतसूयोवाच

किञ्चिपारस्वरूपास्तुषिष्णुरद्रपितामहा । एतद्वैश्रोतुमिच्छामिहाशक्वथयतुमे  
ब्रह्मोवाच

प्रावृत्कागेह्यद्ब्रह्मा आपञ्चैव प्रकीर्त्तिता । मेवरूपो ह्यहप्रोक्तोवपयामि च भूतये  
अह सवाणि र्थजानि प्राक्सध्यासुदिते र्वा ।

एतद्वै कारण सर्वं रहस्य कथित परम् ॥ ६१ ॥

विष्णुरवाच

हेमन्तश्च भवेद्विष्णुर्विश्वरूपधराधरम् । पालनायनगतसर्वं विष्णोमाहात्म्यमुत्तमम्  
रुद्र उवाच

प्राप्सकालोह्यह प्रोक्त सचभूतक्षयङ्कर । कथयामि नगतसर्वं रुद्ररुपस्तपस्विनि  
एव ब्रह्मा चविष्णुश्च रुद्रर्धैवमहाप्रते । त्रयोदेवास्त्रय सध्यास्त्रय कालास्त्रयोऽप्रय  
तथा ब्रह्मा च विष्णुश्च रुद्रर्धैकात्मता गत ।

वराद्भ्युच्च ते भद्र यत्त्वया मनसोष्मितम् ॥ ६५ ॥

अनुसयोवाच

धन्या पुण्या ह्यह गेने श्लाघ्या घन्या च सयदा ।

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च प्रसन्नवदना शुभा ॥ ६६ ॥

यदि तुष्टास्त्रयो देवा ह्या हृष्टया ममोपरि ।

अस्मिस्तार्थं तु साक्षिणाद्भरदा सन्तु मे सदा ॥ ६७ ॥

रुद्र उवाच

एव भवतु त वाक्यं यस्त्वयाप्रार्थितशुभे । प्रत्यक्षावैष्णवीमायापरण्डीनामनामत

यस्यादर्शनमात्रेण नम्यतेपापसञ्चयः । चैत्रमासे तु सम्प्राप्तेऽहोरात्रोपितो भवेत्

परण्ड्याः सङ्गमे स्नात्वा ब्रह्महत्यां व्यपोहति ।

रात्रौ जागरणं कुर्यात्प्रभारते भोजयेद् द्विजान् ॥ ७० ॥

यथोक्तेनविधानेनपिण्डं दद्याद्यथाविधि । प्रदक्षिणां ततो दद्याद्द्विरण्यं चक्रमेव च

रजतं च तथा गावो भूमिदानमथाऽपिवा ।

सर्वं कोटिगुणं प्रोक्तमिति स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ॥ ७१ ॥

ये प्रियन्ति नरा देवि! परण्ड्याः सङ्गमे शुभे । याचद्युगसहस्रं तु रूढलोकेऽसन्ति ते

अहोरात्रोपितो भूत्वा जपेद्ब्रह्मांश्च वैदिकान् ।

एकादशैकसञ्जांश्च स याति परमां गतिम् ॥ ७२ ॥

विद्यार्थी लभते विद्यां धनार्थी लभते धनम् ।

पुत्रार्थी लभते पुत्राँल्लभेत्कामान्यथेप्सितान् ॥ ७३ ॥

परण्ड्याः सङ्गमे स्नात्वा रेवाया विमले जले ।

महापातकिनो वाऽपि ते यान्ति परमां गतिम् ॥ ७६ ॥

अनसूयोवाच

यदितुष्टास्त्रयोदेवा मम भक्तिप्रचोदिताः । मम पुत्रा भवन्त्वेव हरिर्ब्रह्मपितामहाः

विष्णुरुवाच

पूज्या यत्पुत्रतां यान्ति न कदाचिच्छ्रुतं मया ।

शुभे ददामि पुत्रांस्ते देवतुल्यपराक्रमान् । रूपवन्तो गुणोपेतान्यज्विनश्च बहुश्रुतान्

अनसूयोवाच

इप्सितंतच्च दातव्यं यन्मया प्रार्थितं हरे ! नान्यथाचैव कर्त्तव्याममपुत्रैषणा तु या

विष्णुरुवाच

पूर्वं तु भृगुसम्वादे गर्भवासउपार्जितः । तस्याहं चैवपारंतु नैव पश्यामि शोभने

स्मरमाणः पुरावृत्तं धिन्तयामि पुनः पुनः । एवंसञ्चित्यतेदेवाः पितामहमहेश्वराः

अयोनिजामविष्यामस्तव पुत्रा वरानने ! योनिवासेमहाप्राज्ञिदेवानैवव्रजन्ति च

सान्निध्यात्सङ्गमे दधि' लोकानां तु वरप्रदा ।  
 परण्डी वैष्णवी माया प्रत्यक्षा त्व भविष्यसि ॥ ८३ ॥  
 त्रयो देवा स्थिता पाथ' रेवाया उत्तरे तटे ।  
 वरप्राप्ता तु सा देवी गता माहेन्द्रपवतम् ॥ ८४ ॥

क्षीणाङ्गीशुद्धदेहा च रुद्रकेशा सुदारुणा । वृत्तयज्ञोपवीतासातपोनिष्ठाशुभेक्षण  
 शिवातलनिचिप्रोऽर्सा दृष्ट कान्तो महायशा ।  
 हृष्टचित्तोऽभवद्देवि उत्तिष्ठोत्तिष्ठ साऽऽब्रवीत् ॥ ८६ ॥

अत्रिरुवाच

साधुसाधु महाप्राज्ञे' ह्यनसूये महाव्रते ।  
 अचिन्त्य गालघादीनां वर प्राप्ताऽसि दुर्लभम् ॥ ८७ ॥

अनसूयोवाच

त्वत्प्रसादेनदेवर्षे वरप्राप्तास्मिदुर्लभम् । तेनदेवा प्रशसन्ति सिद्धाध्वरूप्योऽमला  
 एवमुक्ता तु सा देवी हर्षेण महता युता । आलोकयेत्तत कान्ततेनाऽपि शुभदश ना  
 ईक्षणाञ्चै च सखात ललाटे मण्डल शुभम् । नवयोजनसाहस्रमण्डलरश्मिभिवृ तम्  
 वदम्बगोलकाकारत्रिगुण परिमण्डलम् । तस्यमध्ये तु दवेशि पुरयोदिव्यरूपधृक्  
 हेमवर्णोऽमृतमय सूयकोटिसमप्रभ । आद्य पुत्रोऽनुसूयाया स्वर्गसाक्षात्पितामह

चन्द्रमा इतिविरयात् सोमरूपो नृपात्मज ।

इष्टापूत च सम्पाति बलापोडशकेन तु ॥ ९३ ॥

प्रतिपच्च द्वितीया च तृतीया च महेश्वरि ।

चतुर्थी पञ्चमा चैव अथ्यया षोडशी कला ॥ ९४ ॥

चतुर्विधस्य लोकस्य सूक्ष्मो भूत्वा घरानने ।

आप्रीणाति जगत्सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ ९५ ॥

सर्वे ते एव परजीवन्ति वृत् दत्त शशिस्यितम् । धनरूपतिगतेसोमे धनयाश्च घरानने  
 मुञ्च परगृहे मृदो ददेद्भङ्गवृत् शुभम् । धनरूपतिगते सोमे यस्तु छिन्द्याद्दत्तस्यर्त्तान्

तेन पापेन देवेशि! नरा यान्ति यमालयम् ॥ ६७ ॥

वनस्पतिगते सोमे मैथुनं यो निषेवते । ब्रह्महत्यासमं पापं लभते नाऽत्र संशयः ॥

वनस्पतिगते सोमे मन्यान् योऽधिवाहयेत् ।

गावस्तस्य प्रणश्यन्ति याश्च वै पूर्वसञ्चिताः ॥ ६६ ॥

वनस्पतिगते सोमे ह्यध्वानं योऽधिगच्छति ।

भवन्ति पितरस्तस्य तं मासं रेणुभोजनाः ॥ १०० ॥

अमावास्यां महादेवि! यस्तु श्राद्धप्रदो भवेत् ।

अब्दमेकं विशालाक्षि! वृषास्तत्पितरो ध्रुवम् ॥ १०१ ॥

हिरण्यं रजतं वस्त्रं यो ददाति द्विजातिषु । सर्वलक्ष्मणं देवि लभते नाऽत्रसंशयः

एवं गुणविशिष्टोऽसौ सोमरूपः प्रजापतिः । सञ्जातःप्रथमःपुत्रो ह्यनसूयासुनन्दनः

द्वितीयस्तुमहादेविदुर्वासानामनामतः । सृष्टिसंहारकर्ता च स्वयंसाक्षान्महेश्वरः

ऋषिमध्यगतोदेवितपस्तपतिदुष्करम् । सोऽपि रुद्रत्वमायातिसम्प्राप्तेभूतविप्लवे

इन्द्रोऽपि शप्तस्तेनैव दुर्वाससा वरानने !।

द्वितीयस्य तु पुत्रस्य सम्भवः कथितो मया ॥ १०६ ॥

दत्तात्रेयस्वरूपेण भगवान्मधुसूदनः । जयद्वयापी जगन्नाथः स्वयंसाक्षाज्जनाह्वनः

पते देवास्त्रयः पुत्रा अनसूयाया महेश्वरि । वरदानेन ते देवा ह्यवतीर्णा महीतले

पुत्रप्राप्तिकरंतीर्थं रेवायाश्चोत्तरे तटे । अनसूयाकृतं पार्थ ! सर्वपापक्षयं परम् ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

आश्चर्यभूतं लोकेऽस्मिन्नर्मदायां पुरातनम् ।

भ्रूणहत्या गतास्तत्र ब्राह्मणस्य नराधिप ! ॥ ११० ॥

युधिष्ठिर उवाच

इतिहासं द्विजश्रेष्ठ कथयस्व ममाऽनव । सर्वपापहरंलोके दुःखार्त्तस्यचकथ्यताम्

॥ श्रीमार्कण्डेय उवाच

सुवर्णशिल्के ग्रामे गौतमान्वयसम्भवः । कृषीवलो महादेवि! भार्यापुत्रसमन्वितः

पमने तत्र गाधिन्द सत्रातो पितुः कुत्रे । पुत्रदारममोपेतो गृहक्षेत्रत मदा ॥

शकटं पूरयित्वा तु काष्ठानामगमद् गृहम् ।

प्रभितानि च काष्ठानि होकार्फी लुघयाऽन्वित ॥ ११४ ॥

रिद्रुमापन्नदा पुत्र पितुः शप्दारममागत ।

न दृष्टन्ततर्षं पुत्रः काष्ठं सप्रच्छादितोऽथरा ॥ ११५ ॥

आगतमन्वरितो मेहे पिपासासो नराधिप ।

शकटं माच्य तद्द्वारि सशृं रज्जुमयुतम् ॥ ११६ ॥

भायातम्यययादृणाचित्तत्रा धमवर्तिनी । दृष्टानिपातितपुत्रकाष्ठैर्निर्मिश्रमन्नक

अनयमाना कर्णं निक्षिप्तमोलिकां शिशुम् ।

शुभ्रुणे रता माध्वी प्रियस्य च नगाधिप ॥ ११८ ॥

नन भ्रानादिकं कृत्वा भोजनाच्छयन शुभम् ।

पुत्रपुत्रयता ध्रेष्टा ह्युत्थापयति सा शनैः ॥ ११९ ॥

यदाद्यनोत्थितः सुतः पुत्रपञ्चममागतः । तदा मा दीनवदना ररोद् च मुमोह च

तच्छ्रुत्वा रदित शकटं गाधिन्दस्वस्तमानसः ।

किमेतदिति शोक्त्या तु पतितो धरणीतले ॥ १२१ ॥

हावर्तामुत्तरेशोतुभूर्मानिपतिर्नानृष । विलेपानेधराकेन्द्रनिग्वासोच्छ्वासितेन च

पश्ये शकृणे पुत्र दृष्ट्वा र्हीडन्तमातुरम् । मधारयिष्येद्ददयं स्तुदितं तव कारणे

त्वन्नमाल यशो नियमक्षया कुम्भन्ततिम् ।

दृष्ट्वा किमनृणीभूतो यास्यामि परमा गतिम् ॥ १२३ ॥

मम बुद्धम्य दानस्य गतिस्त्वं किल पुत्रकः ।

एने मनोरथा सर्वे चिन्तिता विरला गताः ॥ १२५ ॥

इमा तु विक्रगा दीना विहीना सुतगान्धर्वैः ।

रदन्ती पतिना पाहि मातर धरणातः ॥ १२६ ॥

सुतः । तेन पुत्र इति शोच स्वयमेव स्वयम्भुवा

त्रयधिकशततमोऽध्यायः ]\* सखीकस्यगोविन्दस्यपुत्रार्थेचिलापकरणम् \* ८४\*

अपुत्रस्य गृहं शून्यं दिशः शून्या ह्यवान्धवाः ।

मूर्खस्य हृदयं शून्यं सर्वशून्यं दृग्दिता ॥ १२८ ॥

सृष्टाऽयं घटतेलोकश्चन्दनंकिल शीतलम् । पुत्रगात्रपरिष्वङ्गश्चन्दनादपि शीतलः  
श्मश्रुग्रहणक्रीडन्तं धूलिधूसरिताननम् पुण्यहीनानपश्यन्ति निजोत्सङ्गसमास्थितम्  
दिगम्बरं गतवीडं जदिलं धूलिधूसरम् ।

पुण्यहीना न पश्यन्ति गङ्गाधरमिवात्मजम् ॥ १३१

धीणावाद्यस्वरो लोके सुस्वरः श्रूयते किल ।

रुदितं बालकस्यैव तस्मादाहादकारकम् ॥ १३२ ॥

सृगपक्षिषु काकेषु पशूनां स्वरयोनिषु । पुत्रं तेषु समस्तेषु बह्वमं ब्रूवते बुधाः ॥

मत्स्याश्वप्रकराश्चैव कूर्मग्राहादयोऽपि वा ।

पुत्रोत्पत्तौ च हृष्यन्ति विपत्तौ यान्ति दुःखिताम् ॥ १३४ ॥

वृगन्धर्वयक्षाश्च हृष्यन्तेपुत्रजन्मनि । पञ्चत्वेतेऽपिशोचन्तिमन्दभाग्योऽस्मिपुत्रक  
सृष्टिमेलापकं चक्रे पुत्रार्थं राघवो नृप । इन्द्रस्थानेस्थितस्तस्यप्रोक्षतेह्यासनंयतः

स्वर्गवासं सुताद्ब्राह्मं विद्यते न तु पाण्डव ॥

चक्रे दशरथस्तस्मात्पुत्रार्थं यज्ञमुत्तमम् ॥ १३७ ॥

रामोलक्ष्मणशत्रुघ्नो भरतस्तत्र सम्मवात् ।

कार्तवीर्यो जितो येन रामेणाऽभिततेजसा ॥ १३८ ॥

स रामो रामचन्द्रेण अष्टवर्षेण निर्जितः । एकाकिनाहतोवाली प्लवगः शत्रुदुर्जयः  
रावणो ब्रह्मपुत्रो यत्त्रैलोक्यं यस्य शङ्कते । हतः स रामचन्द्रेण सपुत्रःसहवान्धवः

एवं पुत्रं विना सौख्यं मर्त्यलोके न विद्यते ।

वंशार्थं मैथुनं यस्य स्वर्गार्थं यस्य भारती ॥ १४१ ॥

सृष्टान्नं ब्राह्मणस्यार्थं स्वर्गं वासं तु यान्ति ते ।

ब्रह्महत्याश्वमेधाभ्यां न परं पापपुण्ययोः ॥ १४२ ॥

पुत्रोत्पत्तिविपत्तिभ्यां न परं सुखदुःखयोः ।

किं ब्रवीमीति भो धत्स' न तु सौख्यं मुन विना ॥ १४३ ॥

एव बहुविध दुःखं प्रलपित्वापुन पुन । जनैश्चाभ्वासितोविप्रो बालगृह्यवहिर्गत  
ततः सस्कृत्य त बाल विधिदृष्टेनकर्मणा । समवेतोतुदुःखार्त्तायागतोस्वगृहं पुन  
एवगृहागतो विप्रेरत्रिजांता युधिष्ठिर । भूमौ प्रमुक्तो गोविन्द पुत्रशोकैन्पीडित  
यावन्निरक्षते भार्या भर्तारं दुःखपीडितम् ।

कृमिराशितं सर्वं गोविन्द समपश्यत ॥ १४७ ॥

दुःखाद्दुःखतरे मग्ना दृष्ट्वा त पातमान्वितम् ।

एव दुःखनिमग्नाया श्वरी विगता तदा ॥ १४८ ॥

पशुपालस्तु महिरी मुक्त्वाऽरण्येऽगमद् गृहात् ।

अरण्ये महिरी सत्वा रक्षयित्वा गृहागतः ॥ १४९ ॥

विज्ञानं पशुपालेन गोविन्दो ब्राह्मणोत्तम ।

यावद्गोश्याम्यहं स्यामिन्महिरीस्त्वयं च २१ से ॥ १५० ॥

ततः सत्स्वरितोविप्रो नगाममहिरी प्रति । नतत्रमहिरीपश्येत्पञ्चात्क्षेत्राभिसन्मुक्तम्  
धावमानश्च विप्रस्तु परण्डीसङ्घे गत । ततः प्रविष्टस्तुनले रथैरण्णोरुनुसगमे  
तज्जल पीतमात्रं तु स्वरया चातितर्पितम् ।

अकामात्सलिलं स्वीत्वा प्रक्षाल्य नयने शुभे ॥ १५३ ॥

आनगामततः पश्चाद्भवन्दिषसक्षये ! भुक्त्वा दस्वान्वितो रात्रौ गोविन्द शयनययौ  
निद्राभिभूतः शोकेन धमेणैषनुसैदित । पुनस्तथाधरंरात्रे तु तस्य भार्यायुधिष्ठिर  
कृमिभिर्वेष्टितं गात्रं क्वचित्पश्यत्यवेष्टितम् ।

पुनः सा विस्मयाऽविष्टा तस्य भार्या गुणान्विता ॥

उवाच दुष्टं तस्य साध्यमाविष्टेतसा ॥ १५६ ॥

भार्योवाच

अर्तानिपञ्चमेघाह्नित्विन्धनक्षिपतस्तुते । गृहपश्चाद्गता बालो ह्यज्ञानाद्वातितस्त्वया  
मया तन्पातकं धोरं रहस्यं न प्रकाशितम् ।

तेन प्रच्छन्नपात्रेन दह्यमाना दिवानिशम् ॥ १५८ ॥  
 न सुखं तव गात्रस्य पश्यामि न हि घात्मनः ।  
 निद्रा मम शमं याता रतिश्चैव त्वया सह ॥ १५९ ॥  
 श्रूयते मानवे शास्त्रे श्लोको गीतो महर्षिभिः ।  
 स्मृत्वा स्मृत्वा तु तं चित्ते परितापो न शाम्यति ॥ १६० ॥  
 कीर्त्तनान्नश्यते धर्मो वर्धतेऽसौ निगूहनात् ।  
 इह लोके परे चैव पापस्याऽप्येवमेव च ॥ १६१ ॥  
 एवं सञ्चित्यमानाऽहं स्थिता रात्रौ भयातुरा ।  
 कृमिराशिगतं त्वां हि कस्याऽहं कथयामि किम् ॥ १६२ ॥

पुनस्त्वंचाऽद्यमेदृष्टोभ्रूणहत्याकृमिश्रितः । कश्चिद्विन्दन्तितेगात्रं कश्चिन्नष्टाः समन्ततः  
 एतत्संस्मृत्य संस्मृत्य विमृशामि पुनः पुनः ।  
 न जाने कारणं किञ्चित्पृच्छन्त्याः कथयस्व मे ॥ १६४ ॥  
 तडागं वा सरिद्धाऽपि तीर्थं वा देवतार्चनम् ।  
 यं गतोऽसि प्रभावोऽयं तस्य नाऽन्यस्य मे स्थितम् ॥ १६५ ॥  
 श्वमुक्तस्तुविप्रोऽसौ कथयामास भारत । भार्याया यद्विवावृत्तं शङ्कमानो नृपोत्तम  
 अद्य ! महिषीसार्थं परणडीसङ्गमं गतः । नाभिमात्रे जले गत्वा पीतवान्सलिलंबहु  
 नान्यत्तीर्थं विजानामि सरितं सर एव वा ।  
 सत्यं सत्यं पुनः सत्यं कथितं तव भामिनि ॥ १६८ ॥

एवं ज्ञात्वा सा सर्वमुपवासकृतक्षणा । सपत्नीको गतस्तत्र सङ्गमे वरवर्णिनि ॥  
 स्नात्वा तत्र जले रम्ये नत्वा देवं तु भास्करम् ।  
 स्नापयामास देवेशं शङ्करं घोमया सह ॥ १७० ॥

पञ्चगव्यघृतक्षीरैर्द्रधिक्षौद्रवृत्तैर्जलैः । गन्धमाल्यादिधूपैश्च नैवेद्यैश्च सुशोभनैः ॥  
 पूज्यत्रयीमयं लिङ्गं देवीकात्यायनीशुभाम् । रात्रौ जागरणं कृत्वा पत्यासहपतिव्रता  
 ततः प्रभाते विमले द्विजान्सम्पूज्य यत्नतः । गोदानेन हिरण्येन च खेपेणात्रेण भारत



गोविन्द पूजयामाम स्वराख्या ब्राह्मणाञ्जुमान् ।

मुनपापो गृहायात स्वभायांसहितो नृप ॥ १७३ ॥

एव च ऋगुने भक्त्या गोविन्दाख्यानमुत्तमम् ।

पठने परया भक्त्या स्रजहृष्या प्रणश्यति ॥ १७४ ॥

वीर्येण शत्रुं लोक याचदाभूतमञ्जलम् । यथैवाऽऽगुने मामि शैवेया नृपसत्

सतस्या च मिते पक्षे सोपवासो जितेन्द्रिय ।

सात्त्विकी वासना कृत्वा यो वसेच्छिपमन्दिरे ॥ १७५ ॥

ध्यायमाना विरूपाक्षं त्रिदश्वरसंस्थितम् ।

कामामुरतिहन्तारं शत्रुघ्नमदाधरम् ॥ १७६ ॥

पक्षिराजसम्राट् श्रीलोकेश्वरदायकम् । पितामह ततो ध्यायेद्धर्मस्य चतुरात्म

सगप्रदं समस्तस्य कमलाकरशाशितम् । योग्यं च मनो तत्र त्रियमे स्थानउत्त-

मतं प्रभाते विमलमष्टम्याच नराधिप । ब्राह्मणान्पूजयेत्कन्यामर्चयेद्यविर्जिता-

सवाचयवसम्पूजान्मदशास्त्रविशारदात् ।

वृदाभ्यामगताश्रित्यं स्वदारनिरतान्मदा ॥ १८१ ॥

धाददानेयने याम्यान्ब्राह्मणान्वाण्डुनन्दन । प्रेताना पूजन तत्र देवपूर्वं समारभेत्

प्रतवान्मुच्यत शीघ्रमेण्ड्या पिण्डतपणी ।

नानानि तत्र दयानि शत्रुमुच्यन्ति सर्वदा ॥ १८४ ॥

हिरण्यभूमिकन्याश्च धुवाहो शुभलक्ष्मी ।

सीरण सहितो पाथ ' धान्य क्षाणकमडक्यया ॥ १८५ ॥

अलङ्कृता सवन्सा च शीरिणी तरुणी मित्राम् ।

रक्ता वा कृष्णवणा वा पाटला कपिला तथा ॥ १८६ ॥

काम्यद्रोहनसयुता एकमधुरविभूषणाम् ।

स्वणञ्जुनीं सवत्सा च ब्राह्मणायोपपादयेत् ॥ १८७ ॥

प्रीयतामे जगन्नाथा हरहृणपितामहा । सत्साररक्षणार्थं देवी सुरमी मां समुदरेव

पुत्रार्थं याः स्त्रियःपार्थी! होरण्डीसङ्गमे नृप । ज्ञाप्यन्तेस्त्रसूत्रैश्चतुर्वेदोद्भवस्तथा  
चतुभिर्ब्राह्मणैःशस्तं द्वाभ्यां योग्यैश्च कारयेत् ।

एकेन सार्द्रकुम्भेन दाम्पत्यमभिषेचयेत् ॥ १६० ॥

देवज्ञेनैव चैकेन अथवा सामगेन वा । पञ्चरत्नसमायुक्तं कुम्भे तत्रैव कारयेत् ॥

गन्धतोयसमायुक्तं सर्वापथिविमिश्रितम् । आप्रपह्वयसंयुक्तमध्वतमधुकं तथा  
गुण्डितं सितवस्त्रेणसितघन्दनघर्षितम् । सितपुष्पैस्तुसंच्छत्रं सिद्धार्थकृतमध्यमम्

कास्यपात्रे तु संस्थाप्य पुत्रार्थो देशिकोत्तमः ।

अङ्गलनं तु तद्वस्त्रं कटकामरणं तथा ॥ १६४ ॥

तत्सर्वं मण्डले त्याज्यं सिद्ध्यर्थं चात्मनस्तदा ।

प्रणम्य भास्करं पश्चादाचार्यं स्वरूपिणम् ॥ १६५ ॥

मधुरं च ततोऽश्रीयाद्देव्याभुवनउत्तमे । फलदानं च विप्राय छत्रं ताम्बुलमेव च  
उपानहौ च यानंघसभवेद्दुःखवर्जितः । भास्करं क्रीडतेलोकेयावदाभूतसम्प्लवम्

दानं कोटिगुणं सर्वं शुभं वा यदि वाऽशुभम् ।

यथानदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति सङ्क्षयम् ॥ १६८ ॥

एवं पापानिनश्यन्तिहो रण्डीसङ्गमेनृणाम् । समन्ताच्छस्त्रपातेनहो रण्डीसङ्गमेनृप

भ्रूणहत्यासमं पापं नश्यते शङ्करोऽघ्नीत् ।

प्राणत्यागं च यो भक्त्या जातवेदसि कारयेत् ॥ २०० ॥

अनाशकं नृपश्रेष्ठ! जले वा तदनन्तरम् । पञ्चसाहस्रिकं मानं धर्षाणां जातवेदसि  
जलेत्रीणिसहस्राण्यनाशकेयष्टिभुञ्जते । काकायकाःकपोतश्चछुलूकाःपशवस्तथा

सङ्गमोदकसंस्पृष्टास्ते यान्ति परमां गतिम् ।

वृक्षाश्च तत्पदं ज्ञात्वा यां गतिं यान्ति योगिनः ॥ २०३ ॥

एरण्डिका मया देवी दृष्टो मे मन्मथेश्वरः । किसमर्थोयमोच्छ्रोभद्रोभद्राणिपश्यति

मृत्तिकां सङ्गमोद्भूतां ये च गुण्ठन्ति नित्यशः ।

भ्रूणहत्यादि पापानि नश्यन्ते नाऽत्र संशयः ॥ २०५ ॥



ततः स्वर्गावन्तीर्णस्तु जायते विशदे कुन्दे ।

धनधान्यसमोपेतः पुनः स्मरति तज्जलम् ॥ ६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे  
रेवाखण्डे सुवर्णशिलातीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम घनतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥

### पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः

करञ्जतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेयं उवाच

करञ्जाख्ये ततो गच्छेत्सोपवासो जितेन्द्रियः ।

तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र! सर्वपापैः प्रभुञ्चरते ॥ १ ॥

अर्चयित्वा महादेवं दत्त्वा दानं तु भक्तितः । सुवर्णरजतं वाऽपि मणिमौक्तिकविद्रुमान्  
पादुकोपानहौ छत्रं शय्यां प्रावरणानि च । कोटिकोटिगुणं सर्वं जायते नात्र संशयः  
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे  
रेवाखण्डे करञ्जतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥

### पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः

कामदतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

ततो गच्छेन्महीपाल तीर्थं परमशोभनम् । सौभाग्यकरणं दिव्यं नरनारीमनोरमम्  
तत्र यादुर्भगानारीनरो वा नृपसत्तम । स्नात्वाऽर्चयेद्दुमारुद्रौ सौभाग्यं तस्य जायते  
तृतीयायामहोरात्रं सोपवासो जितेन्द्रियः ।

निमन्त्रयेद् द्विज मन्त्रया सपत्नीक मुरुपिणम् ॥ ३ ॥

गन्धमात्यैरलङ्कृत्य पद्मभूपादिवासितम् ।

भोजयेत्पायसाधनं कृमरेणाद्य भक्ति ॥ ४ ॥

भोजयित्वायथान्याथं प्रक्षिणमुदाहरन् । प्रीयता मे महादेव सपत्नीकोत्पञ्चज  
यथा ते द्वादश' न विपोग कदाचन ।

ममाऽपि कृपा कृत्वा तथाऽस्त्विति विचिन्तयेत् ॥ ६ ॥

पवं कृते ततस्त्वस्य यत्पुण्य समुदाहृतम् । ततोऽथं प्रवक्ष्यामि यथादेवेनभाषितम्  
शौभाग्य दुर्गतिर्धनं दारिद्र्य शोकयन्धनम् ।

घन्धन्व सन्नजन्मानि ज्ञायते न युधिष्ठिर ॥ ८ ॥

उपष्टमाम भित पश्च मूर्त्तियायो विज्ञेय ॥

तत्र गन्धा या भक्त्या पञ्चभिः साधयेन्न ॥ ६ ॥

साऽपि वापेऽस्त्वस्त्वमुत्पन्नताऽत्रमशय । शुभमुदहते यस्तुष्टिधाञ्जितविधितः  
शरीरं भेद्यद्यस्तु गोपात्रोप समापत । तस्मिन्कामप्रतिष्ठास्यउत्पन्नित्ज्ञापनेपदि  
दत्तान् कर्त्तव्यमिदं शूराऽऽप्रीत ॥

मितर्कस्त्वया वानेयश्च विधिषु शुभे ॥ १० ॥

प्राज्ञया प्राज्ञानं नैव पूजयित्वा यथाविधि ।

पुण्यतानादिर्षोऽथ गन्धपुण्यं शुशोभते ॥ १३ ॥

कृत्वाऽपि कृत्वा कृत्वा विद्वयेत् । कृत्वायेत त्रिवर्गोऽपि द्वाह्वनंशिवरूपिणम्  
तथा तद्वपुः कृत्वा तानमुत्पन्नान् तत्र । कृत्वाऽपि कृत्वायेत् शक्तिर्षांमुद्रिकानिधा  
सन्धान्य तथा नैव भोजने कृत्वात्मनः ।

घन्धान्यपि य दत्तानि तस्मिन्नाथे दत्तानि यः ॥ १६ ॥

सवन्तं यत्पुण्यं प्राप्नुयात्तत्र संशयः ।

सहस्रगुणितं नये तत्र कृत्वा विचारणा ॥ १७ ॥

शुभं तत्र तस्माद्भागं भुङ्क्तेऽनुत्तमम् ।

सौभाग्यं तस्य विपुलं जायते नाऽत्र संशयः ॥ १८ ॥

अपुत्रो लभते पुत्रमधनो धनमाप्नुयात् ।

राजेन्द्र! कामदं तीर्थं नर्मदायां व्यवस्थितम् ॥ १९ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायांपञ्चमेऽवन्तीखण्डे  
रेवाखण्डे कामदतीर्थमाहात्म्यवर्णननाम षट्त्तरशततमोऽध्यायः ॥१०६॥

## सप्ताधिकशततमोऽध्यायः

### भण्डारीतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत् राजेन्द्र !भण्डारीतीर्थमुत्तमम् ।

दरिद्रच्छेदकरणं युगान्येकोनविंशतिः ॥ १ ॥

धनदेन तपस्तस्तप्तवा प्रसन्ने पद्मसम्भवे । तत्रैव स्वल्पदानेन प्राप्तं वित्तस्यरक्षणम्

तत्र गत्वा तु यो भक्त्या स्नात्वा वित्तं प्रयच्छति ।

तस्य वित्तपरिच्छेदो न कदाचिद्भविष्यति ॥ ३ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे

रेवाखण्डे भण्डारीतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम

सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥

## अष्टाधिकशततमोऽध्याय

रोहिणीसोमनाथतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

नतोगच्छेन्महीपाल रोहिणीतीर्थमुत्तमम् । विख्यातत्रिपुराकेषु सर्वपापहरम्परम्

युधिष्ठिर उवाच

रोहिणीतीर्थमाहात्म्य सर्वपापप्रणाशनम् ।

श्रीतुमिच्छामि तत्त्वेन तन्मे त्व वक्तुमहमि ॥ २ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

तस्मिन्नेकाणवेघोरे नष्टे स्थावरजङ्गमे । उदधी च शयानस्य देवदेवस्य चत्रिण  
नाभीसमुत्थित पद्म रश्मिपण्डलसन्निभम् । कर्णिकाकेसररोपेतं पत्रैश्चममलट्टकम्

तत्र ब्रह्मा समु पन्नश्चतुर्बदनपङ्कज । किं करोमीति दवेश आज्ञा मे क्षीयता प्रभो ।

एवमुक्तस्तु दवेश शङ्खचक्रगदाधर । उवाच मधुरा धार्णी तदा देव पितामहम्

सरम्बत्या महाबाहो लोक कुरु ममाहया ।

भूतप्राममशेषस्य उत्पादनविधिक्षयम् ॥ ७ ॥

पतञ्जल त तु वचन पद्मनाभस्यभारत । चिन्तयामास भगवान्स्वर्गोन्हितकाम्यया

कामान्ते चिन्तित प्राज्ञा पुलहस्त्य पुत्रह वतु ।

प्राचेतसो वसिष्ठश्च भृगुनारद एव च ॥ ६ ॥

जज्ञे प्राचेतसो दक्षो महातेजा प्रजापति ।

दक्षस्यापि तथा जाता पञ्चाशद् दुहितरोऽनघ ॥ १० ॥

ददी स दश धर्माय कश्यपाय प्रयोदश । तथैव स महाभाग समर्चिशतिमिन्द्ये ॥

रोहिणीनाम या नासां मध्ये तस्य नराधिप ।

अत्रिण मयनारीणा मत्तुंक्षीष पिशेत्न ॥ १२ ॥

ततः सा परमं कृत्वा वैराग्यं नृपसत्तम !। आगत्य नर्मदानीरे चक्षार विपुलं तपः॥  
एकरात्रैस्त्रिरात्रैश्च षड्द्वादशभिरेव च । पक्षमासोपवासैश्च कर्शयन्ती कलेवरम् ॥

आराधयन्ती सततं महिषासुरनाशिनीम् ।

देवीं भगवतीं तात! सर्वास्तिविनिवारणीम् ॥ १५ ॥

स्नात्वा स्नात्वा जले नित्यं नर्मदायाः शुचिस्मिता ।

ततस्तुष्टा महाभागा देवी नारायणी नृप !। १६ ॥

प्रसन्ना ते महाभागे व्रतेन नियमेन च । एतच्छ्रुत्वा तु वचनं रोहिणीशशिनःप्रिया  
यथा भवामि न चिरात्तथा भवतु मानदे !।

एवमस्त्विति सा चोक्त्वा भवानी भक्तवत्सला ॥ १८ ॥

स्तूयमाना मुनिगणैस्तत्रैवान्तरधीयत । तदाप्रभृतितत्तीर्थं रोहिणीशशिनःप्रिया  
सञ्जाता सर्वकालं तु बल्लभा नृपसत्तम !। तत्रतीर्थं तुयानारीनरोघास्नातिभक्तितः

बल्लभा जायते सा तु भर्तुर्वै रोहिणी यथा ।

तत्र तीर्थं तु यः कश्चित्प्राणत्यागं करोति वै ॥ २१ ॥

सतजन्मानि दाम्पत्यवियोगो न भवेत्कचित् ॥ २२ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे

रेवाखण्डे रोहिणीसोमनाथतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नामाऽ-

ष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥



## नवाधिकशततमोऽध्यायः

### सेनापुरेचक्रतीथमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

नतोगच्छन्महीपाला घ्नन्तीर्थमनुत्तमम् । सेनापुरमितिरयात् सर्वपापक्षयकरम्  
सेनापत्याभिपेकाय देवेदेवेन घनिणा । आनीतश्च महासेनो देवैः सेन्द्रपुरोगमै-

दानवाना वधार्थाय जयाय च दिवीकमाम् ।

भूमिदानेन चिप्रेन्द्रास्तपयित्वा यथाविधि ॥ ३ ॥

शङ्खभेरीनिनादैश्च पटहाना च निस्वनैः । वीणावेषुमृदङ्गैश्च भृङ्गरीस्वरमङ्गलैः ॥

ततः कृत्वा स्वन घोर दानवो बलदर्पित । रुन्नाम विघातार्थमभिपेकस्यघागत-  
हस्त्यश्वरथपत्न्याश्च पूरयन्वै दिशा दश । तत्र तेन महद्युद्धं प्रवृत्तं किल भारत-

शक्यवृष्टिपाशमुशङ्गे खड्गैस्तोमरदङ्गुणैः ।

भल्लैः कर्णिकनारार्थं कथन्धपटसङ्कुलैः ॥ ७ ॥

ततस्तु ता शत्रवस्य सेना क्षणेन चापच्युतवाणघातैः ।

विचस्तहस्त्यश्वरथान्महामा जग्राह चक्र रिपुसङ्घनाशन ॥ ८ ॥

ज्वरञ्च चक्र निशित भयङ्कर सुरासुराणां च सुदर्शन रणे ।

चकन द्वे यस्य शिरस्तदानीं कर्गात्प्रमुक्तं मधुघातिनश्च तत् ॥ ९ ॥

तं दृष्ट्वा सहसा विघ्नमभिपेक्यरडानन । त्यक्त्वा तु तत्र सन्धानघचारचिपुलतप

मुन उच्च विनाशाय हरिणा लोकधारिणा ।

द्विदग् दानव कृत्वा पपात चिमले जले ॥ ११ ॥

तदा प्रभृति तत्तार्थं चक्रतीर्थमिति श्रुतम् ।

सर्वपापविनाशाय निर्मितं विश्वमूर्तिना ॥ १२ ॥

चक्रतीर्थे तु य स्नात्वापून्यैद्द्वयमच्युतम् । पुण्डरीकस्ययज्ञस्यफलमाप्नोतिमानव

तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा पूजयेद् ब्राह्मणाञ्छुभान् ।

शान्तदान्तजितक्रोधान् स लभेत्कोटिजं फलम् ॥ १४ ॥

तत्र तीर्थे तु यो भक्त्या त्यजते देहमात्मनः ।

विष्णुलोकं मृतो जाति जयशब्दादिमङ्गलैः ॥ १५ ॥

क्रीडयित्वा यथाकामं देवगन्धर्वपूजितः । इहागत्य च भूयोऽपि जायते विपुलेकुले

एतत्पुण्यं पापहरं धन्यं दुःखप्रणाशनम् ।

कथितं ते महाभाग! भूयश्चान्यच्छृणुष्व मे ॥ १७ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे

रेवाखण्डे सेनापुरे षक्रतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम

नवोत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥

## दशाधिकशततमोऽध्यायः

### धौतपापतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

धौतपापंततोगच्छेन्महापातकनाशनम् । समीपे च क्रतीर्थस्य विष्णुनानिर्मितं पुरा

निहतैर्दानवैर्वोरैर्देवदेवो जनार्दनः । तत्पापस्य चिनाशार्थं दानवान्तोद्भवस्य च

तत्र तीर्थे जितक्रोधश्च चार विपुलं तपः । दुश्चरं मौनमास्थाय ह्यशक्यं देवदानवैः

स्नात्वा दत्त्वा द्विजातिभ्यो दानानि विविधानि च ।

तत्क्षणान्मुक्तपापस्तु गतस्तद्वैष्णवं पदम् ॥ ४ ॥

एवं युक्तस्तु यस्तत्र पापं कृत्वा सुदारुणम् ।

स्नात्वा जप्त्वा विधानेन मुच्यते सर्वपातकैः ॥ ५ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे

रेवाखण्डे धौतपापतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम दशोत्तरशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥

## एकादशाधिकशततमोऽध्यायः

स्वन्दतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

नर्मदादक्षिणे कूले तीर्थं परमशोभनम् । स्वन्देन निर्मितं पूर्वं तप हृत्वासुदारुणम्  
युधिष्ठिर उवाच

स्वन्दस्यघरितं सयमाजन्मद्विजसत्तम । तीर्थस्यैवविधिपुण्यं कथयस्वयथायतं  
श्रीमार्कण्डेय उवाच

देवदेवेन वै तप्तं तप पूर्वं युधिष्ठिर । विश्वेनसुरैः सर्वैरुमादेवी विवाहिता ॥ ३ ॥

नास्ति सेनापति कश्चिद्वैश्वानरा सुरसत्तम ।

नीयन्ते दानवैर्वोरैः सर्वे देवा मवासवा ॥ ४ ॥

यथा निशा विना घन्टं दिवसो भास्कर विना ।

न शोभते मुहूर्तं वै तथा सेना निनायका ॥ ५ ॥

एवञ्जात्वा महादेव परया दययाविभो । सेनाभीर्दीयताकश्चित्त्रिपुलाकेपुविधुत  
एतच्छ्रुत्वा शुभं वाक्यं देवानां परमेश्वर ।

वामयान उमा देवीं सस्मार मनसा स्मरम् ॥ ७ ॥

नेन मूर्च्छितसर्वाङ्गं कामरूपो जगद्गुरु ।

कामयामास रद्धानीं दिव्यं घण्टं किल ॥ ८ ॥

देवराजस्तनो ज्ञात्वा महामैथुनग ह्रस्वम् । सम्मन्त्र्य देवतैः सार्द्धं प्रैष्यज्ञातवेदसम्  
तेन गन्वा महादेव परमानन्दसस्थित ।

सहसा तेन दृष्टोऽसीं हाहेत्युक्त्वा ममुत्थित ॥ १० ॥

ततः क्रुद्धा महादेवीं शापवाचमुवाच ह । वैषम्याना महाराज शृणुयस्तेवदाम्यहम्  
अहं यस्मात्सुरैः सर्वैर्याघिनापुत्रजन्मनि । एतारतिश्चविफलासंग्रेष्यज्ञातवेदसम्

तस्मात्सर्वे पुत्रहीनां भविष्यन्ति न संशयः । हरेणोक्तस्ततो वदिरस्माकं त्रीजमावह

यथा भवति लोकेषु तथा त्वं कर्तुं महसि ।

मम नेजस्त्वया शक्यं गृहीतुं सुरसत्तम ॥

देवकार्यार्यसिद्धयर्थं नाऽन्यः शक्तो जगन्त्रये ॥ १४ ॥

अग्निस्त्वाद्य

तेजसस्तव मे देवकाशक्तिधारेणेचिभो ! करोति भस्मसात्सर्वत्र लोकेषु मघराघरम्

ईश्वर उवाच

उदरस्थेन वीजेन यदि ते जायते रुजा । तदा श्लिषन्व तत्तेजो गङ्गातोये हुताशन  
एवमुक्त्वा महादेवो अमोघं वीजमुत्तमम् । हव्यवाहमुन्वे सर्वं प्रक्षिप्यान्तरध्रीयत  
गते घादंशनं देवे दृष्टमानो हुताशनः । गङ्गातोये चिनिक्षिप्य जगामस्वं निवेशनम्

असहन्ती तु तत्तेजो गङ्गाऽपि सरिताम्वरा ।

शरस्तम्बे चिनिक्षिप्य जगामाऽऽशु यथागतम् ॥ १६ ॥

तत्र जातं तु तद् दृष्ट्वा सर्वे देवाः सवासवाः ।

कृत्तिकां प्रेषयामासुः स्तन्यं पात्रयितु तदा ॥ २० ॥

दृष्ट्वा ता आगताः सर्वा गङ्गागर्भं मङ्गामतेः ।

पण्मुखैः पण्मुखो भूत्वा पिपासुरपिबत्स्तनम् ॥ २१ ॥

जातकर्मादिसंस्कारान् वेदोक्तान्पद्मसम्भवः । अकारसर्वान् राजेन्द्र विधिदृष्टेन कर्मणा

पण्मुखात्पण्मुखो नाम कार्तिकेयस्तु कृत्तिकात् ।

कुमारश्च कुमारत्वाद्गङ्गागर्भोऽग्निजोऽपरः ॥ २३ ॥

एवं कुमारः सम्भूतो ह्यनधीत्य स वेदवित् ।

शास्त्राप्यनेकानि वेद सघार चिपुलं तपः ॥ २४ ॥

देवारण्येषु सर्वेषु नदीषु च नदेषु च । पृथिव्यां यानि तीर्थानि समुद्राद्यानि भारत

ततः पर्याययोगेन नर्मदा तटमाश्रितः । नर्मदादक्षिणे कूले सघार चिपुलं तपः ॥ २६

ऋग्यजुःसामविहितं जपज्ञाप्य महर्षिशम् । ध्यायमानो महादेवं शुद्धिर्धर्मनिसन्ततः

ततो धर्मसहस्रान्ते पूर्णे देवो महेश्वरः । उमया सहितः काले तदा वचनमब्रवीत्  
 ईश्वर उवाच ।

अहं ते धरदस्तात गौरी माता पिता ह्यहम् ।

धरं वृणीष्व यच्चेष्टं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ॥ २६ ॥

पण्मुख उवाच

यदि तुष्टो महादेव! उमया सह शङ्कर । वृणोमि मातापितरौ नान्यागतिर्मतिर्मम

एतच्छ्रुत्वा शुभ वाक्यं पुत्रस्य धरनाच्च्युतम् ।

तथेत्युक्त्वा तु स्नेहेन प्रेम्णा तं परिपस्वजे ॥ ३१ ॥

ततस्त मन्व्युपाग्राय ह्य मयोवाच शङ्करः ॥ ३२ ॥

ईश्वर उवाच

अक्षयश्चाव्ययश्चैव सेनातीस्त्वं भविष्यसि ॥ ३३ ॥

शिखी च ते वाहनं दिव्यरूपो दत्तो मया शक्तिधरस्य सङ्ख्ये ।

सुरासुरादींश्च जयेति शोक्त्वा जगाम कौलासधरं महात्मा ॥ ३४ ॥

गते चाऽदर्शनं देवे तदा स शिखिवाहनः ।

स्थापयित्वा महादेवं जगाम सुरसन्निधौ ॥ ३५ ॥

तदाप्रभृति तत्तीर्थं स्कन्दतीर्थमिति ध्रुतम् ।

सर्षपापहरं पुण्यं मर्त्याना भुवि दुर्लभम् ॥ ३६ ॥

तत्र तीर्थं तु यो राजन्मक्त्या स्नात्वाऽर्घ्येच्छिवम् ।

गन्धमाल्याभिपेकैश्च याञ्छिकं स लभेत्फलम् ॥ ३७ ॥

स्कन्दतीर्थं तु यः स्नात्वा पूजयेत्पितृदेवताः ।

तिलमिश्रेण तोयेन तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ ३८ ॥

पिण्डदानेनर्घ्येन विधियुक्तेन भारत । द्वादशाब्दानितुष्यन्तिपितरोनाऽन्नसंशयः

तत्र तीर्थं तु राजेन्द्र शुभं धां यदि धां शुभम् । इहलोकेपरेष्वेतत्सर्वं जायतेऽक्षयम्

तत्र तीर्थं तु यः कञ्चित्प्राणत्यागं करिष्यति ।

शाखयुक्तेन विधिना स गच्छेच्छिवमन्दिरम् ॥ ४१ ॥

कल्पमेकं वसित्वा तु देवगन्धर्वपूजितः । अत्र भारतवर्षे तु जायते विमले कुले ॥  
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञः सर्वव्याधिविवर्जितः । जीवेद्वर्षशतं साग्रं पुत्रपौत्रसमन्वितः ॥

इदं ते कथितं राजन्स्कन्दतीर्थस्य सम्भचम् ।

धन्यं यशस्यमायुष्यं सर्वदुःखघ्नमुत्तमम् ॥

सर्वपापहरं पुण्यं देवदेवेन भाषितम् ॥ ४४ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे  
रेवाखण्डे स्कन्दतीर्थमाहात्म्यवर्णननामैकादशोत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥

## द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः

### अङ्गिरसतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्सु राजेन्द्र! तीर्थमाङ्गिरसस्य तु । उत्तरे नर्मदाकूले सर्वपापविनाशनम्  
पुराऽऽसीद्ङ्गिरानाम ब्राह्मणोवेदपारगः । पुत्रहेतोर्युगस्याऽदौघघारविपुलं तपः  
नित्यं त्रिपवणस्नायीजपन्नेवंसनातनम् । पूजयंश्चमहादेवं कृच्छ्रचान्द्रायणादिभि  
द्वादशाब्दे ततः पूर्णे तुतोप परमेश्वरः ।

चरेण च्छन्दयामामास द्विजमाङ्गिरसं वरम् ॥ ४ ॥

चत्रे स तु महादेवं पुत्रं पुत्रवतां वरम् । वेदविद्याव्रतज्ञातं सर्वशास्त्रविशारदम् ।  
देवानां मन्त्रिणं राजन्सर्वलोकेषु पूजितम् ।

ब्रह्मलक्ष्म्याः सदाचासमक्षयं चाव्ययं सुतम् ॥ ६ ॥

तथाभिलषितःपुत्रः सर्वविद्याविशारदः । भविष्यति न सन्देहश्चैवमुक्त्वाययीह  
चरैरङ्गिरसश्चाऽपि बृहस्पतिरजायत । यथाऽभिलषितः पत्रो वेदवेदाङ्गपारगः

जाते पुत्रेऽङ्गिराम्स्तत्र स्थापयामास शङ्करम् ।  
 हृष्टतुष्टमना भूत्वा जगामोत्तरपर्वतम् ॥ ६ ॥  
 तत्र घाङ्गिरसे तीर्थे य स्नात्वा पूजयेच्चिउषम् ।  
 सर्वपापविनिर्मुक्तो ऋद्रलोक स गच्छति ॥ १० ॥

अपुत्रो लभते पुत्रमधनो धनमाप्नुयात् । इच्छते यश्च य काम स त लभतिमान  
 इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्या सहिताया पञ्चमेऽवन्तीखण्डे  
 रेवाक्षण्डेऽङ्गिरसतीर्थमाहात्म्यवर्णननाम द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११२॥

## त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः

### कोटितीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तुराजेन्द्रकोटितीर्थमनुत्तमम् । ऋषिकोटिर्गता तत्र परासिद्धिमुपागत  
 तत्र तीर्थे तु य स्नात्वा भोजयेद्ब्रह्मणाञ्छुचि ।  
 एकस्मिन्भोजिते विघ्ने कोटि भवति भोजिता ॥ २ ॥  
 तत्र नार्थे तु य स्नात्वा पूजयेत्पितृदेवता ।  
 पूजिते तु महादेवे वा नपेयफल लभेत् ॥ ३ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्या सहिताया पञ्चमेऽवन्तीखण्डे  
 रेवाक्षण्डेकोटितीर्थमाहात्म्यवर्णननाम त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११३॥

## चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः

अयोनिसम्भवतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र तीर्थं परमशोभनम् । अयोनिजं महापुण्यं सर्वपापप्रणाशनम्

अयोनिजे नरः स्नात्वा पूजयेत्परमेश्वरम् ।

पितृदेवाच्चानं कृत्वा मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥ २ ॥

तत्र तीर्थे तु विधिना प्राणत्यागं करोति यः ।

स कदाचिन्महाराज योनिद्वारं न पश्यति ॥ ३ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे  
रेखाखण्डेऽयोनिसम्भवतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नामचतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥

## पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः

अङ्गारकतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेन्महाराज तीर्थमङ्गारकं परम् । रूपदं सर्वलोकानां विश्रुतं नर्मदातटे

अङ्गारकेण राजेन्द्र! पुराऽतप्तं तपः किल ।

अवुदं च निखर्यं च प्रयुतं वर्षसङ्ख्यया ॥ २ ॥

ततस्तुष्टो महादेवः परया कृपया नृप । प्रत्यक्षदर्शी भगवानुवाच क्षितिनन्दनम्

वरदोऽस्मि महाभाग दुर्लभं त्रिदशैरपि ।

वरं दास्याम्यहं वत्स ! ब्रूहि यत्ते विवक्षितम् ॥ ४ ॥



## अङ्गारक उवाच

व प्रसादाद्देवेश सर्वलोकमहेश्वर । ग्रहमभ्यगतो नित्यं विधरामि तभस्तले ॥२

यावद्धराधरो लोके यावच्चन्द्रदिवाकरौ ।

नद्यो नदा समुद्राश्च धरो मे ध्वाऽक्षयो भवेत् ॥ ६ ॥

एवमस्त्विति देवेशो दत्त्वा चरमनुत्तमम् ।

जगामाऽऽकाशमाविश्य वन्द्यमान सुरासुरै ॥ ७ ॥

भूमिपुत्रस्ततस्तस्मिन्स्थापयामाम शङ्करम् ।

गत सुरालये लोके ग्रहभावे निवेशित ॥ ८ ॥

तत्रतीर्थेतुय स्नात्वा पूजयेत्परमेश्वरम् । हुतशोभो जितक्रोध सोऽभवेत्प्रफल्लभेत्

घतुर्ध्वंदारके यस्तु स्नात्वा धाम्यर्घयेद् ग्रहम् ।

अङ्गारक विधानेन सप्तजन्मानि भारत ॥ १० ॥

दशयोजनविस्तीर्णे मण्डले रूपधान्भवेत् ।

तत्रैव तु मृतो जन्तु कामतोऽकामतोऽपि वा ॥

रुद्रस्याऽनुधरो भूत्वा तेनैव सह भोदते ॥ ११ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणकाशीतिसाहस्रया सहितायां पञ्चमेऽधर्तीखण्डे

रेखाखण्डेऽङ्गारकर्तीर्थमाहात्म्यवर्णन नाम

पञ्चशोत्तरशततमोऽध्याय ॥ ११५ ॥

## षोडशाधिकशततमोऽध्यायः

पाण्डुतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

पाण्डुतीर्थं ततो गच्छेत्सर्वपापविनाशनम् ।

तत स्नात्वा नरो राजन् ! मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥ १ ॥

तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा दापयेत्काञ्चनं शुचिः ।

भ्रूणहत्यादिपापानि नश्यन्ते नाऽत्र संशयः ॥ २ ॥

पिण्डोदकप्रदानेन वाजपेयफलं लभेत् ।

पितरः पितामहाश्च नृत्यन्ते च प्रहर्षिताः ॥ ३ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे  
रेवाखण्डे पाण्डुतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नामषोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥

## सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः

त्रिलोचनतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र पुण्यं तीर्थंत्रिलोचनम् । तत्रतिष्ठतिदेवेशःसर्वलोकनमस्वृतः

तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा भक्त्याऽर्चयति शङ्करम् ।

रुद्रस्य भवनं याति मृतो जास्त्यत्र संशयः ॥ २ ॥

कल्पक्षये ततः पूर्णं क्रीडित्वा च इहागतः ।

आचियोमेन तिष्ठेत पूज्यमान शतं समाः ॥ ३ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणप्रकाशीतिसाहस्रथासंहिताया पञ्चमेऽध्यायः  
रेखाखण्डे त्रिलोचनतीर्थमाहात्म्यवर्णननाम सप्तदशोत्तरशततमोऽध्यायः ॥११७॥

## अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः

### इन्द्रतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र तीर्थं परमशोभनम् । इन्द्रतीर्थं तिविख्यातं नर्मदादक्षिणे तटे  
युधिष्ठिर उवाच

नर्मदादक्षिणे कूले इन्द्रतीर्थं कथम्मयेत् ।

धोतुमिच्छामि विप्रेन्द्र! ह्यादिमध्वान्तविस्तरेः ॥ २ ॥

एतच्छ्रुत्वा तु पथेन धर्मपुत्रस्य धीमत । कथयायामतद्वृत्तमितिहासपुरातनम्  
श्रीमार्कण्डेय उवाच

विभ्रामयित्वा शुचिर धर्मशत्रुं महाबलम् ।

वृत्रं जित्वाऽथ हृत्वा तु गच्छमानं शचीपतिम् ॥ ४ ॥

नित्याममाणमार्गेण ब्रह्महत्यादुरासदा । अहोरात्रमपि ध्रान्ता जगामभुवनत्रयम्  
यतोयतो ब्रह्महणं याति यानेन शोभनम् ।

दिशो भागं सुरे सादं गतो हृत्वा न भुञ्जति ॥ ६ ॥

ब्रह्महत्यामुगपानस्नेयं गुणं हूनागमं । पातकानागतद्विष्टानतु विभ्रामयित्वा  
पापकर्ममुगं दृष्ट्वा स्नानदानैर्यिशुष्यति । मारीचापुरुषोषाऽपि नैव विभ्रामयित्वा

पथमादीनि याऽन्यानि शृणु धाक्यानि दैवराट् ।

पथं तद्विधेयं विनादमगमत्परम् ॥ १ ॥

त्यक्त्वा राज्यं सुरैः सार्धं जगाम तप उत्तमम् ।

पुत्रदारगृहं राज्यं वसूनि विविधानि च ॥ १० ॥

फलान्येतानिधर्मस्यशोभयन्तिजनैश्वरम् । फलधर्मस्यभुञ्जेतिसुहृत्स्वजनवान्धवाः  
पश्यतां सर्वमेतेषां पापमेकेन भुज्यते । परं हि सुखमुत्सृज्य कर्शयन्वै कलेवरम् ॥

देवराजो जगामाऽसौ तीर्थान्यायतनानि च ।

गङ्गातीर्थेषु सर्वेषु यामुनेषु तथैव च ॥ १३ ॥

सारस्वतेषु सर्वेषु समुद्रेषु पृथक्पृथक् । नदीषु देवखातेषु तडागेषु सरःसु च ॥  
पापं न मुञ्चते सर्वं पश्चाद्देवसमागमे । रेवाप्रभवतीर्थेषु कूलयोरुभयोरपि ॥ १५ ॥

पूजयन्वै महादेवं स्कन्दतीर्थं समासदत् ।

तत्र स्थित्वोपवासैश्च कृच्छ्रचान्द्रायणादिभिः ॥ १६ ॥

कर्शयन्वैस्वकंहनलेभेशर्मवैकचित् । ग्रीष्मेपञ्चाग्निमध्यस्थो वर्षासुस्थण्डिलेशयः  
आर्द्रवासास्तुहेमन्तेचघारविपुलं तपः । एवं तु तपतस्तस्य इन्द्रस्यचिदितात्मनः  
वत्सराणां सहस्राणि गतानि दश भारत । नतस्त्वेकादशे प्राप्ते वर्षे तु नृपसत्तम!  
सहस्रा भगवान्देवस्तुतोष परमेश्वरः । तथा ब्रह्मर्षयः सिद्धा ब्रह्मचिष्णुपुरोगमाः

तत्राऽऽजगमुः सुराः सर्वे यत्र देवः शतक्रतुः ।

दृष्ट्वा समागतान्देवानृषींश्चैव महामतिः ॥ २१ ॥

उवाच प्रणतो भूत्वा 'सर्वदेवपुरोहितः । चिदितं सर्वमेतेषां यथा वृत्रवधः कृतः ॥  
युष्माकं चाऽऽज्ञया पूर्वं ब्रह्मचिष्णुमहेश्वराः ।

तथाऽप्येवं ब्रह्महणं मत्त्वा पापस्य कारिणम् ॥ २३ ॥

भ्रमन्तं सर्वतीर्थेषु ब्रह्महत्या न मुञ्चति ।

न नन्दति जगत्सर्वं त्रैलोक्यं सघरास्रम् ॥ २४ ॥

यथाचिहीनचन्द्रार्कतथाराज्यमनायकम् । तस्मात्सर्वेसुरश्रेष्ठाचिज्ञाप्यंममसम्प्रति  
कुर्वन्तु शकं निर्दोषं तथा सर्वे महर्षयः । बृहस्पतिमुखोद्गीर्णं श्रुत्वा तद्ब्रह्मनंशुभम्  
ततः प्रोवाच भगवान् ब्रह्मालोकपितामहः । एतत्पापं महाघोरं ब्रह्महत्यासमुद्भवम्

दैवतेभ्योऽयं भूतेभ्यश्चतुर्भांगं क्षिपाम्यहम् ।

एव मुक्त्वाऽक्षिपञ्चैनो जलोपरि महामति ॥ २८ ॥

अवगाह्यतत पेयाभापो वै नान्यथा बुधे । धरायामक्षिपद्भागं द्वितीयं पद्मसम्भवः  
अभक्ष्या तेन सञ्जाता सदाकाल वसुन्धरा ।

तदार्षमर्द्धं नारीणां द्वितीयेऽह्नि युधिष्ठिर ॥ ३० ॥

निक्षिप्यभगवान्देव पुनरन्यज्जगाद ह । असप्राह्या त्वसप्राह्या तेनजातारजस्वला  
चतुर्विंशतिं सा प्राज्ञैः पापस्य महतो महात् ।

चतुर्थं तु ततो भागं विभज्य परमेश्वर ॥ ३२ ॥

वृषिगोरक्ष्यवाणिज्यं शूद्रसेवाकरे द्विजे । ततोऽभिनन्दयामासु सर्वदेवामहृष्य  
देवेन्द्र वाग्भिरिणाभिर्नर्मदाजलसंस्थितम् । घरेणच्छन्दयामासततस्तुष्टोमहेश्वर-  
परं दाम्भ्यामि देवेश' घरं वृणु यथेप्सितम् ॥ ३५ ॥

इन्द्र उवाच

यदितुष्टोऽसि देवेशयद्विदयोवरमम । अत्र सस्थापयिष्यामि सदासन्निहितोभव  
एवमस्त्विति घोक्त्वा तं ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा ।

जग्मुर्गाकाशमाविश्य स्तूयमाना महर्षिभि ॥ ३७ ॥

गतेषु देवदेवेषु इवराजं शतञ्चतु । स्थापयित्वा महादेव जगाम त्रिदशालयम् ॥

इन्द्रतीर्थे तु यः स्नात्वा तर्प्ययेत्पितृदेवता ।

महापातकयुक्तोऽपि मुच्यते सर्वपातकै ॥ ३९ ॥

इन्द्रतीर्थे तु यः स्नात्वा पूजयेत्परमेश्वरम् ।

सोऽश्वमेधस्य यज्ञस्य पुष्कलं फलमश्नुते ॥ ४० ॥

एतस्मै कथितं सर्वं तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम् ।

धृतमात्रेण येनैव मुच्यन्ते पातकैर्नरा ॥ ४१ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणप्रकाशीतिस्माहस्रया संहिताया पञ्चमेऽध्यायखण्डे  
रेवासण्डे इन्द्रतीर्थमाहात्म्यवर्णननामाष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११८ ॥

## एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

कह्लोडीतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्पुराजेन्द्र कह्लोडीतीर्थमुत्तमम् । रेवायाश्चोत्तरेकूले सर्वपापविनाशनम्  
हितार्थं सर्वभूतानामृषिभिः स्थापितम्पुरा । तपसा तु स मुद्गुत्थनर्मदायां महाम्भसि  
स्नात्वा तु कपिलातीर्थे कपिलां यः प्रयच्छति ।

श्रुत्वा घाऽऽख्यानकं दिव्यं ब्राह्मणाञ्छृणु यत्फलम् ॥ ३ ॥

सर्वेषामेव दानानां कपिलादानमुत्तमम् । ब्राह्मणान्वेपितं पूर्वमृषिदेवसमागमे ॥  
सद्यः प्रसूतां कपिलां शोभनां यः प्रयच्छति ।

सोपवासो जितक्रोधस्तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ ५ ॥

ससमुद्रगुहा तेन सशैलवनकानना । दत्ता चैव महाबाहो पृथिवी नात्र संशयः ।  
वाचिकं मानसं पापं कर्मणाय तपुराकृतम् । नश्यते कपिलां दत्त्वा सप्तजन्मार्जितं नृप  
भूमिदानं धनं धान्यं हस्त्यश्वकनकादिकम् ।

कपिलादानस्यैकस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ ८ ॥

तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा कपिलां यः प्रयच्छति ।

मृतो विष्णुपुरं याति गीयमानोऽप्सरोगणैः ॥ ९ ॥

यावन्ति तस्या रोमाणि सवत्सायास्तु भारत ! ।

तावद्द्वर्षसहस्राणि स स्वर्गे क्रीडते चिरम् ॥ १० ॥

ततोऽचकीर्णकालेन त्विह मानुष्यतांगतः । धनधान्यसमोपेतो जायते विपुलेकूले  
वेदविद्याव्रतस्नातः सर्वशास्त्रविशारदः ।

व्याधिशोकविनिर्मुक्तो जीवेच्च शरदां शतम् ॥ १२ ॥

एतत्ते सर्वमाख्यातं कह्लोडीतीर्थमुत्तमम् ।

यत्कृत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नाऽत्र सशयः ॥ १३ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशातिसाहस्र्या सहिताया पञ्चमेऽयन्तीखण्डे  
रवाखण्डे षष्ठोऽर्थाधमाहात्म्यवर्णन नामैकोनविंशत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥

## विंशाधिकशततमोऽध्यायः.

### कम्बुकेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमाकण्डेय उवाच

अन पर प्रवक्ष्यामि कम्बुकेश्वरमुत्तमम् । हिरण्यकशिपुर्देव्योदानवो बलदर्पितः ॥

अवध्य मयलोकाना त्रिपु लोकेषु विधत् ।

तस्य पुत्रो महानेनाः प्रहादो नाम नामतः ॥ २ ॥

विष्णुप्रसादाद्भवत्वा च तस्य राज्ये प्रतिष्ठितः ।

विरोधनस्तस्य सुतस्तस्याऽपि बलिरेव च ॥ ३ ॥

यत्पुत्रोऽभवत्त्राणस्तस्मादपि च शम्बरः ।

शम्बरस्याऽन्वये नातः कम्बुनाममहासुरः ॥ ४ ॥

ज्वात्वा विष्णुमयं घोरं महद्द्वयमुपस्थितम् ।

दानवानां विनाशाय नाऽन्यो हेतुः कदाचन ॥ ५ ॥

स यक्त्वापुत्रदाराश्चमुह्यन्धुपरिग्रहान् । सद्यारमौनमास्थायतपःकम्बुमहामति  
त्रक्ष्मूत्रकरोभूत्वादर्ण्यमुण्डाद्यं मेषला । शाक्यायकमक्ष्मणं चल्कलाजिनसम्बुतं  
स्नात्वा नित्यं धृतिपरो नमनानलमाश्रितः । पूजयस्तुमहादेवमर्बुदं चयसङ्कल्पया  
तनस्नुताय भगवान्नेवदेवो महेश्वरः । उवाच दानव काले मेषगम्भीरया गिरा ॥

भो भो कम्बो! महाभाग! तुणोऽहं तव सुवतः ।

इष्टव्रतानां परममौनसवापसाधनम् ॥ १० ॥

रितं च त्वयालोके देवदानवदुश्चरम् । वरं वृणीष्व भद्रं ते यत्ते मनसि रोचते ॥

कम्बुरुवाच

अदि प्रसन्नो देवेश यदिदेयो वरोमम । अक्षय्यश्चाव्ययश्चैव स्वेच्छयाविचराम्यहम्  
देवदानवसङ्घानां संयुगेष्वपलायिता । भयञ्जानन्यन्नविद्येत मुक्त्वादेवंगदाधरम्  
तस्याऽहं संयुगे साध्यो येनोपायेन शङ्कर !

भवामि न सदा कालं तं वदस्व वरं मम ॥ १४ ॥

ईश्वर उवाच

ममसन्निहितोयत्र त्वं भविष्यसिदानव । तत्रविष्णुभयंनास्तिवसात्राविगतज्वरः  
तस्यदेवाधिदेवस्य वेदगर्भस्य संयुगे । शङ्करक्रधरस्येशा नाऽहं सर्वे सुरासुराः ॥  
किंपुनर्योद्धिपत्येनंलोकालोकप्रभुं हरिम् । स सुखी वत्तते कालं न निमेषं मंतं मम  
तस्मात्त्वंपरयाभक्त्यासर्वभूतहितेरतः । वसिष्यसिचिरंकालमित्युक्त्वादर्शनंगतः  
गतेष्वाऽदर्शनंदेवे तत्र तीर्थे महामतिः । स्थापयामास देवेशं शिवंशान्तमनामयम्  
तस्मिंस्तीर्थेमहादेवंस्थापयित्वादिवंगतः । तदाप्रभृतितत्पार्थकम्बुतीर्थमितिश्रुतम्  
विख्यातं सर्वलोकेषु महापातकनाशनम् ॥ २० ॥

कम्बुतीर्थे नरः स्नात्वा विधिनाऽभ्यर्च्य भास्करम् ।

ऋग्यजुःसाममन्वैश्च स्तूयमानो नृपोत्तम ! ॥ २१ ॥

तस्य पुण्यं समुद्दिष्टं ब्राह्मणैर्वेदपारगैः । तत्सर्वं तु शृणुष्वाऽद्य ममैव गदतो नृप  
ऋग्यजुः सामगीतेषु साङ्गोपाङ्गेषु यत्फलम् ।

। तत्फलं समवाप्नोति गायत्रीमात्रमन्त्रवित् ॥ २३ ॥

तत्रतीर्थे तुयः स्नात्वा तर्पयेत्पितृदेवताः । पूजयेद्देवमीशानं सोऽग्निष्टोमफलं लभेत्  
अकामो वा सकामो वा तत्र तीर्थे कलेवरम् ।

यस्यजेन्नात्र सन्देहो रुद्रलोकं स गच्छति ॥ २५ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे  
रेवाखण्डे कम्बुकेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नामविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥



## एकत्रिंशत्तद्विंशततमोऽध्यायः

चन्द्रहासेमोमूर्तीयं माहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेन्मर्हापाल चन्द्रहाममतः परम् । यत्र सिद्धिपरा प्राप्तः सोमराजः सुरोत्तमः

युधिष्ठिर उवाच

कथं सिद्धिं परां प्राप्तः सोमनाथो जगत्पति ।

तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि कथयस्व ममाऽनघ ॥ २ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

पुरा शत्रो मुनीन्द्रेण दक्षेण क्विलभारत । असेवनाद्दि दाराणाक्षयरोमीभधिष्यसि

उद्धाहितानां पत्नीनां ये न कुर्वन्ति सेवनम् ।

या तिष्ठा जायते नृणां ता शृणुष्व नराधिप ॥ ४ ॥

ऋतावृत्ती हि नारीणां सेवना जायते सुतः ।

सुतास्स्वर्गश्च मोक्षश्च इत्येवं श्रुतिभाषितम् ॥ ५ ॥

तत्कालोचितधर्मेण प्रेष्टिनो रोरुवपनेत् । तस्यास्तद्दुधिरपापं पितृकालमाप्सितम्

ततोऽवर्तार्णं कालेन वा या योतिं प्रयास्यति ।

तरुया तस्यां स दुष्टात्मा दुर्भगो जायते सदा ॥ ७ ॥

नारीणां तु सदा कामोऽभ्यधिकः परिवर्तते ।

विशेषेण ऋतो काले पीडयते कामसायकं ॥ ८ ॥

परिभृता हि ता भर्त्रा ध्यायन्तेऽन्यं पतिं स्त्रियः

ततः पुत्रः समुत्पन्नो ह्यदृते कुलमुत्तमम् ॥ ९ ॥

स्वर्गान्धास्नेन पितरः पूर्वजास्नेपितामहाः । पतन्ति जातमात्रेण कुलदस्तेन घोच्यते

तेन कर्मविपात्रेण क्षयरोम्यमघच्छशी । त्यक्त्या लोके सुरेन्द्राणां मर्त्यलोके मुपागतः

ततस्तीर्थान्यनेकानि पुण्यान्यायतनानि च ।

भ्रमन् च नर्मदां प्रापः सर्वपापप्रणाशनीम् ॥ १२ ॥

उपवासं च दानानि व्रतानि नियमान्तथा ।

अघार द्वादशाब्दानि ततो मुक्तः स किल्विषैः ॥ १३ ॥

स्नापयित्वा महादेवं सर्वपापकनाशनम् । जगाम प्रभया पूर्णः स च लोकमनुत्तमम्  
येनैवस्थापितो देवः पूज्यते चर्षसङ्ख्यया । तावद्दर्शनहन्त्राणि रुद्रलोकेऽप्युच्यते  
तेन देवान्विधानोक्तान्स्थापयन्ति नरा भुवि ।

अक्षयं चाद्ययं यस्मात्कालं भुञ्जन्ति मानवाः ॥ १६ ॥

सोमतीर्थे नरः स्नात्वा पूजयेद्देवमीश्वरम् । न भ्राजते नगेलोके सोमवत्प्रियदर्शनः  
चन्द्रहासे तु योगत्वाग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः । स्नानं समाचरेद्भक्त्या मुच्यते सर्वकिल्बिषैः  
तत्र स्नानं च दानं च चन्द्रहासे शुभाऽशुभम् । कृतं नृपवश्रेष्ठ! सर्वभक्तिघाक्षयम्  
ते धन्यास्ते महात्मानस्तेषां जन्म सुजीवितम् ।

चन्द्रहासे तु ये स्नात्वा पश्यन्ति ग्रहणं नराः ॥ २० ॥

चात्रिकं मानसं पापं कर्मजं यदपुराकृतम् । स्नानमात्रेण राजेन्द्र तत्रतीर्थप्रणश्यति  
ब्रह्मस्तं न जानन्ति महामोहसमन्विताः । देहस्थमिव सर्वेषां परमानन्दरूपिणम्  
पश्चिमे सागरे गत्वा सोमतीर्थे तु यत्फलम् ।

तत्समग्रमवाप्नोति चन्द्रहासे न संशयः ॥ २३ ॥

सक्रान्तौ च व्यतीपाते अयने विपुवेतथा । चन्द्रहासे नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते  
ते मूढास्ते दुराचारास्तेषां जन्म निरर्थकम् ।

चन्द्रहासं न जानन्ति ये रेवायां व्यवस्थितम् ॥ २५ ॥

चन्द्रहासे तु यः कश्चित्संन्यासं कुर्वते द्विजः ।

अनिवर्तिका गतिस्तस्य सोमलोकाच्च संशयः ॥ २६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकंशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे  
रेवाखण्डे चन्द्रहासतीर्थमाहात्म्यवर्णननामैकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥

## द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

कोहनतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततोऽगच्छेन्महापाल कोहनस्त्वेतिविधृतम् । सर्वपापहरंपुण्यं तीर्थंमृत्युविनाशनम्  
पुरा तत्र द्विजः कश्चिद्वेदाङ्गपारगः । पत्नीपुत्रसुहृद्वर्गैः स्वकर्मनिरतोऽथ मन ॥

युधिष्ठिर उवाच

ब्राह्मणस्य तु यत्कर्म उत्पत्तिः क्षत्रियस्य तु ।  
वैश्यस्याऽपि च शूद्रस्य तत्सर्वं कथयस्व मे ॥ ३ ॥  
धर्मस्याऽथान्य कामस्य मोक्षस्य च परं विधिम् ।  
निखिल ज्ञानुमिच्छामि नान्यो धेत्ता मतिर्मम ॥ ४ ॥

मार्कण्डेय उवाच

उत्पत्तिकारणं ब्रह्मा देवदेव. प्रकीर्तितः । प्रथमं सर्वभूतानां चराचरजगद्गुरुः ॥  
द्विजातयो मुपाज्जाता. क्षत्रिया याहुयन्त्रतः ।  
ऊरुप्रदेशाद्देश्यास्तु शूद्रा पादेष्वथाऽभवन् ॥ ६ ॥  
ततस्त्वन्ये पृथग्धर्मा. पृथग्धर्मान्समाचरन् । पर्यायेणसमुत्पन्ना ह्यनुलोमघिलोमतः  
तेषां धर्मं प्रवक्ष्यामि श्रुतिस्मृत्यर्थघोदितम् ।  
येन सम्यक्कृतेनेव सर्वं यान्ति परा गतिम् ॥ ८ ॥  
गतिं प्राप्तिं विना भर्त्सन्निहन्ति. प्राप्ते नृप !  
अध्यापयन्त्यतो वेदान्वेद वाऽपि यथाविधि ॥ ९ ॥

कुलजा रूपसम्पन्ना सर्वलक्षणलक्षिताम् । उद्वाहयेत्तत्पत्नीं गुरुणाऽनुमते । तदा  
ततः स्मात्तं विवाहाग्निं श्रौतं वा पूजयेत्क्रमात् ।  
प्रतिग्रहधनो भूत्वा दम्भलोभविचर्जितः ॥ ११ ॥

पञ्चयज्ञविधानानि कारयेद्द्वै यथाविधि । धनंगच्छेत्ततःपश्चाद्द्वितीयाश्रमसेवनात्  
पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य सर्वसङ्गविचर्जितः । इष्टाँल्लोकानवाप्नोति न चेहजायतेपुनः

क्षत्रियस्तु स्थितो राज्ये पालयित्वा वसुन्धराम् ।

शश्वद्धर्ममनाश्चैव प्राप्नोति परमां गतिम् ॥ १४ ॥

वेश्यधर्मो न सन्देहः कृषिगोरक्षणे रतः । सत्यशौचसमोपेतो गच्छते स्वर्गमुत्तमम्  
न शूद्रस्यपृथग्धर्मोविहितःपरमेष्ठिना । न मन्त्रोनघ संस्कारो न विद्यापरिसेवनम्  
न शब्दविद्यासमयो देवताभ्यर्चनानि च । यथा जातेन सततं वर्त्तितव्यमहर्निशम्

स धर्मः सर्ववर्णानां पुरा सृष्टः स्वयम्भुवा ।

मन्त्रसंस्कारसम्पन्नास्त्रयोवर्णा द्विजातयः ॥ १८ ॥

तेषां मतमनादृत्य यदि वञ्चेत् कामतः । स मृतो जायते श्वा वै गतिरुर्ध्वानविद्यते  
न तेषां प्रेषणं नित्यं तेषां मतमनुस्मरन् ।

यशोभागी स्वधर्मस्यः स्वर्गभागी स जायते ॥ २० ॥

एवंगुणगणाकीर्णोऽवसद्विप्रः नभारत ! । हनस्वेतिहनस्वेतिशृणोतिवाक्यमीदृशम्  
ततो निरीक्षते चोर्ध्वमधश्चैव दिशो दश ।

वेपमानः स भीतश्च प्रस्खलंश्च पदे पदे ॥ २२ ॥

शृङ्खलायुधहस्तैश्च पाशैश्चैव सुदारुणैः । विष्टितं महिषारूढं नरं पश्यति सन्मुखम्  
कृष्णाङ्गनघयप्रख्यं कृष्णाम्बरविभूषितम् । रक्ताक्षमायतभुजंसर्धलक्षणलक्षितम्

दृष्ट्वा तं तु समायान्तं निरीक्ष्यात्मानमात्मना ।

जपञ्जाप्यं च परमं शतरुद्रीयसंस्तवम् ॥ २५ ॥

ततः प्रोवाच भगवान्यमः संयमनो महान् । शृणुवाक्यमतोब्रह्मन्यमोऽहं सर्वजन्तुषु  
संहरस्वमहाभागरुद्रजाप्यंसुदुर्भिदम् । येनाऽहंकालपाशैस्त्वां संयमामिगतव्यथः

तच्छ्रुत्वा निष्टुरं वाचयं यत्रस्य मुखनिर्गतम् ।

महाभयसमोपेतो ब्राह्मणः प्रपलायितः ॥ २८ ॥

तस्यमार्गं गतः सर्वयमेनसह किङ्कराः । तिष्ठतिष्ठेति तं विप्रमूचुस्तेसोऽप्यधावत्

त्परमाणं परिभ्रान्तो हा हतोऽहं दुरात्मभि ।

२१ २१ महादेव ! शरणागतघत्सल ! ॥ ३० ॥

पथमुक्त्वाऽपतद्भूर्मा लिङ्गमालिङ्ग्य भारत ।

गतमस्य स विन्द्रे समाश्रित्य सुतेभ्वरम् ॥ ३१ ॥

त दृष्ट्वा पतितं भूर्मा देवदेवो महेश्वर । को हनिष्यति मा मैस्त्य हुङ्कारमकरोत्तदा

तेन ते किङ्कुरा सर्वे यमेन सह भारत ।

हुङ्कारेण गता सर्वे मेमा घातहता यथा ॥ ३३ ॥

तदाप्रभृति तर्तीयं कोहनस्येतिचिद्भ्रुतम् । मयंपापहरंपुण्य सर्वतीर्थेष्वनुत्तमम्

तत्रतीर्थं तु य आत्वापूजयेत्परमेश्वरम् । अग्निष्टोमस्य यज्ञस्यङ्गमाप्नोत्यनुत्तमम्

तत्र तीर्थं तु राजेन्द्र प्राणत्यागं करोति य ।

न पश्यति यम देवमित्येषं शङ्करोऽग्रवीन् ॥ ३६ ॥

अग्निप्रवेश य कुर्याज्जले वा नृपसत्तम । अग्निलोके वसेत्तावद्यायत्वरूपशतत्रयम्

एव वरुणलोकेऽपि घसित्वा कालमीप्सितम् ।

इहलोकमनुप्राप्तो महाधनपतिर्भवेत् ॥ ३८ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्या सहितया पञ्चमेऽवन्तीखण्डे

रेखाखण्डे कोहनतीर्थमाहात्म्यवर्णन नाम द्वाविंशत्यधिक-

शततमोऽध्याय ॥ १२२ ॥

## त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

कर्मदेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र कर्मदीर्घार्थमुत्तमम् । यत्र तिष्ठतिचिन्नेशोगणनाथोमहाबलः  
तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा घृतुर्ध्यां वा ह्युपोषितः ।  
चिह्नं न चिद्यते तस्य सप्तजन्मनि भारत ॥ २ ॥  
तत्र तीर्थे हि यत्किञ्चिद्दीयते नृपसत्तम !  
तदक्षयफलं सर्वं जायते नाऽत्र संशयः ॥ ३ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे  
रेवाखण्डे कर्मदेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नामत्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥

## चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

नर्मदेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेन्महीपाल! नर्मदेश्वरमुत्तमम् । तत्रतीर्थेनरः स्नात्वा मुच्यतेसर्वकिल्बिषैः  
अग्निप्रवेशश्चजलेऽथवासृत्युरनाशके । अनिर्वर्त्तिकागतिस्तस्ययथामेशङ्करोऽब्रवीत्  
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे  
रेवाखण्डे नर्मदेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नामचतुर्विंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥

## पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्याय

### रवितीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

धर्माकर्षण्डेय उवाच

ततो गच्छेन्महीपाल'रवितीर्थमनुत्तमम् । यत्र देव-सहस्राशुस्नपस्तप्त्वादिवगत  
युधिष्ठिर उवाच

कथं देवो जगद्धाता सवदेवनमस्कृत । तपस्तपति देवेशस्तापसोभास्करोरपि  
आराध्य सवभूतानां सवदेवैश्चपूजित । प्रयश्नो दृश्यते लोके सृष्टिमहारकारक'  
आदित्यत्व कथं प्राप्तं कथं भास्कर उच्यते ।  
सवमेतन्समासेन 'कथयस्व ममाऽनघ ॥ ४ ॥

मार्कण्डेय उवाच

महाप्रश्नो महाराज' यस्तस्या परिपृच्छित ।  
तत्सर्वं सम्प्रदर्शयामि नमस्कृत्य स्वयम्भुवम् ॥ ५ ॥

आसीद्दिद् तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम् । अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमित्य सचत ॥ ६ ॥  
ततस्त्वेतश्च दिव्यं च सप्तपिण्डमनुत्तमम् ।  
आकाशात्तं यथैवोक्त्वा सृष्टिहेतोरधोमुखी ॥ ७ ॥  
तत्तजसोऽन्तं पुरं सखातं सर्वभूषितं ।  
स शिबोऽपाणिपात्श्च येन सवमिद् ततम् ॥ ८ ॥  
तस्योत्पन्नस्य भूतस्य तेनोरूपस्य भ रत ।  
पश्चात्पत्न्यापतिभूय काल कालान्तरेण वै ॥ ९ ॥

अग्निजातं सभूतानामनुप्यासुररक्षणात् । सवदेवाधिदेवश्च आत्तिवस्तेनघोच्यते  
जान्ते तस्य नमस्कारोऽप्येषा च तदनन्तरम् ।  
क्रियन्ते सर्वे सर्वस्तेन सर्वैर्महर्षिभि ॥ ११ ॥

तिस्रः सन्ध्यास्त्रयो देवाः सान्निध्याः सूर्यमण्डले ।

नमस्कृतेन सूर्येण सर्वे देवाः नमस्कृताः ॥ १२ ॥

न दिवा न भवेद्रात्रिः पण्मासा दक्षिणायनम् ।

अयनं चोत्तरं चाऽपि भास्करेण विना नृप ॥ १३ ॥

स्नानं दानं जपो होमः स्वाध्यायो देवतार्चनम् । न वर्त्तते विना सूर्यं तेन पूज्यत मोरविः

शब्दगाः श्रुतिमुख्याश्च ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । प्रत्यक्षो भगवान् देवो दृश्यते लोकपावनः

उत्पत्तिः प्रलयस्थानं निधानं बीजमव्ययम् ।

हेतुरेको जगन्नाथो नाऽन्यो विद्येत भास्करात् ॥ १६ ॥

एवमात्मभवं कृत्वा जगत्स्थावरजङ्गमम् । लोकानां तु हितार्थाय स्थापयेद्धर्मपद्धतिम्

नर्मदा तटमाश्रित्य स्थापयित्वाऽऽत्मनस्तनुम् ।

सहस्रांशुं निर्धि धाम्नां जगामाऽऽकाशमव्ययम् ॥ १८ ॥

तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा पूजयेत्परमेश्वरम् । सहस्रकिरणं देवं नाममन्त्रविधानतः

तेन तप्तं हुतं तेन तेन सर्वमनुष्ठितम् । तेन सम्यग्विधानेन सम्प्राप्तं परमम्पदम् ॥

ते धन्यास्ते महात्मानस्तेषां जन्म सुजीवितम् ।

स्नात्वा ये नर्मदातोये देवं पश्यन्ति भास्करम् ॥ २१ ॥

तथा देवस्य राजेन्द्र ये कुर्वन्ति प्रदक्षिणम् । अनन्यभक्त्या सततं त्रिरक्षरसमन्विताः

तेन पूतशरीरास्ते मन्त्रेण गतपातकाः । यत्पुण्यं च भवत्तेषां तदिहैकमनाः शृणु

ससमुद्रगुहा तेन सशैलवनकानना । प्रदक्षिणीकृता सर्वा पृथिवी नाऽत्र संशयः

मन्त्रमूलमिदं सर्वं त्रैलोक्यं सच्चराचरम् ।

तेन मन्त्रविहीनं तु कार्यं लोके न सिद्ध्यति ॥ २५ ॥

यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः ।

कार्यार्थं नैव सिद्ध्यत तथा कर्म ह्यमन्त्रकम् ॥ २६ ॥

यथा भस्महुतं पार्थ! यथा तोयविवर्जितम् ।

निष्फलं जायते दानं तथा मन्त्रविवर्जितम् ॥ २७ ॥



काष्ठपापाणलोष्टेषु मृण्मयेषु विशेषत । मन्त्रेणलोकेपूजा तु क्षुर्वन्ति न ह्यमन्त्रत  
 द्वादशाब्दाऽमस्काराद्भक्त्या यत्नमते फलम् ।  
 मन्त्रयुक्तमस्कारात्सहृत्तल्लभने फलम् ॥ २६ ॥  
 सङ्क्रान्तौ च व्यतीपातं श्रयने विपुत्रे तथा ।  
 नर्मदाया जले स्नात्वा यस्तु पूजयते रविम् ॥ ३० ॥

द्वादशाब्देन यत्पापमज्ञानज्ञानसञ्चितम् । तत्क्षणाद्यश्रयते सर्वघहिना तु नृप यथा  
 चन्द्रसूर्यग्रहे स्नात्वा सोवदासो जितेन्द्रिय ।  
 तत्रादित्यमुखं वृष्ट्वा मुच्यते सवकित्विषै ॥ ३२ ॥

माघमासे तु सप्तम्यामे सप्तम्यामृषसन्म' । सोपवासोजितकोऽपित्वासूर्यमन्दिरे  
 प्रातः स्नात्वा विधानेन ददात्यर्घ्यं दिवाकरे । विधिनामन्त्रयुक्तेन सलभेत्पुण्यमुत्तमम्  
 पितृदेवमनुष्याणां वृत्त्याह्यं दक्षतर्पणम् । मन्दिरे देवदेवस्य ततः पूजा समाचरेत्  
 गन्धं पुष्पैस्तथा धूपैर्दीपनैश्चेद्यशोभने । पूजयित्वा जगन्नाथं ततो मन्त्रमुदीरयेत्  
 विष्णुं शक्नो यमो धाता मित्रोऽथ घृणस्तथा ।  
 विषस्वान्मविता पूषा घण्टाशुभर्ग एव च ॥ ३७ ॥

इतिद्वादशनामानि जपन्मृत्वा प्रदक्षिणाम् । यत्कल्लभनेपार्थं तदिहैकमना शृणु  
 दरिद्रो व्याधितो मूको बधिरो जड एव च ।  
 न भवेन्मत्तजन्मानि इत्येव शङ्करोऽप्रवीत् ॥ ३६ ॥

एवज्ञात्वाविधानेन जपन्मन्त्रविषक्षण । आराधयेत्प्रविभक्त्या यश्छेत्पुण्यमुत्तमम्  
 मन्त्रहीना तु यः कुर्याद्भक्तिं देवस्य भारत' । सविडम्प्रतिघात्मानपशुर्कीटपतङ्गघत्  
 तत्रतीर्थे तु यः कश्चित्त्यजने देहमुत्तमम् । सगनस्तत्र देवैस्तु पूज्यमानो महर्षिभि  
 स्वेच्छया सुधिरकालमिहलोकैः नृपो भवेत् । पुत्रपौत्रसमायुक्तो हस्त्यश्वरथसङ्कु  
 दार्सादासशतोपेतो जायते विपुले कुले ॥ ४४ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्रथासहितायापञ्चमेऽध्यायखण्डे  
 रेवाखण्डेरवितीर्थमाहात्म्यवर्णननाम पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२५ ॥

## षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

अयोनिप्रभवतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तुराजेन्द्र! परंतीर्थमयोनिजम् । स्नातमात्रो नरस्तत्र न पश्येद्यो निसङ्कटम्  
तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा पूजयेद्देवमीश्वरम् । अयोनिजो महादेव! यथा त्वं परमेश्वर  
तथामोक्षय मदेव सम्भवाद्यो निसङ्कटात् । गन्धपुष्पादिधूपैश्च समुच्येत्सर्वपातकैः  
तस्य देवस्य यो भक्त्या कुरुते लिङ्गपूरणम् ।

स वसेद्देवदेवस्य यावत्सिक्थस्य सङ्ख्यया ॥ ४ ॥

अयोनिजे महादेवं स्नापयेद्गन्धवारिणा । मधुक्षीरेण दध्नावासलमेद्विपुलांश्रियम्  
अष्टम्यां च सिते पक्षे असितां वा चतुर्दशीम् ।

पूजयित्वा महादेवं प्रीणयेद्गीतवाद्यकैः ॥ ६ ॥

वसेत्स च शिवे लोके ये कुर्वन्ति मनोहरम् ।

ते वसन्ति शिवे लोके यावदाभूतसम्प्लवम् ॥ ७ ॥

तस्य देवस्य भक्त्या तु यः करोति प्रदक्षिणाम् । विज्ञापयंश्च सततं मन्त्रेणानेन भारत  
तस्य यत्फलमुद्दिष्टं पारम्पर्येण मानवैः । सकाशाद्देवदेवस्य तच्छृणुष्वसमाधिना  
अयोनिजो महादेव ! यथा त्वं परमेश्वर !

तथा मोक्षय मां शर्व ! सम्भवाद्यो निसङ्कटात् ॥ १० ॥

किं तस्य बहुभिर्मन्त्रैः कण्ठशोषणतत्परैः ।

येनोङ्गनमः शिवायेति प्रोक्तं देवस्य सन्निधौ ॥ ११ ॥

तेनाऽधीतं श्रुतं तेन तेन सर्वमनुष्ठितम् ।

येनोङ्गनमः शिवायेति मन्त्राभ्यासः स्थिरीकृतः ॥ १२ ॥

नतत्फलमवाप्नोति सर्वदेवेषु वै द्विजः । यत्फलं समवाप्नोति षडक्षरउदीरणात् ॥

तत्र तीर्थे तु य स्नात्वा पूजयेच्छिष्ययोगिनम् ।  
 द्विजानामयुतं साग्रं सलभेत्फलमुत्तमम् ॥ १५ ॥  
 अथवा भक्तियुक्तस्तु तेषां दान्ते जिनेन्द्रिये ।  
 ससृज्य ददते भिक्षां फलं तस्य ततोऽधिकम् ॥ १६ ॥

यतिहस्तेजलदद्याद्विशादस्वापुनर्जलम् । साभिक्षामेरुणानुल्यातद्धलसागरोपमम्  
 इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिमाहृष्या सहिताया पञ्चमेऽध्यायखण्डे  
 रेवाखण्डेऽयोनिप्रभवतीर्थमाहात्म्यवर्णननाम षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥

## सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

### अग्नितीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

नतोगच्छेत्त राडेन्द्र' अग्नितीर्थमनुत्तमम् ।  
 तत्र स्नात्वा तु पक्षादीं मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥ १ ॥  
 तत्रतार्थे तु य कन्या दद्यात्स्वयमण्डवृताम् ।  
 तस्य यत्फलमुद्दिष्टं तच्छृणुष्व नरोत्तम ॥ २ ॥  
 अग्निप्रोमातिराश्राभ्यां शतशतगुर्णीरुतम् ।  
 प्राप्नोति पुरुषा दद्यात् यथाशक्त्वा ह्यण्डवृताम् ॥ ३ ॥  
 नन्या पुत्रत्रयीं प्राणाया मवेद्रोमसङ्घति ।  
 स याति तेन मानेन शिवलोके परा गतिम् ॥ ४ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिमाहृष्या सहिताया पञ्चमेऽध्यायखण्डे  
 रेवाखण्डेऽग्नितीर्थमाहात्म्यवर्णननाम सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥

## अष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

भृकुटेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र! भृकुटेश्वरमुत्तमम् । यत्र सिद्धो महाभागो भृगुः परमकोपनः  
तेन चर्षशतं साग्रं तपश्चीर्णं पुराऽनत्र । पुत्रार्थं वरयामास पुत्रं पुत्रवताम्बरः ॥ २॥  
चरोदत्तो महाभाग देवेनान्ध्रकवातिना । तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा पूजयेत्परमेश्वरम्  
अग्निष्टोमस्य यज्ञस्य फलमष्टगुणं लभेत् । भृकुटेशं तु यः कश्चिद्दृष्टेन मधुना सह ॥

पुत्रार्थं स्नापयेद्भक्त्या स लभेत्पुत्रमीप्सितम् ।

तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा दद्याद्भिप्राय काञ्चनम् ॥ ५ ॥

गोदानं वा महीं वाऽपि तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ ६ ॥

ससमुद्रगुहा तेन सशैलवनकानना । दत्ता पृथ्वी न सन्देहस्तेन सर्वा नृपोत्तम ! ॥

तेन दानेन स स्वर्गं क्रीडयित्वा यथासुखम् ।

मर्त्ये भवति राजेन्द्रो ब्राह्मणो वा सुपूजितः ॥ ८ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिस्माहस्र्यां नंहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे  
रेवाखण्डे भृकुटेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नामाऽष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥

## एकोनत्रिंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेन्महीपाल ब्रह्मतीर्थमनुत्तमम् । अन्येषां चैव तीर्थानां परात्परतरं महत्

तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा पूजयेच्छिवयोगिनम् ।  
 द्विजानामयुतं साग्रं सलभेत्फलमुत्तमम् ॥ १४ ॥  
 अथवा भक्तियुक्तस्तु तेषां दान्ते जितेन्द्रिये ।  
 मस्त्वृत्य ददते भिक्षां फलं तस्य ततोऽधिकम् ॥ १५ ॥

यतिहस्तेजदद्याद्भिक्षादस्वापुनरंलम् । साभिश्चामेरुणातुल्यातद्धर्लसागरोपमम्  
 इति श्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिमाहध्याया सहितायापञ्चमेऽध्यायखण्डे  
 रेवाखण्डेऽयोनिप्रभवतीर्थमाहात्म्यवर्णननाम षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥

**सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः**

**अग्नितीर्थमाहात्म्यवर्णनम्**

मार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्त गजेन्द्रं अग्नितीर्थमनुत्तमम् ।  
 तत्र स्नान्त्वा तु पश्चाद्दीं मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥ १ ॥  
 तत्रतार्थं तु यः कन्या दद्यात्स्वयमण्डलनाम् ।  
 तस्य यत्फलमुद्दिष्टं तच्छृणुष्व नरोत्तम ॥ २ ॥  
 अग्निणोमातिरात्राभ्यां शतशतगुणीवृत्तम् ।  
 प्राप्नोति पुरया दत्त्वा यथाशक्या ह्यलङ्कृताम् ॥ ३ ॥  
 तस्यां पुत्रत्रयप्रतीत्राणां या भवेद्रोमसङ्गतिः ।  
 स याति तेन मानेन शिवलोके परा गतिम् ॥ ४ ॥

इति ध्यास्कान्दे महापुराण एकाशीतिमाहध्याया सहिताया पञ्चमेऽध्यायखण्डे  
 रेवाखण्डेऽग्नितीर्थमाहात्म्यवर्णननाम सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥

## त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

देवतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

नर्मदादक्षिणे कूले देवतीर्थमनुत्तमम् । तत्र देवैः समागत्य तोषितः परमेश्वरः ॥१॥

तत्र तीर्थं तु यः स्नात्वा कामक्रोधविवर्जितः ।

स लभेन्नात्र सन्देहो गोसहस्रफलं श्रुतम् ॥ २ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे

रेवाखण्डे देवतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३०॥

## एकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

नागेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

नर्मदादक्षिणे कूले नागतीर्थमनुत्तमम् । यत्र सिद्धा महानागा भये जाते ततो नृषु

युधिष्ठिर उवाच

महाभयानां लोकस्य नागानां द्विजसत्तम । कथं जातं भयं तीव्रं येन ते तपसि स्थिताः

भूतं भव्यं भविष्यच्च यत्सुरासुरमानवे । तात ते विदितं सर्वं तेन मे कौतुकं महत्

मम सन्तापजं दुःखं दुर्योधनसमुद्भवम् । तव वक्त्राम्बुजौघेन प्लावितं निर्वृत्तिगतम्

श्रुत्वा तव मुखोद्गीतां कथां पापप्रणाशनीम् ।

भूयोभूयः स्मृतिर्जाता श्रवणे मम सुव्रत ॥५॥

तत्र तीर्थे सुरश्रेष्ठो ब्रह्मा लोकपितामह । घतुणामपि वर्णानां नमदात्तमाश्रित  
घाचिक मानस पाप कमज यत्पुराकृतम् ।

तत्क्षालयति दवेशो दशनादेव पातकम् ॥ ३ ॥

श्रुतिस्मृत्युदिताभ्येव तत्र स्नात्वा द्विचपभा ।

प्रायश्चित्तानि कुर्वन्ति तेषां घासस्त्रिचिण्पे ॥ ४ ॥

ये पुन शास्त्रमु सृज्यकामगोभ्रपीडिता । प्रायश्चित्तं घटिव्यन्तितर्चनिरवगामिन  
स्नात्वाऽर्क्षी पातकी ब्रह्मज्ञायां तु कीर्त्तयेदधम् ।

तस्य तत्र श्यने क्षिप्रं तम सूर्योक्ष्ये यथा ॥ ५ ॥

तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा पूजयेत्पितृदेवता । अग्निष्टोमस्य यज्ञस्य सत्समेत्सुत्तमम्  
तत्र तीर्थे तु यद्दानं ब्रह्मोद्दिश्य प्रयच्छति । तदक्षयफलं सर्वमियेव शङ्करोऽब्रवीत्

गायत्रीसारमात्रोऽपि तत्र यः क्रियतजपः । शृण्वन्तु सामसहितं स भवेत्त्रात्रसशय  
तत्र ताथ तु यो भक्त्या यत्नेद्दह सुदुस्त्यजम् ।

अनिवर्त्तिता गतिस्तस्य ब्रह्मगोकारं मशय ॥ १० ॥

यावदसूर्यानि तिष्ठन्ति ब्रह्मताथ च दहिनाम् ।

तावद्वयसहस्राणि दवलोके महीयते ॥ ११ ॥

अचतीणस्ततो लोके ब्रह्मणो जायत कुत्रे । उत्तमं सर्ववर्णानां देवानामिव देवता  
विद्यास्थानानि सर्वाणि वेत्ति वेदाङ्गपारगः ।

जायत पूनितो लोक राजभिः स न सशय ॥ १३ ॥

पुत्रपौत्रसमोपतः सर्वव्याधिविचर्जितः । जीवेद्विपशतशास्त्रं ब्रह्मतीर्थप्रभायत ॥  
एतत्पुण्यपापहरताथ ज्ञानवता धरम् । ये पश्यन्ति महात्मानो ह्यमृतत्वप्रदातिनः

इति श्रीस्कान्द महापुराणएकाशातिमाहस्रया सहिताया पञ्चमेऽध्यायस्य  
शिवाखण्डे ब्रह्मताथब्राह्मणस्य चणन नामैकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२६ ॥

दासत्वं प्राप्स्यते त्वं हि पणेनाऽनेन मुमते ! ॥ २० ॥

कद्रुवाच

भवेयंतयथादासानीतत्कुसुभं हि सत्वग्म् । विशद्वं रोमकूपेषु तस्यावस्यमतिमम  
क्षणमात्रं हृते कार्ये सा दानी घ भवेन्मम ।

ततः स्वस्थोरगाः सर्वे भविष्यथ यथानुग्रम् ॥ २२ ॥

सर्पा ऊचुः

यथा त्वं जननी देवि! पन्नगानां मता भुवि ।

तथाऽपि सा विशेषेण वञ्चितव्या न कर्हिचित् ॥ २३ ॥

कद्रुवाच

ममवाक्पमकुर्वाणायैकेचिद्दुविपन्नगाः । ह्यत्रवाहमुग्रं सर्वे यास्यन्त्यविचारिताः

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं योगं मातृमुखोद्भवम् ।

केचित्प्रविष्टा रोमाणि तथाऽन्ये गिरिभ्रंस्थिताः ॥ २४ ॥

केचित्प्रविष्टा जाह्नव्यामन्ये च तपन्ति स्थिताः ॥ २६ ॥

ततो वर्षसहस्रान्ते तुतोप परमेश्वरः । महादेवो जगदाताह्युवाच परथा गिरि ॥

भो भोः सर्पा निवर्तध्वं तपसोऽस्य महत्फलम् ।

यमिच्छथ दद्राम्यद्य नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ २८ ॥

सर्पा ऊचुः

कद्रुशापभयाङ्गीता देवदेव महेश्वर । तवपार्श्वे वसिष्यामो यावदाभूतसम्प्लवम्

देवदेव उवाच

एकश्चायं महाबाहुर्वासुकिर्भुजगोत्तमः । मम पार्श्वे वसेन्नित्यं रक्षेपां भयरक्षकः

अन्येषां चैव सर्पाणां भयं नाऽस्ति ममाज्ञया ।

आप्लुत्य नर्मदातमेये भुजगास्ते च रक्षिताः ॥ ३१ ॥

नास्ति मृत्युभयं तेषां वसध्वं यत्र चेप्सितम् ।

कद्रुशापभयं नास्ति ह्येष मे विस्तरः परः ॥ ३२ ॥



न वलेशयं द्विजे युक्तं न धान्यो जानते फल्गुम् ।  
 विद्यादानस्य महत धावितस्य सुतस्य च ॥ ६ ॥  
 एव ज्ञात्वा यधान्याय य प्रश्नं पृच्छितो मया ।  
 कथां तु कथ्यता विप्रं दया वृत्त्वा ममोपरि ॥ ७ ॥

भार्कण्डेय उवाच

यथायथा त्वं मृगं भापसे च तथा तथा मे सुखमेति भारती ।  
 शोधित्यभावाज्जरायाऽन्वितस्य त्वत्सौहृद् नश्यति नैव तात ॥ ८ ॥

कथयामि यथावृत्तमितिहासं पुरातनम् । कथितं पूर्वतो वृद्धे पारम्पर्येण भारत  
 द्वे भाय कश्यपस्याऽऽस्या सर्वगोत्रेष्वनुत्तमे ।

गस्तमतो वीं दिनता सपाणा कद्रुये च ॥ १० ॥

अश्वमन्दशनात्ताभ्या कलिरूपं व्यपस्थितम् ।

प्रभातकाले राजेन्द्रं भास्कराकारकचर्चकम् ॥ ११ ॥

न दृष्ट्वा विनतारूपमश्वमवत्र पाण्डुरम् । अथ ता कद्रुमवोद्यन्सापश्यपश्यधरानने  
 उच्चं श्रवसं सादृश्यं पश्य मयत्रपाण्डुरम् । धावमानमविश्रान्तं जवेनपवनोपमम्  
 न दृष्ट्वासहसायान्नमीप्याभावेनमोहिता । कृष्णमत्वातथाऽजल्पत्तथासहनृपोत्तम  
 विनते न्वं मृगा लोके नृशसे कुलपासनि ।

कृष्णं चैनं वदं श्वेतं नरकं यास्यसे परम् ॥ १५ ॥

विनतोवाच

सन्त्याऽनृते तु वचने पणोऽयं ते ममैव तु । सहस्रवत्सरान्दासीभयेयं तव वेश्मनि  
 नद्येति नैप्रतिजायरात्रीगन्वास्वकं गृहम् । परित्यज्यउभेतेतुक्रोधमूर्च्छितमूर्च्छितं  
 चन्धुवगम्यगत्वा तु कथयामास तं पणम् । कद्रुविनतया साद्धं यद्वृत्तप्रमदालये  
 मच्छत्वा वान्धवा सर्वे कद्रुपुत्रास्तथैव च ।

न मन्थन्ते हितं कार्यं वृतं मात्रा विगर्हितम् ॥ १६ ॥

आकृष्णं कृष्णतामस्यं कथं गच्छेद्दयोत्तम ।

दासत्वं प्राप्स्यते त्वं हि पणेनाऽनेन सुवते ॥ २० ॥

कद्रुवाच

भवेयंतयथादासीतत्कुर्वन् हि सत्वरम् । विशध्वं रोमकूपेषु तस्याश्वस्यमतिर्मम  
क्षणमात्रं कृते कार्ये सा दासी च भवेन्मम ।

ततः स्वस्थोरगाः सर्वे भविष्यथ यथासुखम् ॥ २१ ॥

सर्पा ऊचुः

यथा त्वं जननी देवि! पन्नगानां मता भुवि ।

तथाऽपि सा विशेषेण वञ्चितव्या न कर्हिचित् ॥ २३ ॥

कद्रुवाच

ममवाक्यमकुर्वाणायैकेचिद्दुविपन्नगाः । ह्यत्राहमुखं सर्वे याम्यन्त्यविचारिताः

एतच्छ्रुत्वा तु चचनं शोरं मातृमुन्वोद्भवम् ।

केचित्प्रविष्टा रोमाणि तथाऽन्ये गिरिसंस्थिताः ॥ २४ ॥

केचित्प्रविष्टा जाह्नव्यामन्ये च तपन्ति स्थिताः ॥ २६ ॥

ततो वर्षसहस्रान्ते तुतोष परमेश्वरः । महादेवो जगद्धाताह्युवाच परया गिरि ॥

भो भोः सर्पा निवर्तध्वं तपसोऽस्य महत्फलम् ।

यमिच्छथ ददाम्यद्य नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ २८ ॥

सर्पा ऊचुः

कद्रुशापभयाङ्गीता देवदेव महेश्वर । तवपार्श्वे वसिष्यामो यावदाभूतसम्प्लवम्

देवदेव उवाच

एकश्चायं महाबाहुर्वासुकिर्भुजगोत्तमः । मम पार्श्वे वसेन्नित्यं सर्वेषां भयरक्षकः

अन्पेषां चैव सर्पाणां भयं नाऽस्ति ममाजया ।

आप्लुत्य नर्मदातपो, भुजगास्ते च रक्षिताः ॥ ३१ ॥

नास्ति मृत्युभयं तेषां वसध्वं यत्र चेप्सितम् ।

कद्रुशापभयं नास्ति ह्येष मे चिस्तरः परः ॥ ३२ ॥

एव दत्त्वा घर तेषा देवदेवो महेश्वर ।

जगामाऽऽकाशमाविश्य कै गाम घरणीधरम् ॥ ३३ ॥

गत घादशन द्वे घामुक्तिप्रमुखा नृप । स्थापयित्वा तथा जग्मुर्देवदेवं महेश्वरम्

तत्र तीर्थं तु य कश्चित्पञ्चम्यामघयेच्छिवम् ।

तस्य नागकु गान्यष्टौ न हिंसन्ति कदाचन ॥ ३४ ॥

सत कारेणमहता तत्रतीर्थेनरेश्वर । शिवस्यानुचरो भूत्वा घसनेकालर्माप्नितम्

इति श्रीस्कान्द महापुराण एकाशानिमाहम्रथा महिताया पञ्चमेऽवन्तीखण्ड

रेवाखण्डे नागैर्व्यतीथमाहात्म्यवर्णननामैकत्रिंशदधिकश्शततमोऽध्यायः ॥३३॥

## द्वात्रिंशदधिकश्शततमोऽध्याय

### आदिनाराहतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमाखण्डेय उवाच

नतो गच्छेत्त रावट उच्यते नमदान्त । भवपापहरं तार्थं धाराहं नाम नामत ॥

तत्रैवा जगज्जाता धाराहं रूपमास्थित ।

स्थितो गच्छेत्ताथाय समाराजवतारक ॥ - ॥

तत्र ताथ तु य स्नाया पूजयेद्दरणीधरम् ।

गन्धमायपिर्निश्चयशब्दादि मङ्गलैः ॥ ३ ॥

उपशामपराभूत्वा द्वादश्यां नृपसततम् । शृणुया पापकमाणस्तर्पयिष्यान्धपिशाचिन

ध्रागपाद्गात्रमन्थकात्रिभ्यामात्महमोननाम् ।

पाप संव्रजत यस्मात्तस्मान्पारिषत्तयम् ॥ ५ ॥

प्राश्नयान्ब्रह्मवृक्षया यथाशक्त्या यथापिधि ।

रात्रौ जागरणं कार्यं कथायां तत्र भारत ! ॥ ६ ॥

प्रभाते विमले स्नात्वा तत्र तीर्थे जगद्गुरुम् ।

ये पश्यन्ति जितक्रोधास्ते मुक्ताः सर्वपातकैः ॥ ७ ॥

यथा तु दृष्ट्वा भुजगाः सुपर्णं नश्यन्ति मुक्त्वा विप्रमुग्रतेजः ।

नश्यन्ति पापानि तथैव शीघ्रं दृष्ट्वा मुखं शूकररूपिणस्तु ॥ ८ ॥

नभोगतं नश्यति वान्ध्रकारं दृष्ट्वा रविं देवचरं तथैव ।

नश्यन्ति पापानि सुदुस्तराणि दृष्ट्वा मुखं पार्थ! धराधरस्य ॥ ९ ॥

किं तस्य ब्रह्मभिर्मन्त्रैर्भक्तिर्यस्य जनार्दने । नमोनारायणायैतिमन्त्रःसर्वार्थसाधकः

एकोऽपि कृष्णस्य कृतः प्रणामो दशाश्वमेधावभृथेन तुल्यः ।

दशाश्वमेधी पुनरेति जन्म कृष्णप्रणामी न पुनर्भवाय ॥ ११ ॥

ध्यायमाना महात्मानो रूपं नारायणं हरेः ।

ये त्यजन्ति स्वकं देहं तत्र तीर्थे जितेन्द्रियाः ॥ १२ ॥

ते गच्छन्त्यमलं स्थानं यत्सुरैरपि दुर्लभम् ।

क्षराक्षरविनिर्मुक्तं तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ १३ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे

रेवाखण्डे आदिवाराहतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम

द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३२ ॥

## त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

कुबेरादितीर्थचतुष्टयमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेन्महीपाल' पर तीर्थचतुष्टयम् । येषां दर्शनमात्रेण सर्वपापक्षयो भवे  
कौबेरचारुणयाम्यवायव्यतुनन परम् । यत्र सिद्धामहाप्राज्ञा लोकपालामहाबल

युधिष्ठिर उवाच

किमर्थं लोकपालैश्च तपश्चीर्णं पुराऽनघ । नर्मदातटमाधित्य ह्येतन्मे वक्तुमर्हसि

श्रीमार्कण्डेय उवाच

अधिष्ठानसमिच्छन्तिह्यघञ्निमग्रे सति । सप्तारे सर्वभूतानां तृणविन्दुवदस्मिन्  
वदशासारनि सारं मृगतृष्णेव चञ्चले । स्थावरे जङ्गमे सर्वे भूतग्रामे घनुर्विधे

धर्मो माता पिता धर्मो धर्मो धन्धु सुहृत्तथा ।

आधार सर्वभूतानां त्रैलोक्ये सद्यराधरे ॥ ६ ॥

एव ज्ञात्वा तु ते सर्वे लोकपाला ऋक्षणा । तपस्नेचक्रुरतुल मारताहारतत्परा  
ततस्तुषो महादेव वृत्तस्थार्द्धे गते तदा । अदृरूपेण राजेन्द्र युगस्य परमेश्वर ।

घरण च्छन्दयामास लोकपालान्महाबलान् ।

यो यमिच्छति काम र्थं न त तस्य ददाम्यहम् ॥ ६ ॥

एतच्छ्रुत्वावघमन्तस्य लोकपालाजगद्धिता । घरद् प्रार्थयामास्तुर्देवघरमनुत्तमम्

कुबेर उवाच

यदि तुषो महादेव' यदि देयोवरो मम । यक्षाणामीश्वरश्चाहभवामिधनदस्त्विति  
तत प्रोवाच देवश यम सयमने रत । तत्र प्रधानो भगवान्भवेय सर्वजन्तुषु ॥१२

घरुणोऽनन्तर प्राह प्रणम्य तु महेश्वरम् । श्रीदेय चारुणे लोके यादोगणसमन्वित

जगादाऽऽशु ततो वायु प्रणम्य तु महेश्वरम् ।

व्यापकत्वं त्रिलोकेषु प्रार्थयामास भारत ॥ १४ ॥

तेषां यदीप्सितं काममुमयां सह शङ्करः । सर्वेषांलोकपालानां दत्त्वाच्चादर्शनंगतः  
गते महेश्वरे देवे यथास्थानं तु ते स्थिताः ।

स्थापना च कृता सर्वैः स्वानाम्नैव पृथक्पृथक् ॥ १६ ॥

कुबेरश्च कुबेरेशं यमश्चैव यमेश्वरम् । वरुणो वरुणेशं तु वातो वातेश्वरं नृप ॥ १७  
तर्पणं विदधुः सर्व्वे मन्त्रैश्च विविधैः शुभैः ।

सर्वे सर्वेश्वरं देव पूजयित्वा यथाविधि ॥ १८ ॥

आह्वयामासुस्तान्विप्रान्सर्व्वे सर्वेश्वरा इव ।

क्षान्तदान्तजितक्रोधान्सर्व्वभूताभयप्रदान् ॥ १९ ॥

वेदविद्याव्रतस्नातान्सर्वशास्त्रविशारदान् ।

ऋग्यजुःसामसंयुक्तांस्तथाऽथर्व्वविभूषितान् ॥ २० ॥

चातुर्विध्यं तुसर्वेषांदानंदास्यामगृहृत । एवमुक्त्वातुसर्वेषां विप्राणांदानमुत्तम  
तत्र स्थाने दद्दुस्नेषां भूमिदानमनुत्तमम् । यावच्चन्द्रश्चसूर्यश्चयावत्तिष्ठतिमेदि-  
तावद्दानंतुयुग्माकं परिपन्थी न कश्चन । राजावा राजतुल्योवालोकपालैरनुत्तम  
दत्तं लोपयते मूढःप्रयतां तस्ययोविधिः । शोपयेद्धनदोवित्तं तस्य पापस्य भार  
शरीरंवरुणोदेवः सन्ततीञ्छ्वसनस्तथा । आयुर्न्ययतितस्याऽऽयुग्मःसंयमनोमहा  
निःशेषं भस्मसात्कृत्वा हुतमुभयाति भारत ॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन ब्राह्मणेभ्यो युधिष्ठिर ! ॥

भक्तिः कार्या नृपैः सर्वैरिच्छतिः श्रेय धात्मनः ॥ २६ ॥

राजा वृक्षो ब्राह्मणास्तस्य मूलं भृत्याः पर्णा मन्त्रिणस्तस्य शाखाः

तस्मान्मूलं यत्नतो रक्षणीयं मूले गुप्ते नास्ति वृक्षस्य नाशः ॥ २७ ॥

पृष्टिर्वर्षसहस्राणिस्वर्गेतिष्ठतिभूमिदः । आच्छेत्ताच्चाऽवमन्तां चतान्येचनरकेवर्षे  
स्वदत्ता परदत्ता वा पालनीया वसुन्धरां ।

यस्य यस्य ग्रंथो भूमिस्तस्य तस्य तदा फलम् ॥ २९ ॥

दयतात्राममुष्ण्यरात्रानायेऽपिनाश्व । पालविष्यन्ति सततनिर्गणामन्निषिष्टे

म्वन्ता वादसा वा यत्नाद्रह्या युधिष्ठिर ।

मर्हा मर्हाक्षिता नित्यं दानाच्छेयोऽपुत्रान्तम् ॥ ३१ ॥

नागुयशा यत् पितं संततिश्चाऽक्षवाक्य । तेषामपिष्यन्ते नून ये प्रनापाश्लेःरता

व्यमुषणा तु नागयातोक्पालादिद्रोक्षमान् ।

पूत्रविषया विधानेन प्रपिपत्य ष्यमत्रयन् ॥ ३३ ॥

गत्यु पिप्रमुष्यु स्नात्वा द्रुतद्रुताशाना ।

गोकपाला भुवाविग पयटभैक्षमारमत ॥ ३४ ॥

अस्मिन्मावणावाद्गा कपालोभृतपाणय । अन्धप्राममर्दाधैनिययुतगारादुयदि-

शापं स्न्यातनाथाधानप्राक्षणाप्युधिष्ठिर । इरिद्राः सततंमूषामनेयुधययुर्मुद्दान

नत्प्रभृतिन सचप्राक्षणा धनवर्णिता । शापदायण कौबेया संजातादुःखमाचरता

नधन पत्रकपुत्रन पिता पुत्रपात्रिकम् । मुञ्जतसकल कालमित्येवं शङ्करोऽर्वात्

कयरा नर स्नात्वायस्तुपूतपनशिषम् । गच्छपूतमस्कारे सोऽभ्येधरत्नभेत्

यमताथ नुय स्नात्वा सपयतियमभ्वरम् । सयपापैः प्रमुच्येतसतनमान्तरार्जिने

पूजमास्याममावास्या स्नात्वा तु पितृतपणम् ।

य करानि तिल स्नान तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ ४१ ॥

सतमास्नत नायन पितरश्च पितामहा ।

म्वगन्धा द्वांशाध्दानि म्नीडिति प्रपितामहा ॥ ४२ ॥

वरणशतर स्नाया ह्यश्रयित्वामहभ्वरम् । वाजपेयस्ययज्ञस्यफलप्राप्नोतिपुष्कलम्

मृता(त काऽतमहतागोक्षयप्रनभ्वर । सगच्छेत्तदयानेतगीयमानोऽप्सरोगणै-

धानश्वर नर स्नात्वा सम्पूज्य च महेश्वरम् ।

चायन द्रुतगपाःसी गोकपालानवेशयन् ॥ ४५ ॥

किं नस्य वदुभियज्ञानवा यदुन्क्षिपि । स्नात्वाघनुष्टये लोकेप्रथम जन्मनपत्नम्

न यथास्न महामानस्तथा जम सुनीवितम् ।

नित्यं वसन्ति कौरिल्यां ( कौवेर्याम् ) लोकपालान्निमन्त्र्य ये ॥ ४७ ॥

एतत्पुण्यं पापहरं धन्यमायुर्विवर्धनम् । पठतां शृण्वतां चैव सर्वपापक्षयो भवेत्

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे

रेवाखण्डे कुवेरादितीर्थचतुष्टयमाहात्म्यवर्णनं नाम

त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३३ ॥

## चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

रामेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

नर्मदादक्षिणे कूले रामेश्वरमनुत्तमम् । तीर्थं पापहरं पुण्यं सर्वदुःखघ्नमुत्तमम् ॥

तत्रतीर्थेतुये स्नात्वापूजयन्तिमहेश्वरम् । महादेवंमहात्मानं मुच्यन्तेसर्वकिल्बिषैः

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायांपञ्चमेऽवन्तीखण्डे

रेवाखण्डे रामेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नामचतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥

## पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

सिद्धेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

तस्यैवानंतरं घान्यत्सिद्धेश्वरमनुत्तमम् । तीर्थं सर्वगुणोपेतं सर्वलोकेषु पूजितम्

तत्र तीर्थेतुयः स्नात्वा ह्यु मासुद्रं प्रपूजयेत् । वाजपेयस्ययज्ञस्यस लभेत्फलमुत्तमम्

तेन पुण्येन महता मृतः स्वर्गमवाप्नुयात् । अप्सरोगणसंवीतो जयशब्दादिमंगलैः



सहस्रवल्मरास्त्रं ब्रह्मिण्या यथासुखम् ।

घनधान्यममोपेते कुत्रे महति जायते ॥ ४ ॥

पूज्यमानो नरधेष्ट' देवदेहाङ्गपारण' । एवाधिशोषपिनिर्मुक्तो जीयेद्य शरदां शला' ।

इति धाम्बानन्दे महापुराण एकारांतिमाहस्यं महितायां पञ्चमेऽध्याय

रेखाखण्डे मित्रोत्तरमाहात्म्यवर्णनं नामपञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्याय ॥ १३' ।

## पट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

अहल्यातीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

मारण्डेय उवाच

ततो गच्छेन्महीपालघाहन्नेभ्रमुत्तमम् । यश्चिन्तामहाभागान्महल्यातापसीषु

गौतमो ब्राह्मणस्यासीत्साक्षात्प्रश्नेष वाऽपर ।

सत्यधर्मसमायुक्तो धान्यरूपाध्रमे रत' ॥ २ ॥

तस्य पत्नी महाभागा महल्यातामविधुता । रूपयौवरासदभ्रात्रिषु लोकेषुविधुः

अस्याभ्यतिरूपेण देवराज' शतव्रतु । मोहितो लोभयामासहाहृत्तथा घलसूद

माभवत्त्व घरागोहे देवराजमनिन्दिते । ब्रह्मिण्या यथा साक्षेत्रिषु लोकेषु पूजित

किं कल्पिमि विप्रण शौचाधारहृत्तौ तु ।

तप स्याध्यायशीलेन त्रिशगर्ताव सुलोचने ॥ ३ ॥

एवमुक्त्वा घरागोहा स्त्रीस्यभावात्सुषक्ष्ण ।

मनसाऽध्याय शय सा कामेन क्लृप्ताहृता ॥ ४ ॥

तस्या विदित्वा न भवं स देव पाकशामन ।

गौतम पञ्चयामास दुष्टभावेन भाषित' ॥ ५ ॥

विदित्वा चान्तरं तस्य गृहीत्वा वेष्मुत्तमम् ।

अहल्यां रमयामास विश्वस्तां मन्दिरान्तिके ॥ ६ ॥

क्षणमात्रान्तरे तत्र देवराजस्य भारत । आजगाममुनिश्रेष्ठोमन्दिरं त्वरयाऽन्वितः  
आगतं गौतमं दृष्ट्वाभीतभीतःपुरन्दरः । निर्गतः सनतो दृष्ट्वा शक्रांऽयमितिचिन्तयन्  
ततः शशाप देवेन्द्रं गौतमः क्रोधमूर्च्छितः ।

अजितेन्द्रियोऽसि यस्मान्त्वं तस्माद्भवदुभगो भव ॥ १२ ॥

एवमुक्तस्तु देवेन्द्रस्तत्क्षणादेव भारत ! भगानां तु सहस्रेण तत्क्षणादेव त्रेष्टितः  
त्यक्त्याराज्यं सुरैः साद्धं गतश्रीकोजगाम ह । तपश्चघारविपुलं गौतमेनमहीतले

अहल्याऽपि ततः शप्ता यस्मात्त्वं दुष्टघारिणी ।

प्रेक्ष्य मां रमसे शक्रं तस्माद्दृग्ममयी भव ॥ १५ ॥

गते वर्षसहस्रान्ते रामं दृष्ट्वा यशस्विनम् ।

तीर्थयात्राप्रसङ्गेन धीतपापा भविष्यसि ॥ १६ ॥

एवंगतेतःकालेदृष्टारामेणधीमता । विश्वामित्रसहायेन त्यक्त्वासाऽग्ममयीतनुम्

पूजयित्वा यथान्यायं गतपापा चिमत्सरा ।

आगता नर्मदातीरे तीर्थे स्नात्वा यथाविधि ॥ १८ ॥

कृतं घान्द्रायणं मासं कृच्छ्रं चाऽन्यं ततः परम् ।

ततस्तुष्टो महादेवो दत्त्वा घरमनुत्तमम् ॥ १९ ॥

जगामाऽदर्शनंभूयोरैमेधोमापतिश्चिरम् । अहल्यातुगतेदेवे स्थापयित्वाजगद्गुरुम्

अहल्येश्वरनामानं स्वगृहेषागमत्पुनः । तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा पूजयेत्परमेश्वरम्

स मृतः स्वर्गमाप्नोति यत्र देवो महेश्वरः । क्रीडयित्वा यथाकामं तत्र लोके महातपाः

गते वर्षसहस्रान्ते मानुष्यं लभते पुनः । धनधान्यघयोपेतः पुत्रपौत्रसमन्वितः ॥

वेदविद्याऽऽश्रयो धीमाज्ञायते चिमले कुले ।

रूपसौभाग्यसम्पन्नः सर्वव्याधिविर्वर्जितः । जीवेद्वर्षशतं साग्रमहल्यातीर्थसेवनात्

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे

रेवाखण्डेऽहल्यातीर्थमाहात्म्यवर्णनं नामपट्टत्रिंशद्दधिकशततमोऽध्यायः ॥

सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः  
ककटेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

धर्मपुत्रं ततो गच्छेत्ककटेश्वरमुत्तमम् । उत्तरे नर्मदाकूले मरुत्पापक्षयदूरम् ॥ १ ॥

तत्र स्नात्वा पिधानेन यन्तु पूजयते शिवम् ।

अतिवर्जिका गतिम्लस्य हृदयाकादमशयम् ॥ २ ॥

तस्य तीर्थस्य माहात्म्यं पुराणे यच्छ्रुतमथा ।

न तद्वर्णयितुं शक्यं मक्षेपेण यदाभ्यत ॥ ३ ॥

तत्रनाथतृणकुशात्किञ्चित्कमशुभाशुभम् । हर्षान्मदान्महाराजतन्मवज्जायतेऽक्षयम्

तत्रतीर्थतपस्तप्त्वाद्यात्मिण्यामरीचयः । रमलेऽद्यापिलोकेषुस्येच्छतातुरतन्दन

तत्रस्थास्तत्र जानन्ति नरा भ्रान्तयद्दिग्भृता ।

शरीरम्यमिमाऽऽत्मानमक्षयं ज्योतिरक्षयम् ॥ ६ ॥

तत्र तीर्थतृणध्रेष्टुं दूर्वा नारायणी पुरा । अत्रापितपने घोरे तपोयावत्त्रिलोचनं

तत्र तीर्थं तु यः स्नात्वा तप्पयेत्पितृदेवताः ।

तस्य ते ह्यन्तशाब्दानि तूर्ति यान्ति पितामहाः ॥ ८ ॥

इति श्रीस्कान्द महापुराणे पञ्चाशान्तिमाहम्रगा महिताया पञ्चमेऽवन्तीषण्डे

स्वाषण्डे ककटेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम

सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३७॥

## अष्टत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

शक्रतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्पाण्डुपुत्र! शक्रतीर्थमनुत्तमम् । यत्रसिद्धोमहाभागो देवराजः शतक्रतुः  
गौतमेन पुरा शप्तं ज्ञात्वा देवाः सुरेश्वरम् । ब्रह्माद्यादेवताःसर्वंऋषयश्च तपोधनाः  
गौतमं प्रार्थयामासुर्वाक्यैः सानुनयैः शुभैः ।

गतराज्यं गतश्रीकं शक्रं प्रति मुनीश्वर !॥ ३ ॥

इन्द्रेणरहितंराज्यं कश्चित्कामयेद्द्विज ! देवोवामानवोवाऽपिपतत्तेविदितंप्रभो  
तस्यत्वं भगयुक्तस्य दयां कुरु द्विजोत्तम । गतश्चादर्शनंशक्रो दूषितःस्वेनपाप्मना  
देवानां वचनं श्रुत्वा गौतमो वेदवित्तमः । तथेति कृत्वा शक्रस्य चरंदातुं प्रचक्रमे  
एतद्गसहस्रं तु पुरा जातं शतक्रतो ! तल्लोचनसहस्रं तु मत्प्रसादाद्भविष्यति ॥७॥  
एवमुक्तःसहस्राक्षःप्रणम्यमुनिसत्तमम् । ब्राह्मणांस्तान्महाभागान्मर्मदांप्रत्यगात्ततः

स्नात्वा स विमले तोये संस्थाप्य त्रिपुरान्तकम् ।

जगाम त्रिदशावासं पूज्यमानोऽप्सरोगणैः ॥ ६ ॥

तत्र तीर्थे तु स्नात्वा पूजयेत्परमेश्वरम् । परदाराभिगमनान्मुच्यते पातकान्नरः ॥  
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽध्वन्तीखण्डे  
रेवाखण्डे शक्रतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनामाऽष्टत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३८॥

# एकोनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्याय

## सोमतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमाकण्डेय उवाच

ततो गच्छेन्महाराज सोमतीर्थमनुत्तमम् । यत्र सोमस्तपस्तप्त्यानक्षत्रपथमास्थि

तत्र तार्थे तु य स्नायादाद्यम्य विधिपूर्वकम् ।

रुनजाप्यो रविं ध्यायेत्तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ २ ॥

ऋग्वेदश्चतुर्वदाम्या सामवेदेन भारत । जपतो यत्फलं प्रोक्तं गायत्र्या ध्यात्वाऽनन्तफलं

तत्र तीर्थे तु यो भक्त्या ब्राह्मणान्भोजयेच्छुचि ।

तत्र सम्यग्विधानेन फोडि भवति भोजिता ॥ ४ ॥

पादुकोपान्ही छत्रं च खकम्बलचाजिन ।

यो दत्तं विप्रमुखाय तस्य तत्कोटिसम्मितम् ॥ ५ ॥

सहस्रतुमहस्राणामनृष्यायस्तु भोजयेत् । एकस्य मन्त्रयुक्तस्य करं नाहति योऽशी

ष्व तु भोजयेत्तत्र बहुषु च वेदपारगम् । शास्त्रान्तगमथाध्ययुं छन्दोगेषाममात्रिण

अग्निहोत्रमहस्रान्य यत्फलं प्राप्यते बुधैः । समतद्वेदविदुषा तीर्थे सोमस्य तत्फ

भोजयेद्य शतं तथा सहस्रं लभते नरः । एकस्य योगयुक्तस्य तत्फ

सन्निहोत्रेन्द्रियप्राप्तं यत्र यत्र वसेन्मुनिः । तत्र तत्र कुरुक्षेत्रं नैमिषं पुष्कराणि च

तस्मात्सर्वत्र येन प्रहणं च द्रक्ष्यते । सङ्क्रान्तौ च न्यतीपाते योगी भोज्यो विशफ

नन्यासं करते यन्तु तत्र तीर्थं युधिष्ठिरः । विमानेन महाभाग सयाति त्रिदिशः

सोमस्याऽनुषरो भूत्वा तेनैव सह मोदते ॥ १३ ॥

इति धाम्नाम्ने महापुराण एकाशीतिसाहस्रया सहिताया पञ्चमोऽध्यायः

रवाक्षण्डे सोमतीर्थमाहात्म्यवर्णननामैकोनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥

## चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

### नन्दाहदतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेन्महराज नन्दाहदमनुत्तम् । यत्र सिद्धा महाभागा नन्दादेवी वरप्रदा ॥  
महिषासुरे महाकाये पुरा देवभयङ्करे । शूलिन्याशूलभिन्नाङ्गे कृते दानवसत्तमे ॥  
येनैकादशरुद्राश्चह्यादित्याःसमरुद्राणाः । वसवोवायुना सार्द्धं चन्द्रादित्यौसुरेश्वर  
चलिना निर्जितायेनब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । सङ्ग्रामे सुमहायोरैकृते देवभयङ्करे ॥ ४

कृत्वा तत्कदनं धोरं नन्दा देवी सुरेश्वरी ।

यस्मात्स्नाता विशालाक्षी तेन नन्दाहदः स्मृतः ॥ ५ ॥

तत्रतीर्थेतुयःस्नात्वानन्दासुद्दिश्यभारत । ददातिदानंविप्रेभ्यःसोऽश्वमेधफलंलभेत्  
भैरवं शैव केदारं तथा रुद्रं महालयम् । नन्दाहदश्चतुर्थःस्यात्पञ्चमंभुविदुर्लभम्  
यहवस्तं नजानन्ति कामरागसमन्विताः । नर्मदायांहदं पुण्यं सर्वपातकनाशनम्  
नत्र तीर्थेतु यः स्नात्वानन्दां देवींप्रपूजयेत् । किंतस्यहिमवन्मध्यगमनेनप्रयोजनम्  
परमार्थमविशाय पर्यटन्ति तमोवृत्ताः । तेषां समागमे पार्थ श्रमएव हि केवलम्

पृथिव्यां सागरान्तायां स्नानदानेन यत्फलम् ।

तत्फलं समवाप्नोति स्नात्वा नन्दाहदे नृप ॥ ११ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे  
रेवाखण्डे नन्दाहदतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥

# एकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

तापेऽवरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

धीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेन्महीपाद तापेऽवरमनुजमम् । यत्रमा हरिणीमिन्द्रा व्याधमीतानरेऽवर  
जले प्रक्षिप्य गात्राणि ह्यन्तरिक्षं गता नु सा ।

व्याधो विस्मितचित्तान्नु तां मृगीमयलोका य ॥ २ ॥

चिमुच्य मशरं घ्रायं प्रारंभेतप उतमम् । दिव्यं पर्यमहश्चतु व्याधेनाऽऽचरितंतप  
धर्ताने नु तत काले पशितुष्टो महोऽवरः । धरं ब्रूहि महाव्याध यत्ते मनसि रोचते  
व्याध उवाच

यदि तुष्टोऽसि देवेश यदि देवो धरोमम । तव पार्श्वेऽमदादेव घामोमे प्रतिदीयताम्  
ऋषेः उवाच

एव भवतुते व्याधे' गच्छयाणाहक्षितोवर । देवदेपोमहादेवःशुभ्रान्तरधीयत  
गते चाऽऽशन देवे स्थापयित्वा महोऽवरम् ॥ ६ ॥

पूजयित्वा चिधानेत गतो व्याधस्ततो दियम् ।

तदाप्रभति तनाधे त्रिषु लोकेषु विधृतम् ॥ ७ ॥

व्याधानुतापसद्वात तापेऽवर्ममितिधृतम् । तत्रतीपतुयः श्राव्यासंपूजयतिशङ्करम्  
शिवशक्तमघाप्रानि मामुवाचमहेऽवर । येऽनाता नमदातोयेतीर्थे तापेऽवरे नराः  
तापत्रयचिमुनास्ते ताऽत्र कायापिशाखा ।

अश्रया य चतुर्दश्या कृतायायो पिशोरतः ।

श्रान समाशरेऽश्रियं मयपातकश्रास्तेयं ॥ ११ ॥

इति धीम्वान्त महापुराण ऋषीशान्तिराहस्ययो महितायां पञ्च उपनीमण्डे  
देवाण्डे तापेऽवरतापमाहात्म्यवर्णन नामैकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥

## द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

### रुक्मिणीतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेन्महाराज! रुक्मिणीतीर्थमुत्तमम् ।

यत्रैव स्नानमात्रेण रूपवान्सुभगो भवेत् ॥ १ ॥

अष्टम्यां चचतुर्दश्यां तृतीयायांविशेषतः । स्नानं समाचरेत्तत्र न चेह जायते पुनः

यःस्नात्वा रुक्मिणीतीर्थे दानं दद्यात्तु काञ्चनम् ।

तत्तीर्थस्य प्रभावेण शोकं नाप्नोति मानवः ॥ ३ ॥

युधिष्ठिर उवाच

तीर्थस्याऽस्यकथंजातोमहिमेद्वृद्धमुनीश्वर । रूपसौभाग्यद्वयेन तीर्थमेतद्व्रवीहिमे

मार्कण्डेय उवाच

कथयामि यथावृत्तमितिहासंपुरातनम् । कथितं पूर्वतो वृद्धैः पारम्पर्येण भारत !

तन्तेहं सम्प्रवक्ष्यामिशृणुष्वैकाग्रमानसः । नगरंकुण्डिनं नामभीष्मकोपरिपातिहि

हस्त्यश्वरथसम्पन्नो धनाढ्योऽतिप्रतापवान् ।

स्त्रीसहस्रस्य मध्यस्थः कुरुते राज्यमुत्तमम् ॥ ७ ॥

तस्य भार्या महादेवी प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ।

तस्यामुत्पादयामास पुत्रमेकं च रुक्मकम् ॥ ८ ॥

द्वितीया तनया जज्ञे रुक्मिणीनामनामतः ।

तदाऽशरीरिणी वाचां राजानं तमुवाच ह ॥ ९ ॥

चतुर्भुजाय दातव्याकन्धेयं भुवि भीष्मक ! एवं तद्वचनं श्रुत्वा जहर्ष प्रियया सह

ब्राह्मणैः सह विद्वद्भिः प्रविष्टःसूतिकागृहम् ।

स्वस्तिकं वाचयित्वाऽस्याश्चक्रे नामेति रुक्मिणी ॥ १६ ॥



यत्तु मुखानिःशोचन्मतासहमारत । ततःसा रश्मिणानामग्राहर्षे कीर्तिनातदा  
 तत साकालपयोयादृष्टया व्यजायत । पूर्वोक्तं चैव तद्वाक्प्रशरीरिण्युदीरितम्  
 स्मृत्वा स्मृत्वाऽप्य कृपतिभिन्तवामास भूपति ।

कर्म दया मया बाला भयिताकथनुमु ज्ञा ॥ १४ ॥

एतन्मिथन्त तावद्दयतात्पयतासमात् । मुन्यधोद्विपतिस्तत्र दम्धोः समागत  
 प्रविष्टो गतसङ्गतयत्र रात्रासर्भाप्सक । तं हृष्टायाऽऽगतगेहे पूजयामास भूपति  
 आसन्न विपुत्र स्त्रया समागत्यानियंशित । कुशलतप रात्रेन्द्र! दम्धोःधियायुत  
 पुण्याहमय सवातमन् त्वत्प्रशना सुक । कन्या मदीया राजेन्द्र! हृष्टययाव्यतायत  
 धनुमु नाय दातव्या घागुवाघाऽशरीरिणी ।

भाष्मकस्य वष धत्वा दम्धोःप्रवीरिदम् ॥ १६ ॥

धनुमु नामम सुतस्त्रिभुवःकपुचिधत । तस्येवदीयताकन्याशिशुपालस्यभीष्मक  
 तस्यतद्व्रत धत्वा दम्धोःस्य भूमिप । भीष्मकण ततोदत्ताशिशुपालायरश्मिणी  
 प्राग् ३ मङ्गल तत्र भीष्मकणयधिष्ठिर । त्रिभु दशान्तस्येवयेवमलि स्यगोत्रजा  
 त्रिपत्तिरस्तु त स्य समानसुपपात्रमम् ।

तत्रा यादयवशस्य त्रिको वत्शर्या ॥ २३ ॥

निमन्त्रिता समायाता कण्डिन भीष्मकस्य तु ।

भाष्मकेण यथाग्याय पूजिता ता यदूत्तर्मा ॥ २४ ॥

तत प्रणयसमय रश्मिणी काममोहिता ।

सखिभि सहिता याता पूवहिधाम्बिकावने ॥ २५ ॥

सात्पश्यन्तत्र उग्रश गोपयन्धर हरिम् । त हृष्टा मोहमापन्ना कायेत क्लृपीकृता  
 कशपोऽपि च ता हृष्टा सङ्कपणमुवाच ह । स्त्रीरक्षेप्रवरतात हतव्यमिति मे मति  
 कशवस्य वष धत्वा सङ्कपण उवाच ह ।

गच्छ हृण महायाहो हरीरत्नश्चाऽऽशु गृह्यताम् ॥ २६ ॥

अह च तव मार्गेण ह्यागमिष्यामि पृष्ठत । दानवाना ध सर्वेषा कुर्वंश्चकदन्महत्

सङ्कषणमतंप्राप्य केशवः केशिसूदनः । ययौ कन्यांगृहीत्वा तु रथमारोप्य सत्वरम्  
निर्गतः सहसा राजन्वेगेनैवाऽनिलो यथा ।

हाहाकारस्तदा जातो भीष्मकस्य पुरे महान् ॥ ३१ ॥

निर्गता दानवाः क्रुद्धा वेलाइवमहोदधेः । गर्जन्तः सायुधाः सर्वे ध्रावन्तोरथवर्त्मनि  
बलदेवं ततः प्राप्ता रथमार्गाऽनुगामिनम्

तेषां युद्धं बलस्याऽसीत्सर्वलोकक्षयङ्करम् ॥ ३२ ॥

यथा तारामये पूर्वं सङ्ग्रामे लोकविश्रुते ।

गदाहस्तो महाबाहुर्बलोक्येऽप्रतिमो बलः ॥ ३३ ॥

हलेनाऽऽकृष्य सहसा गदापातैरपातयत् । अशक्यो दानवैर्हन्तुं बलभद्रो महाबलः  
यमञ्ज दानवान्सर्वांस्तथौ गिरिरिवाऽचलः । तं दृष्ट्वा च बलं क्रुद्धं दुर्धर्षं त्रिदशैरपि

भीष्मपुत्रो महातेजा रुक्मीनाम महायशाः ।

नराणामतिशूराणामक्षौहिण्या समन्वितः ॥ ३७ ॥

गलभद्रमतिक्रम्य ततो युद्धे निराकरोत् । तद्युद्धं वञ्चयित्वा तु रथमार्गेण सत्वरम्  
केशवोऽपि तदा देवो रुक्मिण्या सहितो ययौ ।

चिन्ध्यं तु लङ्घयित्वाऽग्रे त्रैलोक्यगुरुरव्ययः ॥ ३६ ॥

नर्मदातटमापेदे यत्र सिद्धः पुरा पुनः । अजेयो येन सञ्जातस्तीर्थस्यास्यप्रभावतः  
एतस्मात्कारणात्तात योधनीपुरमुच्यते ।

रुक्मोऽपि दानवेन्द्रोऽसौ प्रातः स्थानमनुत्तमम् ॥ ४१ ॥

प्रत्युवाघाऽच्युतं क्रुद्धस्तिष्ठस्तिष्ठेति मा ब्रज ।

अद्य त्वां निशितैर्वाणैर्नेप्यामि यमसादनम् ॥ ४२ ॥

एवं परस्परं वीरौ जगर्जतुरुभावपि । तयोर्युद्धमभूद्धोरं तारंकाग्निजसन्निभम् ॥

चिक्षेपशरजालानिकेश्वं प्रतिदानवः । नाऽनुचिन्त्य शरांस्तस्यकेशवः केशिसूदनः

ततो रुक्मोऽथ सङ्क्रुद्धो गृहीत्वा धनुरुत्तमम् ।

सायकेनं सुतीक्ष्णेन तं विभेद तदोरसि ॥ ४५ ॥



यावद्वियान्तिलोकेषु महाभूतानि पञ्च च । नावत्तेदिचिमोदन्ते मद्भूतपरिपालकाः  
 यस्तुलोपयते मूढोदत्तं वः पृथिवीतले । नरकेतस्यवासःस्याद्यावदाभूतसम्प्लवम्  
 स्वदत्ता परदत्ता वा पालनीया वसुन्धरा ।

यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा फलम् ॥ ६४ ॥

स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेत् वसुन्धरान् ।

स विष्टायां कृमिभूत्वा पितृभिः सह मज्जति ॥ ६५ ॥

अन्यायेन हृता भूमिरन्यायेन च हारिता । हर्ताहारयिताचेवविष्टायांजायतेकृमिः  
 पष्टिवर्षसहस्राणि स्वर्गं तिष्ठति भूमिदः ।

आच्छेत्ता घानुमन्ता च तान्येव नरके वसेत् ॥ ६७ ॥

यानीह दत्तानि पुरा नरेन्द्रैर्दानानि धर्मार्थयशस्कराणि ।

निर्माल्यरूपप्रतिमानि तानि को नाम साधुः पुनराददाति ॥ ६८ ॥

एवं तान्पूजयित्वा तु सम्यङ् न्यायेन पाण्डव !

रुक्मिण्या विधिघत्पाणिं जग्राह मधुसूदनः ॥ ६९ ॥

मुशली च ततः सर्वाञ्जित्वा दानवपुङ्गवान् ।

स्वस्थानमगमत्तत्र कृत्वा कार्यं सुशोभनम् ॥ ७० ॥

प्रयातौद्धारवत्यां तौकृष्णसङ्कर्षणाद्युभौ । गच्छमानं तुतं दृष्ट्वा केशवंक्लेशनाशनम्  
 ब्राह्मणाः सत्यवन्तश्च निर्गताः शंसितव्रताः ।

आगच्छमानानंस्तौ वीक्ष्य रथमार्गेण ब्राह्मणान् ॥ ७२ ॥

मुहूर्त्तं तत्र विश्रम्यकेशवो वाक्पमब्रवीत् । किमागमनकार्यं वोब्रूतसर्वं द्विजोत्तमाः

कुर्वाणाः स्वीयकर्माणि ममकृत्स्यंतुतिष्ठते । देवस्यवचनं श्रुत्वामुनयोवाक्पमब्रुवन्  
 कल्पकोटिसहस्रेण सत्यभावात्तु वन्दितः ।

दुष्प्राप्योऽसि मनुष्याणां प्राप्तः किं त्यजसे हि नः ॥ ७५ ॥

ब्राह्मणानां वचःश्रुत्वा भगवानिदमब्रवीत् । मथुरायांद्वारवत्यांयोधनीपुर एव च  
 त्रिकालमागमिष्यामि सत्यं सत्यं पुनः पुनः ।

एव ते ब्राह्मणा धृत्या योधनीपुरमागताः ॥ ७७ ॥

अथतीर्थांस्त्रिभागेन प्रादुर्भावेतुमाधुरे । एतत्केचित्त सपै तीर्थस्योत्पत्तिकारणम्  
भूतमव्य भविष्यच्चर्त्तमान तथाऽपरम् । यद्भृत्यासर्वपापेभ्यो मुच्यतेनाऽत्रमशय  
तत्रतीर्थेतुय स्नात्वापूजयेद्बलशैशवी । तेन देवोजगद्भाता पूजितस्त्रिगुणात्मवान्  
उपवासीनरो भूत्वा यस्तु कुयात्प्रदक्षिणम् ।

मुच्यते सर्वपापेभ्यो नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ ८१ ॥

तत्र तीर्थे तु येषुक्षास्तान्पश्यन्वपियेनरा । तेऽपिपापे प्रमुच्यतेभ्रणहृत्यासमेरपि  
प्रातस्त्वयाय ये केचिपश्यन्ति बलशैशवी । तेन ते सदृशा स्युर्ये देवदेवेन चक्रिणा  
ते पूज्यास्ते नमस्कार्यास्तेषा जन्म सुवीचितम् ।

ये नमन्ति जगन्नाथ देव नारायण हरिम् ॥ ८४ ॥

तत्र तीर्थे तु यद्भान स्नान देवाघन रूप । तस्यमशय तस्य इत्येव शङ्करोऽर्वात्  
प्रविश्याप्री मृनाताघयत्फल्ममुदाहृतम् । तच्छृणुष्य नृपध्रेष्टु प्रोच्यमानमशेषत  
धिमानेनाऽक्यर्णेन किङ्किर्णाजालमालिना ।

आग्नेये भवते तत्र मोदते कालमीप्सितम् ॥ ८७ ॥

जने चैव मृनाता तु योधनीपुरमागत । धमन्तिवारणेलोके यावदाभूतमप्लवम्  
जनाशके मृनाता तु तत्र तीर्थे नराधिप ।

अनिर्वर्तिका गतिन पा नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ ८६ ॥

तत्र नाथ तु या दद्यात्कपिलादानमुत्तमम् ।

विधानेन तु सयुक्त शृणु तस्याऽपि यत्फलम् ॥ ९० ॥

तावन्तितस्यारामाणितत्प्रसूतेक्षभारत । तावन्तिदिविमोदन्तेसर्वकामे सुपूजिता  
यावन्ति रामाणि भवन्ति धेन्वास्तावन्ति वषाणि मर्हायते स ।

म्वगाच्च्युतधाऽपि तत्रखिलोवषां कुले समुत्पस्यति गोमता स

तत्र तीर्थे तु यो दद्याद्रूप्य काञ्चनमेव वा । काञ्चनेन धिमानेनविष्णुलोके मर्हायते  
तस्मिन्तीर्थे तु यो दद्यात्पादुके बलमेव च ।

दानस्याऽस्य प्रभावेण लभते स्वर्गमीप्सितम् ॥ ६४ ॥

ऋग्यजुः सामवेदानां पठनाद्यत्फलं भवेत् । तत्रतीर्थे तु राजेन्द्र गायत्र्या तत्फलं लभेत् ।  
प्रयागे यद्भवेत्पुण्यं गयायां च त्रिपुष्करे । कुरुक्षेत्रे तु राजेन्द्र राहुग्रस्ते दिवाकरे  
सोमेश्वरे च यत्पुण्यं सोमस्य ग्रहणे तथा । तत्फलं लभते तत्र स्नानमात्राच्च संशयः

द्वादश्यां तु नरः स्नात्वा नमस्कृत्य जनार्दनम् ।

उद्धृताः पितरस्तेन अवासं जन्मनः फलम् ॥ ६८ ॥

संक्रांतीष्वव्यतीपाते द्वादश्यां च विशेषतः । ब्राह्मणभोजयेदेकं कोटिर्भवति भोजिता  
पृथिव्यां यानि तीर्थानि ह्यासमुद्राणि पाण्डव !

तानि सर्वाणि तत्रैव द्वादश्यां पाण्डुनन्दन ॥ १०० ॥

अयं यान्ति च दानानि यज्ञहोमवलि क्रियाः । नक्षीयते महाराज तत्र तीर्थे तु यत्कृतम्  
यद्भूतं यद्द्विष्यन्न तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम् । कथितं ते मया सर्वं पृथग्भावेन भारत !  
इति श्रीस्कान्देश महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे  
रेवाखण्डे रुक्मिणीतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम द्विषत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

## त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

### योजनेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेन्महाराज योजनेश्वरमुत्तमम् । यत्र सिद्धौ पुरा कल्पेतरनारायणावृणी  
तत्रतीर्थेन पस्तप्त्वासङ्ग्रामे देवदानवैः । जयं प्राप्सौ महात्मानो नरनारायणावुभौ  
पुनस्त्रेतायुगे प्राप्ते तीर्थे रामलक्ष्मणौ । तत्रतीर्थे पुनः स्नात्वा रावणो दुर्जयो हतः  
पुनः पार्थ कलौ प्राप्ते तौ देवौ च लक्ष्मणौ । वसुदेवकुले जातौ दुष्करं कर्म चक्रतुः  
नरकं कालनेमिं च कंसं चाणूरमुष्टिकौ । शिशुपालं जरासन्धं जघ्नतुर्बलकेशवौ ॥



## चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

### द्वादशीतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेन्महाराजद्वादशीतीर्थमुत्तमम् । क्षरन्ति सर्वदानानि जपहोमबलिक्रियाः  
न क्षीयते तुराजेन्द्रवक्रतीर्थे तु यत्कृतम् । यद्भूतयद्भविष्यच्च तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम्  
कथितं तन्मया सर्वं पृथग्भावेन भारत ॥ ३ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे  
रेवाखण्डे द्वादशीतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

## पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

### शिवतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेद्द्वरापालां शिवतीर्थमनुत्तमम् । दर्शनाद्यस्य देवस्य मुच्यते सर्वकिल्बिषैः  
शिवतीर्थे तु यः स्नात्वा जितक्रोधो जितेन्द्रियः ।  
पूजयेत् महादेवं सोऽग्निष्टोमफलं लभेत् ॥ २ ॥  
तत्र तीर्थे तु यो भक्त्या सोपवासोऽर्चयेच्छिवम् ।  
अनिर्वर्तिका गतिस्तस्य खड्गलोकादसंशयम् ॥ ३ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे  
रेवाखण्डे शिवतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः





शुक्लाम्बरधरोनित्यंनियतःसजितेन्द्रियः । एककालंतुभुञ्जानो मासंतीर्थस्यसन्निधौ  
सुवर्णालङ्कृतानां तुकन्यानांशतदानजम् । फलमाप्नोति सम्पूर्णंपितृलोकैमहीयते  
पृथिव्यामासमुद्रायांमहाभोगपतिर्भवेत् । धनधान्यसमायुक्तोदाताभवतिधार्मिकः

उपवासी शुचिर्भूत्वा ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ।

अस्माहकं समासाद्य यस्तु प्राणान्परित्यजेत् ॥ १६ ॥

कोटिवर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते । ततःस्वर्गात्परिभ्रष्टः क्षीणकर्मादिवश्च्युतः  
सुवर्णमणिमुक्ताढ्यो कुलेजायेत रूपवान् । कृत्वाऽभिपेकविधिना हयमेधफलंलभेत्  
धनाढ्यो रूपवान्दक्षोदाताभवतिधार्मिकः । सतुर्वेदेषुयत्पुण्यासत्यवादिपुयत्फलम्  
तत्फलं लभते नूनं तत्र तीर्थेऽभिपेचनात् ।

तीर्थानां परमं तीर्थं निर्मितं शम्भुना पुरा ॥ २० ॥

हृदयेशः स्वयं विष्णुर्जपेद्वेचं महेश्वरम् । गन्धर्वाप्सरसश्चैव मरुतो मारुतास्तथा  
विश्वेदेवाश्चपितरःसचन्द्राःसदिवाकराः । मरीचिरऽयङ्गिरसौपुलस्त्यःपुलहःऋतुः  
प्रचेताश्च वसिष्ठश्च भृगुर्नारद एव च । च्यवनो गालवश्चैव वामदेवो महामुनिः  
वालखिल्याश्च गन्धारास्तृणविन्दुश्च जाजलिः ।

उद्दालकश्चर्ष्यशृङ्गो वसिष्ठश्च सनन्दनः ॥ २४ ॥

शुक्रश्चैव भरद्वाजो वात्स्यो वात्स्यायनस्तथा ।

अगस्तिर्मित्रावरुणौ विश्वामित्रो मुनीश्वरः ॥ २५ ॥

गौतमश्च पुलस्त्यश्च पौलस्त्यः पुलहः ऋतुः ।

सनातनस्तु कपिलो वह्निः पञ्चशिखस्तथा ॥ २६ ॥

अन्येऽपि बहवस्तत्रमुनयःशंसितव्रताः । क्रीडन्ति देवताःसर्व्वंऋषयःसतपोधनाः  
मनुष्याश्चैव योगीन्द्राः पितरः सपितामहाः ।

अस्माहकेऽत्र तिष्ठन्ति सर्वं एव न संशयः ॥ २८ ॥

पितरः पितामहाश्चैवतथैवप्रपितामहाः । येषांदत्तमुपस्थायिसुदृढंवाऽपिटुष्कृतम्  
अक्षयं तत्र तत्सर्वं यत्कृतं योधनीपुरे । मातरं पितरं त्यक्त्वा सर्व्वबन्धुसुहज्जनात्

पट्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

अस्माहकतीर्थचतुष्टयमाहान्म्यर्षणम्

मार्कण्डेय उवाच

अस्माहक ततो गच्छेत्पितृतीर्थमनुत्तमम् । प्रेतत्वाद्यत्रमुच्यन्ते पिण्डेर्नेत्रनपूर्वजा  
युधिष्ठिर उवाच

अस्माहकस्यमाहात्म्यं कथयन्मममानव । स्नानदानैतयत्पुण्यतथापिण्डोदकेनच  
श्रीमार्कण्डेय उवाच

पुरा कल्पे नृपक्षेत्रे ऋषिवेषसमागमे । प्रश्नं पृष्टो मया तात तथा त्वमनुपृच्छसि  
एकत्रसागरा सप्तसप्रयागा सपुष्करा । नास्यसाम्यं लभन्ते तेनात्रकार्याविचारणा  
सोमनाथ तु विद्यात यत्सोमेन प्रतिष्ठितम् । तत्र सोमग्रहेपुण्यतत्पुण्यलभने नर  
मासान्ते पितरो नणा वीक्षन्ते सन्तर्ति स्वकाम् ।

कश्चिद्स्मात्कूलेऽस्माकं पिण्डमत्र प्रान्यति ॥ ६ ॥

प्रपितामहास्तथादिन्या श्रुतिरथा सनातनी ।

एव ब्रुवन्ति देवाश्च ऋषयः स तपोधना ॥ ७ ॥

सृष्टिपिण्डोदकेनैव शृणु पार्षितं यत्फलम् ।

द्वादशाब्दानि राजेन्द्र योग भुक्त्वा सुशोभनम् ॥ ८ ॥

युगेयुगेमहाराज अस्माहकेपितामहा । सर्वदा हृष्यत्येकस्मिन्भागच्छन्तस्वगोत्रञ्च  
भविष्यति किमस्माकममावास्याप्यमाहके ।

स्नान दान ये कुयुः पितृणां तिलार्पणम् ॥ १० ॥

ते स्वपापविनिर्मुक्ता सर्वान्कामंल्लभन्ति वै ।

जन्मभ्येऽत्र भूपालं भग्नित्तीर्थं च तिष्ठति ॥ ११ ॥

दशानात्तस्यनीधस्य पापराशिर्विधीयते । स्नानमात्रेण राजेन्द्र ब्रह्महत्या व्यपोहति

शुक्लाम्बरधरो नित्यं नियतः सजितेन्द्रियः । एककालं तु भुञ्जानो मासं तीर्थस्य सन्निधौ  
सुवर्णालङ्कृतानां तु कन्यानां शतदानजम् । फलमाप्नोति सम्पूर्णपितृलोके महीयते  
पृथिव्यामासमुद्रायां महाभोगपतिर्भवेत् । धनधान्यसमायुक्तो दाता भवति धार्मिकः

उपवासी शुचिभूत्वा ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ।

अस्माहकं समासाद्य यस्तु प्राणान्परित्यजेत् ॥ १६ ॥

कोटिवर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते । ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टः क्षीणकर्मादिवश्च्युतः  
सुवर्णमणिमुक्ताढ्ये कुले जायेत रूपवान् । कृत्वाऽभिपेकविधिना हयमेधफलं भेत्  
धनाढ्यो रूपवान्क्षोदाता भवति धार्मिकः । चतुर्वेदेषु यत्पुण्यं सत्यवादिषु यत्फलम्  
तत्फलं लभते नूनं तत्र तीर्थेऽभिपेचनात् ।

तीर्थानां परमं तीर्थं निर्मितं शम्भुना पुरा ॥ २० ॥

द्वयेशः स्वयं विष्णुर्जपेद्वैवं महेश्वरम् । गन्धर्वाप्सरसश्चैव मरुतो मारुतास्तथा  
वेश्वेदेवाश्च पितरः सचन्द्राः सदिवाकराः । मरीचिरयङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः  
त्वेताश्च वसिष्ठश्च भृगुर्नारद एव च । ज्यवनो गालघश्चैव वामदेवो महामुनिः  
वालखिल्याश्च गन्धारास्तृणविन्दुश्च जाजलिः ।

उद्दालकश्चर्ष्यशृङ्गो वसिष्ठश्च सनन्दनः ॥ २४ ॥

शुकश्चैव भरद्वाजो वात्स्यो वात्स्यायनस्तथा ।

अगस्तिर्मित्रावरुणौ विश्वामित्रो मुनीश्वरः ॥ २५ ॥

गौतमश्च पुलस्त्यश्च पौलस्त्यः पुलहः क्रतुः ।

सनातनस्तु कपिलो वह्निः पञ्चशिखस्तथा ॥ २६ ॥

अन्येऽपि बहवस्तत्र मुनयः शंसितव्रताः । क्रीडन्ति देवताः सर्व्वं ऋषयः सतपोधनाः  
मनुष्याश्चैव योगीन्द्राः पितरः सपितामहाः ।

अस्माहकेऽत्र तिष्ठन्ति सर्व एव न संशयः ॥ २८ ॥

पितरः पितामहाश्चैव तथैव प्रपितामहाः । येषां दत्तमुपस्थायिसुकृतं वाऽपि दुष्कृतम्  
अक्षयं तत्र तत्सर्वं यत्कृतं योधनीपुरे । मातरं पितरं त्यक्त्वा सर्व्ववन्धुसुहृज्जनात्

धन धान्यप्रियांशुनास्तथादेहं नृपोत्तम । गच्छनेषायुभूतस्तु शुभाशुभसमन्वित  
सदृश्यं सर्वभूतानां परमात्मा महत्तर । शुभाऽशुभगतिं प्राप्नोति कर्मणास्त्वेतपाशिव  
शुधिष्ठिर उवाच

शुभाशुभ न बन्धूना जायते केन हेतुना । एकं प्रसयते जन्तुरेकएव प्रलीयते ॥

एको हि भुङ्क्ते सुहृतेभेकमेव हि दुष्कृतम् ॥ ३४ ॥

मार्कण्डेय उवाच

एव त्वयोक्तो नृपते महाप्रश्न स्मृतो मया ॥ ३५ ॥

पितामहमुखोद्गीतं ध्रुव ने कथयाम्यहम् । यन्मेपितामहात्पूर्वं चिन्तातभृदिमसदि  
न माता न पिता बन्धु कस्यचिन्न सुदुत्कचित् ।

कस्य न ज्ञायते रूपं धायुभूतस्य देहिन ॥ ३७ ॥

यद्येव न भवेत्तात लोकेऽन नरोऽहम् । अमर्याद् भवेन्नून चित्तशक्ति क्षराघरम् ॥

एव ज्ञात्वा पुरा राजसमस्तैर्लोककनृभिः ।

मर्यादा स्थापिता लोके यथा धर्मो न नश्यति ॥ ३६ ॥

धर्मो तत्रे मनुष्याणामधर्मोऽभिभवेत्पुन । तत स्वधर्मक्षलनात्तत्रके गमन ध्रुयम् ॥

लोको निरङ्कुश सर्वो मयादालङ्घने रत ।

मयादा स्थापिता तेन शास्त्र वीक्ष्य महर्षिभिः ॥ ४१ ॥

स्नानं दान जपो होमः स्थाप्यायो देवतार्चनम् ।

पिण्डोदकप्रदानं च तर्पणाऽतिधिपूजनम् ॥ ४२ ॥

पितरः पितामहाश्चैव तर्पय प्रपितामहा ।

त्रयो दवाः स्मृतास्तातः ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा ॥ ४३ ॥

पूजिते पूजिता सर्वं तथा मातामहास्त्रय ।

तस्मात्स्वप्रयत्नेन धृतिस्मृत्युदित्धर्मं मनस्ताऽपिनल्लुप्येत् ॥ ४४ ॥

धर्मं समाघरन्नि यथापाशेन न लिप्यते । धृतिस्मृत्युदित्धर्मं मनस्ताऽपिनल्लुप्येत्

इह लोके परं चैव यदीच्छेच्छुभ्य आत्मनः ।

पितापुत्रीं सदाप्येकौ विग्याद्द्विविधमिवोद्भृता ॥ ४३ ॥

विभक्तौ वाऽविभक्तौ वा श्रुतिस्मृत्यर्थतस्तथा ।

उद्धरेदात्मनात्मानमात्मानमवसादयेत् ॥ ४७ ॥

पिण्डोदकप्रदानाभ्यामृतेपार्थ न संशयः । एवं जारवाप्ररनेनपिण्डोदकप्रदोभवेत्  
आयुर्धर्मोयशस्नेजःसन्ततिश्चैवचर्द्धते । पृथिव्यांसागरान्तायांपितृक्षेत्राणियानिघ

तानि ते सम्प्रवक्ष्यामि येषु दत्तं महाफलम् ।

गयायां पुष्करे ज्येष्ठे प्रयागे नैमिषे तथा ॥ ५० ॥

सन्निहत्यां कुरुक्षेत्रे प्रभासे कुरुदन्दन ! । पिण्डोदकप्रदानेन यत्फलं कथितं त्रुषैः ॥

अस्माहके तदाऽऽप्नोति नर्मदायां न संशयः । तत्र ब्रह्मामुरारिश्च रुद्रश्चउमया सह

इन्द्राद्या देवताः सर्वे पितरोमुनयस्तथा । सागराः सरितश्चैवपर्वताश्चवलाहकाः

तेष्टन्तिपितरः सर्वे सर्वतीर्याधिकंततः । स्थिता ब्रह्मशिलातत्रगजकुम्भनिभानृप

कलौ न दृश्या भवति प्रधानं यद्गयाशिरः ।

वैशाखे मासि सम्प्राप्तेऽमावास्यां नृपोत्तम ! ॥ ५५ ॥

व्याप्य सा तिष्ठते तीर्थं गजकुम्भनिभा शिला ।

तच्च गव्यूतिमात्रं हि तीर्थं ततः प्रचक्षते ॥ ५६ ॥

तस्मिन्दिनेतत्रगत्वायस्तुश्राद्धप्रदो भवेत् । पितृणामक्षयात्सिर्जायते शतवार्दिकी

अन्यस्यामप्यमावास्यां यः स्नात्वा विजितेन्द्रियः ।

करोति मनुजः श्राद्धं विधिवन्मन्त्रसंयुतम् ॥ ५८ ॥

तस्य पुण्यफलं यत्स्यात्तच्छृणुष्व नराधिप ! ।

अग्निष्टोमाश्वमेधाभ्यां वाजपेयस्य यत्फलम् ॥ ५९ ॥

तत्फलं समवाप्नोति यथा मे शङ्करोऽब्रवीत् ।

रौरवादिषु सर्वेषु नरकेषु व्यवस्थिताः ॥ ६० ॥

पिता पितामहांद्याश्च पितृके मातृके तथा । पिण्डोदकेन चैकेन तर्पणेन विशेषतः

क्रीडन्ति पितृलोकस्था यावदाभूतेसम्प्लवम् ।

ये कर्मस्था विकर्मस्था ये जाताः प्रेतकल्मसाः ॥ ६२ ॥

पिण्डेनेकेन मुच्यन्ते तेऽपि तत्र न सशयः ।

अस्माहके शिला दिव्या तिष्ठते गजसन्निभा ॥ ६३ ॥

ब्रह्मणा निर्मिता पूर्वं सर्वपापक्षयद्वारी । उपयस्यायधान्याय पितृनुद्दिश्य भारत

दक्षिणाग्रेषु दर्भेषु दद्यात्पिण्डान्विषक्षणः ।

भूमौ घात्रेण सिद्धेन धाद् कृत्वा यथाविधि ॥ ६५ ॥

धाद्भिभ्यो घस्रयुग्मानि छत्रोपानत्कमण्डलुः ।

दक्षिणा विविधा देवाः पितृनुद्दिश्य भारत ॥ ६६ ॥

यो ददाति द्विजश्रेष्ठः तस्य पुण्यफलं तृणुः । तस्य ते द्वादशाब्दानितृत्तियान्ति न सशयः

अस्माहके महाराज पितरश्च पितामहाः ।

वायुभृता निरीक्षन्ते आगच्छन्तं स्वगोत्रजम् ॥ ६८ ॥

अत्र नीर्थे सुतोऽभ्येत्य स्नात्वा तोयं प्रदास्यति ।

धाद् वा पिण्डदानं वा तेन यास्यामि सद्गतिम् ॥ ६९ ॥

स्नानेनैतुयेके जिज्ञासन्ते वरविष्णुः । प्रीणयेन्नरकस्थास्तुतेः पितृणां तत्र सशयः

वेशोदग्निदघस्तस्य ये चाऽन्ये लेपमाजिनः ।

तप्यन्त्यनग्निमस्कारा ये मृताः स्युः स्वगोत्रजाः ॥ ७१ ॥

तत्र तार्थे तु ये केचिच्छाद् कृत्वो विधानतः । नरकादुद्धरन्त्याशु जपन्तः पितृसहिताम्

घनस्यतिगने सोमि यदा सोमदिनमवेत् । अक्षयाह्वयते लोकान्पिण्डेनेकेन मानघ

अक्षयं तत्र वै सर्वं जायते नाऽत्र संशयः ।

नरकादुद्धरन्त्याशु जपन्ते पितृसहिताम् ॥ ७४ ॥

तस्मिंस्तीर्थे त्वमावास्या पितृनुद्दिश्य भारत ।

नीलं सवाङ्गसम्पूर्णं गोमिऽपिच्यं समुत्सृजेत् ॥ ७५ ॥

तस्य पुण्यफलं वक्तुं न तु वाचस्पति क्षमः । अस्माहकेनैव शोत्सर्गाद्यत्पुण्यसमवाप्यते

तव शुश्रूषणान्तर्यं तत्र वक्ष्यामि भारत ।

रौरवादिषु ये किञ्चित्पच्यन्ते तस्य पूर्वजाः ॥ ७७ ॥

वृषोत्सर्गेण तान्सर्वांस्तारयेदेकविंशतिम् ।

लोहितो यस्तु घर्णेन मुखे पुच्छे च पाण्डुरः ॥ ७८ ॥

पिङ्गः खुरविपाणाभ्यां स नीलो वृष उच्यते ।

यस्तु सर्वाङ्गपिङ्गश्च श्वेतः पुच्छखुरेषु च ॥ ७९ ॥

स पिङ्गो वृष इत्याहुः पितृणां प्रीतिवर्धनः । पारावतसवर्णश्चललाटेतिलकोभवेत्  
तं वृषं वम्रमित्याहुः पूर्णं सर्वाङ्गशोभनम् । सर्वाङ्गेष्वेकवर्णोऽयःपिङ्गःपुच्छखुरेषु च  
खुरपिङ्गं तमित्याहुः पितृणां सद्गतिप्रदम् । नीलं सर्वशरीरेण स्वारक्तनयनं दृढम्  
तमेवनीलमित्याहुर्नीलःपञ्चविधःस्मृतः । यस्तु वैश्यगृहेजातः सर्वनीलो विशिष्यते  
न बाह्येद्गृहे जातं घत्सकं तु कदाचन । तेनैवच वृषोत्सर्गे पितृणामनृणो भवेत्

जातं तु स्वगृहे घत्सं द्विजन्मा यस्तु-बाह्येत् ।

पतन्ति पितरस्तस्य ब्रह्मलोकगता अपि ॥ ८५ ॥

यथा यथा हि पिवति पीत्वा धूनाति मस्तकम् ।

पिवन्पितृन्प्रीणयति नरकादुद्धरेद्गुणम् ॥ ८६ ॥

यथा पुच्छाभिघातेन स्कन्धं गच्छन्ति विन्दवः ।

नरकादुद्धरन्त्याशु पतितान्गोत्रिणस्तथा ॥ ८७ ॥

गर्जन्प्रावृषि काले तु विपाणाभ्यां भुवं लिखन् ।

खुरेभ्यो या मृदुद्भूता तथा सम्प्रीणयेद्दृशीन् ॥ ८८ ॥

पिवन्पितृन्प्रीणयते खादनोल्लेखने सुरान् ।

गर्जन्पिमनुष्यांश्च धर्मरूपो हि धर्मज ! ॥ ८९ ॥

भूतैर्वापि पिशाचैर्वा घातुर्थिकज्वरेण वा ।

गृहीतोऽस्माहकं गच्छेत्सर्वेषामाधिनाशनम् ॥ ९० ॥

स्नात्वा तु विमले तोये दर्मग्रन्थि निवन्धयेत् ।

मस्तके बाहुभूले वा नाभ्यां वा गलकेऽपि वा ॥ ९१ ॥



गन्वा देवसमीपंघ प्रादक्षिण्येनकेशयम् । तत समुच्चरन्मन्द्रगायत्र्या धायवैष्णवम्  
 नारायणं शरण्येशं सघदेउनमन्वृतम् । नमो यन्नाङ्गसमृत सर्वध्यापिभ्रमोऽस्तु ते  
 नमो नमस्ते देवेश पद्मगम सनातन । दामोदर जयानन्त रक्ष मां शरणागतम् ॥  
 त्व कर्त्ता त्वंघहन्नाथ जगत्सस्मिधराचरः । त्वंवाग्यमिभृतानिभुवन पयिभर्षि घ  
 प्रमाद देवदेवश मुप्रमङ्ग प्रथोधय । त्वद्भयाननिरतो नित्यं त्वद्गतिपरमो हरे ॥  
 इति स्तुतो मयादेव प्रमाद कुर्मैऽच्युत । मांरक्षरक्षपापेभ्यस्त्रायस्वशरणागतम्  
 एव स्तुत्वा घ देवेशदानयान्तकरहरिम् । पुनरुनेनवैस्नात्वाततोविप्रास्तुभोजयेत्  
 वेदोर्नेन विधानेन स्नान कृत्वा यथाविधि ।

पिण्डनिवपण कृत्वा घाशयेत्स्म्यस्तिफ तत ॥ ६६ ॥

एव स्तुत्वा घ देवेशदानयान्तकरहरिम् । पुनरुनेनवैस्नात्वाततोविप्रास्तुभोजयेत्  
 वेदोर्नेनविधानेनस्नानकृत्वायथाविधि । एवतान्वाघयित्वातुततोविप्रान्विसनयेत्  
 यत्प्रोचरित किञ्चिन्नद्धिप्रभ्यो नियेदयेत् ।

तत्र ताथ नर स्नात्वा नारी या भक्तितपसा ॥

शक्तितो दक्षिणा दद्यात्कृत्वा धाद् यथाविधि ॥ १०२ ॥

तत्रतावनरो याघ स्नापयेद्विधिपूजकम् । क्षीरेणमधुनावापिदध्नाघाशीतवारिणा  
 ताचत्पुष्करपात्रपु पित्रन्तिपितरोनलम् । भयने विपुवे घैव युगादौ सूर्यमङ्कमे  
 पुष्पे सपूत्रपद्मशर्नरेद्यय प्रदापयेत् । सोऽभ्यमेधस्ययज्ञस्य फल प्राप्नोतिपुष्कलम्  
 तत्र तीथ तु यो गजन्तुयग्रहणमाचरेत् । सूपतेजोनिर्भयार्नर्विष्णुलोके महीयते ॥  
 तत्र ताथतु य धाद्कपितृभ्य सप्रयच्छति । सत्पुत्रेणचनेनैवमप्राप्त जन्मनफलम्  
 इति श्रुत्वा ततोद्वा सबशक्रपुरोगमा । ब्रह्मविष्णुमहेशाधस्थापयाश्चक्रुरीश्वरम्  
 सर्वलोगोपशमन सबपातकनाशनम् । यस्तु सबत्सरपूर्णममावास्या तु भावित  
 पितृभ्य पिण्डदान घ कुर्यादम्माहके नृप । त्रिपुष्करेगयायाचप्रभासेनेमिपे तथा  
 यत्पुण्यं धाद्कत पातदिहैवभवेद्बुधुयम् । तिलोदककुशैर्मिथं योद्वाद्दक्षिणामुख  
 मन्वादी घ युगादौ घ व्यतीपाते दिनक्षये ।

यो दद्यात्पितृमातृभ्यः सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥ ११२ ॥

अस्माहके नरो यस्तु स्नात्वासम्पूजयेद्भ्रूमि ।

ब्रह्माणं शङ्करं भक्त्या कुर्याज्जागरणक्रियाम् ॥ ११३ ॥

सर्वपापविनिर्मुक्तः शक्रातिथ्यमवाप्नुयात् ।

तत्र तीर्थं नरः स्नात्वा यः पश्यति जनार्दनम् ॥ ११४ ॥

विशेषविधिनाऽभ्यर्च्य प्रणम्य न्नपुनःपुनः । सपुत्रेणघतेनैव पितृणांविहितागतिः

एकमूर्तिस्त्रयो देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।

सत्कार्यकारणोपेताः सुसूक्ष्माः सुमहाफलाः ॥ ११६ ॥

एतत्ते कथितं राजन्महापातकनाशनम् ।

अस्माहकस्य माहात्म्यं किमन्यत्परिपृच्छसि ॥ ११७ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे

रेवाखण्डेऽस्माहकतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नामप्रद्वत्त्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥

## सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

### सिद्धेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेन्महीपाल सिद्धेश्वरमनुत्तमम् । नर्मदादक्षिणे कूले तीर्थं परमशोभनम्

तत्र तीर्थं तु यः स्नात्वा पूजयेद् वृषभध्वजम् ।

सर्वपापविनिर्मुक्तो गतिं यात्यश्वमेधिनाम् ॥ २ ॥

तत्रतीर्थं तु यः स्नात्वाश्राद्धं कुर्यात्प्रयत्नतः । पितृणांप्रीणनार्थायसर्वं तेन कृतंभवेत्

तत्र तीर्थं मृतानां तुजन्तूनां नृपसत्तम । गर्भवासे मतिस्तेषां न जायेत कदाचन

गर्भवामो हिदु खाय नसुखायकदाघन । तृतीयवारिणा स्नानुर्न पुनर्भवमभय  
इति श्रीस्कन्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्या स हिताया पञ्चमेऽध्वन्तीखण्डे  
रेखाखण्डे सिद्धेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णन नाम सप्तषण्णवारिंशदधिकशततमोऽध्याय

## अष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

### मङ्गलेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

धीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेन्महीपाल तीर्थमगारकशिषम् । उच्चरे नर्मदाकूले सर्वपापक्षयकरम्  
घनुर्ध्यंगारकदिने सकल्प्यवृत्तनिश्चय । स्नायादस्त गने सूर्ये मध्योपासनतन्पर  
पूजरेहोहित भक्त्या गन्धमालयविभूषणै ।

सस्थाप्यस्यडिले देव रक्तचन्दनसञ्चितम् ॥ ३ ॥

अङ्गारकायेति नम कर्णिकायाप्रपूजयेत् । कुजायभूमिपुत्राय रक्तागाय सुवाससे  
हरकोपोद्भवायेति स्वैदजायाऽतिवाहवे । सर्वकामप्रदायेति पूर्वादिपु दलेषु च  
एव मपूज्य विधिचद्दद्यादर्घ्यविधानत । भूमिपुत्र महावीर्यं स्वैदोद्भव पिनाकिन  
अङ्गारकमहातेजा लोहिताङ्ग नमोऽस्तु ते ।

करक वारिसयुक्त शालितन्दुलपूरितम् ॥ ७ ॥

सहिरण्य सपत्न्य च मोदकोपरि संस्थितम् ।

ब्राह्मणाय निवेद्य नत्कुजो मे प्रीयतामिति ॥ ८ ॥

अचन्दत्वाविधानेनरक्तचन्दनवारिणा । रक्तपुष्पसमाकीर्णं तिलतन्दुलमिधितम्  
वृत्वा ताम्रमये पात्रे मण्डलेवर्तुलेशुभे । वृत्वा शिरसितन्पात्र जानुभ्याधरणीगतं  
मन्त्रपूत महाभाग दद्यादर्घ्यविषक्षण । ततोभुञ्जीत मौनेन क्षारतिलाम्लसञ्जितम्  
स्निग्ध मृदुसमधुरमात्मन श्रेय इच्छता । एवं घनुर्ध्यं सप्राप्ते घनुर्ध्यंगारके नृप

सौचर्णं कारयेद्देवं यथाशक्ति सुरूपिणम् । स्थापयेत्ताम्रके पात्रे गुडपीठसमन्विते  
गन्धपुष्पादिभिर्देवं पूजयेद् गुडसंस्थितम् ।

ईशान्यां स्थापयेद्देवं गुडतयसमन्वितम् ॥ १४ ॥

कासारैर्णतथाग्नेय्यां स्थापयेत्करकं परम् । रक्ततंदुलंसंमिश्रंनैर्ऋत्यांवायुगोघरे  
स्थापयेन्मोदकैः सार्धं घतुर्थंकरकंबुध्रः । सूत्रेण वेष्टितग्रीवं गन्धमाल्यैरलङ्कृतम्  
शङ्खतूर्यनिनादेन जयशब्दादिमङ्गलैः । रक्ताम्बरधरं विप्रं रक्तमाल्यानुलेपनम् ॥  
वेदिमध्यगतं वाऽपि महदासनसंस्थितम् । सुरूपं सुभगं शान्तं सर्वभूतहिते रतम्  
वेदविद्याव्रतज्ञातं सर्वशास्त्रविशारदम् । पूजयित्वायथान्यायंवाघयेत्पाण्डुनन्दन  
रक्तां गां च ततो दद्याद्रक्तेनानटुहा सह । प्रीयतां भूमिजोदेवः सर्वदैवतपूजितः ॥

विप्रं प्रदक्षिणीकृत्य पत्नीपुत्रसमन्वितः ।

पितृमातृमुहृद्दृष्ट्वाहं क्षमाप्य च विसर्जयेत् ॥ २१ ॥

एवंकृतस्यतस्याऽथ तस्मिन्तीर्थे विशेषतः । यत्पुण्यफलमुद्दिष्टं तत्ते सर्ववदाम्यहम्  
सप्त जन्मानि राजेन्द्र! सुरूपः सुभगो भवेत् ।

तीर्थस्याऽस्य प्रभावेन नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ २३ ॥

अकामो वा सकामोचातत्र तीर्थे मृतो नरः । अङ्गारकपुरं याति देवगन्धर्वपूजितः  
उपभुज्य यथान्यायं दिव्यान्भोगाननुत्तमान् ।

इह मानुष्यलोके वै राजा भवति धार्मिकः ॥ २५ ॥

सुरूपः सुभगश्चैव सर्वव्याधिविचर्जितः । जीवेद्दशतं साप्रं सर्वलोकनमस्कृतः ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे  
रयागण्डे मङ्गलेऽवरतीर्थमाहात्म्यवर्णननामाऽष्टाधत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

## एकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

लिङ्गवाराहतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

धीमार्कण्डेय उवाच

तस्यैवाऽनन्तरं तीर्थं लिङ्गेभ्यरमिनिधुतम् । दशानाहृषदेवस्त्वयत्र पापं प्रणश्यति  
 गत्या मुञ्चद्वनं घोषंदावानोमुधिष्ठिर । धाराहं रूपमास्त्राय नमंदायत्ययस्थित  
 तत्रतीर्थं तु य एतान् श्रव्यादेवतमस्त्विति । न मुच्यन्ते कृपधेष्टे महापापे पुरातनैः ।  
 द्वादश्यां कृष्णपक्षस्य शुक्लैश्वसमुपोषित । गन्धमा-पैजगन्नाग पूजयेत्पाण्डुनदन  
 प्राह्वणांश्च महाभाग दानसंमानभोजनैः । पूजयेत्पश्या मषत्यातस्यपुण्यफलं गणु  
 सप्रयाजिष्यते जंतुलभते द्वादशाब्दकैः । प्राह्वणाग्भोजयन्तप्रतदेव त्मते पश्यन्  
 तप्यविरथा पितृन्देवान्स्नात्वा तद्गतमातसः ।

जपेद्द्विंशत्यानामानि देवस्य पुरतः स्थित ॥ ७ ॥

मानिमानि निराहारोद्गादश्यां कुरन्तन्दन । धेरायं पूजयेत्स्त्रियमानिमागशिर्वेवुध  
 पोषेनारायणदेयंमाघमासेतुमाघयम् । गोविन्दंस्तान्गुनेमानिषिणु खैत्रेसमन्वयेत्  
 वेशावेमभुहन्तारंश्रेष्ठेदेव त्रिविक्रमम् । धामनतु तथाऽऽगढे धापणे श्रीधरस्मरेत्  
 हृदीशेशं भाद्रपदेपञ्चमं तथाऽऽश्विने । दामोदरं कार्तिके तु श्रीसंप्रदायसीदति  
 पाचित्रंमात्रमपापंश्वमजंयत्पुराकृतम् । तत्रश्रयति न सर्वेहो मासनामानुर्कीर्त्तनात्  
 स्वयं विशुद्धं मततमुन्मिश्रमिषंस्तथा । शीघ्रशरणं भुञ्जानोमन्प्रदीनसमुद्भिरेत्  
 परमापद्गतस्याऽपि जन्तोरेषा प्रतिक्रिया ।

यन्मासाधिपतेर्विष्णोर्मासनामानुर्कीर्त्तनम् ॥ १४ ॥

ता निशास्ते च दिवसास्ते मासास्ते च वत्सरा ।

नराणां सप्तधा येषु चिन्तितो भगवान्हरि ॥ १५ ॥

परमापद्गतस्याऽपि यस्य देवो जनाङ्गन ।

नाऽवसर्पति हृत्पद्मात्स योगी नाऽत्र संशयः ॥ १६ ॥

ते भाग्यहीना मनुजाः सुशोच्यास्ते भूमिभाराय कृतावताराः ।

अचेतनास्ते पशुभिः समाना ये भक्तिहीना भगवत्यनन्ते ॥ १७ ॥

ते पूर्णकार्याः पुरुषाः पृथिव्यां ते स्वाङ्गपाताद्बुचनं पुनन्ति ।

विचक्षणा विश्वविभूषणास्ते ये भक्तियुक्ता भगवत्यनन्ते ॥ १८ ॥

सपच सुकृती तेन लब्धं जन्मतरोःफलम् । अस्तेवचसिकाये च यस्यदेवोजनार्दनः

एतत्तीर्थवरं पुण्यंलिङ्गोयत्र जनार्दनः । वञ्चितवारिपून्संख्ये क्रोडोभूत्वासनातनः

उपप्लवे चन्द्रमसो रवेश्च योह्यष्टकानामयनद्वये च ।

पानीयमप्यत्र तिलैर्विमिश्रं दद्यात्पितृभ्यः प्रयतो मनुष्यः ॥ २१ ॥

घोणोन्मीलितमेरुन्धनिवहो दुःखादिभ्रमज्जटलवः ।

प्रादुर्भूतरसातलोदरवृहत्पङ्काद्धर्मश्रुरः ॥

फूत्कारोत्करनुन्नवातविदलद्विगदन्तिनादश्रुति-

न्यस्तस्तवधवपुः श्रुतिर्भवतु चः क्रोडो हरिः शान्तये ॥ २२ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायांपञ्चमेऽवन्तीखण्डे-

रेवाखण्डे लिङ्गवाराहतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नामैकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

श्वेतवाराहतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेन्महाराजकुसुमेश्वरमुत्तमम् । दक्षिणे नर्मद्राकूले उपपातकनाशनम् ॥

कामेन स्थापितोर्द्वयः कुसुमेश्वरसञ्ज्ञितः । ख्यातःसर्वेषु लोकेषु द्वेषदेवः सनातनः

कामो मनोभवो विश्वः कुसुमायुधघांपभृतः ।

स कामान्ददाति सर्वान्पूजितो र्भानकेन ॥ ३ ॥

तत निर्दग्धकायेन घाराध्य परमेश्वरम् । अनङ्गेन तथा प्राप्तमङ्गित्व नर्मदातरे ।  
युधिष्ठिर उवाच

अङ्गिभूतस्य नाशन्वमनङ्गस्य तु मे घद । त धृत न च मे दृष्ट भूतपूर्वं कदाचन ।  
पतन्सर्वं यथा वृत्तमाघश्चद्विजमत्तम । धोतुमिच्छामि विपेन्द्रमीमांशुं नयमि सह  
श्रीमाकण्डेय उवाच

आर्दी वृत्तयुगे तात देवदवोमहेश्वर । तपश्चधार विपुल गङ्गासागरमस्थित ॥  
तेनमभ्यादितालोकास्तपमासमुरामुरा । जग्मुन्तेशरण सर्वे देवदेव शर्चापतिम्  
व्यापक सचभूताना देवदगोमहेश्वर । मतापयति लोकास्त्रीस्तत्रिवारय गोपत  
ध्रुव्वातङ्घन नयादगाना यत्प्रवहा । घिन्तयामास मनसातपोविप्रायघादिशत्  
अप्सरा मेनका रम्भा एनाघा घ तिगेत्तमाम् ।

घसन्त काकिल काम दक्षिणानिलमुत्तमम् ॥ ११ ॥

गत्वा तत्र महादेव तपश्चरणत परम् । शोभयध्वप्रधान्याय गङ्गासागरघासितम्  
एवमुक्तास्तुत सव दरानेनमारत । दवाप्सर समोपेता जग्मुस्ते हरमधिर्धो  
घसन्तमाम वसुमाकराकुले मयूरदात्यूहसुकोकिलाकुले ।

प्रतृत्यदवाप्सरगातमङ्गुले प्रयाति घात यमनैः ताकुले ॥ १४ ॥

तत सम्मूर्च्छितामर्वे मरुगाच्च खगात्तमा । मधुमाघवगन्धेन सकिष्करमहोरगा  
याघदालाकत ताचलद्वन व्याकुलावृत्तम् । घाशते मरुनाविष्ट दशावस्थागतजनम्  
दघदवाऽपि त्रानामवन्धात्रितयगत ।

मात्स्विका रानमी राज्ञस्तामसी ता ऽण्णुव मे ॥ १७ ॥

एक यागसमाधिता मुकटिल घञ्चुडिताय पुन

पावया नवनस्थलस्ननतरे ऽङ्गारमारालसम् ।

अप्यदुदूरनिरस्तघापमन्त्रो जानगेरीपित

शम्भार्भिघ्नम समाधिसुमये नैत्रक

घ ॥ १८ ॥

एवं दृष्टः स देवेन सशरः सशरासनः । भस्मीभूतो गतः कामो विनाशः सर्वदेहिनाम्  
कामं दृष्ट्वा क्षयं यातं तत्र देवाप्सरोगणाः ।

भीता यथाऽऽगतं सर्वे जग्मुश्चैव दिशो दश ॥ २० ॥

कामेन रहिता लोकाः ससुरासुरमानवाः । ब्रह्माणंशरणं जग्मुर्देवा इन्द्रपुरोगमाः  
सीदमानं जगद्दृष्ट्वा तमूचुः परमेष्ठिनम् । जानामित्वं जगच्छेदं प्रभो मैथुनसम्भवात्  
प्रजाः सर्वा विशुष्यन्ति कामेन रहिता विभो ! ॥ २२ ॥

एतच्छ्रुत्वा वचस्तेषां देवानां प्रपितामहः । जगाम सहितस्तत्र यत्र देवो महेश्वरः  
अतोऽप्यज्जगन्नाथं सर्वभूतमहेश्वरम् । स्तुतिभिस्तण्डकैः स्तोत्रैर्वेदवेदाङ्गसम्भवैः  
ततस्तुष्टो महादेवो देवानां परमेश्वरः । उवाच मधुरां वाणीं देवान्ब्रह्मपुरोगमान्  
किं कार्यं कश्च सन्तापः किं वाऽऽगमनकारणम् ।

देवतानामृषीणां च कथ्यतां मम मा चिरम् ॥ २७ ॥

देवा ऊचुः

कामनाशाज्जगन्नाशो भविताऽयं चराचरे ।

त्रैलोक्यं त्वं पुनः शम्भो उत्पातयितुमर्हसि ॥ २८ ॥

एतच्छ्रुत्वा वचस्तेषां विमृश्य परमेश्वरः । चिन्तयामास कामस्य विग्रहम्भुविदुर्लभम्  
आजगाम ततः शीघ्रमनङ्गो ह्यङ्गतां गतः । प्राणदः सर्वभूतानां पश्यतां नृपसत्तम  
ततः शङ्खनिनादेन भेरीणां निःस्वनेन च । अभ्यनन्दंस्ततो देवं सुरासुरमहोरगाः  
नमस्ते देवदेवेश कृतार्थाः सुरसत्तमाः । विसर्जिताः पुनर्जगमुर्थयागतमरिन्दम ॥  
गतेषु सर्वदेवेषु कामदेवोऽपि भारत । तपश्चचार विपुलं नर्मदातटमाश्रितः ॥ ३३ ॥  
तपोजपकृशीभूतो दिव्यं धर्षशतं किल । महाभूतैर्विघ्नकरैः पीड्यमानः समन्ततः ॥  
आत्मविघ्नविनाशार्थं संस्मृतः कुण्डलेश्वरः । सकार रक्षां सर्वत्र शरपाते नृपोत्तम  
ततस्तुष्टो महादेवो द्रुढभक्त्या चरप्रदः ।

धरेण च्छन्दयामास कामं कामविनाशनः ॥ ३६ ॥

ज्ञात्वा तुष्टं महादेवमुवाच भूपकेतनः । प्रणतः प्राञ्जलिभूत्वा देवदेवं त्रिलोचनम्



यदि तुष्टोऽसि देवेश ! यदि देवो धरो मम ।

अत्र तीर्थे जगन्नाथ' सदा सन्निहितो भव ॥ ३८ ॥

तथेति शोक्त्या वचनं देवदेवो महेश्वरः ।

जगामाऽऽकाशमाविश्य स्तूयमानोऽप्सरोगणैः ॥ ३९ ॥

गते चाऽदर्शतदेवे कामदेवोजगद्गुरुम् । स्थापयामास राजेन्द्रकुसुमेश्वरसञ्चितम्  
तत्रतीर्थे तुय स्नात्वा ह्युपवासपरायणः । चैत्रमासेषतुर्दश्यामदनस्यदिनेऽथवाः  
प्रभाते विमले प्रागे स्नात्वा पूज्य दिवाकरम् । तिलमिश्रेणतोयेनतर्पयेत्पितृदेवता  
कृत्वास्नानविधानेनपूजयित्वाच तं नृप । पिण्डनिर्वपणं कुर्यात्तस्यपुण्यफलंष्टणु  
सत्रयाजिफलं यच्च लभते द्वादशाधिकम् ।

पिण्डदानात्फलं तच्च लभते नाऽत्र संशयः ॥ ४४ ॥

भङ्गमूलेषु पिण्डपितृनुद्दिश्यदापयेत् । तस्यतेद्वादशाब्दानिवृत्तियान्तिपितामहाः  
वृमिकीटपतङ्गा येतत्र तीर्थे मुधिष्ठिर । प्राप्नुवन्तिमृताःस्यर्गं किंपुनर्येनरामृताः  
मन्यासं कुरते योऽत्र जितक्रोधो जिनेन्द्रियः ।

कुसुमेशे नरो भक्त्या स गच्छेच्छिवमन्दिरम् ॥ ४७ ॥

तत्रदिग्वाप्सरोभिश्च देवगन्धर्वगायने । क्रीडन्ते सेव्यमानस्तु कल्पकोटिशतंनृप  
पूर्णं चैव तत्र काल इह मानुष्यता गतः ।

जायते राजराजेन्द्रै पूज्यमानो नृपो महान् ॥ ४९ ॥

कुरुप मुमगो चाग्नी विजान्तो मतिमाञ्जुधिः ।

जीवेत्पशतं मासं सर्वं व्याधिधिवर्जितः ॥ ५० ॥

एतत्पुण्यं पापहर तीर्थकोटिशताधिकम् । कुसुमेशेतिविख्यातं सर्वदेवनमस्कृतम्  
इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्या सहिताया पञ्चमोऽध्वनीखण्डे

रेखाखण्डे कुसुमेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम

पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ ६५० ॥

## एकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

श्वेतवाराहतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

उत्तरे नर्मदाकूले तीर्थं परमशोभनम् । जयवाराहमाहात्म्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥  
उद्भृता जगती येन सर्वदेवनमस्कृता । लोकानुग्रहबुद्ध्या च संस्थितो नर्मदातटे  
तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा वीक्षते मधुसूदनम् ।

मुच्यते सर्वपापेभ्यो दशजन्माऽनुकीर्तनात् ॥ ३ ॥

मत्स्यःकूर्मो वराहश्च नरसिंहोऽथवामनः । रामोरामश्चकृष्णश्च बुद्धःकल्किश्चतेदश  
युधिष्ठिर उवाच

मत्स्येन किं कृतं तात कूर्मेणमुनिसत्तम ! । वराहेण च किं कर्म नरसिंहेनकिंकृतम्  
मनेन च रामेण राघवेण च किं कृतम् । बुद्धरूपेणकिंवाऽपिकल्किनार्किकृतंचद  
मुक्तस्तु विप्रेन्द्रो धर्मपुत्रेण धीमता । उवाच मधुरांवाणीं तदा धर्मसुतम्प्रति  
श्रीमार्कण्डेय उवाच

मीनो भूत्वा पुरा कल्पे प्रीत्यर्थं ब्रह्मणो विभुः ।

समर्पयत्समुद्भृत्य वेदान्मग्नान्महार्णवे ॥ ८ ॥

मृतोत्पादने राजकूर्मोभूत्वाजगद्गुरुः । मन्दरंधारयामास तथादेवींवसुन्धराम्  
उज्जहार धरां मग्नं पातालतलवासिनीम् ।

वाराहं रूपमास्थाय देवदेवो जनार्दनः ॥ १० ॥

रस्यार्द्धतनुं कृत्वा सिंहस्यार्द्धतनुं तथा । हिंश्यकशिपोर्वक्षोविददारनखांकुशैः  
ऋषीवामनरूपेण स्तूयमानोद्विजोत्तमैः । तद्विद्व्यंरूपमास्थायकमित्त्वामेदिनींक्रमैः  
कृतवांश्च बलिं पश्चात्पातालतलवासिनम् ।



## द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

भार्गलेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेद्भरापाल भार्गलेश्वरमुत्तमम् । शङ्करं जगतः प्राणं स्मृतमात्राघनाशनम्  
तत्र तीर्थेतु यः स्नात्वा पूजयेत्परमेश्वरम् । अश्वमेधस्ययज्ञस्य फलंप्राप्नोतिमानवः  
तत्र तीर्थे तु यः कश्चित्प्राणत्यागं करिष्यति ।

अनिवर्त्तिका गतिस्तस्य रुद्रलोकादसंशयम् ॥ ३ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे  
रेवाखण्डे भार्गलेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनंताम द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

## त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

आदित्येश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

तस्यैवानन्तरं घान्यद्रवितीर्थमनुत्तमम् । तस्य सन्दर्शनादेवमुच्यन्ते पातकैर्नराः  
रवितीर्थे तु यः स्नात्वा नरः पश्यति भास्करम् ।

तस्य यत्फलमुद्दिष्टं स्वयं देवेन तच्छृणु ॥ २ ॥

नान्यो न मूको बधिरःकुलेभवतिकश्चन । कुरूपःकुनखीचापितस्य जन्मानिषोडश  
दद्रुच्चित्रककुष्ठानि मण्डलानि विघर्षिका ।

नश्यन्ति देवभक्तस्य यन्मासान्नात्र संशयः ॥ ४ ॥

घरितं तस्य देवस्य पुराणेषु च्छ्रुतं मया । नतत्कथयितुं शक्यं सङ्क्षेपेण नृपोत्तमा ॥

तत्र तीर्थे तु यद्दानं रघिमुद्दिश्य दीयते ।

विधिना पात्रविधाय तस्यान्तो नाऽस्ति कर्हिषिन् ॥ ६ ॥

अयने विपुचे धैवच्चन्द्रसूर्यग्रहे तथा । रघितीर्थप्रदत्ताना दानाना फलमुत्तमम्  
सङ्गान्तीयानिदानानिहृष्यकव्यानिभारत । अपामिवसमुद्रस्यतेषामन्तोनलम्  
येनयेन यदा दत्तयेनयेन यदा हृतम् । तस्य तस्य तदा काले सपिता प्रतिदाय  
सप्त जन्मानि तान्येव ददात्यर्कं पुन पुन । शतमिन्दुक्षये दान सहस्रतु दिनश्च  
सङ्गान्तौ शतसाहस्र व्यतीपाने त्वनन्तकम् ॥ ११ ॥

युधिष्ठिर उवाच

रघितीर्थकथतातपुण्यात्पुण्यतरस्मृतम् । विस्तरेणममाख्याहिध्रवर्णाममलम्पः  
श्रीमार्कण्डेय उवाच

शृणुस्वाऽवहितो भूया ह्यादित्येश्वरमुत्तमम् ।

उत्तरे नमदाकुले सर्वव्याधिविनाशनम् ॥ १३ ॥

पुरा वृत्तयुगस्याऽऽदौ जावालिकांक्षणाऽभवत् ।

वसिष्ठाऽन्वयसम्भूतो धेदशास्त्राथपारग ॥ १४ ॥

पतिव्रता साधुशीला तस्य भाया मनस्विनी ।

ऋतुकाले तु सा गत्वा भर्तारमिदमप्रवीत् ॥ १५ ॥

वन्ते ऋतुकालो मे भर्तार त्वामुपस्थिता ।

भज मा प्रीतिमयुक्तं पुत्रकामा तु कामिनीम् ॥ १६ ॥

एवमुक्तो द्विजः प्राह प्रियेऽद्याऽहं व्रतान्वित ।

गच्छेद्दानीं घरारोहे' दास्य ऋत्वन्तरे पुन ॥ १७ ॥

पुनर्द्वितीये सम्प्रामे ऋतुकालेऽप्युपस्थिता ।

पुन सा च्छन्दिता तेन व्रतस्थोऽद्येति भारत ॥ १८ ॥

इत्य वावहुशस्नेनच्छन्दिताद्यपुन पुन । निराशाचाऽभवत्तत्रभर्तार प्रतिभामिर्न  
दु'खेन महताविष्टा विधायानशनं मुता । तेन भ्रूणहतेनैव वापेन सहसा द्विज' ।

शीर्षाघ्राणाङ्घ्रिभक्तपः सर्वं ननाश च । दृष्टात्मानंसकुप्रेन व्याप्तं ब्राह्मणसत्तमः  
विपादं परमं गत्वानर्मदातटमाश्रितः । अपृच्छद्भास्करंतीर्थं द्विजेभ्यो द्विजसत्तमः  
आरोग्यं भास्करादिच्छेदिति सञ्चिन्त्य चेतसि ।

कुतस्तद्भास्करं तीर्थं भो द्विजाः कथ्यतां मम ॥ २३ ॥

तपस्तप्स्याम्यहं गत्वा तस्मिंस्तीर्थं सुभाचितः ॥ २४ ॥

द्विजा ऊचुः

रेवावाउत्तरे कूलेआदित्येश्वरनामतः । विद्यतेभास्करंतीर्थं सर्वव्याधिचिनाशनम्  
तत्रयाह्यविचारेण गन्तुंचेच्छक्यतेत्वया ! एवमुक्तोद्विर्जैर्विप्रो गन्तुं तत्र प्रथक्रमे ॥  
व्याधिना परिभूतस्तु घोरेण प्राणहारिणा ।

यदा गन्तुं न शक्नोति तदा तेन विचिन्तितम् ॥ २७ ॥

सामर्थ्यं ब्राह्मणानां हि विद्यतेभुवनत्रये । लिङ्गपातः कृतो विप्रैर्देवदेवस्यशूलिनः  
समुद्रः शोपितो विप्रैर्विन्ध्यश्चापि निवारितः ।

अहमप्यत्र संस्थस्तु ह्यानयिष्यामि भास्करम् ॥ २६ ॥

तपोवलेन महताह्यादित्येश्वरसञ्ज्ञितम् । इतिनिश्चित्यमनसाह्य त्रे तपसिसंस्थितः  
वायुभक्षो निराहारो ग्रीष्मे पञ्चाग्निमध्यगः ।

शिशिरे तोयमध्यस्थो वर्षास्वप्रावृताकृतिः ॥ ३१ ॥

साग्रे वर्षशते पूर्णे रविस्तुष्टोऽब्रवीदिदम् ॥ ३२ ॥

सूर्य उवाच

वरं वरय भद्रं ते किं ते मनसि चाञ्छितम् ।

अदेयमपि दास्यामि ब्रूहि मां त्वं चिरं कृथाः ॥ ३३ ॥

किमसाध्यं हि ते विप्र! इदानीं तपसि स्थितः ॥ ३४ ॥

जावालिरुवाच

यदि तुष्टोऽसि देवेश यदि देवो वरो मम । मम प्रतिज्ञा देवेश ह्यादित्येश्वरदर्शने ॥

कृता तां पारितुं देव! न शक्तो व्याधिनावतः ।

शुक्लनीयंऽत्रतिष्ठ त्वमादित्येश्वरमूर्तिभृक् ॥ ३१ ॥

एवमुक्ते तु देवेशो बहुरूपो त्रिशक्तः । उत्तरे त्र्यम्बकूले क्षणादेव व्यदृश्यत ॥३७॥  
तदाप्रभृति भूपाल' तद्धि तीर्थं प्रचक्षते । सर्वपापहरं प्रोक्त सर्वदुःखविनाशनम् ॥  
यस्तु सन्वन्सर पूर्णं नित्यमादित्यवासरे ।

स्नात्वा प्रदक्षिणां सप्त दत्त्वा पश्यति भास्करम् ॥ ३६ ॥

यत्कृतं लभते तेन तच्छुश्रूष मयीदितम् । प्रभुन मण्डलानां ह दद्रुकृष्टविधाधिका  
नश्यन्ति सन्धरं राजस्त्रराशिरिवाऽनले । धनपुत्रकलत्राणा पूष्येदत्सरत्रयात्  
यस्तुभ्रातृप्रदस्तत्रपितृनुद्विश्यसङ्गमे । तृप्यन्तिपितरस्तस्यपितृदेवोहिभास्करः  
इति तै कथितं सर्वत्रादित्येश्वरमुत्तमम् । सर्वपापहरं दिव्यं सर्वरोगविनाशनम् ॥  
इति श्रीस्कान्दे महापुराणश्चाशीतिसाहस्र्यासहितायापञ्चमेऽवन्तीखण्डे  
रेखाखण्डे आदित्येश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम विपश्चादधिकशततमोऽध्याय'

चतुःपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

कलकन्देद्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीभार्ग्वण्डेय उवाच

नमदादक्षिणेकूले तीर्थं कलकलेभ्रमम् । विस्थात सर्वलोकेषु स्वयद्वेन निर्मितम्  
अन्धक समरे हत्वा देवदेवो महेश्वरः । सहितो देवगन्धर्वैः किञ्चरिश्च महोरगैः ॥  
शङ्खनृपतिनादैश्चमृद्गणवादिभिः । घीणारेणुर्येष्वान्यैस्तुतिभिःपुष्कलादिभिः  
गायन्ति नामानि यत्र पि ध्यानैश्छन्दासि ध्यान्यैश्चमुद्गिरन्ति ।  
स्नात्रैरनेकैरपरैः गणन्ति मठेश्वर तत्र महानुभावा ॥ ४ ॥

प्रमथाना निनादेन क्लृप्त्येन च चन्द्रिनाम् ।

यन्मात्रत्रिष्टितं लिङ्गं तस्माज्जातं तदाख्यया ॥ ५ ॥

तत्र तीर्थं तु यः स्नात्वा घीक्षेत्कलकलेश्वरम् ।

वाजपेयात्परं पुण्यं स लभेन्मानवो भुवि ॥ ६ ॥

तेनपुण्येनपूतात्मा प्राणत्यागाद्विचं व्रजेत् । आरूढः परमंयानं गीयमानोऽप्सरोगणैः  
उपभुज्यमहाभोगान्कालेनमहताततः । मर्त्यकेलोकेमहात्माऽसौजायतेचिमलेकुले

ब्राह्मणःसुभगो लोके वेदवेदाङ्गपारगः । व्याधिशोकविनिर्मुक्तोजीवेच्चशरदांशतम्

इति श्रीस्कान्दे महापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे

रेखाखण्डे कलकलेश्वरतीर्थफलमाहात्म्यवर्णनं नाम

चतुःपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५४ ॥

पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

चाणक्यसिद्धिप्राप्तिवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि सर्वतीर्थादनुत्तमम् । उत्तरे नर्मदाकूले शुक्लतीर्थं युधिष्ठिर ॥

तस्य तीर्थस्य चाऽन्यानि पुण्यत्वाच्छुभदर्शनात् ।

पृथिव्यां सर्वतीर्थानि कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ २ ॥

युधिष्ठिर उवाच

तस्य तीर्थस्य माहात्म्यं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ।

भ्रातृभिः सहितः सर्वैस्तथान्यैर्द्विजसत्तमैः ॥ ३ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

शुक्लतीर्थस्य घोटपत्तिमाकर्णय नरेश्वर ! । यस्य सन्दर्शनादेव ब्रह्महत्या प्रलीयते ॥

नर्मदासरितां श्रेष्ठा सर्वपापप्रणाशिनी । यच्च वाल्ये कृतं पापं दर्शनादेव नश्यति

मोक्षदानिन सर्वत्र शुक्लतीर्थमृते नृप । शुक्लतीर्थस्य माहात्म्यं पुराणेषु तं मया



समागमे मुनीनां तु देवानां हि तर्षथ च । ऋषिर्षं देवदेवेन शितिकर्षेण भारत'  
 किलासे पर्वतध्रेष्टे तत्ते मद्रूपयाम्यहम् ॥ ७ ॥

पुरावृत्तयुगस्याऽऽदीतोपितुंगिरिजापतिम् । तपश्चाचारयिपुत्र विष्णुर्बर्षसहस्रकम्  
 धायुमशो निराहार शुक्नीर्धं व्यवस्थित ॥ ८ ॥

तत प्रप्यक्षतामागाद्देवदेवो महेश्वर । प्रादुर्भूतस्तु महसा तत्र तीर्थं नराधिप  
 ब्रह्मोद्भवमिदं ऋषे भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ।

तस्मिन्तीर्थे नरः स्नात्वा मुच्यते सचक्रित्थिने ॥ १० ॥

मङ्गा कनखले पुण्या कुदक्षेत्रे मरस्वती । प्रामेयाद्यदिवाऽऽरण्ये पुण्यासर्वप्रतमंदा  
 सर्वोर्गधीनामशन प्रधान सर्वेषु पेषेषु जठ प्रधानम् ।

निद्रा सुपानां प्रमदा रतीनां सवपु गात्रेषु शिर प्रधानम् ॥ १२ ॥

स्नातस्याऽपि यथा पुण्यं लभ्यते नृपमत्तम् ।

शुक्नीर्धं तथा पुण्यं नर्मदाया युधिष्ठिर ! ॥ १३ ॥

सरिता च यथा मङ्गादेवतानां जनार्दन । शुक्नीर्धं तथा पुण्यं नर्मदाया व्यवस्थितम्  
 षतुष्पदानां सुरभिवर्णानां ब्राह्मणो यथा । प्रधानं सचतीर्थानां शुक्नीर्धं तथा नृप

प्रहाणा तु यथाऽऽदिव्यो नक्षत्राणां यथा शशी ।

शिरो धा सचमात्राणां धमाणां सत्यमिष्यते ॥ १६ ॥

तर्षथ पाथ ताथानां शुक्लाथमनुत्तमम् । दुर्विज्ञेयो यथा लोके परमात्मनासनातन  
 सुसंभ्रमत्वादनर्द्वैश्यं शुक्नीर्धं तथा नृप । मन्दप्रशस्त्वमापन्नो महामोहसमन्वित

शुक्लाथ नजानाति नमदातदसस्थितम् । बहुनाऽत्र किमुक्तेन धर्मपुत्र पुन पुन  
 शुक्लाथं महापुण्यं नम्र्नास कल्पपक्षयात् ।

योऽत्र दत्तशुचिभूत्वा एक रथाजलाञ्जलिम् ॥ २० ॥

कल्पकोटिसहस्राणि पितरस्तेन तर्पिता ॥ २१ ॥

एक पुत्रो धरापृष्टे पितृणामार्तिनाशन ।

घाणक्योनाम राजाऽभूच्छुक्नीर्धं च वेद स ॥ २२ ॥

युधिष्ठिर उवाच

कोऽसौ द्विजवरश्रेष्ठ! चाणक्योनाम नामतः ।

शुक्लतीर्थस्य यो वेत्ता नाऽन्यो वेत्ता हि कश्चन ॥ २३ ॥

केनोपायेन तत्तीर्थं तेन ज्ञातं धरातले । तदहं श्रोतुमिच्छामि परंकौतूहलं हि मे  
श्रीमार्कण्डेय उवाच

इक्ष्वाकुप्रभवोराजानप्ताशुद्धोदनस्यध्व । चाणक्योनामराजपितृभुजेपृथिवीमिमाम्

विक्रान्तोमतिमाञ्छूरः सर्वलोकैरवञ्चितः ।

वञ्चितः सहसा धूर्तवायसाभ्यां नृपोत्तमः ॥ २६ ॥

युधिष्ठिर उवाच

कथंसवञ्चितोराजावायसाभ्यां कुतोऽथवा । पुरायेनप्रतिज्ञातंधीगर्भेणमहात्मना  
न जीवे वञ्चितोऽन्येन प्राणांस्त्यक्ष्ये न संशयः ।

एतन्मे षट् विप्रेःद्रु! परं कौतूहलं मम ॥ २८ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

आत्मानंवञ्चितंज्ञात्वा तदा संगृह्य वायसौ । प्रेषयामासतीव्रेणदण्डेनयमसादनम्

वायसावूचतुः

सुन्दोपसुन्दयोः पुत्रावावां काकत्वमागतौ ।

मावधीस्त्वं महाभाग! कस्मिंश्चित्कारणान्तरे ॥ ३० ॥

तावावां कृतसङ्कल्पौ त्वया!कोपेन मानद! ।

निरस्तावनिरस्तौ वा यास्यावः परमां गतिम् ॥ ३१ ॥

तदादेश्य राजेन्द्रकृत्वातव महत्प्रियम् । मुक्तशापोभविष्यावो ब्रह्मणोवचनंतथा  
तच्छ्र त्वाकाकवचनंचाणक्यो नृपसत्तमः । नाहंजीवेचिदित्वैवंवञ्चितःकेनकर्हिचित्

तस्मात्तीर्थं विजानीतं यमस्य सद्ने द्विजौ ।

प्रेषयामि यथान्यायं श्रुत्वा तत्कथयिष्यथः ॥ ३४ ॥

तेनैवमुक्तौ तौ काकौस्रकचन्दनविभूषितौ । शीघ्रगौप्रेषयामासयमस्यसदनम्प्रति

## राज्ञोवाच

नरधर्मपुर गत्वाविघ्नरन्तावितस्तत । यदिपृच्छति धर्मात्मायम सयमनोमह  
कुतोयामागतव्रत केनवा भूषिताबुभौ । मदीयाभारतीतस्य कथनीयाह्यशङ्कित

इक्ष्वाकुसम्भवो राजा घाणक्यो नाम धार्मिक ।

द्वादशाहे मृतस्याऽस्य तर्पितावशनादिना ॥ ३८ ॥

तच्छ त्वा घघन राज्ञो गतो तौ यमसादनम् ।

नीडितौ प्राङ्गणे तस्य स्वघन्दनविभूषितौ ॥

धमराज्ञेन तौ दृष्टौ पृष्टौ धृष्टौ च वापसी ॥ ३९ ॥

यम उवाच

कुत स्थानात्समायातौकेनवाभूषिताबुभौ । वृसचैक्यपतामेतद्वायसावचिशङ्कर  
काकावूचतु

इक्ष्वाकुसम्भवो राजा घाणक्योनाम धार्मिक ।

द्वादशाहे मृतस्याऽस्य तर्पितावशनादिभि ॥ ४१ ॥

तयोस्तद्वचनधुन्वानदा वैघस्थतोयम । चित्रगुणकलिकाल घीक्ष्यतामिदमव्रवी  
अण्डजस्वेदजातीनाभूतानासघराघरे । विहित लोककर्तृणासाग्निध्यब्रह्मणाम  
गत कुत्र दुराचारघ्राणक्यो नामनस्त्विह ।

अन्विष्यता पुराणेषु त्वितिहासेषु या गति ॥ ४२ ॥

नतस्नैधम्मपालस्तुधमराजप्रद्योदितै । निरीक्षितापुराणोक्ताकर्मजागतिरागति  
नत प्रोवाच वचन धर्मो धमभृताम्वर । शृण्वताधर्मपालाना मेषगम्भीरयागिर  
शुक्लनीधम्रताना तु नमदाविमले जले । अण्डजस्वेदजातीना न गतिर्मम सन्निधं  
ततीर्थं धार्मिक लोके ब्रह्मविष्णुमहेश्वरै ।

निर्मित परया भक्त्या लोकाना हितकाम्यया ॥ ४८ ॥

पापोपपानकीषु न्ना ये नरा नमदाजले । शुक्लनीर्थे मृता शुद्धातने मद्विषया ऋषि  
एतच्छ्रुत्वा तु वचन तौ काको यमभाषितम् ।

आगतौ शीघ्रगौ पार्यं दृष्ट्वा यमपुरं महत् ॥ ५० ॥

पृष्टौतीप्रणतौराज्ञायथा वृत्तं यथाश्चुनम् । कथयामासतुः पार्यदानवीकाकतांगतौ  
अस्मात्स्थानाद्गतावाचां यमस्य पुरमुत्तमम् ।

पृथिव्या दक्षिणेभागे ह्यतीत्य बहुयोजनम् ॥ ५२ ॥

तत्पुरं कामगं दिव्यं स्वर्णप्राकारतोरणम् । अनेकगृहसम्बाधं मणिक्राञ्चनभूषितम्  
चतुष्पथैश्चत्वरैश्च घण्टामार्गोपशोमितम् ।

उद्यानवनसञ्चन्नं पद्मिनीखण्डमण्डितम् ॥ ५४ ॥

हंससारससङ्घुष्टं कोकिलाकुलसङ्कुलम् । सिंहवप्राध्रगजाकीर्णमृक्षवानरसेवितम्  
नरनारीसमाकीर्णं नित्योत्सवविभूषितम् ।

शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषैर्वीणात्रेणुनिनादितम् ॥ ५६ ॥

यममार्गेऽपिचिहितं 'स्वर्गलोकमिवाऽपरम् । गतौ तत्र पुनश्चान्यैर्यमदूर्तर्यमाश्रया  
चिदितौप्रेपितौतत्रयत्रदेवोजगत्प्रभुः । प्राणस्य भीत्या दृष्टोऽसौसिंहासनगतःप्रभुः  
महाकायो महाजङ्घो महास्कन्धो महोदरः ।

महावक्त्रो महाबाहुर्महावक्त्रेक्षणो महान् ॥ ५६ ॥

महामहिषमारूढो महामुकुटभूषितः । तत्राऽन्यश्च कलिः कालश्चित्रगुप्तोमहामतिः  
समागतौ तदा दृष्टौ मध्ये ज्वलितपावकौ ।

पुण्यपापानि जन्तूनां श्रुतिस्मृत्यर्थपारगौ ॥ ६१ ॥

विचारयन्तीसततंतिष्ठातेतौदिवानिशाम् । ततो ह्याचां प्रणामान्तेयमेनयममूर्तिना  
पृष्ठावागमनेहेतुं तमब्रूवत्पुण्यं तत् । उज्जयिन्यांमहीपालश्चाणक्योऽभूत्प्रतापवान्  
द्वादशाहे मृतस्याऽस्य भुक्त्वा प्राप्तौ यमालयम् ।

ततोऽस्माकं वचः श्रुत्वा कम्पयित्वा शिरो यमः ॥ ६४ ॥

उवाच वचनं सत्यं सभामध्येहसन्निव । अस्ति तत्कारणं येन घ्राणक्यःपापपूरुषः  
नायातो मम लोके तु सर्वपापभयङ्करे । शुक्लतीर्थं मृतानां तु नर्मदायां परम्पदम्  
जायते सर्वजन्तूनां नाऽत्र काचिद्विधारणा ।

अवश स्वधशोषाऽपि जन्तुस्त क्षेत्रमण्डु ॥ ६७ ॥

मृतः स चेन सन्देहो रक्षस्यानुचरो भवेत् । तद्भवधन श्रुत्वा निगत्यनगराद्गृहि  
पश्यन्ती विधिधा घोरा नरके लोकयातनाम् ।

त्रिशत्कोट्यो हि घोराणा नरकाणा नृपोत्तम ॥ ६६ ॥

दृष्ट्वा भीती परामानि गती तत्र महापथि । नरको रोगवस्तत्र महारीरव एव ध ॥

पेपण शोषणञ्चैव काङ्क्षत्रोऽस्थिमथन ।

तामिल्वधान्धतामिध्न कृमिपूतिवहस्तथा ॥ ७१ ॥

दृष्ट्वाश्चामो महाज्वलस्तत्रैव विषमोजन । नरको दशमशको तथा यमलपवती ॥

नदी घैतरणी दृष्ट्वा सवपापप्रणाशिनी । शीतल सलिल यत्रपिबतित्यमृतोपमम्

तदैवनीरपापाना शोणितपरिवतते । असिपत्रचन धाऽन्यद्दृष्ट्वाऽन्यामहती शिवा

अग्निपुञ्जिभाकारा विशाखा शान्मली परा ।

इत्याद्यस्तर्धवान्ये शतमाहस्रसञ्ज्ञिताः ॥ ७१ ॥

घोरघोरतरा दृष्ट्वा क्लिश्यन्तेयत्रमानवा । चाधिकैर्मानसै पापै कमजैश्चपृथग्विधै

अहङ्कारहृनैदीपैमापावधनपूर्वकै । पिता माता गुरुर्भ्राता अनाथाधिकलेन्द्रिया

भ्रमन्ति नोद्बृता येन गतिस्तथा हि रीरवे ।

तत्र ते द्वादशाब्दानि क्षपित्वा रीरवेऽधमा ॥ ७२ ॥

इह मानुष्यके लोकेदीनान्धाश्च भवन्ति । देवत्रयस्वहृत जानराणापापकमणाम्

महारीरवमाश्रित्य भ्रव वासो यमालये । तत्र कालेन महता पापा पापेनवेष्टिता

जायन्त कण्टकैर्भिन्ना कोशे वा कोशकारका ।

मृगपक्षिविहङ्गाना घातका मासभक्षकाः ॥ ८१ ॥

पेपण नरक यान्ति शोषण जीवधनतात् ।

तत्र या यातना घोरा सहित्वा शास्त्रघोदिताम् ॥ ८२ ॥

इह मानुष्यता प्राप्य पद्मवन्धवधिरा नरा । गवार्धे ब्राह्मणार्धेचल्लवटपद्तामिह

पतन जायतेषु सा नरक कालसूत्रक । तत्रत्यायातना घोरा विहिताशास्त्रकतृ मि

भुक्त्वा समागता ह्यत्र ते यास्यन्त्यन्त्यजां गतिम् ।

वन्ययन्ति च ये जीवांस्ययत्त्वात्मकुलसन्ततिम् ॥ ८५ ॥

पतन्तिनात्र सन्देहो नरके तेऽस्थिमञ्जने । तत्र चर्षशतस्याऽन्तःह मानुष्यतांगताः

कुलजा घामनकाः पापा जायन्ते दुःखभागिनः ।

ये त्यजन्ति स्वकां भार्यां मूढाः पण्डितमानिनः ॥ ८७ ॥

ते यान्तिनरकंघोरंतामिन्द्रं नाऽन्नसंशयः । तत्र चर्षशतस्यान्ते इह मानुष्यतांगताः

दुश्चर्माणो दुर्भगाश्च जायन्ते मानवाहिते । मानकूटं तुलाकूटं कूट्यं तु घदन्ति ये

नरके तेऽन्धतामिच्छे प्रपच्यन्ते नराध्रमाः । शतसाहस्रिकं कालमुपित्वातत्रनेनराः

इह शत्रुगृहे त्वन्धा भ्रमन्ते दीनमूर्त्तयः । पितृदेवद्विजेभ्योऽन्नमदत्त्वा येऽत्र भुञ्जते॥

नरके कृमिभक्ष्ये ते पतन्तिस्वात्मपोषकाः । ततःप्रसूतिकालेहि कृमिभुक्तश्चसत्रणः

जायतेऽशुचिगन्धोऽत्र परभाग्योपजीवकः ।

स्वकर्मचिच्युताः पापा चर्णाश्रमचिविर्जिताः ॥ ६३ ॥

रके पूयसम्पूर्णं क्लिश्यन्ते ह्ययुतंसमाः । पूर्णतत्र ततः काले प्राप्यमानुष्यकंभवम्

द्वेजनीयाभूतानां जायन्तेव्याधिभिर्वृताः । अग्निदोगरदश्चैवलोभमोहान्वितोनरः

नरके चिपसम्पूर्णं निमज्जति दुरात्मवान् । तत्र चर्षशतात्कालादुन्मज्जनमवस्थितः

भुवि मानुषतांप्राप्य रूपणोजायतेपुनः । पादुकोपानहो छत्रंशय्यां प्राधरणानिच

अदत्त्वा दंशमशकैर्भक्ष्यन्ते जन्यसप्ततिम् । पितुर्द्रव्यापहंत्तारस्ताडनक्रोशने रताः

पीडनं क्रियते तेषांयत्र तौ युग्मपर्वतौ । या सा वैतरणीघोरा नदी रक्तप्रवाहिनी

पिबन्ति रुधिरं तत्र येऽभियान्ति रजस्वलाम् ।

असिपत्रवने घोरे पीड्यन्ते पापकारिणः ॥ १०० ॥

परपीडाकरा नित्यंये नरोऽन्त्यजगामिनः । गुरुदाररतानां तु महापातकिनामपि

शिलाचगृह्नन्तेपांजायतेजन्मसप्ततिम् । ज्वलन्तीमायसीं घोरांचहुकण्टकसम्बृताम्

शाल्मलीं तेऽवगृह्णन्ति परदाररताहिये । परस्ययोपितं हत्वा ब्रह्मस्वमपहृत्य च

अरण्ये निर्जले देशेभवेत्क्रूराक्षसः । देवंस्वं ब्राह्मणस्वं च लोभेनैवांऽऽहरेच्चयः

स पापात्मा परे लोके गृध्रोच्छिद्येन जीयति ।

एवमार्दीनि पापाति भुञ्जन्ते पमशागनान् ॥ ५ ॥

येषां तु दर्शनादेव धयणाज्जायते मयम् । तथादानरत्नं चाऽन्ये भुञ्जानापममन्दिरे  
दृष्ट्वा धृतं कथयन्तां कृतानां पापमासया । तेषैरन्येगर्जरस्ये केचिद्वाजिभिरायुता  
दृष्ट्वास्तत्र महाभाग' तपसंगयमस्मिन्विताः ।

गोदाता स्वणदाता च भूमिरदाप्रदा मराः ॥ ८ ॥

शप्याशतपृष्ठार्दीनां मन्त्रेषु कामदोषणाम् । अश्रंपानीयमहितं कृत्तयेऽत्रमानया  
तत्र कृता सुगतुष्टा व्रीडन्ते यमगादने । अथयर्दीयते दानमपि बालाप्रमाथकम्  
तदक्षयफलं सर्वं शुष्कर्त्तार्यं कृपोत्तम । एतन्ते कथितसर्वं यदुद्वृष्टं यथा धृतम् ॥  
बुरुध्ययदभिप्रतयदिशयतोपिमुच्यन्ताम् । तयोस्तद्वचनधृत्वा घ्राणवरोद्धृष्टमानस-  
चिस्रजयामास रगापमिनघपुन पुन । ताभ्यांगताभ्यांसर्वस्येदंस्वदेव्याविद्येपुभारत  
कामकार्थी परिभ्यस्य जगामाऽमरपदं तम् ।

तत्र कथाद्वय गाढ वृणोतस्त्वाचलस्मिन् ॥ १४ ॥

एवमाना जगामाऽऽशु षयापन्देधं जनाहृतम् ।

भारतीय भास्करादिच्छन्दन ये जानयेदस' ॥ १५ ॥

प्राप्तातिज्ञानमीशानन्माक्षंप्राप्नोति वेत्राचात् । नीलरत्नतदमयमेघकं यद्विसूत्रकम्  
शुद्धस्फटिकमद्रुश दृष्ट्वा रज्जु महामतिः ।

आप्लुत्य विमले तोये गतोऽसौ वैष्णवं पदम् ॥ १७ ॥

गायन्ति यद्वदचिद् पुराण नारायण शाश्वतमरुयुताह्वयम् ।

प्राप्त स त राजसुता महात्मा निक्षिप्य देह शुभशुक्लतीर्थे ॥ १८ ॥

तथा ते कथिता राजन्सिद्धिध्यानक्यभृभृत ।

तथाऽन्यत्तत्र वक्ष्यामि शृणुष्वैकाग्रमानस ॥ १९ ॥

इति श्रीस्कन्द महापुराण एकाशीतिसाहस्रया संहितायापञ्चमेऽवन्तीखण्डे  
रेखाखण्डे घ्राणकर्मिद्धिप्राप्तिवणतनाम पञ्चपञ्चाशदधिकतमोऽध्यायः ॥

## षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

### शुक्लतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

नास्ति लोकेषु तत्तीर्थं पृथिव्यां यन्नरेश्वर । शुक्लतीर्थेन सद्रशमुपमानेन गीयते ॥  
शुक्लतीर्थं महातीर्थं नर्मदायां व्यवस्थितम् । प्रागुदक्प्रवणेदेशे मुनिसङ्घनिपेवितम्  
वैशाखे च तथामासिकृष्णपक्षेचतुर्दशी । कैलासादुमयासाद्ध्रस्वयमायातिशङ्करः

मध्याह्नसमये स्नात्वा पश्यत्यात्मानमात्मना ।

ब्रह्मविष्ण्वन्द्रसहितः शुक्लतीर्थे समाहितः ॥ ४ ॥

कात्तिक्यां तु विशेषेण वैशाख्यां च नरोत्तम !

ब्रह्मविष्णुमहादेवान् स्नात्वा पश्यति तद्दिने ॥ ५ ॥

देवराजः सुरैः साद्ध्रं धौगुमार्गव्यवस्थितः ।

कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां स्नात्वा पश्यति शङ्करम् ॥ ६ ॥

गन्धर्वाप्सरसो यक्षाः सिद्धविद्याधरोरगाः ।

तद्दिने तेऽपि देवेशं दृष्ट्वा मुञ्चन्ति किल्बिषम् ॥ ७ ॥

अर्द्धयोजनविस्तारं तदर्द्धेनैव घायतम् । शुक्लतीर्थंमहापुण्यं महापातकनाशनम् ॥

यत्र स्थितैः प्रदृश्यन्ते वृक्षाग्राणि नरोत्तमैः ।

तत्र स्थिता महापापैर्मुच्यन्ते पूर्वसञ्चितैः ॥ ८ ॥

पापोपपातकैर्युक्तो नरःस्नात्वा प्रमुच्यते ।

उपार्जिता धिनश्येत भ्रूणहत्याऽपि दुस्त्यजा ॥ १० ॥

यस्मात्तत्रैव देवेश उमया सह तिष्ठति । वैशाख्यां च विशेषेण कैलासादेतिशङ्करः  
तेन तीर्थं महापुण्यं सर्वपातकनाशनम् । कथितं ब्रह्मणा पूर्वं मया तव तथा नृप  
रजकेन यथा धीतं वखं भवति निर्मलम् । तथातत्रवपुःस्नानं पुरयस्य भवेच्छुद्धि



पूर्वे वयमि दापानि कृत्वा पुष्टानि मानय ।

अहाराश्रापिनो भूत्वा शुक्लनीर्ये व्यपोहति ॥ १८ ॥

शुक्लनीर्ये महागात्र राज्ञी रेखाज्ञाञ्जलिम् ।

कृत्वाकटि महध्यापि दत्त्वा स्युः पितर शिषाः ॥ १९ ॥

न माता न पिता धन्यु वननं नराकाणये । उद्दरनिव यथा पुत्र्य शुक्लनीर्ये नरेव

नयमाप्रयथार्येणनता गच्छन्तिमद्गतिम् । शुक्लनीर्ये भृतो जन्तुर्देवत्यागेनपालभेत्

षान्तिवस्य तु मामस्य कृष्णपशो धनुदर्शाम् ।

वृत्त स्नापयेद्दृषमुपाप्य प्रयतो नर ॥ १८ ॥

स्नात्वाप्रभानस्याया शशाङ्कमृतकम्यलम् । महिरण्ययथाशनिदेवमुद्दिश्यशङ्करम्

स्यस्य पूरणा कृत्वात्मन वृत्तकथलम् । न गच्छन्तिमहातेजा शिवलोकमृतो नर

गणविशक्तापतायावत्प्रभृतमम्लपम् । शुक्लनीर्येनर स्नात्वाह्य प्रांश्चधयोऽर्घयेत्

गत्स्नात्वात्पुत्रध्वं माऽव्यमचरत्तभेत् । मासोपवासं च कुर्यात्तत्र तीर्थे नरेव

मुञ्चत समन्वयार्थं सन्नतमसुमर्षितं । उद्गीर्शीरमपिशीरं नयध्राद्धे च भोजनम्

उत्तरगमन धयतथाऽभक्ष्यस्य भक्षणम् । अवित्रयेऽनृतेपार्थं माहिषेऽयाज्ययाजके

वाधुष्ये पट्टनिसाद्वत्राह्वणदूषकं । एषमादीनिपापानि तथाऽन्यान्वीपि भारत

घान्द्रायणतनश्यान्ति शुक्लनाथ नमशय । शुक्लनीर्ये तुय स्नात्वात्तर्पयेत्पितृदेवताः

तस्य न ह्यन्शाश्चानि तृप्तिं यान्ति सुतर्पिताः ।

पादुकापानर्हा छत्र शय्यामामनमेध च ॥ २७ ॥

मुञ्चत जनधान्यं च ध्राद्ध युक्तकृतया । अन्नपानीयमहित तस्मिस्तीर्थेददन्तिपे

हृणा पुणामृता यान्तिशिवाकनमशय । तत्रतीर्थे तुयो भक्त्याशिवमुद्दिश्यभारत

भिक्षामात्र तथाऽन्न ये तेऽपि स्वर्त्यान्ति धी नराः ।

यन्पिता मतिना धैव तत्र तीर्थनिधासिनाम् ॥ ३० ॥

अपि बालाप्रमात्र हि दत्त भवति चाऽक्षयम् ।

अग्निप्रपश य कुर्याच्छुक्लनीर्ये समाहितः ॥ ३१ ॥

रागद्वेषचिनिर्मुक्तो हृदिध्यात्वाजनार्दनम् । सर्वकामसुसंपूर्णःस गच्छेद्धारुणं पुनम्  
नरोगोनजरा तत्रयत्र देवोऽम्भसांपतिः । अनाशकंतुयः कुर्यात्तस्मिंस्तीर्थैर्युधिष्ठिर  
अनिवर्तिका गतिस्तस्य रुद्रलोकादसंशयम् ।

अवशः स्ववशो वाऽपि जन्तुस्तत्क्षेत्रमण्डले ॥ ३१ ॥

मृतः स तु न सन्देहो रुद्रस्याऽनुचरो भवेत् ।

शुक्लतीर्थं तु यः कन्यां शक्त्या दद्यादलङ्कृताम् ॥ ३५ ॥

विधिना यो नृपश्चेष्टाकुरुते वृषमोक्षणम् । तस्य यत्फलमुद्दिष्टं पुराणे रुद्रभाषितम्  
तदहंसंप्रवक्ष्यामि शृणुष्वैकमनानृप । यावन्तोरोमकूपाः स्युःसर्वाङ्गेषुपृथक्पृथक्  
ताचद्वर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते । शुक्लतीर्थं तु यदत्तं ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥ ३८  
वर्धतेतद्गुणं ताचद्विनानि दशपञ्चच । शुक्लतीर्थं शुचिर्भूत्वायः करोतिप्रदक्षिणम्  
पृथ्वीप्रदक्षिणा तेन कृतायत्तस्यतत्फलम् । शोभनं मिथुनं यस्तु रुद्रमुद्दिश्य पूजयेत्  
ऋतं जन्मानि तस्यैव वियोगो न भवैकचित् । एतत्तेकथितं राजन्संक्षेपेणफलंमहत्

शुक्लतीर्थस्य यत्पुण्यं यथा द्रैवाच्छ्रुतं मया ।

य इदं शृणुयाद्भवत्त पुराणे विहितं फलम् ॥ ४२ ॥

स लभेन्नाऽत्र सन्देहः सत्यं सत्यं पुनः पुनः ।

पुत्रार्थी लभते पुत्रं धनार्थी लभते धनम् ॥ ४३ ॥

मोक्षार्थी लभते मोक्षं स्नानदानफलं महत् ॥ ४४ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे  
रेवाखण्डे शुक्लतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥

## सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

हुङ्कारस्वामितीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

तन्मघानन्तरं राजशुक्लदुर्वातीर्थसमीपत । घामुदेवस्य तीर्थं तु सर्वंगेषुपूजितम्  
तद्वि पुण्यं मुचिष्यात नमदायापुरातनम् । तत्रहुङ्कारमाश्रेण रेवाकोशजगामसा  
यदा प्रभृति राजेन्द्र हुङ्कारेण गता सरित् ।

तदा प्रभृति स स्यामी हुङ्कार शब्दितो युधे ॥ ३ ॥

हुङ्कारतीर्थे यन्घ्रात्वावश्वयस्य मन्वुतम् । ममुच्यतेनर पापे ममजन्मवृत्तेरपि  
मसाराणवमघ्नाना नराणा पापकर्मिणाम् । नैरोद्धर्ताजगन्नाथविनातारायणपर  
सा जिह्वा या हरिं स्तीति नश्चित्त यत्तद्वर्षितम् ।

ताद्येव क्वचन श्वाप्यौ यौ तन्पूनाकर्षे करौ ॥ ६ ॥

सयदासर्वकायषु नास्ति तेषाममङ्गलम् । येषा हृदिस्थोभगवान्मङ्गलायतनोहरि  
यदन्यद्देवताद्याया फल प्राप्नोति मानव । साष्टाङ्गप्रणिपातेन तत्फल लभते हरे  
रेणुगुण्डितगात्रस्ययावन्तोऽन्यरज कणा । तावद्वर्षसहस्राणिविष्णुगोकैमर्हयते  
सम्माननाभ्युत्थणलेपनेन तत्रालये नायति सर्वपापम् ।

नारी नराणा परया न भवत्या दृष्ट्वा तु रेवा नरसत्तमस्य ॥ १० ॥

ये नार्धितो भगवान्वासुदेवो जन्मार्जित नश्यति तस्य पापम् ।

स याति लोक गच्छन्वचनस्य विधूतपाप सुरसङ्घपूज्यताम् ॥ ११ ॥

शाठ्येनाऽपि नमस्कार प्रयुञ्ज श्वक्रपाणिन ।

समजन्मार्जित पाप गच्छत्याऽऽशु न सशय ॥ १२ ॥

पूजाया प्रीयतेऽत्रो जपहोमैर्द्विवाकर । शङ्खचक्रगदापाणि प्रणिपातेन तुष्यति ॥

भवजलधिगताना इन्द्रबाताहताना सुतदुहितृक्कलत्राणभाराद्वितानाम् ।

विप्रमविप्रयतोये मज्जतामप्लवानां भवति शरणमेको विष्णुपोतो नराणाम् ॥  
हुङ्कारतीर्थेराजेन्द्र!शुभंवायद्दिवाऽशुभम् । यत्कृतंपुरुषव्याघ्र! तन्नश्यति नकर्हिषित्  
इति श्रीस्कान्दे महापुराणपर्काशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽध्वन्तीखण्डे  
रेवाखण्डे हुङ्कारस्वामितीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

## अष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

### सङ्गमेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्परं तीर्थं सङ्गमेश्वरमुत्तमम् । नर्मदा दक्षिणे कृले सर्वपापभयावहम् ॥

धनदस्तत्रविश्रान्तोमुहूर्त्तं नृपसत्तम । पितृलोकात्समायातः कैलासं धरणीधरम्  
प्रत्ययार्थं नृपश्रेष्ठ! ह्यद्यापि धरणीतले ।

कृष्णवर्णा हि पापाणा दृश्यन्ते स्फटिकोज्ज्वलाः ॥ ३ ॥

विन्ध्यनिर्भरनिष्क्रान्ता पुण्यतोया सरिद्धरा ।

प्रविष्टा नर्मदातोये सर्वपापप्रणाशने ॥ ४ ॥

सङ्गमे तत्र यः स्नात्वा पूजयेत्सङ्गमेश्वरम् । अश्वमेधस्ययज्ञस्यफलंप्राप्नोत्यसंशयम्

घण्टापताकाचितनं यो ददेत्सङ्गमेश्वरे । हंसयुक्तविमानस्थो दिव्यस्त्रीशनसम्भृतः

स खट्वपदमाप्नोति खट्वस्यानुघरो भवेत् । दधिभक्तेन देवस्ययःकुर्व्याल्लिङ्गपूरणम्

सिक्थसङ्ख्यं शिवे लोके स घसेत्कालमीप्सितम् ।

श्रीफलेः पूरयेल्लिङ्गं निःस्वो भूत्वा भवस्य तु ॥ ८ ॥

सोऽपि तत्फलमाप्नोति गतः स्वर्गं नरेश्वर ॥

अक्षया सन्ततिस्तस्य जायते सप्तजन्मसु ॥ ९ ॥

स्नपनं देवदेवस्य दध्ना मध्वघृतेन वा । यः करोति विधानेन तस्य पुण्यफलं शृणु

घृतक्षीरबहा नद्यो यत्र वृक्षा मधुस्रवा । तत्र ते मानवायान्ति सुप्रसन्ने महेश्वरे  
 यत्र पुष्प फल तोय यस्तु दद्यान्महेश्वरे । तत्सर्वं सप्तजन्मानि हाक्ष्यं फलमश्नुते  
 सर्वेषामेव पात्राणा महापात्र महेश्वर । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पूजनीयो महेश्वर ॥

ब्रह्मधर्मस्थितो नित्य यस्तु पूजयते शिवम् ।

इह जीवन्म देवेशो मृतो गच्छेदनामयम् ॥ १४ ॥

शिवे तु पूजिते पाथ' यत्फल प्राप्यते युधै ।

योगान्द्रे चैव तत्पार्थ' पूजिते लभते फलम् ॥ १५ ॥

ते धन्यास्ते महात्मानस्तेषा जन्म सुजीवितम् ।

येषा गृहेषु भुञ्जन्ति शिवभक्तिरता नरा ॥ १६ ॥

सन्निरुध्येन्द्रियग्राम यत्रयत्र चसेन्मुनि । तत्रतत्र कुरुक्षेत्र नैमिष पुष्कराणि च ॥

यत्फल वेदविदुषि भोजितेशानसङ्करया । तत्फल जायतेपाथहोकेतशिवयोगिना

यत्र भुञ्जति भस्माङ्गी मूर्खो वा यदि पण्डित ।

तत्र भुञ्जति देवेश सपत्नीको वृषभञ्ज ॥ १६ ॥

विप्राणा वेदविदुषा कोटि सम्भोज्य यत्फलम् ।

मिक्षामात्रप्रदानेन तत्फल शिवयोगिनाम् ॥ २० ॥

सङ्गमेश्वरमासाद्यप्राणत्यागकरोति य । न तस्यपुनरावृत्ति शिवलोकात्कदाचन

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्रया सहितायापञ्चमेऽवन्तीखण्डे

रेवाखण्डे सङ्गमेश्वरतीयमाहात्म्यवर्णननामाऽष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्याय

## एकोनपट्युत्तरशततमोऽध्यायः

अनरकेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेन्महाराज तीर्थं परमपावनम् । नर्मदायां सुदुष्प्रापं सिलङ्गानरकेश्वरम्  
तस्मिंस्तीर्थेनरः स्नात्वा पापकर्माऽपि भारत । नपश्यति महाबोरं नरकद्वारसञ्जिकम्

युधिष्ठिर उवाच

शुभाशुभफलैस्तात भुक्तभोगा नरास्त्वह । जायन्ते लक्षणैर्यैस्तु तानि मे वदसत्तम

यथा निर्गच्छते जीवस्त्यक्त्वा देहं न पश्यति ।

तथा गच्छन्पुनर्देहं पञ्चभूतसमन्वितः ॥ ४ ॥

त्वगस्थिमांसमेदोऽसृक्केशस्त्रायुशर्तः सह ।

विण्मूत्ररेतःसङ्घाते का सञ्जा जायते नृणाम् ॥ ५ ॥

एवमुक्तः स मार्कण्डः कथयामास योगवित् । ध्यात्वा सनातनं सर्वदेवदेवं महेश्वरम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

शृणु पार्थ! महाप्रश्नं कथयामि यथाश्रुतम् ।

सकाशाद् ब्रह्मणः पूर्वमृषिदेवसमागमे ॥ ७ ॥

गुरुरात्मवतां शास्ता राजा शास्ता दुरात्मनाम् ।

इह प्रच्छन्नपापानां शास्ता वैवस्वतो यमः ॥ ८ ॥

अचीर्णप्रायश्चित्तानां यमलोके ह्यनेकधा ।

यातनाभिर्घियुक्तानामनेकां जीवसन्ततिम् ॥ ९ ॥

गत्वामनुप्यभावे तु पापघ्निहा भवन्ति ते । तत्तेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि शृणुष्वैकमनानृप  
सहित्वा यातनां सर्वा गत्वा वैवस्वतक्षयम् ।

निस्तीर्णयातना ये न लोकयागन्ति चिन्ति ॥ १० ॥

गङ्गादोऽनृतवादी स्यान्मूकश्चैव गवानृते । ब्रह्महाजायतेकुट्टी स्याद्यदन्तस्तुमधपः  
कुनलीस्वर्णहरणाद्दुश्चर्मांगुलल्पगः । संयोगीदीनयोनिःस्याद्दृष्टोऽदत्तदानः

ग्रामशूकरता याति ह्ययाज्ययाजको नृपः ।

मरो वै वटुयार्जा स्याच्छ्लाऽनिमन्त्रितभोजनात् ॥ १४ ॥

अपरीक्षितभोजीस्याद्धानरोचिजने वने । चितर्जकोऽथमार्ज्वरन्ध्रघोतः कक्षदाहतः

अविद्या य प्रयच्छेत बलीवर्दी भवेद्धि सः ।

अन्न पयुं पित विप्रे ददानः कर्लावता मजेन् ॥ १६ ॥

मानसयादथ ज्ञात्यन्धो जन्मान्धः पुस्तकं हरन् ।

फलान्याहरतोऽपत्यं प्रियते नाऽत्र सशयः ॥ १७ ॥

मृतोधानरतायातितन्मुक्तोऽपगलाडवान् । अदत्त्वामक्षयंस्तानिहानपत्न्योभवेन्नरः

हरन्वश्र भवेद्गोधा गरदः पवनाशनः । प्रवाजीगमनाद्राजन्मभेन्मरुपिशाचकः ॥

वानकोजलहन्ता च धान्यहन्ता च मूरकः । अप्राप्तयोधनागच्छन्भवेत्सर्पइतिध्रुतिः

गुग्दाराभिलार्थी च वृकलासो भवेच्चिरम् ।

जलप्रश्रवण यस्तु मित्वान्मन्स्यो भवेन्नरः ॥ २१ ॥

अचित्रयान्चित्रयन्वैचित्र्याक्षोभवेन्नरः । अयोनिगोतृकोहिस्यादुलूकअयपञ्चनात्

मृनम्यकादशाहे तु भुञ्जान भ्योपजायते । प्रतिध्रुत्यद्विजायार्यमददन्मधुको भवेन्

रात्रागमाद्द्वेददुष्टतम्करोधिदुराहकः । परिवादीद्विजातीनालभतेकाच्छपी तनुम्

अचेदुवल्को राजन्योनिं घाण्डालमग्निताम् ।

दुमग फलचिञ्जना वृश्चिको कृत्लीपतिः ॥ २५ ॥

माजाराऽग्नि पदा स्पृष्ट्वा रोगघान्परमासमुक् ।

सादयागमनात्पण्डो दुगन्धश्च सुगन्धहृत् ॥ २६ ॥

ग्रामभटा दिषाकर्त्तिर्देषज्ञो गदमो भवेन् ।

कृपण्डिन स्यान्माजारा मन्सो ध्यास एव च ॥ २७ ॥

स एव दृश्यत राजन्वकाशात्परममजाम् । यद्वातद्रापिपारक्यंस्वर्णवायदिया षट्

कृत्वाचे योनिमाप्नोतितेरर्ध्वीनात्रन्वंशयः । एवमादीनिधान्यानिधिहानिनृपसत्तम  
स्वकर्मचिह्नितान्येवदृश्यन्ते यस्तु मानवाः । ततोऽजन्मततोऽमृत्युःसर्वजन्तुषु भारत  
जायतेनाऽत्रसन्देहः समीभूतेशुभाऽशुभे । स्त्रीपुंसोःसम्प्रयोगेणविशुद्धेशुभःशोणिते  
पञ्चभूतसमोपेतः सपष्टः परमेश्वरः । इन्द्रियाणिमनः प्राणाः ज्ञानमायुःसुग्रंधृतिः  
धारणं प्रेरणं दुःखमिच्छाहङ्कार एव च । प्रयत्न आकृतिवर्णः स्वच्छेपो भवामवौ  
तस्येदमात्मनः सर्वमनादेरादिमिच्छतः ।

प्रथमे मासि स कलेद्भूतो धातुचिर्मूर्च्छितः ॥ ३५ ॥

मास्यवृद्धं द्वितीये तु तृतीये चेन्द्रियैर्युतः ।

आकाशाह्लाधवं सौदम्यं शब्दं श्रोत्रवलादिकम् ॥

वायोस्तु स्पर्शनं चेष्टां दहनं रौक्ष्यमेव च ॥ ३५ ॥

पित्तात्तु दर्शनं पक्तिर्माँष्ण्यं रूपं प्रकाशनम् ।

सलिलाद्रसनां शैत्यं स्नेहं कलेदं समादं वम् ॥ ३६ ॥

भूमेर्गन्धं तथा घ्राणं गौरवं मूर्त्तिमेव च । आत्मागृह्णात्यजःपूर्वतृतीयेस्पन्दनेघसः

दौर्हृदस्याऽप्रदानेन गर्भो दोषमवाप्नुयात् ।

वैरूप्यं मरणं वापि तस्मात्कार्यं प्रियं स्त्रियाः ॥ ३८ ॥

स्थैर्यं चतुर्यं त्वङ्गानां पञ्चमे शोणितोद्वयः ।

पष्टे बलं च घर्षणश्च नखरोम्णां च सम्भवः ॥ ३९ ॥

मनसा चेतनायुक्तो नखरोमशतावृतः । सप्तमे चाऽष्टमेर्षेव त्वघ्नावान्स्मृतिवानपि

पुनर्गर्भं पुनर्दात्रीमेनस्तस्य प्रधावति । अष्टमे मास्यतोऽर्गर्भो जातःप्राणीविद्युज्यते

नवमे दशमे चाऽपि प्रबलेः सूतिमारुतैः ।

निर्गच्छते वाण इव यन्त्रच्छिद्रेण सज्वरः ॥ ४२ ॥

शरीरावयवैर्युक्तो ह्यङ्गप्रत्यङ्गसंयुतः । अष्टोत्तरं मर्मशतं तत्रास्या तु शतत्रयम् ॥

सप्त शिरःकपालानि चिह्नितानि स्वयम्भुवा ।

तिष्ठः कोटयोऽर्द्धकोटी च रोम्णामङ्गेषु भारत ॥ ४४ ॥



द्वास्ततिसहस्राणि हृदयादभिनिस्तृता ।

हितानाम हि ता नाख्यस्नासा मध्ये शशिप्रभा ॥ ४५ ॥

एव प्रवृत्तते घ्नन् भूतप्राये क्षतुर्विधे । उत्पत्तिश्च चिनाशश्च भवत सचदेहिनाम् ॥  
गतिरुध्वाघ धर्मेण ह्यधर्मेण त्वधोगति । जायते सचवर्णानास्वधर्मघलनान्त्प  
देवन्वे मानवत्वे च दानभोगादिषा क्रिया ।

दृश्यन्ते या महाराज ! तन्सर्वं कर्मज फलम् ॥ ४८ ॥

स्वकर्मविहितेघोरे कामक्रोधापिते शुभे । निमज्जेघ्नरके घोरे यस्योत्तारो न विद्यते ।  
उत्तारणाय जन्तूनां नमन्ततदसस्थितम् । एधमतन्महानीर्थं नरकेश्वरमुत्तमम् ॥  
नरकापहं महापुण्यं महापातकनाशनम् । तत्तीर्थं सर्वतीर्थानामुत्तमं भुवि दुर्लभम्  
तत्र तीर्थं तु यः स्नात्वा पूजयेत् महेश्वरम् । महापातकयुक्तोऽपि नरकं नैव पश्यति  
तत्र तार्थं तु यो दद्याद्धनुर्वैतरणीशुभाम् । स मुच्यते सुखेनैव वैतरणानसशय  
युधिष्ठिर उवाच

यमद्वारमहाघोरयासा वैतरणी नदी । किं रूपा किंमाणासाकथसावहतिद्विज  
कथं तन्धा प्रमुच्यन्ते केना वासस्तु सन्ततम् ।

केना तु साऽनुकूला सा क्षोभस्तिस्तरतो घद ॥ ५५ ॥

श्रीमाकण्डेय उवाच

धमपुत्र महाबाहो शृणु सर्वं मयोदितम् । या सावैतरणीनाम यमद्वारेमहासरित्  
अगाधा पाररहिता दृष्टमात्रा भयावहा । पूयशोणिततोयासामामकर्हमनिर्मिता  
ततोय भ्रमते तर्णं तापीमध्ये कृत यथा । इमिभिः सङ्कलं पूयं यज्जतुण्डैर्योमुखं  
शिशुमारैश्चमकरैश्चकत्तरि सयुते । अन्यैश्च जलजीविंसा सुहिंस्रैर्मर्मभेदिभि  
तपन्ति द्वादशादित्याः प्रलयान्तं द्योत्वगा ।

पतन्ति तत्र च मर्यादं नो भृशदारुणम् ॥ ६० ॥

हा भ्रात पुत्र हा मातं प्रतपन्तिमुदुर्मुहुः ।

असिपत्रवने घोरे पतन्ते योऽभिरक्षति ॥ ६१ ॥

प्रतरन्ति निमज्जन्ति ग्लानिं गच्छन्ति जन्तवः ।

चतुर्विधैः प्राणिगणैर्द्रष्टव्या सा महानदी ॥ ६२ ॥

तरन्ति तस्यां सद्दानैरन्यथानुपतन्ति ते । मातरं ये न मन्यन्ते प्राघार्यं गुण्येव च  
अवजानन्ति मूढा ये तेषां वामस्तु सन्ततम् ।

पतिव्रतां साधुश्रीलामूढां धर्मेषु निश्चलाम् ॥ ६४ ॥

परित्यजन्ति ये पापाः सन्तनं तु वसन्ति ते ।

विश्वासप्रतिपन्नानां स्वामिमित्रतपस्विनाम् ॥ ६५ ॥

स्त्रीयालवृद्धदीनानां चिच्छद्रमन्वेपयन्ति ये । पच्यन्तेतत्रमध्यैर्वैक्रन्दमानाः सुपापिनः  
श्रान्तं बुभुक्षितं चिप्रं योचिप्रयतिदुर्मतिः । कृमिभिर्भक्ष्यते तत्र याचकल्पशतत्रयम्  
ब्राह्मणाय प्रतिश्रुत्ययोदानं न प्रयच्छति । आइयनास्तियोत्रतेतस्य वामस्तुसन्ततम्  
अग्निदोगरदध्वं राजगामी च पेशुनी । कथाभङ्गकरध्वं कूटसार्क्षी च मद्यपः ॥  
चक्रविध्वंसकध्वं स्वयंदत्तापहारकः । नुशेत्रसेतुभेदी च परदारप्रधर्षकः ॥ ७० ॥  
ब्राह्मणोरसचिक्रेता वृषलीपतिरेव च । गोकुलस्यनृपात्तस्य पालीभेदं करोति यः  
कन्याभिद्रूपकध्वं दानंदत्त्वानु तापकः । शूद्रस्तुकपिलापानीब्राह्मणोमांसभोजनी  
पते वसन्ति सततं मा विचारं कृथा नृप ! सानुकूलाभवेद्येन तच्छृणुष्य नराधिप  
अयने विपुत्रे चैव व्यतीपाते दिनक्षये । अन्येषु पुण्यकालेषु दीयते दानमुत्तमम् ॥

कृष्णां वा पाटलां चापि कुर्याद्वैतरणीं शुभाम्

स्वर्णशृङ्गीं रूप्यसुरां कांस्यपात्रस्य दोहिनीम् ॥ ७५ ॥

कृष्णचक्रयुगाच्छत्रां सप्तधान्यसमन्विताम् ।

कुर्यात्सद्रोणशिखर आसीनां ताम्रभाजने ॥ ७६ ॥

यमं हैमं प्रकुर्वीत लोहदण्डसमन्वितम् । इक्षुदण्डमयं वदध्या ह्युडुपं पट्टवन्धनैः  
उडुपोपरितांधेनुं सूर्यदेहसमुद्भवाम् । कृत्वाप्रकल्पयेद्विद्वाञ्छत्रोपानद्युगान्विताम्

अङ्गुलीयकवासांसि ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।

इममुच्चारयेन्मन्त्रं सङ्गृह्याऽस्याश्च पुच्छकम् ॥ ७६ ॥

उभयमद्वारे महाघोरे या सार्धैतरणीनदी । तनु कामोद्दाम्येनातुम्यचैतरणिनम  
 ॥ इत्यधिवासनमन्त्र ॥

गाथो मे घाग्रत सन्तु गाथो मे सन्तु पृष्ठत ।

गाथो मे हृदये सन्तु गवा मध्ये घसाम्यहम् ॥ ८१ ॥

ॐ विष्णुरूपद्विजश्रष्टभूदेवपङ्क्तिपावन । सद्दक्षिणामया दत्ता तुम्यचैतरणि नम  
 ॥ इति दातमन्त्र ॥

ब्राह्मण धमराज घ धेनु वैतरणीं शिवाम् । सर्वप्रदक्षिणीकृत्य ब्राह्मणायनिवेदयेत्  
 पुच्छ सङ्गृह्य सुरभेरग्रे कृत्वा द्विजं तन ॥ ८४ ॥

धेनुके त्व प्रतीक्षस्व यमद्वारे महाभय । उत्तिर्तीषु रह धेनो वैतरण्यै नमोऽस्तु  
 ॥ इत्यनुवज्रमन्त्र ॥

अनुवनेत गच्छन्त सर्वं तस्य गृह नयेत् । एवकृतेमहीपात्सरित्स्यात्सुखवाहिर्न  
 नारयत तथा धेन्वा सा सरिज्जलवाहिनी ।

सवान्कामानवाप्नोति ये दिव्या ये च मानुषा ॥ ८७ ॥

रोगारोगाद्धिमुक्त स्याच्छाम्यति परमापद ।

स्वस्थ सहस्रगुणितमानुरे शतसम्मितम् ॥ ८८ ॥

सुतस्यैव तुयद्दान परोभक्तसम स्मृतम् । स्वहस्तेन ततोदियमृते क्वकस्यदास्यति  
 इति मत्वा महाराज स्वदत्त स्यामहाफलम् ।

इत्येवमुक्त तव धमसूतो दान मया वैतरणीसमुत्थम् ।

गणोति भक्त्या पत्नीह सम्भवस याति विष्णो पदमप्रमेयम् ॥ ९० ॥

श्रीमाकण्डेय उवाच

प्राप्त चाश्वयुज मासि तस्मिन्कृष्णा चतुर्दशी ।

स्नात्वा कृत्वा सत श्राद्ध सम्पूज्य च महेश्वरम् ॥ ९१ ॥

पितृभ्यो दीयते दान भक्तिश्रद्धात्ममन्वितै ।

पश्चाज्जागरण कुयात्सत्कथाश्रवणादिभि ॥ ९२ ॥

ततः प्रभातसमये स्नात्वा वै नर्मदाजले । तर्पणंविधिवत्कृत्वा पितृणां दीवपूर्वकम्  
सौवर्णे घृतसंयुक्तं दीपं दद्याद् द्विजातये ।

पश्चात्सम्मोजयेद्विप्रान्स्वयं चैव विमत्सरः ॥ ६४ ॥

एवंकृतेनरथेष्ट! न जन्तुर्नरकं व्रजेत् । अवश्यमेव मनुजैर्द्रष्टव्या नारकी स्थितिः ॥  
अनेन विधिना कृत्वा नपश्येन्नरकात्तरः । तत्र तीर्थमृतानां तु नराणांविधिनानृप  
मन्वन्तरंशिवेलोकेशोभवतिदुर्लभे । विमानेनाऽर्कघर्णेनकिङ्किणीशतशोभिना  
स गच्छति महाभाग! सेव्यमानोऽप्सरोगणैः ।

भुनक्ति विविधानभोगानुक्तकालं न संशयः ॥ ६८ ॥

पूर्णे चैव ततः काल इह मानुष्यतां गतः ।

सर्वव्याधिचिनिर्मुक्तो र्जावेच्च शरदां शतम् ॥ ६६ ॥

प्राप्यचाश्र्वयुजेमासिकृष्णपक्षेघतुर्दर्शाम् । अहोरात्रोपितोभूत्वापूजयित्वामहेऽवरम्  
महापातकयुक्तोऽपि मुच्यते नाऽत्र संशयः ॥ १०० ॥

अष्टाविंशतिकोट्योर्वैनरकाणांयुधिष्ठिर ! । विमुक्तानरकैर्दुःखैःशिवलोकंव्रजन्तिते  
तत्र भुक्त्वा महाभोगान्दिव्यैर्धन्यसमन्वितान् ।

लभन्ते मानुषं जन्म दुर्लभं भुवि मानवाः ॥ १०२ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायांपञ्चमेऽवन्तीखण्डे  
रेवाखण्डेऽनरकेऽवरतीर्थमाहात्म्यघर्णनंतामैकोनपष्ट्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥

## पष्ठुत्तरशततमोऽध्यायः

### मोक्षतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्पाण्डुपुत्र मोक्षतीर्थमनुत्तमम् । सेवितदेवगन्धर्वमुनिभिश्च तपोधने  
यहवस्तत्र जानन्ति विष्णुमायाविमोहिता ।

यत्र सिद्धा महाभागा ऋषयः सतपोधना ॥ २ ॥

पुलस्त्य पुलहो विठान्कतुर्ध्वज महामति । प्राचेतसोपसिष्टश्च दक्षो नारदपच  
एते चाऽन्ये महाभागा सप्तसाहस्रसङ्घिता ।

मोक्ष गता सह सुतेस्ततीर्थं तेन मोक्षदम् ॥ ४ ॥

तत्र प्रवाहमध्ये तु पतिता तमहा नदी । तत्र तस्मिन् तीर्थं सवपापक्षयङ्करम् ॥  
ऋषयस्तु सामसंज्ञानामभ्यस्ताना तु यत्फलम् ।

सम्यग्जप्त्वा तु विधिना गायत्रीं तत्र तद्भवेत् ॥ ६ ॥

तत्र दत्तं हुत जप तीर्थसेवाजितं फलम् । सवमक्षयतां याति मोक्षसाधनमुत्तमम्  
तत्र तीर्थं मृतानां तु सन्यासेन द्विजग्मनाम् ।

अनियत्तिका गतिस्तेषां मोक्षतीर्थप्रभावतः ॥ ८ ॥

एतेविधिरद्विष्ट संक्षेपेण मयाऽनघ । द्युष्टिस्तीर्थस्य महतीपुराणे चाऽभिधीयते  
इति श्रीस्वान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यासहिताया पञ्चमेऽध्यायस्य ऋषेः

रघोरघण्डे मोक्षतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम पष्ठुत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १६० ॥



# एकपण्ड्युत्तरशततमोऽध्यायः

सर्पतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेन्महाराज सर्पतीर्थमनुत्तमम् ।

यत्र सिद्धा महासर्पास्तपस्तप्त्वा युधिष्ठिर ॥ १ ॥

वासुकिस्तक्षकोवोरः सर्पं पेशवतस्तथा । कालियश्चमहाभागःकफोटकधनञ्जयो  
शङ्खचूडो महातेजा धृतराष्ट्रो वृकोदरः । कुलिको वामनश्चयतेपां ये पुत्रपौत्रिणः

तत्र तीर्थं महापुण्ये तपस्तप्त्वा सुदृष्ट्वरम् ।

भुञ्जन्ति विविधान्भोगान्क्राडन्ति च यथासुगम् ॥ ४ ॥

तत्र तीर्थं तुयः स्नात्वातपयेत्पितृद्वेषताः । घ्राजपेयफलं तस्य पुरा प्रोवाच शङ्करः

स्नातानांसर्पतीर्थंतुनराणां भुविभारत । सर्पवृश्चिकजातिभ्योन भयंविद्यतेकचित्

मृतो भोगवर्ती गत्वापूज्यमानोमहोरगैः । नागकन्यापरिश्रुतो महाभोगपतिर्भवेत्

मार्गशीर्षस्य मासस्य कृष्णपक्षे च याऽऽमी ।

सोपवासः शुचिभूत्वा लिङ्गं सम्पूरयेत्तिलैः ॥

यथाविभवसारेण गन्धपुष्पैः समघ्रयेत् ॥ ८ ॥

एवं विधाय विधिचतुष्टयप्रणित्यक्षमापयेत् । तस्य यत्फलमुद्दिष्टं तच्छृणुष्वनरेव

तिलास्तत्र च यत्सङ्ख्याः पत्रपुष्पफलानि च ।

तावत्स्वर्गपुरे राजन्मोदते कालमीप्सितम् ॥ १० ॥

ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टो जायते विमले कुले । सुरूपः सुभगश्चैवधनकोटिपतिर्भवेत् ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे

रेवाखण्डे सर्पतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नामैक्यष्टमोत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १६१ ॥

## द्विपञ्चुत्तरशततमोऽध्यायः

गोपेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

गोपेश्वरं ततो गच्छेत्सर्पक्षेत्रादनन्तरम् । यत्र स्नानेन चैकेन मुच्यन्ते, पातकेन च  
तत्रतीर्थेन्युय स्नात्वा बुद्धे प्राणसशयम् । सगच्छेद्यदियुक्तोपिपापेन शिवमदिरम्  
तत्र तीर्थे न्युय स्नात्वा पूजयेद्देवमीश्वरम् । मुच्यते सर्वपापैश्च रूढलोकसगच्छति  
क्राडित्वा च यथाकाम रूढगेके महातपाः ।

इह मानुष्यता प्राप्य राजा भवति धार्मिकः ॥ ४ ॥

हृस्वपेश्वरसम्पन्नो दासीदाससमन्वितः । पूज्यमानो नरेन्द्रैश्च जीवेद्दशशतसुखी  
इति श्रीस्वान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्या सहिताया पञ्चमेऽध्वन्तीखण्डे  
शेवाखण्डे गोपेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम द्विपञ्चुत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १६२ ॥

## त्रिपञ्चुत्तरशततमोऽध्यायः

नागतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

सतो गच्छेन्महाराज नागतीर्थमनुत्तमम् । आश्विनस्य सितेपक्षे पञ्चम्या नियतशुचि  
रात्रौ जागरणं कृत्वा गन्धधूपनिवेदनैः ।  
प्रभाते विमले स्नात्वा धाद कृत्वा यथाविधि ॥ २ ॥  
मुच्यते सर्वपापेभ्यो नाऽत्र कार्या विचारणा ।  
तत्र तीर्थं तु यो राजन् राजपटशाग करिष्यति ॥ ३ ॥

अनिवर्त्तिका गतिस्तस्य प्रोवाचेति शिवः स्वयम् ॥ ४ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे  
रेवासखण्डे नागतीर्थमाहात्म्यवर्णननाम त्रिपण्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १६३ ॥

## चतुःषष्ट्युत्तरशततमोऽध्यायः

### साम्बोरेश्वरतीमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डे यदवाच

ततो गच्छेन्महाराज! साम्बोरं तीर्थमुत्तमम् ।

यत्र सन्निहितो भानुः पूज्यमानः सुरासुरैः ॥ १ ॥

तत्रयेपङ्कतांप्राप्ताःशीर्णघ्राणनखानराः । दद्रुमण्डलमिन्नाङ्गा मक्षिकाकृमिसङ्कुलाः

मातापितृभ्यां रहिता भ्रातृभार्याचिचर्जिताः ।

अनाथा चिकला व्यङ्गा मग्ना ये दुःखसागरे ॥ ३ ॥

तेषां नाथो जगद्योनिर्नमदातटमाश्रितः ।

साम्बोरनाथो लोकानामार्त्तिहा दुःखनाशनः ॥ ४ ॥

तत्र तीर्थेतुयः स्नात्वामासमेकानिरन्तरम् । पूजयेद्वास्करंदेवं तस्यपुण्यफलं शृणु ;

यत्फलं चोत्तरे पार्थ! तथाचै पूर्वसागरे । दक्षिणेपश्चिमेस्नात्वातत्रतीर्थेतुतत्फलम्

कौमारेयौघनेपापंवाद्धकेयच्चसञ्चितम् । तत्प्रणश्यत्तिसाम्बोरैस्नानमात्रान्नसंशयः

न व्याधिर्नैव दारिद्र्यं न घैवेष्टवियोजनम् ।

सप्तजन्मानि राजेन्द्र! साम्बोरपरिसेवनात् ॥ ८ ॥

सप्तम्यामुपवासेन तद्विनेघाप्युपोषिते । सतत्फलमवान्जोति तत्रस्नात्वानसंशयः

रक्तचन्दनमिश्रेण यदर्घ्येण फलं स्मृतम् ।

तत्र तीर्थे नृपश्रेष्ठ! स्नात्वा तत्फलमाप्नुयात् ॥ १० ॥



नर्मदामलित रम्य सर्वपातकनाशनम् ।

निरीक्षित विशेषेण साम्ब्यैरेण महात्मना ॥ ११ ॥

ते धन्यास्ते महात्मानस्तेषा जन्म सुजीवितम् ।

स्नात्वा पश्यन्ति देवेश साम्ब्यैरेवरमुत्तमम् ॥ १२ ॥

सूर्यगेके पसेत्तावद्यावदाभूतसम्प्लवम् ॥ १३ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्रया सहिताया पञ्चमेऽवन्तीखण्डे  
रेवाखण्डेसाम्ब्यैरेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णननाम चतुःषष्ट्युत्तरशततमोऽध्यायः

## पञ्चपण्ड्युत्तरशततमोऽध्यायः

सिद्धं शरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रामार्कण्डेय उवाच

नमदादक्षिणे कृते सिद्धेश्वरमिति श्रुतम् ।

ताथ पर महाराज' सिद्धै कृतमिति प्रभो ॥ १ ॥

तत्र तीर्थ महापुण्य सबतार्थेषुपावनम् । नर्मदायामहाराज दक्षिण कूलमाश्रितम्

तत्र तीर्थे नर स्नात्वा तप्पयेत्पितृदेवता । श्राद्धतत्रैवयोदद्यात्पितृनुद्दिश्य भारत

तृप्यन्ति पितरस्तस्य द्वादशाब्दाद्य सशय' ।

तत्र तार्थे तु यो भक्त्या स्नात्वा पूजयते शिवम् ॥ ४ ॥

रात्रौ नागरण कृत्वा पठेत्पौराणिकीं कथाम् ।

तत प्रभाते चिमले स्नान कुर्याद्यथाविधि ॥ ५ ॥

वीथ्यते गिरिजाकान्त स गच्छेत्परमा गतिम् ।

पुरा सिद्धा महाभागा कपिलाद्या महर्षय' ॥ ६ ॥

जपन्तश्च पर ब्रह्म योगसिद्धा महाव्रता ।

सिद्धिं ते परमां प्राप्ता नर्मदायाः प्रभावतः ॥ ७ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे  
रेवाखण्डे सिद्धेश्वरीतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चपट्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥

षट्पञ्च्यधिकशततमोऽध्यायः

सिद्धेश्वरीदेवीतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततः सिद्धेश्वरीदेवीचैष्णवीपापनाशिनी । आनन्दं परमं प्राप्ताद्दृष्ट्वास्थानं सुशोभनम्  
तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा पूजयेत्पठेद्वेदाः । देवीं पश्यति यो भक्त्या मुच्यते सर्वपातकैः

मृतवत्सा तु या नारी बन्ध्या स्त्री जननी तथा ।

पुत्रं सा लभते नारी शीलवन्तं गुणान्वितम् ॥ ३ ॥

तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा पश्येद्देवीं सुभक्तितः ।

अष्टम्यां वा चतुर्दश्यां सर्वकालेऽथवा नृप ॥ ४ ॥

सङ्गमे तु ततः स्नातः नारीवापुरुषोऽपि वा । पुत्रंधनं तथा देवीददाति परितोपिता  
गोत्ररक्षां प्रकुरुते दृष्ट्वा देवी सुपूजिता । प्रजां च पाति सततं पूज्यमानान् संशयः

नवम्यां च महाराज! स्नात्वा देवीमुपोषितः ।

पूजयेत्परया भक्त्या श्रद्धापूतेन चेतसा ॥ ७ ॥

स गच्छेत्परमं लोकं यः सुरैरपि दुर्लभः ॥ ८ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे  
रेवाखण्डे सिद्धेश्वरीदेव्यास्तीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम पट्युत्तरशततमोऽध्यायः

## सप्तपट्टु चरशततमोऽध्यायः.

मार्कण्डेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

नर्मदादक्षिणे कृते त्वच्चिह्नो नोपलक्षितम् । तीर्थमेतन्मम प्राऽस्याहि सम्भवधमही

श्रीमार्कण्डेय उवाच

पुराकृतयुगम्यार्तो दक्षिणे गिरिमुत्तममम् । विन्ध्यसर्वगुणोपेतनियतो नियता  
अपिसडथे कृतातिथ्यो दण्डने न्यवन् चिरम् ।

उपित्वा सुचिरं कालं धर्माणामयुतं सुखी ॥ ३ ॥

तान्मृत्योन्ममनुपाप्य शिष्यैरनुगतस्ततः । निवृत्तं सुमहाभागं नर्मदाकूलमा  
पुण्यं च स्मरणाय च सर्वपापघ्निनाशनम् । कृत्वाऽहमास्पदतत्र द्वित्रसहस्रमा  
ब्रह्मधारीभिरार्कणं गार्हस्थ्ये सुप्रतिष्ठिते ।

धानप्रसन्धिं यतिभिर्यताहारैर्यतात्मभिः ॥ ६ ॥

तपस्विमिमहाभागं कामरूपेण चिचिन्तिते । तत्राऽहयर्षमयुत्तप कृत्वा सुदारु  
आराधय वासुदेव प्रभुं कर्नारमाश्वरम् । जपस्तपोभित्तिपमैर्नर्मदाकूलमाश्रित  
ततस्त्वां धरदो द्रव्यं समायातो युधिष्ठिरः ।

प्रत्यभौ भास्करौ राजन्नुमाश्रीभ्या विमूर्षितौ ॥ ६ ॥

प्रणम्याऽहं ततो द्रव्यं भक्तियुक्तो बधोऽग्रवम् ।

भवन्तो प्राथयामि स्म वराहो धरदो शिरो ॥ १० ॥

धमन्धिति महाभागो भक्तिं वाऽनुत्तमां युवाम् ।

अनरा व्याधिरहितं पञ्चविंशतिवचनम् ॥

अस्मिन्स्थाने सदा स्थेयं सह दुर्वैरसशयम् ॥ ११ ॥

एवमुक्त्वा मया पाथं तौ द्रव्यं कृष्णशङ्करौ ।

मामूचतुः प्रहृष्टौ तौ निवासार्थं युधिष्ठिर !॥ १२ ॥

देवावूचतुः

अस्मिन्स्थाने स्थितौ विद्धि सह देवैः सवासवैः ।

एवमुक्त्वा ततो देवौ तत्रैवाऽन्तरधीयताम् ॥ १३ ॥

हंचस्थापयित्वातौशङ्करंकृष्णमव्ययम् । कृतकृत्यस्ततोजातःसम्पूज्यसुसमाहितः  
तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा पूजयेत्परमेश्वरम् ।

मार्कण्डेश्वरनाम्ना वै विष्णुं त्रिभुवनेश्वरम् ॥ १५ ॥

३ गच्छेत्परमंस्थानं वैष्णवं शैवमेव च । धृतेन पयसावाऽथ दध्नाच मधुना तथा  
गार्मदेनोदकेनाऽथ गन्धधूपैः सुशोभनैः । पुष्पोपहारैश्च तथा नैवेद्यैर्न्नियतात्मवान्  
एवं विष्णोः प्रकुर्वीतजागरंभक्तितत्परः । स्नानादीनि तथाराजन्प्रयतःशुचिमानसः  
ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे चतुर्दश्यामुपोषितः । द्वादश्यां कारयेद्देवपूजनं वैष्णवो नरः  
एवं कृत्वा चतुर्दश्यामेकादश्यां नरोत्तम ! । वैष्णवंलोकमाप्नोति विष्णुतुल्यो भवेन्नरः  
माहेश्वरे च राजेन्द्र ! गणवन्मोदते पुरे । श्राद्धं च कुरुते तत्र पितृनुद्दिश्य सुस्थिरः  
तस्य ते ह्यक्षयां तृप्तिं प्राप्नुवन्ति न संशयः ।

नर्मदायां द्विजः स्नात्वा मौनी नियतमानसः ॥ २२ ॥

उपास्य सन्ध्यां तत्रस्थो जपं कृत्वा सुशोभनम् ।

तर्पयित्वा पितृन् देवान्मनुष्यांश्च यथाविधि ॥ २३ ॥

कृष्णस्य पुरतः स्थित्वा मार्कण्डेशस्य वा पुनः ।

ऋग्यजुःसाममन्त्रांश्च जपेदत्र प्रयत्नतः ॥ २४ ॥

ऋचमेकांजपेद्यस्तुऋग्वेदस्य फलं लभेत् । यजुर्वेदस्य यजुपासान्नासामफलं लभेत्  
एकस्मिन्भोजिते विप्रे कोटिर्भवंति भोजिता ।

मृतप्रजा तु या नारी चन्ध्या स्त्रीजननी तथा ॥ २६ ॥

ख्द्रांस्तु विधिवज्जप्त्वा ब्राह्मणो वेदतत्त्ववित् ।

रुद्रैकादशभिर्मन्त्रै स्नापयेत्कलशाम्भसा । पुत्रमाप्नोतिराजेन्द्र दीर्घायुषमवल्मयम्  
माकण्डेश्वरवृक्षान्यो दूरस्थानपि पश्यति ।

ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मुच्यते शङ्करोऽब्रवात् ॥ २६ ॥

य इदं शृणुयाद्भक्त्या पठेद्वा नृपसत्तम । नवपापविशुद्धात्मा जायनेनाऽप्रसशय  
इदं यशस्यमायुष्यधन्यं तु स्वप्ननाशनम् । पठताशृण्वता धाऽपिसर्वपापप्रमोचनम्  
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्या सहिताया पञ्चमेऽवन्तीखण्डे  
रेखाखण्डे माकण्डेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तपञ्च्युत्तरशततमोऽध्याय ॥

## अष्टपट्यधिकशततमोऽध्याय

### अडकूरेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमाकण्डेय उवाच

नमदादक्षिणे रोधस्यश्कुरेश्वरमुत्तमम् । तीर्थं सवगुणोपेतं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्  
यत्रसिद्धमहारक्षभाराध्यनु महेश्वरम् । शङ्करजगत प्राण स्मृतिमात्राघहारिणम्

युधिष्ठिर उवाच

किं तद्रक्षो द्विजधृष्टाकिनाम कस्यथाऽन्वये । पतद्विस्तरत सर्वकथयस्वममाऽनत्र  
अज्ञानतिमिरान्धा ये पुमांस पापकारिण ।

युष्मद्विधैर्दोषभूतै पश्यन्ति सघराघरम् ॥ ४ ॥

धमपुत्रवच धत्वामाकण्डेयोमुनाश्वर । स्मितशृचायभापेताकथापापप्रणाशनीम्  
माकण्डेय उवाच

मानसोऽन्नपुत्र पुलस्त्योनामपार्थिव । वेदशास्त्रप्रज्ञाघस्ताश्राद्धेधाऽर्वाऽपर  
तृणविन्दुमुना तस्य भायाऽऽस्तात्परमेष्ठिन ।

तस्य धमप्रसङ्गेन पुत्रो जातो महामना ॥ ७ ॥

यस्माद्देदेतिहासैश्च सपडङ्गपदक्रमाः । विश्रान्ता ब्रह्मणा दत्ता नामविश्रवसेति च  
कस्मिश्चिदथ काले च भरद्वाजो महामुनिः ।

स्वसुतां प्रददौ राजन्मुदा विश्रवसे नृप ॥ ६ ॥

स तथा रमतेसार्थं पौलोम्या मघवा इव । मुदा परमथाराजन्ब्राह्मणो वेदचित्तमः  
केनचित्त्वथकालेन पुत्रः पुत्रगुणैर्युतः । जज्ञे विश्रवसो राजन्नाम्ना वैश्रवणः श्रुतः  
सोऽपिमौनव्रतं कृत्वा बालभावाद्युधिष्ठिर । सर्वभूताभयं दत्त्वा च चार परमम्ब्रतम्  
तस्य तुष्टो महादेवो ब्रह्मा ब्रह्मर्षिभिः सह ।

सखित्वं चेश्वरो दत्त्वा धनदत्त्वं जगाम ह ॥ १३ ॥

यमेन्द्रवरुणानां च घतुर्यस्त्वं भविष्यसि ।

ब्रह्माऽप्युक्त्वा जगामाऽऽशु लोकपालत्वमीप्सितम् ॥ १४ ॥

ततस्त्वनन्तरेकालेकैकसीनामराक्षसी । पातालंभूतलं त्यक्त्वा विश्रवं चकमे पतिम्  
पुत्रोऽथ रावणो जातस्तस्या भरतसत्तम ॥

कुम्भकर्णो महारक्षो धर्मात्मा च विभीषणः ॥ १६ ॥

कुम्भश्चैव निकुम्भश्च कुम्भकर्णसुताद्युभौ । महाबलौ महावीर्यौ महान्तौ पुरुषोत्तम  
अङ्कुरो राक्षसश्रेष्ठः कुम्भस्य तनयो महान् ।

विभीषणं च गुणवद्दृष्ट्वा चैवं राक्षसोत्तमः ॥ १८ ॥

ततः स यौवनं प्राप्य ज्ञात्वा रक्षः पितामहम् । परं निर्वेदमापन्नश्चचार सुमहत्तपः  
दक्षिणं पश्चिमं गत्वा सागरं पूर्वमुत्तरम् । नर्मदायां प्रसङ्गेन ह्यङ्कुरोराक्षसेश्वरः  
तपश्चचार सुमहद्विष्यं वर्षशतं किल । ततस्तुष्टो महादेवः साक्षात्परपुरञ्जयः ॥२१॥  
वरेण च्छन्दयामास राक्षसं वृषकेतनः । वरं वृणीष्व भन्दते तव दास्यामि सुव्रत  
प्रोवाच राक्षसो वाक्यं देवदेवं महेश्वरम् । वरदं सोऽग्रतो दृष्ट्वा प्रणम्य च पुनःपुनः

यदि तुष्टो महादेव! वरदोऽसि सुरेश्वर ॥

दुर्लभं सर्वभूतानाममरत्वं प्रयच्छ मे ॥ २४ ॥

ममनाम्ना स्थितोऽनेनवरेण त्रिपुरान्तक ॥ सदासन्निहितोऽप्यत्रतीर्थे भवितमर्हसि

ईश्वर उवाच

यावद्विभीषणमतयाघदमनिषेधणम् । करिष्यन्ति दृढात्मात्थ तावदेतद्विष्यति  
एवमुक्त्वा ययौ देव सघईयतपूजित । विमानेनाऽकवर्णेन कैलास धरणीधरम्  
गते षाऽदशन दधे स्नात्वाऽऽघम्य विधानत ।

स्थापयामास राजेन्द्र' ह्यङ्कुरेश्वरमुत्तमम् ॥ २८ ॥

गन्धपुष्पैस्तथा धूपैवखाडङ्कारभूषणै । पताकेश्चामरैश्छत्रैजयशब्दादिमङ्गलै'  
पूजयित्वा सुरेशान स्तोत्रैह्यै सुपुष्कलै' ।

जगाम भवन रक्षो यत्र राजा विभीषण ॥ ३० ॥

पूजित स यथान्याय दानसन्मानगौरवै ।

सौंदर्ये स्थापिनो भावे सोऽषासीत्सीत्परयामुदा ॥ ३१ ॥

तत्रतीर्थे तु य स्नात्वापूजयेत्परमेश्वरम् । अङ्कुरेश्वरनामान सोऽश्वमेधफलभेत्  
भाण्डव्यखातमारभ्य मङ्गम घाऽपि यच्छुभम् ।

रेवाया आमलक्याश्च देवक्षेत्र महेश्वरम् ॥ ३३ ॥

भाण्डव्यखातात्पश्चिमस्तस्तीर्थं सदाङ्कुरेश्वरम् ।

तत्र तीर्थे नर स्नात्वा शुचि प्रयतमानस ॥ ३४ ॥

मन्थ्यामाघम्ययत्नेन जपङ्कुराऽथभारत । तपयित्वापितृन्देवान्मनुष्यान्भरतयम  
सखे' क्तिन्नवसनीमीनमास्थापयसयत । अष्टम्या वा चतुर्दश्यामुपोष्यविधिधन्नर

पूजा य करुते राजस्तस्य पुण्यफळ शृणु ।

मद्य तु योजतशत तीथान्यायतनानि च ॥ ३७ ॥

भवन्ति तानि दृष्टानि तत पापे प्रमुच्यत ।

अनिवर्त्तिकागतिस्तस्यरुद्रलोकादसंशयम् । कृमिकीटपतङ्गानां तत्रतीर्थेयुधिष्ठिर

अङ्कुरेश्वरनामाख्ये मृतानां सुगतिर्भवेत् ॥ ४१ ॥

एतत्ते कथितं राजन्नङ्कुरेश्वरसम्भवम् । तीर्थं सर्वगुणोपेतं परमम्पापनाशनम् ॥

येऽपि शृण्वन्ति भक्त्येदं कीर्त्त्यमानं महाफलम् ।

लभन्ते नाऽत्र सन्देहः शिवस्य भुवनं हि ते ॥ ४३ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे  
रेवाखण्डे अङ्कुरेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनामाऽष्टपञ्च्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥

## एकोनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

### काममोदिनीतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततोगच्छेत्परंतीर्थंपुण्यंप्रापप्रणाशनम् । माण्डव्योयत्रसंसिद्धऋषिनारायणस्तथा  
नारायणेन शुश्रूपाशूलस्थेनकृतापुरा । तत्र स्नात्वामहाराज मुच्यतेपापकञ्चुकात्  
युधिष्ठिर उवाच

आश्चर्यमेतल्लोकेषु यच्चवया कथितं मुने ! । न दृष्टं न श्रुतं तात! शूलस्थेन तपः कृतम्  
एतत्सर्वं कथय मे ऋषिभिः सहितस्य वै ।

अस्य तीर्थस्य माहात्म्यं माण्डव्यस्य कृतहलात् ॥ ४ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन्यथावृत्तं पुरा वेतायुगेक्षितौ । लोकपालोपमो राजादेवपन्नोमहामतिः  
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च यज्वादानरतः सदा । प्रजा ररक्ष यत्नेन पिता पुत्रानिचौरसान्  
दात्यायनीप्रिया भार्या तस्य राज्ञोवशानुगा । हारजूपुरव्योपेण भङ्गास्ववनादिता  
परस्परं तयोः प्रीतिर्वर्द्धतेऽनुदिनं नृप ! ।



घशस्तम्भे स्थितो राजा सशस्ति पृथिवीमिमाम् ॥ ८ ॥

हस्त्यध्वरथसम्पूर्णा धनवाहनसयुताम् । अलङ्कृतो गुणैः सर्वैरनपत्यो महीपति  
दुःखेनमहताऽऽविष्ट सन्ततः सन्ततिविना । स्नानहोमरतो नित्यद्वादशाब्दानि भारत  
प्रतोपवासनियमैः पत्नीभिः सह तस्थियान् ।

आराधयद्भगवतीं घामुण्डा मुण्डमर्दिनीम् ॥ ११ ॥

स्तोत्रैरनेकैभक्त्या च पूजाविधिसमाधिना ।

जय चाराहि घामुण्डे जय देवि ! त्रिलोचने ! ॥ १२ ॥

ब्राह्मि ! रौद्रि ! घ कौमारि ! कात्यायनि ! नमोऽस्तु ते ।

प्रचण्डे ! भैरवे ! रौद्रि ! योगिन्याकाशनामिनि ! ॥ १३ ॥

नास्तिकिश्चिन्वयाहानत्रैः लोक्ये सघराचरे । राज्ञास्तुताघसतुणा देवीवचनमब्रवीत्  
घरयन्व यथाकाम यस्ते ( यत्ते ) मनसि वर्त्तते ।

आराधिता त्वया भक्त्या तुष्टा दान्यामि तं वरम् ॥ १५ ॥

देवपन्न उवाच

यदि तुष्टाऽसि देवेशि यराहो यदिवाऽप्यहम् । पुत्रसन्तानरहितं मतम मासमुद्धर  
सन्तान नयमे वृद्धिगोत्ररक्षा कुरुष्व मे । धपुत्रिणागृहार्णाह श्मशानसदृशानिहि  
पितरस्तन्वनाश्रन्ति देवताञ्जलिभिः सह । क्रियमाणेऽप्यहरह ध्राद्धेमरिपतर सदा  
दशयन्ति सदाऽऽमान स्वप्ने श्रुत्पीडित मम ।

इति राज्ञो वचनं श्रुत्वा देवी ध्यानमुपागता ॥ १६ ॥

दिव्येन सश्रुत्वा दृष्ट व्रैः लोक्ये सघराचरम् । प्रसन्नवचना देवी राजानमिदमब्रवीत्  
सन्तान नाऽस्ति त गान्धर्वैः लोक्ये सघराचरे ।

यन्व यत्पुत्र्यमप्य नास्ति तेऽन्यथा ॥ २१ ॥

मया द्रुपमहीपालवैः लोक्ये दिव्यवचना । एवमुक्त्वा गता देवी राजास्वगृहमागतम्  
इयाज यत्पुत्र्य सजाता कन्यका ततः । नञ्स्विनी रूपवती स्वर्गोक्तमनोहरा ॥

तस्या नाम कृतं पित्रा हर्षात्कामप्रमोदिनी ॥ २४ ॥

ततःकालेनववृधेरूपेणास्तम्भयज्जगत् । हंसलीलागतिः सुभ्रुः स्तनभाराचनामिता  
रक्तमाल्याम्बरधरा कुण्डलाभरणोज्ज्वला ।

दिव्यानुलेपनवती सखीभिः सा सुरक्षिता ॥ २६ ॥

कुचमध्यगतो हारोविद्युन्मालेवराजते । भ्रमराञ्चितकेशीसाविम्बोष्ठीचारुहासिनी  
कर्णांतप्राप्तनेत्राभ्यां पिवन्तीवाऽथ कामिनः ।

चन्द्रताम्बूलसौरभ्यैराकर्षन्तीच मन्मथम् ॥ २८ ॥

कम्बुग्रीवा घारुमध्या ताम्रपादाङ्गुलीनखा ।

निम्ननाभिः सुजयना रम्भोरु सुदती शुभा ॥ २९ ॥

मातापितृसुहृद्भर्गे क्रीडानन्दविवर्दिनी ।

एकस्मिन्दिवसे वाला सर्खावृन्दसमन्विता ॥ ३० ॥

चन्द्रनागरुताम्बूलधूपसौमनसाञ्चिता । गृहीत्वा पुष्पधूपादि गता देवीप्रपूजने ॥  
तडागतट उत्सृज्यभूषणान्यङ्गवेष्टकान् । चक्रुःसरसिताःक्रीडां जलमध्यगतास्तदा  
क्रीडन्तीतामवेक्ष्याथससर्खीं विमलेजले । राक्षसःशंभरो नामश्येनरूपेणचाऽगमत्

गृहीता जलमध्यस्था तेन सा काममोदिनी ।

खमुत्पपात दुष्टात्मा गृहीत्वाऽऽभरणान्यपि ॥ ३४ ॥

वायुमार्गं गतः सोऽथ कामिन्या सह भारत !

अपतन्कुण्डलादीनि यत्र तोये महामुनिः ॥ ३५ ॥

माण्डव्यो नर्मदातीरे काष्ठवत्सञ्चितेन्द्रियः । लीनोमाहेश्वरे स्थानेनारायणपदेपरे  
तस्य घानुचरोभ्राता भ्रातुः शुश्रूषणे रतः । तपोजपकृशीभूतो दध्यौदेवं जनार्दनम्  
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे  
रेवाखण्डेकाममोदिनीहरणवर्णनं नामैकोनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६६ ॥

## सप्तत्यधिकदानतमोऽध्यायः

माण्डव्यशूलारोपणसर्गनम्

धीमार्कण्डेय उवाच

शामप्रमोदिनीगम्यो नीयमानांघनेनतु । दृष्टानादनुब्रूयुःसर्पातिगृह्यजन्मध्यत  
गताराजगृहेसर्पा कथवन्तिसुदुःखिताः । शामप्रमोदिनीगज्ज्वलादयेनेनपक्षिणा

पाद्वर्ती य जटस्थाने तद्भागं देवसश्रिषी ।

धन्वप्या य स्वयाराजस्नस्य मार्गं पिज्ञानता ॥ ३ ॥

तासां तद्वचनं धत्वा देवस्र सुदुःखित ।

हाहेत्युपस्था समुत्थाय रद्मानो परासनात् ॥ ४ ॥

मन्त्रिभि सहितस्तस्मिन्तडागे जटसश्रिषी ।

न चिह्नं न च पन्थानं दृष्ट्वा दुःखाग्मुमोह य ॥ ५ ॥

तस्य राजस्यु दुःखेन दुःखिता नागरो जन ।

क्षणनाऽऽभ्यामिता राजा मन्त्रिभिः सपुरोहिते ॥ ६ ॥

किं कुम इत्युवाचदमस्मिन्काले विधीयताम् ।

सर्वेस्त्वस्मिन्निदं कृत्वा वाहिनीं चतुर्द्विणीम् ॥ ७ ॥

प्रणयामि दिशं मवा हस्यन्वयसकुंग । धादिप्राणिषवाशनेव्याकुलीभूतसङ्घे

नाराचैस्त्वोर्मर्भर्त्स्यङ्गे परवधादिभिः । राजासनाहयजोऽभूद्गनप्रसनेषिल

नद्योनघगन्धर्वोनर्दयोनच राक्षस । विपरिष्यनिराजाऽच नजानेरोपनिष्कृतिम्

नागरोऽपि जनन्तत्र दृष्ट्वा घषितप्रानत ।

घनुद्गशसहस्राणि दन्तिनां सृणिधारिणाम् ॥ ११ ॥

अश्वारोहसहस्राणि दृशति शस्त्रपाणिनाम् ।

रथाना त्रिससहस्राणि विंशतिमंस्तथम् ॥ १२ ॥

सङ्ग्राममेरीनिनदैःखुररेणुर्नभोगता । एतस्मिन्नंतरे तात रक्षको नगरस्य हि ॥  
 गृहीत्वाऽऽभरणं तस्यास्त्वङ्गप्रत्यङ्गिकंतथा । कुण्डलाङ्गदकेयूरहारनूपुरभङ्गरीः-  
 निवेद्याकथयद्राज्ञेमयादृष्टंत्ववेक्षणात् । तापसानामाश्रमे तु माण्डव्योयत्रतिष्ठति  
 तापसैर्वेष्टितो यत्र ददृशे तत्र सन्निधौ । दण्डवासिचचःश्रुत्वाप्रत्यक्षाङ्गविभूषणम्  
 स क्रोधरक्तनयनो मन्त्रिणो वीक्ष्यनैगमान् । ईदृग्भूतस्समाचारोब्राह्मणोनगरेमम  
 धौरचर्यां व्रतच्छन्नःपरद्रव्यापहारकः । तेनकन्याहृता मेऽद्य तपस्विपापकर्मिणा  
 शाकुन्तं रूपमास्थाय जलस्थो गगनं ययौ ।

पाखण्डिनो विकर्मस्थान्विडालव्रतिकाञ्छटान् ॥ १६ ॥

चाटुतस्करदुवृत्तान्हन्यान्नास्त्यस्य पातकम् ।

नद्रष्टव्यो मया पापः स्तेयी कन्यापहारकः ॥ २० ॥

शूलमारोप्यतां क्षिप्रंन विचारस्तुतस्यवै । सच वध्योमयादुष्टोरश्वोरूपी तपोधनः

एवं व्रवंश्चलन्क्रोधादादिश्य दण्डवासिनम् ।

कार्याकार्यं न विज्ञाय शूलमारोपयदुद्विजम् ॥ २२ ॥

पौरा जानपदाः सर्वे अश्रुपूर्णमुखास्तदा ।

हाहेत्युक्त्वा रुदन्त्यन्ये वदन्ति च पृथक्पृथक् ॥ २३ ॥

कुत्सितं सकृतंकर्मराज्ञा चण्डालचारिणा । ब्रह्मणोनैव वध्योहिविशेषेणतपोवृतः

यदि रोपसमाचारो निर्वास्यो नगरादुवहिः ।

न जालु ब्राह्मणं हन्यात्सर्वपापेऽप्यवस्थितम् ॥ २५ ॥

राष्ट्रादेनं वहिः कुर्यात्समग्रधनमक्षतम् । नाश्नातिचगृहे राजन्नाग्निर्नगरवासिनाम्

सर्वेऽप्युद्विग्नमनसो गृहव्याप्तिविचर्जिताः ॥ २६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे

रेवाखण्डे माण्डव्यशूलारोपणवर्णनं नाम सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७० ॥

## एकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

### शाण्टिलीमहर्षिमम्व्यादवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

कथितं ब्राह्मणं द्रष्टुं श्लेक्षितं तपोधनं । नारायणसर्मापे तु गताः सर्वे महर्षयः

नारदो देवलो रैभ्यो यमः शातानपोऽङ्गिराः ।

वसिष्ठो जमदग्निश्च याज्ञवल्क्यो बृहस्पतिः ॥ २ ॥

कश्यपोऽग्निर्भद्राजो विश्वामित्रोऽरुणिमुनिः ।

पालषिलयादयोऽन्ये च सर्वेऽप्यपिगणाऽन्वयाः ॥ ३ ॥

दृष्टुं शूलमारूढ माण्डव्यमृषिपुङ्गवाः । प्रोचुर्नारायण विप्रं किंकुर्मस्तवचेप्सितम्

सर्वे ते तत्र सान्निध्यान्माण्डव्यस्य महात्मनः ।

सम्भ्रान्ता आगता ऊचुः किं मृतं किं नु जीवति ॥ ५ ॥

अवस्था तस्यतद्रूपविषादमगमन्परम् । अमहित्वात्तुतद्बुधु खंसर्वेते मतसाडिजाः

पृच्छयता यदि मन्येत राजानं भस्मसात्कुह ।

तेषा तद्वचनं श्रुत्वा चाकथं नारायणोऽब्रवीत् ॥ ७ ॥

मयि जायति महृन्नाता ह्यवस्थामीदृशीं गतः ।

धिर्जीवित च मे किन्तु तपसो विद्यते फलम् ॥ ८ ॥

दृष्ट्वाशूलन्धित्तयेष्ट मन्मनोऽनुचिदीर्यते । परं किंकुकरिष्यामि येनराष्ट्रं सराजकम्

भस्मसाच्च करोम्यद्य भवद्भिः क्षम्यतामिह ।

एवमुक्त्वा गृहीत्वाऽसौ करस्थमभिमन्त्रयेत् ॥ १० ॥

क्रोधेन पश्यते यावत्तावदुधुङ्कारकोऽभवत् ।

नेन हुंकारशब्देन ऋषयो विस्मितास्तदा ॥ ११ ॥

माण्डव्यस्य सर्मापे तु ह्यपृच्छंस्ते द्विजोत्तमाः ।

निवारयसि किं विप्र! शापं नृपजिघांसनम् ॥ १२ ॥

अपापस्य तु येनेह कृतमस्य जिघांसनम् ।

ऋषीणां वचनं श्रुत्वा कृच्छ्रान्माण्डव्यकोऽब्रवीत् ॥ १३ ॥

अभिवन्दामि घोरमूर्ध्ना स्वागतं ऋषयः सदा ।

अर्व्यसन्मानपूजार्हाः सर्वेऽत्रोपविशन्तु ते ॥ १४ ॥

निविष्टैकाग्रमनसा सर्वान्माण्डव्यकोऽब्रवीत् ॥ १५ ॥

प्राप्तं दुःखं मयाघोरं पूर्वंजन्मार्जितंफलम् । माचिप्रादं कुरुध्वं भोःकृतं पापं तु भुज्यते

ऋषय ऊचुः

केन कर्मविपाकेन इहजात्यन्तरं व्रजेत् । दानधर्मफलेनैव केन स्वर्गं च गच्छति ॥

माण्डव्य उवाच

अदत्तदाना जायन्तेपरभाग्योपजीविनः । नस्नानंनजपोहोमो नातिथ्यंनसुरार्द्धनम्

नपर्वणिपितृश्राद्धंनदानं द्विजसत्तमाः । व्रजन्तिनरके घोरेयान्तितेत्वन्यजांगतिम्

पुनर्दग्धिः पुनरेव पापाः पापप्रभावात्नरके वसन्ति ।

तेनैव संसारिणि मर्त्यलोके जीवादिभूते क्लमयः पतङ्गाः ॥ २० ॥

ये स्नानशीला द्विजदेवभक्ता जितेन्द्रिया जीवदयानुशीलाः ।

ते देवलोकेषु वसन्ति हृष्टा ये धर्मशीला जितमानरोषाः ॥ २१ ॥

विद्याचिनीता न परोपतापिनः स्वदारतुष्टाः परदावर्जिताः ।

तेषां न लोके भयमस्ति किञ्चित्स्वभावशुद्धा गतकलमया हि ते ॥ २२ ॥

ऋषय ऊचुः

पूर्वजन्मनि विप्रेन्द्र! किं त्वयादुष्कृतं कृतम् । येन कष्टमिदं प्राप्तं सन्धानंशूलगर्हितम्

शूलस्थं त्वांसमालक्ष्य ह्यागताः सर्व एव हि । जीवन्तं त्वां प्रपश्याम त्वं तरन्नवतारयन्

रुजा सन्तापजं दुःखं सोढ्वापि त्वमवेदनः ॥ २३ ॥

माण्डव्य उवाच

स्वयमेव कृतं कर्म स्वयमेवोपभुज्यते । सुकृतं दुष्कृतं पूर्वं नान्ये भुञ्जन्ति कर्हिचित्

## एकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

### शाण्डिलीमहर्षिमन्त्रादवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

कथितं ब्राह्मणं द्रष्टुं शूलेक्षितं तपोधने । नारायणसमीपे तु गता सर्वे महर्षयः

नारदो देवलो रेभ्यो यमः शातातपोऽङ्गिरा ।

वसिष्ठो जमदग्निश्च याज्ञवल्क्यो वृहस्पतिः ॥ २ ॥

कश्यपोऽत्रिभरद्वाजो विश्वामित्रोऽरुणिमुनिः ।

वाग्बिल्व्यादयोऽन्ये च सर्वेऽप्यृषिगणाऽन्यथा ॥ ३ ॥

दृश्युः शूलमारुहः माण्डव्यमृषिपुङ्गवा । प्रोचुर्नारायणं विप्रकिंतुर्मस्तव त्रेष्मिनम्

सवः ते तत्र सात्रिध्वान्माण्डव्यस्य महारमतः ।

सम्भ्रान्ता आगता ऊचुः किं मृतं किं नु जीवति ॥ ५ ॥

अवस्था तरुयते दृष्ट्वा विषादमगमन्परम् । असहित्वा तु न द्रुदं संसर्वेत मनसा द्विजा

पृच्छयता यदि मन्येत राजानं भस्मसात्बुधः ।

तथा नृचनं ध्रुत्वा घाक्यं नारायणोऽर्चवात् ॥ ७ ॥

मयि जायति मद्भ्राता ह्यवस्थामादृशी गतः ।

धिर्नार्चितं च मे किंतु तपसो विद्यते फल्गुम् ॥ ८ ॥

दृष्ट्वा शूत्रस्थितं ज्येष्ठं मन्मतोऽनुविदीयते । परकिंतुष्वरिष्यामि येन राष्ट्रं मराजकम्

भस्मसाच्च करोम्यद्य भणद्धि क्षम्यतामिह ।

एवमुक्त्वा गृह्णात्याऽसौ करस्यमग्निमन्त्रयेत् ॥ १० ॥

वाधनं पश्यत याचता च द्रुपुङ्गारकोऽभवत् ।

ततः दृकारशब्देन ऋषयो विस्मितास्तदा ॥ ११ ॥

माण्डव्यस्य समापे तु दृपृच्छस्ते द्विजोत्तमाः ।

द्वितीयेऽह्नि समायाता न तु बुध्वाऽथ तं ऋषिम् ।  
 भर्तारं शिरस्ता धार्य रात्रौ पर्यटने स्म सा ॥ ४० ॥  
 न दृष्टः शूलके विप्रो भाराकान्त्या युधिष्ठिर !।  
 स्वलिता तस्य जानुभ्यां शूलस्यस्य पतिव्रता ॥ ४१ ॥  
 सर्वाङ्गेषु व्यथा जाता तस्याः प्रस्खलनान्मुनेः ।  
 ईदृशीं वर्त्तमानां च ह्यवस्थां पूर्वदैविकीम् ॥ ४२ ॥

पुनःपापफलं किञ्चिद्भाकष्टंममवर्त्तते । व्यथितोऽहंत्वयापापे किमर्थं सूनकर्मणि  
 स्वैरिणीं त्वां प्रपश्यामि राक्षसी तस्करी नु किम् ।  
 एवमुक्त्वा क्षणं मोहात्कन्दमानो मुहुर्मुहुः ॥ ४४ ॥  
 तपस्विनोऽथऋषयःसर्वेसंत्रस्तमानसाः । पश्यमानामुनेः कष्टं पृच्छन्तेतेयुधिष्ठिर  
 पर्यटसे किमर्थं त्वं निशीथे वहनं नु किम् ।  
 क्षिप्तं तु भोलिकाभारं किंवाऽऽगमनकारणम् ॥  
 व्यथामुत्पाद्य ऋषये दुःखाद् दुःखविलासिनि ! ॥ ४६ ॥

शाण्डिल्युवाच

नाऽसुरीं न च गन्धर्वीं न पिशाचीं न राक्षसीम् ।  
 पतिव्रतां तु मां सर्वे जानन्तु तपसि स्थिताम् ॥ ४७ ॥  
 नमेकामोनमेक्रोधो नवैरं न च मत्सरः । अज्ञानाद्दृष्टिमान्द्याच्चस्खलनं क्षन्तुमर्हथ  
 वहनं भर्तृसौख्याय दिघा सम्पीड्यते रुजा ।  
 अयं भर्ता विजानीथः भोलिका संस्थितः सदा ॥ ४६ ॥  
 भरणं पानं वस्त्रं च ददाम्येतस्य रोगिणः ।  
 ऋषिः शौनकमुख्योऽसौ शाण्डिलीं मां विजानत ॥ ५० ॥  
 स्वभर्तृधर्मिणीं कोपं मा कुरुष्वतिथिकुरु । सतांसमीपंसम्प्राप्तांसर्वमेक्षन्तुमर्हथ  
 ऋषय ऊचुः

परव्यथां न जानीषे व्यचरन्ती यद्दृच्छया । प्रभातेऽभ्युदितेसूर्ये तवभर्तामरिष्यति



यथा धेनुसहस्रेषु घत्सो विन्दतिमातरम् । तथा पूर्ववृत्तं कर्म कर्त्तारमुपगच्छति ॥

न माता न पिता स्याता न भार्या न सुताः सुदृत् ।

न कस्य कर्मणां तेषु स्वयमेवोपभुङ्क्ष्यते ॥ २७ ॥

धयतां ममघाक्यघभवद्विं वृच्छितोऽहम् । पूर्वघयमिभो विप्राग्लान्नानवृत्क्षण-

अज्ञानादुपालभायेन यूमा कण्ठेऽधिरोपिता ।

तैलाम्यतशिरोगात्रे मया यूमा धृता न हि ॥ २६ ॥

कङ्कतीरोप्यकेशेषुसासा कण्ठेऽधिरोपिता । तेषु पापवृत्तंमद्य-फलमेतन्ममामवत्

किञ्चिन्काल क्षपित्वाऽहं प्राप्स्ये मोक्षं निरामयम् ।

भवन्तस्त्विह सन्ताप मा कुरध्वं महर्षय ॥ ३१ ॥

इमामघान्या भुक्त्वाऽहं कञ्चिच्छये न घोषरे ।

अहानि कतिचिच्छले क्षपयिष्यामि कित्थियम् ॥ ३२ ॥

प्राक्तनं कर्म भुञ्जामि यन्मया सञ्चितं द्विजाः ।

क्षन्तव्यमस्य राज्ञोऽथ कोपधीय विमर्ज्यताम् ॥ ३३ ॥

श्रुत्वा तु तस्य तद्वाक्य माण्डव्यस्य महर्षय ।

प्रहयमनुत् लब्ध्वा साधुसाध्वित्यपूजयन् ॥ ३४ ॥

नारायण उवाच

इदजलमन्त्रपूतकस्मिन्मन्थानेक्षिपाम्यहम् । येन राजाभवेद्दस्मत्सराष्ट्रसपुरोहित-

माण्डव्य उवाच

इदं जलं न रक्षस्वकालकूटविषोपमम् । समुद्रे क्षिपयिष्यामिदेवकार्यंसमुत्थिनम्

अथ न मुनय सर्वे माण्डव्य प्रणिपत्य च ।

आमन्त्रयित्वा एषाञ्च कश्यपाद्या गृह्णात् ययुः ॥ ३७ ॥

गच्छमानाम्नु ते घोटा पञ्चमेऽहनि तापसा ।

आगन्तव्यं भवद्विधं मत्सकाशं प्रतिज्ञया ॥ ३८ ॥

तथेति ते प्रतिज्ञाय नारदाद्या अदशनम् । गतेषु विप्रमुख्येषु शाण्डिलीचतपोधना

## द्विसप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः

माण्डव्यतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

अथ तेऋषयःसर्वे देवाश्चेन्द्रपुरोगमाः । माण्डव्यस्याऽऽश्रमे पुण्ये समीयुर्नर्मदातटे  
शङ्खदुन्दुभिनादेन दीपिकाज्वलनेन च । अप्सरोगीतनादेन नृत्यन्त्यो चारयोपितः

कथानकैः स्तुवन्त्यन्ये तस्य शूलाग्रधारिणः ।

अष्टाशीतिसहस्राणि स्नातकानां तपस्विनाम् ॥ ३ ॥

समाजे त्रिदशैः सार्द्धं तत्र ते घदिदृक्षया । ब्रह्मविष्णुमहेशानास्तत्र हर्षात्समागताः

मातरो मल्लिकाद्याश्च क्षेत्रपालाचिनायकाः ।

दिवपाला लोकपालाश्च गङ्गाद्याश्च सरिद्धराः ॥ ५ ॥

ऋषिदेवसमाजे तु नित्यं हर्षप्रमोदने । तत्र राजा समायातः पौरजानपदैः सह ॥ ६ ॥

दृष्ट्वा कौतूहलं तत्र व्याकुलीकृतमानसम् ।

चित्रस्तमनसो भूत्वा भयात्सर्वे समास्थिताः ॥ ७ ॥

तस्मिन्समागमे दिव्ये ब्रह्मविष्ण्वीशमब्रुवन् ।

भो माण्डव्य महासत्त्व! वरदास्तेऽमरैः सह ॥ ८ ॥

अनेककष्टतपसा तव सिद्धिर्भविष्यति । प्रार्थयस्व यथाकामं यत्ते मनसिरोषते  
अनादित्यमयं लोकं निर्वपट्कारमाकुलम् । नष्टधर्मविजानीहि प्रकृतिस्थं कुरुष्व च

अनुग्रहं तु शाण्डिल्याः प्रार्थयाम द्विजोत्तम! ॥ १० ॥

एष ते कष्टो राजा समायातस्तथाऽग्रतः । सम्भूषयस्व विप्रर्षे जनदेवासुरं गणम्

माण्डव्य उवाच

यदि प्रसन्नामे देवाः समायाताः सुरैः सह । त्रिकालमत्र तीर्थेषु स्यात्तव्यमृषिभिः सह  
भवतां तु प्रसादेन रुजामेशाम्यन्तांसदा । एषमस्त्विति देवेशायावज्जल्पन्ति पाण्डव

भ्रान्तमदुःखात्परं दुःखं न जानासि बुद्ध्याधमे !।

नेन वाक्येन घोरेण शाण्डिली विमताऽभवत् ॥ ५३ ॥

परं विशादमापन्ना क्षणं ध्यात्वाऽप्रधीद्वचः ।

षोषात्संरक्तनयना निरीक्षन्ती मुनीस्तदा ॥ ५४ ॥

सता गेष्टे किल प्राप्ता भवता चाऽपकारिणी ।

सामेनातिधिपूजायां शिष्टे च गृहमागते ॥ ५५ ॥

भयद्विरीहृगानिध्य एतच्छ्रव ममैव तु । स्वर्गापवर्गधर्मश्च भयद्विनं निरीक्षितम्

प्राजापत्यामिमा दृष्ट्वा मा यथा प्राहताः स्त्रियः ।

भवन्त स्त्रीफलं मेऽद्य पश्यन्तु दिधि देवताः ॥ ५७ ॥

मरिष्यन्ति न मे भक्तां हादित्यो नोदयिष्यति ।

अन्धकार जगत्सर्वं शीयते नाऽद्य शर्वरी ॥ ५८ ॥

पयमुक्ते तथा वाक्येस्त्वम्भिनेऽकृतमोमयम् । नचप्रजायतेसर्वनिर्वपट्कासत्किञ्चयम्

स्वाहाकार स्वधाकारः पञ्चयज्ञधिधिर्न हि ।

स्नान दान जपो नास्ति सन्ध्यालोपव्यतिव्रमः ॥

दण्णामं च तदा पार्थ लुप्तपिण्डोदकत्रियम् ॥ ६० ॥

इति श्रीस्कन्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहिताया पञ्चमेऽधर्ताखण्डे

रेवाखण्डे शाण्डिलीश्रुपिसम्वाद्बर्णनं नामैकसप्तत्युत्तराततमोऽध्यायः ॥१७१॥

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा स्वप्रावस्था कृतो ह्यृषिः ।  
 अन्तर्हितो मुहूर्त्तं च शाण्डिल्याश्च प्रपश्य ताम् ॥ २६ ॥  
 पुनरादाय ते सर्वे कृत्वा निर्वाणसत्तनुम्  
 स्नापितो नर्मदातोये शाण्डिल्यायै समर्पितः ॥ ३० ॥

ततःसा दृष्टमनसापतिदृष्ट्वा तु तैजसम् । प्रणम्य तानृषीन्देवान्विमलार्कजगत्कृतम्  
 क्रियाप्रवर्तिताःसर्वे देवगन्धर्वमानुषाः । दृष्टतुष्टा गताःसर्वे स्वमाश्रमपदं महत् ॥  
 पतिव्रतास्वभर्त्रा सा मासमेवाऽऽश्रमे स्थिता ।  
 माण्डव्येनाऽप्यनुज्ञाता ययौ नत्वा स्वमाश्रमम् ॥ ३३ ॥  
 गतेषु तेषु सर्वेषु स्थापयामास चाच्युतम् ।  
 माण्डव्येश्वरनामानं नारायण इति स्मृतम् ॥ ३४ ॥

दिव्यं वर्षसहस्रं तु पूजयामास भारत । गतोऽसावृषिसङ्घैश्चसहितोऽमरपर्वतम्  
 तपस्तपन्तौतौतत्रह्यद्यापि किंलभारत । भ्रातरौ संयतात्मानौ ध्यायतःपरमम्पदम्  
 तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा तर्पयेत्पितृदेवताः ।

पितरस्तस्य तृप्यन्ति पिण्डदानाद्द्रुशाब्दिकम् ॥ ३७ ॥

देवगृहे तु पक्षादौ यः करोति चिलेपनम् । गोदानशतसाहस्रे दत्ते भवति यत्फलम्  
 उपलेपनेन द्विगुणमर्चने तु चतुर्गुणम् । दीपप्रज्वलने पुण्यमष्टधा परिकीर्तितम्  
 दिव्यनेत्रधरो भूत्वा त्रैलोक्ये सचराचरे । दध्ना मधुघृतैर्देवं पयसा नर्मदोदकैः ॥  
 स्नपनं ये प्रकुर्वन्ति पुष्पमाळाचिलेपनैः । येऽर्चयन्ति विरूपाक्षं देवं नारायणं हरिम्  
 तेऽपि दिव्यविमानेन क्रीडन्ते कल्पसङ्ख्यया ।

दीपाष्टकं तु यः कुर्यादष्टमीं च चतुर्दशीम् ॥ ४२ ॥

एकादश्यां तु कृष्णस्य न पश्यन्ति यमं तु ते । फलैर्नानाविधैः शुभैर्यः कुर्याद्दिङ्मूलपूरणम्  
 तेऽपि यान्ति विमानेन सिद्धस्वरूपसेविताः ।

घण्टा ध्रुव पताका च विमाने पुष्पमालिका ॥ ४४ ॥

चादित्राणि यथार्हाणि प्रान्ते च गच्छते शिवम् ।

तावद्रक्षो गृहीत्वाऽग्रे कन्या कामप्रमोदिनीम् ।

उवाच भगवञ्छापं पुरा दस्वोपशी मम ॥ १४ ॥

यदा कन्या हरे रक्ष शापातस्तेमपिप्यति । तेनमेगहितकर्मशापेनाऽश्नतुद्धिन  
क्षन्तव्यमितिषोकन्या च गतश्चाऽदशन पुन ।

गने शैव तु सा कन्या द्रष्टा पद्मदलेक्षणा ॥ १६ ॥

मन्त्रयि चासुरे सर्वेदत्तामाण्डव्यधीमते । तावज्जशूलिकाप्लावपवित्रधर्मदोदकं  
माण्डव्यमृपिमुत्तार्य जयशब्दादिमङ्गले ।

विवाहयित्वा ता कन्या माण्डव्य ऋपिपुङ्गव ॥ १८ ॥

अभिवाच्य च तान्सर्वान्दानसम्मानगौरवै ।

अथ रात्रा समापन्थो रत्नेश्च विविधैरपि ॥ १६ ॥

धिग्वादीनिन्दित सर्वैस्त्वेजनेभू पित पुन । रात्राचत्राह्यणा सर्वभूषणाच्छादनाशनै  
सुवणकोटिदानेन तुषान्त्वाक्षमापिता ।

वृत्ते विवाहे आह्वय शाण्डिलीं तामथाब्रवीत् ॥ २१ ॥

मानयस्व इमान् विप्रान् मोक्षयस्व दिवाकरम् ।

अपहृत्य तमो येन ऋषा सद्य प्रवृत्तने ॥ २२ ॥

ऋषीणा वचन धृत्वा शाण्डिली तु खिताऽब्रवीत् ।

उदितऽक तु मे भर्ता मृत्यु यास्यति भो द्विजा ॥ २३ ॥

त कथ मोक्षयार्माह ह्यात्मनोऽनिष्पिदये । त्रियाप्रवृत्तनाश्चाद्यर्किकार्यमे महर्षय-  
नि पुत्रा स्त्री ह्यनाथाऽह भवामि भवतो मतम् ।

निष्प्र त्वमन्यकारे तु नेच्छामि रविणोदयम् ॥ २४ ॥

ननवाक्यनतसर्वेदयामुरमहर्षय । शिर सञ्जाग्ना सर्व्वेसाधु साधिपतिष्वाऽब्रुवन्  
पतिव्रत महाभागे शृणु वाक्यतपोधने । मन्त्रमे यदि न सर्वाङ्कुरव्यवचनचयन्

शाण्डिल्युवाच

यन म न मरेद्वत्ता येन सत्य मुनेयच । तत्कुरुष्व विचार्याशु येन सम्पद्यते सुखम्

पूर्णमायाममावास्यां व्यतीपातेऽर्कसङ्क्रमे ।

श्राद्धं च संग्रहे कुर्यात्सगच्छेत्परमां गतिम् ॥ ६३ ॥

देवखातेत्रयो देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । तिष्ठन्ति ऋषिभिःसार्द्धंपितृदेवगणैःसह  
तत्र तीर्थेऽश्विनेमासिचतुर्दश्यांविशेषतः । वायुमार्गेस्थितःशक्रस्तिष्ठते दैवतैःसह

पृथिव्यां यानि तीर्थानि सरितः सागरास्तथा ।

विशन्ति तानि सर्वाणि देवखाते दिनद्वयम् ॥ ६६ ॥

गयाशिरे च यत्पुण्यं प्रयागेऽमकरकण्टके ।

प्रयागे सोमतीर्थे च तत्पुण्यं माण्डवेश्वरे ॥ ६७ ॥

षट्पन्धेनृत्यत्पुण्यंमात्रायां लकुलेश्वरे । आश्विन्यामश्विनीयोगे तत्पुण्यंमाण्डवेश्वरे

उज्जयिन्यां महाकाले चाराणस्यां त्रिपुरकरे ।

सन्निहत्यां रचिग्रस्ते माण्डव्याख्ये सनातनम् ॥ ६६ ॥

इति ज्ञात्वा महाराज सर्वतीर्थेषु शोच्यते ।

पितृन्देवान्समभ्यर्च्य स्नानदानादिपूजनैः ॥ ७० ॥

चतुर्दश्यां निराहारः स्थितो भूत्वा शुचिव्रतः ।

पूजयेत्परया भक्त्या रात्रौ जागरणे शिवम् ॥ ७१ ॥

स्नानैश्च चिचिधैर्दधंपुष्पागरुचिलेपनैः । प्रभातेपौर्णमास्यां तुस्नानादिविधितर्पणैः

श्राद्धेन हव्यक्लव्येन शिवपूजासर्चनेन च । अग्निष्टोमादियज्ञैश्च विधिवच्चाप्तदक्षिणैः

धौतपापो विशुद्धात्मा फलते फलमुत्तमम् । गोसहस्रप्रदानेन दत्तंभवति भारत ! ॥

स्नानाद्यैर्विधिवत्तत्र तद्विने शिवसन्निधौ । हिरण्यंवृषभं धेनुं भूमिं गोमिथुनंहयम्

शिवमुद्दिश्य वै वस्त्रयुग्मे दद्यात्सुरूपिणे । पादुकोपानहौळत्रं भाजनं रक्तवाससी

होमं जाप्यं तथा दानमक्षयं सर्वमेवतत् । ऋषमेकांतु ऋषवेदेयजुर्वेदे यजुस्तथा ॥

सामैकं सामवेदेतु जपेद्देवाग्रसंस्थितः । सम्यग्वेदफलं तस्य भवेद्दे नाऽत्रसंशयः

गायत्रीजाप्यमात्रस्तु वेदत्रयफलंलभेत् । कुलकोटिशतंसायं लभतेतुशिवाच्चं नात्

देवालय तु यः कुर्याद्विष्णव माण्डवेध्वरम् ॥ ४५ ॥

स्वर्गं वसति धर्मात्मा यावदाभूतसम्प्लवम् ।

माण्डव्यनारायणाख्ये चिप्रान्भोजयतेऽग्रतः ॥ ४६ ॥

एकस्मिन्भोजिते चिप्रे कोटिर्भवति भोजिता ।

आश्विने मासि सम्प्राने शुक्लपक्षे घतुर्दशाम् ॥ ४७ ॥

कृतोपवासनियमो राज्ञो जागरणेन च । दीपमालांघनुर्द्विभुपूजाकृत्वा तु शक्ति  
नारी वा पुरुषोवाऽपि नृत्यगीतप्रवादनैः । प्रभाते चिमलेसूर्योत्थानादिकविधिं नृप

अभिनिषत्यंमौनेन पश्यते देवमीदृशम् । सर्वपापविनिमुक्तो रद्रलोके मर्हायते ॥

अथवा मागशीर्षे च शैश्वैशाखयोरपि । ध्रावणेवा महाराजसर्वकालेऽथवापि च

शिवरात्रिसम पुण्यमित्येव शिवभाषितम् ।

वाजपेयाऽध्वमेधाम्ना फलम्भवति नाऽन्वया ॥ ५२ ॥

दुभगा तु खिता घन्ध्या दरिद्रा च मृतप्रजा ।

स्नाति रद्रवटीर्या स्त्री सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ ५३ ॥

कृमिकीटपतङ्गाश्चतस्मिन्स्तीर्ये तु ये मृता । स्वर्गं प्रयान्ति ते सर्वे दिव्यरूपधरा नृप

अनाशके जलेऽग्री तु ये मृता ध्याधिपीडिता ।

अनिवर्त्तिका गतिस्तेषा रद्रलोके ह्यसशयम् ॥ ५५ ॥

नित्यं नमतियो राजश्चिच्छवनारायणाबुभौ । गोदानफलमाप्नोति तस्य तीर्थप्रभावत

देवालये तु राजेन्द्र यश्च कुर्यात्प्रदक्षिणाम् ।

प्रदक्षिणीकृता तेन ससागरधरा धरा ॥ ५७ ॥

साङ्गं शन च तीर्थानि महिकाभवनाद् वहि ।

तस्य तीर्थप्रमाणं तु विस्तरं राजसत्तम ॥ ५८ ॥

सूत्रेण वेपथे तक्षेत्रमथवा शिवमन्दिरम् । अथवा शिवत्रिङ्गं च तस्य पुण्यफलं शृणु

जम्बुद्वीपश्च उत्तरश्च शाल्मलीकुशमौञ्जकी । शाकपुष्करगोमेदे सप्तद्वीपावतुन्धरा

भूयिता तेन राजेन्द्र सशैलवनकानना । रचाया दक्षिणे भागे शिवक्षेत्रात्समीपत

देवघात महापुण्यं निर्मितं त्रिशैरपि । तस्मिन्त्य कुर्वन्ने ज्ञानं मुच्यते सर्वपातकैः

पूर्णिमायाममावास्यां व्यतीपातेऽर्कसङ्क्रमे ।

श्राद्धं च संग्रहे कुर्यात्सगच्छेत्परमां गतिम् ॥ ६३ ॥

देवखातेत्रयो देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । तिष्ठन्ति ऋषिभिःसार्द्धं पितृदेवगणैःसह  
तत्र तीर्थेऽश्विनेमासिचतुर्दश्यां विशेषतः । वायुमार्गस्थितःशक्रस्तिष्ठते दैवतैःसह

पृथिव्यां यानि तीर्थानि सरितः सागरास्तथा ।

विशन्ति तानि सर्वाणि देवखाते दिनद्वयम् ॥ ६६ ॥

गयाशिरे च यत्पुण्यं प्रयागेऽमकरकण्टके ।

प्रयागे सोमतीर्थे च तत्पुण्यं माण्डवेश्वरे ॥ ६७ ॥

पट्टयन्धेनृत्यपुण्यंमात्रायां लकुलेश्वरे । आश्विन्यामश्विनीयोगे तत्पुण्यंमाण्डवेश्वरे

उज्जयिन्यां महाकाले वाराणस्यां त्रिपुष्करे ।

सन्निहत्यां रविग्रस्ते माण्डव्याख्ये सनातनम् ॥ ६८ ॥

इति ज्ञात्वा महाराज सर्वतीर्थेषु शोच्यते ।

पितृन्देवान्समभ्यर्च्य स्नानदानादिपूजनैः ॥ ७० ॥

चतुर्दश्यां निराहारः स्थितो भूत्वा शुचिव्रतः ।

पूजयेत्परया भक्त्या रात्रौ जागरणे शिवम् ॥ ७१ ॥

स्नानैश्च विचित्रैर्देवंपुष्पागरुचिलेपनैः । प्रभातेषोर्णमास्यां तुम्बानादिविधितर्पणैः

श्राद्धेन हव्यक्लव्येन शिवपूजाचनेन च । अग्निष्टोमाद्व्यङ्गैश्च विधिवच्चाप्तदक्षिणैः

धौतपापो विशुद्धात्मा फलते फलमुत्तमम् । गोसहस्रप्रदानेन दत्तंभवति भारत ॥

स्नानार्थंविधिवत्तत्र तद्दिने शिवसन्निधौ । हिरण्यवृषभं धेनुं भूमिं गोमिथुनंहयम्

शिवमुद्दिश्य वै वस्त्रयुग्मे दद्यात्सुरूपिणे । पादुकोपानहौंछत्रं भाजनं रक्तवाससी

होमं जाप्यं तथा दानमक्षयं सर्वमेवतत् । ऋचमेकांतु ऋग्वेदेयजुर्वेदे यजुस्तथा ॥

सामैकं सामवेदेतु जपेद्वेवाग्रसंस्थितः । रुम्यवेदफलं तस्य भवेद्द्वे नाऽत्रसंशयः

गायत्रीजाप्यमात्रस्तु वेदत्रयफलंभेत् । कुलकोटिशतंसाग्रं लभतेतुशिवाच्चानात्

स्नाने दाने तथा श्राद्धे जागरे गीतवादिने ।



अतिवर्तिका गतिस्तस्य शिवगोकात्कदाचन ॥ ८० ॥

कालेन महताऽऽधिष्ठो मर्त्यलोके समाधिरोन् ।

राजा भवति मघावी सर्वव्याधिविर्वर्तित ॥ ८१ ॥

जीवेद्वपशन साग्र पुनर्पौरधनान्वित । तच्च तीर्थं पुनस्मृत्वा लीयमानो महेश्वरं

उपास्ते यस्तु वै सन्ध्या तस्मिंस्तीर्थे च पर्वणि ।

साङ्गोपाङ्गैश्चतुर्वेदेषु कल्पमुत्तमम् ॥ ८२ ॥

तत्र सर्वं शिवशेखाच्छरपात समन्तत । न सचरेद्वयोद्विग्रा ब्रह्महत्या नराधिप

यत्रतत्रस्थितो वृथागप्यनेताद्यतत्पर । विविधैः पातकैर्मुक्तोमुच्यतेनाऽत्रमशय

श्वर्गीतरमहाराजमध्ये प्रदृश्यते । कथानिका पुराणोक्ता दानरीतीत्यसेवनात्

तत्र कूपो महाराज निष्ठिते देवनिर्मित । शिवस्य पश्चिमे भागे शिवशेखरमुत्तम

कूपोन्मगं तु य कुप्यात्तस्मिंस्तीर्थे नराधिप ।

रीडन्ति पितरस्तस्य स्वर्गलोके यदृच्छया ॥ ८८ ॥

अगम्याऽऽगमने पापमया ययाननेकृते । स्तेषाञ्चरद्विगोहत्यागुरुनाताश्च पातक

तन्सर्वं नश्यत पाप कूपोन्मगं कृते तु वै ॥ ८६ ॥

माण्डव्यतीर्थमाहात्म्ये य श्रणोति समाधिना ।

मुच्यत सवपापेभ्यो नाऽत्र काया विधारणा ॥ ९० ॥

इति श्रीस्कान्द महापुराण एकाशीतिमाहस्रया सहिताया पञ्चमेऽध्यायखण्डे

ग्यायण्ड नमदामाहात्म्ये माण्डव्यतीर्थमाहात्म्यवचननाम

द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्याय ॥ १७२ ॥

## त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

शुद्धेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्रतीर्थं परमशोभनम् । नर्मदादक्षिणे कुले सर्वपापप्रणाशनम् ॥  
सिद्धेश्वरमिति ख्यातं महापातकनाशनम् । यत्रशुद्धिपरं प्राप्तो देवदेवो महेश्वरः  
पुराहत्यायुतःपार्थ देवदेवस्त्रिशूलधृक् । पुरापञ्चशिरा आसीद्ब्रह्मालोकपितामहः  
तेनाऽनृतं वचश्चोक्तं कस्मिंश्चित्कारणान्तरे ॥ ३ ॥

तच्छ्रुत्वा सहसातस्मै चुकोप परमेश्वरः । छेदयामासभगवान्मूर्धानं करजैस्तदा  
तस्य तत्करसंलग्नं षषवतेन कदाचन । ततो हि देवदेवेशः पर्यटन्पृथिवीमिमाम् ॥  
ततो वाराणसीं प्राप्तस्तस्यांतदपतच्छिरः । पतितेतु कपाले च ब्रह्महत्यानमुञ्चति  
ततस्तु सागरे गत्वापूर्वे च दक्षिणे तथा । पश्चिमे चोत्तरे पार्थ ! देवदेवो महेश्वरः  
पर्यटन्सर्वतीर्थेषु ब्रह्महत्या न मुञ्चति । नर्मदादक्षिणे कुले सुतीर्थं प्राप्तवान्प्रभुः ॥  
कुलकोटिं समासाद्य प्रार्थयामास चात्मवान् ।

प्रायश्चित्तं ततः कृत्वा बभूव गतकल्मषः ॥ ६ ॥

ततो निष्कल्मषोजातो देवदेवोमहेश्वरः । दत्त्वासुरेभ्यस्तत्स्थानंततश्चान्तर्द्वेषप्रभुः  
तदाप्रभृति तत्तीर्थं शुद्धस्त्रेति कीर्तितम् । विख्यातं त्रिषु लोके ब्रह्महत्याहरं परम्  
मासे मासे सितेपक्षेऽमावास्यायां युधिष्ठिर ।

स्नात्वा तत्र विधानेन तर्पयेत्पितृदेवताः ॥ १२ ॥

दद्यात्पिण्डं पितॄणां तु भावितेनान्तरात्मना ।

तस्य ते द्वादशाब्दानि सुतृप्ताः पितरो नृप ॥ १३ ॥

गन्धधूपप्रदीपाद्यैरभ्यर्च्य परमेश्वरम् । शुद्धेश्वराभिधानं तु शिवलोके महीयते ॥  
एतत्ते कथितं राजञ्छुद्धं रुद्रमनुत्तमम् । मया श्रुतं यथादेव सकाशाच्छूलपाणिनः

मुच्यते सर्वपापेभ्यो ह्रलोकं स गच्छति ॥ ११ ॥

इति धीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्या सहिताया पञ्चमेऽवन्तीखण्डे  
रेवाखण्डे शुद्धेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रिसप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः

चतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

गोपेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

धीमाकण्डेय उवाच

गोपेश्वर ततो गच्छेदुत्तरे नर्मदातटे । यत्र खानेन घकेन मुच्यन्ते पातकंनराः ॥

तत्रतीर्थेनुरन्नात्वा कुस्त्रे प्राणमक्षयम् । बर्हिगुणेन यानेन सगच्छेच्छिवमन्दिरो ॥

ब्राडित्वा मुषिर काल शिबलोके नराधिप ।

इह मानुष्यता प्राप्य राजा भवति धार्यवान् ॥ ३ ॥

हस्त्यश्वरधमपत्नो दामीदात्ममन्वित । पूज्यमातो नरेन्द्रैश्च जीयेद्वयंशत नरः ॥

सग्रामे कार्तिके मामि नवम्या शुक्लपक्षतः ।

सोपयाम शुचिभू त्वा दीपकास्तत्र द्वापयेन ॥ ५ ॥

गन्धपुष्पं समन्यस्य रात्री कुर्वीत जागरम् ।

तस्य यत्कल्पमुद्रिण तच्छणुष्व नराधिप । ॥ ६ ॥

यावत्पुण्य फल मख्यादीपकाना तथैव च । तावत्तमहस्त्राणि शिबलोकेमर्हायते

तस्मिन्नाथ तु राजेन्द्र' लिङ्गपूरणक विधिम् ।

तथैव पञ्चकैश्चैव दधिभक्तैस्तथैव च ॥ ८ ॥

यस्तु कुर्यात्तथैष्ट तस्यपुण्यफल भणु । यावन्तिलसत्यानि दधिभक्तैस्तथैव च

पञ्चमङ्गला शिर लोक मादते कालमीप्सितम् ।

तस्मिन्नाथ तु राजेन्द्र' यत्किञ्चिर्दीयते शृणु ॥ १० ॥

सर्वं कोटिगुणंतस्य संख्यातुं वानशक्यते । एवंते कथितं सर्वसर्वतीर्थमनुत्तमम् ॥  
इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे  
रेवाखण्डे गोपेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णननाम चतुःसप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः

## पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

कपिलेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

उत्तरे नर्मदाकूले भृगुक्षेत्रस्यमध्यतः । कपिलेश्वरं तु विख्यातं विशेषात्पापनाशनम्  
योऽसौ सनातनो देवः पुराणे परिपठ्यते । वासुदेवो जगन्नाथः कपिलत्वमुपागतः  
पातालं सुतलं नाम तस्यैव नितलं ह्यथः । गभस्तिगंचतस्याऽधो ह्यन्धतामिहमेव च  
पातालं सप्तमं यच्च ह्यथस्तात्संस्थितं महत् । वसते तत्र वैदेवः पुराणः परमेश्वरः ॥  
स ब्रह्मासमहादेवः स देवो गरुडध्वजः । पूज्यमानः सुरैः सिद्धैस्तिष्ठते ब्रह्मवादिभिः

वसतस्तस्य राजेन्द्र! कपिलस्य जगद्गुरोः ।

विनाशं चाऽग्रतः प्राप्ताः क्षणेन सगरात्मजाः ॥ ६ ॥

भस्मीभूतांस्तु तान्दृष्ट्वा कपिलो मुनिसत्तमः ।

जगाम परमं शोकं चिन्त्यमानोऽथ किल्बिषम् ॥ ७ ॥

सर्वसंगपरित्यागे चित्तेनिर्विषयीकृते । अयुक्तं पण्डितसहस्राणां कर्तुं मम विनाशनम्  
कृतस्य करणं नास्ति तस्मात्पापविनाशनम् ।

गत्वा तु कापिलं तीर्थं मोक्षयाम्यवमात्मनः ॥ ६ ॥

पातालं तु ततो मुक्त्वा कपिलो मुनिसत्तमः । तपश्च चारसुमहन्नर्मदा तटमास्थित  
व्रतोपवासैर्विविधैः स्नानदानजपादिकैः । परं निर्वाणमापन्नः पूजयन् रुद्रमव्ययम् ;  
तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा पूजयेत्परमेश्वरम् । गोसहस्रफलंतस्य लभते नाऽत्र संशय

उपेष्टमासे तुम्ब्रामे शुक्लपक्षे घनुर्दशी । तत्रभ्रातृवाधिधानेन भक्त्यादानप्रयच्छति  
 पात्रभूताय विप्रायस्वयं घायदियायद् । अक्षयं तदात् प्रोक्तं शिवेन परमेष्ठिना  
 अद्भुतदिने प्राप्तेघनुर्ध्या नयमीषु च । स्नानकरोतिपुरुषो भक्त्यांपोष्यधराङ्गना  
 रूपमैश्वर्यमनुत्सौभाग्यं सन्ततिपराम् । लभते ममनन्मानिनित्यं नियं पुन पुन  
 पापंमास्याममायास्यां स्नात्वा पिण्डं प्रयच्छति ।

तस्य ते द्वादशाब्दानि तृप्ता यान्ति सुराण्यम् ॥ १७ ॥

तत्रतीर्थतुयोमकत्या दद्याद्दीपसुशोभनम् । जायतेनस्वराजेन्द्रमहादीप्तिं शरीरना  
 तत्र तीर्थे मृतानां तु जन्तुना सर्वदा चिन् ।

अनिर्वर्तिता भवेत्तेषां गतिस्तु शिवमन्दिरान् ॥ १६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण वकाशीतिसाहस्र्या महिताया पञ्चमेऽध्यायखण्डे  
 रेखाखण्डे कपिलेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णननाम पञ्चमस्त्यधिकशततमाऽध्याय

## पट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्याय

### पिङ्गलेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततोमच्छेन्महीपात्रं पिङ्गलायसमुत्तमम् । तार्थसयगुणोपेतं कामिकभुविदुहं भम्  
 घाधिकं मानस पापकर्मजपपुराहतम् । पिङ्गलेश्वरमासाद्य ततसर्वंघिलयत्रनेत्  
 तत्र स्नानं च दानं च देवसातं कृतवृष । अक्षयं तद्भवेत्सर्वमित्येषं शङ्करोऽग्रवीत् ॥  
 पृथिव्यासर्वतीर्थेषु समुद्रधृत्यशुभोदकम् । मुक्तत्रसुरेष्वात्पादेवसातततोऽभयत्

युधिष्ठिर उवाच

अद्यतु देवसातं तत्सजातद्विजसत्तमं । सुरा सर्वकथं तत्र मुमुक्षुर्यारि तीर्थजम्  
 सर्वं कथय मे विप्र ! श्रवणे लम्पटं मन ॥ ५ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

यदा तुशूलशुद्धयर्थं रुद्रोदेवगणैः सह । वभ्राम पृथिवीं सर्वां कमण्डलुधरः शुभाम् ।  
प्रभासाद्योपुतीर्थेषुस्नानं चक्रुः सुरास्तदा । सर्वतीर्थोत्थितंतोयं पात्रेवैनिहितंतुतैः  
शूलभेदमनुप्राप्य शूलं शुद्धं तु शूलिनः । तत्रोत्थमुदकं गृह्य धागता भृगुकच्छके ॥  
तत्राऽपश्यंस्ततोह्यग्निपिङ्गलाक्षं च रोगिणाम् । तपस्युद्रेष्यवसितंध्यायमानं महेश्वर  
हविर्भागैस्तुचिप्राणाराज्ञां चैवामयाविनाम् । द्रष्टुं तुवहुरोगार्त्तमग्निदेवमुखं सुराः  
प्राहुस्ते सहिता देवं शङ्करं लोकशङ्करम् ॥ १० ॥

देवा ऊचुः

प्रसादः क्रियतां शम्भो पिङ्गलस्यामयाविनः ।  
यथा हि नीरुजः कायो हविषां ग्रहणक्षमः ॥  
पुनर्भवति पिङ्गस्तु तथा कुरु महेश्वर ! ॥ ११ ॥

ईश्वर उवाच

भोभोः सुरा हि तपसातुष्टोऽहं वोविशेषतः । वचनाच्चविशेषेणददाम्यभिमतवरम् ।

पिङ्गल उवाच

यदि तुष्टोऽसि देवेश! दीयते देव! त्रेप्सितम् ।

चन्द्रादित्यौ च नयने कृत्वाऽत्र कलया स्थितः ॥ १३ ॥

तथा पुनर्नवः कायोभवेद्भ्रमम शङ्कर । तथा कुरु विरूपाक्ष नमस्तुभ्यं पुनः पुनः ॥

मार्कण्डेय उवाच

ततःसभगवाञ्छम्भुर्मुक्तिमादित्यरूपिणीम् । कृत्वातुतस्यतद्रोगमपानुदत्तशङ्करः  
ततःपुनर्नर्वाभूतःपुनः प्रोवाचशङ्करम् । अत्रैव स्थायितांशम्भोतथैव भास्करःस्वयम्  
प्राणिनामुपकाराय रोगाणामुपशान्तये । पापानांध्वंसनार्थायश्रेयसां चैव वृद्धये  
एवमुक्तस्तु भगवान्पिङ्गलेन महात्मना । अवतारं च कृतवानर्शीर्वाणानिदमब्रवीत्

ईश्वर उवाच

मुञ्चध्वमुदकं देवास्तीर्थेभ्यो यत्समाहृतम् । ममचोत्तरतःकृत्वा खातं देवमयं शुभम्

तत्रनिक्षिप्यताधारि सयरोगविनाशनम् । सर्वपापहर दिव्यं सर्वैरपि सुरादिभि  
एवमुक्ता सुरासर्वे खातकृत्वा तथोत्तरे । त्रयस्त्रिंशत्कोटिगणैर्मुक्तं तर्त्तार्यजंजलम्  
प्रोचुस्ते सहिता सर्वे विरूपाक्षपुरोगमा ।

य कश्चिद्वेदखातेऽस्मिन्मृदालम्भनपूर्वकम् ॥ २२ ॥

स्नान कृत्वा रविदिने मन्त्राप्य नर्मदाजले ।

ध्राद् कृत्वा पितृभ्यो र्धे दान दत्त्वा स्वशक्तिम् ॥ २३ ॥

पूजयिष्यति पिद्वेशतस्यवामस्त्रिविण्णे । भविष्यति सुरैरुक्त शृणोतिसकलजगत्  
आमया भुवि मत्स्याता क्षयरोगविघर्षिका ।

व्याघ्रयो विहृताकारा कासभ्यासञ्चरोद्भवा ॥ २४ ॥

एकद्वित्रिचतुषाहा ये ज्वरा भूतसम्भवा ।

य खाऽन्ये विक्रान्ताया ददुश्च कामल तथा । दिनेनेसप्रमियान्तिनाशस्त्रानैरवेद्विने  
शतमेऽप्रमिता ये कुष्टा बहुविधास्तथा ॥ २७ ॥

शतमादित्यवाराणा स्त्रायादणोत्तर तु य । सम्पूज्यशङ्कर दद्यात्तिलपात्रद्विजातये  
तत्र्यन्तितस्यकुष्टानिगच्छेनेवपन्नगा । एवमुक्त्वागतासर्वे त्रिदशान्त्रिदशालयम्  
माकण्डेय उवाच

नदीषु द्रवत्वानपु नडागपु सरित्सु च । स्नान समाधरेऽप्रित्य नर पापै प्रमुच्यते  
पण्ठिताथसहस्रपु पण्ठिताथशतेषु च । यत्फल स्नानदानेषु देवखाते सतोऽधिकम्  
द्रवत्वानेषु य स्नात्वा तपयित्वा पितृभ्यु । पूजयेद्देवदवेश पिङ्गलेश्वरमुत्तमम् ॥  
सोऽश्वमेधस्य यज्ञस्य वाजपेयस्य भारत ।

द्वयो पुण्यमवाप्नोति नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ ३३ ॥

इति ध्रास्कान्द महापुराण एकाशीतिसाहस्र्या सहिताया पञ्चमेऽध्यायखण्डे  
रेखाखण्डे पिङ्गलेश्वरनीथमाहात्म्यवर्णननाम षट्सप्तत्युत्तरशततमोऽध्याय ॥

## सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

भूतीश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

भूतीश्वरं ततो गच्छेत्सर्वतीर्थेष्वनुत्तमम् । दर्शनादेव राजेन्द्र! यस्य पापंप्रणश्यति  
तत्र स्थाने पुरापार्थं देवदेवेन शूलिना । उद्बधूलनं कृतंगात्रे तेन भूतीश्वरं तु तत्  
पुष्ये वा जन्मनक्षत्रं (त्रेह्य) अमावास्यां विशेषतः ।

भूतीश्वरे नरः स्नात्वा कुलकोटिं समुद्धरेत् ॥ ३ ॥

तत्रस्थाने तुयो भक्त्याकुरुतेह्यङ्गुण्ठनम् । तस्य यत्फलमुद्दिष्टं तच्छृणुष्वनराधिप  
याचन्तो भूतिकणिका गात्रे लग्नाः शिवालये ।

तावद्दर्पसहस्राणि शिवलोके महीयते ॥ ५ ॥

सर्वेषामेव स्नानानां भस्मस्नानं परं स्मृतम् ।

पुराणैर्ऋषिभिः प्रोक्तं सर्वशास्त्रेष्वनुत्तमम् ॥ ६ ॥

एककालं द्विकालं वा त्रिकालं चाऽपि यः सदा ।

स्नानं करोति चाऽऽग्नेयं पापं तस्य प्रणश्यति ॥ ७ ॥

दिव्यस्नानाद्भरंस्नानंवायव्यंभरतर्पभा वायव्यादुत्तमंब्राह्म्यं वरंब्राह्म्यात्तुवारुणम्  
आग्नेयं वारुणाच्छ्रेष्ठं यस्मादुक्तं स्वयम्भुवा ।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन ह्याग्नेयं स्नानमाचरेत् ॥ ८ ॥

युधिष्ठिर उवाच

आग्नेयं वारुणंब्राह्म्यं वायव्यं दिव्यमेव च । किमुक्तं श्रोतुमिच्छामि परं कौतूहलं हि मे

मार्कण्डेय उवाच

आग्नेयं भस्मना स्नानमवगाह्य च वारुणम् ।

आपोहिष्ठेति च ब्राह्म्यं वायव्यं गोरजः स्मृतम् ॥ ११ ॥



सूर्ये दृष्टे तु यत्स्नानं गङ्गातोयेन तत्समम् । तत्स्नानं पञ्चमश्लोकं दिव्यं पाण्ड्यसत्तमं  
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन स्नात्वा भूतेभ्यरेतु यः । पूजयेद्देवर्षी शान्तया हास्यन्तरं शुचि-

त्र स्थाने तु ये नित्यं ध्यायन्ति परमं पदम् ।

सूक्ष्मघातीन्द्रियनित्यं ते धन्यानाऽत्र सशयः ॥ १४ ॥

मुक्तिर्तीर्थं तु तर्त्तीर्थं सर्वतीर्थेष्वनुत्तमम् । दर्शनादेशं तस्यैव पापयाति महत्क्षयम्  
जायते पूजया राज्यं तत्र स्नुत्वामहेश्वरम् । जपेन पापस्य शुद्धिर्यां न नैवान्त्यमश्नुते

ॐ ज्योतिस्वरूपमनादिमध्यमनुत्पाद्यमानमनुधार्यमाणाक्षरम् ।

सर्वभूतस्थितं शिवं सर्वयोगेश्वरं सर्वलोकोेश्वरमोद्दृशोक्त्वा हीनमहाज्ञानमयम् ॥

त्र तीर्थे तु यो गत्वा स्नानं कुर्यात्तरेभ्यः ।

अश्वमेधस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥

पुण्यं न जानन्ति मोक्षापेक्षजिह्वा नराः ॥ १८ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिमाहत्या सहिताया पञ्चमेऽध्यायखण्डे  
रेखाखण्डे भूर्गेश्वरतीर्थमाहात्म्यघणननाम सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥

## अष्टसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

गङ्गासाहस्रतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

नतो गच्छेत् राजेन्द्र गङ्गावाहकमुत्तमम् । नर्मदाया महापुण्यं भृगुतीर्थं समीपतः ।  
त्र गङ्गा महापुण्या च चार विपुला तपः । पुरा वर्षशतसाश्रं परमं व्रतमास्थिता  
ध्यात्वा देव जगद्योनिं नारायणमकटमयम् ।

आत्मानं परमं धाम सरित्मा उगतीपते ॥ ३ ॥

ततो जनादनोदेव आगत्येदमुवाच ह ॥ ४ ॥

विष्णुस्वाध

तपसातवतुष्टोऽहं मत्पादाभ्युजसम्भवे । मत्तः किमिच्छसेदेविग्रहिकिकरवाणिते

गङ्गोवाध

त्वत्पादकमलाद्भ्रम्रागङ्गासहस्रविमो । यदृच्छवात्रिलोकेश्रवन्प्रमानादिवोफर्नः  
नृपो भगीरथस्तस्मात्तपःकृत्वानुदुष्करम् । समाराध्यजगन्नाथं शङ्करंलोकशङ्करम्  
धवतारयामासहि मांपृथिव्यांधरणीधर ॥ मयावै गुचयोर्वाक्पादवतारःकृतोभुवि

वैष्णवीमिति मां मत्पा जनः सर्वाप्नुतो मयि ।

ये वै ब्रह्महणो लोके ये च वै गुरुतल्पगाः ॥ ६ ॥

त्यागिनः पितृमातृभ्यां ये च स्वर्णहारा नराः ।

गोघ्ना ये मनुजा लोके तथा ये प्राणिहिंसकाः ॥ १० ॥

अगम्यागामिनोयेचह्यभक्ष्यस्यचमक्षकाः । येषाऽनृप्रवक्तारोयेष्विध्वारुघातकाः  
देवब्राह्मणवित्तानां हर्तारोये नराधमाः । देवब्रह्मगुरुर्त्तारोणं ये च निन्दाकरानराः  
ब्रह्मशापप्रदग्धा ये ये वैवात्महनो द्विजाः । भ्रष्टानशनसंन्यासनियतव्रतघारिणः  
तथैवापेयपेयाश्चये च स्वगुरुनिन्दकाः । निषेधकायेदानानांपात्रदानपराङ्मुखाः

ऋतुघ्ना ये स्वपत्नीनां पित्रोः स्नेहपरा न हि ।

वान्धवेषु चं दीनेषु करुणा यस्य नास्ति वै ॥ १५ ॥

क्षेत्रसेतुविभेदीचपूर्वमार्गप्रलोपकः । नास्तिकःशास्त्रहानस्तुचिप्रःसन्ध्याविषर्जितः

अहुताशी ह्यसन्तुष्टः सर्वाशी सर्वचिकीर्षी ।

कदर्या नास्तिकाः क्रूराः कृतघ्ना ये द्विजायः ॥ १७ ॥

पैशुन्या रसचिक्रेयाः सर्वकालचिनाकृताः ।

स्वगोत्रां परगोत्रां वा ये भुञ्जन्ति द्विजाधमाः ॥ १८ ॥

ते मां प्राप्य विमुच्यन्ते पापसङ्घैः सुसञ्चितैः ।

तत्पापक्षारतप्ताया न शर्म मम विद्यते ॥ १६ ॥

तथा कुरु जगन्नाथ! यथाऽहं शर्म चाप्नुयाम् ।

व्यसृजन्तु क्षीयन्तु पुनः प्रोवाच ब्राह्मणीम् ॥ २० ॥

विष्णुस्त्वाय

अस्मन्नसिष्यामि गङ्गाधरमहावसान । प्रविशन्त्य नदा ईशांश्चरिषण्णसुत्तित  
सम पादतन्त्रमाप्य सह त्रिगणगामिति । नदा बहुरेके षान्ते नर्मदाऽङ्गमभ्युत्ता

प्रापूर्वकारं समागताय प्रविशति जनापुत्रा ।

एतादृशोमपत्तं क्षीयां प्राप्य मामुत्तरसिष्यताम् ॥ २१ ॥

एतादृशविशति सोपवा नदा शङ्खे चरे त्रिगतम् ।

तदा पदंशतोपलं धैर्यस्य पदंशमिदम् ॥ २४ ॥

त तेन नदागंविशितु इतीयातादि नद्व्यम् ।

ध्याने ष्टे च न तथा पुण्यपुण्यतरं यथा ॥ २५ ॥

तस्मिन्पदंविशति शङ्खं संलूयय मानय । स्नातमाधरतेतोपेमिधेनाङ्गोपनाम  
पुण्यं त्यदोत्पुण्यानां मङ्गलानां च मङ्गलम् ।

विष्णुना विष्णो येन तस्माच्छ्रुतिः प्रथममे ॥ २६ ॥

तत्रान्तंवापनद्वयं ध्रुवमाप्नोतिमानय । शङ्खोद्गारे नरस्नात्पातपंथेतिवन्देवता  
नृगाम्ने द्वादशाङ्गानि मिदं च ग्राह्यं चामित्रीम् ।

गङ्गापटे तु वा धार्यं शङ्खोद्गारे प्रदास्यति ॥ २१ ॥

तेन विष्णुद्वारेनैतद्व्यति पितरन्तथा । शङ्खोद्गारेनरः छात्वा पूजयेदप्यन्तेरापी  
रात्रौ जागरणं कृत्वा शुद्धो भवति जाह्नवि ।

वश्यं लोकवृत्तं कम मन्यते भुवि तुःसहम् ॥ ३१ ॥

तस्मिन्पदंविशति तत्सर्वं तत्र छात्वा व्यपोह्य ।

वयमुक्त्वा परधृष्टं विष्णुध्यानस्थीयत ॥ ३२ ॥

तदा प्रभृति तर्तीयं गदापादकमुत्तमम् । द्वादशैश्वर्यं विमिस्तात पारंवर्यं चमागते  
तत्र तीर्थेणुपप्लाव शभतिभाषेन भारत । गङ्गातीर्थेणुसस्नात समस्तेषु तसंराय

तत्र तीर्थं मृतानां तु नराणां भाषितात्मनाम् ।

अनिवर्त्तिका गतिस्तेषां विष्णुलोकात्कदाचन ॥ ३५ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे  
रेवाखण्डे गङ्गावाहकतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नामाष्टसप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥

## एकोनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

### गौतमेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र गौतमेश्वरमुत्तमम् । सर्वपापहरं तीर्थं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्  
गौतमेन तपस्तप्तं तत्र तीर्थं युधिष्ठिर ! दिव्यं घर्षसहस्रं तु ततस्तुष्टो महेश्वरः ॥  
प्रणम्य शिरसा तत्र स्थापितः परमेश्वरः । स्थापितो गौतमेनेशो गौतमेश्वर उच्यते  
तत्र देवैश्च गन्धर्वैश्च ऋषिभिः पितृदेवतैः । सम्प्राप्ताह्युत्तमा सिद्धिराराध्यपरमेश्वरम्  
तत्र तीर्थं तु यः स्नात्वा पूजयेत्पितृदेवताः ।

पूजयेत्परमीशानं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५ ॥

ब्रह्मस्तत्र जानन्ति विष्णुमायाविमोहिताः । तत्र सन्नहितं देवं शूलपाणिं महेश्वरम्  
ब्रह्मधारी तु यो भूत्वा तत्र तीर्थं नरेश्वर । स्नात्वाऽर्चयेन्महादेवं सोऽश्वमेधफलं लभेत्  
ब्रह्मधारी तु यो भूत्वा तर्पयेत्पितृदेवताः । पूजयेत्परमीशानं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

तत्र तीर्थं तु यो दानं भक्त्या दद्याद् द्विजातये ।

तदक्षयफलं सर्वं नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ ६ ॥

मासे षाऽश्वयुजे राजन्कृष्णपक्षे चतुर्दशीम् ।

स्नात्वा तत्र विधानेन दीपकानां शतं ददेत् ॥ १० ॥

पूजयित्वा महादेवं गन्धपुष्पादिभिर्न्नरः । मुच्यते सर्वपापेभ्यो मृतः शिवपुरं व्रजेत्  
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां कार्तिक्यां तु विशेषतः ।

उपोष्य प्रयतो भूत्वा घृतेन स्नापयेच्छिवम् ॥ १२ ॥

पञ्चगव्येन मधुनादध्नाया शीतवारिणा । सद्यसर्वस्ययज्ञस्यफले प्राप्नोतिमानव  
भक्त्यातुपूजयेत्पश्चात्स लभेत्फलमुत्तमम् । वित्यपश्चरत्तण्डैश्च पुष्पैस्समस्तकोद्भवै  
शुशापामार्गसहितै कदम्बद्रोणजैरपि । महिषा कर्पूरैश्च रत्नपीतै मित्तसितै  
पुष्पैरन्यैर्यथालाभ यो नर पूजयेच्छिवम् । निरन्तर्येणपण्मास योऽर्चयेद्गीतमेऽम्बरम्  
सर्वान्कामानवाप्नोति मृत शिवपुरद्वजेत् ॥ १६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिमाहस्रथा सहिताया पञ्चमेऽवन्तीखण्डे  
रेखाखण्डे गीतमेऽम्बर्तीथमाहात्म्यवर्णननामैकोनाशीत्यधिकशततमोऽध्याय ॥

## अशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

### दशाश्वमेधतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेन्महापाल दशाश्वमेधिक पम् । तीर्थं सर्वशुणोपेन महापातकनाशनम्  
यत्र गत्वा महाराज स्नात्वा समूह्य चैऽम्बरम् ।  
दशानामश्वमेधाना फल प्राप्नोति मानव ॥ २ ॥

युधिष्ठिर उवाच

अश्वमेधो महायज्ञो बहुसम्भारदक्षिण । अशक्य प्राकृते कर्तुं कथतेपापं लभेत्  
अत्याश्रयमिदं तत्त्वं त्वयोक्तं वदतासता । यथामेजायनेधद्वादीर्वायुस्त्वतथावद  
मार्कण्डेय उवाच

इदमाश्रयभूतं हि गीयापृष्णस्त्रियम्बक । तत्तद्दह सम्प्रवक्ष्यामि पृच्छतेऽनिपुणाय वै  
पुरा नृपस्त्वो देवेश ह्युमया सह शङ्कर । कदाचिन्पयदन्पृष्ठीनिर्मदातटमाश्रित  
दशाश्वमेधिक तीर्थं दृष्ट्वा देवो महेश्वर । तीर्थं प्रत्यर्चन्निन्दध्यानमध्वनेत्रिलोचन

कृताञ्जलिपुत्रं देवं दृष्ट्वा देवीदमब्रवीत् ॥ ८ ॥

देव्युवाच

किमेतद्देवदेवेश! घराचरनमस्कृत !। प्रह्वनम्राञ्जलिं वद्भवा भक्त्या परमया युतः  
एतदाश्चर्यमतुलं सर्वं कथय मे प्रभो! ॥ १० ॥

ईश्वर उवाच

प्रत्यक्षं पश्य तीर्थस्य फलं मा विस्मिता भव ।

वियत्स्था मे भुविस्थस्य क्षणं देवि! स्थिरा भव ॥ ११ ॥

एवमुक्त्वा तु देवेशो गौरवर्णो द्विजोऽभवत् ।

क्षुत्क्षामकण्ठो जट्टिः शुष्को धमनिसन्ततः ॥ १२ ॥

उपविश्यभुवःपृष्ठेसुस्वरंमन्त्रमुच्चरन् । क्रमप्रियोमहादेवो माधुर्येण प्रमोदयन् ॥ १३

श्रुत्वा तां मधुरां वार्णीं स्वयं देवेन निर्मिताम् । .

सम्भ्रान्ता ब्राह्मणाः सर्वे स्नातुं ये तत्र चाऽऽगताः ॥ १४ ॥

नित्यक्रिया च सर्वेषां विस्मृता श्रुतिविभ्रमात् ।

तं दृष्ट्वा पठमानं तु क्षुत्पिपासाऽभिपीडितम् ॥ १५ ॥

द्विजोन्यमन्त्रयत्कश्चिद्भक्त्या तंभोजनायवै । प्रसादः क्रियतांब्रह्मन्भोजनायगृहेमम  
अद्य मे सफलं जन्म ह्यद्य मे सफलाः क्रियाः ।

सर्वान्कामान्प्रदास्यन्ति प्रीता मेऽद्य पितामहाः ॥ १७ ॥

त्वयि भुक्ते द्विजश्रेष्ठ प्रसीद त्वं ध्रुवं मम । एवमुक्तो महादेवो द्विजरूपधरस्तदा  
प्रहस्य प्रत्युवाचेदं ब्राह्मणंश्लक्ष्णयागिरा । मयावर्षसहस्रं तु निराहारं तपः कृतम्  
इदानीं तुगृहे तस्य करिष्ये द्विजसत्तम । दशभिर्वाजिमेधैश्च येनेष्टं पारणं तथा ॥

इत्युक्तो देवदेवेनब्राह्मणो विस्मयान्वितः । उत्तमाङ्गंविधुन्वन्वै जगामस्वगृहंप्रति  
एवंतेवहवोविप्राःप्रत्याख्यातेनिमन्त्रणे । पुराणार्थमजानन्तोनास्तिकावहवोगताः

अथ कश्चिद् द्विजो विद्वान्पुराणार्थस्य तत्त्ववित् ।

देवं विद्वान्पुराणार्थस्य तत्त्ववित् ॥ १८ ॥

तथैव सोऽपि द्वेषेत्प्रोक्तं सप्राह संपुत्र । मतस्यापि त्रिपिषात्पुराणोत्कृष्टिजोत्तम  
 त्र्युतिर्द्वेषुराणेषु यदुक्तं तत्तथागमेत् । इति निश्चित्य संपिप्रमुपायं महत्प्रिय ॥

भा सो विप्र' प्रतीक्षाम्य यावदागमनं पुत्र ।

इत्युक्त्वा तु द्विजो गत्वा दशाभ्यमेधिकं परम् ॥ २६ ॥

ज्ज्ञानं महात्मनादि कृतं तत्र द्विजमता । जपं धार्शन्यादाते कृपाघमांगुसारत  
 संकल्प्य कपित्थं तत्र पुराणोत्कृष्टिजोत्तम ।

समाचारपरितं तत्र यत्राऽर्चो तिष्ठते द्विज ॥ २७ ॥

मयाऽऽगत्य द्विजं प्राह वाजिमेध कृतो मया ।

उत्तिष्ठ मे गृहं स्वयं भाजनायं हि गम्यताम् ॥ २६ ॥

एतुम् शत्रुरस्नेतप्राज्ञानाऽतिपिस्मित । उपायप्राप्त्यक्षये इदानीं त्यमितो गत  
 द्विजयय' कथं यथा दश यथा महाधना ॥ ३१ ॥

द्विज उपाय

न विचारन्वपि काय कृता यथा न मरायः ।

यदि यदा प्रमाणं मे भुवि द्वा द्विजास्तथा ॥ ३२ ॥

दशाभ्यमेधिकं तत्राथ सार्यद्विजोत्तम । यदि यदपुराणोत्कृष्टिजोत्तम  
 तदा प्राप्तं मया स्वयं नाऽत्र काया विचारणा ।

एतमुक्तं तु श्वश्रा भ्रात्मिकस्य तस्य चेतस ॥ ३४ ॥

विमृश्य बहुभिर्किञ्चिदुक्तं न प्रपश्यत । तन्नाम तद्गृह स्वयं पठन्त्यस्य सनातनम् ॥  
 सप्राप्तं न द्विजभययापाद्याप्यणतमद्ययम् । यदसमोचनं तेन दत्तं पश्चाद्यथाविधि

ततो भुक्तं महाद्वयं मयश्चमयं शिरः । पुण्यत्रिणि यथाताऽऽशु गगतासस्य मूर्द्धनि  
 तन्त्यास्मितस्य तु सत्याय तुष्टं प्रायाच शत्रु ॥ ३७ ॥

श्वश्र उपाय

किं तस्य विद्यता प्रति परवाऽऽऽ द्विजोत्तम'

अद्यमपि शान्त्यामि एकचित्तस्य न ध्रुवम् ॥ ३७ ॥

ब्राह्मण उवाच

यदि प्रीतोऽग्नि मेदेवयदिदेशोचरो मम । अस्मिन्तीर्थे महादेव स्थानत्र्यं सर्वदेवति  
उपकाराय देशेन । एष मे घर उत्तमः । पयमुक्तस्तु देवेन धारकरोह द्विजोत्तमः ॥  
गन्धर्वाप्सरःसम्याथं चिमानं सार्वकामिकम् ।  
पूज्यमानो गतस्तत्र यत्र लोका निरामयाः ॥ ४६ ॥

मार्कण्डेय उवाच

एतदाश्चर्यमतुलं दृष्ट्वा देवी सुचिस्मिता । विस्मयोत्कुहनयना पुनःपप्रच्छशङ्कम्  
पार्वत्युवाच

कथमेतद्भवेत्सत्यं यत्रेदमसमक्षमम् । ज्ञानं कुर्वन्ति यद्यो लोका एत महेश्वर ॥  
तेषां तु स्वर्गंगमनं यथैष स्वर्गंति गतः । कथमेतत्समाश्रित्य विस्मयः परमो मम  
एतच्छ्रुत्वा तु देशेनः प्रहृन्प्रत्युवाच ताम् ।

वेदवाक्ये पुराणार्थं स्मृत्यर्थे द्विजभाषिणे ॥ ४७ ॥

विस्मयो हिनक्तर्व्योहनुमानंहिततथा । अस्माद्यर्थे हिलोकानां पुराणेषु यत्प्रगीयते  
यदि पक्षं पुरसृत्प्र लोकाः कुर्वन्ति पार्वति ॥

तस्मान्न सिद्धिरेतेषां भवत्येको न विस्मयः ॥ ४७ ॥

नास्तिका मित्रमर्यादा ये निश्चयवहिष्कृताः ।

तेषां सिद्धिर्न चिद्येत आस्तिक्याद्भवते ध्रुवम् ॥ ४८ ॥

श्रुत्वाख्यानमिदं देवीवचन्देतीर्थमुत्तमम् । सर्वपापहरंपुण्यं नर्मदायांव्यवस्थितम्

मार्कण्डेय उवाच

दशाश्वमेधं राजेन्द्र सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम् । तीर्थं सर्वगुणोपेतं महापातकनाशनम्  
तत्रागता महाभागा ज्ञातुकामा सरस्वती ।

पुण्यानां परमा पुण्या नदीनामुत्तमा नदी ॥ ५१ ॥

नाममात्रेण यस्यास्तु सर्वपापैः प्रमुच्यते ।

स्नातास्तत्र दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः ॥ ५२ ॥



दशाश्वमेधे साराजत्रियताब्रह्मधारिणी । आराधयित्वा दवेशपरनिर्वाणमागती  
 कालुष्य ब्रह्मसभूतासवत्सरसमुद्भवम् । प्रक्षालयितुमायाति दशम्यामाश्विनस्यच  
 उपोष्य रजनीं ता तु सपूज्य त्रिपुरान्तकम् ।

राजत्रिष्कल्मषा यान्ति श्वोभूते शाश्वत पदम् ॥ ५५ ॥

युधिष्ठिर उवाच

सरस्वती महापुण्या नदीनामुत्तमानदी । दशाश्वमेधमायाति स्नातुसवत्सरेसदा  
 किमधिक्य भवेत्तीर्थं दशम्या तत्र शस मे ॥ ५६ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

राजनाश्वयुजेमासि दशम्या तद्विशिष्यते । पार्थिवेषु चतीर्थं तुसर्वेष्वेव नसशय  
 दशाश्वमेधिकेराजत्रित्यहि दशमीशुभा । विशेषादाश्विनेशुक्लामहापातकनाशिनी  
 तस्या स्नात्वाऽच्चयेद्देवानुपवासपरायण ।

श्राद्धं कृत्वा विधानेन पश्चात्सपूजयेच्छिष्यम् ॥ ५६ ॥

तत्रस्या पूजयेद्देवीं स्नातुकामा सरस्वतीम् । नमो नमस्ते देवेशि ब्रह्मदेहसमुद्भवे  
 कुरु पापक्षय देवि ससाराण्णा समुद्धर । गन्धधूपैश्च सपूज्य ह्यर्घ्ययित्वा पुन पुन  
 दश प्रदक्षिणा दत्त्वा सूत्रण परिवेष्टयेत् । कपिला तुततोविप्रे दद्याद्विगतमन्सर  
 सवग्धुणसपश्ना सर्वोपस्करसयुताम् । दत्त्वा विप्राय कपिलान शोचतिरुनाकृते  
 पश्चाज्जागरण बुयाद् घृतेनोज्वाल्पदीपकम् । पुराणपठनेनैव कृत्यगीतविवादानै  
 वेदोक्तैश्चैव जाप्यैश्चपूजयेच्छशिशेखरम् । प्रभातेविमले पश्चात्स्नात्वाचैनमदाजले  
 ब्राह्मणान्भोजयेद्भक्त्या शिवभक्ताश्च योगिन ।

एव कृत ततो राजन्सम्यक्तीर्थफल लभेत् ॥ ६६ ॥

तत्र तीर्थे तुय स्नात्वा पूजयेच्छङ्करम् । दशाश्वमेधाचभूय लभते पुण्यमुत्तमम्  
 पूनात्मा तेन पुण्येन रुद्रलोक स गच्छति ।

आरुद्रं परम यान कामग च सुशोभनम् ॥ ६८ ॥

तत्र दिव्याऽप्सरोभिस्तु धीज्यमानोऽथ चामरे ।

क्रीडते सुचिरं कालं जयशब्दादिमङ्गलैः ॥ ६६ ॥

ततोऽवतीर्णः कालेन इहराजाभवेद्द्रुवम् । हस्त्यश्वरथसंपन्नो महाभोगी परंतपः  
दशाश्वमेधे यद्दानं दीयते शिवयोगिनाम् । दशाश्वमेधसदृशं भवेत्तन्नाऽत्र संशयः  
सर्वेपामेव यज्ञानामश्वमेधो विशिष्यते ।

दुर्लभः स्वल्पवित्तानां भूरिशः पापकर्मणाम् ॥ ७२ ॥

तत्र तीर्थे तु राजेन्द्रदुर्लभोऽपिसुरासुरैः । प्राप्यतेस्नानदानेन इत्येवंशङ्करोऽत्रर्वात्  
अकामो वा सकामो वा मृतस्तत्र नरेश्वर !

देवत्वं प्राप्नुयात्सोऽपि नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ ७४ ॥

अग्निप्रवेशं यः कुर्यात्तत्र तीर्थेनरोत्तम । अग्निलोके वसेत्तावद्याचदाभूतसम्प्लवम् ॥  
जलप्रवेशं यः कुर्यात्तत्र तीर्थे नराधिप । ध्यायमानो महादेवंवारुणंलोकमाप्नुयात्  
दशाश्वमेधे यः कश्चिच्छूरवृत्त्या तनुं त्यजेत्  
अक्षया नु गतिस्तस्य इत्येवं श्रुतिनोदना ॥ ७७ ॥

न तां गतिं यान्ति भृगुप्रपातिनो न दण्डिनो नैव च सांख्ययोगिनः ॥

ध्वजाकुले दुन्दुभिशंखनादिते क्षणेन यां यान्ति महाहवे मृताः ॥ ७८ ॥

यत्र तत्र हतःशूरः शत्रुभिः परिवेष्टितः । अथयल्लभतेलोकान्यदि क्लीवं न भाषते  
दशाश्वमेधे संन्यासं यः करोति विधानतः ।

अनिवर्त्तिका गतिस्तस्य रुद्रलोकात्कदाचन ॥ ८० ॥

दशाश्वमेधे यत्पुण्यं संक्षेपेण युधिष्ठिर । कथितं परया भक्त्यासर्वपापप्रणाशनम्  
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे  
रेवाखण्डे दशाश्वमेधतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नामाशीत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥

## एकाशीत्यधिकशततमोऽध्याय

### भृगुरुच्छ्रोत्पत्तिवर्णनम्

श्रीमाकण्डेय उवाच

अत परप्रवक्ष्यामि भृगुतीर्थस्यचिस्तरम् । यद्भृत्वाब्रह्महागोप्रोमुच्यतेसवपातके  
तत्रतीर्थे तुचिर्यात वृषखातमितिधनम् । भृगुणातत्र राजेन्द्रतपस्तप्त पुराकिल

युधिष्ठिर उवाच

भृगुरुच्छ्रे सविभ्रेन्द्रो निवसन्वेनहेतुना । तपस्तप्त्वासुविपुत्रपरा सिद्धिमुपागत  
को वा वृष इति प्रोक्तस्तत्त्वात् येन खानितम् ।

एतत्सर्वं यथान्वाय कथयस्व ममाऽनघ ॥ ४ ॥

श्रीमाकण्डेय उवाच

एष प्रश्नो महाराजयस्त्वया परिप्रच्छित । त सर्वं कथयिष्यामि शृणुष्वेकमतानृप  
पटुस्तु ब्रह्मण पुत्रो मानसो भृगुस्तप्त । तपश्चचार विपुलधीवृते क्षेत्रे उत्तमे ॥

दिव्य वपसहस्र तु सशुष्को मुनिसत्तम ।

निराहागो निरानन् काष्ठपाषाणवत्स्थित ॥ ७ ॥

तत कदाचिद्द्वेशोचिमानवरमास्थित । उमयासहित श्रीमास्तेनप्राणघागत  
दृष्ट्वा तत्र महाभाग भृगु वामाकवस्थितम् । उवाच देवीदेवेशकिमिददृश्यतेप्रभो

ईश्वर उवाच

भृगुनाम महादेवि तपस्तप्त्वा मुदारुणम् । दिव्यवपसहस्र तुमम ध्यानपरायण  
जगदिन्दु कुशाग्रण मासेमामे पिपेक्षस । सम्यग्मरशन साप्र तिष्ठते च घरानने  
तच्छ्रुत्वा वचन गौरीक्रोधमवसिनेक्षणा । उवाचदेवी देवेश शूत्रपाणि महेश्वरम  
सत्यमुप्रोऽसि गोकै त्व व्यापितो वृषमभ्यज ॥

निष्कारुण्यो दुराराध्य सर्वभूतभयङ्कर ॥ १३ ॥

दिव्यं वर्षसहस्रं तु ध्यायमानस्यशङ्करम् । ब्राह्मणस्यवरं कस्मान्नप्रयच्छसिशंसमे  
एवमुक्तोऽथ देवेशः प्रहस्य गिरिनंदिनीम् । उवाच नरशार्दूलमैवगम्भीरयागिरा  
स्त्री चिनश्यति गर्वेणतपः क्रोधेननश्यति । गावो दूरप्रचारेणशूद्रान्नेन द्विजोत्तमाः

क्रोधान्वितो द्विजो गौरि! तेन सिद्धिनं विद्यते ।

वर्षायुतेस्तथा लक्षैर्न किञ्चित्कारणं प्रिये ॥ १७ ॥

एवंभूतस्य तस्याऽपि क्रोधस्य चरितं महत् ।

एवमुक्त्वा ततः शम्भुर्वृषं दध्यौ च तत्क्षणे ॥ १८ ॥

वृषोहि भगवन्ब्रह्मा वृषरूपी महेश्वरः । ध्यानप्राप्तः क्षणादेव गर्जयन्वै मुहुर्मुहुः ॥  
किंकरोमि सुरश्रेष्ठ ध्यातःकेनैव हेतुना । करोमि कस्य निधनमकाले परमेश्वर! ॥

ईश्वर उवाच

कोपयस्व द्विजश्रेष्ठं गत्वा त्वंभृगुसत्तमम् । येनमे श्रद्धधृत्येषा गौरीलोकैकसुन्दरी  
एतच्छ्रुत्वा वृषो गत्वा धर्षणार्थं द्विजोत्तमम् ।

नर्मदायास्तटे रम्ये समीपे चाऽऽश्रमेभृगुः ॥ २२ ॥

ततः शृगौर्गृहीत्वा तुप्रक्षितोनर्मदाजले । ततःक्रुद्धो भृगुस्तत्र दण्डहस्तोमहामुनिः  
पशुवत्ते वधिष्यामि दण्डघातेनमस्तके । शिखायज्ञोपवीते च परिधानं वरासने  
सुसंवृतं कृतं तेन धावन्वै पृष्ठतोऽब्रवीत् ॥ २५ ॥

भृगुस्वाच

पापकर्मन्दुराचार कथंयास्यसिमेवृष । अवमानं समुत्पाद्य कृत्वा गत्तं सुरैस्तथा  
गर्जयित्वामहानादंततो विप्रमपातयत् । आत्मानं पातितंज्ञात्वावृषेणपरमेष्ठिना  
भृगुः क्रोधेनजज्वाल हुताहुतिरिवानलः । करेगृह्य महादण्डं ब्रह्मदण्डमिवाऽपरम्  
हन्तुकामो वृषंविप्रोभ्यधावत युधिष्ठिर । धावमानं ततो दृष्ट्वास वृषः पूर्वसागरे  
जम्बूद्वीपं कुशं क्रौञ्चंशाल्मलिशाकमेवच । गोमैदंपुष्करंप्राप्तः पूर्वतोदक्षिणापथम्  
उत्तरं पश्चिमं चैवद्वीपाद्द्वीपं नरेश्वर । पातालं सुतलं पश्चाद्वितलं च तलातलम् ॥

तामिन्नमन्धतामिन्नं पातालं सप्तमं ययौ ।

ततो जगाम भूलोकं प्राणार्थो स वृषोत्तम ॥३२॥

भुव स्वधैव च महस्तप सत्यं जनस्तथा ।

अनुगम्यमानो विप्रेण न शर्म लभते क्वचित् ॥ ३३ ॥

पाप कृत्वैव पुरुष कामक्रोधबलार्दित । ततो जगाम शरणं ब्रह्माणं विष्णुमेव ।

इन्द्र घट्ट तथाऽऽदित्यैर्याम्यवारुणमारतौ ।

यदा सर्वे परित्यक्तो लोकालोके सुरैश्चरैः ॥ ३५ ॥

तदा देव नमस्त्वया रक्षरक्षस्वचाऽग्रवीत् । वध्यमानमहादेवो भृगुणा परमेष्ठिन

सचलोकैः परित्यक्तमनाथमिव त प्रभो । दृष्ट्वा श्रान्तं वृष देव पतितं घरणाग्रत

तत प्रोवाच भगवान्स्मितपूर्वमिदं वच ॥ ३८ ॥

ईश्वर उवाच

पश्य देवि महाभाग शम विप्रस्य सुन्दरि ॥ ३९ ॥

पार्वत्युवाच

यावद्विप्रोत्तमास्माकुकुप्यतेपरमेश्वर । तावद्धरप्रयच्छाऽऽशुयदित्तेच्छसिमत्प्रिया

ततो भस्मी जग शूली घन्द्राधरुतशखर । उमाद्भदेहोभगवान्भूत्वा विप्रमुवाचा

भोभोद्विजघरश्चष्टक्रोधस्तेनशमगत । यन्मानस्मादिदतातक्रोधस्थान भविष्यति

ततो दृष्ट्वा च त शम्भु भृगु श्रष्टु विलोचनम् ।

जानुभ्यामवर्ति गत्वा इदं स्तोत्रमुदीरयत् ॥ ४३ ॥

भृगुरवाच

प्रणिपत्य भूतनाथ भयोद्भव भृतिदं भयातीतम् ।

भवर्मानो भुवनपते पिबन्तु किञ्चिदिच्छामि ॥ ४४ ॥

स्वर्गुणनिकरान्वयन्तु का शक्तिर्मानुषस्यास्य ।

वासुकिरपि न तावद्वक्तुं वदन्महस्य भवेद्यस्य ॥ ४५ ॥

भक्त्या तथाऽपि शङ्कर शशिधर करजालधवलितशेष ।

स्तुतिमुखरस्य महेश्वर प्रसीद तव घरणनिरतस्य ॥ ४६ ॥

सत्त्वं रजस्तमस्त्वं स्थित्युत्पत्तिविनाशनं देव !।  
 भवभीतो भुवनपते भुवनेश! शरणनिरतस्य ॥ ४७ ॥  
 यमनियमयज्ञदानं वेदाभ्यासश्च धारणायोगः ।  
 त्वद्भक्तैः सर्वमिव नार्हन्ति वै कलासहस्रांशम् ॥ ४८ ॥  
 उत्कृष्टरसरसायनखड्गाञ्जनविवरपादुकामिद्धिः ।  
 चिह्नं हि तव नतानां दृश्यत इह जन्मनि प्रकटम् ॥ ४९ ॥  
 शाठ्ये न यदि प्रणमति वितरसि तस्याऽपि भृतिमिच्छया देव !।  
 भवति भवच्छेदकरी भक्तिर्मांक्षाय निर्मिता नाथ ! ॥ ५० ॥  
 परदारपरस्वरतं परपरिभवदुःखशोकसन्तप्तम् ।  
 परवदनवीक्षणपरं परमेश्वर! मां परित्राहि ॥ ५१ ॥  
 अधिकाभिमानमुदितं क्षणभङ्गुरविभवविलसन्तम् ।  
 क्रूरं कुपथाभिमुखं शङ्कर! शरणागतं परित्राहि ॥ ५२ ॥  
 दीनं द्विजं परार्थं बन्धुजनेनैव पूरिता ह्याशा ।  
 छिन्धि महेश्वर! तृष्णां किं मूढं मां विडम्बयसि ॥ ५३ ॥  
 तृष्णां हरस्व शीघ्रं लक्ष्मीं वद हृदयवासिनीं नित्यम् ।  
 छिन्धि मदमोहपाशं मामुत्तारय भवाच्च देवेश ! ॥ ५४ ॥  
 करुणाभ्युदयं नाम स्तोत्रमिदं सर्वसिद्धिदं दिव्यम् ।  
 यः पठति भृगुं स्मरति च शिवलोकमसौ प्रयाति देहान्ते ॥ ५५ ॥  
 पतच्छ्रुत्वा महादेवः स्तोत्रं च भृगुभाषितम् ।  
 उवाच धरदोऽस्मीति देव्या सह वरोत्तमम् ॥ ५६ ॥

भृगुवाच

प्रसन्नो देवदेवेश! यदि देवो वरो मम । सिद्धिक्षेत्रमिदं सर्वं भविता मम नामतः ॥  
 भवद्भिः सन्निधानेन स्थातव्यं हि सहोमया । देवक्षेत्रमिदंपुण्यं येन सर्वम्भविष्यति  
 अत्र स्थाने महास्थानं करोमि जगदीश्वर । तवप्रसादाद्देवेश पूर्यन्तां मे मनोरथाः

इंधर उवाच

धियाहृतमिदं पूर्वं किं न ज्ञातं त्वया द्विज । अनुमान्यधियं देवीं यदीयं मन्यते मवान्

कुरुष्व यदभिप्रेत त्वत्कृतं न तदन्यथा ।

एषमुक्त्वा गते देवे ज्ञात्वा गत्वा भृगु धियम् ॥ ६१ ॥

कृत्वा च पारण तत्र वसन् विप्रस्तया सह । धियाचसहितकाल इदं वचनमब्रवीत्

भृगुरुवाच

यदि ते रोषने भद्रं! दुःखासीनं च ते यदि ।

न्यया गृहे महाक्षेत्रे स्वीय स्थानं करोम्यहम् ॥ ६३ ॥

धीरुवाच

ममताम्रा तु विप्रपतवनाद्या तु शोभनम् । स्थानं कुरुष्व्याभिप्रेतमधिरोधेनमेमतिः

भृगुरुवाच

कच्छपाधिष्ठितं होतत्तस्य पृष्ठिगत रमे । समन्य सहितं तेन शोभनं भवती कुरु

इति धीस्त्वान्देमहापुराणप्रकाशीतिसाहस्रपासंहितायापञ्चमेऽवन्तीखण्डे

रेखाखण्डे भृगुकच्छोत्पत्तिवर्णनं नामकाशीत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥

द्वयशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

भृगुकच्छतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

धामार्कण्डेय उवाच

नतो भृगु त्रिषा च व समेत कच्छपगत । अभिनन्द्य यथान्यायमुवाच वचनशुभम्

स्वर्गं पुता धरा सवा तथा लोकाक्षराधरा ।

क, व पुण्यभावत्वान्स्थितस्तत्र महामते ॥ २ ॥

धातुर्विद्युत्-स्थानं करोमि रमया सह । यदित्वमन्यसे देव तदादेशयमाविभो

कृम उवाच

एवमेवद्विजश्रेष्ठ ममनामाङ्कितं पुरम् । भविष्यति महत्कालं ममोपरिसुप्तंस्थितम्  
अचलं सुस्थिरं तात न भीःकार्या सुलोचने !।

एतच्छ्रुत्वा शुभं वाक्यं कच्छपस्य मुखाच्च्युतम् ॥ ५ ॥

नन्दनेवत्सरे माघे पञ्चम्यां भरतर्षभ । शस्ते नु ह्य त्तरायोगैकुम्भस्ये शशिमण्डले  
रेवाया उत्तरे तीरे गम्भीरे चारुवारुणि । प्रागुद्वप्रवणेदेशे कोटितीयंसमन्वितम्  
क्रोशप्रमाणं तत्क्षेत्रं प्रासादशतसङ्कुलम् । अचिरेणैवकालेन तपोबलसमन्वितः ॥

विचिन्त्य विश्वकर्माणं चकार भृगुसत्तमः ॥ ६ ॥

ब्राह्मणा वेदविद्वांसो क्षत्रिया राज्यपालकाः ।

वैश्या वृत्तिरतास्तत्र शूद्राः शुश्रूपकास्त्रिपु ॥ १० ॥

एवं श्रिया वृतं क्षेत्रं परमानन्दनन्दितम् । निर्मितं भृगुणातातसर्वपातकनाशनम्  
इति भृगुकच्छोत्पत्तिः

मार्कण्डेय उवाच

ततःकालेन महता कस्मिंश्चित्कारणान्तरे ।

देवलोकं जगामाशु लक्ष्मीर्ऋषिसमागमे ॥ १२ ॥

समर्प्य कुञ्जिकाट्टालं भृगवे ब्रह्मवादिने । पालयस्व यथार्थं वै स्थानकं ममसुवत  
देवकार्याण्यशेषाणि कृत्वा श्रीः पुनरागता ।

आजगाम रमा देवी भृगुकच्छं त्वरान्विता ॥ १४ ॥

प्रार्थितं कुञ्जिकाट्टालं स्वगृहं स्वपरिग्रहम् ।

भृगुर्यदा तदा पार्थ! मिथ्या नास्ति तदाऽवदत् ॥ १५ ॥

एवं विवादः सुमहान्सञ्जातश्च नरेश्वर । ममेति मम धीवेति परस्परस्तमागमे ॥१६

ततः कालेन महता भृगुणा परमर्षिणा ।

घातुर्विद्यप्रमाणार्थं चकार महतीं स्थितिम् ॥ १७ ॥

अस्मदीयं यथा सर्वं नगरंभृगुलोचने । घातुर्विद्या द्विजाःसर्वेतथाजानन्तिसुन्दरि



ईश्वर उवाच

श्रियाहृतमिदं पूर्वं किं न ज्ञातत्वयाद्विज । अनुमान्यश्रियं देवीं यदीयमन्यतेभवान्  
कुरुष्व यदभिप्रेत त्वत्कृतं न तदन्यथा ।

एयमुक्त्वा गते देवे स्नात्वा गत्वा भृगु श्रियम् ॥ ६१ ॥

श्रुत्वा च पारण तत्रवसन्विप्रस्तया सह । श्रियाचसहित काल इदं वचनमब्रवीत्

भृगुस्त्वाच

यदि ते रोचते भद्र! तु यासीनं च ते यदि ।

त्वया गृते महाक्षेत्रे स्वीय स्थानं करोम्यहम् ॥ ६३ ॥

श्रीरवाच

ममनाम्ना तु विप्रर्षेतयनाम्ना तु शोभनम् । स्थानं कुरुष्वामिप्रेतमचिरोधेनमेमति

भृगुस्त्वाच

कच्छपाधिष्ठितं होतृत्तस्य पृष्ठिगर्तं रमे । समन्त्र्य सहितं तेन शोभनं भवती कुरु  
इति श्रीस्कान्देमहापुराणणकाशीतिसाहस्रधासहितायापञ्चमेऽध्यायखण्डे

रेवाखण्डे भृगुकच्छोत्पत्तिवर्णनं नामकाशीत्युत्तरप्रान्ततमोऽध्यायः ॥

द्व्यंशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

भृगुकच्छतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो भृगु श्रिया चैव समेत कच्छपगत । अभिनन्द्य यथान्यायमुवाचवचनशुभम्  
त्वया धृता धरा सर्वा तथा लोकाधराधरा ।

तथैव पुण्यभाषत्वातिस्थितस्तत्र महामने ॥ २ ॥

घातुर्विद्यस्य सस्थानं करोमि रमया सह । यदित्यमन्यसेदेव तदादेशयमाविभो

भृगुरुवाच

शापयित्वा द्विजान्सर्वान्पुरा लक्ष्मीर्चिनिर्गता ।

अपवित्रमिदं चोक्त्वा ततो देवा विनिर्गताः ॥ ३३ ॥

ईश्वर उवाच

पुरा मयायथाप्रोक्तंतत्तथा न तदन्यथा । क्रोधस्थानमसन्देहंतथाऽन्यदपितच्छृणु  
तत्र स्थानसमुद्भूता महद्भयचिर्वर्जिताः । ब्राह्मणामत्प्रसादेन भविष्यन्ति न संशयः

वेदविद्याव्रतस्नाताः सर्वशास्त्रचिशारदाः ।

येऽपि ते शतसाहस्रास्त्वरिता ह्यागतास्त्वह ॥ ३६ ॥

अपठस्यापि मूर्खस्य सर्वावस्थांगतस्य च । उत्तरादुत्तरंशक्रो दातुं न तु भृगुत्तम  
कोटितीर्थमिदं स्थानं सर्वपापप्रणाशनम् । अद्यप्रभृतिविप्रेन्द्र भविष्यति न संशयः  
मत्प्रसादाद्देवगणैः सेवितञ्च भविष्यति । भृगुक्षेत्रे मृताये तु कृमिकीटपतङ्गकाः  
वासस्तेषां शिवे लोके मत्प्रसादाद्भविष्यति ।

वृषखाते नरः स्नात्वा पूजयित्वा महेश्वरम् ॥ ४० ॥

सर्वमेधस्य यज्ञस्य फलंप्राप्तौत्यसंशयम् । भृगुतीर्थेनरः स्नात्वा तर्पयेत्पितृदेवताः  
तस्य ते द्वादशाब्दानि शिान्त गच्छन्ति तर्पिताः ।

दधिक्षीरेण तोयेन घृतेन मधुना सह ॥ ४२ ॥

येस्नपन्ति विरूपाक्षंतेषां वासस्त्रिविष्टपे । मत्प्रसादाद्द्विजश्रेष्ठसर्वदेवानुसेचितम्  
भविष्यति भृगुक्षेत्रं कुरुक्षेत्रादिभिः समम् ।

मार्त्तण्डग्रहणे प्राप्ते यवं कृत्वा हिरण्मयम् ॥ ४४ ॥

दत्त्वा शिरसि यः स्नाति भृगुक्षेत्रे द्विजोत्तम !

अविचारेण तं विद्धि संस्नातं कुरुजाङ्गले ॥ ४५ ॥

अहं चैव वसिष्यामि अम्बिका च मम प्रिया ।

सर्वदुःखापहा देवी नाम्ना सौभाग्यसुन्दरी ॥ ४६ ॥

वसिष्यामि तया देव्या सहितो भृगुकच्छके ।

## ध्रीत्वाद्य

प्रमाणमम विप्रेन्द्रघानुर्यण्या न सशपः । मदीयंवात्यदीयंवाकथयन्तुद्विजोत्तमा-  
तत समस्तैर्विबुधैः सम्प्रधार्यं परस्परम् । द्विधातैर्वाकम्यलदृष्ट्वाद्वाह्यणानृपसहितम्  
अष्टादशमहस्त्राणि नोचुर्वैकिञ्चिदुत्तरम् । अष्टादशमहस्त्रेषु भृगुकोपययानृप ॥

उक्तं च तालकं हस्ते यस्य तस्येदमुत्तरम् ॥ २१ ॥

एतच्छ्रुत्वा तु सा देवी निगम नैगमं हृतम् ।

क्रोधेन महताविणा शशाप द्विजपुत्रान् ॥ २२ ॥

## ध्रीद्व्युत्वाद्य

यस्मात्सत्यं समुत्सृज्य लोभोपहतमानसैः ।

मदीयं लोपितं स्थानं तस्माच्छृण्वन्तु मे गिरम् ॥ २३ ॥

त्रिपीरुषामत्रेद्विधात्रिपुराणं भयेजनम् । न द्वितीयस्तुयोवेदं पठितो भवति द्विजा  
गृहाणि न द्विभोजानि न च भूतिः स्थिरा द्विजा ।

पश्यान्त न धो धर्मो न च निश्चयं भावत ॥ २४ ॥

इष्टो गोत्रजनकश्चिह्नोमेतावूनमानसः । न च द्वेषपरित्यज्यहो कसत्यम्भविष्यति  
अद्यप्रभृति सर्वगामहकारो द्विजन्मनाम् । न पितापुत्रवाक्येन न पुत्रपितृकर्मणि  
अहङ्कारकृता सर्वं भविष्यन्ति न सशयः । इति जप्त्वा रमादेवी तदैव च दिव ययी

ततो गताया वै लक्ष्म्या देवाग्रहार्णयोऽमला ।

क्रोधलोभमिदं स्थानं तेऽपि शोक्तवा द्विष ययुः ॥ २५ ॥

गता दृष्ट्वा ततो दधामृगाश्चैव तपोधनाम् ।

भृगुश्च परमं स चिन्तादमगमत्परम् ॥

प्रसादयामास पुनः शङ्करत्रिपुरान्तकम् ॥ ३० ॥

तपसा महता पाथं ततस्नुष्टो महेश्वरः । उवाच घघन काले हर्षयन्भृगुसत्तमम् ॥

किं विरण्णोऽसि विप्रेन्द्र! किं वा सन्तापकारणम् ।

मयि प्रसन्नेऽपि तव ह्येतत्कथय मेऽनघ ॥ ३२ ॥

स याति परमं लोकमिति रुद्रः स्वयं जगौ ॥ ६३ ॥

देवखाते नरः स्नात्वा पिण्डदानादिसत्क्रियाम् ।

यां करोति नृपश्रेष्ठ! तामक्षयफलां चिदुः ॥ ६४ ॥

य इमं शृणुयद्भक्त्या भृगुकच्छस्य विस्तरम् ।

कोटितीर्थफलं तस्य भवेद्वै नाऽत्र संशयः ॥ ६५ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे  
रेवाखण्डे भृगुकच्छतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम द्वयशीत्युत्तरशततमोऽध्यायः

## त्रयशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

### केदारेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

अतःपरमं हाराजगच्छेत्केदारसञ्ज्ञकम् । यत्रगत्वामहाराजश्राद्धं कृत्वा पिवेजलम्  
सम्पूज्य देवदेवेशं केदारोत्थं फलं लभेत् ॥ १ ॥

युधिष्ठिर उवाच

अथमत्र सुरश्रेष्ठ केदाराख्यः स्थितः स्वयम् । उत्तरे नर्मदाकूले एतद्विस्तरतो वद  
श्रीमार्कण्डेय उवाच

पुरा कृतयुगस्याऽऽदौ शङ्करस्तुमहेश्वरः । भृगुणाराधितः शप्तः श्रिया च भृगुकच्छके  
अपवित्रमिदं क्षेत्रं सर्ववेदविवर्जितम् । भविष्यति नृपश्रेष्ठ गतेत्युक्त्वा हरिप्रिया  
तपश्चचार विपुलं भृगुर्वर्षसहस्रकम् । वायुमक्षो निराहारश्चिरं धमनिसन्ततः ॥  
सतः प्रत्यक्षतामागालिङ्गीभूतो महेश्वरः । प्रादुर्भूतस्तुसहसामिच्छापातालसप्तकम्  
ददर्शाऽथ भृगुर्देवसौत्पलीं केलिकामिव ।

स्तुतिं चक्रे स देवाय स्थाणवे त्र्यम्बकेति च ॥ ७ ॥

एवमुक्त्वा स्थितो देवो भृगुकच्छेऽम्बिका तथा ॥ ४७ ॥

भृगुस्तु स्वपुर प्रायाद् ब्रह्मबोधिनादितम् ।

शृण्वतु मामबोधेण हायवर्णनिनादितम् ॥ ४८ ॥

तत्रतीर्थेतुप स्नात्वा वृषमुच्छ्रजेनर । न यातिशिवसायुज्यमित्येषशङ्करोऽप्रवीत्  
तत्र तीर्थे तु य स्नात्वा घैत्रे मासि समाचरत् ।

दद्याच्च लवण विप्रे पूज्य सौभाग्यसुन्दरीम् ॥ ५० ॥

गामूहिरण्य विप्रेभ्य प्रायेता ललिताशिवौ । न दुःखदुमगत्यघचियोगपतिनामह  
प्राप्नोतिनारारानेन्द्रभृगुनार्याप्लवेन च । यस्तु नित्य भृगु देव पश्येद्वैपाण्डुनन्दन  
आत्रहसद्न याचतत्रस्वर्धैवते सह । यत्फलं समावाप्नोति तच्छृणुष्य नृपोत्तम ॥

मुषणशृङ्गा कपिला पयस्विनीं सार्ध्वीं सुशीला तरुणीं सवत्साम् ।

दत्त्वा द्विने सवप्रतोपपत्रे पत्र घ यत्स्यात्तदिहैव नूनम् ॥ ५४ ॥

समा महम्बाणि तु सप्त घै जले छियेल्भेद्दु द्वादशवह्निमध्ये ।

त्यनस्तनु शूरवृत्त्या नरेन्द्र शत्राऽतिथ्य याति घै मरत्यधमा ॥ ५५ ॥

आग्यानमतश्च सदा यशस्य स्वर्ग्यं धन्य पुत्र्यमायुष्यकारि ।

\* १ ७ ण्वह्रुभे सवमेतद्धि भक्त्या पयणि पयण्याजमीदस्सदेव ॥ ५६ ॥

मन्यास कस्ते यस्तु भृगुनार्ये विधानत । स मृत परमस्यानगच्छेद्द्वैयच्छदुर्लभम्  
यतच्छ त्वा भृगुऽष्टोदवद्वेनभापितम् । प्रहृष्टवदनो भूत्वा तत्रैव सस्थितो द्विज  
निरोभाच गत दधे भृगु श्रेष्ठो द्विजोत्तम ।

स्वमूर्ति तत्र मुक्त्वा तु ब्रह्मलोक जगाम ह ॥ ५६ ॥

भृगुकच्छन्त्य धोत्पत्ति कथिता तव पाण्डव ।

मक्षपेण महाराज ! सवपापप्रणाशनी ॥ ६० ॥

एतन्पुण्य पापहर क्षेत्र देवेन कीर्तितम् । चतुयु गसहस्रेण पितामहदिन स्मृतम् ॥  
प्राप्त ब्रह्मदिनेविप्रा नायनेयुगसम्मव । न पश्यामित्विदं क्षेत्रमितिहृदस्वयजगी  
य शृणोति त्विद् भक्त्या नारी धा पुरुषोऽपि धा ।

१८३ तमोऽध्यायः ] \* केदारेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम् \*

स याति परमं लोकमिति रुद्रः स्वयं जगौ ॥ ६३ ॥

देवखाते नरः स्नात्वा पिण्डदानादिसत्क्रियाम् ।

यां करोति नृपश्रेष्ठ! तामक्षयफलां विदुः ॥ ६४ ॥

य इमं शृणुयाद्भक्त्या भृगुकच्छस्य विस्तरम् ।

कोटितीर्थफलं तस्य भवेद्वै नाऽत्र संशयः ॥ ६५ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे  
रेवाखण्डे भृगुकच्छतीर्थमाहात्म्यवर्णननाम द्व्यशीत्युत्तरशततमोऽध्यायः

## त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

### केदारेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

अतःपरमहाराजगच्छेत्केदारसञ्ज्ञकम् । यत्रगत्वामहाराजश्राद्धं कृत्वा पिबेज्जलम्

सम्पूज्य देवदेवेशं केदारोत्थं फलं लभेत् ॥ १ ॥

युधिष्ठिर उवाच

अथमत्र सुरश्रेष्ठ केदाराख्यः स्थितः स्वयम् । उत्तरे नर्मदाकूले एतद्विस्तरतोवद

श्रीमार्कण्डेय उवाच

पुरा कृतयुगस्याऽऽर्दी शङ्करस्तुमहेश्वरः । भृगुणाराधितःशप्तःश्रियाच्चभृगुकच्छके

अपवित्रमिदंक्षेत्रं सर्ववेदवित्रर्जितम् । भविष्यति नृपश्रेष्ठ गतेत्युक्त्वा हरिप्रिया

तपश्चधार विपुलं भृगुर्वर्षसहस्रकम् । वायुमक्षो निराहारध्विरं धमनिसन्ततः ॥

सतःप्रत्यक्षतामागाल्लिङ्गीभूतोमहेश्वरः । प्रादुर्भूतस्तुसहस्राभिस्वापातालसप्तकम्

ददर्शाऽथ भृगुर्देवमौत्पलीं केलिकामिव ।

स्तुतिं चक्रे स देवाय स्थाणवे त्र्यम्बकेति च ॥ ७ ॥

एवं स्तुतं स भगवान्प्रोवाच प्रहमन्निव । पुन पुनभृंगु मत्तं किन्तु प्रार्थयसे।  
भृंगुरवाच

पञ्चजोरामिदग्नेश्च पद्मया शापितम्विभो । अपवित्रमिदग्नेत्रं सर्वधेवविवाञ्जितम्  
भविष्यतीति च प्रोच्य गता देवी दिग्गप्रति ॥ ६ ॥

पुन पवित्रता याति यथेद् क्षेत्रमुत्तमम् । तथा कुरु महेशानं प्रसन्नो यदि श  
ईश्वर उवाच

केदारारुमिदं ब्रह्मं हिङ्गुमाद्यम्भविष्यति ।

वृत्तदमादिलिङ्गानि भविष्यन्ति दशैव हि ॥ ११ ॥

एकादशमट्टम्यहिशेत्रमध्येभविष्यति । पा(ल)यिष्यति तत्क्षेत्रमेकादशस्ययवि  
तथा च द्वादशादित्या मत्प्रमादात्तु मूर्त्तिना ।

यमिष्यन्ति भृंगुक्षेत्रे रोगदुःखनिग्रहणा ॥ १३ ॥

दुगा द्वादश तथा क्षेत्रपालास्तु षोडश । भृंगुक्षेत्रे भविष्यन्ति वीरमद्राश्रमात्  
पवित्रीकृतमन्त्रादि नित्यं क्षेत्रं भविष्यति ।

मातृमासे ह्युपवाले स्नात्वा मासं नितेन्द्रिय ॥ १५ ॥

य पूजयति केदारं स गच्छेच्चिडवमन्दिरम् ।

तस्मिन्स्तीर्थे नरः स्नात्वा पितृनुद्दिश्य भारतम् ।

ध्यात्वा ददाति विधिवत्तस्य धीता पितामहा ॥ १६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्रया सहिताया पञ्चमऽध्यायः  
रेखाखण्डे केदारेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम अष्टाशतितमोऽध्यायः ॥

## चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

धौतपापतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

धौतपापं ततो गच्छेद्भृगुतीर्थसमीपतः । वृषेण तु भृगुस्तत्र भूयोभूयोभुतस्ततः  
धौतपापं तु तत्तेन नाम्नालोकेषुचिभ्रतम् । तत्र स्थितो महादेवस्तु श्वर्यं भृगुसत्तमे  
तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा शाठ्येनाऽपि नरेश्वर ! ।

मुच्यते सर्वपापेभ्यो नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ ३ ॥

यस्तु सम्यग्विधानेन तत्र स्नात्वाऽर्चयेच्छिवम् ।

देवान्पितृन्समभ्यर्च्य मुच्यते सर्वपातकैः ॥ ४ ॥

ब्रह्महत्या गवांवध्या तत्रतीर्थे युधिष्ठिर । प्रविशेन्नसदाभीताप्रविष्टापिक्षयम्बजेत्  
युधिष्ठिर उवाच

आश्चर्यभूतं लोकेऽस्मिन्कथयस्वद्विजोत्तम । प्रविशेन्नब्रह्महत्यायथावैधौतपाप्मनि  
ब्रह्महत्यासमं पापं भविता नेह किञ्चन । कथं वा धौतपापे तु प्रविष्टं नश्यते द्विज  
एतद्विस्तरतः सर्वं पृच्छामि वद कौतुकात् ॥ ७ ॥

मार्कण्डेय उवाच

आदिसर्गे पुरा शम्भुर्ब्रह्मणः परमेष्ठिनः । विकारंपञ्चमदृष्ट्वा शिरोऽश्वमुखसन्निभम्  
बद्धुष्टाङ्गुलियोगेन तच्छिरस्तेनकृन्तितम् । कृत्वा तत्रे तु शिरसिब्रह्महत्याऽभवत्तदा  
ब्रह्महत्यायुतश्चासीदुत्तरे नर्मदातटे । धुनितं तु यतो राजन्वृषेण धर्ममूर्तिना ॥  
तत्र धौतेश्वरीं देवीं स्थापितां वृषभेण तु ।

ददर्श भगवाञ्छम्भुः सर्वद्वैवतपूजिताम् ॥ ११ ॥

दृष्ट्वा धौतेश्वरीं दुर्गां ब्रह्महत्याविनाशिनीम् । तत्रचित्रममाणश्चशङ्करस्त्रिपुरान्तकः  
स शङ्करो ब्रह्महत्या विहीनं मेने त्मानन्तस्य तीर्थस्य भावात् ।



गुपिस्मितो देवदेवो घरेण्यो दृष्ट्वा दूरे प्रह्लादहत्यां च तीर्थात् ॥ १३ ॥

विधीतपापं महिनं धर्मशक्त्या विशेषं हत्या देवीभयात्प्रतीता ।

रत्नाम्यरा रत्नमाल्योपयुक्ता एष्या नारी रत्नदासप्रमना ॥ १४ ॥

मा घात्रघ्नी स्वल्पदेशे रहस्ये दूरे स्थिता तीर्थवयप्रमाणात् ।

सञ्चिन्त्य देवो मनसा स्मरारिषासाय बुद्धि तत्र तीर्थे चकार ॥ १५ ॥

विमृश्य द्यो पद्भूरा स्थितं स्वयं विधीतपापं प्रथितं पृथिव्याम् ।

बभूव तत्रैव निवासकारी विधूतपापनिश्चयप्रदरा ॥ १६ ॥

तदाप्रभृतिरानेन्द्रप्रह्लादहत्यापिताशनम् । विधीतपापतर्पीधनमदायांघ्यस्यितम

अभ्ययुक्चक्रुन्नपमी तत्र तार्थेविशिष्यते । दिनधयं तु राजेन्द्र समस्यादिविशेषत

समुपोध्याष्टमाभक्त्यामाङ्ग येश्चत्तय । अहोरात्रेणर्षकेन श्रृग्यजुःसामसञ्चकम

अभ्यसन्प्रह्लादाया मुच्यते नाऽत्र मशय । कृपतीगमनञ्चैव यश्च गृयङ्गनागम

रनात्वा प्रदरतोऽकृष्टे कुम्भेनैव प्रमुच्यते ।

घन्ध्या स्त्री चनना या तु काष्णन्ध्या मृतप्रना ॥ २१ ॥

सापि कुम्भोश्चै स्तारथा जीवन्पुत्रा प्रजायती ।

अपन्नु नरोपोष्य श्रृग्यजुःसामसम्मवाम् ॥ २२ ॥

श्रृग्यजुःका जपन्विप्रस्तथा पयणि यो कृप । अतृचोपोष्यगायत्रीं जपेदेवेदमातम्

जपन्नवम्या विपन्द्रो मुच्यते पापसञ्चयान् । पयतुकथिततात पुराणोक्तमहर्षिभि

धीतपापमहापुण्य शिवेनकथितमम । प्राणत्याग तुयःकुर्याज्जैवाऽऽगीस्थलेपिवा

स गच्छति विमानेन ज्यलनाकसमप्रम । हसयर्हिप्रयुक्तेन सेव्यमानोऽप्सरोगणै

शिवस्य परम स्थान यत्पुरैरपि दुह्न भम् ।

कीडनं स्वेच्छया तत्र यावच्चन्द्राकतारकम् ॥ २७ ॥

धीतपापतुयानारीशुस्त प्राणसक्षयम् । तन्भणादेवम पाथ पुरन्तमवाप्नुयात्

अथ किं बहुतोक्तन शुभवायदिवाऽशुभम् । तदक्षयपत्र सर्वं धीतपापं क्त कृप ॥

सन्यसन्नियमनात्र सन्यसेद्विषयादिकम् । फलमूलादिकं शैवजलमेकंनसंत्यजेत् ॥

एवं यः कुरुते पार्थस्त्रलोकं सगच्छति । तत्र भुक्त्वा खिलान्भोगाञ्जायते भुविभूपतिः  
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे  
रेवाखण्डे धौतपापतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम चतुरशीत्युत्तरशततमोऽध्यायः

## पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

एरण्डीतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेन्महीपाल एरण्डीतीर्थमुत्तमम् । स्नानमात्रेण तत्रैव ब्रह्महत्याप्रणश्यति  
मासि घाश्वयुजे तत्र शुकपक्षे चतुर्दशीम् । उपोष्य प्रयतः स्नातस्तर्प्येत्पितृदेवताः  
पुत्रद्विरूपसम्पन्नो जीवे च शरदांशतम् । शिवलोकं मृतो याति नाऽत्र कार्या विघ्नारणा  
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे-  
रेवाखण्डे एरण्डीतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चाशीत्युत्तरशततमोऽध्यायः

## षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

कनखलेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेन्महीपाल तीर्थं कनखलोत्तमम् । गरुडेन तपस्तप्तं पूजयित्वा महेश्वरम्  
दिव्यं वर्षशतं यावज्जातमात्रेण भारत । तपोजपैः कुरीभूतो दृष्टो देवेन शम्भुना ॥  
ततस्तुष्टो महादेवो वैनतेयं मनोजवम् । उवाच परमं वाक्यं विनतानन्दवर्धनम्

लेखर ॥

गरुड उवाच

इच्छामिवाहनं विष्णोर्द्विजेन्द्रत्वं सुरेश्वर !। प्रमथे स्वदिमैस्वभपत्न्यति मतिमं  
ध्रामिदेश उवाच

दुर्लभं प्रापिनानातपोधरः प्राथितोऽनघ । देवदेवस्ययहनं द्विजेन्द्रत्वं सुदुर्लभम्  
नारायणोदरे मयं प्रैलोषयं सघराधरम् । त्वया स ऋषमूहोतदेवदेवो जगद्गुरु  
तेनैव स्यापितश्चेन्द्रप्रैलोषये सघराधरे ।

यद्यमन्यस्य चेन्द्रत्वं भवतीति सुदुर्लभम् ॥ ८ ॥

तथाऽपि मम धारयेनवाहनत्वंभविष्यसि । शङ्खध्वजदापाणेर्षहतोऽपिजगत्त्रयम्  
इन्द्रस्यपक्षिणा मध्येभविष्यमिनसशयः । इति द्रुघावरंतस्माअन्तर्धनिंगतोहर  
ततो गते महादेवे ह्यरणस्याऽनुजो नृप !।

आराधयामास तदा घामुण्डां मुण्डमण्डिताम् ॥ ११ ॥

श्मशानवासिनीं देवीं बहुभूतसमन्विताम् ।

योगिनीं योगसमिद्धां वसामासासवप्रियाम् ॥ १२ ॥

अथातमारा तु तेनैवप्रत्यक्षाहाभवत्तदा । जालधरे घ्यासिद्धिं कौलीने उद्दिशेपरे  
ममया सा भृगुक्षेत्रे सिद्धक्षेत्रे तु सस्थिता ।

घामुण्डा तत्र सा देवी सिद्धक्षेत्रे ध्यवस्थिता ॥ १४ ॥

सस्नुता सविभिर्दुर्धर्षोङ्गक्षेमार्थमिद्धये । विनताऽऽनन्दजननस्तत्र तायोगिनीं नृप  
भक्त्या प्रसादयामास स्तोत्रैर्वैदिकलौकिकैः ॥ १५ ॥

गरुड उवाच

अंया सा श्रुक्षामकण्ठा नवरुधिरमुखा प्रेतपद्माननस्था  
भूताना वृन्दवृन्दं पितृवननिलया श्रीडने शूलहस्ता ।

शस्त्र चमत्प्रवीरत्रैजुरुधिरगलन्मुण्डमालोत्तरीया

देवा श्रीर्षारमाता विमलशशिनिभा पातु वधमंमुण्डा ॥ १६ ॥ ;

या सा श्रुक्षामकण्ठा विकृतभयकरी प्रासिनी दुष्कृतानाम्

मुञ्चज्ज्वालाकलापैर्द्वेशनकसमसैः खादति प्रेतमांसम् ।  
पिङ्गोद्भ्रुवोद्भवद्भ्रुवूदारचिसदृशतनुर्व्याघ्रधर्मोत्तरीया-  
दैत्येन्द्रैर्यक्षरक्षोऽप्सरसुरनमिता पातुवध्वर्ममुण्डा ॥ १७ ॥

या सा दोर्दण्डघण्डैर्दमरुणरणाद्योपटङ्कारघण्टैः  
कल्पान्तोत्पातवाताहतपटुपटहैर्धलाते भूतमाता ।

श्रुत्क्षामा शुष्ककुक्षिः खरतरनखरैः क्षोदति प्रेतमांसम्  
मुञ्चन्ती चाट्टहासं घुरघुरितरवा पातु वध्वर्ममुण्डा ॥ १८ ॥

या सा निम्नोदराभा विकृतभवभयत्रासिनी शूलहस्ता  
घामुण्डा मुण्डघाता रणरुणितरणञ्जहृरीनादरम्या ।

त्रैलोक्यं त्रासयन्ती ककहकहकहैर्वोररावैरनेकै-  
वृत्यन्ती मातृमध्ये पितृवननिलया पातु वध्वर्ममुण्डा ॥ १९ ॥

या धत्ते विश्वमखिलं निजांशेनमहोज्ज्वला । कनकप्रसवेलीना पातुमांकनकेश्वरी  
हिमाद्रिसम्भवा देवीदयादर्शितविग्रहा । शिवप्रियाशिवे सक्तापातुमांकनकेश्वरी  
अनादिजगदादिर्या रत्नगर्भा वसुप्रिया । रथाङ्गपाणिना पद्मापातु मां कनकेश्वरी  
सावित्री या च गायत्री मृडानी चागथेन्दिरा ।

स्मर्तृणां या सुखं दत्ते पातु मां कनकेश्वरी ॥ २३ ॥

सौम्यासौम्यैः सदा रूपैः सृजत्यवति या जगत् ।

परा शक्तिः परा बुद्धिः पातु मां कनकेश्वरी ॥ २४ ॥

ब्रह्मणः सर्गसमये सृज्यशक्तिः परातुया । जगन्मायाजगद्धात्री पातु मांकनकेश्वरी  
धिष्वस्य पालने विष्णोर्या शक्तिः परिपालिता ।

मदनोन्मादिनी मुख्या पातु मां कनकेश्वरी ॥ २६ ॥

विश्वसंलयने मुख्या या रुद्रेण समाश्रिता ।

रौद्री शक्तिः शिवाऽन्ता पातु मां कनकेश्वरी ॥ २७ ॥

कौलाससानुसंरुढकनकप्रसवेशया । भस्मकामिहता परं पातु मां कनकेश्वरी ॥

पतिप्रमाथमिच्छन्ती प्रस्यन्ती या चिना पतिम् ।

अवला त्वेकभाया ध पातु मा कनकेश्वरी ॥ २६ ॥

विध्वंसरक्षणे सना रक्षिता कनकेन या । आग्रयन्तम्यजननी पातुमांकनकेश्वरी ॥  
ब्रह्मविष्णुर्वायुराशक्त्याशरीरग्रहणयया । प्रापिनाप्रधमाशानि पातुमांकनकेश्वरी  
धृत्या तु गरुडेनोक्त देवीवृत्तघतुष्यम् । प्रसन्ना सम्मुखा भूया वाक्यमेतदुवाच

धीधामुण्डोपाध

प्रसन्ना ते महासत्त्व धरं धरय धाम्निउतम् । ददामि ते द्विजध्रेष्ठ यत्नेमनसिरोधने

गरुड उवाच

अजरधामरश्मिंश्च अधूप्यथ सुरासुरै । तव प्रसादाद्यैर्धाम्यैरजेयश्च भवाम्यहम् ॥

त्वया धाम्नि सदा देवि! स्थातव्य तीर्थसन्निधौ ।

मार्कण्डेय उवाच

एष भविष्यतीत्युक्त्वा देवी देवैरभिष्टुता ॥ ३५ ॥

जगामाकाशमाविश्यभूतसङ्घसमन्विता । यदाऽस्म्यान्पथेष्टस्थापितपुरमुत्तमम्

अनुमान्य तदा देवीं वृत्त तस्या समर्पितम् ।

लक्ष्मीरवाच

रक्षणाय प्रया देवि! योगक्षेमार्थमिदये ॥ ३७ ॥

मातृचतुर्तिपाल्यतेसदादेविपुरमम । गरुडोऽपितत स्नात्वासम्पूज्यकनकेश्वरीम्

तीर्थं तत्रैव सस्थाप्य जगामाऽऽकाशमुत्तमम् ।

तत्र तीर्थे तु य स्नात्वा पूजयेत्पितृदेवता ॥ ३६ ॥

सवकामसमृद्धस्य यदस्य फलमश्नुते । गन्धपुष्पादिभिर्घस्तु पूजयेत्कनकेश्वरम्

तस्य योगैश्वर्यमिद्विर्योगपीठेषु जायते । मृतो योनेश्वर लोक जयशब्दादिमङ्गलै-

स गच्छेत्त्राऽत्र सन्देहो योगिनीगणसयुत ॥ ४१ ॥

इति धीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिमाहस्रया स हिताया पञ्चमेऽध्यायखण्डे

शिवाखण्डे कनकलेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णननाम ऋशीयुत्तरशततमोऽध्यायः ॥

## सप्ताशी यधिकशततमोऽध्यायः

कालाग्निरुद्रतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

जालेश्वरं ततो गच्छेद्विद्ममाद्यं स्वयम्भुवः ।

कालाग्निरुद्रं विख्यातं भृगुकच्छे व्यवस्थितम् ॥ १ ॥

सर्वपापप्रशमनं सर्वोपद्रवनाशनम् । क्षेत्रपापविनाशाय रूपया च समुत्थितम् ॥  
पुरा कल्पेऽसुरगणैराक्रान्ते भुवनत्रये । वेदोक्तकर्मनाशे च धर्मे च विलयंगते ॥३॥  
देवर्षिमुनिसिद्धेषु विश्वासपरमेषु च । कालाग्निरुद्रादुत्पन्नो धूमः कालोद्घोद्भवः

धूमात्समुत्थितं लिङ्गं भित्त्वा पातालसप्तकम् ।

अवटं दक्षिणे कृत्वा लिङ्गं तत्रैव तिष्ठति ॥ ५ ॥

तत्रतीर्थेनृपश्रेष्ठकुण्डंज्वालासमुद्भवम् । यत्र सा पतिताज्वालाशिवस्यदहतःपुरम्  
तत्रावाटंसमुद्भूतं धूमावर्त्तस्ततोऽभवत् । तस्मिन्कुण्डेनुयःस्नानंकृत्वा धैनर्मदाजले  
कुर्याच्छ्राद्धं पितृभ्यो वै पूजयेच्च त्रिलोचनम् ।

कालाग्निरुद्रनामानि स गच्छेत्परमां गतिम् ॥ ८ ॥

यत्किञ्चित्कामिकं कर्म ह्याभिषारिकमेव वा ।

रिपुसङ्क्षयकृद्वापि सान्तानिकमथापि वा ॥

अत्र तीर्थे कृतं सर्वमश्विरात्सिद्धयते नृप ॥ ६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे  
रेवाखण्डे कालाग्निरुद्रतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्ताशीत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥

## अष्टाशीत्यधिकततमोऽध्यायः

### शालग्रामतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

नत पर महाराज चण्डारिशङ्कमान्तरे । शालग्राम ततो गच्छेत्सर्वदेवतपूजितम्

यत्रादिदेवो भगवान्वासुदेवस्त्रिविक्रमः ।

स्वयं तिष्ठति लोकात्मा सर्वेषां हितकाम्यया ॥ २ ॥

नारदेन तपस्त्वप्त्वा कृता शाला द्विजन्मनाम् ।

मिद्धिक्षेत्र भृगुक्षेत्रं ज्ञात्वा रेवातटे स्वयम् ॥ ३ ॥

शालग्रामाभिधो देवो विप्राणां स्वधिवासितः ।

साधुना शोपकाराय वासुदेवः प्रतिष्ठितः ॥ ४ ॥

योगिनामुपकाराय योगिध्येयो जनार्दन । शालग्रामेति तैर्नैव नर्मदातटमाश्रितः

मान्निमागशिरेशुक्लाभयत्येकादशीयदा । स्नात्वा रेवाजलेपुण्ये तद्दिने समुपोषयेत्

रार्जो जागरणं कुर्यात्सम्पूज्यच्च जनार्दनम् । पुनः प्रभातसमयेद्वादश्या नर्मदाजले

स्नान्वा सन्तप्य देवाश्च पितृन्मातस्तर्यैव च ।

श्राद्धं कृत्वा ततः पश्चात्पितृभ्यो विधिपूर्वकम् ॥ ८ ॥

शक्तितो ब्राह्मणान्पूज्य स्वर्णवस्त्राभ्रदानतः ।

क्षमापयित्वा तान्विप्रास्तथा देवैः खगध्यजम् ॥ ९ ॥

एव ऋते महाराज यत्पुण्यञ्च भजेन्नृणाम् । शृणुष्वार्थहितोभूत्वा तत्पुण्यं नृपसत्तम

न शाकदुग्धे प्रतिपत्स्यतीह जीवन्मृतो याति मुरारिसाम्यम् ।

महाग्निपापानि विमृश्य दुग्धं पुनर्न मातुः पितृने स्तनोद्यत् ॥ ११ ॥

शालग्रामपश्यते यो हि नित्यं स्नात्वा जटे नामदेऽर्वाचहारे ।

स मुच्यते ब्रह्महत्यादिपापेनारायणानुस्मरणेन तेन ॥ १२ ॥

वसन्ति ये संन्यसित्वा च तत्र निगृह्य दुःखानि विमुक्तसङ्गाः ।

ध्यायन्तो वै साङ्ख्यवृत्त्या तुरीयं पदं सुरारेस्तेऽपि तत्रैव यान्ति ॥ ६३ ॥  
इति श्रीस्कान्दे महापुराणएकाशीतिसाहस्रयां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे  
रेवाखण्डे शालग्रामतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नामाष्टाशीत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥

## एकोनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

### उदीर्णवराहतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र! तीर्थं परमशोभनम् । उदीर्णो यत्र वाराहो ह्यभवद्गरीधरः  
ध्रुवन्दंष्ट्रां करालाग्रां चिन्नञ्च पृथिवीमिमाम् ।  
स एव पञ्चमः प्रोक्तो वाराहो मुक्तिदायकः ॥ २ ॥

युधिष्ठिर उवाच

कथमुदीर्णरूपोऽभूद्वाराहो धरीणीधरः । वाराहत्वं गतः केन पञ्चमः केन सञ्ज्ञितः

मार्कण्डेय उवाच

आदिकल्पेपुराराजन्क्षीरोदे भगवान्हरिः । शैतेस भोगिशयनेयोगनिद्राविमोहित  
लक्ष्मीकराम्बुजयुगमृद्यमानपदद्वयः । तस्मिन्स्वपतिदेवेशो भाराक्रान्तावसुन्धर  
वभूव नृपतिश्रेष्ठ गत्वा चैदेवसन्निधौ । अवोचद्धारखिन्नाहं गमिष्यामि रसातल  
दृष्ट्वा देवाः समुद्विग्ना गता यत्र जनार्दन । तुष्टुवुर्वाग्भिरिष्टाभिःकेशध्वजगतःपति  
देवा ऊचुः

नमो नमस्ते देवेश!सुरार्तिहर!सर्वग !। विश्वमूर्ते नमस्तुभ्यं त्राहि सर्वान्महद्भय  
इत्युक्तो दैवतैर्देवो ह्युवाच किमुपस्थितम् ॥



### देवा ऊचु

धरा धरित्री भूताना भारोद्धिप्रा निमज्जति ।

तामुद्धर हृषीकेश लोकान्तंस्थापय न्वितौ ॥ १० ॥

एवमुक्तं सुरैः सर्वैः केशव परमेश्वर । धाराहं रूपमास्थाय सर्वपङ्कजय विभु ॥

दध्राकरालं पिङ्गाक्ष समाबुद्धितमूढंजम् ।

हृत्वाऽनन्तं पादपीठं दध्राप्रेणोद्धरन्भुधम् ॥ १२ ॥

सपत्न्यपनामुर्वीं समुद्रपरिमलगतम् । उद्बुध्य मगवान्विष्णुर्दीपं समनायत ॥

दशयन्पञ्चधात्मानमुत्तरे नमदातटे । तथाऽऽद्य षोरलाया तु द्वितीयं योधनीपुरं

जयक्षेत्राभिधानेतु जयेतिपरिकीर्तितम् । असुरान्मोहयद्दिङ्गस्तृतीयं परिकीर्तित

पावताय जगद्धेतोः स्थितोयस्माच्छशियम् । अतस्तुनृपशादु लक्ष्येतइत्यभिधीयते

उद्बुध्य जगता दवीमुदीर्णो भृगुक्च्छके । तत पञ्चमउदीर्णोचिराह इति सञ्ज्ञित

इति पञ्चवराहास्ते कथिता पाण्डुनन्दन । युगपद्शनं स्वया ब्रह्महत्याव्यपोहति

येष्टं मासि सिते पक्षे एकादश्या विशेषतः ।

गवा ह्यादिवराह तु सम्प्राप्तं दशमीदिने ॥ ११ ॥

हविष्यमन्नं भुर्षीयाह्नुषुसाय गते रथौ । रात्रौ जागरणं क्रुयाद्दाराहेत्यादिसञ्ज्ञके

नत प्रभातं ह्यपसि मस्नात्वा नमदाजले ।

सन्तप्य पिनृदेवाश्च तिलैर्यवविमिश्रितं ॥ २१ ॥

धेनु दद्याद्द्विनेयाग्येसर्वाभरणभूयिताम् । निममोनिरहद्दुरो दानदद्याद्द्विजातये

गत्वा सम्पूजयेद्ब्रह्म वाराहं ह्यादिसञ्ज्ञितम् ।

अनेन विधिता पूज्य पञ्चाद्रच्छेज्य त्वरन् ॥ २३ ॥

त्वरिततु नयगत्वापूवकविधिमाचरेत् । अश्वदद्याद्द्विजाप्रपायजयपूर्वाभिनिर्गतम्

लिङ्गैश्चैव तिला देवा ऽजने हिरण्यमेवच । उदीर्णेषुभुजदद्यात्पूर्वकं विधिमाचरेत्

अनस्तमितं जादित्ये वराहान्यश्चपश्यत । यत्फललभते पार्थ तदिहैकमनाऽऽणु

ब्रह्महत्यासुरापानं स्नेयगुर्वगतागमं । एभिस्तुसहस्रयोगो विभ्वस्तानाचवञ्चनम्

स्वसृदुहित्भगिनीकुलदारोपवृंहणम् । आजन्ममरणाद्यावत्पापं भरतसत्तम !  
तीर्थपञ्चकपूतस्य वैष्णवस्य विशेषतः । युगपच्चविनश्येत् तूलराशिरिवानलात्  
नारायणानुस्मरणाज्जपध्यानाद्विशेषतः ।

विप्रणश्यति पापानि गिरिकूटसमान्यपि ॥ ३० ॥

दृष्ट्वा पञ्चवराहान्वै पौरुषेमहतिस्थितः । आप्लवन्नर्मदातोयेश्राद्धं कृत्वा यथाविधि  
उदयास्तमनादर्वाग्यः पश्येल्लोटणेश्वरम् । कलेवरविमुक्तः स इत्येवं शङ्करोऽब्रवीत्  
मुक्तिं प्रयाति सहसा दुष्प्रापां परमेश्वरीम् ।

पौरुषे क्रियमाणेऽपि न सिद्धिर्जायते यदि ॥ ३३ ॥

ब्रुवन्ति स्वर्गगमनमपि पापान्वितस्य च । यत्र तत्र गतस्यैव भवेत्पञ्चवराहकी ॥  
ज्येष्ठस्यैकादशीतिथौ ध्रुवं तत्र वसेन्नरः । आदिं जयंतथा श्वेतं लिङ्गमुदीर्णमेव च  
आश्रित्य तस्या द्रष्टव्या वराहास्तु यतस्ततः ।

ज्येष्ठस्यैकादशीतिथौ विष्णुना प्रभुविष्णुना ॥ ३६ ॥

वाराहं रूपमास्थाय उद्धृता धरणी विभो !

पुण्यात्पुण्यतमा तेन ह्यशेषाद्यौघनाशिनी ॥ ३७ ॥

दृष्ट्वा पञ्चवराहान्वै क्रोडमुदीर्णरूपिणम् । पूजयित्वाविधानेन पश्चाज्जागरणञ्चरेत्  
सपञ्चवर्त्तिकान्दीपान्वृतेनोज्ज्वालय भक्तितः ।

पुरणश्रवणैर्नृत्त्यैर्गीतवाद्यैः सुमङ्गलैः ॥ ३६ ॥

वेदजाप्यैः पवित्रैश्च क्षपयित्वा च शर्वरीम् ।

यत्पुण्यं लभते मर्त्यो ह्याजमीढ! शृणुष्व तत् ॥ ४० ॥

रेवाजलं पुण्यतमं पृथिव्यां तथा च देवो जगतां पतिर्हरिः ।

एकादशी पापहरा नरेन्द्र! बह्वायासैर्लभ्यते मानवानाम् ॥ ४१ ॥

एकैकशो ब्रह्महत्यादिकानि शक्तानि हन्तुं पापसङ्घानि राजन् ।

नैते सर्वे युगपदै समेता हन्तुं शक्ताः किन्न तद्ब्रूहि राजन् ! ॥ ४२ ॥

यथेदमुक्तं तव धर्मसूनो! श्रुतं च यच्छङ्कराचन्द्रमौलेः ।

ध्रुत्वेदमिच्छन्मुच्यते सर्वपापे पठन्पद याति हि वृत्रशत्रो ॥ ४३ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्या सहितायापञ्चमेऽध्यायखण्डे

रेवाखण्डे नर्मदामाहात्म्ये उदीणधराहर्ताथमाहात्म्यवर्णन

नामैकोनतवत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १८६ ॥

नवत्यधिकशततमोऽध्यायः.

चन्द्रहामतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रामाकण्डेय उवाच

ततो गद्वछेन्महीपाल सोमतीर्थमनुत्तमम् । चन्द्रहासेतिविरयातसर्वद्वेषतपूजित

यत्र सिद्धिं पराप्राप्त सोमो राजा सुरोत्तम ॥ २ ॥

युधिष्ठिर उवाच

कथसिद्धिमनुप्राप्त सोमोराजाजगपति । तत्सर्वश्रोतुमिच्छामिकथयस्वममाऽन

मार्कण्डेय उवाच

पुरा शप्तोमुर्नान्द्रण दक्षेणकिलभारत । असेवनाद्भि दाराणा क्षयरोगाभविष्या

उद्धाहिताना पत्नीना ये न कुर्वन्ति सेवनम् ।

या निष्ठा जायते तेषा ता शृणुष्व नरोत्तम ॥ ७ ॥

अनुकालेतु मारीणासेवनाज्जायतमुत । मुक्ताऽस्वर्गश्चमोक्षश्चहीत्येषथ्रुतिनोद

तःकालोचितधर्मेण ये न सेवन्ति ता नरा ।

तेषा ब्रह्मघ्नज पाप जायते नाऽत्र सशय ॥ ७ ॥

तेन पापेन घोरेण वेणुतो रौरवेवसेत् । तस्यतद्दुधिर पापापिप्यगतेकालमीप्सित

ततोऽवतीणकाले न दाया योनिं प्रयास्यति ।

तस्यां तस्या स दुण्टमा दुर्गो जायते सदा ॥ १ ॥

तारीणांतुसदाकामो ह्यधिकःपरिवर्त्तते । विशंपेणभृतोःकालेभिद्यतैकामसायतैः

परिभूता हि सा भर्त्रा ध्यायतेऽन्यं पतिं ततः ।

तस्याः पुत्रः समुत्पन्नो ह्यटते कुलमुत्तमम् ॥ ११ ॥

स्वर्गस्थास्तेन पितरःपूर्वजातामर्हीपते! । पतन्ति जातमात्रेण कुलटस्तेनघोच्यते  
तेन कर्मविपाकेन क्षयरोगी शशी ह्यभूत् ।

त्यक्त्वा लोकं सुरेन्द्राणां मर्त्यलोकमुपागतः ॥ १३ ॥

तत्रतीर्थान्यनेकानि पुण्यान्यतनानि च । भ्रमित्वानर्मदांप्राप्तःसर्वपापप्रणाशिनीम्  
उपवासस्तु दानानि व्रतानि नियमाश्च ये ।

स्रष्टार द्वादशाब्दानि ततो मुक्तः स किल्बिषः ॥ १५ ॥

स्थापयित्वा महादेवंसर्वपातकनाशनम् । जगामप्रमया पूर्णः सोमलोकमनुत्तमम्  
येनैव स्थापितोदेवः पूज्यतेवर्षसंख्यया । तावद्युगसहस्राणि तस्यलोकं समश्नुते  
तेन देवान्विधानोक्तान्स्थापयन्ति नरा भुवि ।

अक्षयं चाव्ययं यस्मात्फलं भवति नाऽन्यथा ॥ १८ ॥

सोमतीर्थेतुयः स्नात्वापूजयेद्देवमीश्वरम् । जायते स नरो भूत्वा सोमवत्प्रियदर्शनः  
चन्द्रप्रभासे यो गत्वा स्नानं विधिबदाश्वरेत् ।

व्याधिना नाभिभूतः स्यात्क्षयरोगेण वा युतः ॥ २० ॥

चन्द्रहास्येनरः ज्ञात्वा द्वादश्यांतुनरेश्वर । चतुर्दश्यामुपोष्यैवक्षीरस्य जुहुयाच्चरुम्  
मन्त्रैः पञ्चमिरीशानं पुरुषस्त्र्यम्बकं यजेत् ।

हविःशेषं स्वयं प्राश्य चन्द्रहास्येशमीक्षयेत् ॥ २२ ॥

अनेनविधिना राजंस्तुष्टो देवो महेश्वरः । विधिनातीर्थयोगेन क्षयरोगाद्भिमुच्यते  
सप्तभिःसोमचारैर्यःस्नानं तत्रसमाश्वरेत् । सर्वैकर्णशृताद्रोगान्मुच्यतेपूज्यंञ्जिवम्

अक्षिरोगस्तथा राजंश्चन्द्रहास्ये विनश्यति ।

चन्द्रहास्ये तु यो गत्वा ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥

स्नानं समाश्वरेद्भक्त्या मुच्यते सर्वपातकैः ॥ २५ ॥

तत्रभ्रान् भवान् घण्ड्रहास्ये शुभाशुभम् । हृत्तृणपरश्रेष्ठसर्वं भवतिघास्यम् ॥

ते धग्धास्ने महात्मानस्तथा जन्म सुजायितम् ।

घण्ड्रहास्ये तु ये स्नात्वा पश्यन्ति ग्रहण नराः ॥ २७ ॥

पाविकु मानसशय करज्ज र पुराह इम् । स्नानमाश्राप्तु राजेन्द्रतरतीयेष्वपश्यति

वह्यस्नान्न जानन्ति महामोहममन्यिता । देहस्थश्चसर्वेषा परमात्मेवसस्थितम्

पश्चिमे सागरेण वा सोमनाथतुण्डकम् । त समग्रमवाप्नोतिघण्ड्रहास्येतमशय

मरान्तां च व्यनापात विपुत्रे घायने तथा ।

घण्ड्रहास्ये नर स्नात्वा सर्वपापै प्रमुच्यते ॥ ३१ ॥

न मूढास्ने दुराचारास्नेया जन्म निर्यकम् ।

घण्ड्रहास्ये न जानन्ति नमदाया व्यवस्थितम् ॥ ३२ ॥

घण्ड्रहास्ये तु य कश्चिन्सन्धास कुस्ने नृप ॥

अनिपत्तिका गतिस्तस्य सोमलोकात्कदाचन ॥ ३३ ॥

इति श्रीस्कन्दमहापुराण एकाशतिसाहस्र या सहिताया पञ्चमेऽध्वन्तीखण्डे

न्यासखण्डे घण्ड्रहास्यनीधमाहात्म्यवर्णन नाम नवत्युत्तराततमोऽध्यायः

एकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

द्वादशादित्यतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमाखण्डेय उवाच

सिद्धेश्वर तत्रागच्छतन्मयं नुमर्मापत । अमृतघ्राचितह्लिङ्गमाद्य स्वायमुघतया

दृष्टमात्रण यनेह हृदृणा नायत नरः । पुरा घग्शन साग्रमारोध्य परमेश्वरम् ॥

प्राप्त्यु परमा सिद्धिमादित्या द्वादशैव तु ।

अत सिद्धेश्वर प्रोक्त सिद्धिद सिद्धिकालक्षिणाम् ॥ ३ ॥

शुधिष्ठिर उवाच

कथं सिद्धेश्वरे प्राप्ताःसिद्धिं देवा द्विजोत्तम !  
 आदित्या इति यजोक्तं तत्तं विस्मापनं कृतम् ॥ ४ ॥  
 तपस्युग्रे व्यवसिता आदित्याः केन हेतुना ।  
 संप्राप्तास्तु द्विजश्रेष्ठ सिद्धिं चैवाभित्यापिकीम् ॥ ५ ॥  
 संक्षिप्य तु मया पृष्टं विस्तराद् द्विज! शंस मे ॥ ६ ॥

मार्कण्डेय उवाच

अदितेर्द्वादशादित्या जाताः शक्रपुरोगमाः ।  
 इन्द्रो धाता भगस्त्वष्टा मित्रोऽथ वरुणोर्यमा ॥ ७ ॥  
 विचस्वान्सविता पूषा अंशुमान्विष्णुरेव च ।  
 त इमे द्वादशादित्या इच्छन्तो भास्करं पदम् ॥ ८ ॥

तर्मदातृमाश्रित्यतपस्युग्रेव्यवस्थिताः । सिद्धेश्वरमहाराज काश्यपैर्यमहात्मभिः  
 परा सिद्धिरनुप्राप्ता द्वादशादित्यसञ्जितैः ।  
 स्थापितश्च जगडाता तस्मिंस्तीर्थं दिवाकरः ॥ १० ॥  
 स्वकीयांशविभागेन द्वादशादित्यसञ्जितैः ।  
 तदाप्रभृति तर्त्तीर्थं राजन्त्याति गतं भुवि ॥ ११ ॥

प्रलये समनुप्राप्ते ह्यादित्याद्वादशैव ते । द्वादशादित्यतो राजन्संभवन्तियुगक्षये  
 इन्द्रस्तपति पूर्वेण धाता धीवाग्निगोचरे ।  
 गभस्तिपतिर्वैश्याम्ये त्वष्टा नैऋतदिङ्मुखः ॥ १३ ॥  
 वरुणः पश्चिमे भागे मित्रस्तु वायवे तथा ।  
 विष्णुश्च सौम्यदिग्भागे विचस्वानीशगोचरे ॥ १४ ॥

ऊर्ध्वतश्चैवसविताह्यधःपूषाविशोपयन् । अंशुमान्स्तुतथा विष्णुर्मुखतोनिर्गतंजगत्  
 प्रदहन्वै नरश्रेष्ठ चम्रमध इतस्ततः । यथैव ते महाराज! तदिति कथं —

प्रातःप्रथमं यः स्नात्वा द्वादशादित्यमस्तिष्ठतम् ॥ १७ ॥

पश्यते देवदेवं शृणु तस्यैवमन्त्रम् । यावन्निर्वाणं मानसं तार्यं यत्पुराहृतम्  
 नश्यते मन्त्रपादेयं द्वादशादित्यमस्तिष्ठतम् । प्रदक्षिणं तु यः कुर्यात्सत्यं देवस्य भारत  
 प्रदक्षिणां कृत्वा तेन वृथिर्वाताऽथ मशाय । तत्रार्थं तु मन्त्रस्यामुपवासोत्तरवत्प्रथम  
 मन्त्रस्य मन्त्रमन्त्राणां तन्मन्त्रितमन्त्रिणः । यद्यथाप्येते देवदेवे द्वादशादित्यमस्तिष्ठतम्  
 प्रदक्षिणं तु यः कुर्यात्सत्यं तार्यं नुनश्यति । अर्थात् सत्तन्माति नयेत्तन्मात्रमंशय  
 यन्तु प्रदक्षिणमस्तदद्यात्तु यथादिनेदिने । दृष्ट्वापि टक्कुष्ठानि मण्डनानि यिथर्षिणा  
 नश्यन्ति ध्याय्य मयमादे- यप्रभता । पुत्रप्राप्तिर्नयं सत्यं यद्यथा धामरमेयनात्  
 इति श्रीश्वान्द महापुराण कथाशीतिसाहस्र्यां महिनाया पञ्चमोऽध्यायः  
 उपाखण्डे द्वादशादित्यमस्तिष्ठतमन्त्रमन्त्रितमन्त्रिणं नामैकमन्त्रपुराणशततमोऽध्यायः

द्विचरत्यधिकशततमोऽध्यायः

श्रीपत्न्युत्पत्तिवर्णनम्

श्रीमातृण्डेय उवाच

तस्यैवानन्तरं तात स्वलाभमनुत्तमम् । दृष्ट्वा तु र्थापतिं पार्वमुच्यते मानवो भुवि  
 महामन्त्रस्य जामाता भगोदवो जनाद्भिः ॥ २ ॥

युधिष्ठिर उवाच

कोऽयं धियः पतिस्त्वान्मानामधिभोधिभु । यथं जन्माऽभवत्तस्य देवेषु त्रिपुत्रासुते  
 स्वस्यर्था वञ्च्यं ततो भगुणास्सहस्रशः । एतद्विस्मरतो ब्रह्मन्वत्तुर्हसि मार्गव

श्रीमातृण्डेय उवाच

सक्षेपान्कथयिष्यामि साध्यरूपवन्निमहत । नहि विस्मरतो यस्तुरहा सर्वमहय  
 नारायणस्य तान्यस्त्वाज्ञातो देवश्चतुर्भुजः ।

तस्य दक्षोऽङ्गजो राजन्ऽक्षिणाङ्गुष्ठमंभवः ॥ ६ ॥

धर्मः स्तनान्तात्संजातस्तस्य पुत्रोऽभवत्किल ।

नारायणसहायोऽहावजोपिऽभरत्परम ! ॥ ७ ॥

मरुत्वती घमुर्जाना लभ्या भानुमती नर्ता ।

संकल्पा घ मुहूर्ता घ साध्या विध्यावर्ता ककुप् ॥ ८ ॥

धर्मपत्न्यो दशैवता दाक्षायण्यो महाप्रभाः ।

तासां साध्या महाभागा पुत्रानजयन्त्यु ॥ ९ ॥

नरो नारायणश्चैव हरिः कृष्णस्तथैव च । विष्णोरेंशांशका ह्येतैश्चत्वारो धर्मस्ततः

तथा नारायणनरो गन्धर्मादनपर्वते । आत्मन्यात्मानमाश्राय नेपतुः परमं तपः ॥

ध्यायमानावनोपर्यं स्वं कारणमकारणम् । चासुदेवमनिर्देश्यमप्रवक्ष्यमनंतरम्

योगयुक्तौ महात्मानावास्थिताश्रुतापसौ ।

तयोस्तपः प्रभावेण न तताप दिवाकरः ॥ १३ ॥

वराह शङ्कितो वायुः सुखस्पर्शो ह्यशङ्कितः ।

शिशिरोऽभवदत्यर्थं ज्वलन्नपि विभावसुः ॥ १४ ॥

सिंहव्याघ्रादयः सौम्याश्चरुः सहस्रगैर्गिरौ ।

तयोर्गौरिव भारार्ता पृथिवी पृथिवीपते ॥ १५ ॥

त्रैलोक्य भूधराश्चैव चुक्षुभेच महोदधिः । देवाश्चस्त्रेषु धिष्ण्येषु निष्प्रभेषु हतप्रभाः

चभूवुरवनीपाल! परमं क्षोभमागताः ॥ १६ ॥

देवराजस्तथा शक्रः सन्तमस्तपसातयोः । युयोजाप्सरसस्तत्र तयोर्विघ्नचिकीर्षया

इन्द्र उवाच

रम्भेतिलोत्तमे कुब्जे घृताघ्निललितेशुभे । प्रम्लोचेसुभ्र सुम्लोचे सौरभेयिमहोद्धते

अलम्बुपे मिश्रकेशिपुण्डरीके वरुधिनि । विलोकनीयं विन्नाणा चपुर्मन्मथवोधनम्

गन्धर्मादनमासाद्य कुरुध्वं चघनंमम । नरनारायणौ तत्र तपोदीक्षान्वितौ द्विजौ

तेपाते धर्मतनयो तपः परमदुश्चरम् । तावस्माकं चरारोहाः कुर्वाणौ परमं तपः



कमातिशयदुःखान्तिप्रशयायतिनाशनौ । तद्गच्छतनमीकार्या भयनीभिरिदंघ  
स्मर सहायो भयिता धर्मतद्धयराङ्गना । रूपं यय समालोक्यमद्वन्द्वीपने परम्  
कन्दर्पयशमभ्येति पिपश को न मानय ॥ २३ ॥

माकण्डेय उवाच

इत्युक्त्या द्यराजेन मन्नेन समनदा । जामुरप्सरस्य सर्वा यमन्तध मदीपने ॥

गन्धमादनमासाय पु स्त्रोक्तिपुत्राकुत्रम् ।

यथार माधयो रम्यं प्रोत्प्लुवतपादपम् ॥ २५ ॥

प्रथया दक्षिणाशाया मय्यागुगतोऽनिल । भृङ्गमालारत्नरथे रमणीयमभुङ्गनम् ॥

गन्धश्च सुरभि सदा वनगाजिसमुद्भव । किशरोत्पायशार्जा यभूय प्राणतर्पण  
घराङ्गनाश्च ता सदा नरनारायणाधुरी ।

चिलाभयितुमारब्धा वागदलन्तिस्मिते ॥ २८ ॥

जर्षामनोहर काचिन्नत तत्र याऽप्सरसा । अश्रादयस्तथैधान्या म्मोहरतरं नृप ॥

हार्षभाचं मृतेहास्यैस्तथाऽन्या वल्गुभाषिनी ।

तयो क्षाभाय तन्वड्म्यश्चक्रुरपममङ्गना ॥ ३० ॥

तथापि नतयो कश्चिमतसंपृथिवीपत । विकारोऽभवदध्यात्मपारसप्रातचतसो  
नियान्मर्था यथा दीपाककर्षा नृप तिष्ठत ।

यामुदवाप्पणस्वस्थ तर्पय मनसी तयो ॥ ३२ ॥

पूयमाणोऽपि चाम्भोभिभु यमन्या महोदधि ।

यथा न याति सशोभ तथा तन्मानसं कश्चिन् ॥ ३३ ॥

सषभूतहित प्रभवामुदयमयं परम् । मन्यमानो न रागस्य द्वेषस्य च वशगतो ॥

स्मरोऽपि नशशाकाय प्रवेष्टु हृदय तयो । चिदायय दीपयुतमन्धकारद्वालयम्

पुष्पोज्ज्वलास्तन्यरान्वसन्तं दक्षिणानिडम् ।

तार्क्षवाप्सरस सदा कन्दर्पं च महामुनी ॥ ३६ ॥

यथारब्ध तर्पस्ताभ्यामात्मानं गन्धमादनम् । ददशातेऽखिलं रूपं प्रपण-पुरुषरमं

दाहायनामलोवहोर्नापःपलेशायघाम्मसः । तद्द्रव्यमेवतद्द्रव्यविकारायन वै यतः  
ततोविज्ञाय विज्ञाय परंब्रह्म स्वरूपतः । मधुकन्दर्पशोषित्तु विकारोनाऽभवत्तयोः  
ततो गुरुरतरं यत्नं वसन्तमदर्शो नृप । घक्रान्ते ताश्चतन्वंग्यस्तत्क्षोभाय पुनः पुनः ॥  
अथ नारायणो धैर्यसन्धार्योर्दीर्णमानसः । ऊरोन्दपादयामास चगाङ्गीमवलांतदा  
त्रैलोक्यसुन्दरीरत्नमशेषमवनीपते । गुणैर्लावघमभ्येति यस्याः संदर्शनादनु ॥ ४२

तां विलोक्य महीपाल! अकम्पे मनसाऽनिलः ।

घसन्तो विस्मयं यातः स्मरः सस्मार किञ्चन ॥ ४३ ॥

रम्मातिलोत्तमाद्याश्च चैलक्ष्यं देवयोषितः । न रेजुरवनीपाल तद्द्रव्यदृढवेक्षणाः ॥  
ततःकामो वसन्तश्चपार्थिवाप्सरसश्चताः । प्रणम्य भगवन्तीर्तीर्तुत्पुद्गुमुनिसत्तर्मा  
घसन्तकामाप्सरस ऊचुः

प्रसीदतु जगद्धाता यस्य देवस्य मायया ।

मोहिताः स्म विजानीमो नान्धरं विद्यते द्वयोः ॥ ४६ ॥

प्रसीदतु स वां देवोयस्य रूपमिदं द्विधा । धामभूदस्य लोकानामनादेरप्रतिष्ठतः  
नरनारायणी देवी शङ्खक्रायुध्राद्युर्मा ।

आस्तां प्रसादसुमुग्धावस्माकमपराधिनाम् ॥ ४८ ॥

निधानं सर्वविद्यानां सर्वपापवनानलः । नारायणोऽतो भगवान्त्सर्वपापं व्यपोहतु  
शाङ्गं चिह्नायुधः श्रीमानात्मज्ञानमयोऽनवः ।

नरः समस्तपापानि हृतात्मा सर्वदेहिनाम् ॥ ५० ॥

जटाकलापवद्भोऽयमनयोर्नः क्षमावतोः ।

सौम्यास्यदृष्टिः पापानि हन्तुं जन्मार्जितानि वै ॥ ५१ ॥

तथाऽऽत्मविद्यादोषेण योऽपराधः कृतो महान् ।

त्रैलोक्यघन्धो यो नाथो विलोभयितुमागताः ॥ ५२ ॥

प्रसीद देव विज्ञानघन! मूढदृशामिव । भवन्ति सन्तः सततं स्वधर्मपरिपालकाः ॥  
दृष्टैतन्नः समुत्पन्नं यथा खीरत्नमुत्तमम् । त्वयिनारायणोत्पन्ना श्रेष्ठापारवतीमतिः

तेन सत्येन सत्यामन्यरमात्म-सनातन ॥ नारायण प्रसीदेश सर्वलोकपरायण ॥  
 प्रम्वन्नधुद्धे शान्तात्मन्नसन्नवद्नेक्षण । प्रसीद योगिनामीश नर! सधंगताऽच्युत !  
 नमस्यामो नर देव तथा नारायण हरिम् । नमो नराय नभ्याव नमोनारायणाच्च  
 प्रक्षन्नानामनाधाना तथा नाधवता प्रभो ॥

श करोतु नरोऽस्माक श नारायण! देहि न ॥ ५८ ॥

मार्कण्डेय उवाच

एवमभ्यर्चित स्तुत्या रागद्वेषादिर्जित । प्रादेश सर्वभूतानां मध्येनारायणी नृप!  
 नारायण उवाच

स्वागतं माधरे कामे भवत्वप्सरसामपि ।

यत्कायमागताना च इहास्माभिस्तदुच्यताम् ॥ ६० ॥

यूयं ससिद्धये नूनमस्माक बलशनुणा ।

सधेपितास्ततोऽस्माक नृययोगादिदर्शनम् ॥ ६१ ॥

नवय गीतनृयेननाङ्गुचेणादिभाषिते । लुब्धायैविवर्षमन्ये विषयादाहणात्मका  
 शदादिसङ्गदुष्टानि यदा नाक्षाणि न शुभा ।

तदा नृत्यादयो भावा कथ लोभप्रदायिन ॥ ६३ ॥

ते सिद्धा स्म न धै साध्या भवतीनां स्मरस्य च ।

माधवस्य च शत्रोऽपि स्वास्व्य यात्वविशङ्किता ॥ ६४ ॥

योऽसौ परश्च परम पुरः परमेस्वर । परमात्मा समस्तस्यस्थावरस्यघरस्य च  
 उत्पत्तिहेतुते च यस्मिन्सर्वप्रणीयते । सर्वावासीति देवत्वाद्वासुदेवैत्युदाहृत  
 धयमशाशकास्तस्य घतुष्युहस्य मानिन ।

तदादेशितवत्मानो जगद्बोधाय देहिनाम् ॥ ६७ ॥

तत्सवभूतसर्वेशसवत्र समदर्शिनम् । कुत पश्यन्ती रागादीन्करिष्यामोविभेदिन  
 घसन्ते मयि चेन्द्रे चभवतीषु तथास्मरे । यदासपच भूतात्मा तदाह्वेणद्य कथम्  
 तन्मयाऽन्यविभक्तानि यदा सर्वेषु जन्तुषु ।

सर्वेश्वरेश्वरो विष्णुः कुतो रागाद्यस्ततः ॥ ७० ॥

ब्रह्माणमिन्द्रमीशानमादित्यमरुतोऽखिलान् ।

विश्वेदेवानृषीन्साध्यान्वसून्पितृगणांस्तथा ॥ ७१ ॥

यक्षराक्षसभूतादीन्नागान्त्सर्पान्स्त्रीमृगपान् । मनुष्यपक्षिगोरूपगजसिंहजलेघरान्

मक्षिकामशकान्दंशाञ्छूलभाञ्जलजान्कृमीन् ।

गुल्मवृक्षलतावह्नीत्वक्सारतृणजातिषु ॥ ७२ ॥

यच्चकिञ्चिद्दृश्यं चादृश्यंवात्रिदशाङ्गनाः । मन्यध्वंजातमेकस्य तत्सर्वंपरमात्मनः

जायमानः कथं विष्णुमात्मानं परमं घयम् ।

रागद्वेषौ तथा लोभं कः कुर्यादमराङ्गनाः ॥ ७३ ॥

सर्वभूतमये विष्णो सर्वगे सर्वधातरि । निपात्यतं पृथग्भूते कुनोरागादिकोगुणः

एवमस्मासु युष्मासु सर्वभूतेषु घावलाः । तन्मयैकत्वभूतेषु रागाद्यवसरः कुतः ॥

सम्यग्दृष्टिरियं प्रोक्ता समस्तैक्याचलोकिनी ।

पृथग्विज्ञानमात्रैव लोकसंव्यवहारवत् ॥ ७८ ॥

भूतेन्द्रियान्तः करणप्रधानपुरुषात्मकम् । जगद्वैद्यो तदखिलं तदा भेदः किमात्मकः

भवन्ति लयमायान्ति समुद्रसलिलोर्मयः ।

न धारिभेदतो भिन्नास्तथैवैक्यादिदं जगत् ॥ ८० ॥

यथाग्नेरधिपः पीताः पिङ्गलारुणधूसराः ।

तथाऽपि नाऽग्नितो भिन्नास्तथैतद् ब्रह्मणो जगत् ॥ ८१ ॥

भवतीभिश्च यत्क्षोभमस्माकं सपुरन्दरः । कारयत्यसदेतच्च विवेकाधारचेतसाम्

भवन्त्यः सद्य देवेन्द्रो लोकाश्चससुरासुराः । समुद्राद्रिचनोपेतामद्देहान्तरगोचराः

यथेयं चारुसर्वाङ्गी भवतीनां मयाऽग्रतः ।

दर्शिता दर्शयिष्यामि तथा शैवाऽखिलं जगत् ॥ ८४ ॥

प्रयानु शक्रो मा गर्वमिन्द्रत्वं कस्य सुस्थिरम् ।

यूयं च मा स्मयं यात सन्ति रूपान्विताः स्त्रियः ॥ ८५ ॥

किं मुख्यं कुरुषुं वा यदा भेदो न दृश्यते । तारतम्यं सुरूपत्वे सततं भिन्नदर्शनात्  
मवतीता स्मर्यं मन्वा रूपोदायंगुणोद्भवम् । मयेयं दर्शिता तन्वी ततस्त्रुणममेत्यथ  
यस्मान्मदूरोर्निष्यन्ना त्वियमिन्दीवरेक्षणा ।

उर्वशीनाम कल्याणी भविष्यति घराप्सराः ॥ ८८ ॥

तदियं देवराजस्य भीयता परवर्णिनी ।

भवत्यस्तेन चाऽऽस्माकं प्रेयिताः प्रीतिमिच्छता ॥ ८९ ॥

षण्ण्यश्च सहस्राशो नाऽस्माक भोगकारणान् ।

तपश्चर्या न चाप्राप्यरुजं प्राप्नुमर्भीष्यता ॥ ९० ॥

मन्मागमस्य जगतो दर्शयिष्येकरोम्यहम् । तथानरेण सहितो जगतपालनोद्यत  
यदि कश्चित्तवावाधा करोति त्रिदशेश्वर । तमहं चारयिष्यामिति वृत्तो मघवास्य  
कृत्वाऽमि चेन्वमावाधा न दुष्टभ्येह कस्यचिन् ।

त चाऽपि शास्ता तदहं प्रवर्तिष्याम्यसरायम् ॥ ९३ ॥

एतद्भ्रान्त्या न सन्तापस्त्वया कार्यो हि मा प्रति ।

उपकाराय जगतामवतीर्णोऽस्मि घामय ॥ ९४ ॥

या ज्ञेयमुचर्शा मनसमुत्भूतापुगन्दर । त्रेताद्दिहेतुभूतेयं पथं प्राय भविष्यति ॥

इति धीम्बान्दे महापुराण पकारातीतिसाहस्रया संहितायां पञ्चमेऽधर्ताखण्डे  
रेखाखण्डे नमदामाहान्त्ये धीम्बानुपनिवर्णननाम द्वितीयत्युत्तरहत्तमोऽध्याय-

## त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

श्रीपतिमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

इत्युक्तेऽप्सरसः सर्वाःप्रणिपत्यपुनःपुनः । ऊर्चुर्नारायणं देवं तद्दर्शनसमीहया ॥ १

वसन्तकामाप्सरस उच्युः

भगवन्भवता योऽयमुपदेशो हितार्थिना ।

प्रोक्तः स सर्वो विज्ञातो माहात्म्यं चिदितं च ते ॥ २ ॥

यत्स्वेतद्वचता प्रोक्तंप्रसन्नेनान्तरात्मना । दर्शितेर्यं विशालाक्षीदर्शयिष्यामिर्वाजगत्  
तत्रार्थं सर्वभावेन प्रपन्नानां जगत्पते ! । दर्शयात्मानमखिलं दर्शितेर्यं यथोर्वशी ॥

यद्वि देवाऽपराश्रेपि नाऽस्मासु कुपितं तव ।

नमस्ते जगतामीश दर्शयाऽऽत्मानमात्मना ॥ ५ ॥

नारायण उवाच

पश्यतेहाऽखिलाँल्लोकान्मम देहे सुराङ्गनाः ।

मधुं मदनमात्मानं यच्चान्यद् द्रष्टुमिच्छथ ॥ ६ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वाभगवान्देवस्तदानारायणोन्मृष । उच्चैर्जहासस्वनवत्तत्राऽभूदखिलंजगत्

ब्रह्मा प्रजापतिः शक्रः सह रुद्रैः पिनाकधृक् ।

आदित्या वसवः साध्या विश्वेदेवा महर्षयः ॥ ८ ॥

नासत्यदस्त्रावनिलः सर्वशश्च तथाग्रयः । यश्नगन्धर्वसिद्धाश्च पिशाचोरगकिन्नरा-

समस्ताप्सरसो विद्याःसाङ्गा वेदास्तदुक्तयः ।

मनुष्याः पशवः कीटाः पक्षिणः पादपास्तथा ॥ १० ॥

सरीसृपाश्चाथ सूक्ष्मा यच्चान्यजीवसञ्चितम् ।

समुद्रतः सङ्गता शीघ्रा सरितः कान्तानि च ॥ ११ ॥

टीपान्यशेषानि तथातथा सर्वसरसि च । नगरप्रामथूषां च मेदिनीमेदिनीपते

देवाङ्गनाभिर्देवस्य देहे दृष्टं महारमन ॥ १० ॥

नक्षत्रदशनागभिः सुसूषेणमन्त्रेण च । दद्रुगुल्मान्नुषाद्यैश्चकनस्यान्तर्धिभ्यःपिपि

ऊर्ध्वेनतिपट्टा स्नायदांतन्मन्त्रेण च । तमनतमनादिष्यतन्त्यान्नुष्टुगुञ्जमुम्

मन्त्रेणममं सयामभुत्त च पराङ्गना । समाध्यानामन्त्रिपराः परं विस्मयमागताः

परमन्त्रकामाप्तरम ऊचुः

पुत्र्याम नादि तव देव' नान्तं न मध्यमादाहृतकपयाम् ।

परापारं त्वा जगतामन्त्रेण मता स्म नारायणमात्मभूतम् ॥ १६ ॥

महानभाषामुक्तगाम्यस्य शब्दादिरुवाचुः परावशात्तम् ।

स्वभा मन्त्रपञ्चमुत' सयमसद् द्वादशसोऽसि विनो' म्यमात्मन् ॥ १७ ॥

द्वर्तासि कस्यस्य परस्य धना धाता च शब्दस्य हृष्टं त्वमेव ।

स्यज नवान्मपयताऽस्मिन्मन्त्रे प्राप्ता च मन्त्रस्य वृषकडरीति ॥ १८ ॥

सुसूषु सयसु न सार्थिनः कश्चिन्मन्त्रायत्तायेषु न सोऽस्ति कश्चिन् ।

ए सार्थिणसु न सार्थिनः कश्चिदा नाम्नुमन्त्रस्य देवदेव ॥ १९ ॥

प्रयास्य मन्त्रमुत्थानि शीघ्रं शरदि कथाणि तपोलमाणि ।

समुद्रतः तव उपवासु तत्र स्वकथं विस्मयदासि ॥ २० ॥

धमा उचुः शान्तकथमन्त्रे शीघ्रं शीघ्रा कल्पयसु वासु ।

सु ॥ २१ ॥ तव मन्त्रेण मन्त्रेण मन्त्रेण मन्त्रेण मन्त्रेण मन्त्रेण ॥ २१ ॥

सय मन्त्रपञ्चमुत' द्वादशसोऽसि विनो' म्यमात्मन् ।

सय मन्त्रपञ्चमुत' द्वादशसोऽसि विनो' म्यमात्मन् ॥ २२ ॥

द्वर्तासि कस्यस्य परस्य धना धाता च शब्दस्य हृष्टं त्वमेव ।

स्यज नवान्मपयताऽस्मिन्मन्त्रे प्राप्ता च मन्त्रस्य वृषकडरीति ॥ २३ ॥

सुसूषु सयसु न सार्थिनः कश्चिन्मन्त्रायत्तायेषु न सोऽस्ति कश्चिन् ।

नारायणोऽपि भगवानाह तस्त्रिदशाङ्गनाः ॥ ५६ ॥

नारायण उवाच

नीयतामुर्वशीभद्रा यत्राऽसौ त्रिदशेश्वरः । भवतीनां हि नार्याय सर्वं तेष्वस्माचिति  
ज्ञानमुत्पादितं भूयो लयं भूतेषु कुर्वता । यद्गच्छध्वंसमस्तोऽयं भूतप्रानोमदंशकः  
अहमध्यात्मभूतस्य वासुदेवस्य योगिनः ।

अस्मात्परतरं नाऽस्ति योऽनन्तःपरिपठयेत् ॥ ५६ ॥

तमजं सर्वभूतेशं जानीत परमं पदम् । अहं भवत्यो देवाश्च मनुष्याः पशवश्च ये ॥

एतत्सर्वमनन्तस्य वासुदेवस्य वै वृत्तम् ॥ ६० ॥

एवं ज्ञात्वा समं सर्वं सदेवानुरमानुषम् । सपञ्चादिगुणं चैव द्रष्टव्यं त्रिदशाङ्गनाः

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्तास्तेन देवेन समस्तास्ताः सुरस्त्रियः ।

प्रणम्य तौ समदनाः स्रवसन्ताश्च पार्थिव ॥ ६२ ॥

आदाय सौर्वशीं भूयो देवराजमुपागताः । आश्रम्युश्च यथावृत्तं देवराजायतन्तथा

मार्कण्डेय उवाच

तथा त्वमपि राजेन्द्र! सर्वभूतेषु केशवम् । चिन्तयन्समतां गच्छसमतेषु हि मुक्तये  
जानन्नेवं विशेषेण भूतेषु परमेश्वरम् । वासुदेव कथं द्योषां ह्योभादीन्न प्रहास्यसि  
सर्वभूतानि गोविन्दाद्यदा नाऽन्यानि भूपते !

तदा वैरादयो भावाः क्रियतां न तु पुत्रक ॥ ६६ ॥

इति पर्य जगत्सर्वं वासुदेवात्मकं नृप ! । एतदेव हि कृष्णेन रूपमाचिच्छतं नृप !  
परमेश्वरेति यद्वृषं तदेतत्कथितं तव । जन्मादिभावरहितं तद्विष्णोः परमम्पदम् ।

संक्षेपेणाऽथ भूपाल! श्रूयतां यद्ब्रूयामि ते । यन्मतंपुरुषः कृत्वा परं निर्घाणमृच्छति

सर्वो विष्णुसमासो हि भावाभावां च तन्मयी ।

सदसत्सर्वमीशोऽसौ महादेवः परं पदम् ॥ ७० ॥

भवजलधिगतानां इन्द्रयाताहतानां सुतदुहितृकलत्रत्राणभारार्दितानाम् ।



नमोऽनन्त' नमस्तुभ्यं विधात्मन्विध्यमाधन ।

त्वन्नामस्मरणात्पापमशोय न' प्रणश्यतु ॥ ३७ ॥

परण्य यज्ञपुरुर प्रजापात्रन धामन । त्वन्नामस्मरणात्पापमशोयं न प्रणश्यतु ॥

नमोऽस्तु त'जनाभाय प्रजापतिर्दृनेहर । त्वन्नामस्मरणात्पापशोयं न' प्रणश्यतु

समाराणवपाताय नमस्तुभ्यमधोक्षन । त्वन्नामस्मरणात्पापमशोयं न प्रणश्यतु

नम परमर्ध्राशायवासुदवाययेधने । स्वच्छयागुणयुताय सगन्धित्यन्तकारिणे

उपमहर विधात्रमथ धमनस्वनातनम् । धधमान न नो दष्टु समर्थं धतुरीध्वर । ॥

प्रत्याग्निसहस्रस्य समा दीमिन्तयाऽक्युत ।

प्रमाणत दिशा भूमिगगन ध समावृतम् ॥ ४३ ॥

नविम वृत्र वक्षामो भवाप्रायोप'रुष्यत । सर्वं जगद्दिहैकस्थं विण्डित'क्षयामदे

वि धणयामा रूपत वि प्रमाणमिदंहर । माहात्म्यं वि तुलदधध'द्विधायानगोधरे

वनाग वा'युतनापि वृद्धीनामयुतायुते । गुणनिर्घटन नाध कर्तुं तथ न शक्यते

तदतर्दिशत रुध प्रमा' परम हत । छन्दो जगतामाश' तदतदुपग्रहर ॥ ४७ ॥

धामाव'उद्य उपाध

इत्येवं समस्त'नाभिरप्परोभिज्जनाङ्गन ।

निच्यजानापयध्राना ताम्सां द्रव्यक्षमीध्वर ॥ ४८ ॥

विपदा मय'नानि रुधरश'न तनायन । न' दृष्टा मयभूतेषु रीणमानमधोक्षनम् ॥

विन्मयपरमधर समस्त'दधयागित । मयसर्ध'धरः शीलान्पादयाम्सागराग्भुवम्

न'मप्रि तथा वायुमाकाशं ध विपदा ह ।

का' वि'मय मया'मा शास्त्रत'शा'स्ययाऽपि धा ॥ ५१ ॥

तामरुणाभ्यनभ्यन मा'हा भाषयद्रुगम् । दधदातधरशांसि व'सविधाधरोरता

म'प'य'गु'वा'सा'द'ग'व'ध'न'रि'श'गा । व'स'न'रि'श'न'धा'भू'मी'दि'पि'ये ध अ'ग'ध'वा'

न'रि'श'गा ध विधा'मा'प'न'न'द'प'मा'रि'ध'त । न'र'प'ग'ध'प'न'मि'द' ए'प'म'गि'द'म

ता पर वि'मय'र'गु मया'रि'श'वा'गित । म'गु मा'ध'ग'ता'पा'व'द'ना'द'प'र'त'म

तत इन्द्रादयो देवाः शङ्खघ्नगदाधराः ॥ १० ॥

भूत्वा जग्मुस्तदर्थं ते मा तु पृष्टवती सुरान् ।

विश्वरूपं वैष्णवं यत्तद्दर्शयत मा चिन्म ॥ ११ ॥

विलक्षा व्रीडिता देवा गत्वा नारायणं तदा ।

अब्रुवन्विश्वरूपं नो शक्ता दर्शयितुं वयम् ॥ १२ ॥

ततो यथेष्टं ते जग्मुः स च विष्णुरचिन्तयत् । उग्ररूपान्वितोर्देवोर्देहोद्गतिभारंघो

तां तन्मात्तत्र गत्वाऽहं वरं दत्त्वा तु वाञ्छितम् ।

पुनस्तपः करिष्यामि दर्शयिष्यामि वा पुनः ॥

वैष्णवं विश्वरूपं गृह्यदुदंश्यं देवदानवीः ॥ १४ ॥

मार्कण्डेय उवाच

ततो गत्वा हृषीकेश स्वामरान्तन्वितं त्रियम् ।

प्राह तुष्टोऽस्मि ते देवि! वरं वृणु यथेष्पितम् ॥ १५ ॥

श्रीश्याम

यदि तुष्टोऽस्मि मे देव प्रपन्नाया जनाह्वन ! । तदादर्शयतद्गृह्यमप्सरगोभिस्तथाऽनय

विश्वरूपमन्तं च भूतभावन केशव ! । गन्धमादनमान्नाथ वृत्तं यय तपस्त्वया ॥

तद्ददस्व चिभो! चिष्णो! न मिथ्या यदि केशव ! ।

श्रद्धानामि न वैवाऽहं रूपस्याऽस्य कथञ्चन ॥ १८ ॥

बहुभिर्यक्षरक्षोभिर्मायावाग्धिचारिभिः । छन्दिता मम जानद्भिर्भाचमन्तगतं हरे

भूत्वा विष्णुस्वरूपास्ते चक्रिणश्च सनुर्भुजाः ।

सुव्रीडिताभृगताः सर्वे विश्वरूपो सहायतः ॥ २० ॥

मार्कण्डेय उवाच

नारायणोऽथमगवाञ्छद्ब्रह्मघ्नगदाभृतम् । तयातथोक्तस्तद्रूपंमुक्त्वाहं सुरवृजित

रूपं परं यथोक्तं वै विश्वरूपमदर्शत । दर्शयित्वा वचः प्राह पञ्चरात्रविधानतः

योऽर्षयिष्यति मां नित्यं स पूज्यः स च पूजितः ।

विषमधिपयतोये मञ्जनामप्लयाना भवति शरणमेको विष्णुपोतो नराणाम् ॥  
इति श्रीस्कान्दे महापुराणप्रकाशातिमाहम्ब्या सहिताया पञ्चमेऽध्यायखण्डे  
रेखाखण्डे श्रीपतिमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रिंशत्तुत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १६३ ॥

## चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः

### श्रीपतिविनाहवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

तच्छ्रुत्वा न्यानन्तदेवेन विश्वरूपमुद्राहृतम् । देवराजस्तथा देवाः परं विस्मयमागताः  
दृष्ट्वा चाप्सरसं पुण्यामुर्ध्वशीं कमलाननाम् ।  
सन्निस्तो विस्मितश्चाऽभूदिन्द्रो राजधिया वृत ॥ २  
न किञ्चिदुत्तर वाक्यमुनवाञ्छोपमास्थितः ।  
इति वृत्तान्तभृत हि नारायणविचेष्टितम् ॥ ३ ॥  
भृगो खा (रया) तथा समुत्पन्ना लक्ष्मीः श्रुत्वा तु वी नृप !  
वैश्वरूप परं रूपं विस्मिताऽध्विन्त्यत्तदा ॥ ४ ॥

केनोपायेन न स्यान्मे भर्ता नारायणः प्रभु । वर्तनतपमायाऽपिदानेननियमेन च  
वृद्धानास्तेवनेताऽथदेयताराधनेनवा । इति चिन्तापराकन्यासतीहात्वायुधिष्ठिर  
प्राह प्राप्नो मया भर्ता शङ्करस्नपसा किल ।  
प्रजापतिश्च गायत्र्या शन्याभिरभिवाञ्छिता ॥ ७ ॥

तपसैवहि ते प्राप्यस्नन्मात्तच्चर मुवने । तपस्त्वहिमहद्योयं सर्ववाञ्छितदायकम्  
मार्कण्डेय उवाच

सागरान्त समासाद्य लक्ष्मी परपुरञ्जय । स्रग्वरविभुल कालः तपः परमदुश्चरम् ॥  
स्थानुवन्सन्धिता साऽभूद्विष्य वर्यमहस्त्रकम् ।

ते दिव्यज्ञानसम्पन्ना दिव्यदेहविचेष्टिताः ।

दिव्यं लोकमवाप्स्यन्ति दिव्यभोगसमन्विताः ॥ ३७ ॥

मार्कण्डेय उवाच

तयोरेवं सम्बदतोर्द्वेवा इन्द्रपुरोगमाः । समागता घनोद्देशं सागरान्ते महर्षयः ॥

ततो भृगुं देवराजो नारायणविचिन्तितम् ।

वव्रे ज्ञात्वा तु तत्कन्यां धर्मात्मा स ददौ च ताम् ॥ ३६ ॥

धर्मोऽपि विधिवद्वत्स! शिवाहं समकारयत् । देवदेवस्यराजर्षे देवतार्थं समाहितः

युधिष्ठिर उवाच

धर्मो विवाहमकरोद्विधिवद्यस्वयोदितम् ।

को विधिस्तत्र का दत्ता दक्षिणा भृगुणाऽपि च ॥ ४१ ॥

विवाहयज्ञे समभूत्सूक्त्वग्रहणेचकः । ऋत्विजःकेसदस्याश्च तस्यासङ्घिजसत्तम

किं तस्याऽवभृथं त्वासीत्तत्सर्वं वद विस्तरात् ।

त्वद्वाक्यामृतपानेन तृप्तिर्मम न विद्यते ॥ ४३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

नारायणविवाहस्य यज्ञस्य च युधिष्ठिर ! तपसस्तस्यदेवस्यसम्यगाश्वरणस्यच

वक्तुं समर्थो न गुणान्ब्रह्माऽपि परमेश्वरः ।

तथाप्युद्देशतो वच्मि शृणु भूत्वा समाहितः ॥ ४५ ॥

ब्रह्मा सप्तर्षयस्तत्र सूक्त्वग्रहणे रताः । अग्नीञ्जुह्विरे राजन्वेदिर्धात्री ससागरा

ददुः समुद्रा रत्नानि ब्रह्मर्षिभ्यो नृपोत्तम !

धनदोऽपि ददौ वित्तं सर्वब्राह्मणवाञ्छितम् ॥ ४७ ॥

विश्वकर्माऽपि देवानांब्रह्मर्षीणांपरन्तप । वैश्र्मानिसुविचित्राणिसर्वरत्नमयानिच

कृत्वा प्रदर्शयामासदेवेन्द्राय यशस्विने । शतक्रतुस्ततोविप्रान्कापिष्टस्युरोगमात्र

शौनकादींश्च पप्रच्छ वाष्कलाञ्छागलानपि ।

आत्रेयानपि राजेन्द्र! वृणुध्वमभिवाञ्छितम् ॥ ५० ॥

धनधायममायुतं सयमोगसमन्वित ॥ २३ ॥

मूलं हि सद्यधमाणा द्रव्यधर्यंपरन्तप । तेनाहतत्रस्थास्यामिमूलध्रीपति मञ्जिन  
मूर्ध्नी प्रोच्यतप्राह्नी ब्रह्मधयस्यरूपिणी । सद्ययोगमयीपुण्या सद्यपापहरीशुभा  
पतिस्तस्या प्रभुरह परद प्राणिनां प्रिये ।।

रघानलं नरं स्नात्वा योऽद्य येमा यतघ्नत ॥ २६ ॥

मूर्ध्नीपतिनामानं घाञ्छितं प्राप्नुयात्फलम् ।

गनानि तत्र यो दद्यात् महादानानि च प्रिये ।। २७ ॥

सहस्रगुणितं पुण्यमायस्थानादवाप्यते । दृष्टं त्वद्यातत्रदेशे सम्यक्चेवावधारितम्  
तन्ञ्चिन्वा परान्कामानाप्स्यसि त्वं न सशय ॥ २८ ॥

घरं वृणांश्च दशसि घाञ्छितं दुहं भुमुः । दुग्समारकान्तारपतिने परमेश्वरि  
श्रीरघाच्च

नारायणं जगद्धातनारायणं जगन्पते । नारायणं परब्रह्मं नारायणपरायणं ।।३०  
प्रसीदं पाहि मा भक्त्या सम्यक्सर्गो नियोजय ।

प्रियो ह्यसि प्रियाऽहं ते यथा स्यात् तत्तया कुरु ॥ ३१ ॥

गृहं प्रमाधकामाना कारणं देवसम्मतम् ।

तन्मास्यायाऽऽश्रमं पुण्यं मा श्रयसि नियोजय ॥ ३२ ॥

नारायण उवाच

नारायणगिरा दधि चिञ्चतोऽस्मि यतस्त्वया ।

नारायणगिरिनामं तनं मऽत्र भविष्यति ॥ ३३ ॥

नारायणस्मृतीं याति दुरितं जन्मकोटिजम् ।

यस्माद्गिरिनि तस्माच्च गिरिरित्येष शब्दितम् ॥ ३४ ॥

तस्मान्सवाश्रयो दधि गिरि पवतराड् भवेत् ।

सुरासुरमनुष्याणां यथाऽहमपि चाऽऽश्रय ॥ ३५ ॥

य एतं वृत्तयिष्यति मण्डलस्थं परं मम । नारायणगिरिनामं देवरूपं शुभेक्षणम् ॥

प्राजापत्याश्चतुर्विंशसहस्राणि नरेश्वर ॥ ६४ ॥

सर्व्यव्रतस्थानां व्रतब्रह्मविचारिणाम् । द्वादशैषां सहस्राणिसन्ति वै वृषभध्वज  
नारदस्य वचः श्रुत्वा देवा देवर्षयोऽपि च ।

साधुसाधिवत्यमन्यन्त नोचुः केचन किञ्चन ॥ ६६ ॥

समाह्वयत्ततो लक्ष्मीस्तान्विप्रान्भक्तिसंयुता ।

उवाच चरणान्गृह्य प्रसादः क्रियतां मयि ॥ ६७ ॥

पट्त्रिंशच्च सहस्राणि वेश्मनामत्र संस्थितिः ।

विश्वकर्मकृतानां तु तेषु तिष्ठन्ति वोऽखिलाः ॥ ६८ ॥

ते तथेति प्रतिज्ञाय स्थिताः सम्प्रीतमानसाः ।

धनधान्यसमृद्धाश्च वाञ्छितप्राप्तिलक्षणाः ॥

सर्वकामसमृद्धाश्च ह्यनारम्भेषु कर्मणाम् ॥ ६९ ॥

इति संस्थाप्य तान्विप्रान्सा स्थिता पर्यपालयत् ।

चतुर्द्धा तु स्थितो विष्णुः श्रियाः देव्याः प्रिये रतः ॥ ७० ॥

एवं ववाहिकमखेनिवृत्ते ऋषयस्तुतम् । ऊचुश्चावभृथस्नानं कुत्र कुर्मो जनार्दन ! ॥

इति श्रुत्वा तु वचनं श्रीपतिःपादपङ्कजात् । मुमोचजाह्नवीतीयं रेवामध्यगमंशुचि  
हरेः पादोदकंद्वापानिःसृतंमुनयस्तु ते । विस्मिताःसमपद्यन्तजनंतस्तस्तस्यगौरवम्

रुद्रेण सहिताः सर्वे देवता ऋषयस्तथा ।

सङ्कथा विस्मिताश्चक्रुर्विधुन्वन्तः शिरांसि च ॥ ७४ ॥

ऋषय ऊचुः

ब्रूहि शम्भो! किमत्रायं अकस्माद्धारिसम्भवः ।

विष्णोः पादाम्बुजोत्थश्च सम्मोहकरणः परः ॥ ७५ ॥

ईश्वर उवाच

पादोदकमिदंविष्णोरहंजानामिवै सुराः । दशाश्वमेधावभृथैःस्नानमत्रातिरिच्यते

युष्माभिः श्रीपतिः पूज्यः स्नानं चावभृथं कुतः ।

दृष्टान्तेष्विन्नखानिप्राहुः सर्वेश्वरेश्वरम् । देवानाञ्च ऋषीणा ष मङ्गमोऽयसुपुण्यः  
 अस्मिन्पुण्ये सुरेशान' वस्तु चाच्छामहे मदा ।  
 शतत्रतु प्राह पुनर्वासो चोऽत्र भविष्यति ॥  
 सत्यधरता यूयं यावत्काल भविष्यथ ॥ ५२ ॥

मार्कण्डेय उवाच

पृण्यद्राजशादू ७ क्रममे होत्रिणोऽभवन् । तन्प्रोच्यमानमधुनाऽष्टुभृत्स्वासमाहि  
 मनन्वृमाद्यमुखा सदस्यास्तस्य चाऽभवन् ।  
 औद्गात्रमत्रदिग्गर्ता मतीषिध्व घकार ह ॥ ५४ ॥

होत्र धमवशिष्टोश्च ब्रह्मत्वमनकोमुनि । पटत्रिशट्प्रामसाहस्रप्रादानेभ्यःशतत्र  
 ल्भामथा ष मयुक्ताऽभवत्तन्वृजगन्प्रभु । ब्रह्मणोनुद्धतोपहिंयावद्देशस्थिते सु  
 दृष्टे ललाट दशऽसा ल्गाट इति सञ्ज्ञित । स देशःश्रीपते श्रेत्रपुण्यं देवर्षिसेवि  
 मवाध्वधमयदिव्य दिव्यसिद्धिसमन्वितम् ।  
 ब्राह्मणाना तत्र पटर्नि निवेशयितुमुद्यता ॥ ५८ ॥  
 लक्ष्मा श्रीपतिनामानमाह देव षधस्तदा ।

श्रीमवाच

य एत ब्राह्मणा शिष्या भृग्वार्दीनां वनप्रता ।

ताश्चिप्रशयितमिच्छामि स्वप्नमादाद्घोशुज ।

मराच्यादथ सुगन्धनस्यापिता गण्डध्वज ॥ ६० ॥

नेष्टिक्वतिना विप्रावस्थाऽत्रयनप्रता । प्राजापत्येप्रते ब्राह्मेयैषिद्व्यययन्वित  
 तानह स्यापयिष्यामि स्वप्नमादाद्घोशुज ॥ ६१ ॥

मार्कण्डेय उवाच

तत्र श्रीतृहत्पगमगवान्पुनमध्वन । पप्रच्छ'प्रतिन'सर्वा'न्युत्तिभेदेष्ययन्वित  
 नावदोऽपिमहात्त्वमुपस्यधमतीपतिम् । प्राहृष्णाजितधरोनेष्टिका ब्राह्मणा ह  
 र्मा वाया मुवस्यण उपगृह्णा द्विजोत्तमाः ।

प्राजापत्याश्चतुर्विंशसहस्राणि नरेश्वर ॥ ६४ ॥

ब्रह्मघर्यव्रतस्थानां व्रतब्रह्मचिच्चारिणाम् । द्वादशैषां सहस्राणिसन्तिवै वृषभध्वज  
नारदस्य वचः श्रुत्वा देवा देवर्षयोऽपि च ।

साधुसाधिवत्यमन्यन्त नोचुः वेघन किञ्चन ॥ ६६ ॥

समाह्वयत्ततो लक्ष्मीस्तान्विप्रान्भक्तिसंयुता ।

उवाच घरणान्गृह्य प्रसादः क्रियतां मयि ॥ ६७ ॥

पट्त्रिंशच्च सहस्राणि वेश्मनामत्र संस्थितिः ।

विश्वकर्मकृतानां तु तेषु तिष्ठन्ति वोऽखिलाः ॥ ६८ ॥

ते तथेति प्रतिज्ञाय स्थिताः सम्प्रीतमाननाः ।

धनधान्यसमृद्धाश्च वाञ्छितप्राप्तिलक्षणाः ॥

सर्वकामसमृद्धाश्च ह्यनारम्भेषु कर्मणाम् ॥ ६९ ॥

इति संस्थाप्य तान्विप्रान्सा स्थिता पर्यपालयत् ।

घतुर्द्धा तु स्थितो विष्णुः श्रियाः देव्याः प्रिये रतः ॥ ७० ॥

एवं ववाहिकमखेनिवृत्ते ऋषयस्तुतम् । ऊचुश्चावभृथस्नानं कुत्र कुर्मो जनार्दन ॥

इति श्रुत्वा तु वघनं श्रीपतिःपादपङ्कजात् । मुमोक्षजाह्ववीतीर्य रेवामध्यगमंशुषि  
हरेः पादोदकंद्रुपानिःसृतंमुनयस्तु ते । विस्मितास्समपथन्तजरनंतस्तस्यगौरवम्

रुद्रेण सहिताः सर्वे देवता ऋषयस्तथा ।

सङ्कथा विस्मिताश्चक्रुर्विधुन्वन्तः शिरांसि च ॥ ७४ ॥

ऋषय ऊचुः

ब्रूहि शम्भो! किमत्रायं अकस्माद्धारिसम्भवः ।

विष्णोः पादाम्बुजोत्थश्च सम्मोहकरणः परः ॥ ७५ ॥

ईश्वर उवाच

पादोदकमिदंविष्णोरहंजानामिवै सुराः । दशाश्वमेधावभृथैःस्नानमत्रातिरिच्यते

युष्मामिः श्रीपतिः पूज्यः स्नानं चावभृथं कुतः ।



भविष्यतीति तेनाऽऽशु इदं घोऽर्थे चिनिर्मितम् ॥ ७७ ॥

स्नात्वाऽत्र त्रिदशेशाना यत्फण्ड सम्प्रपद्यते । वषट् नक्षेत्रघ्नघातितत् किमुत्तरं वच  
मार्कण्डेय उवाच

एवमुक्त्वा तु ते सर्वे स्नानं कृत्वा यथागतम् । जग्मुर्देवा महेशानपुरोगाभरत'  
ब्राह्मणाश्च तत सर्वे स्ववेशमान्येव भेजिरे ।

देवतीर्थं महाराज' सर्वपापप्रणाशने ॥ ८० ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्या सहिताया पञ्चमेऽध्वन्तीखण्डे  
रेवाखण्डे श्रीपतिविवाहवर्णननाम धनुनव युत्तरशततमोऽध्याय ॥ ११४ ॥

## पञ्चनन्यधिकशततमोऽध्याय

श्रीपतिमाहात्म्यवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

देवतार्थेतुक्त्रिममाहात्म्यसमुदाहृतम् । फलं किंस्नानदानादिकारिणाजायते  
मार्कण्डेय उवाच

पृथिव्या यानि तीर्थानि देवैर्मुनिगणैरपि ।

सेचितानि महाबाहो' तानि ध्यातानि विष्णुना ॥ २ ॥

समागतान्येकता वै तत्र तीर्थं युधिष्ठिर । तत्तार्थं वैष्णवगुण्य देवतीर्थमिति श्रुत  
बुद्धेः भुवि परमन्तरिक्षे त्रिपुष्करम् । पुरुरोत्तम दिवि पर देवतीर्थं परात्पर  
देवतार्थसत्र नास्ति तीर्थमत्र परत्र च । यत्प्राप्य मनुजस्तप्येत् कदाचियुधिदि

देवैरुक्तानि तीर्थानि योऽत्र स्नान समाचरत् ।

देवतार्थं स सबत्र स्नातो भवति मानव ॥ ६ ॥

एवमस्त्विति तैरुक्तो देवा ऋषिगणा अपि ।

सन्तुष्टाः श्रीशमभ्यर्च्य स्वं स्वं स्थानं तु भेजिरे ॥ ७ ॥

सूर्यग्रहेऽत्र वै क्षेत्रे स्नात्वा यत्फलमश्नुते ।

स्नात्वा श्रीशं समभ्यर्च्य समुपोष्य यथाविधि ॥ ८ ॥

यद्ददाति हिरण्यानि दानानि विधिवन्नृप !

तदनन्तफलं सर्वं सूर्यस्य ग्रहणे यथा ॥ ९ ॥

भूमिदानं धेनुदानं स्वर्णदानमनन्तकम् । चन्द्रदानमनन्तं च फलं प्राह शतक्रतुः ॥

सोमो वै वस्त्रदानेनमौक्तिकानांचभार्गवः । सुवर्णस्यरविदानं धर्मराजोह्यनन्तकम्

वतीर्थं तु यद्दानं श्रद्धायुक्तेन दीयते । तदनन्तफलं प्राह बृहस्पतिरुदारधीः ॥१२॥

वतीर्थं भृगुक्षेत्रे सर्वतीर्थाधिकंनृप ! देवतीर्थं नरः स्नात्वाश्रीपतिं योऽनुपश्यति

सोमग्रहे कुलशतं स समुद्रधृत्य नाकभाक् ।

दानानि द्विजमुख्येभ्यो देवतीर्थं नराधिप ! ॥ १४ ॥

द्विंत्तानि नरैर्भोगभागिनः प्रेत्य चेह ते । देवतीर्थं विप्रभोज्यं हरिमुद्दिश्ययश्चरेत्

स सर्वाह्लादमाप्नोति स्वर्गलोके युधिष्ठिर !

देवतीर्थं नरो नारी स्नात्वा नियतमानसो ॥ १६ ॥

उपोष्यैकादशीं भक्त्या पूजयेद्यः श्रियः पतिम् ।

रात्रौ जागरणं कृत्वा घृतेनोद्बोध्य दीपकम् ॥ १८ ॥

द्वादश्यां प्रातरुत्थाय तथाचै नर्मदाजले । विप्रदां पत्यमभ्यर्च्य विधिवत्कुरुनन्दन

घस्त्राभरणताम्बूलपुष्पधूपचिलेपनैः । अक्षये विष्णुलोकेऽसौ मोदते चरितव्रतः ॥

यः सदैकादशीतिथौ स्नात्वोपोष्याऽर्चयेद्धरिम् ।

रात्रौ जागरणं कुर्याद्द्वेदशास्त्रविधानतः ॥ २० ॥

धर्मराजकृतांपापांनसपश्यतियातनाम् । पञ्चरात्रविधानेनश्रीपतियोऽर्चयिष्यति

दीक्षामवाप्य विधिवद्वैष्णवीं पापनाशनीम् ।

स्वर्गमोक्षप्रदां पुण्यां भोगदां वित्तदामथ ॥ २२ ॥

राज्यदां वामहाभागपुत्रदां भाग्यदामथ । सुकलत्रप्रदां वापि विष्णोर्भक्तिप्रदामिति

यदागणायश्रीं गोक्ये महायाथां करिष्यति । तदाहं भ्रामररूपं तृत्वाऽमख्येयत्पदम्  
 त्रैलोक्यस्य हितायाय धधिष्यामि महामुखम् ।

भ्रामरीति च मा लोकास्तदा स्तोष्यन्ति सर्वतः ॥ ५० ॥

इय यदा यदा वाधा दानयोऽया मरिष्यति ।

तदा तदाऽवनायाऽहं करिष्यामपरिमक्षयम् ॥ ५१ ॥

इति श्रीमाघण्डेयपुराणे भावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये देव्याः स्तुति

घणनतामैरुतवतितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

सप्तशयामेकादशः ॥

तदामादेर्वीजानमृत्तयः भक्तिग्रहकायाः सन्तः सर्वेऽपि मुनयः पतिष्ठाद्  
 यः स्तोष्यति । तत्ततः भीमरूपेण रक्षोमक्षणाद्धेतुना विररातप्रमिद्धमीमादेवी  
 तिविश्रुतनाममरिष्यति । विम्पत्यस्मादिनिभीमभीमादयोऽपादाने निपाति  
 नाः ॥ ४८ ॥

हे देवा ! यदा श्री गोक्ये प्ररुणो नाम महासुरमहाराधामहतीपीडा करिष्य  
 ति । लोकान्वाधिष्यन्नेप्रतितरा तदा अहं अपख्येयत्पदम् भ्रामररूपममरसम्यन्धि  
 नोमूर्त्तिरुत्वा त्रैलोक्यस्य हितायाय प्ररुणमहासुरयधिष्यामि न दालोकाः सचत्रमा  
 भ्रामरीत्येव स्तोष्यन्ति ममरस्येय आह या भ्रामरी देवी । असङ्ख्येयाः सङ्ख्यातुम  
 शक्त्वा यऽपदाः ममरमूर्त्तिमृत्वा अरुणासुरं हनिष्यति ततः सा भ्रामरीतिनामालोके  
 मूर्द्धात्त विष्यन्ते सवत्रेत्यथ । अरुणस्यापत्यपुमानारुण इति च्छेदे अत्र प्रवाधित्वा  
 शिरान्त्वा दणवाः ॥ ४९ ॥ ५० ॥

इदानीं देव्यावताराणां तत्कार्याणां चानन्त्यास्ताकल्येन वक्तुं प्रारभ्यते त्वात्स  
 क्षिप्यन्तः कथामुपसहरति । हे देवा ! इत्यमुकानसारेण प्रकारेण यदा यदा दानवेभ्यः

## द्विनवतितमोऽध्यायः

( द्वादशोऽध्यायः )

श्रीमद्देवीचरित्रपठनमाहात्म्यवर्णनम्

देव्युवाच

एभिः स्तवैश्च मां नित्यं स्तोष्यते यः समाहितः ।

तस्याहं सकलां वाधां शम ( नाश ) यिष्याम्यसंशयम् ॥ १ ॥

उत्तिष्ठतिउत्थास्यतिवादानवोत्थादानवेभ्यः समुद्भवावाधापीडालोकानांभविष्य  
तिउत्पत्स्यते । तदातदाअहंतत्तत्कार्यान्तुरूपमवतीर्यप्रादुर्भावमवाप्यअरिसंक्षयंश-  
त्रुविनाशंकरिष्यामि । दानवोत्येतिसुपिस्थः कः कर्तरि ॥ ५१ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे श्रीमदु० शन्तनु० देवीमा०टीकायांनारायणी-  
स्तुतिर्नामैकनवतितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

देव्युवाच । यद्यपि प्रागपिदेवान् देव्येवोवाचतथाप्यध्यायादौ देवी-  
चचनस्य प्राधान्यं ध्वनयितुं देवीमाहात्म्याध्ययनश्रवणादिफलप्राप्तिप्रामाण्यं च  
दर्शयितुं देव्येवोचितांवाचं देवानुक्तवती । यः पुरुषः समाहितः भक्तिश्रद्धान्वितो  
भूत्वा एभिः प्रागुक्तैः स्तवैः स्तोत्रैः पुनः पुनः नित्यं अविकल्पितं यथा भवति तथा  
शश्वद्दामां देवीं स्तोष्यते तस्य पुंसः सकलां वाधां शमयिष्यामि असंशयं संशयाभावः ।  
अर्थाभावेऽव्यर्थाभावः । यद्वा, असंशयं यथास्यात्तथा स्तोष्यते क्रियाफले कर्तृग-  
तेजित्वादात्मनेपदम् । एभिरिति ब्रह्मकृतैरिन्द्रादिदेवकृतैश्च । इंशः सूर्यः परमात्मा ।

मधुकैटभनाशश्च महिषासुरघातनम् । कीर्त्तयिष्यन्ति ये तद्ब्रह्म शुम्भनिशुम्भयं  
 अष्टम्याञ्च घनुर्दश्या नवम्याञ्चैवचेतसः ।  
 धोष्यन्ति चैत्रे ये भक्त्या मम माहात्म्यमुत्तमम् ॥ ३ ॥  
 न तेषां दुष्टत किञ्चिदुष्टतोत्था न घापदः ।

‘अनायादिलोत्रमे तिश्नते । हसस्यक गहसस्य ग । वाध्यन्नेप्राणिनोऽनयाबाध  
 मसृति अविद्यमानाह भवत्वा ब्रह्मविद्यायस्यात्वा अहमकलाबाधा मोहरूपा  
 ममतामसृति । ता बाधा अमशयंशमपिप्यामीत्यपिमुक्तिनामैरवगन्तव्यम् ।  
 ‘रविश्चेत्च्छर्शाहमी’ । यद्वा, एभिस्तैश्चैमायस्त्वोप्यनेतस्याऽहङ्कारकृतामकला  
 बाधामसृतिशमपिप्यामि ॥ १ ॥

त्रयाणामन्वयैक्य, ये पुराणैक्येन मत् मावधानां सन्त अष्टम्या  
 नवम्या घनुर्दश्याच पञ्चदश्याऽपि विशेषानुक्ति यथाक्रमनपेक्ष्य मधुकैटभनाशश्च  
 महिषासुरघातनञ्च तद्ब्रह्मनिशुम्भयोश्चक्रमक्त्या कीर्त्तयिष्यन्ति पठिष्यन्ति  
 तद्ब्रह्मयेप्राप्यन्तिभक्त्या मममाहात्म्य उत्तम पुण्यतम सचकामदुष्ट तेषादुष्टत  
 दुरित मवसञ्चिनतकिञ्चिदपिभविष्यतिदु कृतोन्धाथापश्चनभविष्यन्तिचिनश्य  
 न्तीत्यर्थं । न तेषां दारिद्र्य भविष्यति आहत्यैवभविष्यतीत्यर्थं । न च तेषां  
 दृष्टेःसहचेतनैरेतैश्चपुरादिभिर्दनादिभिश्चवियोजन वियोगो भविष्यति । मधु  
 कैटभयोनाश यस्मिन्प्रत्येमतथोक्त । एतन्वानं तस्यकरणघातनण्यत्तान्  
 ल्युत् । महिषासुरघातनम् । सूर्येन घा इतिपाठः । वृक्षरणेर्हिंसाया च ।  
 वधोयस्मिन्प्रत्यप्रतिपाद्यतेमवध । अशंआदित्यादृच्छं । शुम्भनिशुम्भयोरिति  
 द्विवचनेनैवधद्वयसूच्यते । तन्वधानावैषम्यादष्टम्यादिदिनत्रयेणयथाक्रमकीर्त्तन-  
 गङ्गापिदूरीकृता । एकमनन्यवृत्तिचेनोद्येपाते । भवनभक्तिरनन्यशरणतयाश्रयणम्  
 । महान्तआत्मन अवतारायस्या सामहात्मादेर्वा तन्व्या भाव माहात्म्यम्  
 ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥

भविष्यति न दारिद्र्यं न चैवेष्टवियोजनम् ॥ ४ ॥

शत्रुतो न भयं तेषां (तस्य) दस्युतो वा न राजतः ।

न शस्त्रानलतोयौघात् कदाचित् सम्भविष्यति ॥ ५ ॥

तस्मान्ममैतन्माहात्म्यं पठितव्यं समाहितैः ।

श्रोतव्यञ्च सदा भक्त्या परं स्वस्त्ययनं महत् ( हि तत् ) ॥ ६ ॥

उपसर्गानशेषांस्तु महामारीसमुद्भवान् । तथा त्रिविधमुत्पातंमाहात्म्यंशमयेन्मम

ये मम माहात्म्यंकीर्त्तयन्ति स्तोप्यन्ति च तेषां कदाचिदपिशत्रुतो-  
भयंनसम्भविष्यति । दस्युतः तस्करतोऽपिवा न । राजतोऽपिनृपान्न नशस्त्रतः  
आयुधतः न अनलतोऽग्नितः । न तोयौघात् जलप्रवाहात् न सम्भविष्यतीत्यनेन  
सर्वत्र सम्वध्नाति ॥ ५ ॥

तस्माद्वाञ्छितार्थसाधनत्वाद्धेतोः समाहितैः सावधानैः कृतप्रयत्नैः  
पुंभिःपरं प्रकष्टमहत्पूजनीयम् । स्वस्त्ययनंक्षेमकरं अयनंवर्त्मममदेव्याएतन्माहा-  
त्म्यंग्रन्थसन्दर्भरूपंपक्त्या पठितव्यंश्रोतव्यं च । एतन्माहात्म्यमिति बहुव्रीहिः ।  
ग्रन्थसन्दर्भरूपोऽन्यपदार्थः । शब्दस्येव . पठनश्रवणयोग्यत्वेनविषयभावात् ।  
एतदितितुपृथक्पदत्वे माहात्म्यप्रतिपाद्यन्तद्यत्रास्तिग्रन्थवन्ध्रेसोऽप्युपचारान्  
मत्वर्थीयेनअर्शाआद्यचाचामाहात्म्यशब्देनोच्यतइतिपठनश्रवणयोग्यंद्रष्टव्यम् । 'स्व-  
स्त्याशीःक्षेमपुण्येषु मङ्गलेचाव्ययंस्मृतम्' ॥ ६ ॥

ममदेव्याः माहात्म्यंकर्तृ भक्तिः पठतांभक्तिःशृण्वतां च पुंसांमहामारी  
समुद्भवान् सर्वानुपसर्गान् उपद्रवान् शमयेद्दूरीकुर्यात् । तथातेषां पुंसात्रिविधं  
उत्पातं आध्यात्मिकं आधिदैविकमाधिभौतिकं । आध्यात्मिकं शरीरोत्पन्नंराग  
द्वेषादिकंव्याध्यादिकं च । आधिभौतिकं भूतप्रेतादिकजनितं भयघ्नमादिकम् ।  
आधिदैविकंदैवकृतंवज्रपातादिकं दारिद्र्यादिकं च । यद्वा, भूर्भुवःस्वःसम्भव-  
मुत्पातत्रयंशमयेत् । भौमंभूकम्पादिकं आन्तरिक्षं अनन्नगर्जनादि । स्वलोक-

यत्रैतत्पठन्ते सम्यद् नित्यमायतने मम ।

मदा न तद्विमोक्षयामि साक्षिभ्यं तत्र मे स्थितम् ॥ ८ ॥

यत्प्रदानेपूनायामश्रिकार्यमहोत्सवे । सर्वमैतद्यत्किमुच्चार्येधाव्यमेव च ॥ ९ ॥

अन्तिसमस्तदनेसोऽप्यतनम् । महामारीनिमृद्वाणयागेस्त्रियामिर्हृष्यान्भ्य  
छान्दसोगुण । यद्वा, श्रीणादिषु मरघातुम्यस्त् । स्त्रियां वृद्धिरारादिक्रि  
घाटीप । महतीमरीमहामारी । 'अन्येषामपिदृश्यत' इतिपूर्वघटीव । महा  
मायासमुद्रया । यद्वा, मरणमरऋक्षोरूपमस्यैयंप्रवृत्तिमारी । यद्वा, मर  
यनिमारकाः मारस्यभाषायायं भावेष्यत् । मायमेवमारीस्त्रियास्त्रित्वात्  
डीप् ॥ ७ ॥

यत्र ममायतनेगृहेप्रतिमादिमन्दिरे णत्प्रागुत्तरितत्रयोपेतं माहात्म्य  
नित्यम्प्रतिदितसम्यगयत पत्तधशुद्धपठन्ते भक्ति पुम्भि । तदायतनमदा न  
विमोक्षयामिनःश्रयामि । तत्रगृहस्त्वुर्मेदेव्या मानिः २ मनिधानसमवस्थानं  
स्थितंस्थितिमद्भूत् ॥ ८ ॥

यत्प्रदानेपूनाया मश्रिकार्यमहोत्सवेच सर्वपतन्ममरित उच्चार्यं यव  
श्वमरुतीरम् । 'ऋहणेपन् धाव्य अयस्यधात' २ च 'ओरावश्येष्यत्' । यद्वा,  
पत्तावयत् । धाव्यधाचयितव्यमंत्रंजपतीरम् । ण्वदेशनपेनुछिद्रताम्यात् ।  
महानवम्पदी छागमेगमहापशुमिद्विदान देवतोद्देशेन पशुममपणम् । इदानी  
त्युत् । पूनापुष्पोपहारदीपादिममपणम् । यद्वा, अङ्कुरवस्त्रधर्मचन्दन  
चाहनच्छत्रधामरादिभि कुमारीमुद्रासिनीममघनम्पूजा । अश्रिकार्यफाल्गुने  
श्रामि अश्रित्यालाघनदेवीमाहात्म्यरूपमालामन्त्रपुरध्वरणान्ते विहितहोमोऽ  
श्रिकार्यम् । णत् त्रयःक्षणोमहोत्सव । यद्वा, घञ्चैवमन्तोत्सव । घञ्चात्तेवारण  
पुष्पप्रचायिकोत्सव । 'येष्टे जर्क्रीडोत्सव । वापाढे इन्द्रध्यजोत्थानोत्सव  
धावणेदोलात्सव । भाद्रपदेन्द्रपाणिधनुस्त्वतोत्सव । आश्वयुजिशारदोत्सव ।

जानताऽजानता वापि बलिपूजां तथा कृताम् ।

प्रतीच्छ ( क्षि ) प्याग्रहं प्रीत्या वह्निहोमं तथा कृतम् ॥ १० ॥

शरत्काले महापूजा क्रियते या च वार्षिकी ।

तस्यां ममैतन्माहात्म्यं श्रुत्वा भक्तिसमन्वितः ॥ ११ ॥

अर्वावाधाविनिर्मुक्तोधनधान्यसुता(सम)न्वितःमनुष्योमत्सा देवभविष्यतिनसंश

कार्तिकेदीपोत्सवः । मार्गशीर्षेमनूद्योत्सवः । पौषेनिधिपूजोत्सवः । माघेमेरूत्सवः । फाल्गुनेगन्धर्वोत्सवः । एतेषुसम्पूर्णदेवीचरितं पठनीयं इति भावः । यद्वा, महोत्सवः सर्वश्रुतिपारायणम् । यद्वा, वदतेः कर्त्तरिकिप् । वदतीष्टदेवतां इति उतदेः प्रणवः । महानुत् मन्त्रो यत्र समहोत्सवासौसवश्चेति महोत्सवः । मन् दीक्षाख्यो यज्ञः तस्मिन् । यद्वा, उन्दीवलेदने, उन्दनं उत् । स्त्रियाम्भावे सम्पद दिभ्यः क्विप्वाचक्यः उदः सवोदीक्षायज्ञः उत्सवः सुधोत्सवः सुधोत्सवोऽय मन्त्रग्रहे महोत्सवः तस्मिन् ॥ ६ ॥

तथा तेन प्रकारेण इति कर्त्तव्यतां गुरूपदिष्टेष्टदेवताराधनसामग्रीभावः योपक्रमोपसंहृति क्रियाक्रमज्ञानता अजानता वापि भक्तिमता गुंसाकृतं बलिं बलिप्रः तथा तेन कृतां पूजां च । तथा तेन कृतं वह्नौ होमं तिलमध्वादिहोमद्रव्यप्रक्षेपं च प्रीत्या हम्प्रतीच्छिष्यामिस्वीकरिष्यामि । 'पतच्छ्रुतं प्रतीच्छं स्यात्' । पतच्छ्रयणः प्रतीच्छा । प्रतीच्छास्त्यस्य प्रतीच्छः कश्चित् । अर्शादित्वाद्च् । ततः तद्घरतीत्याचारेकिप् । सनाद्यन्तत्वाद्धानुत्वात्प्रतीच्छधातोर्भविष्यतिकाले स्यप्रत्ययः सिप् इडागमः । 'अतोलोपः' । इण्कोः । 'आदेशप्रत्यययः पत्वः प्रतीक्षिष्यामीति पाठे ईक्षदर्शने अनुदात्तेत्वनिवन्धनमात्मनेपदविधानमनित्य तिचक्षिङ्गोऽङित्करणं ज्ञापकमित्युक्तत्वात्परस्मैपदम् । बलिपूजां इत्येकप तु बलिनापशुविशसनेन सहकृता पूजा बलिपूजा । बलिरूपावा पूजास्तरः तम् ॥ १० ॥





उपसर्गाः शमं यान्ति ग्रहपीडाश्च दारुणाः ।

दुःस्वप्नश्च नृभिर्दृष्टं सुस्वप्नमुपजायते ॥ १६ ॥

वालग्रहाभिभूतानां बालानां शान्तिकारकम् ।

सङ्घातभेदे च नृणां मैत्रीकरणमुत्तमम् ॥ १७ ॥

दुर्वृत्तानामशेषाणां बलहानिकरं परम् । रक्षोभूतपिशाचानां पठनादेव नाशनम् ॥

उत्पातादिसूचितोपद्रवाणां सर्वत्रसर्वस्मिन् शान्तिकर्मणितथादुःस्वप्नदर्शनेदुष्टफलस्वप्नदर्शने । उग्रासुअत्यनिष्टफलासुग्रहकृतासुपीडासु मम माहात्म्यंशृणुयात्पुरुषःततःसववाधोपशान्तिर्भवतिसर्वेष्टार्थसिद्धिश्चेतिभावः ॥ १५॥

पूर्वोक्तंपुनर्वर्नक्ति । मम माहात्म्यश्रवणादुपसर्गाः वाधाः अतिवृष्ट्यादयः शमं यान्ति । यद्वा, उपसर्गाउत्पाताः प्रकृतिविरुद्धेतयः । 'अजन्यंल्लीवउत्पात उपसर्गः समंत्रयम्' । तथाततएवदारुणाः भयानकाः ग्रहपीडाः शन्यादिकृतावाधाशमंशान्तियान्ति । नृभिः दृष्टंदुःस्वप्नंसुस्वप्नमुपजायते । दुःस्वप्नसूचितं यद्दुष्टं फलं तत्सुस्वप्नसूचितमिवफलं,संपद्यतइतिभावः । अतर्कितप्राप्यफलोहिमणिमन्त्रौपधदेवताप्रभावः । दुःस्वप्नसुस्वप्नयोर्नियतेषुं ह्यिङ्गत्वेऽपिवहुव्रीहौफलेऽन्यपदार्थेविवक्षितेनपुंसकतोपपत्तिः । अर्द्धर्चादौस्वप्नशब्दो वास्त्येव । अन्यथाऽस्यपुंसपुंसकतोपपद्येत । दुःस्वप्नश्चेतिपाठोवा ॥ १६ ॥

बालानांशिशूनांग्रहाः पीडकाः पूतनादयः शमशानादिवासिनोदृष्टिवंघिगलयन्त्र्यंत्रवन्धिनाभिवन्धिशुक्रवन्ध्युपस्थवन्धिरुधिरशोषिपिशितशोषिमूत्रशोषिलालाशोषिप्रभृतयश्चतैरभिभूतानामाक्रान्तानां शान्तिकारकं उपशमनकारणं मम माहात्म्यश्रवणाद्युत्तममाश्रयणीयम् । किं च नृणांप्रकार्यकारिणां कथंचित्परकृतोच्चाटनप्रयोगतः सङ्घातभेदेप्रसक्तैसतिमन्माहात्म्यश्रवणमेवोत्तमं मैत्रीकरणं मित्रत्वकरणसाधनम् ॥ १७ ॥

दुष्टं वृत्तं धरितं येषां तेद्वृत्ताः तेषामशेषाणांपरं श्रेष्ठं बलहानिकं गन्ध-

सर्वममैतन्माहात्म्य ममसन्निधिकारकम् । सर्वं ह स्नमेतदादिमध्यावसानलक्षणम्

पशुपुष्पाध्यधूपैश्चगन्धदीपैस्तथोत्तमे ॥ १६ ॥

विप्राणा भोजनेर्होमै प्रोक्षणीयैरहर्निशम् । अन्यैश्चविविधैर्भोगै प्रदानैवत्स्मरणया  
प्रीतिर्मेक्रियतस्मास्मिन्सदृशुश्चित्प्रते । धृतहरतिपापानितथाऽऽरोग्यप्रयच्छति

नाशहेतु मन्माहात्म्य । ह्योहेतौट । किञ्च रक्षसा मायोपजीविनां भूताना  
वाग्प्रहादीना पिशाचाना पिशिताशनाना तामसाना च पीडकानामदृश्यरूपा  
णां मम माहात्म्यस्यपठनादेवनाशन दूरीकरण भवति ॥ १८ ॥

ममसन्निध्यकारक नैककारकम् । सन्निधिकारक इतिपात्रेऽपि  
निधि सनिधान इतिव्याख्यायत्रयणान्त्वपवाध । यद्वा सन्निधि महानिधि  
महापद्मादि तस्यकारकप्राप्यपठ्यमानसदितिभाव ॥ १६ ॥

युग्म पुम्भिरभि प्रकारैवत्स्मरणयाक्रियतेमेव प्रीति साऽस्मिन्समा  
हात्म्ये सदृक्कारमेव उच्यते पठिते श्रुतेवाभक्तिमद्भि मवकामदुघोषान्वितव  
स्यात् । पशुभि घृतुष्पद्भि छागमेवमदिपमातङ्गादिभि छिपाद्विमहापशुभिश्च  
नरै पुष्पै सुरभिसम्भृतै यै पूजागेमधुशुनादिभि धूपै कपूरगरुमृगमदादि  
गर्भितैरु रूपादिभिर्नानावृत्तिगन्गादिभि चशब्दात् श्रीवासादिधूपाशुश्रुते ।

तथाउत्तमैर्विधिर्विप्राणा क्तव्यैर्भोजने यद्भोजनेर्भोज्यैश्चादिभिरुचिते । त  
थाविविधैर्होमै । तथाऽहर्निशदिवानिशविविधै प्रोक्षणीयैश्शनीयैस्त्यगात  
घातै । तथान्यैश्चविविधै भोगै तथादानैमन्त्रै यैर्विविधै । च शब्दाद्  
खालकारपूनादिभि साधनै घत्स्मरणयामेप्रीति मकृत्कामदुघामने क्रियत  
साऽस्मिन्प्राक् प्रपञ्चितमममाहा म्येसदृक्कारकत्वा उच्यतेपठितधृतैवासा

रक्षाङ्करोति भूतेभ्यो जन्मनांकीर्तनं मम! । युद्धेषु चरितं यन्मे द्रुष्टदैत्यनिवर्हणम् ॥

अस्मिन् ( तस्मिन् ) श्रुते वैरिभूतं भयं पुंसां न जायते ।

युस्माभिः स्तुतयो याश्च याश्च ब्रह्मर्षिभिः कृताः ॥ २३ ॥

ब्रह्मणा च कृतास्तास्तु ( यास्ता ) प्रयच्छन्ति शुभां मतिम् ( गतिम् ) ।

अरण्ये प्रान्तरे वाऽपि दावाग्निपरिवारितः ॥ २४ ॥

धयितुंसुगमेत्यर्थः । यद्वा, सकृत्सहद्वित्रैः पुंभिः पञ्चपैः सप्ताष्टैरेकद्वित्रिच-  
तुरैरेकतयोच्चरितेश्रुतेवेत्यर्थः । 'सहार्थेष्वैकवारेचसहार्थेष्वव्ययंसकृत्' । 'सकृ-  
त्सुचरितेश्रुते' इतिपाठे श्रुतशब्दतः श्रवणप्राधान्यंसुचरितेशोभनेचरिते प्रोक्षणी-  
यैरहर्निशं इतिपाठेतुकश्चिदाह । मन्त्रपूतजलोक्षणसंस्कृतहतच्छागादिपशुवलि-  
रितितन्न । पशुपुष्पार्धूपैरितिपशुग्रहणेनपौनरुक्त्यप्रसङ्गात् । ततइत्यंत्व-  
र्थोऽत्रक्तव्यः । उक्षसेचने । प्रत्यहंपंचामृताभिपेकैरविचिच्छन्नपीथूपधाराभि-  
पेकैर्वेति ॥ २० ॥ २१ ॥

ममदेव्या माहात्म्यस्यश्रुतं श्रवणं कर्तुं पापानि हरति अपनयति नपुं-  
सकेभावेक्तः । तद्योगेपष्ट्येव । यद्वा, मममाहात्म्यं श्रुतं सत् पापानिहरति ।  
तथाभजतां आरोग्यं प्रयच्छतिदानप्रतिग्रहामावात् पष्ट्येव । मम जन्मनां  
उत्पत्तीनां ब्रह्माण्यादिरूपतयाप्रादुर्भावानां कीर्तनं कथनंभूतेभ्यः हिंस्रेभ्यः भूत-  
प्रेतपिशाचसिंहव्याघ्रप्रहादिभ्यः भक्तानां रक्षां करोति ॥ २२ ॥

युद्धेषुयद्द्रुष्टदैत्यवर्हणं मे देव्याःचरितं शस्त्रप्रयोगलक्षणंसङ्ग्रामकौशल-  
मभूत्तस्मिञ्छ्रुतेसतिश्रुतवतां पुंसां युद्धेषुततोऽन्त्र च वैरिभूतं भयं न जायते ।  
निवर्हयति निवर्हणम् । गन्दादित्वाल्ल्युः । द्रुष्टानां दैत्यानां निवर्हणंचरित्रम् ।  
॥ २३ ॥

सुमेधसा मार्कण्डेयेन च ततः पूर्वैश्चब्रह्मर्षिभिः याः स्तुतयः कृताः  
'तथापिममतावर्ते मोहगर्ते निपातिताः महामात्रप्रभावेणे'त्यादयः ताश्च शुभां

दस्युभिर्वा वृत् शून्ये गृहीतो घाऽपि शत्रुभि ।

सिंहव्याघ्रानुपातो घा घने घा घनहस्तिभि ॥ २५ ॥

राज्ञा ब्रूद्धेन वा (घा) ह्यो वध्यो बन्धगतोऽपिवा ।

आचूर्णितो वा घातेन स्थित पोने महागंधे ॥ २६ ॥

पनसुवापिशस्त्रेषु मग्राभेश्वादादृणे । सर्वावाधासु घोरासुवेदनाभ्यर्दितोऽपिवा  
स्मरन्ममैतच्चरितनरो मुच्येतसद्गुहात् । ममप्रभावात्सिंहाद्यादस्यवोर्वैरिणस्तथा  
दूरादेव पणायन्ने स्मरन्धरितं मम ॥ २८ ॥

गतिम् प्रयच्छन्ति पश्यमाना पश्यदुभ्यपुभ्य याश्चप्रह्वणामधुकीटभमीतेनम्ना  
स्तुतय विश्वेश्वरीजगद्धार्त्रामित्यादय । अथ घ युष्माभिरेवहृता स्तुतय  
दिव्यायथाततमिदजगदात्मशक्ये तथादय । 'नमोदेव्यै' इत्यादयश्च । 'दिवीप्रपत्ता'  
निहरेप्रर्मादे' इत्यादयश्च । सास्त्रिविधास्तुतय ॥ २४ ॥

एकान्वयमिदश्लोकचतुष्टयम् । अरण्येविपिनेवायत्तमानःममदेल्याप्त  
शरियस्मरन्नर सद्गुहाद्गुह्यघटनौमुच्येत स्वयमेव । सद्गुहात्तासुसम्बाध' मम'  
कर्त्तरिमुच्येत् । तथा प्रान्तरेवापि दूरेजनशून्यमार्गे । 'प्रान्तर दूरशून्योऽध्वा'  
तथा दावाग्निपरिवारित मजपि वा । तथादस्युभि' तस्करैर्बृ'त' वेष्टितोवा ।  
तथाशून्येनिर्जनप्रदेते शत्रुभिर्गृहीतोवा । तथा सिंहेन व्याघ्रेणवाऽसुयातोऽनुद्रुत ।  
तथावनहस्तिभिर्बृ'तोवाहन्तु अनुयात । तथा ब्रूद्धेन राज्ञावध्योऽयं वधार्होऽय-  
मित्याहृत । हनुमाज्ञापितोवा । तथा बन्धगतोऽपिवा । तथा घातेनचूर्णित'  
व्याकुन्तित' बाधितोऽपास्तोवा । महागणधेसमुद्रेपोतेनीकाविशेषे सायात्रिका'  
पोनवणिज वध्यन्ते' नरस्थितीवा 'पानपात्रेशिशोपोत' । तथा भृशदारणेत्यर्थ  
भीषणेसडप्रामेश्वा घायुधेषुपतत्सु । सर्वावाधासु, सर्वात्रासमन्ताद्वाधाया'  
महावाधा'तासु । सर्ववाधास्त्वितिपाठे स एवार्थोभवत्सूरविकार्यात् । घोरा  
सुव्रणपीडासुवर्त्तमानोवा । तथा वेदनासुतत्तद्गुहासुमनेषु अभ्यर्दित' वर्त्त-

ऋषिरुवाच

इत्युक्त्वासाभगवती घण्डिकाघण्डविक्रमा । पश्यतामेवदेवानांतत्रैवान्तरधीयत  
 तैऽपिदेव्यानिरातङ्काःस्वाधिकारान्यथापुरा । यज्ञभागभुजःसर्वेघक्रुर्विनिहतारयः  
 दैत्याश्चदेव्यानिहते शुम्भेदेवरिपौयुधि । जगद्विध्वंसिनितस्मिन्महोत्रेऽतुलविक्रमे  
 निशुम्भे घ महावीर्ये शेषाःपातालमाययुः । एवंभगवतीदेवीसानित्यापिपुनःपुनः

मानः यद्वा, तीव्रवेदनयाऽभ्यर्दितः हिंसितोऽपिवा सर्वत्रैतन्ममचरितंस्मरन्नरः  
 सङ्कटान्मुच्येत स्वयमेवेतियोजनीयम् । इहारण्ये प्रान्तरेवापीत्यतः श्लोकात्पूर्वं  
 सिंहव्याघ्रानुयातोवेतिपठन्तिकेचित् । अतश्चममप्रभावार्त्सिहाद्याइत्युपपन्नम्भव-  
 ति ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥

ममप्रभावात्सामार्थ्यात्सिहाद्याः तथा दस्यवः तस्कराः तथावेरिण-  
 श्चशत्रवः चरितंस्मरतः पुरुषात्सकाशाद्दूरादेव पलायन्ते ॥ २६ ॥

इत्थं उक्त्वा सा भगवती घण्डविक्रमा प्रगल्भवीर्या घण्डिकादेवी  
 पश्यतामेवदेवानां तत्रैवपुरोभाग एवान्तरधीयत । अन्तर्धानमगात् । श्रदन्तरो-  
 रूपसर्गवद्वृत्तिर्व्याख्येयाः । अन्तःपूर्वाद्द्धातेः कर्मकर्त्तरिलिङ् । यद्वा, तान्  
 देवान्त्रायते इतितत्रापालयन्ती सत्येवस्वयमन्तरधीयत । 'आतोऽनुपसर्गेकः' ।  
 यद्वा, तत्रैवदेवशरीरेष्वेवान्तरधीयत । स्वयमेवशरीरेष्वेवान्तर्न्यलीयतेत्यर्थः ।  
 पश्यतां इत्यनादरेपृष्ठीतिपक्षेयथा जननी सुतान्भ्याजतोऽनादृत्यालोकनान्तर्भ्रंत्ते-  
 तथेयमपिसर्वजननीदेवदर्शनतोऽन्तरधीयतस्वयमेवेतिभावः ॥ ३० ॥

अथ तेदेवा अपिदेव्यापिनिहतारयःनाशितशत्रवः अतएव यथापुरापूर्व-  
 कालइवनिरातङ्काः कृच्छ्रजीवनतोनिर्भयाः यज्ञभागभुजःयज्ञांशान् भुञ्जानाः सन्तः  
 स्वाधिकारान्स्वव्यापाराञ्चक्रुःकृतवन्तः ॥ ३१ ॥

युधिसङ्ग्रामेदेव्यातस्मिञ्जगद्विध्वंसिनि त्रैलोक्यभञ्जिनिमहोत्रे अतुल-  
 विक्रमे अनुपमशक्तौ देवरिपौ ससैन्ये शुम्भेमहावीर्ये निशुम्भे घं निहते सतिशेषाः

सम्भूय कुल्य भूप' जगत' परिपालनम् । तयैत' माहन जि'वं सैव विश्वं प्रमूषते ॥  
सायाचिताघविज्ञानतुषा श्रद्धिप्रयच्छति । द्वात' येन' सक्लं' द्वाण्डमनुवेष्ट

द्वेषा' पातालमाययु' वलिसद्रापिसार । घरादेन मसै २ इतिवि'पालन'त  
पतन्त्यस्मिन्नितिपातालम् ॥ ३२ ॥

हे भूप' एवं उन्नीया सा भगवती नि' शाऽपिधरा अचिन्धरा भवि  
कारापिमती पुन' पुन' सम्भूयश्रादुभावमवाप्यजग'त' परिपालन कुल्य । उच्छ  
प्रागपि 'नि'येयमात्रग'नृतिरि'ति । 'द्वानाकायसिद्धययमि ति च ॥ ३३ ॥

सैर्देवी विष्वग्प्रमूरतनवति । यद्राप्रणिप्रमध'निधादि' । तयैव  
हनुमृतया एतद्धि'यमाहन । मुहर्षेधि'यनिधादि' । अविश्वेनयाज्ञान । ममता  
सहित क्रियत । सादेवामनै याचितासनी विज्ञान च प्रयच्छति । सैववा  
नुष्टामती तपमाचनितमन्नागामती वृद्धि च सम्पद् च महताप्रयच्छति दगाति ।  
तुषाश्रद्धि इतिनुपा' अमहिताया निर्देश'त' । 'आत्यक् इतिनुप्र'तिमाधतस्या  
क' स्थानेदम्बन्धमती तुष्टश्रद्धिइतिरु'गत् । 'स्वदु'स्य इतिवचन । 'सायाचि  
तायविज्ञान इतिपाठे । वर्षेषु विज्ञानमितिचिद्रह । एत' प्रागप्युक्त 'तथात्र  
विस्मयकार्यो, यागनिद्रान्तगत्यत । महामायाहरत्पातयेति ॥ ३४ ॥

हमनैश्वरमुख्य महामारीस्वरूपया तयामहाका'या महातामस्या  
महा'या एतन्म'क' द्वाण्ड' वैलाकरगमक'स्थान'यामन् । महाकालेप्रत्यममये  
महाश्वासावका'श्चति महाकाल' अनिष्काल' । यद्वा महाश्वासीकाल'श्च  
महाका' काग'गिरिद्र' तस्मिन्नपस्थित मयाकाले महतिप्रत्यसमये । महा  
श्वासीकाल' कालागिरिद्र' तस्यैय'क्षीमहाकालीतया । भारयतिमहरतिमार  
महाश्वासामार'श्चमहामार'रुद्र'नस्य'क्षीमहामारासा स्वरूपयस्या' सादेवी महा  
माराम्बरूपानया । यद्वा 'मह'उ'व'उत्सव । महान् उत्सवानासमन्तान्  
मारयतिनाशयति महामारी महाप्र'यान'त्वाला तस्या'स्वरूपयस्या'सातया ।

महाकाल्या महाकाले महामारीस्वरूपया । सैवकालेमहामारीसैवसृष्टिर्भवत्यजा  
स्थितिं करोति भूतानांसैवकालेसनातनी । भवकालेनृणांसैवलक्ष्मीवृद्धिप्रदागृहे  
सैवाभावे तथाऽलक्ष्मीर्विनाशायोपजायते ।

स्तुता सम्पूजिता पुष्पैर्धूपगन्यादिभिस्तथा ॥

द्दाति वित्तं पुत्रांश्च मतिं धर्मं तथा ( गतिं ) शुभाम् ॥ ३७ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्येदेवीचरित्र-  
माहात्म्यवर्णनं नाम द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

सप्तशत्याद्वादशः ॥

‘मृत्युजिह्वामहामारी जगत्संहारकारिणी । महारात्रिर्महानिद्रा महाकाल्याति-  
तामसी । सैवकालानलज्वाला सैवाविद्यातमःप्रसूः । सैवमोहप्रसूर्मृत्युःसैव-  
सर्वाधिदेवता’ ॥ ३५ ॥

अजाजन्मरहितासनातनी नित्यादेवीकाले भूतानांप्रलयसमयेतमोगुण-  
मयीसतीमहामारीतिकथ्यते । तथाकालेउत्पत्तिसमये सैवभूतानांसर्गसमयेरजः  
प्रधानास्थितिकरोति ॥ ३६ ॥

भवकालेदेवीसांनिध्यं भवकालेनृणां गृहेसैवलक्ष्मीवृद्धिप्रदा । सम्प-  
द्भवद्भ्रामवति । प्रेदाङ्गकः तथासैवदेवी अभावेदेवीसांनिध्याभावेऽलक्ष्मीः  
सम्पदःविनाशायामवायउपजायते । यत्रलक्ष्मीःतत्रदेव्याःसान्निध्यम् । यत्रदेव्याः  
सान्निध्यं न तत्र सम्पदपिनेत्यन्वयव्यतिरेकौवेदितव्यौ ॥ ३७ ॥

नित्यन्देवीसान्निध्यकारणंतत्फलञ्चोपदिशति सुमेधाऋषिः । हेनृप!  
सादेवी स्तुतास्तावकैः पदैः संकीर्तिताश्च तथा पुष्पैः सम्पूजिता च तथा गन्धैः  
कपूरचन्दनमृगमदादिभिर्विलिप्ता तथाधूपैर्बहुविधैर्धूपिता । तथा आदिग्रहणा-



## त्रिनवतितमोऽध्यायः

( सप्तम्याया त्रयोदशोऽध्यायः )

सुरधवैभयपोर्वरप्रदानवर्णनम्

ऋषिरघाघ

एतत्तं कथितमूपं देवीमाहात्म्यमुत्तमम् । एवम्प्रभाषासादेवीययेदधाप्यते उवाच

द्वय्यालङ्कारनाम्नूलादिभिरानन्दितामर्क- प्रपन्ना धमता अप्रार्थितैवमक्तेभ्यचित्त  
घतपुत्रांश्च आयुसारोग्यमैश्वर्यं च शब्दमूषित धर्ममतिं च शुभागतिश्च ददाति ।  
यदुक्तं प्राक् । 'मा विद्यापरमामुर्जैर्हेतुभूनामनातनी । मसारध्रन्वहेतुश्च सैव  
मर्षैश्वरेवरी' ॥ ३८ ॥

इति मार्कण्डेयेराजाधिराजतोमरात्वय श्रीमदुद्धरणात्मन शान्तनुव्रजवर्ति  
धिरघिताया देवीमाहात्म्यटीकायां द्वाधरित्रयमाहात्म्यर्षननाम  
द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

ऋषिरघाघ । सुमेधामगवानृषिः सुरध राजानमुचिता षाघमूचे हे  
सुरध एतदुत्तमश्रेष्ठतमसवाधसाधनं ते तुभ्यं कथितम् । साध देवा एवं प्रमा-  
वाहं द्विग्विधसाम्पदावसन्ते । सा का यथादेशसवनतन्यासवपापिण्यासर्वम-  
हारिण्याइद्भगविश्व धायते सूच्यते धाल्यते । प्रत्यवसीयते च यथाकालम् ।  
धुङ्प्रवस्थानेपि च । कमणियक । आत्मनेपदं च लट् । 'विद्यावाधित्वमा  
माध्यानुमैकोत्राध प्रदर्शित । प्रयोगतोऽनुसत्तव्या अनेकाथाहिधातव' । म  
हात्मनोमदामूर्त्तैर्देव्यामावेकमणिं ब्राह्मणादित्वात्-शत्रिनस्तद्धिनेतिटिलोपेमा  
हात्म्यइतिसिद्धम् ॥ १ ॥

विद्या तथैव क्रियते भगवद्विष्णुमायया । तयात्वमेपचैश्यश्च तथैवान्ये विवेकिनः  
मोह्यन्ते महिताश्चैव मोहमेप्यन्तिचापरे । तामुपैहि महाराज! शरणं परमेश्वरीम् ॥

आराधिता सैव नृणां भोगस्वर्गापवर्गदा ॥ ३ ॥

भगवद्विष्णुमाययातथैवचण्डिकयैवविद्याज्ञानं क्रियते उत्पाद्यते । प-  
मात्मज्ञानसाधनं देव्येवोपनिषद्पेतिभावः । विष्णोर्माया विष्णुमाया भगव-  
त्विष्णुमाया भगवद्विष्णुमायातथा । यद्वा, भगवान् विष्णुः भगवद्विष्णुः  
ऋष्यमाययायदुक्तं 'साविद्यापरमामुक्तेर्हेतुभृता' इति । 'पेश्यस्यरुमग्रस्यधर्मस्य  
शसः त्रियः । ज्ञानवैराग्ययोश्चैवपण्णांभगइतीरणा' । हे राजन् तयामोहरू-  
पयादेव्या त्वं विवेकीसन्नपिसुम्प्रतिमोह्यसेप्राक् मोहितोभूः भविष्यतिचकाले  
मोहमेप्यसिच । तयातथैवपुण्यैश्यश्च समाधिर्नाममोह्यतेमोहितश्च मोहमेप्यति  
च । तथैवतथैवयुवाभ्यामन्येऽपिविवेकिनः पुमांसः अधिगतशास्त्राः सन्तोऽप्यपरे  
च तेभ्यश्चान्येषसर्वे तथैव देव्यामोह्यन्तेमोहिताश्च मोहमेप्यन्तिच । यदुक्तंप्राक्  
'तथापिममतावर्त्तमोहगर्त्तनिपातिता' इत्यादि ॥ २ ॥

प्राक् राज्ञा 'भगवंस्त्वामहं प्रणुमिच्छाम्येकं वदस्वतदि' तियद्गहस्यं पृष्टं  
हेमहाराजसुरथ त्वं तां परमेश्वरीं देवीं शरणं उपेहि । उपेहिआद्गुणः उपगच्छ  
शरणं वज । सैवदेवीभगवत्येवाराधितातपसातोयितासतीनृणां पुंसां भोग-  
स्वर्गापवर्गदाभुविभोगदा । जन्मान्तरेस्वर्गदा । ततः अपवर्गदामोक्षदाभव-  
तियतोज्ञानदा । ततएवमोक्षदा । 'ज्ञानादेवतुकैवल्यमि' तिसिद्धान्ततः । स-  
म्प्रदानाभावाद्भजकस्यवस्त्रं ददातीतिवत्सम्बन्धेपण्येव नृणामिति । उपपूर्वइण्  
गतौ । 'सैर्वापिच' । उपेहिइतिस्थिते । 'एत्येधत्यूठसु' इतिवृद्धिर्नतद्विधा-  
वेवीत्यनुवर्त्तते । ततःआद्गुण एवंचाश्रकाभावात् । आद्पूर्वत्वेपि आइहि  
इतिस्थिते । वृद्धिवाधित्वा 'ओमाडोश्चे'तिपररूपत्वेसतिउपेहीत्येवरूपम् । उ-  
पेहीतिवृद्धिकृतः पाठः छान्दसः काचित्कः 'सर्वेविधयश्छंदसिविकल्पन्ते' इतिवच-

## मार्कण्डेय उवाच

इति तस्य वच श्रुत्वासुरथः स नराधिप । प्रणिपत्यमहाभागतमृषिशसितव्रतम्  
निर्विण्णोऽतिममत्वेनराज्यापहरणेन च । जगाम सद्यस्तपसेसद्य वैश्यो महामुनेः  
सन्दर्शनार्थमम्बाया नदीपुलिनसस्थित । सद्यवैश्यस्तपस्तेपे देवीमूक्त पर जपत्

नात् । यद्वा, एहीत्येतद्विमक्तिप्रतिरूपकमव्यय पृथोदरादित्वात्माधु । उ  
पपठिउपेहि । महाराज । 'राजाह सखिभ्यष्टब्' । नपूननात् पूजायास्व-  
तिग्रहणम् । 'अधोतेराशुकर्मणिधरद्वेचोधाया ' परमार्हवरीम् ॥ ३ ॥

युगम् । ऋषिर्वाच । मार्कण्डेयोभगवान्मुनि स्वशिव्यवीष्टुकिमुनि  
वाचमुचिताभूवेहेव्रीष्टुकिमुनेभाकर्णय । इतिप्रागुक्तप्रकारेणतस्यसुमेधमोऽह  
पं वच श्रुत्वा देवीमारा त्रयेतिउपदशराज्यमाकर्ण्यसुरथोनामनराधिप त सुमेधस  
महाभागमंशितव्रतऋषिप्रणिपत्यजगामैराराभ्य । पुत्रमिशकलनादावतिममत्वे  
नअतिमोहेनशत्रुभि राज्यापहरणेनघट्टेतुनानिर्विण्ण दु खितमानस 'सन्मद्य सप  
दितपसेजगाम । तथासमात्रिनामवैश्यध्वतपसेजगाम । भगस्यणैवयादेरिदं  
भागमद्भागवस्यमहाभाग त । सशितयत्नेनप्रतिपादितव्रतयस्ययेनसमशितव्र  
त त । शोतनूकरणे । करणिकः । शाङ्गोरन्तरम्याम् । 'शातेरित्थवतेनित्य  
मितिबक्तव्यम् । शमितव्रत इतिपाशेशसते कमणित्त । शसावासञ्जानायस्य  
शसितव्रतशास्त्रोक्त उपयामादियस्यत शसुस्तुतो । निर्विण्णस्योपसङ्गानमिति  
णन्य । चिद्वृत्तामेविद्विचारणेनाक्त निष्ठानत्वम् ॥ ४ ॥ ५ ॥

अम्बाया जगजनन्यादेव्या सदशनार्थप्रत्यक्षीकरणाय । नया पुलि  
नैद्वीपेन विशोपेवासस्थित सैवनेदेशेमम्यगवस्थित सराजाद्यतुरथ सवैश्यध्वस  
माधितनामररथष्ठ सर्वाथप्रदकेऽल्लक्ष्मीसूक्तवैदिकः ष्टुगिबशंम वन्देव्यधिदैवतदेव्यासु  
ष्टुशोभनमुक्तप्रणानं देव्या वाचिपयेसूक्तमुपदिष्टमाचार्यैरागमीयदेवीप्रणवमश्रिगमं  
घाणतदेवराधरित्रयजपव्रतप तैरे । केचित्तपाम्रहणादम्यामातामातृकेतिमातृ

तौ तस्मिन् पुलिने देव्याः कृत्वा मूर्त्तिं महीमयीम् ।  
 अर्हणाञ्चक्रतुस्तस्याः पुष्पधूपाग्निर्तर्पणैः ॥ ७ ॥  
 निराहारी यताहारी तन्मनस्कां समाहितौ ।  
 ददतुस्तौ बलिञ्चैव निजगात्रासृग्दक्षितम् ॥ ८ ॥

कामंत्ररूपदेवीसूक्तमाहुः । अपरेतुदेवीसूक्तंपृथगस्तिरहस्येतज्जपमित्याहुः । अन्येत्वाहुः श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तानिदेवीसूक्तानीति । 'संस्थाधारेस्त्वितौमृतौ' तपस्तपः कर्मस्यैवेतितपः कर्त्ताकर्मवद्भवति । उपवासादीनितपांसितापसन्तपन्ति दुःखयन्तिसतापसःत्वगस्थिभूतः स्ववाञ्छितस्वर्गाद्यर्थतपः तप्यते । तपसंतापेलिद्वितपःतेपेतपोऽजितवानित्यर्थः । अन्यकर्मकत्वेतु उत्तपतिस्वर्णसुवर्णकारः ॥ ६ ॥

तौ द्वौ राजा सुरथः वेश्यश्च समाधिः तस्मिन्नद्याः पुलिने तद्विशेषे 'तौ योन्थितन्तत्पुलिनम्' । तत्र देव्याः मूर्त्तिं आकृतिं महीमयीं मृण्मयीं प्रतिमां विधाय 'मयड्यै तयोर्भापायाममस्याच्छादनयोरि'ति चिकारावयवायाः मद्याः ऽयम् । तस्याः देव्याः अम्बिकायाः पुष्पधूपाग्निर्तर्पणैः पुष्पैः धूपैः अग्निकार्यैर्होमैः तर्पणैश्च विहितैः तैरुचितैः अर्हणां पूजां आराधनं चक्राते । पृथक्पृथक्चिदधाते 'मूर्त्तिः काठिन्यकाययोः' 'पूजानमस्यापचितिः' 'सपर्याघार्हणाः समाः' 'पुष्पाणिधूपाः अग्नयः तर्पणा निश्चतैः ॥ ७ ॥

'निर्निश्चयनिपेशयोः' निराहारीं हविष्यादिनातावन्निश्चिताशनौ । ततः क्रमशो मूलाशनौ । यतात्मानौ विष्येभ्यो व्यावर्त्तितमनोनेत्रादिज्ञानेन्द्रियोर्निजितेन्द्रियग्राभौ । 'तावज्जितेन्द्रियो न स्यात् चिजितान्व्येन्द्रियः पुमान् । न जयेद्रसनं यावज्जितं सर्वजिते रसे' । तन्मनस्कां । तस्यामेवाध्यातुं मनोययोस्तौ तयोक्तौ देवीध्यानपरो समाहितौ गुरुरपदिप्रार्थसावधानौ । निरस्तसंशयो बहुविघ्नपरिहारपरो । तौ सुरथवेश्यौ । निजगात्रासृग्दक्षितम् । तपश्चरणकारणकालेपरिहासापराङ्मुखौ ईषच्छरीरोद्भवरक्तसिकमेवात्रमथं बलिञ्चददतुः । 'तुण्डजम्बाहुजंवा-

एवं समाराधयतोऽग्निभिर्घर्षेयतात्मनो । परितुण्णजगद्धात्रीप्रत्यक्षं प्राह घण्डिका  
देव्युवाच

यत्प्राध्यतेत्ययाभूष'त्वयाचकुलनन्दन' । मत्तस्तत्प्राप्यतासर्वंपरितुष्टादमि त  
मार्कण्डेय उवाच

ततो घत्रे नृपो राज्यमधिगम्य श्यन्यजन्मनि । अत्रैवच निज राज्य हतशशुचल वला

पितृभ्याममयम्वलिम् । भक्त्यावेशान्महाशूरोमहामायार्थमुत्पृजेत्'धराब्दाग्निज-  
शरीरजदधिरघन्दनविलेपनश्चदेव्यैददाते । 'एनेनशरीररापातयामिमन्त्रवामाध-  
यामी'तिहठयोग सचित ॥ ८ ॥

एवउक्तप्रकारेणसमाराधयतो ऋग्निघर्षे यतात्मनो देव्यामवहितचेत-  
सो तयो क्षत्रियवैश्ययो परितुण्ण । तन्त्रनेनतपमाऽतिश्रीता । जगताधात्री  
घण्डिकादेर्नाप्रत्यभंभूय प्राहकथयामामप्राहेतिविभक्तिप्रतिरूपकमप्यम् । यत्  
घण्डिकाजगद्धात्रीतत तयो नापमयो प्रत्यश्रीबभूव । अन्यथातन्त्रनेनघोरेण  
तपमाग्निनेवजगन्तिदशोरेधेतिभाव । जगन्तिदधातिजगद्धा,आतोनुपसर्गक  
अदभक्षणेनृत् नृत्वाअत्री महर्षी । यद्वा, ओहाप्'यागेअतोऽधिकेजगन्तिजहातिज  
मद्धाततोऽत्रीमोक्षर्षी ॥ ६ ॥

देव्युवाच । देवीघण्डिकाराजानसुरर्षवैश्यश्चरुमाधिनामानवाघमूत्रे  
एवप्राप्यतइति हेभूष त्वयायत्प्राप्यतेहेकु'नन्दनकु'त्यर्द्धनवैश्यव्यायत्प्राप्यतया  
कथने । तन्त्रमुसर्वमत देवीना' मराशात्प्राप्यताल्भनां अहपरितुष्टाऽस्मि । तद्य  
तद्यनेघनेघददामिघ । पु'रुयनन्दन घैश्य यतोऽसौकु'गत्सकाशाहृधर्मीनृत्वा  
ध्वतिमोक्षरामन्वाद्द्वैराग्यभाक्त्वादिदिभाय । द्वितीयाहंप्राध्यंतामितितुष्टि  
त्पाठ' मपुनरुक्त । प्राप्यतामितितुष्टयताम् । यद्वा, वैश्यापेभयातपोनरुक्तयम् ।  
स्वयाघप्राप्यतामिति घदामितनुददामिनेघरितिपाठइयं वापिदृश्यते ॥ १० ॥

मार्कण्डेयमुनि स्याशिर्यं वाघमूत्रे तत' देवीना' तत' देव्युक्त्यनन्तरंवा

सोऽपि वीक्ष्यस्ततो प्रानं घवे निर्विण्णमानसः ।  
ममेत्यहमिति प्राणः सङ्गविच्युतिकारकम् ॥ १२ ॥

देव्युवाच

स्वल्पैरहोभिर्नृपते! स्वं राज्यं प्राप्स्यसे भवान् ।  
एत्वा रिपून्स्वलितं तव तत्र भविष्यति ॥ १३ ॥

नृपः सुरथः अन्यजन्मनि एतज्जन्मापेक्षया अन्यदग्रिमम्भाविजन्म तस्मिन् ।  
अविभ्रंशिअचलं राज्यं राजोभावः कर्म वा राज्यं घवेप्रार्थयामास । मन्वन्तरत्व-  
रूपम् । अथच, अत्रअस्मिन्नपिजन्मन्यविभ्रंशि । भ्रंशुअधःपतनेणिनिः । नवि-  
भ्रंशः अविभ्रंशः तद्युक्तम्या । अर्धघनिजेनगरेएतशशुचलंनिजंआत्मीयं आत्मीयं  
राज्यमेवघवे प्रार्थयामास । एतंशशुचलयत्रनथोक्तम् । वृञ्चरणेकर्त्तरिलिडात्म-  
नेपदम्यवे । 'स्वर्वालयसामर्थ्यसैन्येषुचलनाकाकर्त्तारिणोः' ॥ ११ ॥

ततोऽनन्तरम् । प्राणःमोक्षकाङ्क्षित्वादनिरांबुद्धिमान्, निर्विण्णमानसः  
संसारदुःखोद्दिश्यचेतस्कः । स समाधिर्नामवैश्योऽप्यतिचिरक्तःमन, ज्ञानमोक्ष-  
बुद्धिं घवे । कीदृशं, ममेत्यहमित्येवं सङ्गविच्युतिकारकम् । ममायंपुत्रोऽहंपिता  
ममेदंकुलमहंभर्ता । ममेदंघनमहंस्वामीतस्येत्याद्यध्यासजनितः यःसङ्गःतस्य-  
विच्युतिः चित्तयः तस्याः कारकं करणम् । ममत्वंनाममोहः संसृतिः अहंता घ  
संसृतिः तद्विलयकारकं प्रानमितिभावः । अतस्मिस्तद्बुद्धिरध्यासः । तेननिः-  
संगस्वैवात्मनोममत्वमहं त्वं सर्वदुःखावहः संगः सर्वात्मनाभाव्यते । तस्य  
सङ्गस्यपरमात्मरूपब्रह्मज्ञानंविच्युतिकारकंभवति । ममताआहंताघसङ्गः संसर्गोऽ-  
पेक्षाबुद्धिःहेतुज्ञानंभेदनियन्त्रं तस्य विच्युतिकारकं विच्छेदजनकं मोक्षोपयोगि-  
ज्ञानम् ॥ १२ ॥

हे नृपते हे सुरथ! भवान् स्वल्पैरहोभिः दिवसैः कतिपर्यैर्वासरैः रिपून्  
हत्वास्वित्तवतः अस्वलितं अचलितं तव राज्यम्भविष्यति । तवराज्यं तच्च

मृतधूम्र्य सग्राप्यजन्मदेवादिपत्न्यत । मार्गिकोनाममनुर्मपात् भुविमपिष्यति  
 वेश्यवर्ष्यं त्वयांयथ घनोऽस्मत्सोऽभिवाञ्छितः ।  
 न प्रयच्छामि ममिदुर्घं तव ध्यानं मचिष्यति ॥ १७ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति श्रुत्वा तयोर्देवी यथाऽभिलषितं परम् ।

तश्चेतिपाठद्वयम् तत्रान्तरेराज्यान्तरे च ॥ १३ ॥

देव्युवाच । हेभूष भवान् मृत सप्रपिण्तच्छरीरं परित्यक्तवानपिभूष  
 पुनरपिचिरस्मृतः स्याद्देवात्मवर्णायाश्चतस्र्यया जन्मउत्पत्तिसग्राप्य सार्धदि  
 कोनाममनु राजाभुविमचिष्यति । सार्धर्जिरेवसार्धर्जिकं संज्ञायाम् । घर्षेन  
 सहितं सवर्णं तत्र खाम्योऽन्याधित्वा बाह्यादिपाठादिभिस्तासर्जिः स्येतेतयो  
 योमनुः कथ्यतेऽष्टमः ॥ १४ ॥

हेवैश्य देवय । यद्वा, हेवैश्येपुर्यथेष्ट त्वयाअस्मत्तः देवितः यः वा  
 धमिराञ्छित अस्तिनघर ममिदुर्घं परमात्मरूपमङ्गल्यै प्रयच्छामि । ततश्च  
 घरदानतः तत्रज्ञानम्भविष्यति । 'मोक्षार्थीज्ञानमुच्यते' । अस्मत्तइति पञ्चमी  
 यदुवचन तस्मिन् । अतश्चैकत्वाभावात् 'प्रययोत्तरपदयोश्चो'ति मादेशाभावः ।  
 ननुअस्मत्त इतिरदुवचनोपकमात्प्रयच्छाम इतिरदुवचनेनभाष्यम् । तत्कथ  
 प्रयच्छामी वैश्यवचनस्यात् । एव तर्हिअम् मत्तः इतिच्छेदः । असुक्षेपे ।  
 अस्मत्तिस्रिति मसारनिगाकरोति । अम्, विपिरूप वरस्यविशेषणम् । एक-  
 त्वान् मादेशः । अयस्मयादित्वात् मत्यापदत्वाभावाद्गुत्वाद्यभावः । अस्मिन्  
 वेश्यवयवयामनो वरोयश्चाभिराञ्छित इतिवापाठः । यद्वा, 'अप्रत्ययो बहुलः'  
 इतिरश्ववचनरदुवचनम् । ततश्चास्मत्तइत्येवपाठः । घरणाहोवयं । 'कूारेप्रधानं  
 प्रमुखप्रोक्तानुत्तमा' । मुण्यवर्यवरेण्याश्च प्रवर्होन्वराद्धंशत् ॥ १५ ॥

मार्कण्डेय मुनि स्वशिष्यवाचमृचिवात् । हेकोष्टुकिमहर्षे । इति

यभूवान्तर्हिता सद्यो भक्त्या ताभ्यामभिन्दुता ॥ १६ ॥

एवैदेव्याचरंलब्ध्वा सुरथःक्षत्रियर्षभः । सूर्याज्जन्मसमासाद्य सावर्णिर्भविता मनुः  
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे-सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये  
सुरथवेश्ययोर्चरप्रदानवर्णनं नाम त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

समाप्तिगासप्तशती ॥

उक्तप्रकारेणतयोः क्षत्रियर्वेश्ययोः सुरथस्यसन्ममायेद्य । तथाभिलषितं अभि-  
वाञ्छितं अनतिक्रम्यभमीष्टंवरंदत्त्वा । भक्त्याताभ्यां लब्धवराभ्यां अभिन्दुता  
त्वं जगतां स्रष्टीरक्षित्रीसंहर्त्री जननीत्यभिन्दुता संस्तुतासतीसद्यः सादेवी भग-  
वती स्रष्टिकासपत्यन्तर्हितायभूव । अदृश्याऽभूत् ॥ १६ ॥

हे क्रोण्डुकिमहर्षे! एवं प्रागुक्तप्रकारेण सुरथः क्षत्रियर्षभः श्रेष्ठःक्षत्रियः  
देव्याः भगवत्प्राः सकाशाद्गरंलब्ध्वाप्राप्य । इहराज्यमनुभूय ततःतनुंत्यक्त्वा  
सवर्णायां सूर्यादेवाज्जन्मसमासाद्य सम्प्राप्यसावर्णिर्नाममनूराजाभुविभविता ।  
कर्त्तरिभविष्यद्वनद्यतनेलुः । भविष्यतीत्यर्थः । मनुरित्ययंसप्तशतिकास्वरूपो-  
महामालामन्त्रः सर्वेगामयीयतां सर्वकामधुगिति सूचयितुमवसाने प्रायोजि  
भगवता श्रीमार्कण्डेयेनेतिनिन्दम् ॥ १७ ॥

समामिश्लोकाः

सन्तः सन्तुपरप्रयोजनकृतः कल्पद्रुमाभाः सदा स्वस्मिन्नेवपथिप्रवर्त्तन-  
पराः सत्कीर्त्तवश्चापरैः । अन्येनिस्पृहणाश्रितश्रुतिपथा दीव्यन्तु भव्याशयाः  
कोकन्तः कलहप्रियाः खलजना जायन्तु जीवन्तु ते ॥ १ ॥

सत्कृतिवाल्दिवारविम्बं सज्जनमानसराजसरोजम् । समिधकसेद-



भिपश्यदवश्य नश्यति दुर्जनवत्कुमुद तत् ॥ २ ॥

यावद्भूमिमुदित्वरद्युतिमणिध्रेणिस्फुरन्मूढसु ( यत् ) कूत्कारपयोधिकानन  
गिरिवातोहृत्सत्फलम् । धत्तेशेपमिवाहिमद्भुनवघास्यस्थीकृताशेषमीस्ताव 'च्छा  
न्ननवी' तदा जयतु च श्रीघण्डिकादीपिका ॥ ३ ॥

इति श्रीमाकण्डेयपुराणे श्रीराजाधिराजतोमरान्वय श्रीमदुद्धरणात्मज  
शान्तनुश्चर्यवर्तिविरचिताया देवामाहात्म्यटीकाया देवीमाहात्म्यं  
नाम त्रिनवतितमोऽध्याय ॥ ६३ ॥

समाप्तं शान्तनवीटीका, सप्तशतिकाया ।

अपरं पुस्तकं ग्रीक्ष्ण शोभनाय सदा बुद्धे । हीनाधिके स्वरैवर्णैरस्माक दूषणसदा

## चतुर्नवतितमोऽध्यायः

### रौच्यमन्वन्तरवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

सावर्णिकमिदं सम्यक् प्रोक्तं मन्वन्तरं तव । तथैव देवीमाहात्म्यं महिषासुरघातनम्  
उत्पत्तयश्च या देव्यामातृणाञ्च महाहवे । तथैव सम्भवो देव्याश्चामुण्डाया यथाभवः  
शिवदूत्याश्च माहात्म्यं धधः शुम्भनिशुम्भयोः । रक्तबीजयश्चैव सर्वमेतत्तवोदितम्  
श्रूयतां मुनिशार्दूल! सावर्णिकमथापरम् । दक्षपुत्रश्च सावर्णो भावी यो नवमो मनुः

कथयामि मनोस्तस्य ये देवा मुनयो नृपाः ।

पारामरीधिभर्गाश्च सुधर्माणस्तथा सुराः ॥ ५ ॥

एते त्रिधा भविष्यन्ति सर्वे द्वादशका गणाः ।

तेषामिन्द्रो भविष्यस्तु सहस्राक्षो महाबलः ॥ ६ ॥

साम्प्रतं कार्तिकेयो यो बह्निपुत्रः पृथाननः ।

अद्भुतो नाम शक्रोऽसौ भावी तस्यान्तरे मनोः ॥ ७ ॥

मैधातिथिर्वसुः सत्यो ज्योतिष्मान् द्युतिमांस्तथा ।

सप्तम्योऽन्यः सवलस्तथान्यो हव्यवाहनः ॥ ८ ॥

धृष्टकेतुर्वहकेतुः पञ्चहस्तो निरामयः । पृथुश्च वास्तथार्धिष्मान् भूधरिन्द्रो बृहद्भ्यः

एते नृपसुतास्तस्य दक्षपुत्रस्यैवै नृपाः । मनोस्तु दशमस्यान्यच्छृणु मन्वन्तरं द्विज!

मन्वन्तरेष्वदशमेव ह्यपुत्रस्य श्रीमतः ॥ सुखासीनानि रुद्धाश्च त्रिप्रकाराः सुराः स्मृताः

शतसङ्ख्या हि ते देवा भविष्या भाविनो मनोः ।

यत् प्राणिनां शतं भावि तद्देवानां तदा शतम् ॥ १२ ॥

शान्तिरिन्द्रस्तथा भावी सर्वरिन्द्रगुणैर्युतः ।

सप्तर्षी मन्वन्तरे विनोप नं ते विनोपि नै



## पञ्चनवतितमोऽध्यायः

रुचिसमुपाख्यानेरुचिनापितृणांसम्वादवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

रुचिःप्रजापतिः पूर्वं निर्ममो निरहङ्कृतः ।

अत्रस्तो मितशायी च अन्नार पृथिवीमिमाम् ॥ १ ॥

अनग्निमनिकेतं तमेकाहारमनाश्रमम् । विमुक्तसङ्गं तं दृष्ट्वा प्रोचुस्तत्पितरो मुनिम्

पितर ऊचुः

वत्स ! कस्मात्त्वया पुण्यो न कृतो दारसङ्ग्रहः ।

स्वर्गापवर्गहेतुत्वाद् वन्द्यस्तेनाऽनिशं विना ॥ ३ ॥

गृही समस्तदेवानां पितृणाञ्च तथार्हणाम् ।

ऋषीणामतिथीनाञ्च कुर्वन् लोकानुपाश्रुते ॥ ४ ॥

स्वाहोच्चारणतो देवान् स्वधोच्चारणतः पितृन् ।

विभजत्यन्नदानेन भूयाद्यानतिथीनपि ॥ ५ ॥

सत्त्वं देवाद्गृणाद्व्यन्धं वन्द्यमस्मद्गृणादपि । अवाप्रोपि मनुष्येभ्यो भूतेभ्यश्च दिनेदिने

अनुत्पाद्य सुतान् देवानसन्तर्प्य पितृंस्तथा ।

अकृत्वा च कथं मीढ्यात् सुगतिं गन्तुमिच्छसि ॥ ७ ॥

ऋशमेकैककं पुत्र ! मन्यामोऽत्र भवेत्तव । मृतस्य नरकं तद्वत् क्लेशमेवान्यजन्मनि

रुचिरुवाच

परिग्रहोऽतिदुःखाय पापायाधोगतिस्तथा । भवत्पतोमया पूर्वं न कृतो दारसङ्ग्रहः

आत्मनः सङ्गमो योऽयं क्रियते मुनियन्त्रणात् ।

स मुक्तिहेतुर्न भवत्यसावपि परिग्रहात् ॥ १० ॥

प्रक्षाल्यतेऽनुदिवसं यदात्मा निष्परिग्रहैः ।

ममन्यपट्टुदिग्धोऽपि चित्ताम्भोभिर्व्यंरं हि तन् ॥ ११ ॥

अनेकमवसम्भूतं कर्मपट्टुद्वितोनुधे ।

आत्मासदासनातोयं प्रक्षाल्यो नियतेन्द्रियै ॥ १२ ॥

पितर ऊचुः

युक्तं प्रक्षालनं कर्तुंमात्मनो नियतेन्द्रियै ।

किन्तु मोक्षाय मार्गोऽयं यत्र त्वं पुत्र ! घतसे ॥ १३ ॥

परन्तु दानैरशुभं नुद्यतेऽभिमन्थिते । पश्येस्तयोपमोर्गद्यं पूर्वकर्मशुभाशुभैः ॥१४॥

एवं न यन्धोमवतिरुच्यते करुणात्मकम् । न च यन्त्रायतन्कर्ममयं यनभिमन्थितम्

पूर्वकर्मकृतमोगे क्षीयतेऽहर्निशतथा । सुप्रदुःखात्मकैरेवंसुपुण्यपुण्यात्मककृष्णाम्

एवं प्रक्षालयते प्राक्षिरात्मावन्धैश्च रक्षयते । न ह्येवमवियेकेन पापपङ्केन गृह्यते ॥

रघिरुवाच

अविद्यापठ्यतेवेदेकममार्गं पिनामहा । तत्कवकर्मणोमार्गं भवन्तोवोत्रयन्तिमाम्

पितर ऊचुः

अविद्या सत्येमेवेत्कर्म नैतन्मृगा घघ । किन्तु विद्यापरिप्राप्तीडेनु कर्म न सत्यं

विहिताकरणात् पुम्भिरत्मद्विं क्रियते तु य ।

सद्यमो मुक्तये सोऽन्ते प्रयुताऽधोगतिप्रद ॥ २० ॥

प्रक्षालयामीति भवान् वत्सात्मानन्तु मन्यते ।

विहिताकरणोद्भूतै पापैस्त्व तु चिदहसे ॥ २१ ॥

अविद्याप्युपकाराय विषयजायते नृणाम् ।

अनुष्ठिताभ्युपायेन बन्धायान्वापि नो हि सा ॥ २२ ॥

तस्माद्वन्स । कुरुष्व त्वं विधिषद्धारसङ्ग्रहम् ।

मा जन्म विक्लं तेऽस्तु असम्प्राप्य तु लौकिकम् ॥ २३ ॥

रघिरुवाच

वृद्धोऽहंसाग्रनकोमपितरसम्प्रदास्वति । माय्यां तथाद्विद्विह्यदुष्करोदारसग्रह

पितर ऊचुः

अस्माकंपतनंवत्स! भवतश्चाप्यधोगतिः । नूनंभाविभवित्रीचनाभिनन्दसिनोवचः

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वा पितरस्तस्य पश्यतो मुनिसत्तम !।

चमृदुः सहसाऽदृश्या र्दीपा घानाहता इव ॥ २६ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे रुद्रयुपाख्यानवर्णनंतामपञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

पठणवतितमोऽध्यायः

ब्रह्मरुचिसम्वादेपितृस्तोत्रवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

सतेन पितृवाक्येन भृशमुद्विग्नमानसः । कन्यामिलामीविप्रर्षिःपरिवन्नाम मेदिनीम्

कन्यामलभमानोऽसौ पितृवाक्चान्निदीपितः ।

चिन्तामवाप महतीमतीवोद्विग्नमानसः ॥ २ ॥

किं करोमि क्व गच्छामि कथं मे दारस्तल्ग्रहः ।

क्षिप्रं भवेत् मत्पितृणां स घाम्युदयकारकः ॥ ३ ॥

इतिचिन्तयतस्तस्यमतिर्जाता महात्मनः । तपसाराधयाम्येनं ब्रह्माणं कमलोद्भवम्

ततोवर्षशतं दिव्यं तपस्तेपे स वेधसः । आराधनाय स तदा परं नियममास्थितः

ततःस्वं दर्शयामास ब्रह्मा लोकपितामहः ।

उवाच तं प्रसन्नोऽरुमीत्युच्यतामभिवाञ्छितम् ॥ ६ ॥

ततोऽसौ प्रणिपत्याह ब्रह्माणं जगतो गतिम् ।

पितृणां घञ्चनात् तेन यत्कर्तुमभिवाञ्छितम् ॥

ब्रह्मा चाह रुचिं चिप्रं श्रुत्वा तस्याभिवाञ्छितम् ॥ ७ ॥

## ब्रह्मोवाच

प्रजापतिस्त्व भविता स्रष्टव्या भवता प्रजा ।  
 सृष्ट्वा प्रजा सुतान् विप्र ! समुपाद्य क्रियास्तथा ॥ ८ ॥  
 कृत्वा हताधिकारस्त्र ततःसिद्धिमवाप्स्यसि ।  
 न त्व तथोक्तं पितृभिः कुरु दारपरिग्रहम् ॥ ९ ॥  
 कामञ्ज्वेममभिध्याय क्रियता पितृपूजनम् ।  
 त एव तुणाः पितरः प्रदास्यन्ति तवेषितान् ।  
 पत्नीं सुताञ्च मन्तुणाः किञ्च दद्युः पितामहा ॥ १० ॥

## धीमार्कण्डेय उवाच

तृपेवघ्नन धृत्वा ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मन । नद्यादिविके पुत्रिन्ने चकारपितृतर्पणम्  
 तुणायचपितृन्विप्र ! स्तयैरेभिस्तथादृत । एकाग्र प्रयतोभूत्वाभक्तिनभ्रात्मकन्धर  
 यच्चिरवाच

नमस्येऽहं पितॄन् धादे ये वसन्त्यधिदेवता ।  
 देवैरपि हि तर्प्यन्ते ये च धादे स्वधोत्तरैः ॥ १३ ॥  
 नमस्येऽहं पितॄन् स्वर्गं ये तर्प्यन्ते महर्षिभिः ।  
 धादैनतोमयैभक्त्या भुक्तिमुक्तिमभीप्सुभिः ॥ १४ ॥  
 नमस्येऽहं पितॄन् स्वर्गं सिद्धाः सन्तर्पयन्ति यान् ।  
 धादेषु दिव्यैः सकलैरुपहारैरनुत्तमैः ॥ १५ ॥  
 नमस्येऽहं पितॄन् भक्त्या येऽर्चयन्ते गुह्यैरपि ।  
 तन्मयत्वेन षाञ्छद्भिर्भुक्तिमाल्यग्निकीं पराम् ॥ १६ ॥

नमस्येऽहं पितॄन्मर्त्यैरर्चयन्तेभुवि येमदा । धादेषुधृदयाभीष्टलोकप्राप्तिप्रदायिनः  
 नमस्येऽहं पितॄन् विप्रैरर्चयन्ते भुवि ये मया ।  
 षाञ्छिताभीष्टलाभाय प्राजापत्यप्रदायिनः ॥ १८ ॥  
 नमस्येऽहं पितॄन् ये वै तर्प्यन्तेऽरप्यवासिभिः ।

वन्यैः श्राद्धैर्यथाहारैस्तपोनिधूतकिल्बिषैः ॥ १६ ॥

नमस्येऽहंपितॄन् विप्रैर्नैष्टिकव्रतधारिभिः ।

ये संयतात्मभिर्नित्यं सन्तर्प्यन्ते समाधिभिः ॥ २० ॥

नमस्येऽहं पितॄन् श्राद्धैः राजन्यास्तर्पयन्ति यान् ।

कव्यैरशेषैर्विधिवल्लोकत्रयफलप्रदान् ॥ २१ ॥

नमस्येऽहं पितॄन् वैश्यैरर्च्यन्ते भुवि ये सदा ।

स्वकर्माभिरतैर्नित्यं पुष्पधूपान्नवारिभिः ॥ २२ ॥

नमस्येऽहं पितॄन् श्राद्धैर्यै शूद्रैरपि भक्तितः ।

सन्तर्प्यन्ते जगत्यत्र नाम्ना ख्याताः सुकालिनः ॥ २३ ॥

नमस्येऽहं पितॄन् श्राद्धैः पाताले ये महासुरैः ।

सन्तर्प्यन्ते स्वधाहारास्त्यक्तदम्भमदैः सदा ॥ २४ ॥

नमस्येऽहंपितॄन् श्राद्धैरर्चयन्ते ये रसातले । भोगैरशेषैर्विधिवन्नागैः कामानभीप्सुभिः

नमस्येऽहं पितॄन् श्राद्धैः सर्पैः सन्तर्पितान्सदा ।

तत्रैव विधिवन्मन्त्रभोगसम्पत्समन्वितैः ॥ २६ ॥

पितृन्नमस्ये निवसन्ति साक्षात् ये देवलोके च तथान्तरीक्षे ।

महीतले ये च सुरादिपूज्यास्ते मे प्रतीच्छन्तु मयोपनीतम् ॥ २७ ॥

पितृन्नमस्ये परमात्मभूता ये वै विमाने निवसन्ति मूर्त्ताः ।

यजन्ति यानस्तमलैर्मनोभिर्योगीश्वराः क्लेशविमुक्तिहेतून् ॥ २८ ॥

पितृन्नमस्ये दिवि ये च मूर्त्ताः स्वधाभुजः काम्यफलाभिसन्धौ ।

प्रदानशक्ताः सकलेप्सितानां विमुक्तिदा येऽनभिसंहितेषु ॥ २९ ॥

तृप्यन्तु तेऽस्मिन् पितरः समस्ता इच्छावतां ये प्रदिशन्ति कामान् ।

सुतत्वमिन्द्रत्वमतोऽधिकं वा सुतान् पशून् स्वानि बलं गृहाणि ॥ ३० ॥

सोमस्य ये रश्मिषु येऽर्कचिम्बे शुक्ले चिमाने च सदा वसन्ति ।

तृप्यन्तु तेऽस्मिन् पितरोऽन्नतोयैर्गन्धादिना पृष्टिमितो व्रजन्त ॥ ३१ ॥



येषां हृतेऽग्रौ हृषिग च नृमिर्वे भुवने विप्रशरीरमस्थौ ।

ये पिण्डदानेन मुदं प्रयान्ति नृप्यन्तु तेऽस्मिन् पितरोऽग्रतोये ॥ ३२ ॥

ये सङ्गिमासेन सुरैरुत्सार्ष्टे हृषिस्तिर्दिश्यमनोहरैश्च ।

कात्नेन शाक्रेण महर्षिष्यै सम्प्रीणितान्ते मुदमथ यान्तु ॥ ३३ ॥

कथ्यान्यशेषाणि च यान्यभीष्टान् रतीय तेषामभरार्थितानाम् ।

तेषान्तु सान्निध्यमिहास्तु पुण्यगन्धाधमोऽशेषेषु मया हृतेषु ॥ ३४ ॥

दिने दिने ये प्रतिशृङ्खलेऽथा मामान्तपूण्या भुषि येऽण्कामु ।

ये पत्न्यरान्तेऽभ्युदये च पूज्या प्रयान्तु ते मे पितरोऽग्र नृत्तिम् ॥ ३५ ॥

पूज्या द्विजाना कुमुदेन्दुभासो ये हृषियाणाञ्च नवाकचर्णा ।

तथा विशा ये कनकाचदाता नीलीनिभा शृङ्खलनस्थ ये च ॥ ३६ ॥

तेऽस्मिन् समन्ता मम पुण्यगन्धधूपाग्रतोयादिनिवेदनेन ।

तथाग्निहामेन च यान्तु नृत्ति मदा पितृभ्य प्रणतोऽस्मि तेभ्य ॥ ३७ ॥

ये द्वेषपूज्यान्यत्रिनृमिहेतारक्षन्ति कथ्यानि शुभाहुतानि ।

तृणाश्च ये भूतिगृजो भवन्ति नृप्यन्तु तेऽस्मिन् प्रणतोऽस्मि तेभ्य ॥ ३८ ॥

रक्षामि भूतान्यसुरास्तथोमान् तिनशयन्तस्त्वशिव प्रचानाम् ।

आद्या सुराणाममरेशू यास्तृप्यन्तु तऽस्मिन् प्रणतोऽस्मि तेभ्य ॥ ३९ ॥

अग्निष्वात्ता घर्हिषद् आन्यपा सोपमास्तथा ।

घनन्तु नृत्ति धाद्वेऽस्मिन् पितरस्तर्पिता मया ॥ ४० ॥

अग्निष्वात्ता पितृगणा प्राचीं रक्षन्तु मे दिशम् ।

तथा घर्हिषद् यान्तु याम्या ये पितर स्मृता ॥ ४१ ॥

प्रतीचीमाज्यपास्तद्रुदीचीमपि सोमपा । रक्षोभूतपिशाचेभ्यस्तर्पेवासुरद्वेषत  
सर्वतश्चाधिपस्तेषामोरक्षाकरोतुमे । विम्बोविम्बभुगाराध्योधम्मोधिष्यशुभान्त

भूतिदो भूतिङ्भूति पितृणा ये गणा नय ।

कल्याण कल्याता कत्ता कल्य कल्यतराध्वय ॥ ४४ ॥

कल्यताहेतुरनघः पडिमे ते गणाः स्मृताः । चरोवरेण्योचरदः पुष्टिदस्तुष्टिदस्तथा  
 विश्वपातातथाध्रातासप्तैवैतेतथागणाः।महान्महात्मा महितोमहिमावान्महाबलः  
 गणाः पञ्चतथैवैतेपितृणां पापनाशनाः । सुखदोधनदश्चान्यो धर्मदोऽन्यश्चमूतिदः  
 पितृणां कथ्यते घैतत्तथा गणचतुष्टयम् । एकत्रिंशत्पितृगणा यैर्व्याप्तमखिलंजगत्  
 ते मेऽनुवृत्तास्तुष्यन्तु यच्छन्तु च सदा हितम् ॥ ४८ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे रुच्युपाख्याने ब्रह्मोपदेशात्पितृस्तोत्रवर्णनं नाम  
 षण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

## सप्तनवतितमोऽध्यायः

### रुचयेपितृवरप्रदानवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

एवन्तु स्तुवतस्तस्य तेजसोराशिरुच्छ्रितः । प्रादुर्बभूव सहसागगनव्याप्तिकारकः  
 तद् दृष्ट्वा सुमहत्तेजः समासाद्य स्थितं जगत् ।  
 जानुभ्यामवनिं गत्वा रुचिः स्तोत्रमिदं जगौ ॥ २ ॥

रुचिरुवाच

अर्षितानाममूर्त्तानां पितृणां दीप्ततेजसाम् ।  
 नमस्यामि सदा तेषां ध्यानितानां दिव्यचक्षुषाम् ॥ ३ ॥  
 इन्द्रादीनाञ्च नेतारो दक्षमारीषयोस्तथा ।  
 सप्तर्षीणां तथान्येषां तान्नमस्यामि कामदान् ॥ ४ ॥  
 मन्वादीनां मुनीन्द्राणां सूर्याश्चन्द्रमसोस्तथा ।  
 तान्नमस्याम्यहं सर्वान् पितृनप्सूद्धावपि ॥ ५ ॥  
 नक्षत्राणां ग्रहाणाञ्च वाञ्छ्वग्न्योर्नभसस्तथा ।

धावापृथिव्योश्च तथा नमस्यामि हृताञ्जलि ॥ ११ ॥

देव सौंषाजनिन् धमयंलोकनमस्त्वान् । अक्षयस्वमदादानुत्तमस्येऽहं जनाञ्जलि  
प्रवापते वक्ष्येपाय सोम्रायवक्ष्यायध । योगेश्वरेभ्यश्च मदानमस्यामि हृताञ्जलि  
नमो गणेश्य सतस्यस्यया लोऽनुमतसु । स्वशम्भुने नमस्यामिऽद्यगे योगेषुपे  
सोम्राधारान् पितृगणान् योगमूर्त्तिधरास्तथा ।

नमस्यामि तथा माम् पितर जगतामहम् ॥ १० ॥

अग्निर्याम्येवाग्न्याध्रमस्यामि पितृनहम् । अश्रोममय विश्वं यत् एतदशोक  
ये नु तेवमि ये चैते सोमस्याग्निमृतय । जगत्स्वरूपिणश्चैव तथा प्रदस्वरुपिण  
तेभ्योऽखिलेभ्यो योगिभ्य पितृभ्यो यतमानम् ।

नमो नमो नमस्ते मे प्रसीदन्तु स्वधामुज ॥ १३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

एष स्तुतास्त्वत्स्नेन तेवमामुनिमत्तम् । निश्चक्रमुस्तेपितरो माम् प्रन्तोदिसोदा  
त्रिप्रेक्षितञ्च यत्तेन पुष्पगन्धानुलेपनम् । तद्भूयितानथमतान् दृश्ये पुत्रस्थितान्  
प्रणिपत्य पुनश्च प्रापुनरेव हृताञ्जलि । नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यमित्याह पृथगाहृत  
तत् प्रमन्नापितरस्तमूधुमुनिमत्तम् । धरवृणाप्येति स तानुवाचानतकन्धर ॥

रुचिरवाच

साम्प्रत सगकृत्यमादिऽ ब्रह्मणा मम ।

सोऽह पत्नीममीप्सामि धन्या दिव्या प्रजायताम् ॥ १८ ॥

पितर उचुः

अत्रैव सद्य एवमेव मन्वन्तिमनोरमा । तस्याश्चपुत्रो भविता भवतोमनुरुत्तम ॥  
मन्वन्तराधियो धीमास्त्वभ्राम्नेवोपलक्षित ।

श्वे ! सौच्य इति श्यार्ति यो यान्यति जग श्वे ॥ २० ॥

तस्यापि बहव पुत्रा महाबलपराक्रमा ।

भविष्यन्ति महात्मान् पृथिवीपरिपालका ॥ २१ ॥

त्वञ्च प्रजापतिर्भूत्वा प्रजाः सृष्ट्वा चतुर्विधाः ।

क्षीणाधिकारो धर्मज्ञ! ततः सिद्धिमवाप्स्यसि ॥ २२ ॥

स्तोत्रेणानेन च नरो योऽस्मांस्तोष्यति भक्तितः ।

तस्य तुष्टा वयं भोगानात्मज्ञानं तयोत्तमम् ॥ २३ ॥

शरीरारोग्यमर्थञ्च पुत्रपौत्रादिकं तथा ।

वाञ्छद्भिः सततं स्तव्याः स्तोत्रेणानेन वै यतः ॥ २४ ॥

श्राद्धे च य इमं भक्त्या अस्मत्प्रीतिकरं स्तवम् ।

पठिष्यति द्विजाग्रा ( त्रया ) णां भुङ्गतां पुरतः स्थितः ॥ २५ ॥

स्तोत्रश्रवणसम्प्रीत्या सन्निधानेपरे कृते । अस्माकमक्षयंश्राद्धंतद्भविष्यत्यसंशयम्  
यद्यप्यश्रोत्रियं श्राद्धं यद्यप्युपहतं भवेत् ।

अन्यायोपात्तचित्तेन यदि वा कृतमन्यथा ॥ २७ ॥

अश्राद्धार्हैरुपहतैरुपहारैस्तथा कृतम् । अकालेऽप्यथवाऽदेशे विधिहीनमथापिवा  
अश्रद्धया वापुरुषैर्दम्भमाश्रित्यवाकृतम् । अस्माकंतृनयेश्राद्धं तथाप्येतदुदीरणात्  
यत्रैतत्पठ्यते श्राद्धे स्तोत्रमस्मत्सुखावहम् ।

अस्माकं जायते तृप्तिस्तत्र द्वादशवार्षिकी ॥ ३० ॥

हेमन्ते द्वादशाब्दानि तृप्तिमेतत् प्रयच्छति ।

शिशिरे द्विगुणाब्दांश्च तृप्तिस्तोत्रमिदं शुभम् ॥ ३१ ॥

वसन्ते षोडशसमास्तृतये श्राद्धकर्मणि । ग्रीष्मे षण्णोडशैवैतत्पठितं तृप्तिकारकम्  
चिकलेऽपि कृते श्राद्धे स्तोत्रेणानेनसाधितेः । वर्षासुतृप्तिरस्माकमक्षयाजायतेरुचे!

शरत्कालेऽपि पठितं श्राद्धकाले प्रयच्छति ।

अस्माकमेतत्पुरुषैस्तृप्तिं पञ्चदशाब्दिकीम् ॥ ३४ ॥

यस्मिन् गृहे च लिखितमेतत्तिष्ठति नित्यदा ।

सन्निधानं कृते श्राद्धे तत्रास्माकं भविष्यति ॥ ३५ ॥

तस्मादेतत्त्वयाश्राद्धे विप्राणां भुङ्गतां पुरः ।

प्राथर्षीयमहाभाग'भस्माक'पुण्ड्रितुक्म् ॥ ३६ ॥

इति धर्माकण्डेयपुराणे रौच्ये मन्वन्तरे पितृवरप्रदाननामस्तनत्र  
तितमोऽध्याय ॥ १७ ॥

अष्टनवतितमोऽध्यायः

रुचिनामालिनीपरिणयवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

ततस्तस्मात्प्रदीप्तमध्यात्ममुत्तम्या मनीरमा ।

प्रम्लोधा नाम तन्वद्गी तन्मर्मापे घराप्सरा ॥ १ ॥

साधोवाचमहात्मानर्षिमुमधुराक्षरम् । प्रथयाचतनासुब्रू 'प्रम्लोधावैषराप्सरा  
अनीयरूपिणी कन्याभ'सुनातपताघर' । जातायकृष्णपुत्रेण पुष्करेण महात्मना ॥  
ता गृहाण मया दत्ता भार्गवीं धरवर्णिनीम् ।

मनुमहामतिस्तम्यां ममुत्प स्यति ते सुत ॥ ४ ॥

मार्कण्डेय उवाच

तयेति तेन साऽप्युक्ता तस्मात्तोयाद्दपुष्पनीम् ।

उज्जहार तत' कन्या मालिनी नाम नामत ॥ ५ ॥

नयाश्च पुण्ड्रि तस्मिन् स रुचिमुनिस्तम ।

जग्राह पाणि'विधिब्रत समानास्य महामुनीम् ॥ ६ ॥

तस्या तस्य सुतो जज्ञे महावीर्यो महामति ।

रौच्योऽभवन् पितृनाम्ना ख्यातोऽत्र वसुधातले ॥ ७ ॥

तस्य मन्वन्तरे देवास्तया सप्तपथश्च ये । तनयाश्च नृपाश्चैवने सम्यक् कथितास्तव  
धर्मवृद्धिस्तयारोग्यधनधान्यसुतोद्गम' । नृणा भवन्धमन्दिग्धमस्मिन्मन्वन्तरेध्रुते

पितृस्तवं तथा श्रत्वा पितृणाञ्च तथा गणान् ।

सर्वान् कामानवाप्नोति तत्प्रसादान्महामुने ॥ १० ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मालिनीपरिणयपूर्वकरौच्यमन्वन्तरसमाप्ति-  
वर्णनंनामाऽष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

## नवनवतितमोऽध्यायः

### भौत्यमनुसमुत्पत्तिवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

ततः परं तु भौत्यस्य समुत्पत्तिं निशामय ।

देवानृषींस्तथा पुत्रांस्तथैव वसुधाधिपान् ॥ १ ॥

बभूवाङ्गिरसः शिष्यो भृतिर्नाम्नातिकोपनः ।

घण्डशापप्रदोऽल्पेऽर्थे मुनिरागस्यसौम्यवाक् ॥ २ ॥

तस्याश्रमे मातरिश्वा न ववाचतिनिष्ठुरम् ।

नातितापं रविश्चक्रे पञ्जन्त्यो नातिकर्दमम् ॥ ३ ॥

नातिशीतञ्च शीतांशुः परिपूर्णोऽपि रश्मिभिः ।

घकार भीत्या वै तस्य कोपनस्यातितेजसः ॥ ४ ॥

ऋतवश्च क्रमंत्यक्त्वावृक्षेष्वाश्रमजन्मसु । तस्यपुष्पफलश्चक्रुराज्ञयासार्चकालिकम्  
ऊहुरापश्च छन्देन तस्याश्रमसमीपगाः । कमण्डलुगताश्चैव तस्य भीता महात्मनः  
नातिक्लेशसहोचिप्रसोऽभवत्कोपनोभृशम् । अपुत्रश्चमहाभागःसतपस्यकरोन्मनः  
पुत्रकामो यताहारःशीतवातानलाहतः । तपस्रामिविचिन्त्येतितपस्येवमनोदध्रे  
तस्येन्दुनातिशीतायनातितापायभास्करः । अभवन्मातरिश्वाच्चवर्षोनातिमहामुने  
भापीड्यमानो द्वन्द्वैश्च सभूतिर्मुनिसत्तमः । अनवत्प्याभिलाषन्तपसः सन्यवर्त्तत

तस्य भ्राता सुप्रथाऽभूयते तेनाभिमन्त्रित ।

यियासु शान्तिनामान शिष्यमाह महामतिम् ॥ ११ ॥

प्रशान्तमक्षप्रतिम विनीत गुरुमणि । सदोद्युतं शुभाचारमुदारं मुनिमसामम् ॥  
भूतिम्वाच

अहं यज्ञमिष्यामिभ्रातु शान्तेसुप्रथम । तेनाहृतस्य याचेद्यत्कलव्यभृशुचतन्  
प्रति जागरणं बह्वैरत्वया कार्यममाधमे । तथातथापश्येन यथाग्निं शमयेत्  
माकण्डेय उवाच

इत्याज्ञाप्य तथे युक्तोगुरु शिष्येणशान्तिना । जगामपहं तस्मिन्नाहृत सयरीयमा  
स च शान्तिवनाद्यावममि पुष्पफलादिभ्यम् ।

उपानयति भृत्यर्थं गुरोस्तस्य महात्मन ॥ १२ ॥

अन्यच्च कुर्वते कत्र गुरुमक्तिप्रशानुग । प्रशान्तस्तावदत्तये योऽमीभूतिपरिग्रह  
त दृष्ट्वा सोऽनठ शान्त शान्तिरन्यन्तदु चित् ।

भीतश्च भूतेरुधा चिन्तामाप महामति ॥ १८ ॥

किं करोमि कथं वात्रमवितागमत्र गुरो । मयाद्यत्रनिवतत्र किं कृते मुञ्चतभवत्  
प्रशान्ताग्निमिभ्रिष्य यदि पश्यतिमेगुरु । ततोमाचिपमेहप्रव्यमनेसत्रियोद्यति  
यत्तन्वमग्निमब्राह्मग्निस्थानेकरोमिनन् । सर्वप्रवक्ष्येभस्मसोऽवश्यमाकरिष्यति  
सोऽह पापो गुरोस्तस्य निमित्त कोपशापयो ।

तवात्मानं न शोचामि यथा पापं कृतं गुरो ॥ २२ ॥

दृष्ट्वा प्रशान्तमन्त्रनूत शस्यप्रतिमागुरु । अथवापापकं क्रुद्धस्तथावीर्योहिमद्विज  
यस्य प्रभावाद्बिम्बन्तो देवास्तिष्ठन्ति शासने ।

कृतागतसस मा युक्त्या कया नाधययिष्यति ॥ २४ ॥

माकण्डेय उवाच

बहुत्रैव विचिन्त्याऽमी भीतस्तस्य सदा गुरो ।

ययी प्रतिमता ध्येष्ट शरणं जातवेदसम् ॥ २५ ॥

सर्वकारतदास्तोत्रं सप्तार्च्यं तजानसः । सर्वैकचित्तो मे दिन्यां न्यस्तजानुःकृताञ्जलिः  
शान्तिरुवाच

ओं नमः सर्वभूतानां साधनाय महात्मने । एकद्विपञ्चत्रिष्टयाय राजसूये, पडात्मने  
नमः समस्तदेवानां वृत्तिदाय सुवर्चसे । शुक्ररूपाय जगतामशेषाणां स्थितिप्रदः

त्वं मुखं सर्वदेवानां त्वया चतुर्भुवनान् हविः ।

प्रीणयत्यखिलान् देवान् त्वत्प्राणाः सर्वदेवताः ॥ २६ ॥

हुतं हविस्त्वग्न्यमलमेघत्वमुपगच्छति । ततश्च जलरूपेण परिणाममुपैतियत् ॥ ३०

तेनाखिलौपधीजन्मभवत्यनिलसारथे ॥ ओपधीमिरशेषाभिः सुखं जीवन्ति जन्तवः

चितन्वते नरा यज्ञान् त्वत्सृष्टास्वोपधीषु च ।

यज्ञैर्देवास्तथा दैत्यास्तद्द्रक्षांसि पावक ॥ ३२ ॥

आप्यायन्ते च ते यज्ञास्त्वदाधारा हुताशन ! ।

अतः सर्वस्य योनिस्त्वं बहो ! सर्वमयस्तथा ॥ ३३ ॥

देवता दानवा यज्ञा दैत्यागन्धर्वराक्षसाः । मानुषाः पशवो वृक्षामृगपक्षिसरीसृपाः

आप्यायन्ते त्वया सर्वे सम्बर्धन्ते च पावक ! ।

त्वत्त एवोद्भवं यान्ति त्वग्न्यन्ते च तथा लयम् ॥ ३५ ॥

अपः सृजसि देव ! त्वं त्वमत्सि पुनरेव ताः ।

पच्यमानास्त्वया ताश्च प्राणिनां पुष्टिकारणम् ॥ ३६ ॥

देवेषु तेजोरूपेण कान्त्यासिद्धेष्ववस्थितः । विपरूपेण नागेषु वायुरूपः पतत्त्रिषु

मनुजेषु भवान् क्रोधो मोहः पक्षिमृगादिषु ।

अवष्टम्भोऽसि तरुषु काठिन्यं त्वं महीं प्रति ॥ ३८ ॥

जले द्रवः त्वं भगवान् जवरूपी तथाऽनिले ।

व्यापित्वेन तथैवाग्ने ! नभस्यात्मा व्यवस्थितः ॥ ३९ ॥

त्वमग्ने ! सर्वभूतानामन्तश्चरसि पालयन् । त्वमेकवाहुः कवयस्त्वामाहुस्त्रिविधं पुनः

त्वामष्टधा कल्पयित्वा यज्ञमाद्यमकल्पयन् । त्वया सृष्टमिदं विश्वं च दन्ति परमर्षयः



तस्य भ्रान्ता सुवर्चाऽमृद्यते तेनाग्निमन्त्रित ।

धियासु शान्तिनामान शिष्यमाह महामतिम् ॥ ११ ॥

प्रशान्तमक्षप्रतिम धिनीत गुरुकर्मणि । सद्बोधक शुभाचारमुदार मुनिमत्तमम्  
भूतिश्वाध

अह यज्ञमिष्यामिभ्रान्तु शान्तेतुयधम । तेनाहृतस्त्रयाचेद्व्यत्कसंष्यग्गुण्यत  
प्रति जागरण चह्नेस्त्वया कार्यममाश्रमे । तथातथाप्रशनेन यथाग्निन शमयने  
माकण्डेय उवाच

इत्याज्ञाप्य तथे युक्तोगुरु शिष्यणशान्तिता । जगामयज्ञ तन्नानुराहृत सपर्वीयम्  
स च शान्तिवनाद्यावत्समि पुष्पकलादिकम् ।

उपानयति भूयर्थं गुरोस्तस्य महात्मन ॥ १२ ॥

अन्यच्च कुर्वते कर्म गुरुमतिरशानुग । प्रशान्तस्तावदनतो योऽसौ भूतिपरिग्र  
त दृष्ट्वा सोऽनन्त शान्त शान्तिगत्यन्तदु खित ।

भीतश्च भूतयद्गुधा चिन्तामाप महामति ॥ १८ ॥

किं करोमि कथं वाप्रभवितामम गुरो । मवाद्यरतिपत य किं हने सुकृतभं  
प्रशान्ताग्निमिभ्रिष्टय यदि पश्यतिमेगुरु । ततोमाधिपमेहाद्यत्र्यम्नेसधियोश्च  
यस्यमग्निमत्राहमग्निन्धानैरुमिन्तम् । सर्वप्रत्यक्षदृग्भस्त्रसोऽवश्यमाकरिष्य  
सोऽह पापो गुरोस्तस्य निमित्त कोपशापयो ।

तथामान न शोचामि यथा पापं हृत गुरो ॥ २२ ॥

दृष्ट्वा प्रशान्तमन्तून शम्पतिमोगुरु । अथशापावकावृद्धन्तवाचीर्योहिमठि  
यस्य प्रमायाद्विम्बन्ता देवास्तिष्ठन्ति शामने ।

हृतागत स मां गुपत्या कथा नाधरयिष्यति ॥ २४ ॥

माकण्डेय उवाच

यद्गुपैवं विचिन्त्याऽमी भीतस्तरुय मदा गुरो ।

यर्था मतिमतां धष्ट शरणं जातवेदसम् ॥ २५ ॥

सघकारतदास्तोत्रं सप्तार्धयंतजानसः । सर्वैकचित्तोमेदिन्यांन्यस्तजानुःकृताञ्जलिः

शान्तिख्याद्य

ओं नमः सर्वभूतानां साधनाय महात्मने । एकद्विपञ्चत्रिष्टयायराजसूये, पञ्चात्मने

नमः समस्तदेवानां वृत्तिदाय मुयर्चसे । शुक्ररूपाय जगतामशेषाणां स्थितिप्रदः

त्वं मुखं सर्वदेवानां त्वयान्तुं भगवान् हविः ।

प्रीणयत्यग्निलान्देवान् त्वत्प्राणाः सर्वदेवताः ॥ २६ ॥

हुतं हविस्त्वज्यमलमेवत्वमुपगच्छति । ततश्चजलरूपेणपरिणाममुपैतियन् ॥ ३०

तेनाखिलौषधीजन्मभवत्यनिलसारथे ! ओषधीमिरशेषाभिःसुग्वंजीवन्तिजन्तवः-

वितन्वते नरा यजान् त्वत्सृष्टास्त्रोषधीषु च ।

यद्यैर्देवास्तथा दैत्यास्तद्द्रक्षांसि पावक ! ॥ ३२ ॥

आप्यायन्ते च ते यजास्त्वदाधारा हुताशन ! ।

अतः सर्वस्य योनित्वं वहे ! सर्वमयस्तथा ॥ ३३ ॥

यता दानवा यजा दैत्यागन्धर्वराक्षसाः । मानुषाःपशवोवृक्षासृगपक्षिसरीसृपाः-

आप्यायन्ते त्वया सर्वे सम्बर्धन्ते च पावक ! ।

त्वत्त पशोद्भवं यान्ति त्वज्यन्ते च तथा लयम् ॥ ३५ ॥

अपः सृजसि देव ! त्वं त्वमत्सि पुनरेव नाः ।

पच्यमानास्त्वया ताश्च प्राणिनां पुष्टिकारणम् ॥ ३६ ॥

दैवेषु तेजोरूपेण कान्त्यासिद्धेष्ववस्थितः । विपरूपेण नागेषु वायुरूपःपतत्रिषु-

मनुजेषु भवान् क्रोधो मोहः पक्षिमृगादिषु ।

अचष्टम्भोऽसि तरुषु काष्ठिन्यं त्वं महीं प्रति ॥ ३८ ॥

जले द्रव्यः त्वं भगवान् जवरूपी तथाऽनिले ।

व्यापित्वेन तथैवाग्ने ! नभस्यात्मा व्यचस्थितः ॥ ३९ ॥

त्वमग्ने!सर्वभूतानामन्तश्चरसि पालयन् । त्वमेकयाहुःकवयस्त्वामाहुस्त्रिचिध्रंपुनः-

त्वामष्टधा कल्पयित्वा यज्ञमाद्यमकल्पयन् । त्वयासृष्टमिदं विश्वं चदन्ति परमर्षयः-

त्वामृते हि जगत् सर्वं सद्यो नश्येद्बुधुताशन' ।

तुभ्यं हृत्वा ठिज पूजां स्वयमंविहिता गतिम् ॥ ४२ ॥

प्रयाति हृष्यकष्याद्यै स्वधाम्न्याहाम्बुर्दीरणात् ।

परिणामात्मवीण्या हि प्राणिनाममराहित' ॥ ४३ ॥

दहन्तिसर्वभूतानि ततो निष्कम्पहेतव । जातयेदस्मन्वेत्यं चिञ्चस्मृष्टिमहाद्युते ! ॥

तथैव घैद्विक्त्रम सर्वभूतात्मक जगत् । नमस्तेऽनल पिङ्गाक्ष'नमस्तेऽस्तुदुताशन'

पायकाद्य नमस्तेऽस्तु नमस्तेहृष्यवाहन । त्वमेवभुक्तपीतानां पाषनाद्विभ्यपायक

शस्यानां पायकर्ता त्व पोष्टा त्वं जगतस्तथा ।

त्वमेव मेघस्त्व चायुस्त्वं रीजं शस्यहेतुकम् ॥ ४७ ॥

पोषायमघभूताना भूतभव्यभवोऽसि । त्यज्योति सर्वभूतेषु चमादित्योचिभावस्तु'

त्यमहस्त्वं तथा रात्रिभे सन्ध्ये तथा भवान् ।

हिरण्यरेतास्त्वं चद्रो' हिरण्योद्भवकारणम् ॥ ४६ ॥

हिरण्यगमश्च भवान् हिरण्यसदृशप्रभ । त्वंमुद्गनक्षणाश्चरत्वब्रुटिस्त्व तथात्व'

कलाकाष्ठातिमेयादिरूपेणाऽसि जगत्प्रभो ! ।

त्वमेतदतिठं काल परिणामात्मको भवान् ॥ ५१ ॥

या जिह्वा भवत काली कालनिष्ठाकरी प्रभो' ।

भयात् पाहि पापेभ्य ऐहिकाद्य महाभयात् ॥ ५२ ॥

करालीनामयाजिह्वामहाप्रत्यकारणम् । तयान पाहिपापेभ्यऐहिकाद्यमहाभयात्

मनोजयाच्चयाजिह्वाल'त्रिमाशुजगत्क्षणा । तयान पाहिपापेभ्यऐहिकाद्यमहाभयात्

करोति काम भूतेभ्यो या तेजिह्वामुलोदिता ।

तया न पाहि पापेभ्य ऐहिकाद्यमहाभयात् ॥ ५५ ॥

स्रग्भ्रूवर्णां या जिह्वा प्राणिना रोगदायिका ।

तया न पाहि पापेभ्य ऐहिकाद्य महाभयात् ॥ ५६ ॥

स्फुलिङ्गिनी च या जिह्वा यत सकलपुद्गला ।

तया नः पाहि पापेभ्य ऐहिकाच्च महाभयात् ॥ ५७

या ते विश्वा सदा जिह्वा प्राणिनां शर्मदायिनी ।

तया नः पाहि पापेभ्य ऐहिकाच्च महाभयात् ॥ ५८ ॥

पिद्गाक्ष! लोहितग्रीव! कृष्णवर्णहुताशन । त्राहिमांसर्वदोषेभ्यः संसाराद्बुद्धरेहमाम्

प्रसीद वहे! सप्तार्चिः कृशानो हव्यवाहन! । अग्निपावकशुक्रादिनामाष्टभिर्द्वीरितः

अग्नेऽग्रे सर्वभूतानां समुद्रभूतविभावसो! । प्रसीद हव्यवाहाग्न्यभिष्टुतमयाव्यय

त्वमक्षयो वह्निरचिन्त्यरूपः समृद्धिमान् दुष्प्रहसोऽतितीव्रः ।

त्वमव्ययं भीममशेषलोकं समूर्तको हन्त्यथवातिवीर्य्यः ॥ ६२ ॥

त्वमुत्तमं सत्त्वमशेषसत्त्व हृत्पुण्डरीकस्वमनन्तमीडयम् ।

त्वया ततं विश्वमिदं चराचरं हुताशनैको बहुधा त्वमत्र ॥ ६३ ॥

त्वमक्षयः मगिरिवना वसुन्धरा नभः ससोमार्कमहर्दिवाखिलम् ।

महोदध्रेजंठरगतश्च वाडवो भवान् विभूत्या परया करे स्थितः ॥ ६४ ॥

हुताशनस्त्वमिति सदाभिपूज्यसे महाक्रतो नियमपरैर्म्मर्हर्षिभिः ।

अभिष्टुतः पितृसि च भोममध्वरे वयस्कृतान्यपि च हवींषि भूतये ॥ ६५ ॥

त्वंचिप्रैः सततमिहेहासे फलार्थः वेदाङ्गेष्वथ सकलेषु गीयसे त्वम् ।

त्वद्धेतोर्यजनपरायणा द्विजेन्द्रा वेदाङ्गान्यधिगमयन्ति सर्वकाले ॥ ६६ ॥

त्वं ब्रह्मा यजनपरस्तथैव चिष्णुभूतेशः सुरपतिर्य्यमा जलेशः ।

सूर्य्येन्दू सकलसुरासुराश्च हव्यैः सन्तोष्याभिमतफलान्यथाप्नुवन्ति ॥ ६७ ॥

अर्चिभिः परममहोपवातदुष्टं संस्पृष्टं तव शुचि जायते समस्तम् ।

स्नानानां परममतीव भस्मना सत् सन्ध्यायां मुनिभिरतीवसेव्यसे तत् ॥

प्रसीद वहे! शुचिनामग्रेय प्रसीद वायो! विमलातिदीप्ते !!

प्रसीद मे पावक! वैद्युताद्य प्रसीद हव्याशन! पाहि मां त्वम् ॥ ६८ ॥

यत्तेवहे! शिवरूपं ये चतंसप्तहेतयः । तैः पाहिनः स्तुतो देव! पिता पुत्रमिवात्मजम्

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽग्निस्तोत्रं नाम नवतितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

## शततमोऽध्याय

### भौत्यमन्वन्तरक्यारणम्

मार्कण्डेय उवाच

एव स्तुतस्तनस्नेन भगवान् हृद्यवाहन ।

ज्वालामालावृतस्तत्र तस्यार्मादप्रतो मुने' ॥ १ ॥

देवोविभाषसु प्रीतस्त्वोऽणानेनवेद्विज । त शान्तिमाह प्रणतं मेवगम्भीरषागथ

अग्निरुवाच

परितुणोऽस्मि ते विप्र' भक्त्या या त स्तुति कृता ।

वर ददामि भयते प्रार्थ्यता यत्तपेप्सितम् ॥ ३ ॥

शान्तिरुवाच

भगवन् ! कृतग्न्योऽस्मि यस्या पश्यामि रूपिणम् ।

तथापि भक्तिघ्नस्य भवता श्रूयता मम ॥ ४ ॥

भ्रातृयत्न गतो देव ममाचार्यो निनाथमात् ।

आगतश्चाश्रम त्रिण्य त्वत्सनाथ स पश्यतु ॥ ५ ॥

ममापराधान् मन्त्यक्त त्रिण्य यत्ते विभावसो' ।

तस्त्वयाधिष्ठित सोऽद्य पूजवन् पश्यता द्विज ॥ ६ ॥

तथान्यदपि मे देव प्रसादं कुरुषे यदि । पुत्रो विशिणो भवतु तदपुत्रस्य मे गुरो

यथा च मैत्रीं ननये स करिष्यतिमे गुरु । तथा समस्तसत्त्वेषु भवत्वस्यमनोमृदु

पश्यता स्तोष्यते येन प्रीतिं यातोऽसि मेऽव्यय ।

स्तोत्रेण तस्य वरदो भवेथा मत्प्रभादिन ॥ ६ ॥

मार्कण्डेय उवाच

एतत् श्रुत्वा वचस्तस्य तमाह द्विजसत्तमम् ।

स्तोत्रेणाऽऽराधितो भूयो गुरुभक्त्या च पावकः ॥ १० ॥

अग्निरुवाच

गुरोरर्थे यतो ब्रह्मन् याचितंतेवरद्भयम् । नात्मार्यनेन मे प्रीतिस्त्वच्यतीव महामुने  
भविष्यत्येतद्ग्निलंगुरोर्यत् प्रार्थितं त्वया । मैत्रीममस्नभूतेषु पुत्रश्चास्यभविष्यति

मन्वन्तरात्रिपः पुत्रो भौत्यो नाम भविष्यति ।

महायज्ञो महावीर्यो महाप्राज्ञो गुरुस्तव ॥ १३ ॥

अनेन यच्च स्तोत्रेण स्तोत्र्यते मां समाहितः ।

नस्याभिलषितं सर्वं पुण्यञ्चास्य भविष्यति ॥ १४ ॥

यज्ञेषु पर्वकालेषु तीर्थेज्याहोमकर्मसु । धर्माय पठतामेतन्मम पुष्टिकरं परम् ॥१५॥

अहोरात्रकृतं पापं श्रुतमेतन् सकृद् द्विज । नाशयिष्यत्यनन्दिश्रं मम तुष्टिकरं परम्

अहोमकालदोषादीन्नयोग्यैरपितर्कृतैः । ये दोषास्तान्निवृमद्यः तामयिष्यतिमंश्रुतम्

पौर्णमास्याममाचरन् पर्वस्वन्येषु प्रस्तवः ।

ममेव संश्रुतो मर्त्यैर्भविता पापनाशनः ॥ १८ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वा भगवानग्निः पश्यतस्तस्य वै मुने !

बभूवादृशनः सद्यो दीपस्थो निवृत्तो तथा ॥ १९ ॥

स च शान्तिर्गते बहौ परितुष्टेन चेतसा । हर्षरोमाञ्चिततनुः प्रविशेशाश्रमं गुरोः

जाज्वलयमानं तत्राऽसौ गुरुधिष्ये हुताशनम् ।

ददर्श पूर्ववत् प्राप ततः स परमां मुदम् ॥ २१ ॥

एतस्मिन्नन्तरे सोऽपि गुरुस्तस्य महात्मनः ।

भ्रातुर्यवीयसो यजादाजगाम स्वमाश्रमम् ॥ २२ ॥

तस्याग्रतश्च शिष्योऽसौ चक्रेपादाभिवन्दनम् । गृहीतासनपूजश्चतमाहसतदागुरुः

घत्सातिहादं त्वयिमेतथान्येषुघजन्तुषु । न वैदिकिमिदंत्वञ्चेद्वत्सैतत्कथयाशुमे

ततः स शान्तिस्ततसर्वमाचार्याय महामने !

अग्निनाशादिकं विप्रः समाचष्टे यथातथम् ॥ २५ ॥

तच्छ्रुत्वा स परिष्वस्य स्नेहार्द्रनयनो गुरुः ।

शिष्याय प्रददौ वेदान् साङ्गोपाङ्गान् महामुने ॥ २६ ॥

भौत्यो नाम मनुस्तस्यपुत्रोभूतेरजायत । तस्य मन्वन्तरे देवानृषीन् भूपांश्चमेश्च  
भविष्यस्य भविष्यास्तु गदतो मम विस्तरात् ।

देवेन्द्रो यश्च भविता तस्य विख्यातकर्मणः ॥ २८ ॥

घाश्रुपाश्च कनिष्ठाश्च पवित्रा भ्राजिरास्तथा ।

धाराबृकाश्च इत्येते पञ्च देवगणाः स्मृताः ॥ २९ ॥

शुचिरिन्द्रस्तदा तेषां त्रिदशानाभविष्यति । महाबलोमहावीर्यं सर्वैरिन्द्रगुणैर्युतं  
आग्नीध्रध्याग्निबाहुश्च शुचिर्मुक्तोऽथमाधवः । शुक्रोऽजितश्चमत्तैते तदा सप्तर्षयः स्मृत  
गुरुर्गभीरोऽर्धश्च भरतोऽनुग्रहस्तथा । स्त्रीमानीषप्रतीरश्च विष्णु सङ्क्रन्दनस्यथ  
तेजस्वी सुवर्चस्य भौत्यस्यैते मनोः सुताः । चतुर्दश मयैतत्ते मन्वन्तरमुदाहृत  
ध्रुत्वा मन्वन्तरापीत्यं क्रमेण मुनिसत्तम ॥

पुण्यमाप्नोति मनुजस्तथा क्षीणाञ्च सन्ततिम् ॥ ३४ ॥

ध्रुत्वा मन्वन्तरं पूर्वधर्ममाप्नोति मानवः । स्वारोचिरस्यथ वणात्सर्वकामानवाप्नु  
ञ्जीत्तमैर्धनमाप्नोति ज्ञानञ्चाप्नोति तामसे । रिवते च ध्रुते बुद्धिसुरूपां चिन्दतेऽत्रिय  
आरोग्यञ्चाश्रुषे पुंसा ध्रुते वैवस्वते बलम् । गुणवत्पुत्रपीत्रन्तु सूर्यसावर्णिके च  
माहात्म्य ब्रह्मसावर्णधर्मसावर्णिकेशुभम् । मतिमाप्नोति मनुजो रुद्रसावर्णिके जय  
ज्ञायिष्ठो गुणैर्युक्तो दक्षसावर्णिके ध्रुते । निशातयत्खरिबलं रीच्यं ध्रुत्वा नरोत्त  
देवप्रसादमाप्नोति भौत्ये मन्वन्तरे ध्रुते । तथाग्निहोत्रं पुत्रांश्च गुणयुक्तानवाप्नु  
सर्वाण्यनुव्रमाद्यश्च शृणोति मुनिसत्तम ॥

मन्वन्तराणि तस्यापि ध्रुयता फलमुत्तमम् ॥ ४१ ॥

तत्र देवानृषीनिन्द्रान्मनूस्तत्तनयात्प्रपान् ।

वंशाश्च ध्रुत्वा सर्वेभ्यः पापेभ्यो विप्रमुच्यते ॥ ४२ ॥

देवर्षीन्द्रनृपाश्चान्ये ये तन्मन्वन्तराधिपाः ।

ते प्रीयन्ते तथाः प्रीताः प्रयच्छन्ति शुभां मतिम् ॥ ४३ ॥

ततः शुभांमर्तिप्राप्यकृत्वाकर्मतथाशुभम् । शुभांगतिमवाप्नोतियावदिन्द्राश्चतुर्दश

सर्वे स्युर्ऋतवः क्षेम्याः सर्वे सौम्यास्तथा ग्रहाः ।

भवन्त्यसंशयं श्रुत्वा क्रमान्मन्वन्तरस्थितिम् ॥ ४५ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेचतुर्दशमन्वन्तरसमाप्तिवर्णनं नाम शततमोऽध्यायः ॥ १००

## एकाधिकशततमोऽध्यायः

### वंशानुकीर्तनवर्णनम्

क्रौण्डिकिखाद्य

भगवन् ! कथिता सम्यक् त्वया मन्वन्तरस्थितिः ।

क्रमाद्विस्तरतस्त्वत्तो मया वैवाद्यधारिता ॥ १ ॥

ब्रह्माद्यमखिलं वंशंभूभुजां द्विजसत्तम ! श्रोतुम्ममेच्छतः सम्यक् भगवन् प्रव्रवीहि मे

मार्कण्डेय उवाच

शृणु वत्स ! नृपाणां त्वमशेषाणां समुद्भवम् ।

चरितं च जगन्मूलमादौ कृत्वा प्रजापतिम् ॥ ३ ॥

अयं हि वंशोभूपालैरनेकक्रतुकर्तृभिः । सङ्ग्रामजिद्धिर्धर्मज्ञैः शतसङ्ख्यैरलङ्कृतः

श्रुत्वा क्षैपां नरेन्द्राणां चरितानि महात्मनाम् ।

उत्पत्तयश्च पुरुषः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५ ॥

मनुर्यत्र तथेक्ष्वाकूरनरयोभगीरथः । अन्ये च शतशोभूपाः सम्यक् पालितभूमयः

धर्मज्ञा यज्विनः शूराः सम्यक् परमवेदिनः ।

श्रुते तस्मिन् पुमान् वंशे पापौघाद्विप्रमुच्यते ॥ ७ ॥



तदयं श्रूयता वंशो यतो वशाः सहस्रशः । मिथुने मनुजेन्द्राणामपरोहायथावदात्

ब्रह्मा प्रजापतिं पूर्वं सिन्धुर्विविधां प्रजां ।

अङ्गुष्ठादक्षिणादक्षमसृजद्द्विजसत्तमम् ॥ १६ ॥

धामाङ्गुष्ठाच्च तन्पत्नीं जगत्सूतिकरो विभुम् ।

ससर्ज भगवान् ब्रह्मा जगता कारण परम् ॥ १७ ॥

अदितिस्तस्य दधस्य कन्याजायत शोभना ।

तस्याञ्च कश्यपो देव मार्कण्डे समर्जाजनन् ॥ ११ ॥

ब्रह्मा स्वरूप जगतामशेषाणां वत्प्रदम् । आदिमध्यान्मभूतञ्चसर्गैस्त्वित्यन्तकर्मसु  
यतोऽखिलमिदं वस्मिन्नशेषञ्चस्थितं द्विजम् । यन्स्वप्नरूपगच्छेद्देवदेवासुरमानुषम्

य सर्वभूतसर्वात्मा परमात्मा मनातनम् ।

अदित्यामभवद्वात्मान् पूर्वमाराधितस्तथा ॥ १४ ॥

ब्रौह्मकिरवाच

भगवन् श्रोतुमिच्छामि यत्स्वरूपं विषत्स्यत् ।

यत्कारणञ्चादिदेवसोऽभवत् कश्यपात्मजम् ॥ १५ ॥

यथा धाराधितो देव्या सोऽदिदेश कश्यपेन च ।

आराधितेन घोक्तुं यत्तेन देवेन मास्वताम् ॥ १६ ॥

प्रभावञ्चाधर्तार्षस्य यथावन्मुनिसत्तमम् ।

भवता कथितं सम्यक् श्रोतुमिच्छाम्प्रशोयत ॥ १७ ॥

मार्कण्डेय उवाच

विस्पृष्टा परमा विद्या ज्योतिर्मां शाश्वती स्फुटा ।

केवल्यं ज्ञानमाविभूम् प्राकाम्यं सविदेव च ॥ १८ ॥

बोधश्चावगतिश्चैवस्मृतिर्विज्ञानमेव च । इत्येतानीह रूपाणितस्यरूपस्यमास्वत  
श्रूयताञ्चमहाभागं विस्तराद्ब्रूततो मम । यत् पृष्टवानसि खेराविर्भावोयथामवन्  
तिप्यभेऽस्मिन्निरालोके सर्वानस्तमसावृते । बृहदण्डमभूदेकमक्षरं कारण परम् ॥

द्विमेद् तदन्तःस्थो भगवानप्रपितामहः । पद्मयोनिःस्वयं ब्रह्मायः श्रष्टा जगतां प्रभुः  
तन्मुखादोमिति महानभूच्छब्दो महामुने !।

ततो भूस्तुभुवस्तस्मात् ततश्च स्वरनन्तरम् ॥ २३ ॥

एता व्याहतयस्तिन्नः स्वरूपं तद्विवस्वतः ।

ओमित्यस्मात् स्वरूपात्तु सूक्ष्मरूपं रवेः परम् ॥ २४ ॥

ततो महरिति स्थूलं जनें स्थूलतरं ततः । ततस्तपस्ततः सत्यमिति मूर्त्तानिसमथा  
स्थितानि तस्य रूपाणि भवन्ति न भवन्ति च ।

स्वभावभावयोर्भावं यतो गच्छन्ति संशयम् ॥ २६ ॥

आद्यन्तं यत्परं सूक्ष्मरूपं परमं स्थितम् । ओमित्युक्तं मया चिप्रतत्परं ब्रह्म तद्वपुः  
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे वंशानुकीर्त्तनं नामैकाविंशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥

## द्व्यधिकशततमोऽध्यायः

### मार्तण्डमाहात्म्यवर्णनम्

#### मार्कण्डेय उवाच

तस्मादण्डाद्विभिन्नातु ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः । ऋद्धो बभूवुः प्रथमं प्रथमाद्वदनान्मुने  
जपापुष्पनिभाः सद्यस्तेजोरूपान्तसंहताः । पृथक्पृथग्विभिन्नाश्चरजोरूपवहास्ततः

यजूंषि दक्षिणाद्वक्त्रादनिच्छानि काञ्चनम् ।

याद्वृग्वर्णन्तथाचर्णन्यसंहतिधराणि च ॥ ३ ॥

पश्चिमं यद्विभोर्वक्त्रं ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।

आचिभूतानि सामानि ततश्छन्दांसि तान्यथ ॥ ४ ॥

अथर्वाणमशेषञ्च भृङ्गाञ्जनघयप्रभम् । यावद्द्वोरस्वरूपन्तदाभिचारिकशान्तिकम्  
उत्तरात् प्रकटीभूतं वदनात्तस्य वेधसः । सुखसत्त्वतमः प्रायंसौम्यासौम्यस्वरूपवत्

शृङ्घो रजोगुणा सत्त्व यजुषाश्च गुणा मुने ।  
 तमोगुणानि मामानि तम सत्त्वमथर्वसु ॥ ७ ॥  
 एतानि ज्वरमानानि तेजसाऽप्रतिमेत वै ।  
 पृथक् पृथगवस्थान भाञ्जि पूरमिवाभवन् ॥ ८ ॥  
 ततस्तदाद्य यन् तेज ओमित्युक्त्वाभिशाश्र्वधत् ।  
 तस्य स्वभाषाद्यत्तेजस्तन् समावृत्य सस्थितम् ॥ ९ ॥

यथा यजुर्मयतेजस्तद्वन् साक्षा महामुने । एकत्वमुपयातानि परे तेजसि सश्र्वये  
 शान्तिरूपीणिकञ्च तथा धैवाभिधारिकम् ।

श्रुगादिषु लयं ब्रह्म च्छिन्नतयं त्रिव्यधागमत् ॥ ११ ॥

ततोचिश्चमिदंसद्यस्तमोनाशात्मुनिमलम् विभाचनीयचिप्रपैतिर्यगूढ-धर्मधस्तथा  
 ततस्तन्मण्डलीभूत छान्दस तेज उत्तमम् । परण तेजसा ब्रह्मत्रेकत्वमुपयाति तन्  
 आदित्यमञ्जामगमदादावेव यतोऽभवन् ।

चिश्चन्यास्य महाभाग कारणञ्चाव्ययात्मकम् ॥ १४ ॥

प्रातर्मध्यन्दिनेधैव तथाधैवापराह्निके । त्रयीतपनि साकालेऽग्न्यञ्जु सामसञ्चित  
 शृषस्तपन्ति पूर्वाह्णे मध्याह्णे च यजु पि वै ।

सामानि चापराह्णे वै तपन्ति मुनिमत्तम ॥ १६ ॥

शान्तिक श्चु पूर्वाह्णे यजु ध्यन्तरपीणिकम् ।

विन्यस्त सास्त्रि सायाह्णेऽभामिधारिकमन्त ॥ १७ ॥

मध्यन्दिनेऽपराह्णे च स मे धैवाभिधारिकम् ।

अपराह्णे पितृणान्तु साक्षा काव्याणि नानि वै ॥ १८ ॥

विद्युष्टी शृङ्गमयो ब्रह्मा स्थितो विष्णुयजुमय ।

इन्द्र साममयोऽन्ते च तस्मात्तस्याशुचि-चति ॥ १९ ॥

तदेधं भगवान् भास्वान् वेदात्मावेदसस्थित । वेदविद्यात्मकश्रैवपर पुरुषउच्यते  
 स्वगस्थित्यन्तहेतुश्च रजः सत्त्वादिकान् गुणान् ।

आश्रित्य ब्रह्मविष्णवादिसञ्जामभ्येति शाश्वतः ॥ २१ ॥

देवैः सदेज्यः स तु वेदमूर्त्तिरमूर्त्तिराद्योऽखिलमर्त्यमूर्तिः ।

विश्वाश्रयं ज्योतिरवेद्यधर्मा वेदान्तगम्यः परमः परेभ्यः (परेशः) ॥ २२ ॥

इति श्रीनार्कण्डेयपुराणे मार्त्तण्डमाहात्म्यवर्णनं नाम

द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥

## त्र्यधिकशततमोऽध्यायः

### आदित्यस्तववर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

तस्य सन्ताप्यमाने तु तेजसोर्द्धमधस्तथा ।

सिसृक्षुश्चिन्तयामास पञ्चयोनिः पितामहः ॥ १ ॥

सृष्टिः कृतापि मे नाशं प्रयास्यत्यभितेजसः ।

भास्वतःसृष्टिसंहारस्थितिहेतोर्महात्मनः ॥ २ ॥

अप्राणाः प्राणिनः सर्वे आपः शुष्यन्ति तेजसा ।

न घाम्भसा चिना सृष्टिर्विश्वस्याऽस्य भविष्यति ॥ ३ ॥

इतिसञ्चिन्त्यभगवान् स्तोत्रं भगवतोरवेः । अकारतन्मयो भूत्वा ब्रह्मालोकपितामहः

ब्रह्मोवाच

नमस्ये यन्मयं सर्वं येतत्सर्वमयश्च यः । विश्वमूर्तिः परं ज्योतिर्यत्तद्ब्रह्मायन्तियोगिनः

य ऋद्धमयो यो यजुषान्निधानं स्नाम्नाञ्चयो योनिरचिन्त्यशक्तिः ।

त्रयीमयो स्थूलतया र्द्धमात्रा परस्वरूपो गुणपारयोग्यः ॥ ६ ॥

त्वां सर्वहेतुं परमञ्चवेद्यमाद्यं परं ज्योतिरवहिरूपम् ( रवेद्य ) ।

स्थूलञ्च देवात्मतया नमस्ये भास्वन्तमाद्यं परमं परेभ्यः ॥ ७ ॥

सृष्टिकरोमि यद्दह तव शक्तिराद्या तन्प्रेरितो जलमहीपवनाग्निरूपाम् ।  
 तद्देवतादिविषया प्रणवाद्यशोभा नात्ममेच्छया स्थितिलयाघपितद्वदेव ॥ ८ ॥  
 वह्निस्त्वमेव जलशोषणत पृथिव्या\* सृष्टिकरोमि जगताञ्च तथाद्यपाकम् ।  
 व्यापी त्वमेव भगवन्! गगनस्वरूप त्वं पञ्चधाजगदिद परिपामि विश्वम् ॥९॥  
 यत्रैर्यजन्ति परमात्मचिदो भवन्त विष्णुस्वरूपमखिलेष्टिमय विवस्वन्! ।  
 ध्यायन्तिद्यापियतयोनियतात्मचित्ता सर्वेश्वरं परममात्मविमुक्तिकामा ॥१०॥

नमस्ते देवरूपाय यज्ञरूपाय ते नम । परब्रह्मस्वरूपाय चिन्त्यमानाय योगिमि  
 उपसहर तेजो यन् तेजस सहतिस्त्वव ।

सृष्टेर्विधाताय विभो! सृष्टौ द्वाहं समुद्यत ॥ १२ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्येव सस्तुतो भास्वान् ब्रह्मणा सर्गाकर्तृणा ।

उपमहन्वास्तेज पर स्वल्पमधारयत् ॥ १३ ॥

घकार घ तत सृष्टिंजगत पद्मसम्भव । तथातेषु महाभाग पूर्वकल्पान्तरेषु वै  
 देवासुरादीन् मर्त्याश्च पश्वादीन् वृक्षवीरुघ्न ।

ससर्ज पूर्ववद्ब्रह्मा गरुकाश्च महामुने! ॥ १५ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे आदित्यस्तत्रवर्णन नामत्रयधिक

शततमोऽध्याय ॥ १०३ ॥

## चतुरधिकशततमोऽध्यायः

### दिवाकरस्तुतिवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

सृष्ट्वा जगदिदं ब्रह्मा प्रविभागमथाकरोत् । वर्णाश्रमसमुद्राद्रिद्वीपानां पूर्ववद्यथा ॥

देवदेत्योरगादीनां रूपस्थानानि पूर्ववत् । देवेभ्य एव भगवानकरोत् कमलोद्भवः

ब्रह्मणस्तनयो योऽभून्मरीचिरिति विश्रुतः ।

कश्यपस्तस्य पुत्रोऽभूत् काश्यपो नाम नामतः ॥ ३ ॥

दक्षस्य तनया ब्रह्मन्तस्यभार्यास्त्रयोदश । बहवस्तत्पुताश्चासन् देवदेत्योरगादयः

अदितिर्जनयामास देवांस्त्रिभुवनेश्वरान् ।

दैत्यान् दितिर्दनुश्चोश्रान् दानवानुरुचिक्रमान् ॥ ५ ॥

गरुडारुणौ च विनता यक्षरक्षांसि वैश्रमा ।

कद्रुः सुपाव नागांश्च गन्धर्वान्सुपुत्रे मुनिः ॥ ६ ॥

क्रोधाया जग्निरे कुल्या रिष्टायाश्चाप्सरोगणाः ।

ऐरावतादीन्मातङ्गानिरा च सुपुत्रे द्विज ! ॥ ७ ॥

ताम्रा च सुपुत्रे श्येनी प्रमुखाः कन्यका द्विज ! ।

यासां प्रसूताः खगमाः श्येनभासशुकादयः ॥ ८ ॥

इलायाः पादपा जाताः प्रधाया यादस्तां गणाः ।

अदित्यां या समुत्पन्ना कश्यपस्येति सन्ततिः ॥ ९ ॥

तस्याश्च पुत्रदौहित्रैः पौत्रदौहित्रिकादिभिः ।

व्याप्तमेतज्जगत् सूर्या तेषां तासाञ्च वै मुने ! ॥ १० ॥

तेषां कश्यपपुत्राणां प्रधानाः देवतागणाः ।

सात्त्विका राजसास्त्वेते तामसाश्च मुने ! गणाः ॥ ११ ॥

देवान् यश्चभुजश्चक्रे तथा त्रिभुवनेऽवरान् । ब्रह्मा ब्रह्मविदा श्रेष्ठ परमेष्ठीप्रजापति-  
तानराधन्त सहिता सपत्न्या दैत्यदानघाः ।

राक्षसाश्च तथा युद्धं तेवामार्मीन् सुदारुणम् ॥ १३ ॥

दिव्य धर्मसहस्रन्तु परार्जायन्तदेवता । जयितश्चाऽभवन् विप्र बलिनोदैत्यदानघा-  
ततो निराहृतान् पुत्रान्दैतेयैर्दानवैस्तथा । हतत्रिभुव तान् दृष्ट्वाऽदितिर्मुनिसत्तम  
आच्छिन्नयज्ञभागाश्च शुचा सम्पीडिता भूशन् ।

आराधनाय मचितु परं यत्नप्रचरमे ॥ १४ ॥

एकाग्रानियताहारापर नियममास्थिता । तुष्टावनेजमाराशिपगनस्त्वदिवाकरम्  
अदितिस्त्वाच

नमस्तुभ्य परा सूक्ष्मा सौवर्णा विघ्नते तनुम् ।

धाम धामवतार्मीश धाम्नामाधार शाश्वत ॥ १८ ॥

जगतामुपकाराय तथापस्तप गोपते ।

आददानस्य यद्रूप तीत्र तस्मै नमाम्यहम् ॥ १९ ॥

ग्रहीतुमप्रमासेन कालेनेन्दुमय रसम् । विघ्नतस्तत्र यद्रूपमतितीत्र नतास्मि तत्र  
तमेव मुञ्चत सर्वं रसं चै वरुणाय यत् । रूपमाप्यायकभास्वस्तस्मै मेवाय ते नमः  
घायुत्सर्गविनिष्पन्नमशेषञ्चौर्ध्वगणम् । पाकायतवद्रूप भास्कर त नमाम्यहम्  
यच्च रूप तवार्तीय हिमोत्सर्गादिशीतलम् । तत्कालशस्यपोषाय तरणे तस्यतेनम  
नास्तितीव्रञ्च यद्रूप नातिशीतञ्चयत्तव । वसन्तर्त्तौ श्वेतीम्य तस्मैदेव । नमोनमः  
आप्यायनमशेषाणा देवानाञ्च तथा परम् ।

पितृणाञ्च नमस्तस्मै शस्याना पाकहेतवे ॥ २० ॥

यद्रूपजीवनायैक धीरुधाममृनात्मकम् । पीयते देवपितृभिस्तस्मै सोमात्मने नमः  
आभ्यायदकरूपाम्यारूप विभवमयन्तव । समेतमग्नीशोमाभ्या नमस्तस्मैगणात्मने  
यद्रूप ऋग्यजु स्ताप्तार्मैक्येनतपते तव । विभ्वमेतन् प्रयीसञ्च नमस्तस्मैविभावसो  
यत्त तस्मात्पर रूप ओमित्युक्त्वाभिशाब्दितम् ।

अस्थूलानन्तममलं नमस्तस्मै सदात्मने ॥ २६ ॥

मार्कण्डेय उवाच

एवं सा नियता देवी घक्रे स्तोत्रमहर्निशम् ।

निराहारा विवस्वन्तमारिराध्रयिपुमुने ! ॥ ३० ॥

ततःकालेनमहताभगवांस्तपनोऽम्बरे । प्रत्यक्षतामगादस्यादाशायण्याद्विजोत्तम !

सा ददर्श महाकृदं तेजसोऽम्बरमंथितम् ।

भूमौ च संस्थितं भास्वत् ज्वालामालातिदुर्दृशम् ॥ ३२ ॥

तं दृष्ट्वा सा तदा देवी साध्वसं परमं गता ।

जगाद् मे प्रसीदेति न त्वां पश्यामि गोपते ! ॥ ३३ ॥

यथा दृष्टवती पूर्वमम्बरस्थंसुदुर्दृशम् । निराहाराविवस्वन्तं तपन्तं तदनन्तरम् ॥

सङ्घातं तेजसां तद्वदिह पश्यामि भृतले । प्रसादं कुरुपश्येयं यदूर्ध्वं नै दिवाकर ! ॥

भक्तानुकम्पक विभो ! भक्ताऽहं पाहि मे सुतान् ॥ ३५ ॥

त्वं धाताविसृजसि विश्वमेतत् त्वं पासि स्थितिकरणाय सम्प्रवृत्तः ।

त्वय्यन्ते लयमखिलं प्रयाति तत्त्वं त्यक्तोऽन्या न हि गतिरन्ति सर्वलोके ॥ ३६ ॥

त्वं ब्रह्मा हरिरजसञ्जितस्त्वमिन्द्रो वित्तेशःपितृपतिरम्बपतिः समीरः ।

सोमोऽग्निर्गनपतिर्महीधरोऽग्निः किं स्तद्यं तव सकलात्मरूपधाम्नः ॥

यज्ञेश त्वामनुदिनमात्मकर्मसक्ताः स्तुन्वन्तो विविधपदैर्द्विजा यजन्ति ।

ध्यायन्तो विनियतचेतसो भवन्तं योगस्थाः परमपदं प्रयान्ति योगमूर्त्या ॥ ३८ ॥

तपसि पचसि विश्वं पासि भस्मीकरोषि प्रकटयसिमयूखैर्हादयस्यम्बुगर्भैः ।

सृजसि पुनरपि त्वं भावनास्वच्युतासु-

प्रणमितसरमर्त्यः पापकृद्धिस्त्वगम्यः ॥ ३६ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे दिवाकरस्तुतिर्नाम चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥



# पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः

## मार्गण्डेयचिबर्णनम्

मार्गण्डेय उवाच

तत स्यनेत्रमस्तम्भादादिभूतो विभाषात् ।

भद्रवत तदादिव्यस्तमताघोषम प्रभु ॥ १ ॥

अथ तां प्रणतां देवीं तस्य सन्शतान्मुने ।

प्राह भाम्यान् वृणुष्येष्टं परं मगोवमिच्छामि ॥ २ ॥

प्रणता शिरसा साघजापुरादितमेदिनी । प्रयुवाचपिषस्वन्लपरदंसमुपस्थितम्  
देव । प्रगीतपुत्राणां वृत्रिभुषण मम । मत्तभागाद्य दैव्यैश्च दानवैश्च बर्गधिकै-  
रतिप्रमितप्रसाद् श्वे कुर्यात् ममगोपेन । भंसन तेषां घातृष्वं गत्या नाशयत्रद्रिषून्

यथा मे तनया भूयो यत्तमागमुज्ज प्रभा ।

भवेयुरधिपाक्षिप श्रेलोषयस्य दिवाकर । ॥ ६ ॥

तथापुष्पा पुत्राणां सुप्रसन्नो रथे । मम । कुरप्रपन्नानिहरन्वितिकर्तात्वमुच्यते

मार्गण्डेय उवाच

ततस्त्नामाह मगवान् भाम्यरोवारितस्कर ।

प्रणतामदिति विप्र । प्रसादगुमुष्णो विभु ॥ ८ ॥

महर्षांशतने गर्भं सम्भूयाहमशंसत । त्वस्युशशतदिने नाशायाम्यासु निवृत्ता ॥

इत्युक्त्वा भगवान् भाम्यातन्तज्ञानमुपागमम् ।

निवृत्ता साधि तपसः सम्प्राप्ताखिन्धाञ्छिता ॥ १० ॥

ततो रश्मिसद्व्यात्तु सौसुझात्तरो रथे पर । विप्रावतारं सञ्चये देवमातुरधोदरे

वृक्षधान्द्रायणादीनि सा च श्वे समाहिता ।

शुचि सन्धारयामास दिव्यं गर्भमिति द्विज । ॥ १२ ॥

ततस्तां कश्यपः प्राह किञ्चित्कोपप्लुताक्षरम् ।

किम्मारयसि गर्भाण्डमिति नित्योपवासिनां ॥ १३ ॥

सा च तंप्राहगर्भाण्डमेतत्पश्यसिकोप ॥ न मारितं विपश्चाणांमृत्ववेतद्गविष्यति

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वा तं तदा गर्भमुत्ससज्जं सुरावतिः (सुराग्निः) ।

जाञ्जल्यमानन्तेजोभिः पत्युर्वचनकोपिता ॥ १५ ॥

तं दृष्ट्वा कश्यपोगर्भमुद्यद्वास्करचर्चसम् । तुष्टावप्रणतोभूत्वाऋग्भिर्गयाभिरादरात्

संस्तूयमानः स तदा गर्भाण्डात् प्रकटोऽभवत् ।

पद्मपत्रसवर्णाभस्तेजसा व्याप्तदिङ्मुग्धः ॥ १७ ॥

यथान्तरीक्षादाभास्यकश्यपंमुनिसत्तमम् । सतोयमेवगम्भीरवागुवाचाशरीरिणी

मारितं ते यतः प्रोक्तमेतदण्डं त्वया मुने !

तस्मान्मुने सुतस्तेऽयं मार्त्तण्डाख्यो भविष्यति ॥ १६ ॥

सूर्याधिकारञ्च विभुर्जगत्येव करिष्यति । हनिष्यत्यसुरांश्चायं यज्ञभागहरानरीन्

देवा निशम्येति वचो गगनात्समुपागमन् । प्रहर्षमतुलं याता दानवाश्च हृतांससः

ततो युद्धाय दैतेयानालुहाव शतक्रतुः । सह देवैर्मुदायुक्ता दानवाश्च समभ्ययुः

तेषां युद्धमभूद्बहोरं देवानामसुरैः सह । शस्त्रास्त्रदीप्तिस्नन्दीपंसमस्तभुवनान्तरम्

तस्मिन् युद्धे भगवता मार्त्तण्डेन निरीक्षिताः ।

तेजसा दह्यमानास्ते भस्मीभूता महानुराः ॥ २४ ॥

ततः प्रहर्षमतुलंप्राप्ताःसर्वे दिवोकसः । तुष्टुष्टुस्तेजसां योनिमार्त्तण्डमदिति तथा

स्वाधिकारांस्तथा प्राप्ता यज्ञभागांश्च पूर्ववत् ।

भगवानपि मार्त्तण्डः स्वाधिकारमथाकरोत् ॥ २६ ॥

कदम्यपुष्पवद्वास्वानधश्चोर्ध्वञ्चरश्मिभिः।वृत्ताग्निपिण्डसदृशोदधेनातिस्फुरद्भुः

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेमार्त्तण्डोत्पत्तिर्नामपञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥

## पडधिरुशततमोऽध्यायः.

भानुवनुलिखनवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

अथ तस्मैददीकन्या सञ्जा नामधिवस्वते । प्रसाधप्रणतोभूत्वाचिध्वरमाप्रजापति

विवस्वतस्तु सम्भूतो मनुस्नस्या विवस्वत ।

पूवमेव तथा रयात तत्स्वरूपं विशेषत ॥ २ ॥

(क्रीष्टुकिरुवाच

भूयस्तच्छ्रोतुमिच्छामि मार्तण्डस्य महात्मन ।

धरित हृन्नि यत्पाप कली सशृण्वता नृणाम् ॥)

मार्कण्डेय उवाच

त्रीण्यपत्यान्यसौ तस्या जनयामास गोपति ।

ह्रीं पुत्रीं सुमहाभागीं कन्याञ्च यमुनां मुने ॥ ३ ॥

मनुर्विवस्वतो ज्येष्ठं धाद्द्वयं प्रनापति । ततो यमो यमी चैव यमली सम्भूवतु

यत्तेनोऽन्यधिक तस्य मातण्डस्य विवस्वत ।

तेनाति तापयामास रीन् लोकान् सधराचरान् ॥ ५ ॥

गोगकारन्तु त इष्टा सश्रारूप विवस्वत ।

अमहन्ता महन्ते स्यच्छाया प्रेक्ष्य साऽवधीत् ॥ ६ ॥

सश्रोवाच

अहयास्याग्निमद्रनेऽस्यमेवमवन्तेपितु । निर्विकारत्वयाप्यत्रस्येयंमच्छासनाच्छुमे

इमां च याः क्रीमय कन्याश्चवर्णयिती । सम्भाषीनेवधारप्रेयमिदममवनेत्वया

छायोवाच

आवेशप्रहणाद्देवि आशापान्नेच कर्हिचित् ।

आख्यास्यामि मतं तुभ्यं गम्यतां यत्र चाञ्छितम् ॥ ६ ॥

इत्युक्त्वाछाययासंजाज्ञगामपितृमन्दिरम् । तत्राचसत्पितुर्गौकञ्चित्कालंशुभेक्षणा  
भर्तुः समीपं यार्हानि पित्रोक्ता सा पुनः पुनः ।

अगच्छद्दृष्ट्वा भूत्वा कुरुन् विप्रोत्तरांस्ततः ॥ ११ ॥

तत्र तेपे तपःसाध्वीनिराहारामहामुने । पितुःसमीपंयातायाःसंज्ञायाचाक्यतत्परा  
तद्रूपधारिणी छाया भास्करं नमुपस्थिता ।

तस्याञ्च भगवान् सूर्यः सञ्जोयामिति चिन्तयन् ॥ १३ ॥

तथैव जनयामास ह्रीं सुतो कन्यकां तथा ।

पूर्यजस्यमनोस्तुल्यः सावर्णिस्नेन स्रोऽभवत् ॥ १४ ॥

यस्तयोःप्रथमंजातःपुत्रयोर्द्विजसत्तम । द्वितीयो योऽभवच्चान्यःसग्रहोऽभूच्छनैश्वरः  
कन्यरभूत्तपतीयानां च त्रेमं चरणो नृपः । संजानुपार्थिवीतेयामात्मजानां यथाऽकरोत्

स्नेहान्न पूर्यजातानां तथा कृतवती सती ।

मनुस्तत्क्षान्तवांस्तस्या यमश्चास्या न चक्षमे ॥ १७ ॥

बहुशो याञ्च्यमानस्तु पितुः पत्या नुद्गुःखितः ।

स वै कोपाच्च बाल्याच्च भाचिनोऽर्थस्य वै बलात् ॥ १८ ॥

पदासन्तर्जयामास छायासञ्जां यमो मुने! ।

ततः शशाप च यमं सञ्जा सामर्षिणी भृशम् ॥ १९ ॥

छायोवाच

पदा तर्जयसेयस्मात् पितृभार्यांगरीयस्त्रीम् । तस्मात्तवैव चरणःपतिप्यतिनसंशयः  
यमस्तु तेन शापेन।भृशं पीडितमानसः । मनुना सहधर्मात्मा सर्वं पित्रेन्यवेदयत्

यम उवाच

स्नेहेन तुल्यमस्मासु माता देव! न वर्तते ।

चिखुज्य ज्यायसोऽप्यस्मान् कनीयांस्तौ बुभूयन्ति ॥ २२ ॥

बाल्याद्वा यदि घा मोहासद्भवान् क्षन्तुमर्हन्ति ॥ २३ ॥

शप्तोऽह तात' कोपेन जनन्या तनयो यत' । तनो नमस्ये जननींश्च वै तपताम्ब  
विगुणेष्वपि पुत्रेषु न माता विगुणा पित' ।

पादस्ते पतताः पुत्र' कथमेतन् प्रवक्ष्यति ॥ २४ ॥

तव प्रमादाच्चरणो नृपतेर्द्वगवान् यथा । मातृशापाद्य मेऽद्य तथा चिन्तय गोपं  
रविह्याद्य

अमशयमिद् पुत्र' भविष्यत्यत्र कारणम् ।

येन त्वामाविशन् क्रोधो धर्मज्ञ सत्यवादिनम् ॥ २७ ॥

सर्वेषामेवशापाना, प्रतिघातोहि विद्यते । ननुमात्राभिज्ञानात्तच्चिच्छापतिवर्तक  
न शक्यमेतन्मिथ्यातुर्कृतुमानुर्वचस्तव । किञ्चित्तवविधासुशामिपुत्रस्नेहादनुग्रह  
कृमयो मासमादाय प्रपास्यन्ति मर्हातम् ।

इह तस्या यद्य सत्य त्वञ्च ज्ञातो भविष्यसि ॥ ३० ॥

मार्कण्डेय उवाच

व्यादित्यस्त्वप्रवीच्छायाकिमर्थतनयेपुर्वे । तुल्येष्वप्यधिकस्नेह एकत्रत्रियतेत्वया  
नूननेषा त्वजननीसञ्जाकापिन्वमागता । विगुणेष्वप्यपत्येषुकथमाताशपेतुस्तुम्

मार्कण्डेय उवाच

सा तन्परिहरन्तीष नास्यज्ञेयिवस्यत । सन्नात्मानसमाधायमुक्तस्तत्त्वमपश्यत्  
त शप्तमुद्यत दृष्ट्वा छायामञ्जा दिवस्वरूपिन्म् ।

भयेन षम्पती प्रह्वन्' यथावृत्त नृपदेयत् ॥ ३४ ॥

चिवस्वास्तु तत'कृड धृत्वा श्शुरमभ्यगात् ।

न घापि त यथान्यायमर्चयित्वा दिवाकरम् ।

निर्दम्भुकाम रोपेण भ्रान्त्यशमास सुव्रत ॥ ३६ ॥

विश्वकर्मावाच

तवातितेजसा व्याप्तमिदरूप सुदुःसहम् । भसदन्ती तत सञ्जा घनेधरति वै तपः

द्रक्ष्यतेतां भवानद्यस्वांभार्यां शुभचारिणीम् । रूपार्थंभवतोऽरण्येचरन्तींनुमहत्तपः  
स्मृतंमेवह्रणोवाक्यं यदि ते देव! रोचते । रूपं निवर्तयाम्यद्यतवकान्तं दिवस्पते!

माकण्डेय उवाच

यतो हि भास्वतो रूपं प्रागासीत् परिमण्डलम् ।

ततस्तथेति तं प्राह त्वष्टारं भगवान् रविः ॥ ३६ ॥

विश्वकर्मात्वनुज्ञातः शाकट्यापे चिवस्वतः । भ्रमिमारोप्यतत्तेजःशातनायोपधकमे  
भ्रमताऽशेषजगतां नाभिभूतेन भास्वता । समुद्रादिवनोपेता सारगोह मही नमः  
गगनञ्चाखिलंरहन् ! सचन्द्रग्रहतारकम् । अधोगतं महाभाग! यभूवाक्षितमाकुलम्

चिक्षिप्तसलिलाःसर्वे यभूवुश्च तथार्चिषः ।

व्यभियन्त महाशीलाः शीर्णंसानुनिवन्धनाः ॥ ४३ ॥

ध्रुवाधाराण्यशेषाणि ध्रिण्यानि मुनिसत्तम !

वृष्ट्यद्रश्मिनिवन्धासि अधोजग्मुः सहस्रशः ॥ ४४ ॥

वेगभ्रमणसञ्जातवायुक्षिप्ताः सहस्रशः । व्यशीर्ष्यन्तमहामेवाधोररावचिराविणः

भास्वद् भ्रमणविप्रान्तं भूस्पाकाशरत्नातन्त्रम् ।

जगादाकुलमत्यर्थं तदासीन्मुनिसत्तम ! ॥ ४६ ॥

त्रैलोक्ये सकले विप्र! भ्रममाणेसुरर्षयः । देवाश्चरत्प्रणासाङ्गंभास्वन्तममितुष्टुवुः

आदिदेवोऽसि देवानां ज्ञातमेतत् स्वरूपतः ( स्वयन्तथ ) ।

सर्गस्थित्यन्तकालेषु त्रिधामेदेन तिष्ठसि ॥ ४८ ॥

स्वस्ति तेऽस्तु जगन्नाथ ! धर्मवर्षाहिमाकर ! ।

जुषस्व शान्तिं लोकानां देवदेव ! दिवाकर ! ॥ ४९ ॥

इन्द्रश्चागत्य तं देवं लिख्यमानं यथाऽस्तुवत् ।

जय देव ! जगद्द्व्यापिन् ! जयाशेष जगत्पते ! ॥ ५० ॥

ऋषयश्च ततः सप्त वशिष्टात्रिपुरोगमाः ।

तुष्टुवुर्विविधैः स्तोत्रैः स्वस्तिस्वस्तीतिवादिनः ॥ ५१ ॥

घेदोक्ताभिरथाग्रवाभिर्वालखिलयाश्च तुष्टुः ।

भास्वन्त ऋग्भिराद्याभिर्लिख्यमानं मुदा युताः ॥ ५२ ॥

त्व नाथ ! मोक्षिणा मोक्षो ध्येयस्य ध्यानिना परः ।

त्वं गतिः सर्वभूताना कर्मकाण्डेऽपि वर्तताम् ( षडोपवर्तिनाम् ) ॥ ५३

श प्रजाभ्योऽस्तु, देवेश ! शन्नोऽस्तु जगताम्पते ! ।

शन्नोऽस्तु द्विपदे नित्य शत्रुश्चास्तु घतुष्पदे ॥ ५४ ॥

ततोविद्याधरगणा यक्षराक्षसपद्मगाः । कृताञ्जलिपुटा सर्वे शिरोभिः प्रणता रविम्  
ऊचुर्यम्विधावाघोमन ध्रोत्रसुखायहाः । सद्यम्भवतु ते तेजो भूताना भूतभावन!  
ततोद्गाहाहुहुर्ध्व(१)नारदस्तुम्बुरुस्तथा । उपगायितुमारब्धागान्धर्वकुशलारविम्  
पञ्जमध्यमगान्धारप्रामत्रयविशारदाः । मूर्च्छताभिधृतालेक्ष सप्रयोगैः सुखप्रदम्

विश्वाची च घृताची च उर्वश्यथ तिलोत्तमा ।

म्रेनका सहज्या च रम्भा चाप्सरसा घराः ( घरा ) ॥ ५६ ॥

नन्तुर्जगताग्नीशे लिख्यमाने विभावसौ ।

हावभाघविलासाढ्यान् कुर्वन्तोऽभिनयान् यद्वन् ॥ ६० ॥

प्राचाद्यन्त ततस्तत्र वैष्णवीणादिदुर्गा ।

पणवा पुष्कराश्चैव मृदङ्गाः पट्टहानकाः ॥ ६१ ॥

देवदुन्दुभ्य शङ्खाः शतशोऽथ सहस्रशः । गायद्विधैवगन्धर्वैर्नृत्यद्विधाप्सरोगणैः  
नृत्यंवादित्रयोगैश्च सर्वं कोलाहलीकृतम् । तत इताञ्जलिपुटा भक्तिनम्रात्ममूर्त्तयः  
लिख्यमान सहस्राशु प्रणेमुः सर्वदेवताः । ततः कोलाहले तस्मिन् सर्वदेवसमागमे  
तेजसः शातनञ्जकं विश्वकर्मां शनैः शनैः ॥ ६४ ॥

इति हिमजलधर्मकालहेतोर्ह्रस्वमलासनविष्णुसंस्तुतस्य ।

तनुपरिलिखन निशाम्य भानोर्नञ्जति दियाकरलोकमायुषोऽन्ते ॥ ६५ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भानुतनुलेखनवर्णननाम षडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥

## सत्ताधिकशततमोऽध्यायः

सूर्यस्तवनवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

रल्लिख्यमाने ततोभार्नाचिश्चकर्माप्रजापतिः । उद्भूतपुलकस्तोत्रमिद्भ्रकेचिवस्वतः  
चिवश्चते प्रणताहितानुकम्पिने महात्मने समजवसप्तसप्तये ।  
सुतेजसे कमलकुलाचवोधिने नमस्तमःपटलपटावपाटिने ॥ २ ॥  
पाचनातिशयपुण्यकर्मणे नैककामविषयप्रदायिने ।  
भास्वरानलमयूखशायिने सर्वलोकहितकारिणे नमः ॥ ३ ॥  
अजाय लोकत्रयकारणाय भूतात्मने गोपतये वृषाय ।  
नमो महाकारणिकोत्तमाय सूर्याय चक्षुःप्रभवालयाय ॥ ४ ॥  
चिवस्वते ज्ञानभूतान्तरात्मने जगत्प्रतिष्ठाय जगद्धितैपिणे ।  
स्वयम्भुवे लोकसमस्तचक्षुषे सुरोत्तमायामिततेजसे नमः ॥ ५ ॥  
क्षणमुदयाचलमौलिमणिःसुरगणमहितहितो जगतः (नीतगरिष्ठगुणः) ।  
त्वमुरुमयूखसहस्रवपुर्जगति विभासि तमांसि नुदन् ॥ ६ ॥  
भव तिमिरासवपानमदात् भवति चिलोहितविग्रहात् ।  
मिहिर विभासि यतः सुतरां त्रिभुवनभावनभानिकरैः ॥ ७ ॥  
रथमधिरुह्य समावयवं सारु चिकम्पितमुरुचिरम् ।  
सततमखिलहयैर्भगवन् ! चरसि जगद्धिताय विततम् ॥ ८ ॥  
अमृतसुधांशुरसेन समं चिवुध ! पितृनपि तर्पयसे ।  
अरिगणसूदन ! तेन तव प्रणिपत्य लिखामि जगद्धिताय ॥ ९ ॥  
शुकसमवर्णहयप्रथितं तव पदपांशुपचित्रतलम् ।  
नतजनवत्सल मां प्रणतं त्रिभुवनपावन ! पाहि रवे ! ॥ १० ॥



इति सकलजगत्प्रसूतिभूतं त्रिभुवनभावनधाम हेतुमेवम् ।  
रविमखिलजगत्प्रदीपभूतं देवं प्रणतोऽस्मि विभ्वकर्माणम् ॥ ११ ॥

(त्रिदशवर प्रणतोऽस्मि सर्वदात्वाम्)

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेसूर्यस्तवननामसमाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥

## अष्टाधिकशततमोऽध्यायः

रवेर्माहात्म्यवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

एवं सूर्यस्तं कुर्वन् विभ्वकर्मादिवरुपतेः । तेजसः षोडशं भागमण्डलस्यमधारयन्  
शातितैस्तेजसो भागेर्वशभिः पञ्चभिस्तथा ।

अतीव काण्तिमद्यारु भानोर्यासीत्तदा वपुः ॥ २ ॥

शातितञ्चास्प्रयसेजस्नेनचकचिनिर्मितम् । विष्णोः शूलश्चशर्वम्यशिविजाघनदस्यच  
दण्डः प्रेतपतेः शक्तिर्देवसेनापतेस्तथा । अन्येवाञ्चैव देवानामायुधानिसविभ्वहन  
वकार तेजसा भानोर्भासुराण्यरिशान्तये ।

इति शातिततेजाः स शुशुभे नार्तितेजसा ॥ ५ ॥

वपुर्दधार मार्कण्डः सर्वावयवशोभनम् ।

न इदं समाधिरुष स्वा भार्या वदवावृत्तिम् ॥ ६ ॥

अधृष्या सर्वभूताना तपसा नियमेन च ।

उत्तराश्च कुरुन् गन्वा भूत्वाऽबो भानुरागमत् ॥ ७ ॥

सा च द्रष्टुं तमायान्त पर्युंसो विशद्वया । जगाम सम्मुखे तस्यपृष्ठरक्षणतत्परा  
ततश्च नासिकायोगं तयोस्तत्रसमेतयोः ।

वदवायाञ्च तत्तज्जो नासिकाभ्या विचस्यतः ॥ ८ ॥

देवी तत्रममुत्पन्नाप्रभिली म्रिपज्ञा वर्ये । नासत्यद्वौतनयाकव्यकथाद्विनिर्गता

मार्त्तण्डस्य सुतावेतावश्वरूपधरस्य हि ।

रेतसोऽन्ते च रेवन्तः खड्गी धन्वी तनुत्रधृक् ॥ ११ ॥

भश्वारूढः समुद्रभूतो वाणतूणसमन्वितः । ततः स्वरूपममलं दर्शयामासभानुमान्  
तस्य शान्तं समालोक्य सा रूपं मुदमाददे ।

स्वरूपधारिणीञ्चोमां स निनाय निजालयम् ॥ १३ ॥

सञ्ज्ञां भार्यां प्रीतिमतीं भास्करो वारितस्करः ।

ततः पूर्वसुतो योऽस्याः सोऽभूद्वैवस्वतो मनुः ॥ १४ ॥

द्वितीयश्च यमः शापात् धर्मद्वष्टिरनुग्रहात् । यमस्तुतेन शापेन भृशं पीडितमानसः  
धर्मोऽभिरोचते यस्मात् धर्मराजस्ततः स्मृतः ।

कृमयो मांसमादाय पादतस्ते महीतलम् ॥ १६ ॥

पतिष्यन्तीति शापान्तं तस्य चक्रे पिता स्वयम् ।

धर्मद्वष्टिर्यतश्चासौ समो मित्रे तथाऽहिते ॥ १७ ॥

ततो नियोगे तं याम्ये चकार तिमिरापहः ।

तस्मै ददौ पिता विप्र! भगवान् लोकपालताम् ॥ १८ ॥

पितृणामाधिपत्यञ्चपरितुष्टो दिवाकरः । यमुनाञ्चनदीञ्चक्रेकलिन्दान्तरं वाहिनीम्  
अश्विनौ देवमिषजौ कृतौ पित्रा महात्मना ।

गुह्यकाधिपतित्वे च रेवन्तो विनियोजितः ॥ २० ॥

एवमप्याहस्यततो भगवांल्लोकभावितः । त्वमप्यशेषलोकस्य पूज्यो चत्समविष्यसि  
अरण्यादिमहादाववैरिदस्युभयेषु च । त्वांस्मरिष्यन्तियेमर्त्यामोक्ष्यन्ते ते महापदः

क्षेमंशुद्धिं सुखं राज्यमारोग्यं कीर्त्तिमुन्नतिम् ।

नराणां परितुष्टस्त्वं पूजितः सम्प्रदास्यसि ॥ २३ ॥

छायासञ्ज्ञासुतश्चापि सावर्णः सुमहायशाः ।

भाव्यः सोऽनागते काले मनुःसावर्णकोऽष्टमः ॥ २४ ॥

मेरुपृष्ठे तपो वीरमद्यापि चरते प्रभुः । भ्राताशनैश्चरस्तस्य ग्रहोऽभूच्छासनाद्वे:

यधीयसी तु या कन्याऽऽदित्यस्याभूद् द्विजोत्तम ।  
 अभवत् सा सरिच्छ्रेष्ठा यमुना लोकपावनी ॥ २६ ॥  
 यस्तु ज्येष्ठो महाभाग नृगो शस्येह साम्प्रतम् ।  
 विस्तर तस्य घश्यामि मनोर्यैवस्वतस्य ह ॥ २७ ॥

इदं यो जन्म देवानां शृणुयाद्वा पठेत् वा । विचस्वतस्तनूजातारधैर्माहात्म्यमेव  
 आपर्दं प्राप्य मुच्येत प्राप्नुयाच्च महायशः । अहोरात्रवृत्तं पापमेतच्छमयते श्रुतं  
 माहात्म्यमादिदेवस्य मार्तण्डस्य महात्मनः ॥ २६ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे रवेर्माहात्म्यवर्णननामाऽष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १० ॥

## नवाधिकशततमोऽध्यायः

भानुस्तरवर्णनप्रमोक्ष्यमाहात्म्यवर्णनम्

वीष्टुकिख्याद्य

भगवन् ! कथितं सम्यक् भानो सन्ततिसम्भय ।  
 माहात्म्यमादिदेवस्य स्वरूपज्ञातिविस्तरात् ॥ १ ॥  
 भूयोऽपि मास्वत सम्यङ्माहात्म्यं मुनिसत्तम ।  
 श्रोतुमिच्छाम्यहं तन्मे प्रमन्नो वक्तुमर्हसि ॥ २ ॥

मार्कण्डेय उवाच

श्रूयतामादिदेवस्य माहात्म्यं कथयामि ते । विचस्वतोयश्चकारपूर्वमारोपितो जने  
 इमस्य पुत्रो विख्यातो राजाऽभूद्राज्यवर्द्धनः ।

स सम्यक् पालनञ्चक्रे पृथिव्या पृथिवीपति ॥ ४ ॥

धर्मतः पाल्यमानन्तु तेन राष्ट्रं महात्मना । वृषधेऽनुदिनं विप्रजनेन च धनेन च  
 ह्यष्टपुण्यमतीघाम्नीसस्मिन् राजन्यशोभतः । राजकसकलञ्चोर्व्यापौरजानपक्षे जने

नोपसर्गो न च व्याधिर्न च व्यालोद्भवं भयम् ।

न चावृष्टिभयं तत्र दम्पुत्रे महीपते ॥ ७ ॥

स इयाज महायज्ञेदंदौ दानानि घार्थिनाम् । सुधर्मस्याविरोधेन बुभुजेविष्यानपि  
तस्यैवं कुर्वतोराज्यंसन्यक् पालयतःप्रजाः । सप्तवर्षमहत्त्राणि जग्मुरेकमाहो यथा  
विदूरशस्यतनयादाक्षिणात्यस्यभूमृतः । तस्य पत्नीध्रुवथाथ मानिर्नाममानिनी

कदाचित्तस्य सा मुध्रूः शिरसोऽभ्यङ्गनाट्टने ।

पश्यतो राजलोकस्य मुमोघाऽश्रूणि मानिनी ॥ ११ ॥

तदश्रुचिन्दघो गात्रेयदातस्यमहीपतेः । तद्दार्ढ्याश्रुचदनांतामपृच्छतमानिनीम्

निःशब्दमध्रुमोक्षेण रुदन्तीं तां विलोक्य च ।

किमेतदिति पप्रच्छ मानिनीं राज्यधर्षनः ॥ १३ ॥

पृष्टा सा तु ततस्तेन भर्त्रा प्राह मनस्विनी ।

न किञ्चिदिति तां भूपः पप्रच्छ स महीपतिः ॥ १४ ॥

बहुशः पृच्छतस्तस्य भूमृतःसासुमध्यमा । दशंयामास पलितं केशभारान्तरोद्भवम्

एतत्पश्येति मूपाल! किमिदं मन्युकारणम् ।

ममातिमन्दभाग्याया जहासाऽथ नृपस्ततः ॥ १६ ॥

स विहस्याह तां पत्नीं शृण्वतां सर्वभूमृताम् ।

पौराणाञ्च महीपाला ये तत्रासन् समागताः ॥ १७ ॥

शोकेनालंविशालाक्षिरोदितव्यंनतेशुभे । जन्मर्द्धिपरिणामाद्याविकाराःसर्वजन्तुषु

अधीताः सकला वेदाइष्टायज्ञाःसहस्रशः । दत्तं द्विजानां पुत्राश्चसमुत्पन्ना वरानने

भुक्ता भोगास्त्वया सार्द्धं ये मर्त्यैरतिदुर्लभाः ।

सम्यक् च पालिता पृथ्वी साधु युद्धधैव्यनुष्ठितम् ॥ २० ॥

मित्रैः सहेर्षैर्हसितं विहृतं च घनान्तरे । किमन्यन्नष्टत्तं मद्दे! पलितैभ्योविभेपि यत्

भवन्तु केशाः पलिता वलयः सन्तु मे शुभे !

शैथिल्यमेतु मेकायः कृतकृत्योऽस्मि मानिनि ! ॥ २२ ॥

मूर्ध्नि यद्दर्शित भद्रेभवत्यापलित मम । चिकित्सा मेव तस्याहकरोमिवनसश्रयात्  
घाल्ये घालक्रिया पूर्वं तद्वत् कीमारके च या ।

यीचने घापि या योग्या धाङ्गके घनसश्रया ॥ २४ ॥

एवमन्पूर्वकैर्मद्रेकृतन्त पूरमैश्वरन् । अतोनेऽऽपातस्यकिञ्चिन्पश्यामिकारणम्  
अलन्ते मन्नुनाभद्रेनन्वभ्युदयकारि मे । दर्शतपलितस्यास्यमारोदीर्निप्रयोद्धनम्

मार्कण्डेय उवाच

नतप्रणम्य न भूषा पौराश्चैवसमापगा । साम्नाप्रोलुमंहीपालाऽमहर्षेराज्यवर्द्धनम्  
न रोदितव्यमनया तव पत्न्या नराधिप ।

रोदितव्यमिहास्माभिरथया मर्चन्तुभि ॥ २७ ॥

त्व ब्रवीषि यथा नाथ! घनवासाधित घघ ।

पतन्ति तेन न प्राणा लालिताना त्यथा नृप ॥ २६ ॥

सर्वे यास्यामहे भूष! यदि याति भवान् घनम् ।

ततोऽशेषक्रियाहानि सर्वपृथ्वीनिवासिनाम् ॥ ३० ॥

भविष्यतिनसन्देहस्त्वयिनाथयनाथये । साधधर्मोपवातायप्रदितन्प्रथिमुष्यताम्  
सप्तप्रसहस्राणि त्वयेयं पात्रिना मही । तत्समुद्य महापुण्यमालोक्य नराधिप

घने घसन्महाराज! ता करिष्यति यत्तप ।

तन्महीपात्रनस्यास्य कटा नाहंनि षोडशाम् ॥ ३३ ॥

राजोवाच

सप्तवपसहस्राणि मयेय पालिता मही । इदानीं घनवासस्य भ्रमकालोऽयमागत  
ममापत्यानि जातानि द्रष्टुं मेऽपत्यमन्तती ।

स्वर्परैव महाहोभिरन्तको न न्हिष्यति ॥ ३० ॥

यदेतन्पलित मूर्ध्नि तद्विजानीत नागरा । दूतभूतमनार्यस्य मृत्योरऽयुप्रकर्मणः ॥

सोऽह राज्ये सुत कृत्वा भोगास्त्यक्त्वा घनाश्रयः ।

तपस्तप्सुषे समायान्ति न याचयमसैनिका ॥ ३७ ॥

मार्कण्डेय उवाच

ततो यियासुः स वनं देवज्ञानवनीपतिः । पुत्रराज्याभिषेकाय दिनलग्नान्यपृच्छतः  
श्रुत्वा घ ते तु नृपनेवंचो व्याकुलचेतसः ।

दिनं लग्नञ्च होराश्च न विदुः शास्त्रदृष्टयः ॥ ३६ ॥

ऊचुश्च तं महीपालं देवज्ञा चाप्पगद्गदम् । ज्ञानानि नःप्रणष्टानिश्रुत्वेतत्तेवचोनृप!  
ततोऽन्यनगरेभ्यश्च भृत्यराष्ट्रेभ्य एव घ ।

ततस्तस्माच्च नगरात् प्राचूर्णेणाम्युपागमन् ॥ ४१ ॥

समुत्पत्यमहीपालं तं यियासुं मुनेवनम् । प्रकम्पिशिरसोभूत्वाप्रोचूर्वाह्लाणसत्तमाः  
प्रसीद् पाहि नो राजन् ! पालिताः स्म यथा पुरा ।

सीदिष्यत्यखिलो लोकस्वयि भूप ! वनाश्रये ॥ ४३ ॥

स कुरुष्व तथा राजन् ! यथा नोसीदते जगत् ।

यावज्जीवामहे वीर ! स्वल्पकालमिमे वयम् ।

नेच्छामश्च भवच्छून्यं द्रष्टुं सिंहासनं विभो ! ॥ ४४ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्येवं तैस्तथान्यैश्च द्विजैः पौरपुरःसरैः । भूपैर्भृत्यैरमात्यैश्च प्रोक्तः प्रोक्तःपुनःपुनः  
घनवासचिनिर्वन्धं नोपसंहरते यदा । क्षमिष्यत्यन्तको नेति ददाति च तथोत्तरम्

ततोऽमात्याश्च भृत्याश्च पौरवृद्धास्तथा द्विजाः ।

समेत्य मन्त्रयामासुः किमत्र क्रियतामिति ॥ ४७ ॥

तेषां मन्त्रयतां चित्र ! निश्चयोऽयमजायत । अंतुरागवतां तत्र महीपालेतिधार्मिके  
सम्यग्ध्यानपरा भूत्वा प्रार्थयामः समाहिताः ।

तपसाराध्य भास्वन्तमायुरस्य मंहीपतेः ॥ ४६ ॥

सत्रैकनिश्चयाः कार्ये केचिद्देहे च भास्करम् । सम्यगर्घोपधाराद्यैरुपहारैरपूजयन्  
अपरे मौनिनोभूत्वा ऋग्जापेनतथाऽपरे । यजुगामयसाम्नाञ्चतोषयाञ्चकिरेरविम्  
अपरेच निराहारानदीपुलिनशायिनः । तपसा चक्रुरायस्ताभास्कराराधनंद्विजाः

अग्निहोत्रपराश्रान्ये रविमूकान्यहर्निशम् । जेषुस्तत्रापरे तस्युर्मास्करेण्यस्तदृष्ट्य  
इत्येवमतिनिबन्धं भास्कराराधनं प्रति ।

वदुप्रकार धनुस्ते त त विधिमुपाधिता ॥ ५४ ॥

तथा तु यतता तेषा भास्कराराधन प्रति । मुदाभा नामगन्धर्वउपगम्येदमप्रवीन्  
यदाराधनमिष्टवो भास्करस्य द्विजातय । तदेतन् क्रियतायेनभानु प्रीतिमुपैष्यति

तस्माद्गुटविशालाख्यं धन मिद्धतिपेविनम् ।

कामरूपे महार्शले गम्यता तत्र ये लघु ॥ ५७ ॥

नस्मिन्नाराधन भानो क्रियता सुममाहितै ।

सिद्धक्षेत्र हिते तत्र सर्वकामानवाप्स्यथ ॥ ५८ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इतिनेतद्वचश्चुत्वा गत्वा तत्कानन द्विजा । ददृशुर्भास्करस्तस्तत्रपुण्यमायतनशुभम्  
तत्रने नियतादारा वर्णाविप्रादयोद्विज । धूपपुष्पोपहाराद्यापूजाश्चक्रुरतन्द्रिता  
पुष्पानुलेपनाद्यैश्च धूपगन्धादिकैस्त्वया । जपहोमाश्चदीपाद्यै पूजनन्ते ममाहिता  
कुर्वन्तस्तुष्टुबुधंलन् । विवस्वन्त द्विजातय ॥ ६१ ॥

ब्राह्मणा ऊचु

देवदानवयक्षाणा ग्रहाणाज्योतिषामपि । तेजसाम्यधिः देवंजजाम शरणरयिम्  
दिविस्थितश्च देवेशप्रोतयन्तसमन्तत । वसुधामन्तरीक्षञ्चव्याप्नुवन्मरीचिभि  
आदित्य भास्कर भानु सवितार दिवाकरम् ।

पूयणमार्यमाण च स्वर्भानु दीप्रदीधितिम् ॥ ६४ ॥

स्तुसुगान्तकालाग्निं दुष्येक्ष्य प्रलयान्तगम् ।

योगीश्वरमनन्त च रक्त पीत सितासितम् ॥ ६५ ॥

ऋषीणामग्निहोत्रेषु यज्ञदेवेष्ववस्थितम् । अक्षर पद्म गुण्य मोक्षदारमनुत्तमम् ॥  
' छन्दोभिरुद्धरूपैश्च सष्टयुर्नैर्विहङ्गमम् । उद्यास्तमने युक्त सदा मेरो प्रदक्षिणे ॥  
अनृतश्च अतश्चैव पुण्यतीर्थं पृथग्विधम् ।

विश्वस्थितिमचिन्त्यञ्च प्रपन्नाः स्म प्रभाकरम् ॥ ६८ ॥

यो ब्रह्मा योऽमहादेवो योविष्णुर्यः प्रजापतिः ।

चायुराकाशमापश्च पृथिवीगिरिसागराः ॥ ६९ ॥

ग्रहनक्षत्रचन्द्राद्या चानस्पत्यं द्रुमौषधम् । व्यक्ताव्यक्तेषुभूतेषुधर्माधर्मप्रवर्त्तकः ॥

ब्राह्मी माहेश्वरी चैव वैष्णवी चैव ते तनुः ।

त्रिधा तस्य स्वरूपन्तु भानोर्भास्वान् प्रसीदतु ॥ ७१ ॥

यस्य सर्वमजस्येदमद्भूतं जगत् प्रभोः ।

सनः प्रसीदतां भास्वान् जगतां यश्च जीवनम् ॥ ७२ ॥

यस्यैकभास्वरूपंप्रभामण्डलदुर्हंशम् । द्वितीयमैन्दवंमौम्यंसनोभास्वान् प्रसीदतु

ताभ्याञ्च यस्य रूपाभ्यामिदं विश्वं विनिर्मितम् ।

अग्नीषोममयं भास्वान् स नो देवः प्रसीदतु ॥ ७४ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्थं स्तुत्या तदा भक्त्या सम्प्रक् पूजयतां तथा ।

तुतोप भगवान् भास्वांसित्रभिर्मांसैर्द्विजोत्तम ! ॥ ७५ ॥

ततः स मण्डलादुद्यन्निजविश्वसमप्रभः । अवतीर्य ददौ तेभ्यो दुर्हंशो दर्शनं रविः

ततस्ते स्पष्टरूपं तं सचितारमजं जनाः । पुलकोत्कम्पिनोविप्राभक्तिनम्राः प्रणेमिरे

नमोनमस्तेऽस्तु सहस्ररश्मे! सर्वस्य हेतुस्त्वमशोषकेतुः ।

पातात्वर्माड्योऽग्निलयज्ञधाम! ध्येयस्तथा योगविदां प्रसीद ! ॥ ७८ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे भानुस्तोत्रवर्णनं नाम-

नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥



## दशाधिकृततमोऽध्याय.

### भानोर्माहात्म्यवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

नत प्रमथो भगवन् भानुराहाधिदजनम् । नियतायदभिप्रेत मत्तप्राप्नुहिजादय

मार्कण्डेय उवाच

ततस्ते प्रणिपत्योचुर्विप्र ! विप्रादयो जना ।

सन्नाध्वममशीनारुमज्जलोत्त पुर स्थितम् ॥ २ ॥

प्रया ऊचुः

ततस्तप्रणिपत्योचुर्नरदजगदीश्वरम् । भगवन् ! यद्विनोमकन्याप्रमथस्तिमिरापह

दशदण्डमहस्याणिततो नो जीवना नृप । निरामयोजिताराति सुकोपस्थिरदीवत

दशवपमहत्त्रापि जीवता राज्यवर्द्धन ॥ ४ ॥

मार्कण्डेय उवाच

तथे युक्त्वा जनान् भास्यान् दुर्दृशोऽभून्महामुने ! ।

तेऽपि लब्धवरा हृष्टा समाजमुज्जनेश्वरम् ॥ ५ ॥

यथावृत्तञ्जितस्मिनरेन्द्रा न्यपदेदयन् । वर लब्ध्वा सहस्राशो सकाशाद्विलड्विज

तच्छ्रुत्वा जहृपे तस्य सा पत्नी मानिनी द्विज ! ।

स च राजा धिर दध्यौ नाह किञ्चिद्य त जनम् ॥ ७ ॥

ततः सा मानिनी भूर्पुं हर्षापूरितमानसा ।

दिष्ट्वाऽऽयुगा महीपाल ! वर्द्धस्थेत्याह त पतिम् ॥ ८ ॥

तथा तथा मुदा भर्ता मानिन्याथ समाजित ।

नाह किञ्चिन्महीपालश्चिन्ताजडमता द्विज ! ॥ ९ ॥

सा पुन प्राह भर्तारं चिन्तयानमधोमुखम् । कस्माच्चहर्षमभ्येदिपरमाभ्युदयेतृष !

दशवर्षसहस्राणि नीरुजः स्थिरयौवनः । भार्वात्यमद्यप्रभृति किं तथापिनदृष्यन्ते  
किन्तुतत्कारणं ब्रूहि यच्चिन्ताकृष्टमानसः । परमान्युदयेऽपि त्वं सम्प्राप्तेपृथिवीपते ।

राजोवाच

कथमन्युदयो भद्रे ! किं सभाजयसे घ माम् ।

प्राप्तो दुःखसहस्राणां किं सभाजनयिष्यते ॥ १३ ॥

दशवर्षसहस्राणि जीविष्याम्यहमेककः । न त्वंतवविपत्तीं मे किञ्च दुःखं भविष्यति  
पुत्रान् पौत्रान् प्रपौत्रांश्च तथान्प्रानिष्टवान्धवान् ।

पश्यतो मे मृतान् दुःखं किमल्पं हि भविष्यति ॥ १४ ॥

भृत्येषुवातिभक्तेषु मित्रवर्गे तथा मृते । भद्रे ! दुःखमपारं मे भविष्यति तु मन्ततम्  
यैर्मर्द्यं तपस्तनं कृशैर्धर्मनिसन्ततैः । ते मरिष्यन्त्यहं भोगी जीविष्यामीति धिक्करम्

स्येमापहरारोहे ! प्राप्ता नान्युदयो मम ।

कथं वा मन्यसे न त्वं यत्सभाजयसेऽद्य माम् ॥ १८ ॥

मानिन्युवाच

महाराज ! यथात्थत्वंतथैवंनात्र संशयः । मया पौरैश्च दोषोऽयं प्रीत्यानालोकितस्तव  
एवं गतेऽत्र किं कार्यं नरनाथ ! विप्रिन्त्यताम् ।

नान्यथा भावि यत्प्राह प्रसन्नो भगवाच्चरिः ॥ २० ॥

राजोवाच

उपकारः कृतः पौरैः प्रीत्या भृत्यैश्च यो मम ।

कथं भोक्ष्यम्यहं भोगान् गत्वा तेषामनिष्कृतिम् ॥ २१ ॥

सोऽहमद्यप्रभृत्याद्रिगत्वानियतमानसः । तपस्तप्येनिराहारोभानोराराधनोद्यतः  
दशवर्षसहस्राणियथाहं स्थिरयौवनः । तस्य प्रसादाद्देवस्य जीविष्यामि निरामयः  
तथायदि प्रजाः सर्वाः भृत्यास्त्वञ्जमुनाश्च मे । पुत्राः पौत्राः प्रपौत्राश्च सुहृदश्च वरानने ।

जीवन्त्येतं प्रसादं न करोति भगवाच्चरिः ।

ततोऽहं भविता राज्ये मध्ये भोगांस्तथा मया ॥ २५ ॥

नचेदेवकरोत्यर्कस्तद्दत्तव्रतमानिनि । तपस्तप्स्येतिराहारोयावज्जीवितसङ्क्ष

माकण्डेय उवाच

इत्युक्त्वा सा तदातेनृतयेत्याहनराधिपम् । जगामनेनघमम साऽपि धरर्णाधि

स तदायतनगत्या भायया सह पार्थिव । भानोराधनञ्चक्रे शुश्रूषानिरतो द्वि

निराहारृश सा च यथासौ पृथिवीपति । नेपे तपस्तपैवोप्रशीतघातातपसः

तस्यपूजयतो भानु तप्यन्क्षतपो महन् । साग्रे नम्वल्मरेयाते ततःश्रीतोदिवाक

समस्तभृयपीरादिपुत्राणाञ्च वृत्ने द्विन । ददौयथाभिलपित वरद्विनवरोत्तम

त्तथा वर स नृपति समभ्येत्यात्मन पुत्रम् ।

घकार मुदितो रात्र्य प्रजा धर्मेण पात्र्यन् ॥ ३२ ॥

ईने यज्ञान् स च गृह्णन् ददौ दानान्यहर्निशम् ।

मानिन्या सहितो भोगान् बुभुवे च स धमयित् ॥ ३३ ॥

दशवयसहस्राणिपुत्रर्षीत्रादिभि सह । भृत्यै पीत्रै समुदित सोऽभवत्स्थिररथीय

तस्येतिघरित दृष्ट्वा प्रमतिनाम भागव । चिन्मयादृष्टद्वयो गाथामेतामगायत

मानुभनेहो'शक्तियद्राजाराज्यवर्द्धन । आयुषो वर्द्धनेजान स्वजनस्यतया मन

इति ते कथित विप्र । यत्पुत्रोऽह त्वया विभो ।

आदिदेवस्य माहात्म्यादित्यस्य विवस्यत ॥ ३७ ॥

विप्रैस्तदखिल श्रुत्वा भानोमाहात्म्यमुत्तमम् ।

पठञ्च मुच्यते पापे सप्तरात्रवृत्न नर ॥ ३८ ॥

अरोगी घनवानाढ्य कुले महतिर्धामताम् । जायते च महाप्राशोयश्चैतद्धारयेद्बुध

मन्दाञ्च येऽत्राभिहिता भास्यतो मुनिमत्तम ।

नाप प्रयेक्रमेतेषा त्रिसन्ध्यं पातकापह ॥ ४० ॥

समस्तमेतन्माहात्म्य यत्र घायतने रथेः । पठयेतत्रभगवान् साप्रिच्यनविमुञ्चति

तन्मादेतत् त्वया ब्रह्मन् । भानोर्माहात्म्यमुत्तमम् ।

घातयं मनसि जाप्यञ्च मह पुण्यमभीप्सता ॥ ४२ ॥

सुवर्णशृङ्गीमतिशोभनाङ्गो पयस्विनीं गां प्रददाति यो हि ।  
 शृणोति चैतत् त्र्यहमात्मवाचरः समंतयोः पुण्यफलं द्विजाग्रथ ! ॥ ४३ ॥  
 इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भानीर्माहात्म्यवर्णनं नाम दशाधिक-

शततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥

### एकादशाधिकशततमोऽध्यायः

वंशानुक्रमेमित्रावरुणेत्यामपचारादिलाख्यानवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

एवमप्रभाचो भृगवाननादिनिधनो रविः ।  
 यस्य त्वं कौण्डिके! भक्त्या माहात्म्यं मयि पृच्छसि ॥ १ ॥  
 परमात्मा स योगीनां युञ्जतां चेतसां लयम् ।  
 क्षेत्रज्ञः साङ्ख्ययोगानां यज्ञेशो यज्विनामपि ॥ २ ॥  
 सूर्याधिकारं वहतो विष्णोरीशस्य वैभ्रसः ।  
 मनुस्तस्याऽभवत् पुत्रश्छिन्नसर्वार्थसंशयः ॥ ३ ॥

मन्वन्तराधिपो विप्र यस्य सप्तममन्तरम् । इक्ष्वाकुर्नाभगो रिष्टोमहाबलपराक्रमाः  
 नरिष्यन्तोऽथनाभागःपूषधोधृष्टण्व च । एते पुत्रामनौस्तस्यपृथग्राज्यस्यपालकाः

विख्यातकीर्त्तयः सर्वे सर्वे शास्त्रास्त्रपारगाः ।

विशिष्टतरमन्विच्छन् मनुः पुत्रं तथा पुनः ॥ ६ ॥

मित्रावरुणयोरिष्टिं चकार कृतिनाम्बरः । यत्र चापहते होतुरपचारान्महामुने ! ॥  
 इला नाम समुत्पन्नामनोःकन्यासुमथ्र्यमा । तां दृष्ट्वाकन्यकांतत्रसमुत्पन्नां ततोमनुः  
 तुष्ट्राव मित्रावरुणौवाक्यञ्ज्वेदमुवाचह । भवत्प्रसादान्तनयोविशिष्टो मे भवेदिति  
 कृते मखे समुत्पन्नातनया मम धीमतः । यदि प्रसन्नौचरदौतदियं तनया मम ॥ १० ॥

प्रसादाद्भवतोः पुत्रो भवत्वतिगुणान्वितः ।

इला ममभवत् सद्य सुद्युम्न इति विभ्रुतः । पुनश्चेत्परकोपेन मृगव्यामग्ना वने ।  
स्त्रीत्वमान्मादित्त तैर्न मनुपुत्रेण धामता । पुरुरधसनामान चक्रवर्तिनमूर्जितम् ।  
जनयामास तनय यत्रसोमसुता बुधः । नाते सुनेपुनः कृत्वा सोऽवमेध महाव्रतम्  
पुरुरधमनप्राप्ता सुद्युम्न पार्थिवोऽभवत् ।

सुद्युम्नस्य त्रय पुत्रा उत्कलो वितयो गय ॥ १५ ॥

पुरुरधे महावीर्या यस्मिन् श्रुत्वा तस्य । पुरुरधे तु येनातास्तस्य राजस्य सुता  
बुभुनुस्ते महीमेना धम नियतचेतसः । स्त्रीभूतस्य तुयो जानस्तस्य राजः पुरुरधा  
न स लेभे महाभाग यतोबुधसुतो हि सः । ततोवशिष्टप्रघनात् प्रतिष्ठानपुरोत्तमम्  
तस्मै दत्त स राजाभूत्तजातीयमनोहरे ॥ १८ ॥

इति श्रीमाकण्डेयपुराणवशानुक्रमोनामैकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥

## द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः

### पृथगोपारयानवर्णनम्

माकण्डेय उवाच

पृथग्वारुणो मनोः पुत्रोमृगव्यामगमडनम् । तत्रचडक्रममाणोऽमीचिपिने निजनेघने  
नासम्माद मृग कञ्चिद्गानुदीधिनितापितः । श्रुत्वा तापपरीताद्गृह्णतश्चतश्च चडक्रम  
स ददश तदा तत्र होमधेनुं मनोहराम् ( वनोदरे ) ।

स्वाध्यायिनोघनान्तस्य ( एतान्तर्देहछिन्नाधा ) द्वाह्यणस्याग्निहोत्रिणः ॥ ३ ॥

स मन्यमानो गवयमिपुणातामताडयत् । पपातमाऽपितद्व्याणविभिन्नदृश्या भुवि  
ततोऽग्निहोत्रिणः पुत्रा व्रजघारा तपोरतिः ।

शमवान् स पितुर्दृष्ट्वा होमधेनुं निपातिताम् ॥ ५ ॥

गोपालः प्रपिब पुत्रोवाव्रयोनाम नामतः । कोपामगपरार्थीनचित्तवृत्तिस्ततोमुने  
बुकोप विगलत्स्वेदवत्कालाविलक्षणः । तद्बुद्धप्रस्य स कृपः श्रुत्वा मुनिदारुणम्  
प्रमीद्वेति जगी कस्मात् शूद्रघ्नः कुरुषे ह्यम् ।

न क्षत्रियं न वा वैश्यमेवं क्रोधमुपैति वै ।

यथा त्वं शूद्रवजातो विशिष्टे ब्रह्मणः कुले ॥ ८ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति निर्भत्सितस्तेन मा राजा मौलिनः सुतः

शशाप तं दुरात्मानं शूद्र एव भविष्यति ॥ ९ ॥

प्रयास्यति क्षयं ब्रह्मयत्तेऽधीतं गुरोर्मुखात् । होमधेनुर्मम गुरोर्यद्वियं हिंमिता त्वया  
एवं शप्तो नृपः क्रुद्धस्तच्छापपरिपीडितः । प्रतिशापपरोविप्रतोयं जग्राह पाणिना  
सोऽपि राजो चिनाशाय कोपञ्जके द्विजोत्तमः ।

तमभ्येत्य त्वरायुको वास्यामास वै पिता ॥ १२ ॥

वत्सालमलमत्यर्थं कोपेनायाति वैरिणा । पेहिकामुष्मिकहितः शमपवद्विजन्मनाम्  
कोपस्तपो नाशयतिक्रुद्धो भ्रश्यत्यथायुषः । क्रुद्धस्य गलते जानं क्रुद्धार्थाग्रहीयते ॥

न धर्मः क्रोधशीलस्य नार्थञ्चाप्नोति रोषणः ।

नालं सुखाय कामाप्तिः कोपेनाविष्टचेतसाम् ॥ १५ ॥

यदि राजा हता धेनुरियं चिन्तानिनासता । युक्तमत्र दयां कर्तुमात्मनो हितवोधिना  
अथवाऽजानता धेनुरियं व्यापादितामम । तत्कथं शापयोगोऽयं दुष्टनास्यमनोयतः

आत्मनो हितमन्विच्छन् चाधते योऽपरं नरः ।

कर्तव्या मूढविज्ञाने दया तत्र दयालुभिः ॥ १८ ॥

अज्ञानतः कृते दण्डं पातयन्ति बुधा यदि ।

बुधेभ्यस्तमहं मन्ये वरमज्ञानिनो नराः ॥ १९ ॥

नाद्य शापस्त्वया देयः पार्थिवस्यास्य पुत्रक ॥

स्वकर्मणैव पतिता गौरेण दुःखमृत्युना ॥ २० ॥

मार्कण्डेय उवाच

पूषधोऽपि मुनेः पुत्रं प्रणम्यात्प्रकृत्युरः । प्रसीदेति जगद्गोक्षेत्रज्ञानाद्वा तिते तिस्र  
मया गवयबुद्ध्या गौरवश्या अतिता मुनेः । अज्ञानाद्दोमधेनुस्तेः प्रसीदत्वञ्चनो मुने

ऋषिपुत्र उवाच

आजन्मनो महीपालनमयाव्याहित मृषा । क्रोधश्चाद्य महाभागनान्यथामेकदाघ्न  
तत्राहमेनं शक्नोमिशापकर्तुं नृपान्यथा । यस्तेसमुद्यत शापोद्वितीयसं निवर्तित  
इत्युत्तवन्त त वान्मादायसपितातत । जगामस्वाधमसोऽपिपृग्ध्र शूद्रनामगात्  
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेपृग्ध्रोपाख्याने द्वादशाधिकशततमोऽध्याय ॥ ११२ ॥

त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः -

नाभागचरित्रवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

कारूपा क्षत्रिया शूरा करूपस्याभवन्सुता ।

ते तु सप्तशता धीरास्तेभ्यश्चान्ये सएश्वरा ॥ १ ॥

दिष्टपुत्रस्तु नाभाग स्थित प्रथमयौवनैः । दर्शं वैश्यतनयामतीच सुमनोहराम्

तस्या सं दृष्टमात्राया मदनाक्षिनमानस । बभूव भूपतनयो निश्वासाक्षेपतत्पर

तस्या सं गत्वा जनक वने ता वैश्यकन्यकाम् ।

ततोऽनङ्गपराधीनमनोवृत्तिं नृपात्मजम् ॥ ४ ॥

तज्जाह सपिता तस्या राजपुत्र वृताञ्जलि । विभ्यत्तस्य पितुर्विप्रप्रथयाधनतंघच

भवन्तो भूभुजोभृत्याद्यर्षय करदायवा । कयसम्बन्धमसमैरस्माभिरभिवाञ्छसि

राजपुत्र उवाच

साम्य मानुषदेहस्य काममोहादिभिः कृतम् ।

तथापि काठे तैरेष योज्यते मानुषं यषु ॥ ७ ॥

तथैव क्षोपकाराय जायन्ते तस्य सान्धरि ।

अन्यानि घान्ये जीवन्ति भिन्नजातिमताः सताम् । ८ ॥

१५२५

तथान्यान्ययोग्यानि योग्यतां यान्ति कालतः ।

योग्यान्ययोग्यतां यान्ति कालवश्या हि योग्यता ॥ ६ ॥

आप्याय्यते यच्छरीरमाहारादिभिरीप्सितैः ।

कालं ज्ञात्वा तथा भुक्तं तदेव परिशिष्यते ॥ १० ॥

इत्थं ममैषाभिममतातनयादीयतां त्वया । अन्यथा मच्छरीरस्यविपत्तिरूपलक्ष्यते  
वैश्य उवाच

परतन्त्रा घयं त्वञ्च परतन्त्रो महीभुजः । पित्रातेनाभ्यनुज्ञातस्त्वंगृहाणददाम्यहम्  
राजपुत्र उवाच

प्रष्टव्याः सर्वकार्येषु गुरवो गुरुवर्तिभिः । नत्वीदृशेष्वकार्येषु गुरुणांवाक्यगोचरः  
क मन्मथकथालापो गुरुणां श्रवणं कथम् । विरुद्धमेतदन्यत्र प्रष्टव्या गुरवो नृभिः  
वैश्य उवाच

एवमेतत्स्मरालापस्तवार्यंपृच्छतोगुरुम् । अहंपृच्छामिनालापोममकामकथाश्रयः  
मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्तःसोऽभवन्मौनीराजपुत्रःसचापितत् । तत्पित्रे सर्वमाचष्टराजपुत्रस्ययन्मतम्  
ततस्तस्य पिता विप्रानृचीकादीन् द्विजोत्तमान् ।

प्रवेश्य राजपुत्रञ्च यथाख्यातं न्यवेदयत् ॥ १७ ॥

निवेद्यच ततःप्राह मुनीनेवं व्यवस्थितम् । यत्कर्तव्यं तदादेष्टुमर्हन्तिद्विजसत्तमाः  
ऋषय ऊचुः

राजपुत्रानुरागस्ते यद्यस्यां वैश्यसन्ततौ । तदस्तुधर्मण्यैव किन्तु न्यायक्रमेण सः  
मूर्द्धाभिषिक्ततनया पाणिग्राहोऽभवत्पुरा । भवत्वनन्तरञ्चेयं तवभार्याभविष्यति  
एवं न दोषोभवतितथेमामुपभुञ्जतः । अन्यथाऽभ्येतितेजातिरुक्कृष्टावालिकां हरन्

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्तस्तदपास्यैव चर्चस्तेषां महात्मनाम् ।

चिन्तिष्कस्य गहीत्वा तामशतास्मिन्शावरीन् ॥ २२ ॥



राक्षसेनविवाहेनमयाप्येयमुताहता । यन्व्य सामर्थ्यमत्रास्तिमप्यतामोचयन्त्विति  
 तत स वैश्यान्ना दृष्ट्वागृहीताननया द्रुतम् । प्राहीतिपितरन्तस्यप्रथमशरणद्वित्र ।  
 ततस्तस्यपितान्बुद्ध आदिदेश बल महत् । हन्यता हन्यतादुष्णे नाभागोधर्मदूषक  
 ततस्तद्युधे सैन्येन भूभृसुतेन वै । हताद्यत्र तदास्त्रेण तन्प्राचुर्य्यण पातितम्  
 स श्रुत्वा निहतसैन्य राजपुत्रेणभूपति । स्वयमेवययौबोद्ध स्वसैन्यपरिवारित  
 ततोयुद्धमभूत्सः भूभृत्स्वसुतेन यत् । राजपुत्रेणशास्त्रास्त्रेणप्रातिशयित पितर  
 ततोऽन्तरीक्षादागत्य परित्रात् महता मुनि ।

प्रयुवाच महीपालं विरमस्वेति मयुगात् ॥ २६ ॥

त्वत्पुत्रस्य महाभाग ! विधर्मोऽय महात्मन ।

तवापि वैश्येन सह न युद्ध धर्मचन्द्रप ! ॥ ३० ॥

ब्राह्मणो ब्राह्मणापूर्वं कुर्वन्दारपिग्रहम् । ब्राह्मण्यात्सर्ववर्णेषु नहानिमुपगच्छति  
 तथैवक्षत्रियसुता क्षत्रिय पूर्वमुद्बहत् । इतरे च ततो राजश्च्यवन्ने न स्वधमत ॥

पूर्वं वैश्यस्तथा वैश्या पश्चात् द्रुद्रकुलोद्भवाम् ।

न हीयते वैश्यकुलादय न्याय क्रमोदित ॥ ३३ ॥

ब्राह्मणा क्षत्रियावैश्या स्वर्णा पाणिमद्ग्रहम् ।

अकृत्वान्यतरापाने पतन्ति नृपे सद्ग्रहात् ॥ ३४ ॥

यस्या यस्या हि हीनाया कुरुते पाणिसग्रहम् ।

अकृत्वा वर्णसयोग नोऽपि तद्भस्नुमाग्मयेत् ॥ ३५ ॥

सोऽय वैश्यत्वमापन्नस्य पुत्र स मन्धी ।

नास्याधिकारो युद्धाय क्षत्रियेण त्वया सह ॥ ३६ ॥

वयमेतन्नतानीम कारण नृपतन्दन ! यथाभविष्यतीदृश निवृत्त रणकर्मत ॥३७॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे नाभागचरित्रवर्णन नाम

त्रयोदशाधिकशततमोऽध्याय ॥ ११३ ॥

# चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः

## नाभागचरितवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

निवृत्तोऽसौ ततो भूपः संग्रामात्स्वसुतेन वै । उपयेमेव तां वैश्यतनयां सोऽपितत्सुतः

ततः स वैश्यतां प्राप्तः समुत्पत्याह पार्थिवम् ।

भूपाल ! यन्मया कार्यं तत् समादिश्यतां मम ॥ २ ॥

राजोवाच

धर्माधिकरणेषु का वाम्नव्याद्यास्तपस्विनः । यदस्य कर्म धर्माय तद्दन्तु तथा चर

मार्कण्डेय उवाच

ततस्ते मुनयस्तस्य पाशुपाल्यं तथा कृपिम् । वाणिल्यञ्च परं धर्ममाचक्षुः सभासदः

तथा च चक्रैः समुत्तस्य राज्ञो यथोदितम् । तैर्धर्मवादिभिर्धर्मं च्युनस्य निजधर्मतः

तस्य पुत्रस्ततो जातो नाम्ना ख्यातो भलन्दनः ।

स मात्रा प्रहितोऽगच्छद्गोपालो भव पुत्रक ! ॥ ६ ॥

मात्रा तथा नियुक्तोऽथ प्रणिपत्य स्वमातरम् ।

राजर्षिमगमन्नीपं हिमवत्पर्वताश्रयम् ॥ ७ ॥

तं समेत्य स जग्राह तस्य पादौ यथाविधि । प्रणिपत्याह चैवै नं राजर्षिं सभलन्दनः

आदिष्टो भगवन्मात्रा गोपालस्त्वं भवेति वै ।

मया च पालनीया क्षमा तस्या स्वीकरणं कथम् ॥ ६ ॥

मया हि गौः पालनीया सा यदा स्वीकृता भवेत् ।

आक्रान्ता बलवद्भिः सा दायद्वैः पृथिवी मम ॥ १० ॥

तां यथा प्राप्नुयां पृथ्वीं त्वत्प्रसादादहं विभो ! ।

तथाऽऽदिश करिष्यामि तंवाज्ञां प्रणतोऽस्मि ते ॥ ११ ॥

माकण्डेय उवाच

तत सर्वापो रात्रिर्पिस्तस्मै नित्यशपत । भलन्दाय ददौ ब्रह्मब्रह्मप्राप्तं महामने ॥

प्राप्तास्त्रविद्यः स यवीं पितृवतनयान् द्विज ।

धसुरातादिकान् पुत्रानादिषु स महामना ॥ १३ ॥

अथाद्यत स राज्याद्धं पितृपैतामहोचितम् ।

त घोचुर्वैश्यपुत्रस्त्य कथं भोक्षयामि मेदिनाम् ॥ १४ ॥

ततस्तैषु क्षमभवद्भलन्दस्या मवशजै । धसुरातादिभिः कृद्धैः कृतास्त्रस्यास्त्रविधिभिः

स नित्या तानशपांस्तु शस्त्रविक्षतमैनिकान् ।

नहार पृथिवीं तेषां धमयुद्धेन धमवित् ॥ १६ ॥

स निर्नितारि सकरा पृथ्वीं राज्यं तथा पितु ।

निवेद्यामासततस्तपिताजगृहेनघ । प्रयुवाच च तं पुत्रं भाव्याया पुरतस्तदा

नाभाग उवाच

भग्नं राज्यमेतत्तं त्रियतां पूत्रजैः कृतम् ॥ १८ ॥

राजोवाच

अहं न कृतवाप्राप्त्य नामामध्ययुतपुरा । वैश्यता तु पुरस्त्वृत्य तथैवाहाकर पितु

कृत्वाऽप्रीतिं पितुरहं वैश्यकथापरिग्रहात् ।

न पुण्यलोकभाप्रानां यावदाहृतसंग्रह ॥ २० ॥

उत्पद्यमाना पुनस्तस्य पालयामि महीं यन्त्रि ।

नास्ति मोक्षस्ततो नूनं मम कपशतैरपि ॥ २१ ॥

नद्यापियुक्तत्वदुगाहुर्निर्जितमममामिन । राज्यभोक्तुमर्नाहस्यदुबलस्येहकस्यचित्

राज्यं कुरु स्वयं यावत्पायादैन्यो विमुञ्च वा ।

ममाहापालनं शस्तं पितुः शक्तिपालनम् ॥ २३ ॥

माकण्डेय उवाच

ततः प्रहस्य तद्वाप्यां सुप्रभा नाम भामिनी ।

- प्रत्युवाच पतिं भूप ! गृह्यतां राज्यमूर्जितम् ॥ २४ ॥

नत्वंवैश्येनघैवाहंजातावैश्यकुलेनृप ! क्षत्रियस्त्वं तथैवाहंक्षत्रियाणां कुलोद्भवा  
पूर्वमासीन्महीपालःसुदेव इतिविश्रुतः । तस्याभूच्चसखाराज्ञोधूम्नाश्वस्य सुतो नलः

स तेन सख्या संहितो जगामाऽऽप्रवनं वनम् ।

पत्नीभिः स समं रन्तुं माथवे मासि पार्थिव ! ॥ २७ ॥

ततः पानान्यनेकानि भक्ष्याणि वुभुजे तथा ।

भाय्याभिः सहितस्ताभिस्तेन सख्या समन्वितः ॥ २८ ॥

ततःपुष्करिणीतीरे ददर्शातिमनोरमाम् । पत्नींच्यवनपुत्रस्य प्रमतेःपार्थिवात्मजाम्  
सखातस्यनलोमत्तोजगृहेताञ्चदुर्मतिः । पश्यतस्तस्यराज्ञश्चत्रातत्रातेतिवादिनीम्

आक्रन्दितं निशम्यैव स तस्याः प्रमतिः पतिः ।

आजगाम त्वरायुक्तः किमेतदिति वै वदन् ॥ ३१ ॥

ततो ददर्श राजानं सुदेवं तत्र संस्थितम् । गृहीताञ्चतथा पत्नीं नलेन सुदुरात्मना  
ततःसुदेवंप्रमतिःप्राहायंशाश्रयतामिति । त्वञ्चशास्ताभवान्राजादुष्टश्चायंनलो नृप !

मार्कण्डेय उवाच

तस्यार्त्तस्य वचः श्रुत्वा सुदेवो नलगौरवात् ।

प्राह वैश्योऽस्मि गच्छाऽन्यं क्षत्रियं त्राणकारणात् ॥ ३४ ॥

ततः स प्रमतिः क्रुद्धस्तेजसानिर्दहन्निव ।

प्रत्युवाचाथ राजानं वैश्योऽस्मीत्यभिभाषिणम् ॥ ३५ ॥

प्रमतिरुवाच

एवमस्तुभवान् वैश्यक्षत्रियःक्षतरक्षणात् । क्षत्रियैर्धार्म्यतेशखंनार्त्तशब्दोभवेदिति

स त्वं न क्षत्रियो भावी वैश्य एव कुलाश्रमः ॥ ३६ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे नाभागघरित्रवर्णननाम

चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥

## पञ्चदशाधिकशततमोऽध्याय

नाभागस्यवैश्यनिराकरणेकारणनिरूपणवर्णनम्

भार्कण्डेय उवाच

तस्मै दत्त्वा तत्र शापं नलं क्रुद्धोऽग्रवीरु द्विज ! ।

प्रमतिर्भागव कोपात् त्रैलोक्यं निदहन्निव ॥ १ ॥

मदोन्मत्तो यदा भार्या भवानत्र ममाश्रमे ।

बलाद्भ्रष्टासि भस्म त्वं तस्माद्भवजतु मा घिष्णु ॥ २ ॥

तेनोदाहृतमाश्रमे च घाक्ये तस्मिन् तदा नः ।

देहजेनाग्निना सद्यो भस्मपुञ्जस्तदाऽभवत् ॥ ३ ॥

दृष्ट्वा प्रभावं तत्तस्य सुदेवो विमदन्तत । प्रणामनघ्नं प्राहेद् क्षम्यताक्षम्यतामिति  
यदुक्तवास्त्वं भगवन् ! सुरापानमदाकुलम् ।

तत् क्षम्यतां प्रसीद त्वं शापोऽयं चिन्विषयताम् ॥ ५ ॥

एवप्रसादितस्तेन प्रमतिं प्राह भागव । गतकोपो नः त्रे दग्धे भावहीनेन चेतसा  
नान्यथाभावि-त्तद्वाक्यं यन्मया समुदीरितम् ।

तथापि ते करिष्यामि प्रमन्नोऽनुग्रहं परम् ॥ ७ ॥

भविता वैश्यजातीयो भवाध्नास्त्यत्र संशयः ।

भविता क्षत्रियो वैश्यस्तस्मिन्नेवाशु जन्मनि ॥ ८ ॥

ग्रहीष्यति बलात् कन्यां यदा ते क्षत्रसम्भवः ।

तदा त्वं क्षत्रियो वैश्य ! स्वगृहीतो भविष्यति ॥ ९ ॥

एव स वैश्यो भूपाः ! सुदेवोऽस्मत्पिताऽभवत् ।

अहञ्च या महाभाग ! त्वत्सर्वं श्रूयतां त्वया ॥ १० ॥

सुरधोतामराजर्षिं प्रागासीद्बन्धमादने । तपस्वीनियताहारस्त्यक्तसङ्गोयनाश्रय

ततःश्येनमुखभ्रष्टां दृष्ट्वैकां शारिकाम्भुवि ।

कृपाऽभूज्जनिता मूर्च्छा तथा तस्य महात्मनः ॥ १२ ॥

ततो मूर्च्छावसानेऽहं तस्योत्पन्नाशरीरतः । समांदृष्ट्वाचजग्राहस्त्रिह्यमानेनचेतसा  
यस्मात्कृपाभिभूतस्य मम जातेयमात्मजा ।

तस्मात्कृपावतीनाम्ना भविष्यत्याह स प्रभो ! ॥ १४ ॥

ततोऽहमाश्रमेतस्य वर्धमाना दिवानिशम् ।

सखीभिः सह तुल्याभिर्विचरामि वनानि च ॥ १५ ॥

ततोमुनेरगस्त्यस्य भ्राताऽगस्त्य इति श्रुतः ।

स चिन्वन् कानने घन्यं सखीभिः कोपितोऽशपत् ॥ १६ ॥

नापराधं कृतवती तवाहं द्विजसत्तम ! । अन्यासामपराधेन किमर्थं शप्तवानसि  
ऋषिरुवाच

दुष्टतां दुष्टसंसर्गाददुष्टमपिगच्छति । सुराविन्दुनिपातेन पञ्चगव्यवटी यथा ॥ १८

प्रणिपत्य न दुष्टास्मि यत्त्वयाहं प्रसादितः ।

तस्मादनुग्रहं चाले ! शृणुयात् ते करोम्यहम् ॥ १९ ॥

वैश्ययोनी यदा जाता त्वं पुत्रं बोधयिष्यसि ।

राज्याय जातिस्मरतां तदा त्वं समवाप्स्यसि ॥ २० ॥

ततो भूयः क्षत्रजार्तिं प्राप्ता त्वं पतिना सह ।

दिव्यानवाप्स्यसे भोगान् गच्छ भीतिरपैतु ते ॥ २१ ॥

एवं शप्तास्मि राजेन्द्र तेन पूर्वं महर्षिणा । पिताचमेपूर्वमेवं शप्तः प्रमतिनाऽभवत्

एवं वैश्यो न राजंस्त्वं न च वैश्यः पिता मम ।

न त्वं हि मय्यदुष्टायामदुष्टो दुष्यसे कथम् ॥ २३ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे नाभागस्यवैश्यजातित्वनिराकरणवर्णनंताम-  
पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११५ ॥



एकदा तु वनं यातो मृगयां स चिदूरथः । ददर्श गतं सुमहद्भूमेर्मुखमिवोद्गतम् ॥  
तं दृष्ट्वाचिन्तयामासकिमेतदिति भैरवम् । पातालविवरंमन्ये नैतद्भूमेश्चिरन्तनम्  
चिन्तयन्निति तत्रासौ ददर्श विजने वने । ब्राह्मणं सुव्रतं नाम तपस्विनमुपागतम्

स तं पप्रच्छ स नृपः किमेतदिति विस्मितः ।

अतिगम्भीरमवनेर्दर्शितान्तर्गतोदरम् ॥ १४ ॥

ऋषिरुवाच

किन्न वेत्सि महीपाल! वागर्थस्त्वं हि मे मतः ।

ज्ञेयं सर्वं नरेन्द्रेण वर्तते यन्महीतले ॥ १५ ॥

दानवः सुमहावीर्यो वसत्युग्रो रसातले ।

स जम्भयति यत्पृथ्वीं कुजृम्भः प्रोच्यते ततः ॥ १६ ॥

क्रियते तेन यत्किञ्चिद्भूतं भूतं महीतले । त्रिदिचे वा नरपते तं कथं वेत्तिनोभवान्

सुनन्दं नाम मुपलं त्वद्गा यन्निर्मितं पुरा ।

तज्जहार स दुष्टात्मा तेन हन्ति रणे रिपून् ॥ १८ ॥

पातालान्तर्गतस्तेन भिनत्ति वसुधामिमाम् ।

ततोऽसुराणां सर्वेषां द्वाराणि कुरुतेऽसुरः ॥ १९ ॥

तेन भिन्नात्रवसुधासुनन्दमुपलायुधा । भोक्ष्यतेवसुधामेतां तमजित्वाकथंभवान्

यज्ञान् चिध्वंसयत्युग्रो देवानामुपगोधकः ।

आप्याययति दैतैयान् स बली मुपलायुधः ॥ २१ ॥

यद्यदि वातयस्येनं पातालान्तरगोचरम् । ततः समस्तवसुधापतिस्त्वं परमेश्वरः

मुपलं तस्य बलिनः सौनन्दं प्रोच्यतेजनैः । तथाबलाबलञ्चैव तंबदन्तिविघ्नक्षणाः

तत्तु निर्वीर्यतां याति संस्पृष्टं योपिता नृप !

तस्मिन्दिने द्वितीयेऽह्नि वीर्यवत्तदुदीर्यते ॥ २४ ॥

न स वेत्ति दुराधारःप्रभावंमुपलस्यतत् । योपित्कराग्रसंस्पर्शोदोषंवीर्यचिशातनम्

एवंतस्य बलं भूप दानवस्य दुरात्मनः । मुपलस्य स ते प्रोक्तं यदुक्तं तत् समाचर



यामप्रमेतदुपत पुरस्य वृषिपीपते । हृत्तलेन महीरन्ध्रनिधिल्ल किं मयागप्या  
इत्युक्त्वा तु गते तस्मिन् पुरे गत्वा महीपतिः ।

मन्त्रयामाम मन्त्रं पुरमज्ये तु मन्त्रिणि ॥ २८ ॥

यथाधुनमदेवं तन् वचयामाम मन्त्रिणाम् । मुत्तस्य प्रमायञ्च पीयंशातनमेव  
तंमन्त्रत्रियमात्तुमन्त्रिभिल्लेनभूत्वा । तत्पान्यंघर्तिनीकन्दागुधापायमुद्पती  
ततः कतिपयादे तु तां कन्यां वयमान्विताम् ।

उहासोपपतादृश्यं ब्रह्मन् न मर्त्यापूताम् ॥ ३१ ॥

तच्छ्रुत्वा मर्त्यापात्तं प्रोचयशंकुलेक्षण । पुत्रापुराण इत्यत्रि गच्छतंवनकोपिती  
तिथिच्छायास्तटे स्थंल्लेन गत्वा गतातन्त्रम् ।

न ह्यगतां योऽगतां मुदापया मुदुर्मति ॥ ३३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

तत्पत्नीं तत्पुत्रोऽप्यतगतं तदापुत्रोऽपि । मुमुषानेपुत्रमेतन्वर्गंन्येकानिगोत्रिणी  
ततः परिचरिन्निगमिन्पुत्रस्यस्यपि । धार्म्याधिकं सुतीक्ष्णामात्रीन् मुदापन्त्रम्  
ततो मायावत्यता तेन हेतुनेन भाव्यते । राजपुत्रीं स्ने कर्तुं निहताशोर्गतिधी ॥

तच्छ्रुत्वा न मक्षरात् प्राहेत् सपंगेनिधान ।

बहुत्रय वगमांनिमुनेतो मुनिगणम् ॥ १७ ॥

यत्नां तिल्य देवर्षं मोषयिष्यति मे मुनाम् ।

तन्महर्षं मन्त्रयामामि तामेवपुनयोपमाय ॥ ३८ ॥

एतेषु मोषयाञ्चये न राज्ञां स्वपुत्रे तदा । निगतां पुत्रमजयावत्पमोक्षणं वै मुने  
तच्छ्रुत्वावयार्त्तंनन्दनगुणोदितम् । मायोपमालवदवानक्याह वज्रपिण्डंमुन  
न वत्तयामिदंरुदेवं मन्त्रयामिदमन्त्रम् । विदवापकतोभूत्वा त्रिपुंसिंशत्पुन्यम्  
आञ्जनायाम् प्राणैः तदर्थं प्राणयामि मे । तर्षवनेत्रया हत्वा नं हेतुं तत्रयाञ्च मे

मार्कण्डेय उवाच

न नं मुदा परिष्वस्य निदमन्पुन्यमाह्वर ।

गम्यतामिति नंसिद्ध्यै चत्सेत्याह स पार्थिवः ॥ ४३ ॥

स्थाने स्थास्यति मे चत्सो यणेयं कुर्वते चिधिम्

चत्सेतन्क्रियतामाशु यद्युत्नाहि मनस्तव ॥ ४४ ॥

मार्कण्डेय उवाच

ततः सगङ्गः सधनुर्वदगोधाङ्गुलिद्वयान् । जगामवीरः पातालं तेनगर्त्तन मत्वरः  
ततोऽयास्वनमत्युग्रंनघ्नोपार्थिवात्मजः । येनपातालमगित्तमार्गीदापूरितान्तरम्  
ततो ज्याम्ब्वनमाकर्ण्य कुजृम्भोदानवेश्वरः ।

आजगामाऽतिक्रोपेन स्वर्मेन्यपरिवारितः ॥ ४७ ॥

ततो युद्धमभूत्तत्र तेन पार्थिवसूनुना । तस्मैत्यस्य तस्मैत्येन बलितो बलशालितान्  
दिनानि त्रीणि न यदा शोभितस्तेन दानवः ।

ततः कोपपरीतात्मा मुपलयाऽन्वधावत् ॥ ४६ ॥

गन्धैर्मान्द्यैस्तथा धूपैः पूज्यमानः स तिष्ठति ।

अन्तःपुरे महामान! प्रजापतिचिनिर्मितः ॥ ५० ॥

ततो विज्ञानमुपलप्रभावा सा मुदावती । पस्पशं मुपलश्रेष्ठमनिनप्रशिरोऽधरा ॥

पुनर्यावत् स गृह्णातिमुपलंतंमहासुरः । तावत्स्नाचन्दनव्याजात्पस्पशानिकशःशुभा

ततः स गत्वा युयुध्रे मुशलेनासुरेश्वरः । व्यर्थामुपलपातास्ते सङ्गमुस्तेषु शत्रुषु

परमास्त्रे तु निर्वाणैः सौन्दर्ये मुपले मुने !

अस्त्रैः शस्त्रैश्च दैत्यैः नोऽयुञ्जत रणोऽरिणा ॥ ५४ ॥

शस्त्राखेर्नसमस्तस्वराजपुत्रस्वसोऽसुरः । मुपलेन बलन्तस्य तच्चयुद्धयानिराहतम्

ततः पराजित्य स भूपसूस्त्राणि शस्त्राणि च दानवस्य ।

चकार सद्यो विरयं ततश्च सघर्मवद्गः पुनरप्यधावत् ॥ ५६ ॥

तमापतन्तं रभसाऽभ्युदीर्णं विस्फुटकोपं त्रिदशेन्द्रशशुम् ।

शस्त्रेण बहोभुवि राजपुत्रो जघान कालानलसप्रभेन ॥ ५७ ॥

स पावकास्त्रेण हृदि क्षतो भृशं तत्याज देहं त्रिदशारिरात्मजः ।

वभूव सद्यश्च महोरगाणा रसातलान्तेषु महानयोत्सव ॥ ५८ ॥

ततोऽपनत् पुं पवृष्टिमंहीपालमुनोपरि । जगुगन्धर्वपतयो द्वैचवाधानिसस्वतु

स चापि राजपुत्रस्त हत्वा ती शृपते सुतौ ।

मोघयामास तन्वर्षी ताञ्च वन्या मुदावर्तम् ॥ ६० ॥

तञ्चापि मुपल तस्मिन् कुतूम्भे धिनिपातिते ।

जग्राह नागाधिपतिरनन्त शेषमञ्जित ॥ ६१ ॥

तस्याश्च परितुष्टोऽसौ शेष सर्वोरगेऽवर ।

मुदावत्यामुदाध्यातमनोवृत्तिस्तपीधन ॥ ६२ ॥

सुनन्दमुपलस्पर्शं यच्चकार पुन पुन । योपिन्ऽरतस्पर्शप्रभावज्ञानिशोभना

मुदावत्यास्ततो नाम नागराजस्तदाकरोत् ।

सुनन्दामितिमानन्दं सौनन्दगुणज द्विज । ॥ ६४ ॥

स चापि राजपुत्रस्ता भातृभ्या सहिता पितु ।

समीपमानिनायाशु प्रणिपत्याह सैव तम् ॥ ६५ ॥

आनीतो तनयौ तात तर्षयेय मुदावती ।

तवाश्रया मयाऽन्यद्यन् कर्तव्य तन् समादिश ॥ ६६ ॥

मार्कण्डेय उवाच

तत प्रहृदमंपूणहृदय स महीपति ।

माधु माध्वियथाहोच्यैवत्स वन्सेति शोभनम् ॥ ६७ ॥

अभाजितोऽस्मि त्रिदशैवत्साह कारणेस्त्रिभि ।

त्वं जामाता च यत्प्राप्तो यच्चारिर्विनिपातित ॥ ६८ ॥

आगतान्यश्वतान्यत्र यथाप यानि मे पुन ।

तद्गृह्णाणाऽद्य शस्तेऽहि पाणिमन्था मयोदितम् ॥ ६९ ॥

त्व राजपुत्र धार्यंङ्ग्या वन्याया दुहितुमम् ।

अन्यथा मुदा युक्त स यवाक्यं कुरुष्व माम् ॥ ७० ॥

राजपुत्र उवाच

ततस्पाशामयाकार्यायद्ब्रवीषिकरोमि तत् । त्वमेवतातजानीषेनेवत्राविश्रुतावयम्

मार्कण्डेय उवाच

ततस्तयोः स राजेन्द्रश्चक्री वैवाहिकं क्रमम् । मुदावत्याश्च दुहितुर्भलन्दनसुतस्यच  
ततः स ह तयारेमेवत्सप्रीर्नवयौवनः । रमणीयेषु देशेषुप्रासादशिखरेषु च ॥ ७३ ॥

कालेन गच्छता वृद्धः पिता तस्य भलन्दनः ।

वनं जगाम वत्सप्रीः स वभूव महीपतिः ॥ ७४ ॥

श्याज यज्ञान् सततंप्रजाधर्मेणपालयन् । पुत्रवत्पालयमानास्तुप्रजास्तेनमहात्मना  
चवृधुर्विषये तस्य न चाभूर्धर्णसङ्करः । न दस्युव्यालदुर्वृत्तभयमासीच्च कस्यचित्  
नोपसर्गभयञ्चैव तस्मिन् शासति भूपतौ ॥ ७६ ॥

इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणेभलन्दवत्सप्रीचरित्रं नामषोडशाधिक-

शततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥

सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः

सुनित्रचरित्रवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

तस्य तस्यां सुनन्दायां पुत्राद्वादशजज्ञिरे । प्रांशुःप्रचीरःशूरश्चसुधक्रो चिक्रमःक्रमः  
वली बलाकश्चण्डश्च प्रचण्डश्च सुचिक्रमः ।

स्वरूपश्च महाभागाः सर्वे सङ्ग्रामजित्तमाः ॥ २ ॥

तेषां ज्येष्ठो महावीर्यः प्रांशुरासीन्नराधिपः । इतरेभृत्यवत्सप्रथमभूवुर्वशावर्त्तिनः ॥

तस्य यज्ञे द्विजत्यक्तैरनेकैर्द्रव्यराशिभिः । न्यूनवर्णचिसृष्टैश्च सत्यनामा वसुन्धरा

सम्यक् पालयतस्तस्य प्रजाःपत्रानिवीर्यमान् ।

योऽभूत्तत्राणं चोपे तेन त्रिणादिनास्तु मे ॥ १० ॥

अथ शतनाहस्यान्तेषां सदस्यगतपियते । मयुषाद्येनकादाभिनन्दनप्रादिभिर्गु  
 ङ्गान्निस्तस्य पुत्रोऽभूत्पुत्रयोगतस्तु । भगवन्पुत्रित्तुल्यं यत्रमार्गं सुते ॥  
 दानरातां सुर्षायाणां जगान् सर्षानंश । पञ्च सर्षायांष्टो जग्मन्प्रागुत्पन्नः  
 अस्यांश्च सुमार्षायाणां जगानामरद्विज । प्रचानेस्ततया पञ्च सनिश्वसुष्याः  
 तेषां सनिशो राजाभूत् प्रख्यातो विजयिष्ठः ।

स शास्त्रं सत्यवाकं कृत् सपञ्चाणिहिते स ॥ ११ ॥

स्वधर्माभिततो नित्यं वृद्धभेषां पदुभूत् ।

पागमी पितृवसम्पन्नं वृणात्त्रोऽप्यविकल्पत ॥ १२ ॥

सद्यलोकत्रिशो नित्यमुपासीतदृढनिशम् । नन्दन्तु सवभूतानि जितान्तु पित्रोश्च  
 स्वस्यस्तु सद्यभूतेषु निरातद्वानि सन्तु च ।

मा वदाधितस्तु भूतानामापयो न मयन्तु च ॥ १३ ॥

मैशामदाभूतानि पुत्रन्तु सज्जे जने । शिवमस्तु द्विजातीनां प्रीतिरस्तु सरस्य  
 समृद्धिः सद्यपणातो गिदिशन्तु च कर्मणाम् ।

ते लोकं सद्यभूतसु शिष्या धाऽन्तु सदा मति ॥ १४ ॥

वपरात्मनि तथापुत्रे हितमिच्छयावदा । तथा समस्तभूतपुराणार्थं हितसुख्य  
 एतदो हितमर्थ्यते चो पा पापापराज्यते ।

यन् करोत्यहितं किञ्चित् कस्यचिन्मृदमानस ॥ १५ ॥

तं समभ्येति तन्मृतकृत् गामिगलं यत् । इतिमन्यासमस्तेपुत्रोऽङ्गा रतबुद्ध  
 सन्तु मा लौकिकं पापं लोका प्राप्स्यथ ये युधा ।

यो मेऽथ सिद्धाने तस्य शिवमस्तु सदा भुवि ॥ १६ ॥

यश्च मा द्वेष्टि लोकेऽस्मिन् सोऽपि भद्राणि परयतु ।

एवं स्वरूपं पुत्रोऽभूत् सनिश्वरस्तस्य भूपते ॥ २० ॥

समस्तगुणसम्पन्नं श्रीमान्प्रजदलेक्षणं । तेन त्रिसप्ततः प्रीत्या वृषमाऽप्येयोजिता-

स्वयञ्चपृथिवीमेतां वुभुजेसागराम्बराम् । प्राच्यांतेनैकृतः शौरिर्दक्षिणायामुद्रावसुः  
दिशि प्रतीच्यां मुनयउत्तरस्यां महारथः । तेषांतस्यचभूपस्यपृथग्वोत्राः पुरोहिताः  
वभूवुर्मुनयश्चैव मन्त्रिवंशक्रमागताः । शौरैरत्रिकुलोद्भूतः सुहोत्रो नाम वै द्विजाः  
उदावसोः कुशावत्तो गौतमान्वयजोऽभवत् । काश्यपः प्रमतिर्नामसुनयस्यपुरोहितः  
महारथस्य वंशिष्ठः पुरोधोऽभून्महीभृतः ।

वुभुजुस्ते स्वराज्यानि धत्वारोऽपि नराधिपाः ॥ २६ ॥

खनित्रश्चाधिपस्तेषामशेषवसुधाधिपः । तेषु भ्रातृष्वशेषेषु खनित्रः स महीपतिः  
प्रजासु च समस्तासु पुत्रेष्विव सदा हितः ।

एकदा मन्त्रिणा शौरिः स प्रोक्तो विश्ववेदिना ॥ २८ ॥

विविक्ते पृथिवीपाल! किञ्चिद्वक्तव्यमस्ति नः ।

यस्येयं पृथिवी कृत्स्ना यस्य भूपावशानुगाः ॥ २९ ॥

सराजातस्यपुत्रश्चतत्पौत्राश्चान्वयस्ततः । इतरेभ्रातरस्तस्यप्राकल्पविषयाधिपाः  
तत्पुत्रश्चाल्पकस्तस्मात् तत् पौत्राश्चाल्पकल्पिकाः ।

कालेन हासमासाद्य पुरुषात् पुरुषान्तरम् ॥ ३१ ॥

कृष्योपजीविनोभूप! भवन्तीति तदन्वयाः । नोद्धारं कुरुतेभ्राताभ्रातृस्नेहवलार्पणः  
स्नेहकः पृथिवीपाल! परयोभ्रातृपुत्रयोः । तत्पुत्रयोः परतरा मतिर्भवति पार्थिव!

तत्पुत्रः केन कार्येण प्रीतियुक्तो भविष्यति ।

अथवा येन तेनैव सन्तोषं कुरुते नृपः ॥ ३४ ॥

क्रियते तत्किमर्थन्तुभूपैर्मन्त्रपरिग्रहः । भुज्यतेसकलंराज्यंमया ते मन्त्रिणा सता  
तत् किं सुखाधारयसे सन्तोषं कुरुते यदि । कार्यनिष्पादकंराज्यंकरणं कर्तुं रिष्यते  
राज्यलब्धुश्च ते कार्यं त्वं कर्त्ता करणं वयम् ।

सोऽस्माभिः करणीराज्यं पितृपैतामहं कुरु । फलप्रदं भविष्यामः परलोकैतदेवम्

॥ ३६ ॥

ज्येष्ठो राजा महीपाल! वयन्तस्यानुजा यतः ।

ततः स भुङ्क्ते पृथिवीं धयञ्जाल्यवसुन्धराम् ॥३८॥

धयन्तु भ्रातर पञ्चपृथ्वीर्चकामहामते ॥ अतोऽस्याः पृथगैश्वर्यैरुपहृत्स्नैमविष्यति  
विश्वेद्युवाच

एवमेतद्भवास्तत्र यथेका वसुधानृषा । तात्वमेयाभिपद्यस्वज्येष्ठशास्तुमर्हीभवा  
सर्गाधिपत्यः सर्वेभ्यो भवत्वमखिलेश्वरः । यतन्तेधयथाऽहन्तेतेषामाहितमन्त्रिण  
राजोवाच

ज्येष्ठो राजा यथा प्रीत्या भजतेऽस्मान् सुतानिव ।

कथ तस्य करिष्यामि ममत्वं जगतीगतम् ॥ ४२ ॥

विश्वेद्युवाच

राज्यस्थित पूजयेथाज्येष्ठोभूपाहं षीर्षवेः । कनिष्ठज्येष्ठताकेर्यराज्यप्रार्थयतानृषा  
मार्कण्डेय उवाच

तथेति च प्रतिज्ञाते भूभुजा तेनसत्तमः । विश्वेद्रीतनोमन्त्रीतद्वातननयदशम्  
नेषा पुरोहिताश्चैव आत्मनः शान्तिकादिषु ।

नियोजयामास ततः खनित्रस्याभिघारके ॥ ४५ ॥

विभेद तस्यनिभृतान् मामदातादिभिस्तथा । खत्रेषपरमोद्योगं निजदण्डप्रभाय  
आभिचारिकमन्युग्रमहन्यहनि कुर्वताम् । पुरोधसा चतुर्णाञ्च अब्रह्मत्याचतुष्टय  
विकराटं महाघब्रमतिभीषणदर्शनम् । समुद्यतमहाशूलं प्रभूतमतिदारुणम् ॥४८॥  
ततस्तदागतन्त्र खनित्रो यत्र पार्थिवः । निरस्तञ्जाप्यदुष्टस्यतस्यपुण्यघयेनत  
हृत्याचतुष्टयन्तेषु निपपात दुरात्मसु । पुरोहितेषु भूषाता तथा चै विश्वेद्रीं  
ततो निहन्त्या निर्दग्धाः हृत्यया ते पुरोहिताः ।

विश्वेद्री तथा मन्त्री स शीरेदुंष्टमन्त्रदः ॥ ५१ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे खनित्रधरिष्वर्णनं नाम

सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११७ ॥

## अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः

### खनित्रचरित्रवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

ततःसमस्तलोकस्य विस्मयः सोऽभवन्महान् ।

यदेककालं नेशुस्ते पृथक् पुरनिवासिनः ॥ १ ॥

ततः शुश्राव निधनं यातान् भ्रातृपुरोहितान् ।

मन्त्रिणञ्च तथा भ्रातुर्दग्धं तं विश्ववेदिनम् ॥ २ ॥

किमेतदिति सोऽतीव विस्मितो मुनिसत्तम !

खनित्रोऽभूमहाराजो नाजानात् तच्च कारणम् ॥ ३ ॥

ततोवसिष्ठंप्रच्छ सराजागृहमागतम् । यत्कारणं चिनेशुस्तेभ्रातृमन्त्रिपुरोहिताः

तेन पृष्टस्तदाप्राहयथावृत्तंमहामुनिः । यच्छौरिमन्त्रिणाप्रोक्तं यच्च शौरिखान्वतत्

यथाघानुष्टितन्तेन भ्रातृणां भेदकारिवै । मन्त्रिणातेनदुष्टेन यच्चक्रुश्च पुरोहिताः ॥

यन्निमित्तं चिनेशुस्तेऽपपापस्थापकारिणः ।

पुरोहितास्तस्य राज्ञः शत्रावपि दयापराः ॥ ७ ॥

सतच्छ्रुत्वा ततो राजा हा हतोऽस्मीति वै वदन् ।

निनिन्दात्मानमत्यर्थं वशिष्टस्याग्रतो द्विज ! ॥ ८ ॥

राजोवाच

धिङ्मामपुण्यसंस्थानमल्पभाग्यमशोभनम् । दैवदोषकृतं पापं सर्वलोकविगर्हितम्

तन्निमित्तं चिनष्टं यत्तद्ब्राह्मणचतुष्टयम् ।

मत्तः कोऽन्यः पापतरो भविष्यति पुमान् भुवि ॥ १० ॥

नाभविष्यं यदि पुमानहमत्र महीतले । ततस्तेन चिनश्येयुर्मम भ्रातृपुरोहिताः ॥

धिग् राज्यं धिक् च मे जन्म भूभुजां महतां कुले ।



कारणार्थं गतो योऽहं विनाशम्य द्विजन्मनाम् ॥ १२ ॥

पुयंन स्यामिनां तेषां भ्रातृणां मम याजया ।

नाशं ययुनं दुष्णस्ते दृष्टोऽहं नाशकारणे ॥ १३ ॥

किं करोमि व गच्छामि नाशो ममो हि पापहृत् ।

पृथिव्यामग्नि हेतुर्थं द्विजनाशाय यो गतः ॥ १४ ॥

इत्यमुद्विग्नहृदयं सनिशं पृथिवीपति । पतयिष्यासुः पुत्रस्य हतपानभिर्यत्नम्

भभिरिष्य सुत राशये भुगवः३ मर्षापति ।

भाष्यामिस्तिताभिः स्वाहं तपसे व यत यथा ॥ १५ ॥

तत्र गत्या तपस्त्रेपे धानप्रस्थपिधानदिम् ।

शतानि त्रीणि पराणां स्वाहानि कल्पतम ॥ १७ ॥

तपसा क्षीणदेहसु राजवर्ज्यो द्विजोत्तम ।

निगृह्य सर्वश्रोतांसि तस्याजाऽगुन् घनेचरः ॥ १८ ॥

ततः पुण्यान् यथा लोकान् सर्वकामदुहोऽक्षयान् ।

अभ्यमेधादिभिर्यज्ञैरघाष्या ये नराधिपे ॥ १९ ॥

भाष्याश्च तस्य तास्मिन् स मन्त्रैरेव तस्यजुः ।

प्राणानयापुः सालोक्य नेनेव सुमहात्मना ॥ २० ॥

एतन् सनिशघरितं धृतं कर्मवनाशाम् । पठताञ्च महाभागं भुवस्यातो निशामय

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सनिशघरिशरणं नामाऽष्टादशाधिक

शततमोऽध्यायः ॥११८८॥

## एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

क्षुपनृपतिचरित्रेणसहविंशचरित्रवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

ऋष्वनिव्रपुत्रस्तु प्राप्यराज्यंयथापिता । तथैवपालयामास प्रजा धर्मेण रञ्जयन्

स दानशीलो यष्टा च यज्ञानामवनीपतिः ।

समः शत्रौ च मित्रे च व्यवहारादिवर्त्मनि ॥ २ ॥

कदास महीपालो निजस्थानगतोमुने ! सूतैरुक्तोयथापूर्वं क्षुपोराजातथाऽभवत्

ब्रह्मणस्तनयः पूर्वं क्षुपोऽभूत् पृथिवीपतिः ।

यादृक् चरितमस्यासीत्तादृक् तस्यैव चेष्टितम् ॥ ४ ॥

राजोवाच

श्रोतुमिच्छामि चरितं क्षुपस्य सुमहात्मनः ।

यदि तादृङ्मया शक्यं चेष्टितुं तत्करोम्यहम् ॥ ५ ॥

सूता ऊचुः

स चकाराकरान् भूप ! राजा गोब्राह्मणान् पुरा ।

पष्टांशेन कृता चोर्व्यामिष्टिस्तेन महात्मना ॥ ६ ॥

राजोवाच

तेषां महात्मनां राज्ञां कोऽनुयास्यति मद्बुद्धिः ।

तस्याप्युत्कृष्टचेष्टानां चेष्टासूद्यमवान् भवेत् ॥ ७ ॥

तत् श्रूयतां प्रतिज्ञा या साम्प्रतं क्रियते मया ।

क्षुपस्यानुकरिष्यामि महाराजस्य चेष्टितम् ॥ ८ ॥

त्रींस्त्रीन् यज्ञान् करिष्यामि शस्यापाते गतागते ।

पृथिव्याञ्चतुरर्णायां प्रतिज्ञेयं कृता मया ॥ ९ ॥

यश्च गोब्राह्मणा पूर्वमददन् भूभृतेकरम् । तमेकप्रतिदास्यामिब्राह्मणानातथागधाम्  
इति प्रतिज्ञाय घञ् श्रुपस्तन् कृतवास्तथा ।

शस्यापाते सयज्ञास्त्रीनयजयजता धर ॥ ११ ॥

गोब्राह्मण पुरारराज्ञामददद्यश्च येकरम् । तावत् सख्यमदाद्विद्वत्तमन्यद्वोब्राह्मणायस  
तस्य पुत्रोऽभवद्द्वार प्रमथायामनिन्दित ।

यस्य प्रतापशौर्याभ्या हृता वश्या महीभृत ॥ १३ ॥

तस्यापिनन्दिनी नामवैदर्भी दयिताऽभवत् । विविंशतनयतस्याजनयामाससप्रभु  
विविंशेशासति महीं महींपाले महींजसि । महींतलमभूद्रुव्याप्त निरन्तरतया नरै  
ववर्ष काले पर्जन्यो महीं शस्यवती तथा ।

सुफटानि च शस्यानि रसवन्ति फगानि च ॥ १६ ॥

रसा पुष्टिकराश्वासन् पुष्टिनोन्मादकारिणी । नचित्तनिघयानृणा प्रभूता मदहेनव  
तत्प्रतापेन रिपवो भयमापुर्महामुने । ।

स्वास्थ्य जन सुहृद्गणो मुदमिच्छन्ति पौरिका ॥ १८ ॥

इष्टा स यज्ञान् सुवहन् सम्यक् सम्पात्य मेदिनीम् ।

सङ्ग्रामे निधन प्राप्य शत्रुलोकमित्तो गत ॥ १९ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे विविंशच्चरित्रवर्णन नामैकोन-

विंशत्यधिकशततमोऽध्याय ॥ ११६ ॥

## विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

नृपखनीनेत्रचरित्रवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

तस्यपुत्रःखनीनेत्रोमहाबलपराक्रमः । यस्य यज्ञेष्वगायन्तगन्धर्वाधिस्मयान्विताः

खनीनेत्रसमो नान्यो भुवि यज्वा भविष्यति ।

तेन यन्नायुते पूर्णे दत्ता पृथ्वी सस्नागरा ॥ २ ॥

दत्त्वा च सकलां पृथ्वीं ब्राह्मणानां महात्मनाम् ।

तपसा द्रव्यमासाद्य मोक्षयेत् साधितेन यः ॥ ३ ॥

यतश्च प्राप्य चित्तिर्द्धिमतुलां दातृस्तत्तमान् ।

जगृहुर्ब्राह्मणा विप्र ! नान्यराज्ञः प्रतिग्रहम् ॥ ४ ॥

सप्तपष्टिसहस्राणि सप्तपष्टिशतानि च । सप्तपष्टिञ्च यो यजानयज्ञदृभूरिदक्षिणान्

अपुत्रः समहीपालो मृगयामुपचक्रमे । पुत्रार्थं पितृयज्ञाय मांसकामो महामुने! ॥

अथारूढो विना सैन्यमेक एवमहावने । बद्धगोधाङ्गुलित्राणो वाणखड्गधनुर्धरः

तं घाहयन्तं तुरगमन्थतोगहनाद्दनात् । विनिष्कम्य मृगः प्राह मां हत्याभिमतंकुरु

राजोवाच

अन्ये मृगाः पलायन्ते महाभीत्या विलोक्य माम् ।

कथमात्मप्रदानं त्वं मृत्यवे कर्तुंमिच्छसि ॥ ६ ॥

मृग उवाच

अपुत्रोऽहं महाराज ! वृथा जन्मप्रयोजनम् ।

विद्यारयज्ञं पश्यामि प्राणानामिह धारणम् ॥ १० ॥

मार्कण्डेय उवाच

अथाभ्येत्य मृगःप्राहतमन्योवसुधाधिपम् । मृगस्य तस्य प्रत्यक्षमलमेतेन पार्थिव!

घातयस्येति मा मासैमम कर्म समाधर ।  
 यथा वृताथता ने स्यान्मम चाप्युपकारि तत् ॥ १२ ॥  
 पुत्रायं त्व महाराज स्वपितॄन् यष्टुमिच्छसि ।  
 अपुत्रस्याऽस्य मासेन लप्स्यसे घाञ्छित कथम् ॥ १३ ॥  
 यादृक् कर्म चिन्तय्याद्य तादृक द्रव्यमुपाहरेत् ।  
 दुग्न्त्रैः सुगन्धाना गन्धज्ञानचिन्तय ॥ १४ ॥

राजोवाच

वीराग्यकारण प्रोक्तमनेनापुत्रता मम । कथंता प्राणसत्यागे यत्ते वीराग्यकारणम्  
 मृग उवाच

बहवो मे सुता भूप' बहोदुहितरस्तथा ।  
 यच्चिन्तादु खदाचाम्निज्वालामध्ये वसाम्यहम् ॥ १६ ॥  
 सवसाध्या नरेन्द्रेयं मृगजाति मुकातरा ।  
 तेष्वपत्येषु मे घानि ममन्वं तेन दु खित ॥ १७ ॥  
 मनुष्य सिंहशाङ्ग ल' वृकादिभ्योयिभेम्यहम् ।  
 न हीनात्सवसस्वेभ्यश्चशृगालादपिप्रभो ॥ १८ ॥  
 सोऽह निमित्त बन्धूनामिमा शून्या घसुन्धराम् ।  
 नृमिहादिभ्यान् सर्वामिच्छामि सुभृश सकृत् ॥ १९ ॥  
 तृणान्यन्येऽपि स्वादन्ति गोऽजाबितुरगादिका ।  
 ताम्नेना पोषणायाहमिच्छामि तिघ्न गतान् ॥ २० ॥

निष्क्रान्तपुत्रतस्तेषुमनापत्येषु घै पृथक् : भवन्ति चिन्ताशतशोममत्पायृतचेतस'  
 किं कृत्वाश किं घञ् वागुरां किं सुतो ममा ॥ १२ ॥  
 प्राप्तश्चरन् घने किं या नृमिहादिघश गतपो २२ ॥ १३ ॥  
 प्राप्तोऽयमेक मप्राप्तास्तेऽवस्यार्थी कौटुम्भी मम ।  
 साम्प्रतं विचारतो घै ये गताः सुमहाबलम् ॥ २३ ॥ १४ ॥ १५ ॥

दृष्ट्वा प्राप्तसमाभ्यासमदंतानात्मजाग्रप । ईषदुच्छ्वसितः क्षेममिच्छामिरजनीपुनः  
प्रभाते दिवसं क्षेममस्तनोऽर्के निशामपि ।

घाञ्जगम्यहं फदा क्षेमं सर्वकालं भविष्यति ॥ २५ ॥

पतत्ते कथितं भूपममोद्वेगस्यकारणम् । अतः प्रनाद्यं कुरु मे घाणोऽयंपाल्यतांमयि  
इति दुःखशताविष्टः प्राणानपि त्यजामि यत् ।

तत्कारणं निबोध त्वं व्रुवतो मम पार्थिव ॥ २७ ॥

असूर्या नाम ते लोका यान् गच्छन्त्यात्मघातकाः ।

यज्ञोपयुक्ताः पशवः सम्प्रयान्त्युच्छ्रिताः प्रभो ॥ २८ ॥

अग्निःपशुरभूतपूर्वंपशुरासीजलाधिपः । भास्वानधोच्छ्रिताःप्राप्तोयतोनिष्टामुपागतः  
तन्ममैतांरूपांशुत्वानय मामुच्छ्रितिनृप । आत्मनश्चेप्सितं कामंपुत्रलाभादवाप्स्यसि

पूर्वमृग उवाच

राजेन्द्र नीपहन्तव्योऽग्रन्योऽयंमुहुती मृगः । बहवस्तनयायस्यहन्तव्योऽहमस्तन्ततिः

उत्तरमृग उवाच

एकदेहभवं यस्य दुःखंधन्यःस वै भवान् । बहूनि यस्य देहानितस्यदुःखान्यनेकधा  
एको यदाहमासन्तु प्राक् तदा देहजं मम ।

दुःखमासीन्ममत्वे तु भार्यायास्तदभृद् द्विधा ॥ ३३ ॥

यदा जातान्यपत्यानि तदा यावन्ति तानि वै ।

तावच्छरीरभूमीनि मम दुःखान्यथाभवन् ॥ ३४ ॥

न कृतार्थो भवान् यस्य नातिदुःखाय सम्भवः ।

इह दुःखाय मत् सूतिः परत्र च चिरोधिनी ॥ ३५ ॥

यतो रक्षणपोषार्थमपत्यानां करोमि तत् । चिन्तयामि च सम्भूतिस्तेनमेनरकेध्रवा

॥ ३६ ॥ राजोवगच्छ ।

प्रपुत्रार्थं च वै किं सन्वतिमान् धन्योऽपुत्रोऽत्र किं मृग

पुत्रार्थश्चायमारम्भो मम दोलायते मनः ॥ ३७ ॥

दुःखाय सन्ततिः सन्धमेहिकामुष्मिनाय तम् ।

तथाप्यतनयान् यान्ति ऋणानीति ध्रुवं मया ॥ ३८ ॥

सोऽहं यतिष्ये पुत्रार्थमृतेप्राणिवधंमृग ! । तपमेव प्रचण्डेन यथा पूर्वं महीपतिः  
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे खर्मीनेत्रचरितं नाम विंशत्यधिक-  
शततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥

## एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

करन्धमचरित्रवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

ततः स नृपतिर्गत्वा गोमतीं पापनाशिनीम् । तत्रतुष्टायनियतोभूत्वादेवंपुरन्दरम्  
तप्यमानस्तपश्चोश्रं यतवाक्रायमानसः । तुष्टाय श्रयतः शत्रुमपत्न्यार्थं महीपतिः ॥  
तस्य स्तोत्रेणतपसा भक्त्याद्यापितुरेश्वरः । तुतोष भगवानिन्द्रप्राहृष्टीर्नमहामुने

अनेन तपसा भक्त्या स्तोत्रेणोच्चारितेन च ।

परितुष्टोऽस्मि ते भूप' त्रियता भवता वरः ॥ ४ ॥

राजोवाच

अपुत्रस्य सुतो मेऽस्तुमर्चशस्त्रभृता वरः । सदा धाम्नाहर्तेश्वर्योर्धर्मकृद्दर्मचित् कृती  
मार्कण्डेय उवाच

तथेति शोकः शत्रेण राजाप्राप्तमनोरथः । प्रजापालयितुं भूप आजगामनिजंपुरम्  
तत्राम्य कुर्षतो यज्ञं सम्यक् पालयतः प्रजाः ।

अजायत सुतो विप्र तदा शत्रुप्रमादतः ॥ ७ ॥

तस्य नाम पिता वक्रः बलाभ्युदितभूपतिः । अस्त्रप्राममशेषञ्च प्राहयामासतंसुतम्  
पितर्यु'पत्ते विप्र सोऽधिराज्ये स्थितो नृपः ।

स बलाश्वो वशं निन्ये भुवि सर्वमहीक्षितः ॥ ६ ॥

करञ्जदापयामास सारग्रहणपूर्वकम् । स सर्वभूमिपान् राजा पालयामासस्रप्रजाः  
अथाखिलनरेन्द्रास्तेदायादास्तस्यदुर्मदाः।नद्याभ्युत्थायसततंतेचास्मैप्रददुःकरान्

व्युत्थिताः स्वेषु राष्ट्रेषु न सन्तोपपरास्ततः ।

भुवं तस्य नरेन्द्रस्य जगृहुस्ते नराधिपाः ॥ १२ ॥

स गृह्णात्वास्वकरंराज्यंपृथिवीशेवलान्मुने ! तस्यौस्वनगरेभूपैर्विरोधोवहुभिःकृतः  
समेत्य सुमहावीर्याः ससाधनधनास्ततः । रुरुद्युस्तं महीपालं पुरे तत्र नरेश्वराः ॥  
पुररोधेन तेनाथ कुपितः स महीपतिः । स्वल्पकोपोऽल्पदण्डश्च वैक्लव्यं परमं गतः  
अपश्यमानः शरणं सवलौद्विजसत्तम ! करौ मुखाग्रतः कृत्वान्निश्वासात्तमानसः  
ततोऽस्यहस्तविरचान्मुखानिलसमाहताः । निजग्मुः शतशोयोधारथनागतुरङ्गमाः  
ततः क्षणेन तत् सर्वं नगरं तस्य भूपतेः । व्याप्तमासीद्वलौघेनसारेणातिवलान्मुने  
अथ सोऽतिवलौघेनमहतातेनसम्वृतः । निर्गम्यनगरात्तस्मात्तान्विजिग्येनराधिपः

जित्वा च वशमानीय चकार करदान् पुनः ।

यथा पूर्वं महाभाग महाभाग्यो नरेश्वरः ॥ २० ॥

धुतयोः करयोर्जज्ञे यतस्तस्यारिदाहदम् ।

वलं करन्धमस्तस्मात् स बलाश्वोऽभिधीयते ॥ २१ ॥

स धर्मात्मा महात्मा च स मैत्रः सर्वजन्तुषु ।

करन्धमोऽभवद्भूपखिपु लोकेषु विद्यतः ॥ २२ ॥

सम्प्राप्तस्यपरामात्तिददावरिविनाशनम् । बलंधर्मेण चाक्षितमभ्युपेत्य स्वथंनृपः  
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे करन्धमश्वरित्रवर्णनं नामैकविंशत्यधिक-

शततमोऽध्यायः ॥ १२१ ॥



## द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

### अवीक्षितनृपतिचरित्रवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

वीर्यघट्टमुता सुभ्रयोरा नाम शुभनता । स्वयम्वरे सा जगृहे महाराज करलधमम्  
तस्यापुत्रसरादेन्द्रोननयामास धायवात् । अवीक्षितमितिप्यातिमुनेनजगर्तात  
जाते तस्मिन् सुने राजासदेवज्ञानपृच्छत । कश्चिन्प्रशस्ननक्षत्रेशस्तग्नेसुतोमम  
कश्चिच्चालोक्तिजन्मममपुत्रस्यशोभने । ग्रहे कश्चिन्नदुष्टानाग्रहाणाट्टकूपधंगतम्

इयुवास्नन देवज्ञास्तमूषुर्नृपति तत ।

शस्ने मूहर्त्ते नक्षत्रे एने धीय सुतस्तव ॥ ५ ॥

समुत्पन्नो महार्यीर्यो महाभागो महाबल ।

भविष्यति महाराज महाराजस्तवात्मज ॥ ६ ॥

अवीक्षनेम देवाना गुरु शुक्लध सप्रम । सोमधनुष्यस्तनय तवेन समवीक्षत ॥ ७ ॥

उपान्तमस्यितर्ध्व सोमपुत्रोऽप्यरक्षत । नावीक्षनेम सयिता न भीमो न शनीधर

तव पुत्र महाराज धन्योऽय तनयस्तव ।

सवकल्याणमग्निं समवेतो भविष्यति ॥ ८ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति देवहयघन निशम्य वसुधाधिप । हर्षपूर्णमना ग्राह निजस्थानगतस्तदा ॥

अवीक्षनेम देवाना गुरु सोमसुतो बुध । नावीक्षतेनमादित्योनाकंसुनुन भूमिन् ॥

अवीक्षतेति यन् प्रोक्तं भवद्विग्रहशो घञ् ।

अवीक्षितेति तेनास्य स्यात् नाम भविष्यति ॥ १२ ॥

मार्कण्डेय उवाच

अवीक्षित सुतस्तस्य वेदनेदाङ्गपारग । अत्रप्राममशय स कण्वपुत्रादधाग्रहीत्

स रूपेणातिभिपजौ देवानां पार्थिवात्मजः ।

बुद्ध्या वाचस्पतिं कान्त्या शशाङ्कं तेजसा रविम् ॥ १४ ॥

धैर्येणाग्निं तथोर्वीञ्च सहिष्णुत्वेन वीर्यवान् ।

शौर्येण न समस्तस्य कश्चिदासीन्महात्मनः ॥ १५ ॥

स्वयम्बरे तं जगृहे हेमधर्मात्मजा वरा । सुदेवतनया गौरी सुभद्रा वलिनः सुता ॥

लीलावती वीरसुता वीरभद्रसुतानिभा ।

भीमात्मजा मान्यवती दम्भपुत्री कुमुद्वती ॥ १७ ॥

याश्चैवन्नाभिनन्दन्ति स्वयम्बरकृतक्षणाः ।

ताश्चापि स बलाद्वीरो जग्राह नृपतेः सुतः ॥ १८ ॥

निराकृत्य नृपान् सर्वांस्तासां पितृकुलानि च ।

स्वकं हि वीर्यमाश्रित्य बलवान् स बलोद्धतः ॥ १९ ॥

एकदा तु विशालस्य वैदिशाधिपतेः सुताम् ।

वैशालिनीं स सुदतीं स्वयम्बरकृतक्षणाम् ॥ २० ॥

परिभूयाखिलान् भूपान् स्वेच्छया न वृतस्तया ।

बलाजग्राह विप्रर्षे ! यथान्या बलगर्वितः ॥ २१ ॥

ततस्ते भूभृतः सर्वे बहुशस्तेन मानिना ।

निराकृताः सुनिर्विण्णाः प्रोचुरन्योन्यमाकुलाः ॥ २२ ॥

क्षमतांललनामेतामेकस्माद्बलशालिनाम् । बहूनामेकवर्णानांजन्मधिग्वोमहीभृताम्

क्षत्रियो यः क्षतत्राणंबध्यमानस्यदुर्मदैः । करोतितस्यतन्नामवृथेवान्येहिविभ्रति

आत्मनोऽपि क्षतत्राणं दुष्टादस्मादकुर्वताम् ।

भवतां क्षत्रियकुले जातानां कीदृशी मतिः ॥ २५ ॥

उच्चार्यते स्तुतिर्या च सूतमागवध्रवन्दिभिः ।

सा सत्या मा वृथा वीरा भवत्वरिचिनाशनात् ॥ २६ ॥

चरतां सा वृथैवैव भूपध्वारैर्दिगन्तरैः । पौरुषाश्रयिणः सर्वे विशिष्टकुलसम्भवाः ॥

विभेति को न मरणान् को युद्धेन विनाऽमरः ।

विचिन्तयैतन्न हातव्य पीरुग शस्त्रवृत्तिभिः ॥ २८ ॥

एतन्निशम्य ते भूपाविस्फणमशूरिता । ऊचुः परस्पर सर्वे समुत्तस्थुश्चसायुधा  
केचिद्रथानाहरदुःकेचिन्नागास्तथाह्वानम् । अन्येऽमर्यपराधीनास्तमुपेतापदातय  
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽर्वाक्षिनचरित्रवर्णननाम द्वा-

विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥

## त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

### अरीक्षितचरित्रवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

इति मग्राममञ्जाले भूपा भूपमुतास्तथा ।

निराहृताः सुबहुशस्तत्कालश्चाप्यवीक्षिताः ॥ १ ॥

ततो बभूव मग्रामस्तस्य ते सह दारुणा । एकस्य यदुभिर्भूर्पैर्भूपपुत्रवर्गमुने । ॥

तेऽसिंशक्तिगदाबाणपाणयस्तसुदुर्मदा । अभिप्लन्तोयुयुधिरे ते समस्मैरमावपि

स तान् शरशतैरग्रं विभेद् नृपनन्दनः ।

कृतास्त्रो बन्वान् बाणैस्ते च त विभिदुः शिने ॥ ४ ॥

कस्यधिच्चिच्छिदे बाहुमन्यस्य च शिरोधरम् ।

हृदि विव्याध घैवान्यमन्य बक्षस्यताडयत् ॥ ५ ॥

करञ्चिच्छेद् करिणस्तुरगस्य तथा शिरः ।

तथान्येन तथैवाभ्याव्रथस्यान्यस्य सारधिम् ॥ ६ ॥

बाणानापततश्चक्रे द्विधा बाणैस्तथा द्विषाम् ।

चिरुद्धेदान्बस्य खड्गञ्च धनुरन्यस्य लाघवात् ॥ ७ ॥

तत्रेऽपहते तेन ननाशान्यो नृपात्मजः। अवीक्षिताहतश्चान्यःपदातिःप्रजहौरणम्  
त्याकुलीकृते तस्मिन् समग्रेराजमण्डले । तस्युःसप्तशता वीरा मरणेकृतनिश्चयाः

आमिजात्यवयःशौर्य्यलज्जाभारसमन्विताः ।

निर्जिते सकले सैन्ये पलायनपरायणे ॥ १० ॥

ते समेत्य महीपालैः स तु पुत्रो महीभृतः । युयुधे धर्मयुद्धेन तेन तेनातिकोपितः

विच्छिन्नयन्त्रकवचान् स तानपि महाबलः ।

कत्तुं व्यवस्थितस्ते च ततः क्रुद्धा महामुने ! ॥ १२ ॥

धर्ममुत्सृज्य युयुधुर्युध्यमानेन धर्मतः । नरेन्द्रपुत्राःप्रस्वेदजलङ्घिन्नाननाः समम् ॥

विन्याथ कश्चिद्रवाणौवैः कश्चिच्चिच्छेद कार्मुकम् ।

ध्वजमस्यापरो वाणेश्छित्त्वा भूमावपातयत् ॥ १४ ॥

जघ्नुरन्ये तथैवाश्वान् वभञ्जुश्चापरे रथम् ।

गदापातेनाऽथ वान्ये वाणैः पृष्ठमताडयन् ॥ १५ ॥

छिन्नेधनुपिसक्रोधः स तदा नृपतेःसुतः । जग्राहासितथाचर्म तदप्यन्योन्वपातयत्

छिन्नासिचर्मा जग्राह स गदां गद्दिनां वरः ।

तामप्यग्न्यः ध्रुरप्रेण चिच्छेद कृतहस्तवत् ॥ १७ ॥

अन्ये शरसहस्रेण शतेनान्येनराधिपाः । विभिदुःकोष्ठकीकृत्य धर्मयुद्धपराङ्मुखाः

स विह्वलः पपातोव्यामिकोवहुभिरर्दितः । राजपुत्रामहाभागा बबन्धुस्तेच तं ततः

तमधर्मणतेसर्वे गृहीत्वा नृपतेःसुतम् । विशालेन समं राज्ञा वैदिशं विविशुः पुरम्

हृष्टाः प्रमुदिता चदं तमादाय नृपात्मजम् ।

स्वयम्बरा च सा कन्या न्यस्ता तेन ततः-पुरः ॥ २१ ॥

पुनः पुनश्च पित्रोक्तातथापिच पुरोधसा ।

आलम्ब्यतामिति वरो यस्ते राजसु रोचते ॥ २२ ॥

यदासामानिनी कञ्चिन्न जग्राहं वरं मुने ! तदापप्रच्छदेवज्ञं विवाहार्थं नरेश्वरः ॥

विशिष्टरमेतस्या विवाहाय दिनं चद । अद्यैतदीदृक् सजातं युद्धंविभोपपादकम्

मार्कण्डेय उवाच

इति पृणे नरेन्द्रेण स देवज्ञो विमृष्य तन् ।

दुर्मना प्राह विज्ञातपरमार्थो महीपतिम् ॥ २१ ॥

मविष्यन्त्यपराणीह दिनानिपृथिवीपते । प्रशस्तलक्षणयुक्तानि शोभनान्यधिरेणच  
करिष्यतिचिवाहार्थं तेषु प्राप्तेषु मानद । अलमेतेन यत्रार्थं महाधिघ्न उपस्थित-

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽर्वाक्षितचरित्रवर्णननामत्रयो-

विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ ॥ १२३ ॥

चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

अर्वाक्षितनृपतिचरित्रवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

तत शुभ्राव त वद्ध तनय स करन्धम । तस्यपत्नीतथावीराअन्येषापि महीभृत  
तमधर्मेणतनय वद्ध श्रुत्वा महीपति । समन्ते पृथिवीपालैश्चिरदुर्घो महामुने ।  
केचिद्दुर्मुखमहीपाला कथा सर्वे महीभृत । यैरेक सयुगे बद्ध समस्तेस्तेरधमत ॥

युज्यता वाहिनी शीघ्रमूचुरन्वै किमास्यते ।

विशालो बध्यता दुष्टस्तत्र येऽन्ये समागता ॥ ४ ॥

अन्येतपोबुधर्मोऽत्र त्यक्त पूर्वं महीक्षिते । अन्यायेन बलाद्येनगृहीतातमवाऽष्ठती  
स्वयवरेष्वशेषेषु तेनराजमुतास्तदा । खलाहृतास्तत सर्वे समेत्य स वशीहृत  
तेयामेतद्वच श्रुत्वा वीरा वीरप्रजावती । वीरगोत्रसमुद्भूता वीरपत्नी प्रहर्षिता ॥

मम पुत्रेणपार्थिवाः

तदप्यस्मत् सुतस्याजौ मन्ये नापचयप्रदम् । एतदेव हि पौरुष्यं यद्धर्मवशात्तरः  
नीतिं न गणयत्येवं जिवांशुरिष केशरी । स्वयम्बरायचिन्त्यस्ताममपुत्रेणकन्यका  
चहयो गृहीता भूपानां पश्यतामतिमानिनाम् ।

क क्षत्रियकुले जन्म क याच्छ्रा हीनसेविता ॥ १२ ॥

यलादेव समादत्ते क्षत्रियो वलिनांपुरः । लोहशृङ्गलवडाया न चशंयान्तिकातराः  
प्रसहाकारिणी यान्ति राजानो धर्मशालिनः ।

तदलं दीर्मनस्येन श्राध्यमेवास्य यन्धनम् । ॥ १४ ॥

युष्माकमप्यायुधानामङ्गमूर्द्धंमु पातनम् । हृत्त्वैचपृथिवीशानां पृथ्वीपुत्रादिकंवमु  
भार्या चार्यात्रिमित्तानि ततो यातानि गौरवम् ।

तत् त्वर्च्यतां रणायाऽऽशु स्पन्दनान्यधिरोहत ॥ १६ ॥

सजीकुस्त नागाश्वमच्चिरेण सुसारथिम् ।

मन्यध्वं किं महीपालैर्वह्निभिः सह विग्रहम् ॥ १७ ॥

प्रभूता एवतोयाय शूरस्यालपरणे क्रियाः । कस्यनालपेपुसामर्ध्यंनरैन्द्रादिपुजायते  
येभ्यो न विद्यते भीतिर्हन्तुं पुत्राहितान्मुने ! !

व्याप्तलोकान् समस्तान् यो ह्यभिभूय यतो नरः ॥

व्यरोधतेति शूरः स - तमांसीच दिवाकरः ॥ १६ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्थमुद्धर्षितो राजाऽतया परया करन्धमः ।

चकार सव श्रेयोर्गं हन्तुं पुत्राहितान्मुने ! ॥ २० ॥

ततस्तस्य समं भूपैर्विशालेन च सङ्गरः । बभूव बद्धपुत्रस्य तैरशेपैर्महामुने ! ॥

दिनत्रयमभूद्युद्धं तेन राज्ञः सप्रं तदा । करन्धमेन भूपानां विशालस्यानुकुर्वताम्

यदा पराजयप्रायं तं सर्वं भूपमण्डलम् । तदाविशालोऽर्ध्यकरःकरन्धममुपास्थितः

करन्धमोऽपि सम्प्रीत्या तेन राज्ञाभिपूजितः ।

चियुक्ते तनये तत्र निशां तां सुखमावसत् ॥ २४ ॥

ताञ्च धन्यामुपादाय विशाले समुपस्थिते ।  
 अवाशित्वा प्राह विप्रो विवाहार्थं पितुः पुर ॥ २५ ॥  
 नाहमता प्रहाप्यामि न चाजा योषित नृप ।  
 परियस्या निरीक्षया सङ्ग्रामेऽह परानित ॥ २६ ॥  
 अन्यस्मै सम्प्रयच्छेमामिवञ्चान्य वृणोतु तम् ।  
 अस्वप्निन्तयशो घाव्यो यः परेनापमानित ॥ २७ ॥  
 परैः परानिताऽह यन् कातर्यं यथाऽबल ।  
 किमत्र मानुष्यं म न तस्या मम घातरम् ॥ २८ ॥  
 स्वतंत्रना मनुष्याणां परतत्रा सदाऽबल ।  
 नरोऽपि परतत्रो यस्तस्य कीदृङ्मनुष्यता ॥ २९ ॥  
 माऽहमस्या मुखं भूया दृष्टं दशयिता कथम् ।  
 याऽहमस्या पुरो भूर्मा परीमू वै चिर्लीकृत ॥ ३० ॥

इत्युने तेन तनयामुवाच नगतीपति । श्रुत ते वचनवत्सं घटतोऽस्यमहामन  
 वरयान्यपति तत्र मनस्त रमने शुभे ।  
 धर्यं धाम प्रयच्छामो यस्मिन्स्मिन् स्ववाहता ।  
 एतवाहो कमातिष्ठ मागयो रुचिरानने ॥ ३२ ॥

माकण्डेय उवाच

पराजितोऽयं यद्भूमिं सम्यक् सम्यगाचरे ।  
 सङ्ग्रामे तत्राशा घाप्यहानिकारिणि पार्थिव ॥ ३३ ॥  
 एकोयद्भनायुद्धायगतानामिवकेसरी । यस्मस्थित परशीर्ष्यं तेनास्य प्रकृणीकृतम्  
 न केचन्यत्र्यं तस्यो युद्धे तऽप्यस्तिला जिता ।  
 बहुशाऽनेन यत्नं विप्रमोऽपि प्रकाशित ॥ ३४ ॥  
 शीर्ष्यविप्रमर्मयुक्तमिमं सपमर्हीक्षित । धमयुद्धमधर्मेण जितवन्तोऽत्र का त्रया  
 न चापि रूपमात्रं हं सोममस्त्रगता पित ॥

शौर्य्यचिदमधैर्य्याणि हरत्यस्य मनो मम ॥ ३७ ॥

तत्किमुक्तेनयदुनायाच्यतांमत्कृतेनृपः । त्वयामहानुभावोऽयंनान्पामेभवितापतिः

विशाल उवाच

राजपुत्र! सुताप्राह ममेतच्छ्रोमनं वचः । एवञ्चैवत्वया तुल्यः कुमारो न मर्हातले

अविन्नम्यादि ते शौर्य्यमर्ताव च पराक्रमः ।

पावयाऽस्मत् कुलं धीर ! दुहितुमं परिग्रहान् ॥ ४० ॥

राजपुत्र उवाच

नाहमेतां प्रहीष्यामि नद्यान्यां योषितं नृप ! ।

आत्मन्येव हि मे बुद्धिः स्त्रीमयी मनुजेवर ! ॥ ४१ ॥

मार्कण्डेय उवाच

ततः करन्धमःप्राह पुत्रेयं गृह्णातां त्वया । विशालतनयाम्मुन्नस्त्वयिहार्दयती दृढम्

राजपुत्र उवाच

नाशामङ्गः कदाचित्ते कृतपूर्व्यो मया प्रभो ! ।

तथाऽऽनापय मां तात ! यथाप्रां करवाणि ते ॥ ४३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

अत्यन्तनिश्चितमतीं तस्मिन्प्राजमुने सताम् ।

तामुवाच विशालोऽपि व्याकुलीकृतमानसः ॥ ४४ ॥

निवर्त्यतां मनः पुत्रि ! एतस्माच्च प्रयोजनात् ।

जन्यं वरय भर्तारं सन्त्यनेके नृपात्मजाः ॥ ४५ ॥

कन्योवाच

घरं वृणोम्यहं तात ! मामेव यदि नेच्छति ।

तपसोऽन्यो न मे भर्ता जन्मान्यस्मिन् भविष्यति ॥ ४६ ॥

मार्कण्डेय उवाच

ततःकरन्धमोराजा विशालेनसेमंमुदा । स्थित्वादिनत्रयंतत्र निजमभ्याययौपुरम्



अधीक्षितोऽपि तेनेव पित्राऽन्यैश्च नराधिपे ।

निदर्शने पुरावृत्ते मान्त्वितोऽभ्यागमन् पुरम् ॥ ४८ ॥

सापि षण्णा घन गत्या निखण निजयान्धये ।

तपस्तेपे निराहारा घैराग्यं परमास्थिता ॥ ४९ ॥

निराहारायदासा तु मान्त्रयमवस्थिता । सम्प्रापपरमामार्तिरृशाधमनिसन्तत

मन्दोत्साहातितन्यङ्गीमुमूर्धुरपि यात्रिका ।

देहत्यागाय सा चक्रे तदा बुद्धि नृपारमजा ॥ ५१ ॥

आत्मत्यागाय ता क्षात्या वृत्तबुद्धि सुरास्तत ।

समेत्य प्रेय्यामासुद्वेददूतं तदन्तिकम् ॥ ५२ ॥

समुपेत्य स ता प्राह दूतोऽह पार्थिवात्मजे ।

प्रेपितस्त्रिदशैस्तुभ्यं यत्काप्यं तद्विशामय ॥ ५३ ॥

न भवत्या परित्याज्य शरीरमतिदुर्लभम् ।

त्वं भविष्यसि फल्याणि । जननी चक्रवर्तिन ॥ ५४ ॥

पुत्रेण च महाभागे । भोक्तव्या निहतारिणा ।

अव्याहताज्ञेन चिरं सप्तद्वीपवती मही ॥ ५५ ॥

हन्तव्यस्तेन तरजिद्वेवाना पुरतो र्पि ।

अय शङ्कस्तथा ब्रूरो धर्मे स्थाप्यास्तत प्रजा ॥ ५६ ॥

परिपालनीयमखिल चातुर्वर्ण्यं स्वधर्मत ।

हन्तव्या दस्यवो म्लेच्छा ये घान्ये दुष्टचेष्टिता ॥ ५७ ॥

यष्टव्य विचिधैर्यज्ञे समाप्तवरदक्षिणै । बाजिमेषादिभिभद्रेपटमहम्रैश्च सङ्ख्यया

मार्कण्डेय उवाच

तं दृष्ट्वा साऽन्तरीक्षस्य दिव्यम्रगानुत्पेपनम् । देवदूतमुवाचेदं राजपुत्री ततो मृदु

सत्यं त्वमागत स्वर्गाद्विवदूतो न सशय ।

किन्तु भर्त्रां विना पुत्र स कथं मे भविष्यति ॥ ६० ॥

अवीक्षितमृते भर्ता मम नान्योऽत्र जन्मनि ।  
 भवितेति प्रतिज्ञातं मयैतत्सन्निधौ पितुः ॥ ६१ ॥  
 स च नेच्छति मां प्रोक्तो मत्पित्रा जनकेन च ।  
 करन्धमेनाथ सम्यक् याञ्चितश्च मया तथा ॥ ६२ ॥

देवदूत उवाच

किमनेन महाभागे ब्रह्मनोक्तेन ते सुतः ।

समुत्पत्स्यति मा त्वार्थीस्त्वमात्मानमधर्मतः ॥ ६३ ॥

अत्रैव कानने तिष्ठ तनुं क्षीणाञ्च पोषय । तपःप्रभावाद्देतत्ते सर्वं साधु भविष्यति

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वादेवदूतोऽसौयथागतमगच्छत । चकारानुदिनं सुभ्रूः साप्यात्मतनुपोषणम्  
 इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽवीक्षितचरित्रवर्णनं नाम-  
 धनुर्चिंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२४ ॥

## पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

### अवीक्षितचरित्रवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

अथ साऽवीक्षितो माता वीरा वीरप्रजावती ।

पुण्येऽहनि समाहृत्य प्राह पुत्रमवीक्षितम् ॥ १ ॥

पुत्राहमभ्यनुज्ञातातवपित्रामहात्मना । उपवासंकरिष्यामिदुष्करोऽयं किमिच्छका

स घायत्तस्तव पितुस्त्वया साश्र्यो मयापि च ।

प्रतिज्ञाने त्वया धृत्वा त्वत्पुत्रेण मयापि च ॥ २ ॥

द्रव्यस्याद्धं महाकोपान् तव दास्याम्यहं पितुः ।

धनन्ते पितुरायत्तमनुजानाऽस्मि तेन च ॥ ४ ॥

केशमाध्योमदायत्तमहिध्रेयोभविष्यति । साध्योभनेद्वायदिनेकश्चिद्रुद्रनृपराक्रमे

म तेऽमाध्यो ह्यन्यथा चाऽनु स्रमाध्यो भविष्यति ।

तत्त्व प्रतिज्ञा कुरुषे यदि पुत्राऽत्र सैव मे ॥

तदेतद्दहमाद्याप्स्ये कथ्यता यन्मन तव ॥ ६ ॥

अवीक्षित उवाच

विन्नं मे पितुरायन मन् स्यामित्य न तत्र वै ।

यन्मच्छरीरनिष्पाद्य तत्करिष्ये त्वयोदितम् ॥ ७ ॥

किमिच्छकत्रतमातर्निश्चिन्ताभवनि प्रथा । राज्ञापित्राऽभ्यनुज्ञातयद्विचित्तेश्वरेणमे

मार्कण्डेय उवाच

तन साराजमहिर्गीतद्रुद्रनममुपोयिता । यथोक्तान्साऽकरोत्पूजाराजराजस्यमंपता

निर्घातामप्यशेषाणा निधिपालगणस्य च ।

लक्ष्म्याश्च परया भक्त्या यतवाक्यायमानमा ॥ १० ॥

विचिन्ते तु गृहस्थोऽयमथ राजा करन्धम ।

आसीन उक् सन्धिवैनीतिशास्त्रविशारदं ॥ ११ ॥

सधिया ऊचु

राजन् वयंपरिणत तथैतच्छामतो मदीम् । एकस्नेतनयोऽर्वाक्षिरत्यक्तदारपरिग्रह

अपुन म च तेनिष्ठायशाभूष गमित्यति । तदारिपन्नं पृथिवीनिश्चिततययास्यति

वंशभ्यस्त्वं भवितापितृपिण्डोदकक्षयः । एतन्महत्तेऽरिमयत्रियाहान्ध्रामविष्यति

नस्मान् कुरन चाभूपयथा तेननयपुन । करोतिमतननुद्धिपितृणामुपकारिणाम्

मार्कण्डेय उवाच

एतन्मिग्रन्त शय्यं द्रुथाय जगतीपति । पुरोहितस्य घोरया गदतोऽर्पिन प्रति

क किमिच्छति दुःसाध्यं कस्य किं साध्यतामिति ।

करन्धमस्य महिषी किमिच्छकमुपोषिता ॥ १७ ॥

राजपुत्रोऽप्यवीक्षित्तु श्रुत्वा पौरोहितं वचः ।

प्रत्युवाचार्थिनः सर्वान् राजद्वारमुपागतान् ॥ १८ ॥

मया साध्यं शरीरेण यस्य किञ्चिद्ब्रवीतु सः ।

मम माता महाभागा किमिच्छकमुपोषिता ॥ १९ ॥

शृण्वन्तुमेऽर्थिनःसर्वेप्रतिज्ञातंमयातदा । किमिच्छथददाम्येवक्रियमाणेकिमिच्छके  
मार्कण्डेय उवाच

ततोराजानिशम्यैतद्वाक्यंपुत्रमुखाच्च्युतम् । समुत्पत्याब्रवीत्पुत्रमहमर्थोप्रियच्छमे  
अवीक्षिदुवाच

दातव्यं यन्मया तात! भवते तद्ब्रवीहि माम् ।

कर्तव्यं दुष्करं वा ते साध्यं दुःसाध्यमेव वा ॥ २२ ॥

राजोवाच

यदि सत्यप्रतिज्ञस्त्वं ददासि च किमिच्छकम् ।

पौत्रस्य दर्शय मुखं ममोत्सङ्गतस्य तत् ॥ २३ ॥

अवीक्षिदुवाच

अहन्तवैकस्तनयो ब्रह्मचर्यञ्च मे नृप । नमेषुत्रोऽस्ति पौत्रस्य दर्शयामि कथंमुखम्

राजोवाच

पापाय ब्रह्मचर्यन्तेयदिदंधार्यते त्वया । तस्मात् त्वं मोक्षयात्मानं ममपौत्रञ्चदर्शय

अवीक्षिदुवाच

विषमं स्यान्महाराज! यदन्यत्तत् समादिश ।

वैराग्येण मया त्यक्तः स्त्रीसम्भोगस्तथास्तु सः ॥ २६ ॥

राजोवाच

बहुभिर्युध्यमानानां दृष्टो धै वैरिणां जयः । तत्रापियदिवैराग्यमुपैपि तदपण्डितः

किं वा नो बहुनोक्तेनब्रह्मचर्यं,परित्यज । मातुस्त्वमिच्छया वक्त्रंपौत्रस्यममदर्शय

मार्कण्डेय उवाच

यदा स बहुभिस्तेन प्रोक्तं पुत्रेण पार्थिव ।

नान्यत् प्रार्थयते किञ्चिन् तदा पुत्रोऽग्रवीत् पुन ॥ २९ ॥

दत्त्वा किमिच्छक तुभ्यं प्राप्तोऽहं तात सङ्कयम् ।

तत्करिष्यामि निर्लेजो भूयो दारपरिग्रहम् ॥ ३० ॥

स्त्रिय समक्षं विजितपतितो धरणीतटे । स्त्रीपतिर्मंविताभूयस्नातैतदतिदुष्करम्

तथापि किङ्करोम्येव सत्यपाशवशगत ।

करिष्यामि यथाऽऽत्य त्व भुज्यता निजशासनम् ॥ ३२ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽवीक्षितचरित्रवर्णननामपञ्चविंशत्यधिक

शततमोऽध्यायः ॥ १२९ ॥

पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

अवीक्षितचरित्रवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

कदाचिद्राजपुत्रोऽसौ मृगयामधरद्वने । मृगान्विध्वन्वराहाक्षशार्दूलादींश्च दंष्ट्रिण

शुश्राव सहसा शब्दं प्राहि ब्राहीति योयित ।

विक्रोशन्त्या सुबहुशो भगद्गदमुचकै ॥ २ ॥

मा भैर्माभैरिति वदन् राजपुत्र स वेगित । श्रोत्रयोमास तुरग यत् शब्द समागत

ततश्च सापि बुकोश कन्धका विजते घने । गृहीता दनुपुत्रेण दृढकेरोन मानिनी ॥

करन्धमसुतस्याह भार्या घाहमवीक्षित । हस्त्यनार्यो विपिनेपृथिवीशस्यधीमत

यस्य सर्वे महीपालास्तथा गन्धवगुणका ।

न समर्था पुर स्थातु तस्य भार्या हताऽस्म्यहम् ॥ ६ ॥

यस्य मृत्योरिव क्रोधः शक्रस्यैव पराक्रमः ।

करन्धमसुतस्यैषा तस्य भार्या हृताऽस्म्यहम् ॥ ७ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्याकर्ष्य महीपालतनयः सशरासनी । चिन्तयामास किमिदं मम भार्याऽत्र कानने

मायेयं रक्षसां नूनं दुष्टानां काननौकसाम् ।

अथ वा गत एवाहं सर्वं वेत्स्यामि कारणम् ॥ ६ ॥

मार्कण्डेय उवाच

त्वरितः सततो गत्वा ददर्शातिमनोरमाम् । कानने कन्यकामेकां सर्वालङ्कारभूषिताम्

गृहीतां दनुपुत्रेण दृढकेशेन दण्डिना । त्राहि त्राहीतिकरणं विक्रोशन्तीं पुनः पुनः

मा भैरिति स तामाह हतोऽसीति च तं वदन् ।

शासतीमां महीं दुष्टः को भूपेऽत्र ( दूयेत ) करन्धमे ॥ १२ ॥

यस्य प्रतापावनता भुवि सर्वे महीक्षितः । ततस्तमागतं दृष्ट्वा गृहीतवरकार्मुकम्

मां त्राहीत्याह तन्वङ्गी हृतास्म्येपेति चासकृत् ।

राज्ञः करन्धमस्याहं स्नुषा भार्याप्यवीक्षितः ॥

हृताऽस्म्येतेन दुष्टेन सनाथाऽनाथवदने ॥ १४ ॥

मार्कण्डेय उवाच

ततो विममृषे वाक्यमवीक्षित् स तथोदितम् ।

कथमेषा हि मे भार्या स्नुषा ता तस्य वा कथम् ॥ १५ ॥

अथ वा मोक्षयाम्येतां तन्वीं वेत्स्यामि तत् पुनः ।

क्षत्रियैर्धार्यते शस्त्रमार्त्तानां त्राणकारणात् ॥ १६ ॥

ततः क्रुद्धोऽब्रवीद्दीरो दानवंतं सुदुर्मतिम् । जीवनगच्छ विमुच्यैनामन्यथानभविष्यसि

ततः सतां विहायोच्चैर्दण्डमुत्क्षिप्य दानवः ।

तमप्यधावत्सोऽप्येनं शरवैरैरवाकिरत् ॥ १८ ॥

सचार्यमाणो वाणो धैर्दानवोऽतिमदान्वितः । राजपुत्राय चिक्षेप दण्डं शङ्कशतावनम

तमापतन्न चिच्छेद् शरैर्भूपमुनन्त ।

सोऽप्यासन्न गृहीत्योच्चैर्दुर्ममाजौव्यवस्थित ॥ २० ॥

सृजत शरधर्पाणि त चिक्षेपततो द्रुमम् । न घततिलशङ्खनेमल्लैः कामुंक्मोचितैः

ततश्चिक्षेप च शिवा राजपुत्राय दानव ।

सापि मोघा पपातोर्णामुज्झिता तेन लाघवात् ॥ २१ ॥

राजपुत्राय कुपितो यद्यश्चिक्षेप दानव ।

तत्तश्चिच्छेद् बाणैर्वैभूभृत्सूनु स गील्या ॥ २३ ॥

नतो विच्छिन्नदण्डोऽसौ विच्छिन्नमकलयुध ।

मुष्टिमुद्यम्य सन्नोधो राजपुत्रमधाघत ॥ २४ ॥

तन्त्यापतत यदासी करन्धमसुत शिर । छित्त्वा धेतसपत्रेणपातवामाम वैभुवि

तस्मिन् विनिहतं देवैदानवेदुष्वेष्टिने । करन्धमसुत पर्वे साधुस्माध्यतिभापित

घर वृणीष्वेति तन्ना देवैरक्तो नृपामज ।

धये पुत्र महावीर्यं पितु प्रियघकीपया ॥ २७ ॥

देवा ऊचुः

भविष्यति हितेपुत्रश्चक्रवर्त्त महाबल । अस्यामेवहिकन्यायामोक्षितायात्ययानव

राजपुत्र उवाच

पित्राहसत्यपाशेनवदइच्छाम्यहसुतम् । राजभिर्निर्जितेनाऽऽजीन्यक्तोमेदारसग्रह

सा च मे याचता त्यक्ता विशालनृपते सुता ।

तथा च मत्कृते न्यक्तो मामृते नरस्ङ्गम ॥ ३० ॥

तन् कथ तामपाम्याद्य विशालतनयामहम् ।

नृशसाना ( हमा ) करिष्यामि अनपनारीपरिग्रहम् ॥ ३१ ॥

देवा ऊचुः

इयमेवहि ते भाया शृणुष्यते या त्वया सदा ।

विशालस्य सुता सुघ्नूस्त्वत्कृतेयाऽऽश्रिता तप ॥ ३२ ॥

तस्यामुत्पत्स्यते वीरः समद्वीपप्रसाधकः । यथायत्सहस्राणां चक्रवर्ती सुतस्तव

मार्कण्डेय उवाच

इत्युच्चार्यं ययुर्देवाः करन्ध्रमसुतं द्विज ! ।

सोऽप्याह तां तदा पत्नीं कथ्यतां भीम! किं त्विदम् ॥ ३४ ॥

सा चास्मै कथयामास त्यक्ताऽहं भवता यदा ।

त्यक्त्वन्धुजनारण्यं निर्वेदात् समुपागता ॥ ३५ ॥

तत्राहं तपसा धीर! क्षीणप्रायंकलेवरम् । त्यक्तुकामा समभ्येत्य देवदूतेन वारिता

भविष्यति च पुत्रस्ते चक्रवर्ती महाबलः ।

प्रीणयिष्यति यो देवानसुरांश्च हनिष्यति ॥ ३७ ॥

इति देवाज्ञया तेन देवदूतेन वारिता । न सन्त्यक्तवती देहं त्वन्नुद्गममनोरथा ॥

परश्वश्च महाभाग! स्नातुंगङ्गाहदंगता । अवतीर्णाचिष्टास्मि वृद्धनागेन केनचित्

ततो रसातलं नीता तेन तत्र च मे पुरम् ।

नागाः सहस्रशस्तस्थुर्नागपत्न्यः कुमारकाः ॥ ४० ॥

तुष्टुदुर्मा समभ्येत्य मामन्येऽपूजयंस्तथा ।

यथाचिरे सविनयं नागा मामङ्गनास्तथा ॥ ४१ ॥

प्रसादं कुरुसर्वेपांत्वमस्माकं सुतस्त्वया । अपराधमुपेतानांसंनिवार्यो वधोन्मुखः

अपराधं करिष्यन्ति त्वत्पुत्रस्यानिलाशनाः ।

तन्निमित्तं निवार्योऽसौ प्रसादः क्रियतामिति ॥ ४३ ॥

तथेतिषमया प्रोक्ते दिव्यैःपातालभूरणैः । भूपिताऽहंतथापुष्पैर्गन्धवासोभिरुत्तमैः

समानीता तथालोकमिमन्तं नानिलाशिना ।

पुरा यथा कान्तिमती पूर्ववद्रूपशालिनी ॥ ४५ ॥

इतिरूपवतीं दृष्ट्वा सर्वालङ्कारभूषिताम् । जग्राह दृढकेशोऽयं हर्तुकामः सुदुर्मतिः

युष्मद्बवाहुवलेनाहं राजपुत्र! विमोक्षिता ।

तत् प्रसीद महाबाहो ! मां प्रतीच्छ त्वया समः ।



भूलोके राजपुत्रोऽन्यो नास्ति सत्यं ब्रवीम्यहम् ॥ ४७ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽर्वाक्षितचरित्रघर्षणं नाम

पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२६ ॥

### सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

अर्वाक्षितचरित्रेभामिनीराजपुत्र्याःपूर्वजन्मवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

इति तस्या घघः ध्रुत्वा स्मृत्या पितृवचः शुभम् ।

किमिच्छकप्रतिज्ञाते यदुक्तं तेन भूभृता ॥ १ ॥

प्रत्युवाच स ता कन्यामर्वाक्षिद्रूपतेः सुतः ।

सानुरागमनाः कन्या त्यक्तभोगाञ्च तत्कृते ॥ २ ॥

यदाहं त्यक्तवास्नन्वीं त्वामरातिपराजित् ।

विजित्य शत्रून् सम्प्राप्तो ( ता ) त्वं मयाऽत्र करोमि किम् ॥ ३ ॥

कन्योवाच

ममपाणिगृहाणत्वमर्णीयेऽत्रकानने । सकामायाःसकामेनसङ्गमोगुणधान् भवेन्

राजपुत्र उवाच

एवं भवतु भद्रन्ते विधिरेवात्रकारणम् । अन्यथाक्थमन्यत्र त्वमहञ्च समागतः ॥

मार्कण्डेय उवाच

एतस्मिन्नन्ते प्राप्ते गन्धर्वतनयो मुने । वराप्सरोभिः सहितो गन्धर्वैरपरिवृतः

गन्धर्व उवाच

राजपुत्र ! सुनेयम्मे भामिनी नाम मानिनी ।

अभिशापाद्गस्त्यस्य विशालतनयाऽभवत् ॥ ७ ॥

बालभावेन योऽगस्त्यः कोपितः क्रीडमानया ।

ततस्तेन तदा शक्ता मांनुपी त्वं भविष्यसि ॥ ८ ॥

प्रसादितः स चास्माभिर्वाल्लेयमविवेकिनी ।

तवाऽपराधाद्धिप्रर्षे! प्रसादः क्रियतामिति ॥ ९ ॥

प्रसाद्यमानः सोऽस्माभिरिदमाह महामुनिः ।

वाल्लेति मत्वा शापोऽल्पो दत्तोऽस्या नान्यथैव तत् ॥ १० ॥

इतिशापाद्गस्त्यस्य विशालभवनेशुभा । जातेयंमत्सुता सुभ्रूमाभिनीनामनामतः

तदस्याऽहं कृते प्राप्तो गृहाणेमां नृपात्मजाम् ।

ममात्मजां सुतस्तेऽत्र चक्रवर्ती भविष्यति ॥ १२ ॥

मार्कण्डेय उवाच

तथेत्युक्त्वेति तस्याश्च स पाणिं पार्थिवात्मजः ।

जग्राह विधिवद्धोमं चक्रे तत्र च तुम्युरुः ॥ १३ ॥

प्रजगुर्देवगन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः । पुष्पाणिससृजुर्मेवा देववाद्यानि सस्वनुः

विवाहे राजपुत्रस्य तयातत्र समेयुषः । समस्तवसुधात्राणकर्तृकारणभूतया ॥

ततो गन्धर्वलोकं ते सह तेनमहात्मना । निःशेषेणययुः साचस च राजसुतो मुने !

भामिन्या मुमुदे सार्द्धमवीक्षिन्वृपनन्दनः । साचतेनसमंतत्र भोगसम्पत्समन्विता

कदाचिदतिरम्येऽसौ नगरोपवने तथा । विक्रीडतिसमं तन्व्या कदाचिदुपपर्वते

कदाचित् पुलिने नद्या हंससारसशोभिते ।

कदाचिद्भवनस्याऽन्ते प्रासादे चातिशोभने ॥ १६ ॥

विहारदेशेष्वन्येषु रमणीयेष्वहर्निशम् । सरमेसहितस्तन्व्यासाचतेनमहात्मना ॥

भक्ष्यानुलेपनं वस्त्रं स्रक्पानादिकमुत्तमम् । उपजहस्तयोस्तत्रमुनिगन्धर्वकिन्नराः

तथा च रमतस्तस्य भामिन्या सह दुर्लभे ।

गन्धर्वलोके वीरस्य पुत्रं सा सुपुत्रे शुभा ॥ २२ ॥

तस्मिन् जाते महावीर्येगन्धर्वाणांमहोत्सवः । वमूवमनुजव्याघ्रेतेनकार्यमवेक्षताम्

जगु केचित्तर्धवान्ये मृदङ्गपटहानकान् । अवाद्यन्तर्धवान्येवेणुवीणादिकास्तथा  
नवृतश्च तथा तत्र बहवोऽप्सरसा गणा । पुष्पवृष्टिमुद्योगेनाजगज्जु मृदुनिस्वना  
तथाकोलाहलेर्तास्मन्वर्त्तमानेऽथतुम्बुरु । प्रणयेनस्मृतयातोजातकर्माकरोन्मुनि  
देवा समाययु सर्वं तथादेवयोऽमला । पाताशात्पत्रगेन्द्राश्चशेषवासुकिनक्षका

तथा देवासुराणाञ्च ये प्रधाना द्विजोत्तमा ।

यक्षाणा गुह्यकानाञ्च वायवश्च तथाऽखिला ॥ २८ ॥

तदाऽऽर्गैरशेषैर्धिदेवदानचपत्रगै ।

मुनिभिश्चापुत्रमभूत् गन्धर्वाणा महत्पुरम् ॥ २९ ॥

तत स तुम्बुरु कृत्वा जातकर्मादिका क्रियाम् ।

घञ्जे स्वस्त्ययन यस्य चाऽस्य स्तुतिपूर्वकम् ॥ ३० ॥

घञ्जवर्त्तमहावीर्य्यो महाबाहुर्महाबल । महान्तकालमीशित्वमशेषायाः क्षिणे कुर  
श्मे शक्रादय सर्वे लोकपालास्तथपय ।

स्वस्ति कुर्वन्तु ते धीर । धीर्यञ्चारिविनाशनम् ॥ ३१ ॥

मरुत्तव शिवायाम्नु घाति पूरण योऽरज ।

मरुत्ते विमलोऽक्षीणोऽवैश्यायास्तु दक्षिण ॥ ३२ ॥

पश्चिमस्ते महर्षीष्यमुत्तमन्ते प्रवच्छतु । बलयच्छतुघोरं च मरुत्ते च तयोत्तर ॥  
इतिस्वस्त्ययनस्थाने घागुवावाशरीरिणा । मरुत्तरेतिवद्दृशो यदिदं गुरुग्रवीत्

मरुत्त इति तैतार्यं भुवि स्यातो भविष्यति ।

भुवि धाम्न्य महीपाठा यास्यन्त्याशावशा यत ॥ ३३ ॥

एष सवक्षितीशाना धीर स्थान्यति मूर्धनि ।

घञ्जवर्त्तं महावीर्य्य सप्तर्षीपवर्ती महीम् ॥ ३४ ॥

धात्रभ्य पृथिवीपालानय भोक्षन्त्यवारित ।

प्रधान पृथिवीशाना भविष्यत्येष यद्विज्ञताम् ॥

आधिक्य शौष्यवीर्य्यण भविष्यत्यस्य राजसु ॥ ३५ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्याकर्ण्य वचः सर्वे केनाप्युक्तं दिवोकसाम् ।

तुतुपुर्विप्रगन्धर्वाश्चास्य माता तथा पिता ॥ ३६ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽधीक्षितचरित्रमाहात्म्यप्रवर्णनं नाम

सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२७ ॥

अष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

करन्धमपौत्रप्राप्तौराज्येमहार्हर्षवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

ततः स राजपुत्रस्तमादाय दयितं सुतम् । पत्न्याञ्चानुगतोविप्रगन्धर्वैरायथौपुरम्

स पितुर्भवनंप्राप्यववन्दे पितुरादरात् । चरणौसाच तन्वङ्गी हीमती नृपतेः सुता

तथाह राजपुत्रोऽसौ गृहीत्वा बालकं सुतम् ।

धर्मासनगतं भूपं राज्ञां मध्ये करन्ध्रमम् ॥ ३ ॥

मुखं पौत्रस्य पश्यैतदुत्सङ्गस्थस्य यन्मया ।

किमिच्छके प्रतिज्ञातं तुभ्यं मातुः कृते पुरा ॥ ४ ॥

इत्युक्त्वापितुरुत्सङ्गे तं कृत्वातनयंततः । यथावृत्तमशेषं स कथयामासतस्यतत्

स परिष्वज्य तं पौत्रमानन्दाल्लाचिलेक्षणः ।

सभाग्योऽस्मीत्यथात्मानं प्रशशंस पुनः पुनः ॥ ६ ॥

ततः सोऽध्यादिना सम्यक् गन्धर्वान् समुपागतान् ।

सम्मानयामास मुदा विस्मृतान्यप्रयोजनः ॥ ७ ॥

ततःपुरे महानासीदानन्द्रः पौरवेश्मसु । अस्माकंसन्ततिर्जातानाथस्येतिमहासुने

दृष्टपुष्टे पुरे तस्मिन् गीतवाद्यैर्वराङ्गने ! ।

विलासिन्योऽतिघातं द्रुघो ननृतुर्लोल्यमुत्तमम् ॥ ९ ॥

राजा च द्विजमुष्येभ्यो खानि च वसति च ।

गावा यत्राप्यलङ्कारानददद्भृष्टमानस ॥ १० ॥

ततः स वागे घृधे शुक्लपक्षे यथा शशी ।

पिनृणा प्रीतिजनको जनस्येष्टश्च सोऽभवत् ॥ ११ ॥

आचार्याणां सकाशात् सा प्राग्वेदान् जगृहे मुने ।

ततः शस्त्राप्यशगणि धनुर्वेदं ततः परम् ॥ १२ ॥

कृतोद्योगोयदासोऽभूत् खड्गकामुककर्मणि । अन्येषु घतधावीर शस्त्रेषु चिजितश्रम

ततोऽस्त्राणि स जग्राह भार्गवाद् भृगुसम्भवान् ।

विनयाचनतो विप्रः गुरोः प्रीतिपरायण ॥ १४ ॥

गृहीतास्त्रं कृतीवेदे धनुर्वेदस्य पारग । निष्पात सवविद्यासु न यभूव ततः पर

विशागेऽपि मुतावार्त्तामुपलभ्यास्त्रिलामिमाम् ।

हपतिभरघित्तोऽभूद्दौहित्रस्य च योग्यताम् ॥ १६ ॥

अथ राजा सुतसुतं दृष्ट्वा प्राप्तमनोरथ ।

यज्ञाननेकान् निष्पाद्य दत्त्वा दानानि चार्थिनाम् ॥ १७ ॥

कृताशेरक्रियो युक्तः सवर्णं प्रमतो महीम् । परिषाट् शरिविजयीबलदुद्धिममन्वित

सयियासुवन पुत्रमवाक्षितमभाषत । पुत्रं वृद्धोऽस्मि गच्छामि वनं राज्यं गृहाण मे

कृतवृथोऽस्मि नास्त्यन्यत् किञ्चिन् तद्दमिषेचनात् ।

सुनिष्पन्नमतो राज्यं त्वं गृहाण मयाऽर्पितम् ॥ २० ॥

इत्युक्त्वा पितरप्राहमोऽप्रीक्षिन्मृपनन्दन । प्रथयाचनतो भूत्वा यियासुस्तपसेवनम्

नाऽहं तात । करिष्यामि वृथिष्ठ्याः परिपालनम् ।

नापेति हीमं मनसो राज्येऽन्यं त्वं नियोज्य ॥ २२ ॥

तानेनमोक्षितो यदो न स्पृशीर्यादहयत । ततः कियत्पीर्य मे पुरुषे पालयते मही

योऽहं न पालनायात्प्राप्तमनोऽपि वसुन्धराम् ।

स कथं-पालयिष्यामि राज्यमन्यत्र विक्षिप ॥ २४ ॥

मन्त्री स धर्मः पुरुषोयश्चान्येनावद्गृह्यते ।

धात्माऽमोहाय भवतो बन्धनाद्येन मोक्षितः ॥

सोऽहं कथं भविष्यामि स्त्रीसधर्मा महीपतिः ॥ २५ ॥

स्त्रियः पुमान्भवेद्गर्ता यः शूरः स महीपतिः ।

पितोवाच

न मित्र एव पुत्रस्य पितापुत्रस्तथा पितुः ।

नान्येन मोक्षितो वीर ! यस्त्वं पित्रा विमोक्षितः ॥ २६ ॥

पुत्र उवाच

हृदयं नान्यथानेतुं मया शक्यं नरेश्वर ! हृदये हीर्ममातीव यस्त्वहं मोक्षितस्त्वया

पित्रोपात्तां श्रियं भुङ्क्ते पित्रा कृच्छ्रात् समुद्भृतः ।

विज्ञायते च यः पित्रा मानवः सोऽस्तु नो कुले ॥ २८ ॥

स्वयमर्जितवित्तानां ख्यातिं स्वयमुपेयुषाम् ।

स्वयं निस्तीर्णकृच्छ्राणां या गतिः साऽस्तु मे गतिः ॥ २९ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्याह बहुशः पित्रा यदाप्युक्तोऽध्यसां मुने ! तदातस्यसुतराज्येमरुत्तमकरोन्वृष

स पित्रा समनुज्ञातं राज्यं प्राप्य पितामहात् ।

अकार सम्यक् सुहृदामानन्दमुपपादयन् ॥ ३१ ॥

राजा करन्धमश्चापि धीरामादाय तां तथा ।

वनं जगाम तपसे यतवाक्कायमानसः ॥ ३२ ॥

तत्र वर्षसहस्रं च स तपस्तप्ता सुदुश्चरम् ।

विहाय देहं नृपतिः शक्रस्याप सलोकताम् ॥ ३३ ॥

साऽस्य पत्नी तदावीरावर्तणामपरंशतम् । तपश्चतार विप्रपं!जटिका मलयङ्किर्न

सालोऽभिमिच्छतो भर्तुः स्वर्गतस्य महात्मनः ।

फलमूलहृत्नाहारा भागवाध्रमसध्रया । द्विजातिपत्रीमध्यस्थ्या द्विजशुश्रूषणादृता  
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मरुत्तचरित्रवर्णननामाऽ  
ष्टाध्याय्यधिकशततमोऽध्याय ॥ १२८ ॥

## एकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्याय.

### मरुत्तचरित्रवर्णनम्

#### श्रीऋषिर्वाच

भगवन् ! विस्तरान् सर्वं ममेतत्कथितं त्वया ।  
करन्धमस्य चरितमवीक्षित्स्वरितञ्च यत् ॥ १ ॥

आर्षाक्षितस्यनृपतेमरुत्तस्यमहात्मन । श्रोतुमिच्छामिचरितध्रयनेसोऽतिचेष्टित  
चरत्कर्त्तौ महाभाग' शूर कान्तो महामति ।  
धमविद्धमहर्ष्यैव सम्यक् पालयिता भुव' ॥ ३ ॥

#### मार्कण्डेय उवाच

स पित्रा समनुज्ञातं राज्यं प्राप्य पितामहात् ।  
धमनं पालयामास पिता पुत्रानिधौरसान् ॥ ४ ॥  
इवान् सुवह्नुं यज्ञान् यथावत् स्यात्तदक्षिणान् ।  
ऋत्विक्पुरोहितादशरम्यचित्तो ( तदनिर्दिष्टो ) महीपति' ॥ ५ ॥

तस्यप्रतिहृतचरमार्मान्द्वीपेषुमनसु । गतिध्याप्यनवच्छिन्नास्यपातालजगदिषु  
तत्र प्राप्यधनविप्रं यथावत्स्वप्रियापर' । अयन्त् स महाशयैर्देवानिन्द्रपुरोगमान्  
इतत् च यथा वणा स्त्रे स्त्रे कम्पवतन्द्रिता ।

तदुपात्तधनाश्चक्रुः रिणापूर्त्तादिका' प्रिया ॥ ८ ॥

पात्र्यमाता महीनेन मरुत्तन महात्मना । पस्पदंशिशिदशायाम्पामिमिर्द्धिज्जन्तम'

तेनातिशायिताः सर्वे केवलं न समीक्षितः ।

यज्विना-देवराजोऽपि शतयज्ञाभिसन्धिभिः ॥ १० ॥

ऋत्विक् तस्य तु सम्बर्त्तो बभूवाङ्गिरसः सुतः ।

भ्राता वृहस्पतेर्विप्र ! महात्मा तपसां निधिः ॥ ११ ॥

सौवर्णोमुञ्जवान्नामपर्वतःसुरसेवितः । पातितंतेनतच्छृङ्गं हृतं (कृते)तस्यमहीपतेः  
तेन यस्याखिलं यज्ञे भूमिभागादिकं द्विज ! ।

प्रासादाश्च कृताः शुभ्रास्तपसा सर्वकाञ्चनाः ॥ १२ ॥

गाथाश्चाप्यत्रगायन्तिमरुत्तवरिताश्रयाः । सातत्येनर्पयःसर्वेकुर्वन्तोऽध्ययनं यथा  
मरुत्तेन समो नाभूद्यजमानो महीतले । सदः समस्तं यद्यज्ञे प्रासादाश्चैव काञ्चनाः

अमाद्यदिन्द्रः सोमेन दाक्षिणाभिर्द्विजातयः ।

विप्राणां परिवेष्टारः शकाद्यास्त्रिदशोत्तमाः ॥ १६ ॥

यथायज्ञे मरुत्तस्यःतृप्तास्सर्वे महीपतेः । सुवर्णमखिलं त्यक्तं रत्नपूर्णगृहे द्विजैः ॥

प्रासादादि समस्तञ्च सौवर्णन्तस्य यत्कृतौ ।

त्रयो वर्णा ह्यलभ्यन्त तस्मात्केचित्तथा ददुः ॥ १८ ॥

[तेनत्यक्तेनशिष्ट्रायेजनाःपूर्णमनोरथाः । तेऽपि यज्ञान् यजन्तेस्मदेशेदेशेषुथक्पुथक्  
तस्यैवंकुर्वतोराज्यंसम्यक् पालयतःप्रजाः । तपस्वीकश्चिदभ्येत्यतमाहमुनिसत्तम!  
पितुर्मातातवाहेदं दृष्ट्वातापसमण्डलम् । विपाभिभूतमुरगैर्मर्मदोन्मत्तैर्नरेश्वर ! ॥२०

पितामहस्ते स्वर्यातः सम्यक् सम्पाल्य मेदिनीम् ।

पिता तवतथाशक्तोहित्वाग्रामंवनंगतः । तपश्चरणशक्ताऽहमिह चौर्वाश्रमे स्थिता  
साऽहं पश्यामिचैकल्यं तव राज्यं प्रशासतः । पितामहस्यतेनाभूद्यत्पूर्वेषामञ्जतेनृप!

नूनं प्रमत्तो भोगेषु सक्तो वाऽविजितेन्द्रियः ।

चारान्धता यतस्तेषां दुष्टादुष्टं न वेत्सि यत् ॥ २३ ॥

पातालादभ्युपेतैस्तुभुजगैर्दशशालिभिः । दष्टामुनिसुता सप्त दूषिताश्चजलाशयाः

स्वेदमूत्रपूरीपेण दूषितञ्च हुतं हविः । अपराधं समद्विश्यदत्तो नागवलिश्चिरान् ॥



एते समर्थामुतयो मत्सर्माश्च भुजङ्गमान् ।

किन्त्वेषा नाधिकारोऽत्र त्वमेवात्राऽधिकारवान् ॥ २१ ॥

तावत्सुग भूपतिर्जैर्भोगज्ञ प्राप्यते वृष । अभिपेक्षन् यावन्नमृजि विनिरायते  
कानि मिथ्याणि च शत्रुर्मम शत्रोर्न कियन् ।

कोऽहं के मन्त्रिण पक्षे के वा मूपलयो मम ॥ २८ ॥

[ क्रियान्कोभोवत्क्रिया कोऽनुरक्तोजनोमम । ]

चिरको वा परीभिन्न परेषामपि कीदृश । च सम्यग्द्र तगते चिरते वा जतो मम  
धर्मधर्मात्रयो मूढ च सम्यगपि वन्तते ।

को दण्ड्य परिपाय च के वो (सो) पेश्या नरा मया ॥ ३० ॥

मद्भेदतया दम्पदेशकात्प्रवेशता । धाराश्च धारयेदन्वैरहातान् भूपतिर्धर ॥

सधियादिपुम्बेषु धरान्दधान्मर्गापति । रगादीभूपतिर्निधर्मं प्यामनमानम्

तयेद्दिन तथा रात्रि न तु भोगपरायण । रामा शरीरग्रहण न भोगाय मर्हापते ।

केशाय महते पृथ्या स्वधर्मपरिपायने । सम्यक् पालयत पृथ्यास्वधर्मश्चमर्हीपते

इहक श्रेयोमहान्स्वर्गपरममुखमश्लयम् । तदेतद्वपुःयत्य (स्व) हित्वाभोगाश्रयैश्चर

पालनाय क्षिते केशमर्हीस्तुमिहार्हसि ।

इति वृत्तमृगीणां यद्गुण्यत त्वयि शामति ॥ ३१ ॥

भुजङ्गहेतुक भूष । धारान्धो नापि धेसि तन् ।

वदुनात्र किमुक्तेन दुष्टे दण्डो निपात्यताम् ॥ ३२ ॥

शिष्टान् पालय राजस्त्व धर्मरङ्गभागमाप्स्यसि ।

अरक्षन् पापमस्त्रि दुष्टैरविनयान् वृत्तम् ॥ ३८ ॥

ममनाप्स्यस्यस्यमन्दिग्ध यदिच्छसि कुरुच तत्र ।

एतन्मयोक्त सकल यत्तदाह पितामर्ही ॥

कुरुष्वैव स्थिते यत्ने रोन्ते वसुधात्रिप ॥ ३६ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मत्स्यधरित्रयणनतामैत्रोत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥

## त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

नागैर्मरुत्तमातुःपार्श्वेप्रार्थनकरणम्

मार्कण्डेय उवाच

इति तापसवाक्यं स श्रुत्वा लज्जापरो नृपः ।

धिङ्मां चारान्धमित्युक्त्वा निःश्वस्य जगृहे धनुः ॥ १ ॥

ततः सत्वरितं गत्वा तमोर्वस्याश्रमंप्रति । ववन्देशिरसावीरां मातरं पितुरात्मनः

तापसांश्च यथान्यायं तैश्चाशीर्भिरभिष्टुतः ।

द्रष्ट्वा च तापसान् सम नागैर्दृष्टान् सुतान् भुवि ॥ ३ ॥

निनिन्दात्मानमसकृत् पुरस्तेषामहीपतिः । उवाचवैतदद्याहं मद्भीर्यमवमन्यताम्

यत्करोमि भुजङ्गानां दुष्टानां ब्राह्मणद्वियाम् ।

तत्पश्यतु जगत् सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥ ५ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वा जगृहे कोपादस्त्रं सम्यर्तकं नृपः ।

नाशायशेषनागानां पातालोर्व्वीचिचारिणाम् ॥ ६ ॥

रेज्ज्वालसहसानागलोकःसमन्ततः । महान्स्त्रतेजसाचिप्रः दह्यमानोनिवारितःतत

हा हा ! तातेति हा ! मातर्हा हा ! वत्सेतिसम्भ्रमे ।

तस्मिन्नस्त्रकृते वाचः पन्नगानामथाऽभवन् ॥ ८ ॥

केचित् ज्वलद्भिः पुच्छाग्रैः फणैरन्यभुजङ्गमाः ।

गृहीतपुत्रदाराश्च त्यक्ताभरणवाससः ॥ ९ ॥

पातालमुत्सृज्य ययुःशरणंभामिनीतदा । मरुत्तमातरं पूर्वं यया दत्तं तदाऽभयम्

तामुपेत्योरगाः सर्वेसप्रणामंभयातुराः । सगद्गदमिदंप्रोचुः स्मर्यतां नः पुरोदितम्

प्रणम्याभ्यर्चितं पूर्वं यदस्माभीरसातले ।

तस्य कालोऽयमायातस्त्राहि चीगप्रजायिनि ॥ १२ ॥

पुत्रो निवार्यता रात्रि ! प्राणै सायोज्यमस्तु न ।

दहते सकलो लोके नागानामखवद्भिना ॥ १३ ॥

एषमदह्यमानानामस्माक तनयेन ते । त्वामृतेशरण नान्यन् वृपाकुट यशस्विनि'

माकण्डेय उवाच

इति श्रुत्वा घघस्तेषा मस्मन्त्यादौ च भाषितम् ।

भन्ताग्माह सा माध्वी मसन्नममिद घघ ॥ १५ ॥

पूर्वमेव तवाग्यात पातायेयद्भुवद्मै । प्रोक्तमभ्यर्थनापूर्वं ममार्मीभितय प्रति ॥

तश्चेऽभ्यागता भाता दहन्तेतस्यतेनमा । मामतेशरण पूर्वं दत्तमेभ्योमयाऽभयम्

येमाशरणमापन्नास्ते त्वाशरणमागता । ञपृथग्धमघरणा याताह शरण तव ॥

तद्विवारय पुत्रत्य मन्त घघनात्तव । मया धाम्यर्थितोऽवश्य शममन्पुपयास्यति

रात्रौवाच

महापराधे नियत मरत्त बाधमागत । दुर्निधत्यमह मत्पे तस्य क्रोध मुत्तम्य ते

नागा ऊतु

शरणागतास्तववयप्रसाद् कियतानृप । क्षतस्यातपरिब्राणतिमितशस्त्रधारणम्

माकण्डेय उवाच

नागाना तद्वच श्रुत्वा भूताना शरणैषिणाम् ।

तया धाम्यर्थित पन्त्या प्राहार्याक्षिन्महायशा ॥ २२ ॥

गन्धार्द्रमिभ भद्र' तनयन्त्यस्यातव । परिब्राणायनागानानन्याज्याशरणागता'

नोपमंरते सोऽत्र यदि मडधनाभूप । तद्विचारयिष्यामि तस्यात् तनयस्य ते

माकण्डेय उवाच

ततो गृह्णत्या म धनुरर्षाक्षिन् क्षतित्रयोत्तम ।

भाष्यया सहित प्रायास्वराषान् भागवाधमम् ॥ २० ॥

इति धामाकण्डेयपुराणे मन्मघरिष्यणं नार्मत्रिंशदधिकशततमोऽध्याय ॥ १३०

## एकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

मरुत्तेनपितुःसम्वादवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

सनुतान्याः सुतं दृष्ट्वा गृहीतवरकामुंकम् । धनुःशस्त्रञ्च तस्योग्रं ज्वालाव्याप्तदिगन्तरम्  
उद्विगन्तं महावह्निं दीपितान्वि लभूतलम् । पातालान्तर्गतं प्राणममलान्नोरभीषणम्  
स तं दृष्ट्वा महीपालं भृकुटीकुट्टिनाननम् । माकृधस्त्वं मरुत्तास्त्रमुपनंहियतामिति  
प्रहासकृतत्वरालुप्तवर्णक्रममुदारधीः । सनिशम्यगुरोर्वाक्यं दृष्ट्वा तत्र पुनः पुनः ॥  
गृहीतकामुकः पित्रोः प्रणिपत्यसगौरवम् । प्रत्युवाचापराद्धामेसुभृशं पन्नगाः पितः  
शासतीमां मयि महीं परिभृय वलं मम । सताश्रममुपागम्य दृष्ट्वा मुनिकुमारकाः ॥  
ऋषीणामाश्रमस्थानाममी रामवतीपते ! । मयिशासतिदुष्टं तैर्दूषितानिहवीषि च  
जलाशयास्तथाप्येतैः सर्व एव हि दूषिताः । तदेतत्कारणं किञ्चित्त्र चक्षुष्यं वयापितः  
न निवारयितव्योऽहं ब्रह्मघ्नान् प्रति पन्नगान् ॥ ८ ॥

अर्वाक्षिदुवाच

यद्येभिर्निहताविप्रायास्यन्ति नरकं मृताः । ममैतत्क्रियतां वाक्यं विरमास्त्रप्रयोगतः

मरुत्त उवाच

नाहमेपांश्चमिष्यामि दुष्टानामपराधिनाम् । अहमेवगमिष्यामिनरकं यदिपापिताम्

न निग्रहे यताम्येषां मां निवारय मा पितः ! ॥ १० ॥

अर्वाक्षिदुवाच

मासेते शरणं प्रामाः पन्नगा मम गौरवात् ।

उपसंहियतामस्त्रमलं कोवेन ते नृप ! ॥ ११ ॥

मरुत्त उवाच

नाहमेपांश्चमिष्यामि दुष्टानामपराधिनाम् । स्वधर्ममुल्लङ्घय कथं करिष्यामि वचस्तव

दण्ड्ये निपातयन् दण्ड भूप शिगाञ्च पालयन् ।  
पुण्यलोकानयाप्नोति नरकाध्याप्युपेक्षक ॥ १३ ॥

माकण्डेय उवाच

एव न बहुशपित्रा धार्यमाणोऽम्बरामह । नोपमहरत्तेसोऽरुब्रंततोऽसौपुनच्छर्वात्  
हिंससे पद्मगान् भातान् ममैतान् शरण गतान् ।  
धार्यमाणोऽपि नस्नाने करिणामि प्रतिनियाम् ॥ १७ ॥  
मराप्यस्त्राण्ययामाति न ह्यमेकोऽरुश्चिद्रु भुवि ।  
ममाग्रत सुदुर्वृत्तं पीदरञ्च किरत्तर ॥ १६ ॥

नन कामुंक्माराण्य कोपताम्रविशोघन । भर्षाक्षिश्च नप्राहकालस्यमुत्तिपुङ्गव  
ततो ज्वालापरागारनरिसद्गुप्समुतमम् ।  
कालास्त्रन्तु महाघार्यं योवयामाम कामुंके ॥ १८ ॥  
नतद्यक्षोभ जगता सम्यन्तास्त्रप्रवपिता ।  
साध्विरौलाऽसित्वा विश' कालस्यास्त्रे समुद्यते ॥ १९ ॥

माकण्डेय उवाच

कालास्त्रमुग्रत पित्रा मद्यत सोऽपि धीश्य तत् ।  
प्राहोर्ध्वैस्त्रमेतन्मे दुणशास्त्रिसमुद्यतम् ॥ २० ॥  
न त्वदुपधाद कालास्त्र मयि मुद्यति किं भवान् ।  
मद्भव गारिणि मुने मद्देवाग्नाकर तर ॥ २१ ॥

मया कार्यं महाभाग' प्रजाना परिपालनम् ।  
न्ययव विरते कस्मान्मद्दुपधागाम्ऽमुद्यतम् ॥ २२ ॥

भर्षाक्षिदुवाच

शापनागतमशापकवुष्टवमिताययन् । तस्त्वं शयातक तत्त्वंतमेवीयन्विमाश्यसे  
मा वा हत्याऽरुवरीयण जदि दृशानिहोत्तमान् ।  
त्या वा हत्याऽरुमस्त्रेण रक्षिणामि महोत्तमान् ॥ २५ ॥  
द्विक् तस्य प्रापित पुंन शरणार्थितमागतम् ।

यो नार्तमनुगृह्णाति वैरिपक्षमपि ध्रुवम् ॥ २५ ॥  
 क्षत्रियोऽहमिमे भीताः शरणं मामुपागताः ।  
 अपकर्त्ता त्वमेवेषां कथं वय्यो न मे भवान् ॥ २६ ॥

मरुत्त उवाच

मित्रं वा वान्धवो वाऽपि पिता वा यदि वा गुरुः ।  
 प्रजापालनविघ्नाय यो हन्तव्यः स भूमृता ॥ २७ ॥  
 सोऽहन्ते प्रहरिष्यामि न क्रोद्धव्यं ह्यत्रा पितः !।  
 स्वधर्मः परिपाल्यो मे न मे क्रोधस्तवोपरि ॥ २८ ॥

मार्कण्डेय उवाच

ततस्तौ निश्चिर्त्तो दृष्ट्वा परस्परवधं प्रति । समुत्पत्यान्तर्गतस्युर्मुनयो भागंवाद्यः  
 ऊचुर्ध्वेननं मोक्तव्यं त्वयास्त्रं पितरं प्रति । त्वयाघनायं हन्तव्यः पुत्रः प्रख्यातचेष्टितः

मरुत्त उवाच

मया द्रुष्टा निहन्तव्याः सन्तो रक्ष्या महीक्षिता ।  
 इमे च द्रुष्टा भुजगाः कोऽपराधोऽत्र मे द्विजाः ॥ ३१ ॥

धर्वाक्षिद्रुवाच

शरणागतसन्त्राणं मयाकार्यमयञ्च मे । अपराध्यः सुतो विप्रायो हस्तिशरणागतान्

ऋषय ऊचुः

इमे वदन्ति भुजगास्त्रासलोलचिलोचनाः ।  
 सञ्जीवयामस्तान् विप्रान् ये द्रुष्टा द्रुष्टपन्नगैः ॥ ३३ ॥

तदलं विग्रहेणोभौ राजवर्यौ प्रसीदताम् । उभावपिविनिर्मुदप्रतिशौ धर्मकोविदौ

मार्कण्डेय उवाच

सा तु वीरा समस्येत्यपुत्रमेतदभाषत । मद्वाक्यादेव ते पुत्रो हन्तुं नागान्कृतोद्यमः  
 तन्निष्पन्नं यदा विप्रास्ते जीवन्ति तथा मृताः ।  
 सञ्जीवन्तश्च मुच्यन्ते यद् युष्मच्छरणं गताः ॥ ३६ ॥

## भामिन्युवाच

अहमभ्यर्षिता पूर्वमेभिः पातालसंधर्षे । तन्निमित्तमर्थं भर्ता मयाप्रचिनियोजित-  
तदेतदार्यंनिवृत्तमुभयोरपि शोभनम् । मम भर्तुश्च पुत्रस्यन्वत् षोडश्यात्मजस्यच

## मार्कण्डेय उवाच

तत सर्वावयामामुस्मान् चिप्रास्ते भुजङ्गमाः ।

दिव्यैरोपधिजातैश्च विषमदरणेन च ॥ ३६ ॥

विप्रोर्ननाम् चरणां स ततो जगतांपतिः । महत्तज्जमत् प्रीत्या परिष्वस्येदमर्षीत्  
मानदा भव शशणाघिरपाश्र्वमेदिनीम् । पुत्रपीत्रैश्च मोदस्वमाद्यनेमन्तु विडिप-  
ततो द्विवैरनुजातो धीरया च नरोद्धरी । समारूढैरधस्ताद्यभामिनीस्यपुरङ्गता ॥

धीराऽपि हृत्वा मुमहत्तपो धर्मभूताम्बर ।

भन्तुः सगोत्रतां प्राप्ता महाभागा पतिव्रता ॥ ४३ ॥

मत्तोऽपि चकारोऽप्या धर्मत परिपालनम् ।

विनिर्जिताग्निदग्गोमोतांश्चबुभुजेऽप्य ॥ ४४ ॥

तस्य पत्नी महाभागाविदमंतनयात्तथा । प्रभावनीसुवीरस्यसौवीरीषाभवत्सुता  
सुमेधा वैतुर्वाप्याय साक्षप्रस्थानमजाऽभवत् ।

सुता च मित्पुर्वापर्यस्य मद्रराजस्य वैश्वर्या ॥ ४५ ॥

वैश्वर्यस्य च मीदग्ध्राः मित्पुमनुवंपुष्पनी ।

नेदिराजसुता चामुद्गायां तस्य सुशोभना ॥ ४६ ॥

तामा पुत्रास्तस्य चामत् भूमताऽप्यादरा द्विज ।

त्रेयां प्रपानो ज्येष्ठश्च नरिष्यन्तः सुतोऽभवत् ॥ ४७ ॥

दीपो मत्तोऽभून्महाराजो महाबलः । तस्याप्रतिभं चकमामीदु षीपेपुमसु  
सस्य सुव्योऽपगो राजा न भूतो न मयिष्यति ।

तस्यविजसपुत्रस्य राजर्षोर्मितोऽजसः ॥ ५० ॥

तस्यैतद्वरित धृत्वा मत्तस्य महत्प्रभः ।

जन्म प्राप्रगं द्विजश्रेष्ठं मुच्यते स्वर्गकित्तिर्यः ॥ ५१ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मरुत्तपरिवर्षणमात्रियणं तं नाम कर्तारिंशदधिक-

शततमोऽध्यायः ॥ १३६ ॥

## द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

नरिष्यन्तपरिवर्षणम्

मार्कण्डेयव्याच

मरुत्तघृतिं शृत्वा भगवन् कथितं त्वया । तन्मन्त्रनिमज्जयेण श्रोतुमिच्छामि प्रवर्तते

तत्, मन्त्रतो धिर्ताशा ये राज्याणां नीयंशान्तिनः ।

तानहं श्रोतुमिच्छामि त्वया स्यातान्महामुने ॥ २ ॥

मार्कण्डेय उवाच

नरिष्यन्त इति स्यातां मरुत्तस्याभवत्, मुतः ।

अष्टादशानां पुत्राणां स ज्येष्ठः श्रेष्ठ एव च ॥ ३ ॥

वर्षाणाञ्च महन्त्राणि समर्ति दृश पञ्च च । युञ्जेपृथिवीं शृत्वा मरुत्तः क्षत्रियर्षभः

शृत्वा राजस्य धर्मण इष्ट्रायमाननुत्तमान् । नरिष्यन्तं मुतं ज्येष्ठमभिषिच्य पर्याचनम्

एकाग्रचित्तः स नृपस्तप्त्वा तत्र तपो महत् ।

आरुहो हृदि चित्रं यशस्ताऽऽवृत्तय रोदसी ॥ ६ ॥

नरिष्यन्तः मुतः सोऽस्य चिन्तयामास बुद्धिमान् ।

पितुर्वृत्तं समालोक्य तथान्वेषाञ्च भूभृताम् ॥ ७ ॥

अत्र वंशे महात्मानो राजानो मम पूर्वजाः ।

यच्चिनो धर्मतः पृथ्वीं पालयामासुर्जिताः ॥ ८ ॥



दातारश्चापि चित्ताना सप्रामेयनिवर्त्तिन ।  
 तेषा कश्चरित शक्तस्त्वनुयातु महात्मनाम् ॥ ६ ॥  
 किन्तु तेन ह्येन कम धम्यमाहधनादिभि ।  
 तदह कतु मिच्छामि यच्च नास्ति करोमि किम् ॥ १० ॥  
 धमत पालयते पृथ्वी को गुणोऽत्र महीपते ।  
 असम्यक पालनात् पापी नरन्द्रो नरक व्रजेत् ॥ ११ ॥  
 मति वित्ते महायज्ञा कत्तव्या एव भूभृता ।  
 दातव्यञ्चात्र किञ्चिन्न सीदतामीश्वरो मति ॥ १२ ॥  
 भाभिजात्यं तथा ऽज्ञा कोपधारिजनाश्रय ।  
 कारयन्ति स्वधमाश्च सङ्प्रामादपठायनम् ॥ १३ ॥

एतन् सच यथा सम्बद्धमूर्त्तं पुरवि हतम् । पित्राचमेमदत्ततथा तत्वेन शक्यते  
 तदह किं करिष्यामि यन्न ते पूजयै हतम्  
 य यञ्चिनो घरा दान्ता सप्रामाद्यानिवर्त्तिन ॥ १० ॥  
 महसप्रामससगाधिसवादिपौरश कमणाहवतिष्यामिकम्मेवानभिसन्धितुम  
 अथ वा ते स्वय यज्ञा कृता पूजजनेश्वरे ।  
 अविधमद्विनान्यैस्तु कारितास्तत्करोम्यहम् ॥ १३ ॥

माकण्डेय उवाच

इति सञ्चिन्त्ययत्नं सधकारैकतरश्चर । यादृशानधकारान्योवित्तोत्सर्गोपशोभितम  
 द्विजाना जीवनायात् दरुता तु सुमहा प्रतम् ॥ तत शनगुणतवावज्ञार्थमददद्रूप  
 गावो वसुप्राण्यङ्गार धान्यागारादिक तथा ।  
 तथा प्रत्येकमदत्तवा पृथ्वीनिवाहिताम् ॥ २० ॥  
 नतम्नन यदा यत्र प्रारब्धोभूमुज्जापुन । प्रारब्धेसमन्वेयष्टु तनोनालमतद्विजान  
 यान् यान् वृणोति स नृपो चिप्रानार्त्तिश्रयकमणि ।  
 ते ते तसृचुयज्ञाय ययमयत्र दीक्षिताः ॥ २२ ॥

अन्यं घस्य यद्वित्तं त्वयाऽस्माकं विचर्जितम् ।

तस्यान्तो नाग्नि यज्ञेषु दद्यास्त्वं नृपते ! धनम् ( कथम् ) ॥ २३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

नचाप ऋत्विजो विप्रांस्तदाशेषक्षितीश्वरः ! बहिर्वैशांतदा दानं स दातुमुपचक्रमे  
तथापि जगृहुर्नैवधनसम्पूर्णमन्दिगाः । द्विजायदानुं भूयोऽस्मोनिर्विण्ण इदमवर्षीत्  
अहोऽतिशोभनं पृथ्व्यां यद्विप्रो नायनःकश्चिन् ।

अशोभनञ्च यत्कोपो विफलोऽयमप्रज्विनः ॥ २६ ॥

नात्सिज्यं कुरुनेकश्चिद्यजमानोऽग्निलोजनः । द्विजानानघनोदानं इदतांसम्प्रतीच्छते

मार्कण्डेय उवाच

ततः कांश्चिद् द्विजान् भक्त्या प्रणिपत्य पुनः पुनः ।

स्वयज्ञे ऋत्विजश्चक्रे ते प्रचक्रमहामखम् ॥ २८ ॥

अत्यद्भुतमिदञ्चासीद्यदा तस्य महीपतेः ।

सयज्ञोऽभूत्तदा पृथ्व्यां यजमानोऽग्निलो जनः ॥ २६ ॥

द्विजन्मनामभून्नासीत् सदस्यस्तत्र कश्चन ।

यजमाना द्विजा केचित् केचित् तेषान्तु याजकाः ॥ ३० ॥

नरिष्यन्तो नरपतिरियाज स यदातदा । तत्प्रदानुर्द्धनैर्यागं कुर्युः पृथ्व्यामशोपतः

प्राच्यां कोट्यस्तु यज्ञानामासन्नष्टादशाग्रिकाः ।

प्रतीच्यां सप्त वै कोट्या दक्षिणायां घनुर्दश ॥ ३२ ॥

उत्तरस्याञ्च पञ्चाशदेककालं तदाऽभवन् ।

मुने ! ब्राह्मण ! यज्ञानां नरिष्यन्तो यदाऽयजत् ॥ ३३ ॥

एवंसराज्ञाधर्मात्मा नरिष्यन्तोऽभवत्पुरा । भरतत्ततनयोचिप्रविम्ब्यातवलपौरुषः

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे नरिष्यन्तघरिष्वर्णनं नाम

द्वाविंशोऽधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३२ ॥

# त्रयस्त्रिंशदधिसप्ततमोऽध्याय

दमर्गवियर्जनम्

माकण्डेय उवाच

नविष्यन्त्यस्य तनया दुष्पादिदमनादम् । शत्रुस्यपपञ्चं तस्य दयागीर्णं मुनेरिव ।

षास्त्रस्यामिन्द्रमेतायां न ज्ञते तस्य भूतम् ।

सय वराणि जगत् स्त्रियश्च मानुमहादशाः ॥ ४ ॥

यदग्राहयामास दमं मातरं जग्रे स्थितम् । दमर्गात्क्षययिता यत्तथायं कृपात्मकम्

तत्रस्त्रिंशत्पिबान् महि तस्य पुरोहितम् । दम इत्यकरोत्प्राम नविष्यन्तमुत्सवन्

स दमो राजपुत्रम्नु धनुषेदमगात् । अष्टौ मत्ताजगत् सत्ताशास्त्रव्यवण ॥ ५ ॥

दुन्दुभेर्द्वेष्यत्स्य तथायननिषासितम् । सत्ताशास्त्रव्यवणं एषमग्नयामश्च तत्रान्

शक्तं सत्ताशास्त्रदांश्च पेशद्गात्रविविग्नितम् ।

तथाष्टिपणाद्राजवज्रव्यवणं योगमात्मवान् ॥ ७ ॥

तस्यैवमहात्मानं शरीतात्सं महावचम् ।

स्वयम्यरे कृता पित्रा जग्रे मुमना पतिम् ॥ ८ ॥

मुता दशाषाधिपनेवस्त्रिंशत्क्षमणम् । पश्यतां सयमूतानां ये तदधमुपागताः ॥

तस्याश्च मानुरागोऽभूत्सद्राजस्यैवमुत् । मुमनायां मत्तादादौ महावत्परावमम्

तथाविदमाधिपते पुत्रसद्वचन्दनस्य च । सपुत्रान् राजपुत्रश्च महापनुद्दारधीम्

तदधतयावृत्तं दृष्ट्वा दुष्पादिदमनदम् । मन्त्रयामासुरव्योऽन्य तत्रानद्रुविमाहिता

मत्तास्य वरात्त्वयां शरीरया रूपशालिताम् ।

एहं प्रयामस्तस्येयमस्माकं यं प्रहीष्यति ॥ १३ ॥

भन्तु दुष्टया वरासोहा स्वयम्यरेविधानतम् ।

तस्येच्छया नो भवित्री भाव्यां धर्मोपपादिता ॥ १४ ॥

अथनेच्छतिसाकश्चिदस्माकंमद्विरेक्षणा । ततस्तस्यभवित्रीसायोदमंवातयिष्यति  
मार्कण्डेय उवाच

इतिते निश्चयंकृत्वात्रयःपार्थिवनन्दनाः । जगद्दुस्तांसुघावर्ङ्गीदमपार्श्वानुवर्त्तिनीम्  
ततः केचिन्नृपास्तेषां ये तत्पक्षा विचुकुशुः ।

चुकुशुश्चापरे भूपाः केचिन्मथ्यस्थतां गताः ॥ १७ ॥

ततो दमस्तान् भूपालानवलोक्य समन्ततः । अनाकुलमनावाक्यमिदमाह महामुने  
दम उवाच

भो भूपा धर्मकृत्येपुयद्ददन्तिस्वयंचरम् । अथर्मो वाऽथवाधर्मो यदेभिर्गृह्यतेवलात्  
यद्यधर्मो न मे कार्यमन्यभार्याभविष्यति । धर्मोवा तद्वलंप्राणैर्ये रक्ष्यन्तेऽरिलङ्घने  
ततो दृशार्णाधिपतिश्चारुधर्मानराधिपः । निःशब्दंकारयित्वातत्सदःप्राहमहामुने  
दमेन यदिदं प्रोक्तं धर्माधर्माश्रितं नृपाः ।

तद्दध्वं यथा धर्मो ममास्य च न लुप्यते ॥ २२ ॥

मार्कण्डेय उवाच

ततः केचिन्महीपालास्तमूर्चुवंसुधाधिपम् ।

परस्परानुरागेण गान्धर्वो विहितो विधिः ॥ २३ ॥

क्षत्रियाणां परमयं न विदूशूद्रद्विजन्मनाम् ।

दममाश्रित्य निष्पन्नः स चास्या दुहितुस्तव ॥ २४ ॥

इति धर्माद्दमस्यैषा दुहिता तव पार्थिव !

योऽन्यथां वर्त्तते मोहात् कामात्मा सम्प्रवर्त्तते ॥ २५ ॥

तथाऽपरे तदा प्रोचुर्महात्मानोहि भूभृताम् । पक्षेयेभूभृतोविप्रं दृशार्णाधिपतेर्वचः

मोहात् किमाहुर्धर्मोऽयं गान्धर्वः क्षत्रजन्मनः ।

न त्वेष शास्ता नान्यो हि राक्षसः शस्त्रजीविनाम् ॥ २७ ॥

चलादि मां योहरतिहत्वा तुंपरिपन्थिनः । तस्यैवाप्तौराक्षसेनविवाहेनावनीश्वराः

प्रधानतर एषोऽत्र चिवाहद्वितये मतः । क्षत्रियाणामतोधर्मोमहानन्दादिभिः कृतः

## मार्कण्डेय उवाच

अथ प्रोक्षु पुनर्भूपा ये पूर्वमुदिता नृपाः । परस्परानुरागेण जातिधर्माधित वच-  
सत्य शस्ता राक्षसोऽपि क्षत्रियाणां परो विधिः ।

किन्त्वसौ जनकस्वाम्ये कुमार्यानुमतो धर ॥ ३१ ॥

इत्या तु पितृसम्बन्ध बलेन हियते हि या ।

स राक्षसो विधिः प्रोक्तो नान्य ( त्र ) भर्तृकरे स्थिता ॥ ३२ ॥

पश्यतासर्वभूपानामनयायदुवृत्तोदम । गान्धर्वस्येहनिष्पत्तौविवाहोराक्षसोऽन्य-  
विवाहिताया कन्यायाः कन्यात्व नैव विद्यते ।

कन्यायाश्च विवाहेन सम्बन्ध पृथिवीधरा ॥ ३४ ॥

त इमे ये बलादेना दमादादानुमुचता ।

बलिनस्ते यदि तत कुर्वन्तु न तु साधु तत् ॥ ३५ ॥

## मार्कण्डेय उवाच

तच्छ्रुत्वाऽसौदम कोपकपायीवृत्तलोचन । आरोपयामासधनुर्ध्वजन्ध्वेदमर्षवीन्द्र-  
ममाऽपि भाया बलिभिः पश्यतो हियते यदि ।

तत्कुलेन भुजाभ्यां वा कौ शुण कर्त्वीवज्रमन ॥ ३७ ॥

धिङममाखाणि धिक् शौर्यं धिक् शरान् धिक् शरासनम् ।

धिम् व्यर्थं मे कुले जन्म महत्तस्य महात्मन ॥ ३८ ॥

यदि भार्यामिमे मूढा समादाय यतान्विता ।

प्रयान्ति जीवती धिक् ता मम व्यर्थधनुष्मताम् ॥ ३९ ॥

इत्युक्त्वा तान्महर्षीपालान् महानन्दमुखान् वीर्य-  
वन्तान् ।

अथाब्रवीत्तदा सर्षान् महारिदमनो दम ॥ ४० ॥

एषातिशोभता वाला चार्चङ्गी मदिरेक्षणा ।

किन्तान्य जन्मना भार्या न यन्त्येय कु-  
ठोद्वेषा ॥ ४१ ॥

इति सञ्चिन्त्यभूपालास्तथायतनमयुगे । यथात्रिजिह्व मामेतां पत्नीकुट्टामानिन-

इत्याभाष्य ततस्तत्र शरवरंममुञ्चत । छादयन्पृथिवीपालांस्तमसेव महीरुहान् ॥

तेऽपि धीरा महीपालाः शरशक्त्यष्टिमुद्गरान् ।

मुमुक्षुस्तत्प्रयुक्ताश्च दमश्चिच्छेद लीलया ॥ ४४ ॥

तेऽपि तत्प्रहितान् बाणान् तेषाञ्जार्सी शरोत्करण् ।

चिच्छेद पृथिवीशानां नरिष्यन्तात्मजो मुने ॥ ४५ ॥

वर्त्तमाने तदा युद्धेदमस्यक्षितिपाद्मर्जः । प्रविशेश महानन्दः खड्गपाणिर्यतोदमः

तमायान्तं दमो दृष्ट्वा खड्गपाणिं महामृश्रे । मुमोचशरचर्याणि चयांणीव पुरन्दरः

तद्वज्राणि ततस्तानि शरजालानि तद्व्रणान् ।

महानन्दः प्रचिच्छेद खड्गेनान्यानवञ्चयन् ॥ ४६ ॥

ततो रोषात् समाकूट्य तं दमस्य तदा रथम् ।

महानन्दो महावीर्यो दमेन युयुधे सह ॥ ४६ ॥

बहुधा युध्यमानस्य महानन्दस्य लावघात् । दमोमुमोचहृदयेशरंकालानलप्रभम् ॥

तं लग्नमात्मनोत्कृण्व चिमिन्नेन ततो हृदि ।

दमं प्रति विचिक्षेप महानन्दोऽस्मिमुज्ज्वलम् ॥ ५१ ॥

पतन्तञ्चैनमुल्काभंशक्त्याचिक्षेप तं दमः । शिरोवेनसपत्रेणमहानन्दस्यघाच्छिनत्

तस्मिन् हते महानन्दे प्राचुर्येण पराङ्मुग्धाः ।

वभृवुः पार्थिवास्तस्थौ वपुष्मान् कुण्डिनाधिपः ॥ ५३ ॥

दमेन युयुधे चासौ ब्रह्मवर्मदान्वितः । दाक्षिणात्यमहीपालतनयो रणगोचरः ॥

युध्यमानस्य तस्योप्रंकरवालंसवैलव्यु । चिच्छेद सारथ्यैश्चैवशिरःसंग्ल्येतथाध्वजम्

छिन्नखड्गो गदां सोऽथ जग्राह बहुकण्टकाम् ।

तामप्यस्य स चिच्छेद करस्थामेव सत्वरः ॥ ५६ ॥

थावदन्यत् समादत्ते स वपुष्मान् वरयुधम् ।

तावच्छरेण तं विद्वध्या दमोभूमावपातयत् ॥ ५७ ॥

स पातितस्ततो भूमौ विह्वलाङ्गः सवेपथुः ।

विनिवृत्तमनियुद्धाद्वरभूषक्षितिपारमज ॥ ५८ ॥  
 तमालोऽस्य तथाभूतमयुडमतिमात्मवान् ।  
 उत्सृज्याऽऽदाय सुमना सुमना प्रययौ दम ॥ ५९ ॥  
 नतो दशाणाधिपति श्रीतिमानकरोत्तयो ।  
 दमस्य सुमनायाश्च विग्राह विधिपूर्वकम् ॥ ६० ॥  
 कृतदारो दमस्तत्र दशार्णाधिपते पुरे ।  
 स्थित्वाऽऽरपकाल प्रययौ सभाष्यो निजमन्दिरम् ॥ ६१ ॥  
 दशाणाधिपतेश्चासौ दत्त्वा नामास्तुरङ्गमान् ।  
 रथगोऽश्वखरोद्वाश्च दासीदासास्तथा घृन् ॥ ६२ ॥  
 वस्त्रात्ङ्कारघापादि धरोपस्करमात्मनः ।  
 अन्यैस्तैश्च तथा भाण्डैः परिपूर्णं व्यसर्जयत् ॥ ६३ ॥  
 इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे दमचरित्रवर्णननाम त्र्यस्त्रिंशदधिक  
 अशततमोऽध्याय ॥ १३३ ॥

### चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

दमचरित्रवर्णनेदमस्यपितुर्वंधानन्तरतेनसहत्नमातुरग्निप्रवेशः

मार्कण्डेय उवाच

मनालब्ध्वा तथापि सुमना सुमना मुने । प्रणम्य सपितुः पादौ मातुश्च क्षितिपारमज  
 मा घनोऽवशुरासु ब्रू नं नाम सुमना तदा । ताभ्यां तौ च तदा विप्रभाशी भिरभिनन्दितं  
 महोत्सवश्च सज्जं नरिष्यन्तस्य वै पुरे । कृतदारो च संप्राप्ते दशार्णाधिपते पुरा  
 मन्वन्धितं व्यापणैः शंजितां धृषि श्रीश्वरान् । धृन्वापुत्रेण मुमुक्षे नरिष्यन्तो महीपति  
 सोऽपि रभे सुमना महाराजसुनो दम । धरोघानयनोऽदृशे प्रासादगिरिमानुषु

अथ कालेन महता रममाणा दग्नेन सा । अवाप गर्भमुमनादशार्णाधिपतेः सुता ॥

सोऽपि राजा नरिष्यन्तो भुक्तभोगो महीपतिः ।

वयः परिणतिं प्राप्य दमं राज्येऽभिपिच्य च ॥ ७ ॥

वचं जगामेन्द्रसेना पत्नी चास्य तपस्विनी । वानप्रस्थविधानेन न तत्रसमतिष्ठन्  
द्राक्षिणात्यः सुदुर्वृत्तःसंक्रन्दनसुतो वने । वपुष्मान्स्मृगान्इन्तुंययाचल्पवनानुगः  
स तं वृष्ट्वा नरिष्यन्तंतापसंमलपङ्क्तिन्म् । इन्द्रसेनाञ्च तत्पत्नीं तपसात्सुदुर्व्यलाम्  
पप्रच्छ कस्त्वं भो विप्रः क्षत्रियो वा वनेधरः ।

वानप्रस्थमनुप्राप्तो वैश्यो वा मम कथ्यताम् ॥ ११ ॥

ततो मौनवती भूपो न हितस्योत्तरंददौ । इन्द्रसेनाच्चतन्स्वर्माचष्टास्मैयथातथम्  
मार्कण्डेय उवाच

ज्ञात्वा तञ्च नरिष्यन्तं वपुष्मान् पितरं रिपोः ।

प्राप्तोऽस्मीति वदन् कोपात् जशसु परिगृह्य च ॥ १३ ॥

हा हेति चेन्द्रसेनायां रुदन्त्यां चाप्पगद्गदम् ।

चकर्ष कोपात् खड्गञ्च वाक्यञ्चैदमुवाच ह ॥ १४ ॥

निर्जितः समरे येन येन मे सुमना हता । दमस्य तस्य पितरं हनिष्येऽचतु तं दमः  
येनाखिलमहीपालपुत्राः कन्यार्थमागताः । अवधूता हनिष्येऽहं पितरं तस्य दुर्मतेः  
योधनेषु स्वरूपेण दमो यस्य दुरात्मनः । सदमोवारयत्त्रेपहन्मितस्य रिपोर्गुं स्म

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वा न दुराचारो वपुष्मानवनीपतिः ।

क्रन्दन्त्यामिन्द्रसेनायां शिरश्चिच्छेद् तस्य च ॥ १८ ॥

ततो धिग्धिङ् मुनिजनाअन्येचवनवासिनः । तम्बुःसन्नतंहत्वाजगामस्वपुरंवनान्  
गते तस्मिन् विनिश्चस्येन्द्रसेनावपुष्मति । प्रेषयामासपुत्रस्यन्ममीपंशूद्रतापसम्  
गच्छेथा आशु मे पुत्रं दमं व्रूहि वचो मम ।

अभिज्ञो ह्यसि मद्भर्तृवृत्तान्तं प्रोच्यतेऽत्र किम् ॥ २३ ॥



तथापि वाच्य पुत्रो मे यद्भववीम्यतिदुःखिता ।  
 लङ्घनामीदृशीं प्राप्ता विलोकयैता महीपत्र ॥ २२ ॥  
 मद्भ्रातः अधिहृतो राजा चतुर्णां परिपालक ।  
 त्वमाश्रमाणा किं युक्त तापसान् यजरीक्षसि ॥ २३ ॥  
 भक्ता मम नरिष्यन्तस्नापसस्तपति स्थिन ।  
 विलपन्त्यास्तथा नाथो यथा नास्ति तथा त्वयि ॥ २४ ॥

आकृष्य केशेषु यलादपराधचिनातत । हतोयपुष्पताम्रगतिमितिने भूपतिर्गत ॥  
 एव स्थितेतत्त्रियनायथाधर्मो न लुप्यते । तथा च नैव च त्वद्यमतोऽस्मत्तापसीहृदम्  
 पिता वृद्धस्तपस्वी च नापराधेन दृग्नि ।  
 निहतो येन यत्सम्य कर्तव्यन्तद्विचिन्त्यताम् ॥ २७ ॥  
 सन्ति ते मन्त्रिणो वीरा सर्वशास्त्राथवेदिन ।  
 ते सहालोच्य यत्कायमेवम्भूते कुरष्व तन् ॥ २८ ॥  
 नास्माकमधिकारोऽत्र तापसाना नराधिप ।  
 कुरष्वेतदिति त्वमेव भूपतिभाषितम् ॥ २९ ॥

विदूरथस्य जनको यवनेन यथा हन । तथाय तव पुत्रस्य कुल तेन चिनाशितम्  
 जम्भस्यसुरराजस्य पिता दणो भुजङ्गमे ।  
 तेनाप्यखिलपातालवासिन पत्रगा हता ॥ ३१ ॥  
 पराशरेण पितरि शर्तो च रक्षमाऽऽहतम् ।  
 ध्रुत्वाऽग्री पानित कृन्न् रक्षसामभवन् कुग्म् ॥ ३२ ॥  
 अन्यस्यापि स्रग्चशस्य लङ्घना नियते हि या ।  
 ता नाल क्षत्त्रिय सोढ किं पुन पित्रमारणम् ॥ ३३ ॥  
 नाय पिता ते निहतो नास्मिन् शम्भ्र निपातितम् ।  
 त्वामत्र निहत मन्ये त्वयि शम्भ्रं निपातितम् ॥ ३४ ॥

विभेत्यस्यद्विक शम्भ्रन्त्यन्तयेनयतीकसाम् । तवभूपस्यविप्रस्यमाविभेतुविभेतुया

ववेयं लङ्घनायुजायदर्स्मिस्तत्समाचर । वपुष्मतिमहाराज' स भृत्यज्ञातिवान्यवे

मार्कण्डेय उवाच

इति लङ्घान्तलन्देशमिन्द्रसेना विस्तृतम् ।

पतिदेहमुपाश्लिष्य विवेशाग्निं मनस्विनी ॥ २७ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेदमचरित्रवर्णनंतामचतुर्विंशदधिक-

शततमोऽध्यायः ॥ १३२ ॥

## पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

दमस्यपितृव्रातिनेदण्डंदातुं प्रतिज्ञावर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

इन्द्रसेनासमाह्वनः स गत्वा शूद्रतापसः । जनाच्य यया पूर्वं दत्तायतिथनं पितुः  
तापसेन समाख्यातं दमस्तेन पितुर्वचम् । क्रोधेनानीवज्ज्वालहविषेवाग्निस्तद्वचः  
स तुक्रोधाग्निना रथारो दह्यमानो महानुते । करंकरेणानिष्यन्ववाक्यमेतदुवाच ह  
अनाय इव मे तातोमयिपुत्रे तुजावति । व्रातितः मुद्रशंसेन परिभूय कुरुं मम ॥१॥  
न्यायवादां जनेतस्या ( तापं करोम्यहंकिन्वा ) प्येत्कर्त्तव्यात् क्षमान्यहम् ।

दुष्टं चशान्तां शिश्रानां पालनेऽधिष्ठता वयम् ॥ १ ॥

पितातस्यापि ( तच्चाऽपि निहतं ) निहतो वृद्धा जीवन्ति शत्रवः ।

तत्किमेतेन बहुना हा तातेति च किं पुनः ॥ ३ ॥

विलापेतात्र यत् इत्यं तदेगोऽत्र करोम्यहम् । यदाहंतस्यरक्तेन देहोत्थेन वपुष्मत्तः

न करोमि गुरोस्तुमि तत् प्रवेक्ष्ये हुताशनम् ॥ ७ ॥

तच्छ्रापितेनोदककर्म तस्य तातस्य लङ्घ्ये विनिपातितस्य ।

मांसेन सन्यग्द्विजमोजनञ्च नचेत् प्रवेक्ष्यामि हुताशनस्तत् ॥ ८ ॥

साहाज्यमस्वासुरदेवयक्षगन्धर्वविद्याधरसिद्धसङ्घा ।  
 कुर्वन्तिचेत्तानपिघात्वयुगैर्मूर्त्नीकरोम्येव रुगासमेत ॥ ९ ॥  
 नि शूरमाधार्मिकमप्ररास्त त दाक्षिणात्य समरे निहत्य ।  
 भोक्ष्ये ततोऽह पृथिवीञ्च वृत्त्या वह्निं प्रवेश्याम्यनिहत्य त वा ॥ १० ॥  
 सुदुर्मतिं तापसवृद्धमौनिनं घनस्थितं शान्तवचोविचित्रम् ।  
 हन्ताहमघातिलङ्घुमित्रं पदातिहस्तदश्ववर्त्तं समेतम् ॥ ११ ॥  
 ण्योऽहमादाय धनुः सखद्गो रथीतथैवारिचलं समेत्य ।  
 करोमि वै यन् क्वदन् समस्ता पश्यन्तु मे देवगणा समेता ॥ १२ ॥  
 यो यं सहायो भविताऽद्य तस्य मया समेतस्य रणाय भूय ।  
 तथैव नि शेरकुण्डक्षयाय समुद्यतोऽहं निजयाहुर्मन्य ॥ १३ ॥  
 यदि कुलिशकरोऽस्मिन् मयुगेदेवराजं पितृपतिरथ घोघ्नं दण्डमुद्यम्य कोपात्  
 घनपतिवरणाकां रक्षितुं त यतन्ने निशिनशाखरौघैवानिष्ये तथापि ॥ १४ ॥  
 नियतमतिरदोषं वाननाम्बण्डं गोनिपतितम्भञ्जं सर्वभूतेषु मेघं ।  
 प्रभवति मयि पुत्रे हिंसितो येन तात पिशितरुधिरतृणास्तस्यसन्त्वद्यगृध्राः ॥  
 इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽमघरितेऽप्रतिज्ञावपननामपञ्चविंशदधिक  
 शततमोऽध्यायः ॥ १३० ॥ \*

\* कलिजाताम्य पण्डितप्रवरनीचानन्द विद्यासागरमुद्रितमार्कण्डेयपुराणे  
 मार्कण्डेय उवाच

दमेन राशाह्युक्ते पितुःशत्रु पत्यापित । मरिपतातापसोऽन्यथातप्यतानिर्भयमहम्  
 पत्यापनपरान् दृष्ट्वा किञ्चिन्नोक्तं दमेन तान् ॥ १ ॥  
 इति सार्वकं श्लोकं दृष्ट्वा पुनर्ग्रन्थोपमहरणे 'एतन् महीयते'

## पट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

दमचरित्रेवपुष्पद्रधवर्णनम्

माकण्डेय उवाच

तिप्रतिजायतदानरिप्यन्तमुतोदमः । कोपामर्गचिवृत्ताक्षः श्मश्रुमावृत्य पाणिना  
हा हतोऽस्मीतिपितरं ध्यात्वा दीवं विनित्य च ।

प्रोवाच मन्त्रिणः सर्वानानिनाय पुरोहितम् ॥ २ ॥

दम उवाच

यद्व्रकृत्यन्तद्व्रून ताते प्राप्ते सुरालयम् । श्रुतं भवद्विर्यंप्रोक्तं तेन शूद्रतपस्विना  
वृद्धस्तपस्वीसन्नुपोवानप्रस्थव्रतेस्थितः । मौनव्रतधरोऽशात्रो मन्मात्राचेन्द्रसेनया

प्रोक्तं संश्रुष्टयास्वात्म्याद्याथातथ्यं घपुष्पते ।

तेनापि खड्गमाकृष्य जटां सव्येन पाणिना ॥ ५ ॥

धृत्वा जवान दुष्टात्मा लोकनाथमनाथवत् ।

माता च सन्दिश्य हि मां धिक् शब्दं व्रुवती सर्ता ॥ ६ ॥

मन्दभाग्यं च निःश्रीकं प्रचिष्टा हव्यवाहनम् ।

तमात्किञ्च नरिप्यन्तं प्रयातात्रिदशालयम् ॥ ७ ॥

सोऽहमद्य करिष्यामि यन्मे मातुस्दीरितम् ।

हस्त्यश्वरथपादात् सैन्यं च परिकल्प्यताम् ॥ ८ ॥

अनिर्याप्यपितुर्वैरमहत्वापितुघातकम् । अकृत्वा च वचोमातुर्जोषितं किमिहोत्सहे

इतिश्लोकसतकेन अध्यायसमाप्तिपूर्वकं पुराणसमापनं कृतम् । परन्तु मोहम-  
यीस्थ श्रीविष्णुदेवरमुद्रणयन्त्रे मुद्रितपुस्तके एतत्प्रसङ्गे यथाख्यानं सुष्ठुनिर्वर्णया-  
द्वाद्दशपुराणपरिगणनंविधाय पुनरुपसंहारः कृतस्तदेव वर्णनमस्माकं पार्श्वे श्री-

मार्कण्डेय उवाच

मन्त्रिणस्तद्वच धृत्वा हाहेत्युक्त्वा तथा च तत् ।

दृतयन्तो विमनसः समुत्थयन्त्याहना ॥ १० ॥

निर्ययुः सपरीवारा पुरस्तद्वचं नृपम् ।

गृहीत्वा चाशिषो विप्रात्त्रिकालज्ञात्पुरोधस ॥ ११ ॥

अहिराडिव निःशस्य दमः प्रायाद्वपुष्मतम् ।

सीमापालादिभामन्ताग्निघ्नवाम्बा दिशं त्वरा ॥ १२ ॥

निरीकृत्य समाशान्त वपुष्मान्मरंशूरित । सङ्कटं दनसुनेनापिदमोज्ञानोवपुष्मता  
आयात स परीवार सामान्य सपरिच्छद ॥ १३ ॥

अशम्पितेनमनसा समेन्यानिदिदेशह । दूतं च प्रेरयामास निर्गम्य नगरादपदि ॥  
त्यशीघ्रतरमागच्छनरिच्छन्नप्रतीक्षणे । समार्यशत्रवन्धोस्वसमायाहिममान्तिक्म  
इमे मदुयादुनिमुक्ता शिताघाणा पिपासिता ।

भित्त्वा शरीरं सङ्ग्रामे पारुषन्ति रुधिरं तव ॥ १६ ॥

धृत्वाद्मस्तुत सयंदूतप्रोक्त शयान्वरन् । स्मृत्याप्रतिज्ञापूर्वोक्तानि श्वसन्नुरगोवधा  
आहृत समरर्षिवपुष्मान्नेनाधिकृत्यत । ततो युद्धमतीवासीद्मस्य च वपुष्मत ॥  
रथी धरधिनानागीतागिनाहृतिनाहृथी । अयुःकृतं च विप्रैः तद्यत्तनुमुत्क्षमन्  
पश्यतां सयदेयाना सिद्धगन्धपरशुमाम् । धरम्ये वसुधाप्रत्युत्थमाने इमे युधि  
नगजोनरथीनाश्चस्त्रस्त्रपाणमहाशुर । ततो दमेन युयुये सेनाध्यक्षो वपुष्मत  
हृदिविष्याथधदमापुणागाधमान्तिक्म । तस्मिन्निपतितेमेन्य वपुष्मतपरंक्षमन्

ममाहेभ्यस्त्वानमन्विद्यतां शिष्यैतन्वयणिं महोदयानां कृत्या प्रातस्य  
हृन्निमित्तमारुण्डेयपुराणस्य पाठे समुचितं मिलितम् । अतः सयं  
जलसम्मतं सुतराम्पन्थां विद्वन्नामुोदित ।

स स्वामिनंततःप्राहृदमःशङ्कुदमस्तथा । क यास्मिदुष्टपितरंवातयित्वातपरस्विनम्  
 वशस्त्रंचतपस्त्रन्नंक्षद्रिगोऽसिनिवर्तताम् । ततोनिवृत्यसदमंयोधयामाससानुजः  
 सपुत्रसहसम्यधिवान्धर्वयुधुधरधी । ततः शरामनान्मुक्तघाणेर्व्याप्तास्ततोदिशः  
 दमं च सरथंश्चाशुशरजादेरपूरयन् । ततः पितृवयोत्थंन कोपेन स दमस्तथा ॥

चिच्छेद तांश्छरांस्नेगं त्रिविधाऽन्यैश्च तानपि ।

एकेतैकेतवाणेन सप्तपुत्रांस्तथा द्विज ॥ २७ ॥

सम्यन्धिवान्धवान्मित्राग्निनाय यमसादनम् ।

चपुष्मान्सरथीक्रोधान्निहतात्मजवान्धवः ॥ २८ ॥

युयुधे च सनेनाजौशरैराश्रीविगोपमैः । चिच्छेदतस्वतान्वाणान्सदमश्च महामुने!  
 युयुधाते च संरुध्वोपरस्वरजयैपिणो । परस्परशराघातविच्छिन्नधनुषी त्वरा ॥  
 गृहीतग्वद्गात्रुत्तीर्यचिक्रीडातेमहावज्रौ । दमः क्षणंनृपं ध्यात्वा पितरं निहतं चने  
 केशोष्वाह्वयचाक्रम्यनिपात्यधरणीतले । शिरोधरायां पादेन भुजमुद्यम्यचाब्रवीत्  
 पश्यन्तु देवताःसर्वामानुगः पन्नगाः स्वगाः । पाट्यमानंश्च हृदयंश्चत्रयन्धोर्वंपुष्मतः  
 एवमुक्त्वान्च सदमोहृदयं च व्यदारयत् । पानुकामश्चससुरैः क्षतजेन निवारितः  
 ततश्चकार तातस्य रक्तेनैवोदकक्रियाम् ।

आनृष्यं प्राप्य स पितुः पुनः प्रायात्स्त्रमन्द्रिरम् ॥ ३१ ॥

चपुष्मतश्च मांसेन पिण्डदानं चकार ह । ब्राह्मगान्भोजयामासरक्षःकुलसमुद्भवान्  
 एवम्विधा हि राजानो बभूवुः सूर्यवंशजाः ।

अन्येपि सुधियः शूरा यज्विनो धर्मकोविदाः ॥ ३७ ॥

वेदान्तपारगास्तांश्च न सङ्ख्यातुमिहोत्सहे ।

एतेषां धरितं श्रत्वा नरः पापैः प्रमुच्यते ॥ ३८ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे दमघरित्रेवपुष्पद्वधवर्णनंताम षट्त्रिंशदधिक-

# सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्याय

## उपमहारेपुराणमाहात्म्यवर्णनम्

पश्चिण ऊजु

एवमुक्त्वा जमिनेयं मार्कण्डेयो महामुनि ।

विस्तृत्य कौस्तुभिकमुनिं घर्षे माध्याह्निकक्रियाम् ॥ १ ॥

अस्माभिश्च श्रुततस्माद्यत्तेप्रोक्तमहामुने । अनादिमिद्धमेतद्विपुराप्रोक्तस्वयम्भुवा  
मार्कण्डेयाय मुनये यत्तऽस्माभिरदाहृतम् ।

पुण्य पवित्रमायुष्य धमकामाथसिद्धिदम् ॥ ३ ॥

पठता शृण्वता मद्य सबपापप्रमोचनम् । आदावेरुता येवप्रश्नाश्चत्वार ण्य हि  
पितु पुत्रस्य सम्वादस्तथा सृष्टि स्वयम्भुव ।

तथा मनूना स्थितगो राजा च चरित मुने ॥ ५ ॥

अस्माभिरेतत्तेप्रोक्त किमद्य प्रोक्तमिच्छसि । एतान्मर्यादर श्रुत्वापठन्नेवासभासुव  
विधुयमवपापानिब्रह्मणोऽन्तेऽप्यब्रजेन् । अष्टादशपुराणाणि यानि प्राह पितामह  
तेषा तु सप्तम शेष मार्कण्डेय मुविश्रुतम् ।

ब्राह्म पाद्म वैष्णव च शैवं भागवत तथा ॥ ८ ॥

तथान्य नारदीय च मार्कण्डेय च सप्तमम् । आग्नेयमण्डमौन भविष्य नवम तथा  
दशम ब्रह्मवैवर्तं लङ्कामेकादश स्मृतम् । चारार्ह द्वादश प्रोक्त स्कान्दमत्रत्रयोदशम्  
चतुदश वामन च कौर्मपञ्चदश तथा । मातस्य च गारुडवैर ब्रह्माण्ड च तत परम्  
अष्टादशपुराणाना नामधेयानियपत् । त्रिंश च जपनेनित्यंमोऽवमेधफलमेत्  
सगश्चप्रतिसगश्च वशोमन्त्रतराणि च । घशानुघर्षित शैव पुराण पञ्चलक्षणम्  
घतुप्रश्नसमोपेतपुराणस्यतदुत्तमम् । श्रुत्वा पुनश्च ते पाप कपकोटिशतै कृतम्  
ब्रह्म यादि पापानि यान्यन्यान्यशुभानि च ।

तानि सर्वाणि नश्यन्ति तृणं चातहतं यथा ॥ १५ ॥

पुष्करे दानजंपुण्यं श्रवणादस्यजायते । सर्ववेदाधिकफलं समाप्त्यासाधिगच्छति  
यः श्रावयेत्पूजयेत्तं यथादेवपितामहम् । गन्धपुष्पैस्तथाचस्त्रैर्वाह्नयानां च तर्पणीः  
यथा शक्त्या च दातव्यं नृपैर्ग्रामादिवाहनम् । एतत्पुराणमखिलं वेदार्थैरुपवृंहितम्

धर्मशास्त्रैकनिलयं ध्रुत्वा सर्वार्थमाप्नुयान् ॥ १८ ॥

ध्रुत्वापुराणमखिलं व्याप्तं सम्पूजयेद्बुधः । धर्मायं काममोक्षाणान्यथोक्तफलहेतवे  
दद्याद्गान् गुरवे स्वर्णवस्त्रालङ्कारभंग्युताम् ।

श्रवणस्य फलावाप्त्यै दानैः सन्तोषयेद् गुरुम् ॥ २० ॥

अपूज्य पाठकर्त्तारं श्लोकमेकं शृणोति यः ।

नासौपुण्यमवाप्नोति शास्त्रचोरः स्मृतो हि सः ॥ २१ ॥

नतस्य देवाः प्रीणन्ति पितरो नैव पुत्रकान् । दत्तं श्राद्धं तथेच्छन्ति तार्थं ज्ञानफलं न च  
लभते शास्त्रचोरस्य निन्दांसजनसंसदि । अघघया न श्रोतव्यं शास्त्रमेतद्विचक्षणैः  
पठ्यमाने त्ववघाते साधुभिः शास्त्र उक्तमे । मूको भवति जन्मानि मम मर्त्यः प्रजायते  
श्रुत्वा तत्पूजयेद्यस्तु पुराणं सप्तमं पुनः । सर्वपापविनिर्मुक्तः पुनात्येव निजं कुलम्  
पूतो याति न सन्देहो विष्णुलोकं सनातनम् । च्युतस्ततः पुनर्नैव स भविष्यति मानवः  
पुराणश्रवणादेव परं योगमवाप्नुयात् । नास्तिकाय न दातव्यं वृषले वेदनिन्दके ॥  
गुरुद्विजातिनिन्दाय तथा भगवताय च । मातापित्रोर्निन्दकाय वेदशास्त्रादिनिन्दिने  
भिन्नमर्यादिने चैव तथा वैशातिकोपिने । एतेषां नैव दातव्यं प्राणैः कण्ठगतैरपि  
लोभाद्वायद्विद्वामोहाद्वाद्याद्यापि विशेषतः । पठेद्वा पाठयेद्वापि स गच्छेन्नरकं ध्रुवम्

मार्कण्डेय उवाच

एतत्सर्वमुपाख्यानं श्रम्यं स्वर्गापरां गदम् । यः शृणोति पठेद्वापि सिद्धं तस्य समीहितम्  
आधिव्याधिजदुःखेन कदाचिन्नाभिगुञ्जते ।

ब्रह्महत्यादि पापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥ ३२ ॥

सन्तः स्वजनमित्राणि भवन्ति हितंबुद्धयः ।



माऽरय सन्मविष्यन्ति क्षम्यसो वा वदायन ॥ ३३ ॥

सदस्योमिष्टमोगी च दुर्मिषैनायमीदृति । परदारपरद्रव्यपरहिंसादिक्लिष्टरि  
मुच्यन्तेऽनेकदुःखेभ्यो नित्यं येन द्विजोत्तम ।

ब्रह्मिण्युक्तिं स्मृतिं शान्तिं धीं पुष्टिस्तुष्टिषु च ॥

नित्यं तस्य भवेद्विप्रं यं शृणोति कथामिमाम् ॥ ३४ ॥

मार्कण्डेयपुराणमेतद्विप्रं शृण्वन्नशोच्य पुमान्,

यो वा सत्यगुदीरयेद्रममयं शोच्यो नमोऽपि द्विज ।

योगज्ञान पिशुदमिद्विगहितं स्वगादिगोकेऽप्यसौ,

शपापेभ्य सुरादिभिः परितृप्तं स्वर्गो सदा पूज्यते ॥ ३६ ॥

पुराणमेतच्छ्रुत्वा च ज्ञानविज्ञानसंयुतम् । विमानपरमात्मस्य स्वर्गागोके महीयो

पुराणाश्चरमदृश्या न प्रख्याता तत्त्वयुजिता ।

श्लोकानां परमदृश्याणि तथाघाष्टशतानि च ॥ ३७ ॥

श्लाघास्तत्र नवाशीति एकादश समाहिता ।

कथिता मुनिना पूर्वं मार्कण्डेयेन धीमता ॥ ३८ ॥

जैमिनिस्त्वाद्य

भारतेनाभयवन्ने मशयस्फोटनं द्विजा । तद्वयद्विं एतं यत्रकश्चिदप्य कल्पयति

सुखं दीघायुषं सन्तु प्रतायुजिविशारदा ।

साङ्ख्ययोगे तथा चान्तु युद्धिरव्यभिचारिणी ॥ ४१ ॥

पितृशापगताद्दुष्खाद्दीमन्स्यं व्यर्थेन च । एतापदुक्त्यायधनजगामस्थाधम मुनि

चिन्तयन्परमोदारं पक्षिणायाकर्मरिणम् ॥ ४२ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे एतन्पुराणमाहात्म्यप्रवचनफलवर्णनं नाम

मार्कण्डेयपुराणमाहात्म्यप्रवचनफलयुक्तं नाम

॥ श्रीः ॥

## \* परिशिष्टम्

—:—

प्राधानिकरहस्यवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

सावर्णिकमिदं सभ्यक् प्रोक्तं मन्वन्तरं तव । तथैव देवीमाहात्म्यं महिषासुरधातनम्

उत्पत्तयश्च या देव्या मातृणां च महामृधे ।

तथैव संस्तवो देव्याश्चामुण्डाया महाहृद्रे ॥ २ ॥

शिवदूत्याश्च माहात्म्यं च ध्रं शुम्भनिशुम्भयोः ।

रक्तवीजवधश्चैव सर्वं मे तत्र बोदितम् ॥ ३ ॥

श्रूयतां मुनिशार्दूल! रहस्याण्यपराणिते । इदं रहस्यं परमं नाऽऽख्येयं कस्यचिन्मुने

भक्तोऽसीति न मे किञ्चित्तवावाच्यं मुनीश्वर ।।

सर्वस्याद्यामहालक्ष्मी खिगुणा परमेश्वरी ॥ ५ ॥

लक्ष्यालक्षस्वरूपासाव्याप्य कृत्स्नं व्यवस्थिता ।

मातुलिङ्गं गदां खेटं पानपात्रं - वभ्रती ॥ ६ ॥

नागलिङ्गं घयोगं (नि) च विभ्रती निजमूर्द्धं । तप्तकाञ्चनवर्णाभा तप्तकाञ्चनभूषणा  
अन्यं तदखिलं स्वेन पूरयामास तेजसा । शून्यं तदखिलं लोकं तमसा केवलेन हि  
सामिन्नाञ्जनसङ्काशादंन्द्राञ्चितवरानना । विशाललोचनानारी चभूवतनुमध्यमा  
खड्गपाशशिरःखेटैरलङ्कृतचतुर्भुजा । कवन्धहारं शिरसा विभ्राणहि शिरःस्रजम्

\* अस्माभिः सर्वप्रकाशितेऽस्मिन्पुराणे हस्तलिखितपुस्तकौपलम्भादेवपाठः  
परिशिष्टे दीयते । एतद्रहस्यत्रयस्वपाठोऽस्मत्प्रकाशितमार्कण्डेयपुराणेनोपलभ्यते ।  
माहेश्वरतः शिवचैतन्यवर्णिमहोदयानां प्रेषितेऽतीवपुरातने हस्तलिखितेऽस्मिन्  
ग्रन्थे रहस्यत्रयी सप्तशतीमनुसन्निवेशिता अतस्तत्रपाठेयोजनायाऽधुनापरिशिष्ट-  
रूपेण विदुषांप्रीत्यै दीयते । अस्माभिस्तत्रनोपादानं कृतं प्रस्तुतहस्तलिखित

सा प्रोवाच महालक्ष्मीं नामसीं प्रमदोत्तमा ।  
 नामवर्मं च मे मातृदहि तुभ्यं नमोऽस्तु ते ॥ ११ ॥  
 तां प्रावाच महालक्ष्मीस्तामसीं प्रमदोत्तमाम् ।  
 इदमि तव नामानि यानि कर्माणि तानि ते ॥ १२ ॥  
 महामाया महाकार्गी महामारी श्रुधा कृपा  
 निद्रा कृष्णा र्विकचारा कालरात्रिदु राश्रया ॥ १३ ॥  
 इमानि तव नामानि प्रतिपाद्यानि ताममि ।  
 एभि कर्माणि त शक्या योऽर्थात् साऽऽस्तुते सुखम् ॥ १४ ॥  
 तामिष्टयुक्त्वा महालक्ष्मीं स्वरूपं परम मुने ।  
 सत्त्वाख्येनातिशुद्धेन गुणेनेन्दुप्रभ ददौ ॥ १५ ॥

अश्रुमालाङ्कुशधरायीणापुस्तकधारिणा । सायभूषपरानारीनामान्यस्यैषसादरौ  
 महायिद्या महापाणी भारती चाश्वरस्वती ।

भार्या प्राह्वी महा (काम) धेनुर्धेगमा च धीधरि ॥ १७ ॥

अयोषाचमहालक्ष्मीमहाकार्गीश्वरस्वतीम् । युषाज्जतयतादिर्यीमिथुनंस्वापुरूपत  
 इत्युषत्पा ते महालक्ष्मीं सप्तन मिथुन स्वयम् ।

द्विष्यगामो रचिरौ श्रीपुत्री कमलामती ॥ १६ ॥

प्रत्यन्विधे विरडेति धातरि गृह त नगम् ।

त्रिवर्गमे कमलक्ष्मीं गृह माता धियं च माम् ॥ २० ॥

महाकार्गी भारतीष मिथने कृपतन्मह । एतयोरपिनामानि कर्पाणिष्यदासिने  
 नीलकण्ठेन गृह देताङ्ग चन्द्रशगरम् । जनयामासपुत्र्यं महाकार्गीत्पिनात्त्रिवर्ग  
 च द्वाः शङ्कर म्हाणु कर्परी च त्रिगोषत ।

त्रयी विद्या कामरेणु सा श्री भाषा स्वराक्षरा ॥ २३ ॥

सरस्वतीस्त्रियंगौरीं कृष्णं च पुरुषं मुने । जनयामासनामानि तयोरपिवदामिने  
विष्णुः कृष्णो हृषीकेशो वासुदेवो जनार्दनः ।

उमागौरी सर्ती चण्डी सुन्दरी सुभगासुखा ( शिवा ) ॥ २५ ॥

एवं युगतयः सर्वाः पुरुषत्वं प्रोदिरे । चक्षुष्मन्तः प्रपश्यन्ति नेतरेतद्विदोजनाः ॥  
ब्रह्मणेप्रददौपत्नीं महालक्ष्मीमुनेस्त्रियम् । रुद्रायगौरीं वरदां वासुदेवायच श्रियम्  
स्वरया सह सम्भूय विरिञ्चोऽण्डमजीजनत् ।

विभेद भगवान् रुद्रस्तद्वौर्या सहवीर्यवान् ॥ २८ ॥

अण्डमध्ये प्रधानादि कार्यजातमभूत्मुने । महाभूतात्मकंसर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्  
पुषोप पालयामास तल्लक्ष्म्या सह केशवः । सञ्जहारेद्वृशंसर्वं सहगौर्या महेश्वरः ॥

महालक्ष्मीर्महाभाग सर्वदेवमयीश्वरी ।

साकारा च निराकारा सैव नानाभिधानभृत् ॥ ३१ ॥

नामान्तरैर्निरूप्यैषा नाम्नाऽनेकेन कुत्रचित् ।

नामानि च त्वयाब्रह्मज्ञान्येयानि न कस्यचित् ॥ ३२ ॥

इति मार्कण्डेयपुराणे देवीमाहात्म्ये प्राधानिकरहस्यवर्णनं नाम

नवाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

### वैकृतिकरहस्यवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

त्रिगुणा तामसी देवी सात्त्विकी या त्रिधोदिता ।

सा सर्वा चण्डिका दुर्गा भद्रा भगवतीति च ॥ १ ॥

योगनिद्रा हरेरुक्ता महांकाली तमोःगुणा ।

भभुकैऽमनाशार्थं यां तुष्टांवाऽम्बुजासनः ॥ २ ॥

दशवक्त्रा दशभुजा दशपादाञ्जनप्रभा । विशालयाराजमानात्रिशल्लोचनमालया

स्फुरद्भ्रानदंद्वासाभीमरूपामहामुने । रूपसौभाग्यकान्तीनां साप्रतिष्ठामहाश्रया  
 स्रजवर्णागदाशूलशङ्खचक्रमुमुण्डभृत् । परिधकामुंशशीर्गनिश्च्योतद्दुधिरददौ (धौ)

एषा सा वैष्णवी माया कालरात्रिदुरत्यया ।

आराधिता घर्शाकुर्यात् पूजाकतुक्षराघरम् ॥ ६ ॥

सचदेवशरीरेभ्योयाचिभूतामितप्रभा । त्रिगुणासामहालक्ष्मी साक्षात्महिषमर्दिनी  
 श्वेताननाऽनीलभुजासुरश्वेतस्तनमण्डरा । रक्तमय्या रक्तपादा रक्तजङ्घोस्त्वन्दम

मुचिरज्जयनाचित्रमयाभ्यरचिभूषणा ।

चित्रानुलेपना वान्ति रूपसौभाग्यमाग्नि ( शालिनी ) ॥ ६ ॥

अष्टादशभुजा पूज्या स महस्राभुजासना ।

आयुधान्यत्र यक्ष्यन्ते दक्षिणाध करव्रमात् ॥ १० ॥

अक्षमालाघकमल घाणोऽर्गिकुलिशगदा । चक्रत्रिशूलपरशु शङ्खोघण्टाघणाराका  
 शक्तिङ्गण्डधमघाप पानपात्र कमण्डलु । अलङ्कृतभुजाभेभिशयुधै कमलासनाम्

सचदेवमयीमीशा महालक्ष्मीमिमामुने । पूजयेत्सर्वलोकानां सदेवानाप्रभुर्भवेत् ॥

गौरीदेहात्ममुद्रभुजा या सर्वैकगुणाश्रया ।

साक्षात्सरस्वतीप्रोक्ता शुम्भासुरनिषेधणा ॥ १४ ॥

दधीघाण्टभुजायाणमुशः शूचप्रभृत् । शङ्खघण्टागङ्गाशुक्रकामुंक्षमहामुने !  
 एषा सम्पूजितामस्यासचप्रश्रंष्यच्छति । निशुम्भमयनादधी शुम्भासुरनिषेधणी

श्लुक्तानि स्वरूपाणिमूर्तानां तवभागुरे । उपारुन जगन्मातु पृथगासांनिशामय  
 महालक्ष्मायदापूज्या महाकाशीसरस्यती । दक्षिणोत्तरयो पूजयेत्पृष्टतामिधुनप्रयम्

विरिञ्चि मु (स्य) रयामध्ये रद्वोगीया च दक्षिणे ।

वामे लक्ष्म्या हरीवेशे पुरतो देवताप्रयम् ॥ १६ ॥

अष्टादशभुजामध्येवामेघास्यादशानना । दक्षिणेष्टभुजालक्ष्मीप्रसाण्यावायधाममे  
 पूषादिदत्तन पूज्या धसिताङ्गादिभेरया ।

अष्टादशभुजा घैरा यदापूज्या महामुने । दशाननायाष्टभुजा दक्षिणोत्तरयोस्तदा

कालमृत्यूचसम्पूज्योन्सर्वाग्निप्रशान्तये । यदाचाष्टभुजापूज्याशुम्भाम्बुरनिवर्हिणी  
नन्वास्याः शक्तयः पूज्यास्तधान्द्रविनायका ।

नमोदेव्याइतिस्तोत्रमहादेवी समन्वयेन् ॥ २३ ॥

अवनारत्रयार्घ्यायां स्तोत्रमन्त्रास्तदाश्रयाः । अष्टादशभुजात्रिपापूज्यामहिपमर्दिनी  
महान्द्रुमीर्महाकाली सैवप्रोक्तासरन्वती । ईश्वरीपुण्यपापानां सर्वलोकमोक्ष्वरी  
महिपान्तकरी येन पूजिता स जगन्प्रभुः ।

पूजयेज्जगतां धार्त्री चण्डिकां भक्तयत्ननाम् ॥ २६ ॥

धर्ष्यादिभिरुद्धारिर्गन्ध्रपूषाक्षरस्तथा । धूर्पदोषैश्चर्तवेद्यनानामश्रय समन्वितैः ॥  
रुधिराक्तेन घलिता मांसेन सुरयामुने । प्रणामाश्रनीयेन चन्दनेन सुगन्धिना ॥  
सकपूर्वेक्षताम्वलैर्मक्तिभावसमन्वितैः । वामभागेऽप्रतोदेव्याञ्छिवशीर्षमहान्गुग्म

पूजयेन्महिपं येन प्राप्तं सायुज्यमीशया ।

दक्षिणे पुरतः सिंहं समग्रं धर्ममीश्वरम् ॥ ३०

चाहनम्पूजयेद्देव्या धृतयेनचराचरम् । लिङ्गित्वाऽष्टदलंपद्मं चन्द्रनागुग्मुद्धूमैः ॥  
पट्कोणं तद्गतं कृत्वा देवीं तन्मध्यतो न्यसेत् ।

ततःकृताञ्जलिर्भूत्वा स्तुवीत चरितैरिमैः ॥ ३२ ॥

कुर्यात्तुस्तवनंधीमांस्तस्यामेकाप्रमानसः । एकैत वा मध्यमेन नैकेतैरग्योर्गिह ॥

अरिताङ्गं तु न जपेज्जपञ्चिच्छ्रद्रमवाप्नुयात् ।

स्तोत्रमन्त्रैः स्तुवीतेमां यदि वा जगदम्बिकाम् ॥ ३४ ॥

प्रदक्षिणां नमस्कारं कृत्वा मूर्द्धनि कृताञ्जलिः ।

क्षमापयेज्जगद्धार्त्रीं मुहुर्मुहुरनन्दिताः ॥ ३५ ॥

प्रतिश्लोकं च जुहुयात्पायसंतिलसर्पिषा । जुहुयात्स्तोत्रमन्त्रैर्वाचण्डिकायेशुभंहविः

नमोनमः पदं देवीं पूजयेत्सुसमाहितः । प्रथमः प्राञ्जलिं प्रह्वः प्राणः नारोप्यघात्मनि

( शुचिस्तां ) सुचिरं भावयेद्देवीं चण्डिकां तन्मनाभवेत् ।

एवं यः पूजयेद्भक्त्या प्रत्यहं परमेश्वरीम् ॥ ३८ ॥

भुक्त्वा भोगान्यथाकामं देवीसायुज्यमाप्नुयात् ।

यो न पूजयते नित्यं घण्डिका भक्तवत्सलाम् ।

भस्मीकृत्यास्य पुण्यानि निहृहेत्तमपीश्वरी ( त्वरप्रेश्वरी ) ॥ ३६ ॥

तस्मात्पूजयधर्मज्ञसर्वलोकमहेश्वरीम् । यथोक्तेनविधानेन घण्डिकासमवाप्स्यति

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे देवीमाहात्म्ये वैकृतिकरहरयवर्णननाम

नवतितमोऽध्याय ॥ ६० ॥

### मूर्तिरहस्यवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

नन्दा भगवती माया याऽचभजन्दजा शुभा ।

सा स्तुता पूजिता भक्त्या वशात्कुर्याज्जगत्त्रयम् ॥ १ ॥

कनकोत्तमकान्ति सा सुकान्ति कनकाम्बरा ।

देवी कनकवणा सा कनकोत्तमभूषणा ॥

कमलाङ्कुशपाशाब्जैरङ्कृतघनुभुजा ।

इन्दिरा कमलक्षमा सा ह्री (श्री) रुक्मान्मुजासना ॥ ३ ॥

यारक्तदन्तिकानामदेवीप्रोक्तामपानव । तस्या स्वरूपवदयामिश्रणुपापभयापहम्

रक्ताम्बरा रक्तवर्णा रक्तसर्वाङ्गभूषणा । रक्तायुधा रक्तनेत्रा रक्तवेशातिर्भाषणा ।

रक्तनाभणतला रक्तदशनारक्तदन्तिका । पतिनारीधानुरक्ता देवीभक्त भजेजनम् ।

वसुधैवविशालासासुमेरुगुल्फस्तनी । दीर्घाभ्याघतिस्थूली तावतीवमनोहर

ककशाघतिकान्ती च मवानन्दपयोनिधी ।

भक्तारसम्पाययेद्देवी भवकामदुधी स्तनी ॥ ८ ॥

खड्ग पात्र च मुशल लागूलञ्च विभर्ति सा ।

आख्याता रक्तघामुण्डा देवीयोगेश्वरीति च ॥ ६ ॥

अनयाव्याप्तमखिलंजगत्स्थावरजङ्गमम् । इमांयःपूजयेद्भक्त्यास्वव्याप्तोनिघराघरम्  
अर्थाति यः इमंनित्यं रक्तदन्त्यावपुःस्तघं । तंसापरिचरद्देवी पुत्रंप्रियमिवाङ्गना ॥  
शाकम्भरीनीलवर्णा नीलोत्पलचिलोचना । गम्भीरनाभिस्त्रिवलीविभूयिततनूदर्गा  
सुकर्कशमयोत्तङ्गवृत्तपीनवनस्तनी । मुष्टीशिलीमुखान्पूर्णा कमलं कमलालया ॥

पुष्पपल्लवमूलादि फलाढ्यंशाकसञ्जयम् ।

काम्यानन्तरस्मैर्युक्तं श्रुत्त् ( ण् ) मृत्युञ्जरापहम् ॥ १४ ॥

तामुकञ्चस्फुरत्कान्तिविभ्रतीपरमेश्वरी । शाकम्भरीशताक्षीमासैवदुर्गाप्रकीर्तिना  
उमा गौरी स्ती चण्डी कालिका सा च पार्वती ।

शाकम्भरींस्तुवन श्यायन् जयन्सम्पूयन्नमन् ॥ १६ ॥

अक्षय्यमश्नुतेशीघ्रमन्नपानामृतं फलम् । भीमापिनीलवर्णांसाद्गन्द्राद्शनभास्वरा  
विशाललोचनादेवी वृत्तपीनपयोधरा । घण्टहासंघटमरुःशिरःपात्रं च विभ्रती  
एकवीरा कालरात्रिः सैवोक्ताकामदा स्तुता ।

तेजोमण्डलदुर्गर्गाम्भारी चित्रवान्तिभृत् ॥ १६ ॥

चित्राभरणपाणिः सा महागौरीतिगीयते ।

इत्येतां मूर्त्तयो देव्याः रुपातास्ते भागुरे ! मया ॥ २० ॥

जगन्मातुश्चण्डिकायाः कीर्तिताः कामधेनवः ।

इदं रहस्यं परमं न चाच्यं यस्य कस्यचित् ।

व्याख्यानं दिव्यमूर्त्तीनामधीष्वाऽवहितः स्वयम् ॥ २१ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेदेवीमाहात्म्ये मूर्त्तिरहस्यवर्णनंनामैक-

नवतितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥





